ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

श्री पंचास्तिकायसंग्रह प्रवचन

(भाग - 1)

परमपूज्य भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत **श्री पंचास्तिकायसंग्रह** ग्रन्थ पर **अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी** के 31 अक्षरशः मंगल प्रवचन (गाथा 1 से 27 तक)

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत
2077

वीर संवत
2547

ई. सन
2021

—: प्रकाशन :—
वात्सल्य पर्व : मुनिरक्षा दिन, श्रावण शुक्ल पूर्णिमा
एवं
प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन की
108वीं जन्म-जयन्ती (भाद्र कृष्ण दूज)
के पावन अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—
1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334
2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

प्रकाशकीय

परमपूज्य भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव जैसे महासमर्थ आचार्य भगवन्त द्वारा प्रणीत पंचास्तिकायसंग्रह ग्रन्थ जिनसिद्धान्त और जिनअध्यात्म का प्रवेश द्वारा है। इसमें जिनागम में प्रतिपादित द्रव्य-व्यवस्था और पदार्थ-व्यवस्था का संक्षिप्त में प्राथमिक परिचय प्रदान किया गया है।

आचार्य जयसेनदेव के कथनानुसार इस शास्त्र की रचना शिवकुमार महाराज इत्यादि संक्षिप्त रुचिवाले शिष्यों को समझाने के लिये हुई है।

महाश्रमण तीर्थंकरदेव की वाणी दिव्यध्वनि का-प्रवचन का सार ही संक्षिप्त में इस शास्त्र में समायोजित किया गया है।

मूल शास्त्र की अन्तिम गाथा १७३ के अनुसार जिनप्रवचन के साररूप 'पंचास्तिकायसंग्रह' सूत्र मेरे द्वारा मार्ग की प्रभावना की हेतु से जिनप्रवचन की भक्ति से प्रेरित होकर कहा गया है, ऐसा आचार्यदेव ने कहा है।

इस शास्त्र के वाँचन-मनन से होनेवाले लाभ सम्बन्धी नोंध लेते हुए मूल ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि इस प्रकार जिनप्रवचन के सारभूत इस पंचास्तिकायसंग्रह को जानकर जो राग-द्वेष को छोड़ता है, वह दुःख से मुक्त हो जाता है (गाथा-१०३)।

प्रस्तुत पंचास्तिकायसंग्रह ग्रन्थ पर दो टीकायें जगतप्रसिद्ध हैं। आचार्य अमृतचन्द्रदेव द्वारा लिखी गयी 'समयव्याख्या' और आचार्य जयसेनदेव कृत 'तात्पर्यवृत्ति' नामक टीका।

आचार्य अमृतचन्द्रदेव के मतानुसार इस ग्रन्थ के स्पष्टरूप से दो खण्ड हैं, जिनका उल्लेख टीकाकार ने 'श्रुतस्कन्ध' नाम से किया है।

जबकि तात्पर्यवृत्तिकार आचार्य जयसेन ने इस ग्रन्थ को तीन महा अधिकारों में विभक्त किया है। आचार्य अमृतचन्द्रदेव द्वारा विभाजित प्रथम श्रुतस्कन्ध अनुसार ही आचार्य जयसेन द्वारा विभाजित प्रथम महा अधिकार है। अमृतचन्द्राचार्य के द्वितीय श्रुतस्कन्ध को जयसेनदेव ने दूसरे और तीसरे महा अधिकारों में विभाजित किया है। विशेष इतना ही कि

अमृतचन्द्राचार्य जिसे 'मोक्षमार्ग प्रपंच चूलिका' कहते हैं, उसे ही जयसेनाचार्य तृतीय महाअधिकार कहकर पुकारते हैं।

प्रथम श्रुतस्कन्ध (प्रथम खण्ड) अथवा प्रथम महा अधिकार में सर्व प्रथम १ से २६ गाथाओं में मंगलाचरण और ग्रन्थ रचने की प्रतिज्ञा के उपरान्त छह द्रव्य और पंचास्तिकाय के सामान्य व्याख्यानरूप पीठिका प्रस्तुत की गयी है।

उक्त पीठिका अधिकार में पाँच अस्तिकाय द्रव्यों का—(जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश का) अस्तित्व और कायत्व जिस विशिष्टता से दर्शाया गया है, वह दर्शनीय और मननीय है।

'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य' अथवा 'गुणपर्यायत्व' के कारण 'अस्तित्व' और बहुप्रदेशत्व के कारण कायत्व सिद्ध किया गया है।

'अस्तिकाय' शब्द अस्तित्व तथा कायत्व का द्योतक है। अस्तित्व+कायत्व= अस्तिकाय, इस प्रकार अस्तिकाय शब्द का प्रयोग अस्तित्व और कायत्व के अर्थ में होता है।

अस्तित्व को सत्ता अथवा सत् भी कहते हैं। यह जो सत् को द्रव्य का लक्षण कहा जाता है, जो उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य से युक्त होता है।

यहाँ इस सत् और सत्ता की मार्मिक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।

इस स्पष्टीकरण के पश्चात् गाथा 12-13 में गुण-पर्यायों का द्रव्य के साथ भेदाभेद दर्शाया गया है और 14वीं गाथा में, तत्सम्बन्धी सप्तभंगी स्पष्ट की गयी है। तत्पश्चात् सत् के नाश तथा असत् के उत्पाद सम्बन्धी स्पष्टता के साथ गाथा 20 तक पंचास्तिकायों का सामान्य निरूपण पूरा होता है। पश्चात् 26वीं गाथा तक कालद्रव्य का निरूपण प्रस्तुत किया गया है।

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समयान्तर में पंचास्तिकाय ग्रन्थ पर व्याख्यान हुए हैं। यहाँ क्रमशः धारावाही हुए 88 प्रवचनों को चार भागों में प्रकाशित किये जाने की योजना है। उसमें से यह प्रथम भाग आप सभी आत्मार्थी भव्यात्माओं के करकमल में प्रस्तुत है। जिसमें कुल 31 अक्षरशः प्रवचन हैं जो प्रथम पीठीका रूप द्रव्य सामान्य अधिकार की गाथा 1 से 26 तथा गाथा 27वीं पर हुए हैं। विशेष उल्लेखनीय है कि गाथा 22 से 26 तक पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन सी.डी. में अनुपलब्ध होने से प्रवचन ग्रन्थ

की पूर्णता हेतु इन गाथाओं के संकलित प्रवचन श्री सद्‌गुरुप्रवचनप्रसाद (हस्तलिखित दैनिक) से साभार लिये गये हैं।

इन सभी प्रवचनों को सी.डी. से कम्प्यूटराईज्ड (गुजराती भाषा में) करने का कार्य आत्मार्थी श्रीमती बीनाबेन चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा सम्पन्न किया गया है। जिन्हें सी.डी. से मिलान करने का कार्य आत्मार्थी भाईश्री डॉ. देवेन्द्रभाई दोशी, सुरेन्द्रनगर और स्व. चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा किया गया है। तीन प्रवचन सन् 1969 के वर्ष में अनुपलब्ध होने से सन् 1963 के प्रवचनों से लिये गये हैं।

प्रस्तुत प्रवचनों का हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज को भी लाभ प्राप्त हो, इस उद्देश्य से इस प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद एवं सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का टाईपसेटिंग का कार्य श्री विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ द्वारा सम्पन्न हुआ।

संस्था सभी सहयोगियों के प्रति हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करती है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ www.vitragvani.com एवं vitragvani App पर भी उपलब्ध है।

सभी आत्मार्थी जीव इस प्रवचन ग्रन्थ का अध्ययन कर वस्तुस्वरूप के सम्यक् परिज्ञानपूर्वक निज आत्महित साधें इसी भावना के साथ....

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विलेपार्ला, मुम्बई

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

श्री सद्‌गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्‌घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्वार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने

से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — '**सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।**' इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा

विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते

थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय,

आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन	दिनांक	गाथा	पृष्ठ क्र.
०१	१५.११.१९६९	१ तथा श्लोक ३ से ६	०३
०२	१६.११.१९६९	१–२	२८
०३	१७.११.१९६९	२–३	४९
०४	१८.११.१९६९	३–४	७०
०५	१९.११.१९६९	४	९१
०६	२०.११.१९६९	४–५	१०९
०७	१७.१२.१९६३	५	१३१
०८	१८.१२.१९६३	५–६	१४९
०९	१९.१२.१९६३	६ से ८	१६९
१०	२३.११.१९६९	६ – ७	१९६
११	२४.११.१९६९	८	२१५
१२	२५.११.१९६९	८	२३३
१३	२६.११.१९६९	८	२५१
१४	२७.११.१९६९	८	२६९
१५	२८.११.१९६९	८	२८६
१६	२९.११.१९६९	८ – ९	३०४
१७	३०.११.१९६९	९ – १०	३२५
१८	०१.१२.१९६९	१०	३४७
१९	०२.१२.१९६९	१०	३६५
२०	०३.१२.१९६९	११	३८३
२१	०४.१२.१९६९	१२ – १३	४०४
२२	०५.१२.१९६९	१४	४२५
२३	०६.१२.१९६९	१५	४४६
२४	०७.१२.१९६९	१६	४६५
२५	०८.१२.१९६९	१७ – १८	४८४
२६	०९.१२.१९६९	१८ – १९	५०३
२७	१०.१२.१९६९	१९ – २०	५२३
२८	११.१२.१९६९	२० – २१	५४५
२९	१२.१२.१९६९	२१	५६६
संकलित प्रवचन		२२ से २६	५८५
३०	१३.१२.१९६९	२७	६०५
३१	१४.१२.१९६९	२७	६२०

ॐ

परमात्मने नमः

श्री पञ्चास्तिकायसंग्रह प्रवचन

भाग-१

— १ —
षड्द्रव्य-पञ्चास्तिकायवर्णन

सहजानन्दचैतन्यप्रकाशाय महीयसे।
नमोऽनेकान्तविश्रान्तमहिम्ने परमात्मने।।१।।

मूल गाथाओं का तथा 'समयव्याख्या' नामक टीका का हिन्दी अनुवाद

[प्रथम, ग्रन्थ के आदि में श्रीमद्भवगत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत प्राकृतगाथाबद्ध इस 'पंचास्तिकायसंग्रह' नामक शास्त्र की 'समयव्याख्या' नामक संस्कृत टीका रचनेवाले आचार्य श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव श्लोक द्वारा मंगल के हेतु परमात्मा को नमस्कार करते हैं:—]

[श्लोकार्थः-] सहज आनन्द एवं सहज चैतन्यप्रकाशमय होने से जो अति महान है तथा अनेकान्त में स्थित जिसकी महिमा है, उस परमात्मा को नमस्कार हो।[१]

[अब टीकाकार आचार्यदेव श्लोक द्वारा जिनवाणी को स्तुति करते हैं:—]

दुर्निवारनयानीकविरोधध्वंसनौषधिः।
स्यात्कारजीविता जीयाज्जैनी सिद्धान्तपद्धति।।२।।

सम्यग्ज्ञानामलज्योतिर्जननी द्विनयाश्रया।
अथातः समयव्याख्या संक्षेपेणाऽभिधीयते।।३।।

[श्लोकार्थः-] [१]स्यात्कार जिसका जीवन है, ऐसी जैनी (-जिनभगवान की) सिद्धान्तपद्धति—जो कि [२]दुर्निवार नयसमूह के [३]विरोध का नाश करनेवाली औषधि है वह—जयवन्त हो। [२]

[अब टीकाकार आचार्यदेव श्लोक द्वारा इस पञ्चास्तिकायसंग्रह नामक शास्त्र की टीका रचने की प्रतिज्ञा करते हैं:—]

[श्लोकार्थः-] अब यहाँ से, जो सम्यग्ज्ञानरूपी निर्मल ज्योति की जननी है, ऐसी द्विनयाश्रित (दो नयों का आश्रय करनेवाली) [४]समयव्याख्या (पञ्चास्तिकायसंग्रह नामक शास्त्र की समयव्याख्या नामक टीका) संक्षेप से कही जाती है। [३]

---

१. 'स्यात्' पद जिनदेव की सिद्धान्तपद्धति का जीवन है। (स्यात्=कथञ्चित्; किसी अपेक्षा से; किसी प्रकार से।)

२. दुर्निवार=निवारण करना कठिन; टालना कठिन।

३. प्रत्येक वस्तु नित्यत्व, अनित्यत्व आदि अनेक अन्तमय (धर्ममय) है। वस्तु की सर्वथा नित्यता तथा सर्वथा अनित्यता मानने में पूर्ण विरोध आने पर भी, कथञ्चित् (अर्थात् द्रव्य-अपेक्षा से) नित्यता और कथञ्चित् (अर्थात् पर्याय-अपेक्षा से) अनित्यता मानने में किञ्चित् विरोध नहीं आता—ऐसी जिनवाणी स्पष्ट समझती है। इस प्रकार जिनभगवान की वाणी स्याद्वाद द्वारा (अपेक्षा कथन से) वस्तु का परम यथार्थ निरूपण करके, नित्यत्व-अनित्यत्वादि धर्मों में, (तथा उन-उन धर्मों को बतलानेवाले नयों में) अविरोध (सुमेल) अबाधितरूप से सिद्ध करती है और उन धर्मों के बिना वस्तु की निष्पत्ति ही नहीं हो सकती—ऐसा निर्बाधरूप से स्थापित करती है।

4. समयव्याख्या=सयम की व्याख्या; पञ्चास्तिकाय की व्याख्या; द्रव्य की व्याख्या; पदार्थ की व्याख्या। [व्याख्या=व्याख्यान; स्पष्ट कथन; विवरण; स्पष्टीकरण।]

प्रवचन नं. १, गाथा-१, श्लोक ३-६
दिनांक - १५-११-१९६९, कार्तिक शुक्ल ६, शनिवार

पञ्चास्तिकायसंग्रह : षट्द्रव्य, पञ्चास्तिकाय वर्णन

पहले दो श्लोक चले हैं। अब तीसरा श्लोक।

अब, टीकाकार आचार्यदेव श्लोक द्वारा पञ्चास्तिकायसंग्रह नामक शास्त्र की टीका रचने की प्रतिज्ञा करते हैं। पहले देव की स्तुति और नमस्कार किया। दूसरे (में) शास्त्र की स्तुति की। अब शुरु करते हैं। स्वयं तो गुरु हैं और आचार्य हैं।

सम्यग्ज्ञानामलज्योतिर्जननी द्विनयाश्रया।
अथातः समयव्याख्या संक्षेपेणाऽभिधीयते।।३।।

अब, यहाँ से जो सम्यग्ज्ञानरूपी निर्मल ज्योति की जननी है, ऐसी द्विनयाश्रित (दो नयों का आश्रय करनेवाली) 'समयव्याख्या'....

क्योंकि प्रत्येक पदार्थ का; निश्चय और व्यवहार दो नय से जिसका स्वरूप है। अर्थात् दो नयों के आश्रय से जिसकी व्याख्या। **दो नयों की आश्रय करनेवाली....** लो! ऐसा इसका अर्थ किया, आश्रय करनेवाली। आश्रय-अर्थात् दो नयों से कथन करनेवाली, ऐसा। यह आश्रय आया, इसलिए सीधे कहें, लो! यह तो दो नय का आश्रय हो गया। प्रत्येक वस्तु, दो नय के कथन से उसका सम्यग्ज्ञान पूरा होता है। द्रव्य है, वह निश्चय है (और) पर्याय है, वह व्यवहार है। मोक्षमार्ग भी निश्चय है, वह सत्य है और व्यवहार, वह उपाचर प्रणीत है। इन दो नय से उसका ज्ञान करने के लिये। क्योंकि सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति दो नय के आश्रय से है। एकान्त निश्चयनय से ही सम्यग्ज्ञान है—ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : एकान्त आत्मा के आश्रय से-ऐसा कहा जाता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री - वह जरूरत नहीं। वह आश्रय लेने के लिये। परन्तु ज्ञान करने के लिये दूसरा नय है या नहीं? समझ में आया? जानने के लिये दो नय है या नहीं?

द्रव्य और पर्याय; शुद्ध और अशुद्ध; उपादान और निमित्त दो के आश्रय से शास्त्र में कथन है। दूसरी चीज़ है, उसे जानने के लिये है या नहीं? इसी तरह आत्मा में पर्याय

है, वह जानने के लिये है या नहीं? कि जहाँ पर्याय आश्रय करनेयोग्य नहीं, वह अलग वस्तु है, परन्तु पर्याय है न? द्रव्य त्रिकाली है, वैसे एक समय की अवस्था भी है। समझ में आया? है, उसका ज्ञान बराबर करना चाहिए, क्योंकि दो नय के आश्रय से... शब्द क्या है? 'सम्यग्ज्ञानरूपी निर्मल ज्योति की जननी,'—कौन? ऐसी दो—द्वि नयाश्रित समयव्याख्या। समय अर्थात् पदार्थ कहो, पंचास्तिकाय कहो, द्रव्य कहो और व्याख्या अर्थात् स्पष्ट कथन-विवरण-स्पष्टीकरण और व्याख्यान। दो नय में एक नय आश्रय करनेयोग्य है अपने लिये। निश्चयनय तो परमाणु है निश्चय और पर्याय है, ये दोनों कोई आश्रय करनेयोग्य (नहीं है) परन्तु दो नय में अपना स्वरूप त्रिकाल है, ध्रुव है, नित्य है, वह आश्रय करनेयोग्य है परन्तु सम्यग्ज्ञान में तो पर्याय भी है, राग है, उसका ज्ञान इसे बराबर होना चाहिए; नहीं तो सम्यग्ज्ञान में एक नय ही नहीं होता, ज्ञान में तो दोनों नय हैं—ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

वह सब सुना था न कर्ताकर्म में, वापस आया कि कर्तृत्व नय है, ऐसा यह आया। उस समय जो प्रकार है, उस प्रकार उसे समझना चाहिए न! अकेला निश्चय है और (दूसरा नहीं)? निश्चयनय है, वह नय है, वह एक अंश को जानता है। नय कहीं पूरी चीज़ को नहीं जानता, तो एक अंश के अतिरिक्त दूसरा अंश पर्याय का रह जाता है न! भले छोटा अंश है और द्रव्य का अंश बड़ा है। समझ में आया? परन्तु नय है, वह एक अंश का आश्रय करता है, एक अंश का पक्ष करता है। इसलिए नय का दूसरा एक पक्ष रह जाता है। इसलिए कहा **ऐसी द्विनयाश्रित (दो नयों का आश्रय करनेवाली) समयव्याख्या (पञ्चास्तिकायसंग्रह नामक शास्त्र की समयव्याख्या नामक टीका) संक्षेप कही जाती है।** लो!

मुमुक्षु : दो नय के ज्ञान बिना निर्मल दृष्टि होती ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : होती नहीं और ऐसा ही है न, उसमें क्या है? द्रव्य का ज्ञान, उसके साथ में पर्याय का ज्ञान होना ही चाहिए; नहीं तो सम्यग्ज्ञान नहीं होगा। वस्तु इसकी अपनी है या नहीं? निश्चय मोक्षमार्ग एक नय से, दूसरा विकल्प-दूसरा व्यवहार है या नहीं? है। मोक्षमार्ग भले इस रूप से हो परन्तु है या नहीं, उसका ज्ञान तो करना चाहिए।

नय है और नय ज्ञान का अंश है तो उसका विषय भी है। विषय नहीं और नय हो, ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया ?

इस कारण व्यवहारनय से धर्म होता है या व्यवहारनय से कल्याण होता है, यह यहाँ प्रश्न नहीं है परन्तु दो नय के ज्ञान द्वारा निर्मल सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है। एक ही नय का ज्ञान हो और दूसरे नय का ज्ञान न हो तो वह ज्ञान एकान्त हो जाता है–ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? चौथा श्लोक

[अब, तीन श्लोकों द्वारा टीकाकार आचार्यदेव अत्यन्त संक्षेप में यह बतलाते हैं कि इस पञ्चास्तिकायसंग्रह नामक शास्त्र में किन-किन विषयों का निरूपण हैं:]

पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्रकारेण प्ररूपणम्।
पूर्वं मूलपदार्थानामिह सूत्रकृता कृतम्।।४।।

[श्लोकार्थ :-] यहाँ प्रथम *सूत्रकर्ता ने मूल पदार्थों का पञ्चास्तिकाय एवं षड्द्रव्य के प्रकार से प्ररूपण किया है (अर्थात् इस शास्त्र के प्रथम अधिकार में श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने विश्व के मूल पदार्थों का पाँच अस्तिकाय और छह द्रव्य की पद्धति से निरूपण किया है।)[४]

---

* इस शास्त्र के कर्ता श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव हैं। उनके दूसरे नाम पद्मनन्दि, वक्रग्रीवाचार्य, एलाचार्य और गृध्रपिच्छाचार्य हैं। श्री जयसेनाचार्यदेव इस शास्त्र की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका प्रारम्भ करते हुए लिखते हैं कि:—''अब श्री कुमारनन्दि-सिद्धान्तिदेव के शिष्य श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने—जिनके दूसरे नाम पद्मनन्दि आदि थे — उन्होंने —प्रसिद्ध कथान्याय से पूर्व विदेह में जाकर वीतराग-सर्वज्ञ सीमंधरस्वामी तीर्थंकर परमदेव के दर्शन करके, उनके मुखकमल से निकली हुई दिव्यध्वनि के श्रवण से अवधारित पदार्थ शुद्धात्मतत्त्वादि सारभूत अर्थ ग्रहण करके, वहाँ से लौटकर अंत:तत्त्व एवं बहि:तत्त्व के गौण-मुख्य प्रतिपादन के हेतु अथवा शिवकुमारमहाराजादि संक्षेपरुचि शिष्यों के प्रतिबोधनार्थ रचे हुए पञ्चास्तिकाय-प्राभृतशास्त्र का यथाक्रम से अधिकार-शुद्धिपूर्वक तात्पर्यार्थरूप व्याख्यान किया जाता है।''

श्लोक-४ पर प्रवचन

यहाँ प्रथम सूत्रकर्ता ने.... (नीचे) इस शास्त्र के कर्ता श्रीमद्‌भगवत्‌-कुन्दकुन्दाचार्यदेव हैं। उनके दूसरे नाम पद्मनन्दि, वक्रग्रीवाचार्य, एलाचार्य और गृध्रपिच्छाचार्य हैं। श्री जयसेनाचार्यदेव इस शास्त्र की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका प्रारम्भ करते हुए लिखते हैं कि:—''अब श्री कुमारनन्दि-सिद्धान्तिदेव के शिष्य श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने—जिनके दूसरे नाम पद्मनन्दि आदि थे — उन्होंने — प्रसिद्ध कथान्याय से पूर्व विदेह में जाकर.... लो! इसमें संस्कृत टीका है। देखो न, कितने ही कहते हैं कि भगवान, महाविदेह में गये या नहीं यह निर्णय करो.... यह है वह किस अपेक्षा से है, ऐसा कहकर कितने ही निकाल देते हैं।

मुमुक्षु : बहुत वर्ष में आचार्यदेव ने लिखा....

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत वर्ष में आचार्यदेव ने लिखा तो आचार्यदेव ने लिखा वह मिथ्या है?

मुमुक्षु : श्वेताम्बर कहते थे कि हम गये थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं; धूल भी नहीं गये थे कोई, कौन जाता था! समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य, पूज्यपादस्वामी इत्यादि महाविदेह में गये थे। दूसरे तो कब गये थे? वे महाविदेह में जाये। क्या हो, यह तो सम्प्रदाय की बात है। यह बात (जिस प्रकार से) बैठी हो, वह कोई छोड़े? है?

मुमुक्षु : दिगम्बर भी नहीं छोड़ते, दिगम्बर भी नहीं मानते।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दिगम्बर भी कहते हैं न? कितने ही ऐसा कहते हैं। यहाँ आया है न अभी, ऐसा निर्णय करो ऐसा है अवश्य। यदि हो तो उन्होंने स्वयं क्यों नहीं लिखा? ऐसा प्रश्न करते हैं। महाविदेह में गये हों तो स्वयं ने क्यों नहीं लिखा? लिखा नहीं? केवली-श्रुतकेवली ने कहा। नियमसार में कहा है। केवली, श्रुतकेवली ने कहा, देखो! लो!

मुमुक्षु : सभी आचार्य केवली का कहते हैं।

उत्तर : हाँ, केवली-श्रुतकेवली-मूलपाठ है। ऐसा शब्द दूसरों में कहीं नहीं है। समयसार में तो श्रुतकेवली भणियं है। वह तो फिर अर्थ दो किये हैं। नियमसार में तो केवली और श्रुतकेवली दो, केवली ने कहा हुआ। समझ में आया? परन्तु यह बात इसके भाव देखो, ऐसी कथनशैली देखो तो प्रत्यक्ष वीतराग सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह बात इसकी इतनी स्पष्ट नहीं हो सकती। यह तो न माने, वह लोगों के लिये समझाना है। समझ में आया? दूसरा तो साक्षात् हुआ है, उसमें प्रश्न कहाँ है उसमें कुछ? समझ में आया? **पूर्व विदेह में जाकर वीतराग-सर्वज्ञ सीमंधरस्वामी तीर्थंकर परमदेव के दर्शन करके, उनके मुखकमल से निकली हुई दिव्यध्वनि के श्रवण से अवधारित पदार्थ शुद्धात्मतत्त्वादि सारभूत अर्थ ग्रहण करके,....** यहाँ से शुरु किया है। **वहाँ से लौटकर अंतःतत्त्व एवं बहिःतत्त्व के....** देखो! **गौण-मुख्य प्रतिपादन के हेतु...** अन्तःतत्त्व का मुख्य और बहिःतत्त्व का गौण, भले शब्द उल्टे-सीधे पड़े हैं। वरना तो अन्तःतत्त्व के साथ में गौण हो जाये, ऐसा नहीं है। अन्तःतत्त्व भगवान आत्मा पूर्ण, वह मुख्य है और उसके अतिरिक्त पर्याय आदि, बाह्य आदि सब गौण तत्त्व है, परन्तु है अवश्य। **प्रतिपादन के हेतु अथवा शिवकुमारमहाराजादि संक्षेपरुचि शिष्यों के प्रतिबोधनार्थ रचे हुए पञ्चास्तिकाय-प्राभृतशास्त्र का यथाक्रम से अधिकार-शुद्धिपूर्वक तात्पर्यार्थरूप व्याख्यान किया जाता है।** लो, स्वयं जयसेनाचार्य महाव्रतधारी सन्त-आचार्य हैं।

मुमुक्षु : इनकी कथा सच्ची लगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : इनकी कथा सच्ची लगी, जैसी है वैसी लगी। दूसरों को, है ऐसा न लगे, इसलिए कहीं वस्तु बदल जायेगी? समझ में आया? लो!

इस शास्त्र में **यहाँ प्रथम सूत्रकर्ता ने मूल पदार्थों का पञ्चास्तिकाय एवं षड्द्रव्य के प्रकार से प्ररूपण किया है....** लो! उसमें ऊपर पुस्तक का नाम ही ऊपर है न देखो '**षड्द्रव्य पंचास्तिकाय वर्णन**' इस ओर '**षड्द्रव्य पंचास्तिकाय वर्णन**' इस ओर है न? वह यह पहला अधिकार। समझ में आया? **इस शास्त्र के प्रथम अधिकार में पाँच अस्तिकाय और छह द्रव्य की पद्धति से निरूपण किया है।** लो इतनी बात पक्की हुई चौथे से। अब पाँचवाँ श्लोक,

जीवाजीवद्विपर्यायरूपाणां चित्रवर्त्मनाम्।
ततो नवपदार्थानां व्यवस्था प्रतिपादिता।।५।।

[श्लोकार्थ :-] पश्चात् (दूसरे अधिकार में), जीव और अजीव—इन दो की पर्यायोंरूप नव पदार्थों की—कि जिनके मार्ग अर्थात् कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं, उनकी—व्यवस्था प्रतिपादित की है। [५]

श्लोक-५ पर प्रवचन

जीवाजीवद्विपर्यायरूपाणां चित्रवर्त्मनाम्।
ततो नवपदार्थानां व्यवस्था प्रतिपादिता।।५।।

दूसरे भाग में आता है न यह ? दूसरे अधिकार में। यह पहले अधिकार की बात हुई। इसमें दो अधिकार हैं न।

[श्लोकार्थ :-] पश्चात् (दूसरे अधिकार में), जीव और अजीव—इन दो की पर्यायोंरूप.... जीव और अजीव दो पदार्थ, उनकी पर्यायोंरूप **नव पदार्थों की—कि जिनके मार्ग अर्थात् कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं,....** लो! संवर का मार्ग भिन्न है, आस्रव का भिन्न है, बन्ध का भिन्न है, मोक्ष का भिन्न है। जिनके मार्ग-कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं। अजीव की पर्याय का कार्य अजीव, राग की पर्याय का कार्य जीव में। इस प्रकार प्रत्येक का कार्य भिन्न-भिन्न है। किसी का कार्य किसी के कारण नहीं है। कहो, समझ में आया ?

जिनके मार्ग अर्थात् कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं, उनकी—व्यवस्था प्रतिपादित की है। संवर, संवर का कार्य करता है; आस्रव, आस्रव का कार्य करता है; बन्ध, बन्ध का कार्य करता है; मोक्ष, मोक्ष का कार्य करता है (सब) भिन्न-भिन्न हैं। आस्रव, संवर का कार्य नहीं करता; संवर, आस्रव का कार्य नहीं करता; बन्ध, मोक्ष का कार्य नहीं करता; मोक्ष, बन्ध का कार्य नहीं करता। अजीव, जीव का कार्य नहीं करता; जीव, अजीव का कार्य (नहीं करता) परन्तु इसमें यह सब आ जाता है। समझ में आया ?

चित्रवर्त्म कहा न ? चित्र अर्थात् भिन्न-भिन्न, भिन्न-भिन्न; वर्त्य अर्थात् नाम। मार्ग

प्रत्येक का, मार्ग भिन्न-भिन्न है। अजीव का मार्ग अजीव में है; राग का मार्ग राग में है; संवर का मार्ग संवर में है, मार्ग कहो या कार्य कहो (एकार्थ है)। समझ में आया? आस्रव से संवर नहीं होता; संवर से आस्रव नहीं होता। अजीव से जीव नहीं होता; जीव से अजीव नहीं होता। अजीव के उदय से विकार नहीं होता और विकार के कारण कर्म की पर्याय बँधे, ऐसा नहीं होता—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? नौ पदार्थ के मार्ग-कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं। उनकी व्यवस्था इसमें प्रतिपादित की है, दूसरे भाग में ऐसा। दूसरे अधिकार के अन्त में।

ततस्तत्त्वपरिज्ञानपूर्वेण त्रितयात्मना।
प्रोक्ता मार्गेण कल्याणी मोक्षप्राप्तिरपश्चिमा।।६।।

[श्लोकार्थः-] पश्चात् (दूसरे अधिकार के अन्त में), तत्त्व के परिज्ञानपूर्वक (पञ्चास्तिकाय, षड्द्रव्य तथा नव पदार्थों के यथार्थ ज्ञानपूर्वक)त्रयात्मक मार्ग से (सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मक मार्ग से) कल्याणस्वरूप उत्तम मोक्षप्राप्ति कही है।[६]

श्लोक-६ पर प्रवचन

ततस्तत्त्वपरिज्ञानपूर्वेण त्रितयात्मना।
प्रोक्ता मार्गेण कल्याणी मोक्षप्राप्तिरपश्चिमा।।६।।

[श्लोकार्थः-] पश्चात् (दूसरे अधिकार के अन्त में), तत्त्व के परिज्ञानपूर्वक (पञ्चास्तिकाय, षड्द्रव्य तथा नव पदार्थों के यथार्थ ज्ञानपूर्वक).... उनके यथार्थ ज्ञानपूर्वक **त्रयात्मक मार्ग से (सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मक मार्ग से) कल्याणस्वरूप उत्तम मोक्षप्राप्ति कही है।** लो, समझ में आया? अकेले आत्मा का ज्ञान नहीं। पञ्चास्तिकाय, षड्द्रव्य और नव पदार्थ के ज्ञानपूर्वक त्रयात्मक (मार्ग से)-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के मोक्षमार्ग की कल्याणस्वरूप उत्तम मोक्ष प्राप्ति कही है। आया न, उसमें-ध्रुव में अन्दर आ गया न? ध्रुव अर्थात् निश्चय एक अंश आ गया। ध्रुव अर्थात् एक अंश नय में आता है या नहीं? पंचास्तिकाय में द्रव्य आता है या नहीं? परद्रव्य में द्रव्य आता है या नहीं? नव पदार्थ

में जीवतत्त्व आता है या नहीं ? समझ में आया ? उसका ज्ञान–ऐसा कहा न ? उसका ज्ञान, पर्याय का ज्ञान, सबका ज्ञान कहा या नहीं ? द्रव्य का ज्ञान, पर्याय का ज्ञान, राग का ज्ञान, सबके ज्ञानपूर्वक, ऐसा कहा न, देखो न !

तत्त्व के परिज्ञानपूर्वक–तत्त्व में द्रव्य तत्त्व आया या नहीं, जीव तत्त्व आया या नहीं ? पञ्चास्तिकाय में जीवास्तिकाय आया या नहीं ? ध्रुव जीवास्तिकाय, हों ! और पर्याय भी आ गयी। सब आ गया। समझ में आया ? **तत्त्व के परिज्ञानपूर्वक...** यथार्थ ज्ञानपूर्वक। **त्रयात्मक मार्ग से...** (सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मक मार्ग से) **कल्याणस्वरूप उत्तम मोक्षप्राप्ति कही है।** लो !

गाथा - १

अथ सूत्रावतार :-

इंदसदवंदियाणं तिहुवणहिदमधुरविसदवक्काणं।
अंतातीदगुणाणं णमो जिणाणं जिदभवाणं।।१।।

इन्द्रशतवन्दितेभ्यस्त्रिभुवनहितमधुरविशदवाक्येभ्य:।
अन्तातीतगुणेभ्यो नमो जिनेभ्यो जितभवेभ्य:।।१।।

अथात्र 'नमो जिनेभ्य:' इत्यनेन जिनभावनमस्काररूपमसाधारणं शास्त्रस्यादौ मङ्गलमुपात्तम्। अनादिना सन्तानेन प्रवर्तमाना अनादिनैव सन्तानेन प्रवर्तमानैरिन्द्राणां शतैर्वन्दिता ये इत्यनेन सर्वदैव देवाधिदेवत्वात्तेषामेवासाधारणनमस्कारार्हत्वमुक्तम्। त्रिभुवनमूर्ध्वाधो-मध्यलोकवर्ती समस्त एव जीवलोकस्तस्मै निर्व्याबाधविशुद्धात्मतत्त्वोपलम्भोपायाभि-धायित्वाद्धितं, परमार्थरसिकजनमनोहारित्वान्मधुरं, निरस्तसमस्तशंकादिदोषास्पदत्वाद्विशदं वाक्यं दिव्यो ध्वनिर्येषामित्यनेन समस्तवस्तुयाथात्म्योपदेशित्वात्प्रेक्षावत्प्रतीक्ष्यत्वमाख्यातम्। अन्तमतीत: क्षेत्रानवच्छिन्न: कालानवच्छिन्नश्च परमचैतन्यशक्तिविलासलक्षणो गुणो येषामित्यनेन तु परमाद्भुतज्ञानातिशयप्रकाशनादवाप्तज्ञानातिशयानामपि योगीन्द्राणां वन्द्यत्वमुदितम्। जितो भव आजवंजवो यैरित्यनेन तु कृतकृत्यत्वप्रकटनात्त एवान्येषामकृतकृत्यानां शरणमित्युपदिष्टम्। — इति सर्वपदानां तात्पर्यम्।।१।।

अब (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवविरचित) गाथासूत्र का अवतरण किया जाता है : —

शतइन्द्र वन्दित त्रिजगहित निर्मल मधुर जिनके वचन।
अनन्त गुणमय भवजयी जिननाथ को शत-शत नमन।।१।।

अन्वयार्थ :- [इन्द्रशतवन्दितेभ्य:] जो सौ इन्द्रों से वन्दित हैं, [त्रिभुवनहितमधुर-विशदवाक्येभ्य:] तीन लोक को हितकर, मधुर एवं विशद (निर्मल, स्पष्ट) जिनकी वाणी है, [अन्तातीतगुणेभ्य:] (चैतन्य के अनन्त विलासस्वरूप) अनन्त गुण जिनको वर्तते हैं और [जितभवेभ्य:] जिन्होंने भव पर विजय प्राप्त की है, [जिनेभ्य:] उन जिनों को [नम:] नमस्कार हो।

टीका :- यहाँ (इस गाथा में) 'जिनों को नमस्कार हो' ऐसा कहकर शास्त्र के आदि में जिनको भावनमस्काररूप असाधारण [1]मंगल कहा। 'जो अनादि प्रवाह से प्रवर्तते (-चले आ रहे) हुए अनादि प्रवाह से ही प्रवर्तमान (-चले आ रहे) [2]सौ-सौ इन्द्रों से वन्दित हैं' ऐसा कहकर सदैव देवाधिदेवपने के कारण वे ही (जिनदेव ही) असाधारण नमस्कार के योग्य हैं, ऐसा कहा। 'जिनकी वाणी अर्थात दिव्यध्वनि तीन लोक को — ऊर्ध्व-अधो-मध्य लोकवर्ती समस्त जीवसमूह को-निर्बाध विशुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धि का उपाय कहनेवाली होने से हितकर है, परमार्थरसिकजनों के मन को हरनेवाली होने से मधुर है और समस्त शंकादि दोषों के स्थान दूर कर देने से विशद (निर्मल, स्पष्ट) है' — ऐसा कहकर (जिनदेव) समस्त वस्तु के यथार्थ स्वरूप के उपदेशक होने से विचारवन्त बुद्धिमान पुरुषों के बहुमान के योग्य हैं (अर्थात् जिनका उपदेश विचारवन्त बुद्धिमान पुरुषों को बहुमानपूर्वक विचारना चाहिए ऐसे हैं), ऐसा कहा। 'अनन्त-क्षेत्र से अन्तरहित और काल से अन्त रहित-परमचैतन्यशक्ति के विलासस्वरूप गुण जिनको वर्तता है' ऐसा कहकर (जिनों को) परम अद्भुत ज्ञानातिशय प्रगट होने के कारण ज्ञानातिशय को प्राप्त योगन्द्रों से भी वंद्य है ऐसा कहा। 'भव अर्थात् संसार पर जिन्होंने विजय प्राप्त की है' ऐसा कहकर कृतकृत्यपना प्रगट हो जाने से वे ही (जिन ही) अन्य अकृतकृत्य जीवों को शरणभूत हैं ऐसा उपदेश दिया। — ऐसा सर्व पदों का तात्पर्य है।

भावार्थ :- यहाँ जिनभगवन्तों के चार विशेषणों का वर्णन करके उन्हें भावनमस्कार किया है। (१) प्रथम तो, जिनभगवन्त सौ इन्द्रों से वंद्य हैं। ऐसे असाधारण नमस्कार के योग्य अन्य कोई नहीं है, क्योंकि देवों तथा असुरों में युद्ध होता है इसलिए (देवाधिदेव

---

१. मल को अर्थात् पाप को गाले-नष्ट करे वह मंगल है, अथवा सुख को प्राप्त करे - लाये वह मंगल है।

२. भवनवासी देवों के ४० इन्द्र, व्यन्तर देवों के ३२, कल्पवासी देवों के २४, ज्योतिष्क देवों के ०, मनुष्यों का १ और तिर्यंचों का १-इस प्रकार कुल १०० इन्द्र अनादि प्रवाहरूप से चले आ रहे हैं।

शत-इन्द्रवंदित, त्रिजगहित-निर्मल-मधुर वदनारने,
नि:सीम गुण धरनारने, जितभव नमुं जिनराजने।।१।।

जिनभगवान के अतिरिक्त) अन्य कोई भी देव सौ इन्द्रों से वंदित नहीं है। (२) दूसरे, जिनभगवान की वाणी तीन लोक को शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति का उपाय दर्शाती है, इसलिए हितकर है; वीतराग निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न सहज-अपूर्व परमानन्दरूप पारमार्थिक सुखरसास्वाद के रसिकजनों के मन को हरती है इसलिए (अर्थात् परम समरसीभाव के रसिक जीवों को मुदित करती है इसलिए) मधुर है; शुद्ध जीवास्तिकायादि सात तत्त्व, नव पदार्थ, छह द्रव्य और पाँच अस्तिकाय का संशय-विमोह-विभ्रमरहित निरूपण करती है, इसलिए अथवा पूर्वापरविरोधादि दोषरहित होने से अथवा युगपद् सर्व जीवों को अपनी-अपनी भाषा में स्पष्ट अर्थ का प्रतिपादन करती है; इसलिए विशद-स्पष्ट-व्यक्त है। इस प्रकार जिनभगवान की वाणी ही प्रमाणभूत है; एकान्तरूप अपौरुषेय वचन या विचित्र कथारूप कल्पित पुराणवचन प्रमाणभूत नहीं है। (३) तीसरे, अनन्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का जाननेवाला अनन्त केवलज्ञानगुण जिनभगवन्तों को वर्तता है। इस प्रकार बुद्धि आदि सात ऋद्धियाँ तथा मतिज्ञानादि चतुर्विध ज्ञान से सम्पन्न गणधरदेवादि योगेन्द्रों से भी वे वंद्य हैं। (४) चौथे, पाँच प्रकार के संसार को जिनभगवन्तों ने जीता है। इस प्रकार कृतकृत्यपने के कारण वे ही अन्य अकृतकृत्य जीवों को शरणभूत हैं, दूसरा कोई नहीं।-इस प्रकार चार विशेषणों से युक्त जिनभगवन्तों को ग्रन्थ के अदि में भावनमस्कार करके मंगल किया।

प्रश्न :- जो शास्त्र स्वयं ही मंगल हैं, उसका मंगल किसलिए किया जाता है?

उत्तर :- भक्ति के हेतु से मंगल का भी *मंगल किया जाता है। सूर्य की दीपक से, महासागर की जल से, वागीश्वरी (सरस्वती) की वाणी से और मंगल की मंगल से अर्चना की जाती है।।१।।

---

* इस गाथा की श्री जयसेनाचार्यदेवकृत टीका में, शास्त्र का मंगल, शास्त्र का निमित्त, शास्त्र का हेतु (फल), शास्त्र का परिमाण, शास्त्र का नाम तथा शास्त्र के कर्ता — इन छह विषयों का विस्तृत विवेचन किया है।

पुनश्च, श्री जयसेनाचार्यदेव ने इस गाथा के शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ एवं भावार्थ समझाकर, 'इस प्रकार व्याख्यानकाल में सर्वत्र शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ और भावार्थ प्रयुक्त करनेयोग्य हैं' — ऐसा कहा है।

गाथा-१ पर प्रवचन

लो! **अब (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवविरचित) गाथासूत्र का अवतरण किया जाता है :—**

इंदसदवंदियाणं तिहुवणहिदमधुरविसदवक्काणं।
अंतातीदगुणाणं णमो जिणाणं जिदभवाणं॥१॥

यह कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा है। नीचे हरिगीत—

शतइन्द्र वन्दित त्रिजगहित निर्मल मधुर जिनके वचन।
अनन्त गुणमय भवजयी जिननाथ को शत-शत नमन॥१॥

टीका :- यहाँ (इस गाथा में) 'जिनों का नमस्कार हो'... लो! **'जिणाणं नमो'** ऐसा है न? वीतराग भाव ऐसे भगवान को नमस्कार। समझ में आया? ऐसा कहकर शास्त्र के आदि में जिन को भावनमस्काररूप असाधारण मंगल किया। **मल को अर्थात् पाप को गाले-नष्ट करे वह मंगल है;...** प्राप्त करे अथवा लावे, ऐसा। लो! वीतराग भगवान, स्मृति में वीतराग भगवान, वीतराग भगवान जिनेश्वर को मंगल किया।

'जो अनादि प्रवाह से प्रवर्तते (-चले आ रहे) हुए अनादि प्रवाह से ही प्रवर्तमान (-चले आ रहे) शत-शत इन्द्रों से वन्दित हैं'.... अनादि प्रवाहरूप से चले आ रहे हैं। भगवान जिनेन्द्रदेव भी अनादि प्रवाह से चले आते हैं। **अनादि प्रवाह से ही प्रवर्तमान (-चले आ रहे) शत-शत इन्द्रों से वन्दित हैं'...** आहाहा! समझ में आया? सौ इन्द्रों से जो वन्दित हैं, ऐसे। जो इन्द्रों से जो हैं वह भी अनादि के हैं, ऐसा। और वन्दन करनेवाले भी सौ इन्द्र हैं।

देखो! इसमें सौ इन्द्र। उन श्वेताम्बर में चौसठ इन्द्र आते हैं। यहाँ **शत इन्द्रों से वन्दित हैं'—ऐसा कहकर सदैव देवाधिदेवपने के कारण...** देखो! ऐसा कहकर सदा देवाधिदेवपना है। **वे ही असाधारण नमस्कार के योग्य हैं... वे ही (जिनदेव ही) असाधारण नमस्कार के योग्य हैं...** ऐसा कहा, लो! नीचे के देवों के, इन्द्रों के हैं। भवनवासी देवों के ४० इन्द्र हैं। लो! व्यन्तर देवों के ३२, चालीस कहा न! भवनवासी देवों

के ४० कहे, व्यन्तर देवों के ३२, कल्पवासी देवों के २४, ज्योतिष देवों के २, मनुष्य का एक, तिर्यंच का एक, (ऐसे) सौ इन्द्र आदि अनादि प्रवाहरूप से चले आते हैं, ऐसा कहते हैं। अनादि प्रवाह से इन्द्र चले आते हैं। उनके पूजनीय भगवान भी अनादि से हैं। भवनपति अधिक कहे हैं यहाँ। एक बात हुई।

मुमुक्षु : प्रभु! यह सब समकिती होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, सब (नहीं होते) ऐसा कि वे सब देव हैं न इन्द्र, वे लगभग समकिती हैं। वहाँ के दूसरे देव हों, वे साधारण (होते हैं)। है तो समकिती। अब इसमें भी कहते हैं सिंह आदि भी कोई समकिती होते हैं। मनुष्य में भी, देव आदि समकिती होते हैं। जो अनादि प्रवाह से चले आते हैं।

अब उनकी वाणी। यह तो ऐसे पूजनीय भगवान जिन, उनको पूजनेवाले इन्द्र और वे पूजनेयोग्य भगवान दोनों अनादि से जगत में हैं। नयी चीज़ है (नहीं)। अनादि से कोई काल में जिन के विरहरहित हो और कोई काल उनके पूजनीक पुरुष के विरह बिना का हो, ऐसा है नहीं।

'जिनकी वाणी अर्थात् दिव्यध्वनि तीन लोक को— ऊर्ध्व-अधो-मध्य लोकवर्ती समस्त जीवसमूह को... लो! ऊर्ध्वलोक में देवों को, अधोलोक में भी देवों को, मध्यलोक में तिर्यंच और मनुष्य को। सभी जीव समूह को, लो! यहाँ तो **समस्त जीवसमूह को निर्बाध....** बाधारहित, **विशुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धि का उपाय कहनेवाली होने से...** लो! निर्बाध विशुद्ध आत्मतत्त्व। बाधा न हो, विरोध न आवे और ऐसा जो विशुद्ध आत्मातत्त्व, उसकी उपलब्धि अर्थात् अनुभव प्राप्ति का उपाय कहनेवाली होने से, वह वाणी तो ऐसे तत्त्व का अनुभव हो, ऐसा उपाय कहनेवाली वाणी है। इसलिए उसे हितकर कहा जाता है। निमित्त से कथन है न? ज्ञान करने में वाणी निमित्तरूप से हितकर है। समझ में आया? एक ओर आता है कि वाणी की ओर का जो ज्ञान है, वह सच्चा ज्ञान नहीं है। वाणी से आत्मा को ज्ञान नहीं होता। गजब भाई! समझ में आया?

यहाँ तो वाणी निमित्तरूप से है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। वाणी है, वह कल्याण के लिये हितकर, इसलिए निमित्त है। अहितकर के लिये (निमित्त) नहीं है। ऐसी वाणी समस्त जीवसमूह को हितकर है। यहाँ तो सबको हितकर है, एक-एक को है। एकेन्द्रिय

से लेकर सबको। कहो, वाणी हितकर है, ऐसा कहा। वे चिल्लाहट करे! वाणी से कुछ नहीं होता और फिर यहाँ हितकर कहते हैं? ठीक, कहा न दो नय का ज्ञान करना। एक जगत के जीव ऐसा कहते हैं कि वाणी निमित्त हो तो तीर्थंकर जैन की ही वाणी निमित्त होती है, ऐसा कहते हैं। दूसरे की वाणी (निमित्त) नहीं हो सकती। इतना सिद्ध करने के लिये हितकर कहा जाता है। वाणी में आत्मतत्त्व के अनुभव का उपाय कहनेवाली होने से, लो! आत्मतत्त्व की प्राप्ति कहो या मोक्ष कहो, उसका उपाय कहनेवाली होने से, भगवान ने तो यही उपाय कहा है। लो, इसमें कहते हैं। समझ में आया?

निर्बाध विशुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धि... अर्थात् प्राप्ति अर्थात् मोक्ष। उसका **उपाय कहनेवाली होने से हितकर है,...** अब ऐसा कहे कि वाणी परद्रव्य है और परद्रव्य से आत्मा का हित नहीं होता। परन्तु यह क्या अपेक्षा है? दोनों नय का ज्ञान साथ में कराते हैं या नहीं? दोनों नय का ज्ञान (कराते हैं)। आत्मा अपना हित स्वभाव के आश्रय से करे, उस हित में, ज्ञान में निमित्तरूप हो तो वीतराग की वाणी होती है। वैसा उसने निमित्तपने का ज्ञान कराया है। परन्तु उस वाणी से ही ज्ञान हो-परन्तु वह वाणी हो वहाँ ज्ञान की योग्यतावाला जीव होता है, ऐसा कहकर हितकर कहा गया है। उसे ही वाणी मिलती है, दूसरे को वाणी नहीं मिलती। समझ में आया? दूसरे भले हित करनेवाले नहीं, उन्हें वाणी वास्तव में मिली नहीं। उसे निमित्तपने हुआ नहीं। जिसे सर्वज्ञ की वाणी में जो भाव मोक्ष के उपाय के हैं, वह जो मिले और प्राप्त किया, उसे वाणी को हितकर कहा जाता है। यह कहते हैं, वह प्राप्त करता ही है। आहाहा! समझ में आया? कहीं गया नहीं, इसने सुना नहीं, इसने सुना नहीं। श्रुत परिचित नहीं कहा? सुना नहीं वह। भगवान के समवसरण में अनन्त बार नहीं गया? सुना नहीं। सुना तब कहलाये कि हितकर कार्य करे तब सुनने की बात निमित्तरूप से हितकर है, ऐसा कहने में आता है। कहो, समझ में आया या नहीं? उन सब जीवों को हितकर, यहाँ दिव्यध्वनि सुनने की बात नहीं है। वह सबको हितकर है, इतनी बात है। समझ में आया?

यह निर्बाध विशुद्ध आत्मतत्त्व की प्राप्ति के मुक्ति का उपाय कहनेवाली होने से हितकर है, देखो! यह किसी बन्ध की बात नहीं करके मोक्ष का उपाय कहती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? बन्ध का ज्ञान करावे...

मुमुक्षु : छुड़ाने के लिये..

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अलग बात है। यह राग है, उसे छुड़ाने के लिये, परन्तु वह तो आत्मतत्त्व की प्राप्ति का उपाय यह तो बतलाती है। उसमें बन्ध और अजीव है, ऐसा ज्ञान उसमें आ जाता है। समझ में आया ? आहाहा! देखो न, टीका कैसी की ? समयसार की टीका भी इन्होंने की, प्रवचनसार की टीका भी इन्होंने की, यह पंचास्तिकाय की इन्होंने की है।

पुद्गल की क्रिया है। कहते हैं न पुद्गल है, हमसे कुछ नहीं हुआ। ऐसा भी कहेंगे और सब करेंगे। बात भी सच्ची है न ? पुद्गल से नहीं होता। यहाँ कहते हैं कि जिनवाणी से तुझे ज्ञान नहीं होता। वाणी तुझे ज्ञेय नहीं बना सकती। आहाहा!

मुमुक्षु : वाणी से ही तेरा मोक्ष होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। यह मोक्ष होता है, वह नहीं। हितकर है, इतनी बात है। मोक्ष तू करे, तब उस वाणी को हितकर की उपमा दी जाती है, ऐसी बात है। आहाहा! समझ में आया ?

(समयसार) पाँचवें श्लोक (गाथा) में कहा न कि '**जदि दायेज्ज प्रमाणं**' दिखाऊँ तो अनुभव करना। दूसरी बात रखना नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य-हम कहते हैं, वही हेतु पार पाड़ना, तब वाणी सुनी कहलाये। समझ में आया ?

मुमुक्षु : सुनानेवाला चाहिए, ऐसा सिद्ध हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : चाहिए भी कब ? वह स्वयं समझा, तब सुनानेवाले थे न, इसलिए हितकर कहने में आया है, ऐसा है। हाँ, यही कहते हैं न! परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि गुरु से ज्ञान होता नहीं। पर से ज्ञान होता नहीं। हितकर वाणी सुनी और जो परलक्ष्यी ज्ञान हुआ, उससे भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। परन्तु ऐसा व्यवहार था, उसका ज्ञान कराते हैं।

मुमुक्षु : वाणी तो स्वलक्ष्य से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ स्वलक्ष्य से उसमें ? वाणी जो सुनता है, वहाँ परलक्ष्य है। वह आत्मतत्त्व समझाती है। उस आत्मतत्त्व का पहला जो लक्ष्य में सुनता है, वह तो अभी

परतत्त्व के लक्ष्यवाला ज्ञान है। परन्तु उसने उपाय का यह कहा है कि यह लक्ष्य छोड़कर अन्दर के तत्त्व का लक्ष्य कर और दृष्टि कर, तब हमारी वाणी हितकर है, ऐसा निमित्त से कहा जाता है। ऐसा है। समझ में आया?

एक ओर अमृतचन्द्राचार्य कहे, कि वाणी से ज्ञान (होता नहीं)। यह प्रवचनसार में अन्त में है। यह टीका हमारी कही हुई नहीं। टीका तुमको समझा नहीं सकती। टीका का विषय तुम्हारे ज्ञान का ज्ञेय हो, उसका विषय है नहीं। क्या अपेक्षा है, यह इसको समझना चाहिए न? समझ में आया? यह वाणी स्याद्वाद है। जिस अपेक्षा से कहा है, उस अपेक्षा से उसे समझना चाहिए। आहाहा! होने से वह हितकर है। आहाहा! (यह उपाय बतलानेवाले, जीवों को खबर थी?) हाँ! सुनता है इसलिए उसे ख्याल में आया था कि यह उपाय है, ऐसा। सुने तब, हों! परन्तु सुने तब ख्याल की योग्यता थी, इसलिए ख्याल में आया है। परन्तु ये ख्याल में आया है, उसे कब व्यवहार कहा जाये? कि अन्तर्मुख होकर ज्ञान करे, तब यह उस ज्ञान को व्यवहार ज्ञान, सम्यग्ज्ञान में मेलवाला कहा जाये। वह द्विनयाश्रित ज्ञान, वह सम्यग्ज्ञान निर्मल (पर्याय) उत्पन्न करनेवाला है। आहाहा! समझ में आया?

अब कैसी वाणी है? **परमार्थरसिक जनों के मन को हरनेवाली होने से मधुर है...** मीठी-मधुर है, कहते हैं। परन्तु किसे? **परमार्थरसिक जनों के मन को हरनेवाली....** परमार्थ के रसिक जीव आनन्द के रसिक हैं। परमार्थ के रसिक जीव हैं, ऐसे जनों के मन को हरनेवाली होने से मधुर है। समझ में आया? वाणी मन को हरती है। अर्थात् वहाँ सुनने में रुकता है। ओहो! वह वीतराग की वाणी, दिव्यध्वनि, अलौकिक मोक्ष के पद में निमित्तरूप वाणी है। वाणी भी पूज्यरूप से कही गयी है। लो! समझ में आया?

व्यवहार है या नहीं?

मुमुक्षु : आया या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : जाननेयोग्य नहीं? आया अर्थात् है नहीं? व्यवहार है नहीं? व्यवहार से आत्मा में धर्म नहीं होता। परन्तु व्यवहार का ज्ञान करने के लिये व्यवहार नहीं? ऐसा कहते हैं। साबित हुआ न! साबित कब नहीं हुआ? व्यवहार, व्यवहार नहीं? परन्तु

व्यवहार कब कहलाये ? कि निश्चय प्राप्त करे, तब उसको व्यवहार कहा जाता है। उसके बिना व्यवहार कहना किसे ? समझ में आया ?

यहाँ तो कहा न पहले, दो नय के आश्रय से सम्यग्ज्ञान उत्पन्न करनेवाली निर्मल ज्योति की जननी है। निश्चय का ज्ञान हो, तब उसके व्यवहार का ज्ञान साथ में होता ही है, ऐसा है। मधुर है। परमार्थ रसिक जनों के मन को हरनेवाली, आहाहा! अज्ञानियों को यह बात अन्दर नहीं बैठती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? जिसे आत्मा के आनन्द का रस है, ऐसे रसिकजनों के मन को हरनेवाली होने से परमेश्वर त्रिलोकनाथ की वाणी मधुर कहने में आयी है। आहा!

और समस्त शंकादि दोषों के स्थान दूर कर देने से... शंका-आकांक्षा क्या, उसमें कुछ सन्देह नहीं रहता। इसलिए शंकादि दोषों के स्थान अर्थात् प्रकार दूर करने में आये होने से विशद है, (निर्मल है, स्पष्ट) है। गुण... गुण... गुण... गुण करे न अन्दर, क्या कहलाये ? यह तो स्पष्ट है। समझ में आया ? सर्वज्ञ परमेश्वर की वाणी कैसी है ? **शंकादि दोषों के स्थान दूर कर देने से विशद (निर्मल, स्पष्ट) है...** लो! समझ में आया ? वह वाणी स्पष्ट है, ऐसा कहा।

मुमुक्षु : स्पष्ट अर्थात् निमित्त होगी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : है न, प्रत्यक्ष निमित्त, वह प्रत्यक्ष ही है। आहाहा!

ऐसा कहकर (जिनदेव) समस्त वस्तु के यथार्थ स्वरूप के उपदेशक होने से... ऐसा कहकर वीतरागदेव परमेश्वर वीतरागदेव समस्त वस्तु के स्वरूप का परमार्थ उपदेश करनेवाले। परमाणु, जीव, सिद्ध से लेकर निगोद और परमाणु से लेकर स्कन्ध और छहों द्रव्य जो उसका मार्ग है, मोक्ष आदि का, तत्प्रमाण वस्तु के स्वरूप का यथार्थ उपदेश करनेवाली होने से, **विचारवन्त बुद्धिमान पुरुषों के बहुमान के योग्य हैं,...** लो ? समझ में आया ? **विचारवन्त बुद्धिमान पुरुषों के बहुमान के योग्य हैं, (अर्थात् जिनका उपदेश विचारवन्त बुद्धिमान पुरुषों को बहुमानपूर्वक विचारना चाहिए...)** ऐसा वापस इसका अर्थ। उनको विचारना चाहिए कि यह क्या कहते हैं ? समझ में आया ? पूर्वापर विरोधरहित यथार्थ भाव को प्रकाशित करनेवाली वाणी विचारक जीवों को उसे विचार में

लेकर... समझ में आया ? विचारनेयोग्य है। बहुमानपूर्वक विचारनेयोग्य है, इस प्रकार वाणी ऐसी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

संसार की कोई लाभ की बात हो और कोई सुनावे तो उसका बहुमान आता है या नहीं ? बारह महीने में पचास हजार पैदा होंगे, अमुक होगा, लाख पैदा होंगे, दो होंगे। हें ! ऐसा अन्दर से हो जाता है। यह आत्मा के लाभ की बात भगवान कहते हैं, उसे बहुमानपूर्वक विचारवन्त जीवों को विचारना चाहिए। समझ में आया ? कौन यह उपदेश ! समझ में आया ? भगवान का उपदेश विचारवान को विचारपूर्वक विचारना चाहिए, ऐसा कहा।

अनन्त। अब फिर दूसरी बात है। '**अन्तातीतगुणेभ्यो**' यह पहले की व्याख्या थी। हो गयी न ! तीन लोक को हितकर मधुर विशद जिनकी वाणी है, यह व्याख्या हो गयी। पहले सौ इन्द्रों से वन्दित है, इसकी व्याख्या की थी। अब '**अन्तातीतगुणेभ्यो**'। अनन्त क्षेत्र से अन्तरहित, काल से अन्तरहित, परम चैतन्यशक्ति के विलासस्वरूप, गुण जिन्हें वर्तते हैं। तीन काल, तीन लोक को जाननेवाला जो ज्ञान भाव, क्षेत्र से अन्तरहित अनन्त क्षेत्र का अन्त नहीं, काल से भी अन्त नहीं। ऐसी परम चैतन्यशक्ति के विलास स्वरूप अर्थात् सबको क्षेत्र से जानने स्वरूप, हों ! गुण जिन्हें वर्तते हैं।

ऐसा कहकर परम अद्‌भुत ज्ञानातिशय प्रगट हुआ होने से, भगवान को भी परम अद्‌भुत ज्ञानातिशय, ज्ञान की विशेषता, प्रगट हुआ होने से, ज्ञानातिशय को प्राप्त, ज्ञान की विशेषता को प्राप्त, योगीन्द्रों से भी वंद्य है। लो ! वाणी योगीन्द्रों से भी वन्दन करनेयोग्य है। अरे रे ! समझ में आया ? उपदेश योगीन्द्रों से भी वन्दन करनेयोग्य है। ऐई ! अभी आवे कि सुनना भी नुकसानकारक है, कहना भी नुकसानकारक है। यह तो निश्चय है। उसमें साथ में ऐसा व्यवहार होता है, यह बतलाते हैं।

उसमें लिखते हैं न ! चिल्लाहट मचा जाए, कितनों को उसमें तो एकान्त हो जाता है। निहालभाई (सोगानी) में आता है न, सुनना, वह नुकसान है सुननेवाले को। कहनेवाले को कहने का विकल्प है, इसलिए नुकसान है। यह तो अभी अभी तुरन्त आया था। वापस ऐसा कहे कि वीतराग आचार्यों की वाणी आनन्द की बूँद-बूँद झरती है, ऐसी वाणी है। देखो यह लिखा है। आचार्यों को समझने के लिये विचारने में आनन्द का झरना झरता है,

ऐसी वह वाणी है। लो! वापस उन्होंने ऐसा कहा। जिस काल में जो प्रकार है, उसे समझना चाहिए या नहीं? एक ही खींचे, ऐसा चले? समझ में आया? गणधर भी सुनते हैं। ऐसा करके वे व्यवहार का पक्ष सिद्ध करते हैं। ऐसा भी उसमें लिखा है। हें! जब जो सिद्ध करना हो, तब वह करे न! गणधर भी सुनते हैं।

बात सच्ची कि उन्हें जब विकल्प होता है, तब यह वाक्य भगवान के वे सुनते हैं। अन्दर निर्विकल्प कहाँ है? निर्विकल्प हो, तब सुनने का नहीं होता। मुनि को भी निर्विकल्पता अन्दर कितने काल रहे। अल्प काल रहती है, ऐसा कहना है। उन्हें ऐसा व्यवहार आये बिना नहीं रहता। कोई कहे, हमको एकदम निर्विकल्पता घण्टों की घण्टों चलती है, तो वह बात को समझा नहीं है। समझ में आया? गजब, कोई धूल भी नहीं होता, घोलन में पड़ा हो, ऐसा दिखाई दे। ध्यान कहाँ से लगे? मुनि को भी एक मिनिट ध्यान नहीं हो सकता। समझ में आया? अन्तर की एकाग्रता का काल ही अल्प है, तत्पश्चात् ऐसा विकल्प आता है। आता है, इसलिए उत्साह है, ऐसा नहीं। परन्तु ऐसा विकल्प आये बिना रहता नहीं। इसलिए उसे शुभभाव में भगवान की वाणी अद्भुत ज्ञानातिशयवाले जीव के भी वन्दनीय कहा न। देखो, जिसे ज्ञान का अतिशय प्रगट हुआ, ऐसे जीव हैं। ऐसे योगीन्द्रों से भी वंद्य है, ऐसा। गणधरों से भी वंद्य है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : आचार्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आचार्य है, वे हो वैसा कहते हैं या नहीं? परन्तु जैसे मिलान खाये वैसे अच्छा लगा। आड़ा-टेढ़ा कुछ अच्छा लगना कहलाये? विकल्प उठता है, उसे बहुमान यहाँ है तो वैसा ही बहुमान व्यवहार से वाणी में आता है। होता है, आता है, व्यवहार से ज्ञान करनेयोग्य चीज़ है। ज्ञान करनेयोग्य नहीं, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : इस जगह ऐसा आता है, दूसरी जगह दूसरे प्रकार से आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ दूसरे प्रकार से नहीं आता। दूसरा मेल करने के लिये आता है। निश्चय का-निश्चय का और व्यवहार के लिये व्यवहार का आता है। दोनों आते हैं या नहीं? दोनों नय साथ में लिया है न! समझ में आया? (द्रव्य को ज्ञान... ऐसी गाथा आती होगी क्या?) बहुत आती है। उसे ज्ञान में भी ऐसा लगे विषय लगे कि, आहाहा!

नयी-नयी पर्याय होती है या नहीं ? समझ में आया ? ऐसे अपने क्षयोपशम की योग्यता ऐसी है, इसलिए नया लगा है, हों ! पर्याय नयी होती है न, इसलिए ऐसा पहले से कहा न ! हाँ, नयी-नयी पर्याय होती है न !

विशुद्धि अर्थात् उसमें उस वाणी का निमित्त होता है। उसे ख्याल है कि इससे होता नहीं। परन्तु यह आये बिना रहता नहीं। आहाहा ! ठीक, यह समयसार के बाद फिर यह लिया अभी। यह पाँच वर्ष हुए इसलिए जरा वापस। कोई एकान्त ले लेवे तो निश्चयाभासी हो जाये।

मुमुक्षु : भूल के स्थान बहुत...

पूज्य गुरुदेवश्री : अटकने के स्थान अनादि के हैं। अटका है तो अनेक प्रकार की भूल तो होगी ही न ! तिरने का उपाय एक यथार्थता। अब बहुत बार यथार्थ पकड़कर बैठता है। बात ही यह है, तथापि यह दूसरा ज्ञान करनेयोग्य दूसरी चीज़ आये बिना रहती नहीं। आहाहा ! तब ही सबको यह होगा न, देख न, कहा न, कौन लिखे। भावनगर से भाई का पत्र आया है, कहे कौन लिखे, उसने डबल भेजा है। डबल भेजा है। परन्तु यहाँ लिखने को निवृत्त कौन है। यहाँ आकर समझ जाये समझना हो तो। ऐसे शुभभाव को हेय कहो, हेय कहो और वापस मन्दिर बनायेंगे, वहाँ तो भावनगर में फिर पंच कल्याणक होगा। लो ! परसों दोपहर को भावनगरवाले विनती करने आनेवाले हैं। उस दिन हीरालाल नहीं थे न ? तब कहा, तुम्हारी विनती उचित है। ऐसा कहा था। हाँ नहीं किया था। परसों दोपहर को आयेंगे।

उसके क्रम में वीतराग गणधरदेव,... देखो, यह क्या कहते हैं, ज्ञानातिशय को प्राप्त योगीन्द्रों से भी वंद्य है। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : वह तो व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं। भूमिका इतनी कहाँ... वीतराग हो गया है ? समझ में आया ? मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में भी कहा, भाई ! यह पूजा, भक्ति सब विकल्प है। किसने इनकार किया। विकल्प आता है परन्तु यह छोड़कर अशुभ में जाना है ? या निर्विकल्प (होना है) ? निर्विकल्पता में लम्बा काल रह नहीं सकेगा। यह किसने कहा ? निर्विकल्पता में तो रह नहीं सकेगा। ऐसे विकल्पों को तू कहेगा, नहीं...

नहीं... नहीं, परन्तु नहीं कहेगा तो जायेगा कहाँ? अशुभ करने का कहते हैं कहीं? ऐसे भाव आते हैं। आहाहा! गजब बात, भाई! नय की गुँथणी ज्ञान की स्पष्टता करने के लिये है। उसके बदले लोग उसे उल्टे रास्ते जाते हैं। जाओ, हमें सुनना नहीं। सुनने से कुछ होता नहीं। किस अपेक्षा से सुनने से या वापस पढ़ने से होता है, ऐसा नहीं कहा? यहाँ नहीं कहा? वीतराग की वाणी, देखो न, यहाँ क्या कहते हैं? उसे चिद्विलास उपदेश को समझनेयोग्य होता है। वाणी हितकर होती है। ऐसा कहा है या नहीं? समझ में आया? कहो, जयकुमारजी! आहाहा! जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही, वहाँ-वहाँ वह-वह आचरे आत्मार्थीजन सही। गजब काम है। क्या कहते हैं?

परमचैतन्यशक्ति के विलासस्वरूप ऐसी परम शक्ति प्रगट हुई है। जिसे क्षेत्र और ज्ञानरूपी काल का कोई अन्त है नहीं, ऐसी ज्योति प्रगट हुई है। ऐसा कहकर परम अद्भुत ज्ञानातिशय भगवान को प्रगट हुआ। ऐसा हुआ होने से ज्ञानातिशय को प्राप्त गणधरदेव भी चार ज्ञान अन्तर्मुहूर्त में प्रगट करते हैं। कहो, और अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग की रचना करते हैं। ऐसे ज्ञान की अतिशयता को प्राप्त योगीन्द्र, योगी के भी इन्द्र ऐसे। उनसे भी वीतराग की वाणी के उपदेश वंद्य है। कहो, समझ में आया?

भव अर्थात् संसार पर जिन्होंने जय प्राप्त की है। लो, यह आया। 'जितभवेभ्य' जिन शब्द है न? जिन अर्थात्... जिन को वन्दन किया है न? अर्थात्, समझ में आया? 'जितभवेभ्य जिनेभ्य' ऐसा। भव पर—संसार पर जिन्होंने जय प्राप्त की है। अर्थात् कि संसार का भाव जिन्हें है नहीं। अन्त है। ऐसा कहकर कृतकृत्यपना प्रगट हुआ होने से, सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव को कृतकृत्यपना (प्रगट हुआ है)। सब कार्य अब पूरा हो गया है। कोई कार्य करने का रहा नहीं। कहो! यह यहाँ केवलज्ञान की वाणी वाले लिये हैं, वे कृतकृत्य हो गये, ऐसा कहते हैं। भाई! क्या कहा? वे वाणीवाले लिये हैं, यहाँ सिद्धदेव नहीं। उनकी वाणी, वहाँ पूर्ण कृतकृत्य हो गये हैं। अब वहाँ उन्हें क्या करना है। एक साथ सब जानते हैं।

केवलज्ञान हुआ। ज्ञान का विषय प्रगट हुआ। आत्मप्रदेश में चार अघातिकर्म पड़े हैं, उन्हें जानते हैं। जैसे लोक को-अलोक को जानते हैं, साथ में उन्हें जानते हैं। जानने

की जाति कुछ अलग नहीं है। सबको जानते हैं। यह इतना काल यहाँ रहेंगे, इतने काल में छूटेंगे, इतना ऐसा-वैसा सब जानते हैं। समझ में आया? वाणी भी इस काल में निकलेगी। यह वाणी अमुक काल में नहीं निकलेगी। यह भी तीन लोक को जानने में आ जाता है या नहीं? निकलेगी; करेंगे—ऐसा इसमें नहीं आता। आहाहा! ज्ञान का अतिशय सब जानता है। उस समय निकलेगी, इस समय नहीं निकलेगी। कहो, सुननेवाले भी ऐसे जीव सामने होंगे। उन्हें इस प्रकार से समझ में आयेगा। सब जानने में आ जाता है, कुछ बाकी नहीं रहा। आहाहा!

ऐसा कहकर कृतकृत्यपना। कृतकृत्य अर्थात् कार्य पूरा किया है, ऐसा बस! कृत-कार्य। प्रगट कार्य पूरा किया है। आहाहा! वे जिन दूसरे अकृतकृत्य जीवों की शरण है। आहाहा! लो! ऐसा होने से जो कृतकृत्य नहीं हुए, ऐसे जीवों को भगवान कृतकृत्य हुए, वे शरण हैं। देखो, यह व्यवहार शरण कहते हैं; निश्चय शरण तो आत्मा है। चत्तारी मंगलं अरिहंता मंगलं-आता है न? चत्तारी शरणं पव्वज्जामि, अरिहंता शरणं पव्वज्जामि, सिद्धा शरणं पव्वज्जामि (साहू शरणं पव्वज्जामि), केवलीपणत्तो धम्मो शरणं (पव्वज्जामि)। यह शरण तो भगवान आत्मा अद्भुत अनादि अनन्त, वही निश्चय से शरण है। भगवान की वाणी में ऐसा आया है। परन्तु वाणी विकल्प वहाँ है, तब शरणभूत आत्मा है और वाणी भी है, ऐसा उपचार से कहने में आता है। उसे व्यवहारनय का ज्ञान तो साथ में है न? दो नय से सम्यग्ज्ञान निर्मल होता है, ऐसा कहा है न? हें? आहाहा!

फिर अन्तिम गाथा में कहा था, कि वाणी ज्ञेय नहीं बना सकती। तुझे समझने की पर्याय जो होती है, उसे तू जान। उस ज्ञान को यह वाणी नहीं बना सकती। आहाहा! कुँवरजीभाई! अज्ञानी को सिर तोड़ डालते हैं। पुरुषार्थसिद्धिउपाय में आता है न? सुदर्शनचक्र है। स्याद्वाद अनेकान्तवाणी सुदर्शनचक्र है। एकान्तवादी का सिर तोड़ डालती है। परन्तु एकान्तवाद में वापस ऐसा मान ले कि ठीक, अपना मोक्षमार्ग तो निश्चय भी है और व्यवहार भी है। दो नय है न? परन्तु दो नय अर्थात् वह जानने का वह आता है, ऐसा उसका कथन है। परन्तु व्यवहार धर्म है, वह रागादि व्यवहार मोक्षमार्ग कहीं आदरणीय है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

जयधवल में कहा, कि शुद्ध और शुभभाव, इसके अतिरिक्त कोई निर्जरा का हेतु सिद्ध नहीं होता। यह प्रमाणज्ञान से बात की है। होता है या नहीं उसे? शुद्धभाव आत्मा का पवित्र स्वभाव, उसके आश्रय से निर्जरा होती है। परन्तु साथ में राग की मन्दता शुभ है, उसे आरोप देकर व्यवहार का ज्ञान कराने को उससे निर्जरा है, ऐसा कहने में (आता है), उसके बदले वहाँ चिपट गये। कहो, समझ में आया? जयधवल में बहुत कहा है। उस ओर से सैकड़ों बार लेखों में यह बात आयी है। देखो, जयधवल में ऐसा कहा है। शुद्ध और शुभ बिना कोई अन्त नहीं है। निर्जरा के कारण दो हैं, (ऐसा वे लोग कहें), परन्तु निर्जरा के कारण दो नहीं हैं, एक ही है। निश्चय का जो भाव शुद्ध चैतन्य, वह निर्जरा का कारण है। राग भाव, वह निर्जरा का कारण नहीं, परन्तु वहाँ निर्जरा हुई उपादानरूप से, वहाँ निमित्त ऐसा था, उसका ज्ञान कराने के लिये उसे निर्जरा का हेतु कहा है। उसे ज्ञानरूप से जानना चाहिए। दूसरे नयरूप से उसे ज्ञेय बनाकर जानना चाहिए। बस! इतनी बात है। कहो, वजुभाई! ऐसा आता है। लो, बहुत लिखते हैं।

भगवान की वाणी दो नय के आश्रय से है। दो नय के आश्रय से पंचास्तिकाय में बहुत बार आया है न? यह अखबार में आया है। देखो, यहाँ दो नय के आश्रय कहा है और तुम एक ही, एक ही नय (कहते हो)। सुन न! दो नय नहीं है, ऐसा किसने कहा? एक नय का आश्रय करनेयोग्य निश्चय है। निश्चय नयाश्रित मुनिवरों प्राप्ति करे निर्वाण की। यह कहीं बात मिथ्या हुई है? प्रमाणज्ञान इस बात को ऐसा रखकर, दूसरा भाग राग का है, उसे भी जानने के लिये प्रमाणज्ञान इकट्ठा करता है। निश्चय और व्यवहार दो। परन्तु निश्चय का ऐसा का ऐसा रखकर। निश्चय का खोटा करके नहीं। निश्चय का खोटा करके तो अकेला व्यवहार रहा। तो दो नय हुए ही नहीं। समझ में आया? हें? निश्चय की बात भी निश्चयरूप ही ज्ञान जानता है नय। और प्रमाण भी उस नय को उस रीति से जानते हैं। परन्तु दूसरा एक भाग इकट्ठा जानते हैं। समझ में आया? भारी सूक्ष्म।

इसके कारण वापस क्या कहते हैं। चरणानुयोग में ऐसा कहा है। और कितने ही ऐसा कहते हैं कि चरणानुयोग में आचरण, परन्तु चरणानुयोग में आचरण का विकल्प है, वह बराबर निरतिचार हो तो उसे व्यवहार कहने में आता है—यहाँ ऐसा कहते हैं। चरणानुयोग

के आचरण का भी ठिकाना न हो और वह चरणानुयोग से ऊँचा बढ़ गया (मानता है)। समझ में आया? यह तो उसे व्यवहारनय का ज्ञान ही नहीं है, उसे तो विपरीत है। समझ में आया? अट्ठाईस मूलगुण ठीक से पालता हो और उसका भी ठिकाना न हो और चरणानुयोग से तो हम ऊँचे हैं, ऐसा। तत्त्वज्ञान की दृष्टिवाला भले हो, परन्तु हम चरणानुयोग की दृष्टि सहित के ऊँचे हैं। ऐसा कहता है। परन्तु वह ऊँचा है, वह चरणानुयोग की ऐसी व्याख्या ही नहीं है। दृष्टि के विषय में आश्रय में पड़ा हुआ जीव, उसे चरणानुयोग में आगे बढ़ने से जो शुभभाव की मर्यादा होती है, वह बराबर निरतिचार हो तो उसका ज्ञान करने के लिये उसे सम्यग्ज्ञान में उसे निर्मल करने के लिये बात की है। समझ में आया?

मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है न, समकिती को निश्चय है और भले वह निश्चय समकिती नहीं, परन्तु व्यवहार में ऊँचा है, उसकी भक्ति करना चाहिए। परन्तु वह व्यवहार के ऊँचे की व्याख्या क्या? समझ में आया?

मुमुक्षु : सर्वत्र समझना पड़े न?

पूज्य गुरुदेवश्री : तब क्या न समझे? व्यवहार में ऐसा कहे, परन्तु उसका व्यवहार कैसा हो समरूप? उसे चुस्त व्यवहार होता है। मुनि को पंच महाव्रत-अट्ठाईस मूलगुण (का पालन होता है)। बिल्कुल उसके लिये (बनाया हुआ) भोजन का—आहार और पानी का बूँद ले नहीं। ऐसा व्यवहार चुस्त हो तो वह समकिती नहीं होने पर भी परद्रव्य है इसलिए व्यवहाररूप से उसे आदरता है। बस! इतना। समझ में आया? परन्तु जिसके व्यवहार का भी ठिकाना नहीं, उसे माने कि तेरा व्यवहार सच्चा है तो वह ज्ञान खोटा है। आहाहा! भारी कठिन काम जगत को।

मुमुक्षु : काल प्रमाण ढीला करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ढीला, धूल ढीला करे। काल प्रमाण। गुड़ की जगह हलुवा में गारा डालते होंगे? काल आया तब ढीला। गुड़ में थोड़ा गारा डालना। ऐसा करते होंगे? ज्ञान तो जैसा विषय है, उसे बराबर जानता है। व्यवहारनय का विषय जैसा है, वैसा हो तो जानता है। खोटा हो न। व्यवहारनय कहता है कि हाँ, यह हमारे बराबर है। यहाँ तो कहते हैं, भगवान का उपदेश और अब भगवान यहाँ तो कृतकृत्य हो गये। उसके कारण **वे ही**

(जिन ही) अन्य अकृतकृत्य जीवों को शरणभूत हैं,... लो! ऐई! एक 'जिन' ही शब्द प्रयोग किया है। लो। वैसा ही शब्द है सही न?

वे ही,... वीतराग ही। दूसरे कृतकृत्य जीव जिन्होंने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि कृत्य किये नहीं **जीवों को शरणभूत हैं, ऐसा उपदेश दिया—ऐसा सर्व पदों का तात्पर्य है।** एक-एक पद की व्याख्या की। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :- यहाँ जिनभगवन्तों के चार विशेषणों का वर्णन करके उन्हें भाव-नमस्कार किया है। अन्तर नमस्कार किया है, कहते हैं, हों! हाँ! **प्रथम तो, जिनभगवन्त शत इन्द्रों से वन्द्य हैं। ऐसे असाधारण नमस्कार के योग्य अन्य कोई नहीं है,...** लो, ऐसा सिद्ध करना है। हाँ, ऐसे भगवान ऐसे इन्द्रों को भी नमस्कार योग्य है, वे दूसरे कोई पुरुष नहीं हो सकते। **क्योंकि देवों तथा असुरों में युद्ध होता है, इसलिए (देवाधिदेव जिनभगवान के अतिरिक्त) अन्य कोई भी देव शत इन्द्रों से वन्दित नहीं है।** सौ में बड़े इन्द्र होते हैं न? परन्तु उन्हें कहते हैं अन्दर परस्पर विरोध होता है। यह भगवान वीतरागस्वरूप है, यह देवाधिदेव हैं, इससे अन्य कोई भी देव सौ इन्द्रों से वन्दित नहीं है। यह तो जो बड़ा हो, उससे भी वन्दित है। बड़ा इन्द्र दूसरे छोटे से वन्दित है। यह तो बड़े और छोटे सबसे वन्दित है। समझ में आया? आहाहा!

शत इन्द्रों से वन्दित नहीं है। (२) दूसरे, जिनभगवान की वाणी तीन लोक को शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति का उपाय दर्शाती है, इसलिए हितकर है;... लो! वीतराग की वाणी तीन काल, तीन लोक को जाना और स्पष्ट सब जाना। **शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति का उपाय दर्शाती है, इसलिए हितकर है;...** व्यवहार से हितकर है। निश्चय से आत्मा का स्वभाव हितकर है। ऐसा ज्ञान इसे बराबर करना चाहिए।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

धारावाही प्रवचन नं. २ (प्रवचन नं. २), गाथा-१-२
दिनांक - १६-११-१९६९, कार्तिक शुक्ल ७, रविवार

पंचास्तिकाय पहली गाथा का भावार्थ—**हितकर है,...** यहाँ तक आया है। **(२) दूसरे, जिनभगवान की वाणी तीन लोक को शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति का उपाय दर्शाती है, इसलिए हितकर है;...** समझ में आया? अर्थात् कि इसी प्रकार से, यही वाणी हो। निमित्त में दूसरी वाणी नहीं हो सकती। ऐसा उसमें सर्वज्ञ की-जिन की वाणी है। वही हित में निमित्तरूप से होती है, इसीलिए उसे हितकर कहा जाता है। समझ में आया? एक ओर कहे कि जिनवाणी से आत्मा को जरा भी लाभ नहीं होता। क्योंकि वाणी पर है। शास्त्र, वह कुछ जानता नहीं, वेद कुछ जानता नहीं। दिव्यध्वनि से भी जीव को ज्ञान होता नहीं। वह तो अपने स्वभाव से होता है, यह सिद्ध करने के लिये ऐसा कहा है, परन्तु उसमें निमित्तपना यही होता है, दूसरा नहीं हो सकता, इसलिए वीतराग की वाणी को हितकर कहा जाता है। व्यवहार सिद्ध करके उसका ज्ञान कराते हैं। समझ में आया?

शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति का उपाय दर्शाती है, इसलिए वीतराग की वाणी हितकर है;... निश्चय का अकेला पढ़े और उसके साथ मेल करना कठिन पड़े, ऐसा है। या कहे कि सुनना, वही नुकसानकारक है और सुनने से भी अपना लक्ष्य रखना।

मुमुक्षु : उसमें रखते होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हितकर है। लिखा है या नहीं। व्यवहारनय निकाला वह इसमें से, वापस कठिन पड़े न? यह तो एक निमित्त यही होता है। सर्वज्ञ की वाणी ही एक निमित्त होती है। इसके अतिरिक्त कोई निमित्त नहीं हो सकता। इसलिए वाणी को हितकर कहने में, पहली गाथा में कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं हितकर कहते हैं।

मुमुक्षु : हितकर स्वयं नहीं कहते?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं निश्चय से हितकर नहीं, ऐसा भी कहते हैं, परन्तु अभी यहाँ वह काम नहीं है। व्यवहारनय का कथन है। वह निमित्त का ज्ञान कराने के लिये

अन्यथा कथन करता है। परन्तु यह समझना कठिन (पड़ता है)। कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं।

देखो, मूल है या नहीं? 'इन्द्र शत वंदितेभ्य' लो! समझ में आया? हितकर त्रिभुवन हितकर, त्रिभुवनहित, त्रिभुवनहित ऐसा शब्द है। अर्थात् कि वीतराग की वाणी ही निमित्तरूप से होती है। दूसरी (वाणी) निमित्त नहीं हो सकती। ऐसा सिद्ध करने को वीतराग की वाणी ही सम्यग्ज्ञानी को हितकर कहने में आयी है। समझ में आया? व्यवहारनय बतलाते हैं। व्यवहार का ज्ञान कराते हैं। दो नयाश्रित वीतराग की वाणी का कथन होता है। निश्चयनय के आश्रय से जहाँ कथन किया जाता है, तब तो जो जिनवाणी, उससे ज्ञान हुआ नहीं। हुआ है स्वयं से, परन्तु वह ज्ञान भी सम्यग्ज्ञान नहीं है। समझ में आया? जिनवाणी सुननेवाले उसे सुनें, उसके ख्याल में आवे कि इसमें कुछ, यह ख्याल स्वयं से आया है; वाणी से नहीं। वाणी वहाँ निमित्त है, तथापि जो ख्याल आया है, वह ज्ञान भी व्यवहारी ज्ञान है। वह आत्मा का ज्ञान नहीं। परन्तु यहाँ व्यवहार को 'है', ऐसा जानना सिद्ध करते हैं। व्यवहार नहीं है, ऐसा नहीं है। इतनी बात है। समझ में आया?

सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन तो '**भुदत्थमस्सिदो**' भूतार्थ, त्रिकाल, ध्रुव का आश्रय करने से ही ज्ञान में से ज्ञान आता है और पूर्ण की श्रद्धा, सम्यग्दर्शन पूर्ण के आश्रय से होता है। पर्याय के आश्रय से नहीं, विकल्प के आश्रय से नहीं, निमित्त के आश्रय से नहीं। समझ में आया? परन्तु यह एक निश्चयनय का हुआ। तो नय है, वह एक अंश को बतलाता है, दूसरा एक अंश बाकी रह जाता है। व्यवहारनय का अंश बाकी रह जाता है। समझे नहीं? गौण किया था। परन्तु गौण करके व्यवहार कहा था। अभाव करके व्यवहार नहीं कहा था। '**व्यवहारोऽभूयत्थो**' असत्यार्थ है, अभूतार्थ है। गौण करके उसका मुख्य प्रयोजन सिद्ध करने को, वस्तु की दृष्टि ध्रुव के ऊपर होवे तो ही उसे सम्यग्दर्शन होता है। ऐसी दृष्टि की मुख्यता-प्रयोजन सिद्ध करने के लिये पर्याय को गौण करके, व्यवहार कहकर, अभूतार्थ कहकर, झूठी अर्थात् कि है ही नहीं, (ऐसा कहते हैं)। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, कि वीतराग की वाणी हितकर है। ऐ दास! यह तो थोड़ा निश्चय सुना हो न, उसके सामने जरा व्यवहार ले। जयकुमारजी! दूसरी बात आती है मधुर,

वीतराग की वाणी मधुर है। आत्मा स्वयं आनन्दस्वरूप है। ऐसे आनन्द का जिसे भान हुआ, उसे वीतराग की वाणी व्यवहार से मधुर कही जाती है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा ही आनन्दस्वरूप मधुर मीठा आनन्द का स्वाद है। उसकी अन्तर्दृष्टि होने से वीतराग आत्मा की पर्याय, वही मधुर और मीठी है परन्तु वह तो एक अपेक्षित नय हुआ। एक अपेक्षित बात हुई।

दूसरा बोल साथ में, व्यवहार से मधुर। समझ में आया? कि **वीतराग निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न,...** वीतराग निर्विकल्प आत्मा अत्यन्त वीतरागी स्वरूप है। अभेददृष्टि से उत्पन्न होता **सहज-अपूर्व-परमानन्दरूप...** स्वाभाविक अपूर्व आत्मा का परमानन्द अमृत का रस **पारमार्थिकसुखरसास्वाद के रसिकजनों...** देखो अब, आहाहा! अज्ञानी को व्यवहार नहीं, ऐसा कहते हैं। भाई! यह तो मधुर (स्वाद) ज्ञानी को है, ऐसा कहते हैं। ऐई! देखो, सिद्ध किस प्रकार करते हैं। आत्मा निर्विकल्प वीतराग समाधि शुद्ध चैतन्यद्रव्य का अन्तर निर्विकल्प आश्रय करके जो परमसुख अपूर्व-परमानन्दरूप **पारमार्थिकसुखरसास्वाद के रसिकजनों...** यह तो निश्चय हुआ। समझ में आया?

रसिकजनों के मन को हरती है... ऐसे आनन्द के प्राप्त को भी वीतराग की वाणी मन को हरती है। अरे! क्योंकि भगवान आत्मा अपने वीतराग निर्विकल्पस्वभाव से जो शान्ति आनन्द हुआ, उसमें वीतराग की वाणी का निमित्त था। समझ में आया? इसके अतिरिक्त दूसरी वाणी उसे हो नहीं सकती। यह उसे मधुर आनन्द के स्वाद के समक्ष वीतराग की वाणी को भी सुनते हुए जो ज्ञान हो, और जो कुछ विकल्प सुखरूप भाव हो, समझ में आया? उसे भी यहाँ व्यवहार से मधुर कहा गया है। समझ में आया? नहीं तो निश्चयाभासी हो जाये, ऐसा कहते हैं।

कुन्दकुन्दाचार्य के वचन हैं। समयसार, वह कुन्दकुन्दाचार्य के वचन हैं। ग्यारहवीं गाथा, दोनों का मेल होगा या विरोध होगा? मेल है, विरोध नहीं। परमात्मा जिनकी वाणी निर्विकल्प आनन्द से उत्पन्न हुआ स्वाद जिसे आया है। आया है, ऐसा कहते हैं। ऐसे जनों के, ऐसे रसिकजनों के, आनन्द के रसिक ऐसे रसिकजनों के, लो!

मुमुक्षु : उनके मन को हरती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उनके मन को हरती है। व्यवहार सिद्ध करना है न? व्यवहार बतलाना है न? व्यवहार है, उनके मन को भी ऐसा होता है कि, ओहो! वाणी, वह वाणी है। ऐसी बात तीन काल में सर्वज्ञ के अतिरिक्त, परमेश्वर जिन वीतराग के अतिरिक्त अन्य (कहीं) हो नहीं सकती। ऐसा निमित्त, ऐसा ही होता है, दूसरा नहीं होता, यह सिद्ध करने को उसे मधुर कहा जाता है। आनन्द के रसिया को वाणी मधुर है। ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? आहाहा!

जनों के मन को हरती है... अर्थात् मन वहाँ विकल्प में, शुभभाव में सुनने में रुक जाता है। आहाहा! गणधर भी उसे सुनते हैं। आहा! आता है यह। अपार-अपार। समझ में आया? बड़ा किसान हो, उसका कारीगर भी बड़ा होता है। वहवाया समझते हो? कारीगर अर्थात् क्या समझते हो? उसके काम करनेवाले लुहार, सुतार (हल्का काम) हा, ऐसा काम करनेवाले। उसे हजार-हजार दो-दो हजार खांडी अनाज पकता हो और उसके सुतार-लुहार को भी कुछ खोबे अनाज न दे, उसे ढ़ेर कर दे। आहा! लो, यह पचास मण, यह सौ मण। कहो, समझ में आया या नहीं? ऐई! गिरधरलाल! वहवाया समझते हैं? नहीं समझ में आता तुमको शहरवालों को? गाँव में किसान होता है न, यह किसान की खबर नहीं हो न सब मजदूरी के बहुत काम किये हैं न? क्योंकि किसान के पास जाकर बहुत मक्खन लगाया हो न, कि ऐसा है और वैसा है, यह सब बड़े-बड़े जिसे हो और कानम प्रदेश में दस-दस हजार की साधारण खेती, पचास वर्ष पहले उपज, हों! साधारण वोरा की। कानम प्रदेश में कहते हैं न कपास कच्चा सोना। कपास कच्चा सोना, ऐसा रतन कहते हैं। पुस्तक में लिखते हैं। कच्चा सोना अर्थात् बहुत पैसा उपजे। साधारण लोग हों परन्तु उन्हें अकेले कपास की पाँच-पाँच हजार, दस-दस हजार की उपज।

अब यहाँ कहते हैं, उसके वहवाया अर्थात् लेनेवाले सुतार... उन्हें वापस बारह महीने दे परन्तु अच्छी रीति से दे। वह कहीं खोबे में नहीं दे। इसी प्रकार भगवान परमात्मा की वाणी के आनन्द के रसकिजन उनके वहवाया हैं। समझ में आया? उन्हें तो गाड़ियाँ चाहे अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त रस लेती वाणी आवे। आहाहा! वहाँ पाक पूरण हो गया है न? वीतरागभाव में अनन्त आनन्द का पूरण पाक हो गया है। उसकी जहाँ वाणी

छूटे, आनन्द के रसिकजनों को वह वाणी मधुर है। एक ओर कहे, कि सुनने का भाव विकल्प है, वह जहर है। समझ में आया? गजब! ऐसी यह बात वीतराग के अतिरिक्त यह स्याद्वाद की बात बैठती नहीं। अज्ञानी गोता खाता है। एक ओर कहे कि वीतराग का श्रवण करो तो भी जो विकल्प उठता है, वह शुभ है, अमृत को लूटनेवाला है, जहर है। यहाँ कहते हैं कि यहाँ हम उसे मधुर और मीठा कहते हैं। व्यवहार से वाणी मधुर है। आहाहा! और उसके विकल्प में भी, व्यवहार से अमृत कहा है न? भाई! है न, व्यवहार से अमृत है।

मुमुक्षु : मोक्ष अधिकार में कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है ही न, परन्तु यह निश्चय अमृत है, तब उसका आरोप देकर व्यवहार से अमृत है। निश्चय से जहर है। व्यवहार से उसे अमृत का आरोप देकर राग को भी व्यवहार से अमृत कहा (गया है)। व्यवहार के शास्त्र में उसे अमृत कहते हैं। यह कहा शिष्य ने, ऐसा कहा न, अब यह सिरपच्ची किसलिए करें। समझ में आया?

सीधे निशुद्ध शुद्ध की, शुभ करें और शुभ अमृत है। अशुभ जहर है। उससे नास्ति है। शिष्य ने प्रश्न किया (कि) शुद्ध की प्राप्ति पहले से लगायी तुमने? भाई! शुभ को अमृत कहा है, वह तो शुद्ध और निश्चय अमृत हो, उसके शुभ को अमृत कहा है। तू अकेले अशुभ टालकर शुभ को अमृत माने तो ऐसा अमृत नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, ऐसे **रसास्वाद के रसिकजनों के मन को हरती है...** परम समरसीभाव के रसिक जीवों को वीतराग समभाव प्रगटा है, ऐसे रसिकजनों को मुदित करती होने से, लो! मुदित अर्थात् प्रमोदित। उसे उस जाति का प्रमोद होता है। समझ में आया? मधुर है, लो! अब विशद और स्पष्ट व्यक्त है, ऐसा कहते हैं।

शुद्ध जीवास्तिकायादि सात तत्त्व,... शुद्ध जीव अस्तिकाय, शुद्ध जीव अस्तिकाय पहला, असंख्य प्रदेशी भगवान और अनन्त गुणवाला शुद्ध जीव अस्ति असंख्य प्रदेशी काय, उसका समूह शरीर आदि **सात तत्त्व, नव पदार्थ,...** उसमें पुण्य-पाप मिलाना। **छह द्रव्य और पाँच अस्तिकाय का संशय-विमोह-विभ्रम रहित निरूपण करती है...** ऐसा होगा, ऐसा होना चाहिए, ऐसा नहीं। 'ऐसा है'। समझ में आया?

वीतराग की वाणी तत्त्व को सत् को सिद्ध करने में संशय न हो। कुछ ऐसा होगा, ऐसा लगता है। क्षेत्र फिर दिखता नहीं परन्तु क्षेत्र अन्त बिना का होना चाहिए। अन्त बिना का ही है। काल आदि बिना का है। गुण अनन्त-अनन्त संख्या में असंख्य से भी पार न आवे, इतने आत्मा में गुण हैं। इतने परमाणु में गुण हैं। उनकी पर्याय अनन्त है। जो बात भगवान ने ज्ञान में देखी और आयी है। **संशय...** रहित कहते हैं। निरूपण संशय रहित करते हैं। **विमोह,...** ऐसा होगा या वैसा होगा, **विभ्रम रहित निरूपण करती है इसलिए अथवा...** एक बात। दूसरी, **पूर्वापरविरोधादि दोषरहित होने से...** दो बात। पहले कुछ कहे और दूसरी रीति से कुछ कहे, मेल न खाये। समझ में आया? एक ओर भगवान आत्मा अमृत का कुण्ड प्रभु कहे और उसी अन्दर में आश्रय होती निर्विकल्प आनन्द दशा, वह सच्चा प्रतिक्रमण (कहे)। वह अमृतस्वरूप अकर्तापना। और दूसरी रीति से कहे कि व्यवहार प्रतिक्रमण भी अमृत है। क्योंकि अशुभ को टालता है। सर्व से मिटाता नहीं। समझ में आया? यह व्यवहारनय का कथन है। वह निश्चय का कथन है।

अरे! शशीभाई! यह तो अभी वापस पंचास्तिकाय लिया। पाँच वर्ष नहीं लिया था। क्योंकि अभी शुद्धभाव अधिकार का वाँचन हो गया, अलिंगग्रहण का वाँचन हो गया, कर्ता-कर्म की ७५ से ७९ (गाथा), सैंतालीस नय और सब क्रमबद्ध का। समझ में आया? और यह इकट्ठा डाले कि इसका मेल क्या है यह? व्यवहारनय है तो उसका विषय है तो वह ज्ञान करनेयोग्य है। व्यवहार नहीं है, ऐसा नहीं है - ऐसा सिद्ध करते हैं। व्यवहार है। व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? परन्तु व्यवहार-व्यवहाररूप से है। शुभ, शुभरूप से है और उसके निमित्त, निमित्तरूप से है। यदि व्यवहार न माने तो चौदह गुणस्थान के, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय विशेष वृद्धि हो, ऐसा भेद ही रहता नहीं। निश्चय न माने तो पूरा तत्त्व का लोप हो जाता है। समझ में आया?

ओहोहो! कहते हैं, **पूर्वापर...** पूर्व-अपर, पहले और बाद में **विरोधादि दोषरहित होने से...** पहले कुछ कहा हो और बाद में कुछ कहे, पहले पंचास्तिकाय में कुछ कहा और फिर समयसार में कुछ कहे, ऐसा पूर्वापर, पूर्व और अपर, पहले और बाद में विरोधरहित है। विरोध है नहीं। समझ में आया?

त्रिलोकनाथ परमात्मा की वाणी में विरोध हुआ। अपेक्षा से जो कथन कहे, उस अपेक्षा से उसे समझना चाहिए। एकान्त मानकर बैठ जाये तो दूसरा व्यवहारनय रहता नहीं। व्यवहारनय रहता नहीं तो निश्चय भी रहता नहीं। समझ में आया? दो बोल (हुए)।

तीसरा बोल – **अथवा युगपद् सर्व जीवों को अपनी-अपनी भाषा में स्पष्ट अर्थ का प्रतिपादन करती है,...** देखो, इसके विशद के तीन बोल लिये। '**त्रिभुवनहितमधुर-विशदवाक्येभ्यः**' ऐसे वचनों को जिनकी वाणी है उन्हें, ओहोहो! समझ में आया? और ऐसे भगवान को। लो! उन जिनों को नमस्कार। ऐसी वाणी है, ऐसे भगवान को नमस्कार। वाणी ऐसी है। वाणी तो जड़ है। वाणी में तो जड़ के भाव भरे हुए हैं। वाणी में कहीं भगवान के भाव नहीं आते। हाँ, भाव उसमें नहीं, ऐसा। वह स्व-पर स्वरूप कथा कहे—वह स्व-पर स्वरूप कथा कहे परन्तु ज्ञान-आनन्द के भाव हैं, वे कोई वाणी में हैं? वाणी स्व-पर स्वरूप की कथा कहनेवाली बराबर है। उसकी अपनी कथा करे और आनन्दस्वरूप है, वीतराग है और निर्विकल्प है, ऐसी वार्ता वाणी करे। ऐसी वाणी की ताकत से वाणी करे। परन्तु उस वाणी में ज्ञान और आनन्द के भाव भरे हैं, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

यह तीन प्रकार कहे। क्या? कि **जीवास्तिकायादि सात तत्त्व, नव पदार्थ, छह द्रव्य और पाँच अतिस्काय का निरूपण करती है...** एक बात। स्पष्ट है, ऐसा। विशद स्पष्ट और प्रगट है। ऐसा नहीं (कि) छह द्रव्य होंगे या नहीं? कैसे होंगे? प्रगट-स्पष्ट छह द्रव्य हैं, नव तत्त्व है, सात तत्त्व है, पंचास्तिकाय है और **पूर्वापरविरोधादि दोषरहित होने से...** दो बातें। **युगपद् सर्व जीवों को अपनी-अपनी भाषा में स्पष्ट अर्थ का प्रतिपादन करती है,...** एक साथ सर्व जीवों को समझ में आये, ऐसी वाणी निकलती है। भगवान की वाणी। सर्व जीवों को अपनी-अपनी भाषा में, देखो! ऐसी वाणी कि जो-जो जीव हों, साधारण मेंढ़क मनवाले, उन्हें उनकी भाषा में समझ में आये। बड़े पढ़े हुए हों, उन्हें उनकी भाषा में समझ में आये। सबको ऐसा लगे कि ओहो! हमें हमारी भाषा से बात करते हैं और ऐसा स्पष्ट दिखता है। मानो ऐसी बात करे। समझ में आया?

अपनी-अपनी भाषा में स्पष्ट अर्थ का प्रतिपादन करती है, इसलिए विशद-स्पष्ट-व्यक्त है। वाणी ऐसी ही है। इसमें विवाद उठा है न? वाणी को प्रमाणपना भगवान

को। नहीं।‘पुरुष प्रमाण से वचन प्रमाण’ आता है या नहीं?‘वक्तुं प्रमाणं वचन प्रमाणं’ वक्ता कौन है, उसके ऊपर वचन का प्रमाण, वह तो पर के निमित्त की अपेक्षा से प्रमाण कहा। परन्तु वाणी का प्रमाणपना वाणी अपने से ही प्रमाणरूप है। वाणी जो कहती है, उस प्रमाण से जैसे वस्तु है, वैसे वाणी स्वयं कहती है। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया?

फिर और यह है न दूसरे तारणस्वामी, कि भाई! मूर्ति नहीं मानना। क्योंकि उसमें कहाँ गुण है? वाणी में तो भगवान के सब गुण हैं, जिनवाणी में सब गुण हैं, वह सब ज्ञान होता है, वह ज्ञान इसमें आता है। परन्तु जड़ में कहाँ ज्ञान आया था? वह तो जड़ है। समझ में आया? अक्षरदेह अर्थात्? इसका अर्थ क्या हुआ? यह अक्षरदेह व्यवहारदेह हुआ। अक्षरदेह निमित्त है। यह देह पृथक्, वह अक्षर, देह पृथक्, चैतन्यदेह पृथक्। सवेरे नहीं कहा था? ‘वपुषम अबोध अवध्य’। ‘अवध्य बोध वपुषम्’ घात न हो ऐसा। ‘बोध वपुषम।’ ज्ञान का शरीर है। वह स्व शरीर है। समझ में आया? व्यवहार से अक्षरों को अक्षरदेह कहा जाता है। परन्तु उससे समझ में आता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। मात्र समझनेवाले का उपादान तो स्वयं का है और निमित्त ऐसा था, इसलिए उस समय व्यवहार कहा जाता है। उसे यह भी समझ हुई, इससे उसे आत्मज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। परन्तु यह व्यवहार है, ऐसा यहाँ साबित करना है। कोई व्यवहार को उड़ाता हो, नहीं (है, ऐसा कहकर) लोप करता हो तो ऐसा नहीं है। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं फरमाते हैं। लो! पहली गाथा से देखो। आहाहा!

विशद-स्पष्ट-व्यक्त है। लो! **इस प्रकार जिनभगवान की वाणी ही प्रमाणभूत है;...** देखो, जिनभगवान की वाणी ही प्रमाणभूत है। फिर जिनभगवान। समझ में आया? जिनभगवान की वाणी, वाणी ही। वहाँ वापस एकान्त किया। प्रमाणभूत है। भाई! वह प्रश्न उठा था न खानियाचर्चा में? देखो! वाणी ही प्रमाणभूत है। जिनभगवान की वाणी ही, वाणी प्रमाणभूत है। स्वयं से प्रमाणभूत है। देखो! उसमें स्व-पर कथा करने की भाषा में ताकत है। आत्मा में स्व-पर जानने की ताकत है। भाषा में स्व-पर कहने की ताकत है। पर की अपेक्षा नहीं रखती। आहाहा! समझ में आया? यहाँ सर्वज्ञ है, इसलिए दिव्यध्वनि में-

वाणी में ऐसे ही भाव आते हैं। ऐसी यहाँ ज्ञान की अपेक्षा है तो ऐसी वाणी आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! वाणी में ही प्रमाणभूतता है। सर्वज्ञ की वाणी, हों! निमित्त से कहे। ऐसा उसे वाणी का निमित्त होता है। वाणी को ऐसा निमित्त होता है, यह सिद्ध करना है, तथापि उस निमित्त से वाणी हुई नहीं। वह वाणी निमित्त से हुई नहीं, तथापि वह 'जिन' की वाणी ही प्रमाणभूत है। समझ में आया? ऐसा है।

एकान्तरूप अपौरुषेय वचन या विचित्र कथारूप कल्पित... क्या कहते हैं? ईश्वर की वाणी कोई पुरुष बिना अध्धर से आयी हो, ऐसा कोई कहे, ऐसा नहीं होता; इसी प्रकार कहीं सर्वज्ञ परमात्मा है और उनकी वाणी है, वाणी वाणी के कारण से परिणमती है, सर्वज्ञ भी है, अपौरुषेय वाणी (वचन) अध्धर से आवाज आयी, आकाश में से-ओम में से, समझे न? हमारे एक कहते थे। शून्य में से मुन, मुन में से धुन। वहाँ मोती वाणी बोटाद में थे। उस समय यह वीरचन्द भूरा और वे सब मित्र थे। रायचन्द गाँधी आते और लडावे सबको, यह कहे पहले शून्य था, शून्य में से हुआ मुन, मुन में से उठी धुन, धुन में से उठी ध्वनि, ध्वनि में से भगवान की वाणी खिरी। वह मोतीवाणी थे, बहुत निश्चय में उतरे हुए। एक भी बात में कुछ ठिकाना न हो। समझ में आया? बड़े लकड़ी के व्यापारी, नहीं? हें, कौन है, वे आते, नहीं? हाँ, तुम्हारे काका के वीरचन्द भूरा के मित्र थे। कहो, समझ में आया? यह तो बहुत वर्ष (पहले) की बातें हैं, हों! ८०, ७९, ७८ की। यहाँ ऐसा नहीं है। सर्वज्ञ पुरुष हैं और उनमें वाणी निकलती है, वह वाणी प्रमाणभूत है। सर्वज्ञ पुरुष बिना वाणी हो, ऐसा बन नहीं सकता, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। इस प्रकार जिनभगवान की वाणी प्रमाणभूत है।

एकान्तरूप अपौरुषेय वचन या विचित्र कथारूप कल्पित पुराणवचन प्रमाणभूत नहीं हैं। जैसे-तैसे जोड़ दिया। एक ब्रह्मा और विष्णु और महेश और कहा न यह और... यह सब कल्पना की जोड़ी है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश दूसरे कौन थे? आत्मा का उत्पाद वह ब्रह्मा; व्यय, वह शंकर; ध्रुव, वह विष्णु। समझ में आया? बाद में उत्पाद-व्यय और ध्रुव उसमें है, ऐसी लोगों ने कल्पना करके दूसरे ब्रह्मा, विष्णु को सिद्ध (रूप से) स्थापित किये हैं। **विचित्र कथारूप कल्पित पुराणवचन...** ऐसा, हों! कल्पित पुराण वचन, परम्परा से भगवान के कहे हुए जो हैं आदिपुराण आदि, वे तो भगवान के कही हुई

जिनवाणी है। जो पुराण हैं, वे भी जिनवाणी हैं। आदिपुराण, उत्तरपुराण आते हैं न? पद्मपुराण, वह सब वीतराग की वाणी है। जैसे समयसार वीतराग की वाणी है, वैसे वह भी सन्तों की, वीतराग की वाणी है। वह वाणी हितकर है और स्पष्ट कथन करती है। कहो, समझ में आया?

तीसरा :- अनन्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का जाननेवाला अनन्त केवलज्ञानगुण जिनभगवन्तों को वर्तता है। परमेश्वर, जिन्होंने अनन्त द्रव्य अर्थात् वस्तु, अनन्त क्षेत्र, अन्त बिना का क्षेत्र, काल अनादि-अनन्त, भाव अनन्त आदि शक्ति और पर्याय। **इन सबको जाननेवाला अनन्त केवलज्ञानगुण...** गुण अर्थात् पर्याय है, परन्तु यहाँ गुणवाला कहना है न? इसलिए केवलज्ञान की पर्याय **जिनभगवन्तों को वर्तता है।** जिनभगवान को वह पर्याय होती है; दूसरे को नहीं हो सकती। जैन परमेश्वर को तीन काल, तीन लोक का एक समय में ज्ञान होता है। इतना सिद्ध करने, निमित्त को सिद्ध करने के लिये (वाणी को) जीवों को मधुर और हितकर कहा जाता है। दूसरा निमित्त नहीं हो सकता। ऐसा कहते हैं। अज्ञानी की वाणी निमित्त हो और वह समकित को पा जाये, ऐसा नहीं है। वाणी से नहीं पाता, परन्तु वाणी हो तो सर्वज्ञ और सन्तों की ही सच्ची वाणी होती है। दूसरी वाणी नहीं हो सकती। इतना निमित्त सिद्ध करने के लिये उसे मधुर और हितकर और स्पष्ट कहने में आता है।

इस प्रकार बुद्धि आदि सात ऋद्धिवाले गणधर योगीन्द्रों को वन्दनीय है, ऐसा आया था न! इस प्रकार बुद्धि आदि सात ऋद्धि, बुद्धि आदि सात ऋद्धि / लब्धि है ऐसी। तथा मतिज्ञानादि चतुर्विध ज्ञान से सम्पन्न गणधरदेवादि योगीन्द्रों को भी वे वंद्य हैं। जिन है ऐसी। वीतराग उन्हें भी वन्दन करनेयोग्य है। आहाहा! यह राग उत्पन्न हो तो वापस उसे भान है न? सबमें स्वलक्ष्यीभानवाले की बात ली है न?

अब यह रसिकजनों को, उनको और यहाँ योगीन्द्रों को, भान है न उन्हें स्वयं को। आत्मा ज्ञायकस्वरूप की ध्रुवदृष्टि का भान है।

मुमुक्षु : सुनने किसलिए गये?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सुनने का विकल्प आये बिना नहीं रहता। यह व्यवहार आये

बिना नहीं रहता। ऐसा इस प्रकार से सिद्ध करते हैं। ऐ, शान्तिभाई! भारी बात, भाई!

जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही;
वहाँ-वहाँ वह-वह आचरे आत्मार्थीजन सही।

गणधरों को भी सर्वज्ञ परमेश्वर वन्दनीय है, भाई! वंद्य-वंदक भाव छह गुणस्थान तक ही होता है, यह यहाँ सिद्ध करते हैं। गणधर है, छद्मस्थ है; सर्वज्ञ परमेश्वर पूर्ण प्राप्त हैं। उन्हें भी बहुमान से वन्दन करनेयोग्य परमेश्वर योगीन्द्रों को भी वन्दनीय है। कहो, समझ में आया? परवस्तु योगीन्द्रों को भी वन्दनीक है। व्यवहार पराश्रित, परन्तु व्यवहार से वन्दनीय है, ऐसा व्यवहार यहाँ सिद्ध करते हैं। निश्चय वन्दनीय अपना भगवान आत्मा है कि जो देवाधिदेव और अनन्त पाँच पद जिसमें अन्दर पड़े हैं। समझ में आया?

आत्मा में पाँच पद पड़े हैं - अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य सब अन्दर आत्मा में पड़े हैं। वर्तमान में, हों! ऐसा आत्मा ही परम पूजनीय है, यह निश्चय हुआ। परन्तु व्यवहार है या नहीं? व्यवहार बिल्कुल नहीं (ऐसा नहीं), यह सिद्ध करते हैं। आहाहा! गजब! वीतराग का मार्ग ऐसा है न? व्यवहार सिद्ध करे, तब व्यवहार से लाभ होता है या नहीं? और यह प्रश्न उठावे। यह किसने कहा वहाँ? तो व्यवहार है, इतनी स्वीकृति यदि न हो तो उसके व्यवहार का नाश और पर्याय का नाश हो जाये। वह भगवान के वन्दन का व्यवहार है। भगवान की मूर्ति वन्दनीय है, ऐसा व्यवहार है। उस व्यवहार का नाश हो जाता है। समझ में आया? सर्वज्ञ परमेश्वर साक्षात् त्रिलोकनाथ समवसरण में विराजते हैं, वे परद्रव्य हैं। वन्दन करनेयोग्य हैं, यह तो व्यवहार हुआ। परन्तु व्यवहार है न? ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

ठीक आया, अब यह पंचास्तिकाय। पाँच वर्ष में आया। पाँच वर्ष में आया है न?

मुमुक्षु : अब व्यवहार के दिन आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चयसहित व्यवहार कहना, उसके दिन हैं। हैं? उसका ज्ञान कराते हैं। ज्ञान का विषय व्यवहारनय है या नहीं? व्यवहारनय ही नहीं? उसका विषय ही नहीं? हें?

मुमुक्षु : निश्चय-व्यवहार की सन्धि लागू पड़ती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ! आहा! गणधरदेवादि, गणधरदेव आदि। दूसरे चार ज्ञान के धनी हों। आदि, 'इन्द्रों आदि योगीन्द्रों को भी वे वंद्य हैं।' चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ गुणस्थान, सबको भगवान वन्दनीय है। समझ में आया?

चौथाः— पाँच प्रकार के संसार को जिनभगवन्तों ने जीता है। जिन क्यों कहा गया? पाँच प्रकार का संसार—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव। पाँचों को जीता और वीतराग हुए हैं। पाँचों ही हैं, थे, उनका नाश करके परमेश्वर ने वीतरागभाव प्रगट किया है। समझ में आया? आया न? '**अन्तातीतगुणेभ्यो**' और '**जितभवेभ्य**' '**जितभवेभ्य**' बस, अन्तिम शब्द है। उन्होंने जीता है। दूसरा कोई कहे कि हमारे भव नहीं है और मोक्ष है, वे सब खोटे हैं। समझ में आया?

परमेश्वर नाम धरावे और आहार खाये! समझ में आया? ऐई! 'जमोने थाळ जीवन मोरारी' आता है या नहीं? ऐ शशीभाई! वहाँ सुनते उपाश्रय में सुनते गढडा में। दस-साढ़े दस का समय आवे न, वह स्वामी नारायण बोले, हें? वह स्वामी नारायण बोले—'जमोने थाळ जीवन मोरारी' यह लापसी बनाकर ऐसा कुछ बोलते थे। लापसी बनायी है और यह किया है और वह किया है और होवे तो नहीं सब, हों! होवे थोड़ा, दो, तीन। फिर लम्बी-लम्बी बातें करके—'जमोने थाळ' भगवान को अभी जिमाना है। भगवान जीमते होंगे? ऐई! गप्प-गप्प है। ऐसे भगवान नहीं होते। भगवान को केवलज्ञान का आनन्द वर्तता है, उन्हें क्षुधा नहीं होती, तृषा नहीं होती, आहार नहीं होता, पानी नहीं होता, उन्हें वस्त्र नहीं होते। आहा! उन्हें घोड़ी पर बैठना नहीं होता।

मुमुक्षु : इस बहाने खाने का मिले न!

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु खाने का किसे मिले? धूल को? इसका अर्थ क्या हुआ? ऐसे के ऐसे भगवान।

भगवान आये थे, एक व्यक्ति बोटाद में कहता था। भगवान लेने आये हैं, गली में पूछा था, अमुक कहाँ? परन्तु वहाँ तक की खबर पड़ी और गली में कहाँ, उसकी खबर नहीं पड़ी? ऐसे के ऐसे गप्प मारते हैं। समझे न? कि रथ लेकर आये, दो बैल, चाँदी के सींग और भगवान रथ में बैठे थे। सोना का कहे, लो न! यह बढ़ाना है न, जो नाम कहे

वह ? परन्तु आते थे और गली में रहे। अमुक का घर कहाँ आया ? परन्तु वहाँ से चलकर आये और यहाँ खबर नहीं पड़ी कहाँ आया ? भगवान उसे ले गये, क्या ले गये ? शरीर तो यह पड़ा यहाँ। किसे ले गये, आत्मा को ले गये ? ऐसे के ऐसे गप्प। ऐसे भगवान नहीं हो सकते। समझ में आया ?

उन्होंने तो विकल्प और पूर्ण भाव को जीतकर अकेली वीतरागता प्रगट की है। तीन काल, तीन लोक का ज्ञान जिन्होंने प्रगट किया है, वे किसी के पाय जायें और शरीर धारण करें ऐसा होता नहीं। भई, यह तो भगवान की लीला है। समझ में आया ? घोड़ी पर बैठकर आये। कैसी घोड़ी कहते हैं ? हें ? माण (पानीदार) की घोड़ी। माण (पानीदार) की घोड़ी पर बैठे। आँखें इतनी बड़ी थीं, ऐसे थे परन्तु वे माण (पानीदार) की घोड़ी में भगवान नहीं होते। भगवान घोड़ी पर नहीं बैठते सुन न! भगवान तो वीतराग तीन काल, तीन लोक को जानना, ऐसा निमित्तपना सिद्ध करने को यह पहिचान कराते हैं। व्यवहार हो तो ऐसा ही व्यवहार वन्दनीय होता है। समझ में आया ? लो!

इस प्रकार कृतकृत्यपने के कारण... कृतकृत्य हो गये। अब उन्हें कुछ करना बाकी नहीं। **वे ही अन्य अकृतकृत्य जीवों को शरणभूत हैं,...** निमित्तरूप से यह देखो व्यवहार! निश्चय से शरण तो भगवान आत्मा। आहाहा! 'केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणं।' अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं, साहू शरणं आता है या नहीं ? कान्तिभाई! मांगलिक में। मांगलिक आवे न ? चत्तारि मंगलं। ऐसे अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं। वे बौद्ध कहे — बौद्धम शरणं। बौद्धम शरणं नहीं होता। ऐसे अरिहन्त सर्वज्ञदेव, वे व्यवहार से शरण (होते हैं)। निश्चय से तो आत्मा आनन्दकन्द पूर्णानन्द का नाथ, वह शरण करनेयोग्य है परन्तु उसे व्यवहार होवे तो ऐसा (व्यवहार) होता है, दूसरा व्यवहार नहीं होता। ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया ?

लो! सांई बाबा ने हाथ फिराया और रोग मिट गया। अमुक और अमुक हुआ। भ्रमणा का पार नहीं।

मुमुक्षु : अपने रोग का क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे रोग कहाँ है ? सांई बाबा का तो बड़ा लट्ठ जैसा शरीर है।

मरेगा और मरेगा। वह तो उस भव में से आया है। ऐसे के ऐसे जैन के बनिया। बनिये में जन्में हुए जैन कहलाये। थोथा कुछ भान नहीं होता। समझ में आया? ऐ कनुभाई! होता है या नहीं ऐसा मुम्बई में बहुत ऐसा? सांई बाबा को-सांई बाबा ऐसा और वैसा। यह एक जलसा क्या कहलाता है? जलाराम-जलाराम की जय हो, जलाराम की जय हो! बनिया के घर।

मुमुक्षु : बड़ा मकान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : करे न, पैसा हो लाखों-लाखों। वर्ष में लाखों की उपज है लोग इकट्ठे होते हैं और मानते हैं। यह भगवान नहीं होगा! उसे कोई भगवान दर्शन देने आये थे? फिर भगवान अदृश्य हो गये। ऐसे के ऐसे गप्प मारनेवाले और ऐसे के ऐसे भगवान को कुछ खबर (नहीं होती)। भगवान तो तीन लोक के नाथ एक समय में तीन काल का ज्ञान वीतराग, अनाहारी ऐसा आत्मा परमात्मा होता है, और उसकी वाणी ऐसी होती है। यह उसे व्यवहार से ज्ञान करने के लिये यह बात सिद्ध करते हैं।

वह 'अकृतकृत्य जीवों का शरण है' जिसने धर्म के कार्य किये नहीं, ऐसे जीवों को ऐसे परमात्मा कृतकृत्य हुए शरण हैं। समझ में आया? यह सब बात व्यवहार से है न? व्यवहार सिद्ध करते हैं न? व्यवहार का ज्ञान। अन्य कुछ नहीं। बस, यह सिद्ध करते हैं। लो! ऐसे के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं हो सकता। ऐसा एक निमित्तपना ज्ञानी को भी वन्दनीय और आश्रय करनेयोग्य है। इस प्रमाण चार विशेषणों से सहित जिनभगवन्तों को ग्रन्थ के आदि में भाव नमस्कार करके मंगल किया है। अन्तर में नमकर वस्तु के स्वभाव में नमकर ऐसा एक नमस्कार करने में भले विकल्प है। अब जयसेन आचार्य की टीका में अन्दर प्रश्न उठता है।

प्रश्न : जो शास्त्र स्वयं ही मंगल है, उसका मंगल किसलिए किया जाता है? शास्त्र स्वयं ही मंगलिक है। समझ में आया?

उत्तर :- तो कहे, **भक्ति के हेतु से मंगल का भी मंगल किया जाता है।** लो, कहते तो हैं न? **शास्त्र का मंगल, शास्त्र का निमित्त, शास्त्र का हेतु (फल), शास्त्र का परिमाण, शास्त्र का नाम तथा शास्त्र के कर्ता—इन छह विषयों का विस्तृत विवेचन**

श्री जयसेनाचार्यदेवकृत टीका में किया है। लो! समझ में आया? भव्य जीव आदि, शास्त्र का फल मोक्ष, शास्त्र का परिमाण–कितनी संख्या में शब्द, शास्त्र का नाम कि यह पंचास्तिकाय, शास्त्र के कर्ता कुन्दकुन्दाचार्य। समझ में आया? प्रत्येक में छह–छह बोल। **भक्ति के हेतु से मंगल का भी मंगल किया जाता है।** किसकी भाँति? यह **सूर्य की दीपक से...** देखो! सूर्य को दीपक नहीं करते? आरती उतारते हैं। सूर्य की दीपक से आरती। ऐसा एक व्यवहार होता है।

सूर्य की दीपक से आरती उतारते हैं। **महासागर की जल से,...** (आरती उतारते हैं), बड़ा समुद्र भरा हो और पानी से अंजुली लेकर करते हैं न! पारसी लोग समुद्र की पूजा बहुत करते हैं। समझ में आया? और यह दूसरे लोग सवेरे सूर्य को देखकर दीपक करते हैं। जय सूर्य नारायण! **वागीश्वरी (सरस्वती) की वाणी से...** लो! यह सरस्वती–वीतराग की वाणी को वाणी से मांगलिक किया जाता है। और **मंगल की, मंगल से अर्चना की जाती है।** मांगलिक वस्तु है, उसे भी मांगलिक से पूजा जाता है। एक गाथा हुई। एक गाथा हुई। हें? कहाँ? यह कहा न? यह कह गये न अभी? यह नीचे।

श्री जयसेनाचार्यदेव ने इस गाथा के शब्दार्थ,... शब्द (का) अर्थ करना, **नयार्थ...** करना, वह इसमें डाला है। नय का अर्थ निश्चय का अर्थ है या व्यवहार का अर्थ है। **मतार्थ...** अन्यमती को यह कहना है और आगम को यह कहना है **और भावार्थ...** समझाकर, **इस प्रकार व्याख्यान काल में सर्वत्र...** प्रत्येक शब्द को प्रत्येक गाथा में पाँच भाव से उतारना। कहो, यह लोग ऐसा ही कहे न परन्तु इसमें लिखा है न? भगवान भी किस नय का वाक्य है, यह हितकर कहा है या नहीं? परन्तु किस नय का वाक्य है?

मुमुक्षु : असद्भूतव्यवहारनय का...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो असद्भूतव्यवहारनय का है। समझ में आया? यह हितकर हो तो इसके सामने देखा करना? यह तो व्यवहार से हितकर कहा है और वही निमित्त होते हैं, दूसरा नहीं होता, इसलिए (कहा है)। यह लगानेयोग्य है। लो! प्रत्येक भावार्थ लगानेयोग्य है, ऐसा कहा। लो! संक्षिप्त में सब आता है न?

गाथा - २

समणमुहुग्गदमट्ठं चदुग्गदिणिवारणं सणिव्वाणं।
एसो पणमिय सिरसा समयमिणं सुणह वोच्छामि।।२।।

श्रमणमुखोद्गतार्थं चतुर्गतिनिवारणं सनिर्वाणम्।
एष प्रणम्य शिरसा समयमिमं शृणुत वक्ष्यामि।।२।।

समयो ह्यागमः। तस्य प्रणामपूर्वकमात्मनाभिधानमत्र प्रतिज्ञातम्। युज्यते हि स प्रणन्तुमभिधातुं चाप्तोपदिष्टत्वे सति सफलत्वात्। तत्राप्तोपदिष्टत्वमस्य श्रमणमुखोद्गतार्थत्वात्। श्रमणा हि महाश्रमणाः सर्वज्ञवीतरागाः। अर्थः पुनरनेकशब्दसम्बन्धेनाभिधीयमानो वस्तुतयै-कोऽभिधेयः। सफलत्वं तु चतसृणां नारकतिर्यग्मनुष्यदेवत्वलक्षणानां गतीनां निवारणत्वात् पारतंत्र्यनिवृत्तिलक्षणस्य निर्वाणस्य शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भरूपस्य परम्परया कारणत्वात् स्वातंत्र्य-प्राप्तिलक्षणस्य च फलस्य सद्भावादिति।।२।।

सर्वज्ञभाषित भवनिवारक मुक्ति के जो हेतु हैं।
उन जिनवचन को नमन कर मैं कहूँ तुम उनको सुनो।।२।।

अन्वयार्थ :- [श्रमणमुखोद्गतार्थे] श्रमण के मुख से निकले हुए अर्थमय (-सर्वज्ञ महामुनि के मुख से कहे गये पदार्थों का कथन करनेवाले), [चतुर्गतिनिवारणं] चार गति का निवारण करनेवाले और [सनिर्वाणम्] निर्वाण सहित (-निर्वाण के कारणभूत) [इमं समयं] ऐसे इस समय को [शिरसा प्रणम्य] शिरसा नमन करके [एषवक्ष्यामि] मैं उसका कथन करता हूँ; [श्रृणुत] वह श्रवण करो।

टीका :- समय अर्थात आगम; उसे प्रणाम करके स्वयं उसका कथन करेंगे, ऐसी यहाँ (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने) प्रतिज्ञा की है। वह (समय) प्रणाम करने एवं कथन करनेयोग्य है, क्योंकि वह *आप्त द्वारा उपदिष्ट होने से सफल है। वहाँ, उसका आप्त द्वारा उपदिष्टपना इसलिए है कि जिससे वह 'श्रमण के मुख से निकला हुआ

---

* आप्त = विश्वासपात्र; प्रमाणभूत; यथार्थ वक्ता। [सर्वज्ञदेव समस्त विश्व को प्रति समय सम्पूर्णरूप से जान रहे हैं और वे वीतराग (मोहरागद्वेषरहित) होने के कारण उन्हें असत्य कहने का लेशमात्र प्रयोजन नहीं रहा है; इसलिए वीतराग-सर्वज्ञदेव सचमुच आप्त हैं। ऐसे आप द्वारा आगम उपदिष्ट होने से वह (आगम) सफल हैं।]

अर्थमय' है। 'श्रमण' अर्थात् महाश्रमण–सर्वज्ञवीतरागदेव; और 'अर्थ' अर्थात् अनेक शब्दों के सम्बन्ध से कहा जानेवाला, वस्तुरूप से एक ऐसा पदार्थ। पुनश्च उसकी (–समय की) सफलता इसलिए है कि जिससे वह समय –

(१) 'नारकत्व' तिर्यंचत्व, मनुष्यत्व तथा देवत्वस्वरूप चार गतियों का निवारण करने के कारण और (२) शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धिरूप 'निर्वाण का परम्परा से कारण' होने के कारण (१) परतन्त्रतानिवृत्ति जिसका लक्षण है और (२) स्वतन्त्रताप्राप्ति जिसका लक्षण है—ऐसे [१]फलसहित है।

भावार्थ :– वीतरागसर्वज्ञ महाश्रमण के मुख से निकले हुए शब्दसमय को कोई आसन्नभव्य पुरुष सुनकर, उस शब्दसमय के वाच्यभूत पंचास्तिकायस्वरूप अर्थसमय को जानता है और उसमें आ जानेवाले शुद्धजीवास्तिकायस्वरूप अर्थ में (पदार्थ में) वीतराग निर्विकल्प समाधि द्वारा स्थित रहकर चार गति का निवारण करके, निर्वाण प्राप्त करके, स्वात्मोत्पन्न, अनाकुलतालक्षण, अनन्त सुख को प्राप्त करता है। इस कारण से द्रव्यागमरूप शब्दसमय नमस्कार करने तथा व्याख्या करनेयोग्य है।।२।।

गाथा - २ पर प्रवचन

समणमुहुग्गदमट्ठं चदुग्गदिणिवारणं सणिव्वाणं।
एसो पणमिय सिरसा समयमिणं सुणह वोच्छामि॥२॥

देखो! **महाश्रमण के मुख से निकले हुए वचन...** यहाँ से शुरु किया है। अध्धर से कोई कहनेवाले को लिखीतन मफतलाल ऐसा नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। देखो! ऐसे आगम को सिरसा–नमस्कार करता हूँ। सिरसा, अरे प्रभु! शरीर से तो नमस्कार होता नहीं? शरीर तो जड़ है और परद्रव्य को नमस्कार करना, वह तो शुभ विकल्प है परन्तु वह व्यवहार जब वन्दन–नमन भाव होता है, तब शरीर और मस्तक भी नमता है। वह नमता है उसके कारण से, परन्तु यहाँ व्यवहार से सिद्ध करते हैं। सिरसा–नमन करते हैं। समझ में आया? आहाहा! **'एसो पणमिय सिरसा समयमिणं सुणह वोच्छामि'** लो!

---

१. चार गति का निवारण (अर्थात् परतन्त्रता की निवृत्ति) और निर्वाण की उत्पत्ति (अर्थात् स्वतन्त्रता की प्राप्ति) वह समय का फल है।

इस समय पंचास्तिकायरूपी समयसार को सुन। अब सुनने में भी उसे लाभ नहीं और सुन। सुन न! उसकी योग्यता हो, तब उस प्रकार का सुनने का विकल्प और ज्ञान उघाड़ ऐसा होता ही है। यह व्यवहार सिद्ध करते हैं। अरे... अरे! भारी बात! और '**वोच्छामि**' ऐसा कहते हैं। लो! मैं कहता हूँ। ऐई! वाणी कहती है, ऐसा कहा है? वाणी कहती है, ऐसा कहा है? परन्तु व्यवहार से भाषा दूसरी क्या आवे? मैं इस समयसार-पंचास्तिकाय को कहूँगा। कहूँगा। वहाँ वे पकड़े, देखो! आत्मा से वाणी कही जा सकती है या नहीं? आचार्य कहते हैं, परन्तु क्या कहते हैं? किस नय का वचन है? यह शब्द असद्भूतव्यवहारनय का वचन है। आहाहा! गजब बात, भाई! विवाद... विवाद। अरे! जहाँ वहाँ क्या हो? पण्डितों को जानपने का अभिमान, त्यागियों को व्रत का अभिमान... वाणी दरकार पड़ी रहे एक ओर। आहाहा! हें? गजब है।

सर्वज्ञभाषित भवनिवारक मुक्ति के जो हेतु हैं।
उन जिनवचन को नमन कर मैं कहूँ तुम उनको सुनो॥२॥

लो! पहले इसका शब्दार्थ लें। फिर इसकी टीका लेंगे। उसमें क्या है? **श्रमण के मुख से निकले हुए अर्थमय-सर्वज्ञ महामुनि के मुख से कहते हुए पदार्थों का कथन करनेवाले,...** अब मुख है आहारवर्गणा का आहारक (औदारिक) शरीर, भाषा है शब्द वर्गणा का। समझ में आया? परन्तु मुख में से निकले हुए अर्थात् वहाँ मुख का निमित्तपना है न? इतना बतलाना है। बाकी भाषा तो भाषा से है। भाषावर्गणा के पुद्गल अलग, आहारवर्गणा के पुद्गल अलग, ठीक हुआ, यह सब आया। आहाहा!

श्रमण के मुख से... एक तो श्रमण को मुख नहीं होता। एक बात। श्रमण अर्थात् कौन? मुनि, केवली, महाश्रमण - ऐसा। महाश्रमण कहते हैं न अन्दर? समझ में आया? यह श्रमण अर्थात् महाश्रमण, हों! कहेंगे नीचे। महाश्रमण अर्थात् सर्वज्ञ वीतरागदेव। श्रमण शब्द में यह पहला शब्द पड़ा है अर्थात् सर्वज्ञ वीतरागदेव, उन्हें यहाँ श्रमण कहा गया है।

सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर को यहाँ श्रमण कहा गया है। उनके मुख में से, मुख तो जड़ का है। परन्तु वहाँ निमित्त-निमित्त को सम्बन्ध गिनकर असद्भूतव्यवहारनय से मुख में से निकली और मुख तथा शब्द वर्गणा भिन्न है तो भी मुख का निमित्त उसमें है, इसलिए

शब्दवर्गणा मुख से निकली-निकले हुए अर्थमय, सर्वज्ञ महामुनि के मुख से कहे गये पदार्थों को कहनेवाले। लो, ठीक! तथा एक ओर कहो, कि भगवान की वाणी पूरे शरीर से निकलती है। ऐई! परन्तु आवे तब सब बात आनी चाहिए न! हें! ॐध्वनि ऐसे उठे। बात तो पूरी ऐसी ही है, हों! ध्वनि तो ऐसी है परन्तु लोगों को ऐसा लगे न? भाषा ऐसी आती है, भगवान यहाँ कहाँ मुख खोलते हैं? मुख तो बन्द होता है। ॐध्वनि उठे अन्दर से। पूरा शरीर बन्द न! समझ में आया? छिद्र होते हैं मुख में, उसमें से आवाज निकलती है। पूरे शरीर में से। शरीर में से निकलती है। होठ हिले बिना मुख से निकलती है। उसे और यहाँ, लौकिक में ऐसा कहा जाता है या नहीं कि यह बोला, वैसे यहाँ श्रमण भगवान के मुख से वाणी निकली, ऐसा व्यवहार से कहा गया है।

बोलना पूरे शरीर से, (ऐसा) लोग नहीं समझते। समझ में आया? ऐई! असंख्य प्रदेश से एकदम ध्वनि उठे। प्रदेश से उठे, यह कहना भी व्यवहार है। परन्तु क्या कहना? क्योंकि असंख्य प्रदेश में भाषावर्गणा के वहाँ जो परमाणु हैं और उनमें से ध्वनि उठती है ओम... ऐसी ध्वनि उठती है। सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव को पूरे असंख्य प्रदेश में केवलज्ञान-सूर्य दीपक प्रगट हुए हैं। परन्तु वहाँ भाषावर्गणा के परमाणु वहाँ परिणमकर निकलते हैं, पूरे शरीर में से निकलते हैं, ऐसा कहना चाहिए उसके बदले यहाँ मुख से निकलते हैं, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? आहाहा!

अर्थात् कि अध्धर से कोई आकाश में से वाणी आती है, ऐसा अन्यमति लोग कहते हैं न? कि वाणी आकाश का गुण है, ऐसा वे लोग कहते हैं। समझ में आया? कहते हैं न? वे पंचीकरण के सब बोल आते हैं न? एकेन्द्रिय का विषय यह होता है, अमुक का यह विषय। शब्द-शब्द आकाश का गुण है। धूल भी नहीं आकाश का (गुण)। सुन न! वह तो वाणी की पर्याय है, वह वाणी की पर्याय आकाश में से नहीं आती; वचनवर्गणा में से आती है। आहाहा! समझ में आया? 'निकले हुए अर्थमय' अर्थात् भगवान (वाणी) करते हैं और फिर उसका एक अर्थमय आवे, फिर सूत्र तो गणधर गूँथते हैं, ऐसा। गणधरदेव सूत्र गूँथते हैं। और भगवान की वाणी में अर्थ आता है। उसके भाव (आते हैं)। सर्वज्ञ महामुनि के मुख से कहे गये पदार्थों को कहनेवाले, अर्थमय है न? अर्थात् पदार्थ को कहनेवाले।

कैसी है वह वाणी ? कि चार गति का निवारण करनेवाली है। कोई गति दे, ऐसी वह वाणी नहीं है। वह वाणी वीतराग की है। वीतरागपना बतलाती है। वीतराग की वाणी वीतरागपना बतलाती है। वीतरागभाव से कोई गति नहीं आती। समझ में आया ?

लो, **चार गति का निवारण करनेवाले...** देखो! स्वर्ग की गति का-सर्वार्थसिद्धि के भव का निवारण करनेवाली है। सर्वार्थसिद्धि की गति का भव भगवान की वाणी से होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! चार गति तो परतन्त्र है, उससे स्वतन्त्र भगवान आत्मा का मोक्ष / निर्वाण, उसे दिखलानेवाली, प्राप्त करानेवाली, बतलानेवाली वाणी है। अरे! अरे! पर से दिखलावे। ऐई! समझ में आया ? व्यवहार है, ऐसा व्यवहार सिद्ध करते हैं। समझ में आया ? **और निर्वाणसहित ऐसे इस समय को...** निवारण करके निर्वाण-मोक्ष के कारणभूत वह वाणी है। ऐसा इस समय अर्थात् समयशास्त्र, समयसार, यह पंचास्तिकाय समयसार है। **'शिरसा प्रणम्य' शिरसा नमन करके...** मेरे मस्तक से नमकर। आहाहा!

उत्तम अंग मस्तक है। समझ में आया ? उत्तम अंग मस्तक है, उसे नमाकर नमन करता हूँ, ऐसा। कौन कहता है ? सिरसा से नमकर ? सिर हिलता है, वह जड़ की पर्याय है। आत्मा उसका कर्ता नहीं है। परन्तु वहाँ विनय भाव था। ऐई! ठीक परन्तु अवसर से यह सब कहा गया और यह आना चाहिए। पाँच वर्ष हो गये। कहते हैं, नियमसार के पश्चात् यह वाँचन हो गया। २२ के वर्ष में। आहाहा! एक तो वह विनय-बहुमान आया है और मस्तक नमता है, यह निमित्त-निमित्त का काल सम्बन्ध है। इसलिए इसे व्यवहार से ऐसा कहा कि सिरसा नमन करते हैं, ऐसा। उत्तमाणपने वहाँ ढल जाते हैं। गणधर के, हों! यह तो आचार्य स्वयं कहते हैं न, स्वयं नम जाते हैं। आहाहा!

'एष वक्ष्यामि' मैं उसका कथन करता हूँ;... लो! मैं उसका कथन करता हूँ। ऐई! कथन करना तो वाणी है और फिर आत्मा कथन करे, यह तो व्यभिचार हो गया। परन्तु यह निमित्तरूप से आत्मा को यह कहना है, ऐसी वाणी निकलेगी, उसमें निमित्त है, इसलिए मैं कथन करता हूँ, ऐसा व्यवहारनय से कहा जाता है। हें ?

मुमुक्षु : यह समझने में बहुत मेहनत।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बहुत मेहनत। वह सीधा-सट्ट था। व्यवहार के कथन ऐसे

निमित्त को बतलानेवाले, अन्यथा अपेक्षा रखकर कहते हैं न। भाई का (पण्डित) टोडरमलजी का वाक्य बराबर है। व्यवहार कोई निमित्त आदि की अपेक्षा से अन्यथा कहता है, उसे ऐसा जाने लेना। निमित्त है, ऐसा जान लेना परन्तु आदरना और ग्रहण करना, ऐसा है नहीं। यह ऐसा कहते हैं, देखो न!

वापस यह श्रवण करो। लो! सुनो! श्रवण से कुछ लाभ नहीं होता—एक ओर ऐसा कहे। हें!

मुमुक्षु : उनमें यही वचन आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उसे ऐसा कहते हैं कि निमित्त श्रवण में होता है। लाभ तो तेरे स्वभाव के आश्रय से होता है। परन्तु उसमें ऐसा श्रवण और ऐसा निमित्त होता है। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ और सन्तों की वाणी वहाँ निमित्त होती है, इसलिए वह श्रवण करो, ऐसा यहाँ कहा जाता है। श्रवण करो अर्थात् वहाँ विकल्प कराते हैं? उसे यथार्थ ज्ञान का निमित्तपना तो इसी वाणी में है, इसलिए उसे तू सुन। उसमें-जयधवल में तो बहुत लिया है। एक गाथा है न, जयधवल में गाथा है। 'सुनो' का बहुत बड़ा कथन किया है। सुनने के योग्य जो तैयार हो, सावधान हो, क्या कहेंगे? कैसे कहेंगे? किस प्रकार? ऐसी उसकी तैयारी होती है। उसे कहते हैं कि सुन। ऐसा व्यवहार सिद्ध किया है। लो! टीका करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

धारावाही प्रवचन नं. ३ (प्रवचन नं. ३), गाथा-२-३

दिनांक - १७-११-१९६९, कार्तिक शुक्ल ८, सोमवार

कुन्दकुन्दाचार्य (द्वारा रचित) पंचास्तिकाय शास्त्र है। षट्द्रव्यसहित यह आगम है। शब्द आगम है। इससे अर्थ आगम को बतलाने को यह अर्थ करते हैं। शुद्ध जीवास्तिकाय तत्त्व आदि से लेकर जो वास्तविक तत्त्व है, उसका जो ज्ञान हो तो उस ज्ञान में अपने जीव स्वभाव को पहिचानकर अन्तर में एकाग्र हो तो उसे मुक्ति प्राप्त होती है। शास्त्र के ज्ञान के लिये कहने का यह फल है। समझ में आया? इसलिए कहते हैं।

टीका - **समय अर्थात् आगम;...** दूसरी गाथा। **उसे प्रणाम करके...** आगम को नमस्कार करते हैं। वाणी है न? जड़ है, परन्तु उसमें निमित्तरूप से-व्यवहाररूप से बहुमान है न? व्यवहार की बात है न? समय है, वह आत्मा में पदार्थ को बतलाने को उसकी ज्ञान की प्रसिद्धि के लिये, तीसरी गाथा में आयेगा। शब्दसमय से ज्ञान की प्रसिद्धि के लिये अर्थसमय अर्थात् पदार्थ को कहा जायेगा, ऐसा आचार्य का अभिप्राय है।

आगम द्वारा—यह शब्दसमय है उसे? अर्थसमय को बतलाने के लिये ज्ञान की प्रसिद्धि करने के लिये। कैसा आत्मा है, कैसे षट्द्रव्य हैं, कैसे गुण हैं, कैसी पर्याय है, इसके ज्ञान की प्रसिद्धि के लिये आगम कहा जाता है। इसलिए आगम को भी यहाँ नमस्कार किया गया है। कहो, समझ में आया?

प्रणाम करके स्वयं उसका कथन करेंगे... कुन्दकुन्दाचार्य आगम को नमस्कार करके उसका वर्णन करेंगे। सीधे ऐसा कहा, लो! उसमें तो आ गया जितेभ्य:, जिसने भव को जीता है, उसे नमस्कार करते हैं। यह तो पहले में आ गया है। अब समय को-आगम को नमस्कार। देव को नमस्कार किया। अब यहाँ समय-शास्त्र को (नमस्कार) करते हैं। ऐसी बात है। मूल तो देव, शास्त्र, गुरु तीन आते हैं या नहीं?

मुमुक्षु : पूजा में आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस वह। देव को नमस्कार किया।

अब इस शास्त्र को नमस्कार करते हैं। समय नाम का शास्त्र अर्थात् आगम, वह

यह। कि **उसे प्रणाम करके स्वयं उसका कथन करेंगे —ऐसी यहाँ (श्रीमद्भगवत्-कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने) प्रतिज्ञा की है।** मैं आत्मा को कहूँगा, षट्द्रव्य को कहूँगा। आत्मा अन्दर क्या चीज़ है और उसे ज्ञात होनेयोग्य षट्द्रव्य जगत में कैसे हैं, उन्हें आगम द्वारा मैं कहूँगा। इसलिए उस आगम को पहले नमस्कार किया गया है।

वह (समय) प्रणाम करने एवं कथन करने योग्य है;... अब दो अर्थ लिये। क्यों प्रणाम करता हूँ कि वह शास्त्र जो भगवान आत्मा को बतलानेवाले हैं, वह उसका विषय षट्द्रव्य को बतलानेवाला है। इसलिए वे प्रणाम करनेयोग्य हैं और कथन करने के भी यह आगम योग्य है, ऐसा कहते हैं। भाई! हाँ, यह कथन करनेयोग्य है। वास्तविक सर्वज्ञ की वाणी है, उसमें वास्तविक तत्त्व का स्वरूप आया है, इसलिए वही कथन करने के योग्य है, ऐसा कहते हैं। अज्ञानी ने कल्पित कुछ कहा हो, वह आगम नहीं और इसलिए वह कथन करनेयोग्य नहीं और वह प्रणाम करने के योग्य भी नहीं। समझ में आया?

अब आगम को प्रणाम करना, वह व्यवहार है। कथन करना, वह भी व्यवहार है। असद्भूतव्यवहारनय से कथन करता हूँ, ऐसा कहने में आता है।

मुमुक्षु : तो फिर जानना किसलिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : जानना चाहिए न! वस्तु तत्त्व है, ऐसा जानना चाहिए या नहीं? यह आत्मा अन्दर क्या चीज़ है और इसका विषय एक समय की एक पर्याय में षट्द्रव्य को जानने की ताकतवाला वह तो आत्मा है। इतना जाना तो फिर क्या है, ऐसा जानना चाहिए न? किस प्रकार से है? षट्द्रव्य क्या है? यह सर्वज्ञ ने कहे वे हैं, यह सर्वज्ञ के आगम में ही वे होते हैं। इसलिए उस आगम में आत्मा की प्रसिद्धि करने के लिये यह षट्द्रव्य का वर्णन इसमें आता है। तीसरी गाथा में आता है न? प्रसिद्धि, ज्ञान की प्रसिद्धि। मूल तो उसका ज्ञान करना है न?

भगवान आत्मा शुद्ध जीवास्तिकाय से लेकर है न? अन्दर चैतन्य वस्तु असंख्य प्रदेशी शुद्ध जीवास्तिकाय को एक समय में जानने की ताकत जगत के तीन काल-तीन लोक के षट्द्रव्य, उसको एक समय में जानने की ताकत है। अर्थात् षट्द्रव्य कैसे हैं, उनका वर्णन करके भी आत्मा की पर्याय की इतनी ताकत है, उसका वर्णन करते हैं और

उस पर्याय में पूरा आत्मा कितना है ? यह बतलाने को यह शास्त्र कहना चाहते हैं। और यह वापस विशिष्टता क्या ली है ? कि वह प्रणाम करके स्वयं कथन करेंगे, ऐसा लिया है न, पहले दो श्लोक तो ! इसलिए कहा, प्रतिज्ञा की है कि मैं इस समय को प्रणाम करके कथन करता हूँ।

कैसे, अब कहते हैं ? कि यह प्रणाम करने के योग्य है। और वह वाणी सर्वज्ञ ने कही हुई षट्द्रव्य को बतलानेवाली, आत्मा को बतलानेवाली, वह वाणी; इसलिए वही वाणी कथन करनेयोग्य है। भगवान सर्वज्ञ ने आत्मा देखा। अन्तर में वस्तु असंख्य प्रदेशी और अनन्त गुण का धाम, ऐसा जो आगम में कहा, वह आगम ही प्रणाम करनेयोग्य है और वही आगम कथन करनेयोग्य है। ऐसा कहकर दूसरे आगम नहीं और दूसरे प्रणाम करनेयोग्य नहीं। समझ में आया ?

क्योंकि वह आप्त द्वारा उपदिष्ट होने से सफल है। लो ! वाणी जो है, वह सर्वज्ञ परमेश्वर जिन्हें एक समय के सूक्ष्म काल में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान था। ऐसा ही आत्मा है, ऐसा ही वह आत्मा था। उस आत्मा में अन्तर में सर्वज्ञपना तीन काल-तीन लोक को जानने का ऐसा आत्मा का स्वभाव है। ऐसा स्वभाव जिसने प्रगट किया और उन भगवान ने जो वाणी कही, वह आप्त द्वारा उपदिष्ट होने से सफल है, ऐसा। सर्वज्ञ परमेश्वर द्वारा कही गयी होने से वह वाणी सफल है। नीचे है।

विश्वासपात्र। है नीचे ? सर्वज्ञ परमेश्वर विश्वासपात्र हैं, प्रमाणभूत हैं, यथार्थ वक्ता हैं। यथार्थ वक्ता हैं। सर्वज्ञदेव समस्त विश्व को प्रत्येक समय में, प्रत्येक समय में सम्पूर्णरूप से जान रहे हैं। परमात्मा-आत्मा स्वयं परमात्मस्वरूप ही है, ऐसी जिन्होंने स्वरूप की दशा प्रगट की है, ऐसे परमात्मा सर्वज्ञदेव समस्त विश्व को प्रत्येक समय में, ऐसा वापस (कहा)। केवलज्ञान है न ? प्रत्येक समय में, सम्पूर्णरूप से एक-एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में प्रत्येक समय में सम्पूर्णरूप से जान रहे हैं। आहाहा !

देखो ! यह आत्मा की पर्याय की ताकत वर्णन करते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! एक समय की उसकी—आत्मा की दशा। यह आत्मा ऐसा ही है।

मुमुक्षु : सब आत्मा की ताकत है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब आत्मा की—प्रत्येक आत्मा की ऐसी ताकत है। आहा! समझ में आया? 'ज्ञ' स्वरूप है न वह तो! ज्ञान स्वरूप है। वह तो चैतन्यपुंज है। आत्मा, वह तो चैतन्य का पिण्ड है। वहाँ कहीं कोयला, कंकड़ और राग-द्वेष उसमें भरे नहीं हैं। वस्तु है तो वस्तु में कुछ शक्ति-स्वभाव होगा या नहीं? वस्तु आत्मा है, उसकी शक्तियाँ अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, सहजानन्द की मूर्ति आत्मा है। आहाहा! उसके आनन्द को खोजने के लिये बाह्य चीज़ है नहीं। आत्मा शान्ति का सागर है। उसकी खबर नहीं होती। जहाँ-तहाँ ढूँढ़े, खोजे। मृग की नाभि में कस्तूरी (होती है) परन्तु कस्तूरी बाहर खोजता है। बाहर वन में कहीं ढूँढ़ता है, धूल भी वहाँ नहीं है। जहाँ है, उसकी उसे खबर नहीं है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा देह में चैतन्यमूर्ति स्वयं विराजता है। उसमें अनन्त आनन्द और बेहद ज्ञान भरा हुआ है। आहाहा! समझ में आया? उसके आनन्द के लिये किसी पर चीज़ की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार उसे ज्ञान होने के लिये भी किसी पर चीज़ की आवश्यकता नहीं है। ज्ञान वाँचन होता है, वाणी वाँचन होती है, ऐसा कहना वह तो व्यवहार है। ऐसी बात! व्यवहार अन्दर है या नहीं? व्यवहार नहीं, इसलिए तो यह सिद्ध करते हैं। अकेला निश्चय, निश्चय, निश्चय, परन्तु निश्चय किसके कारण समझ में आया? समझ में आता है?

सर्वज्ञ की वाणी थी, उसमें तेरा ज्ञान समझण में रुका, ऐसा जो व्यवहार ज्ञान हुआ, पश्चात् उसके लक्ष्य में आया कि यह तो आत्मा ध्रुव कहते हैं और अखण्ड परिपूर्ण कहते हैं, उसकी दृष्टि कर तो तू समकित आत्मधर्म को प्राप्त करेगा। ऐसा कहते हैं, इसलिए उन्होंने कहा उसमें तत्प्रमाण अन्दर गया और आत्मा की शान्ति और धर्म को समझा, तब उस वाणी को और उस ज्ञान को व्यवहार कहा जाता है। ऐसा है। कहो, समझ में आया?

'शिरसा' नहीं आया था? मस्तक से वन्दन करता हूँ, लो! कल... तो पाठ है न ऊपर, देखो! 'शिरसा समयमियं श्रुणुत वक्ष्यामि' देखो, शिरसा अर्थ में आ गया। शब्दार्थ में आया था न? हाँ, वह। वीतराग, मोह-राग-द्वेषरहित होने से, एक तो भगवान परमेश्वर एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में एक समय में समय-समय में सम्पूर्ण स्वभाव समय-समय में सम्पूर्ण भाव जान रहे हैं। अभी स्वीकार तो करे उसे, अभी खबर क्या है? आहाहा!

परमेश्वर, जिन्हें सर्वज्ञपना है, ऐसा ही यह आत्मा है। यह आत्मा था वही स्वयं परमात्मा हुआ है। उस आत्मा को सर्वज्ञपना परमेश्वर अरिहन्त को कैसा है कि समय-समय में सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग। सेकेण्ड-बेकेण्ड अपने नहीं होते। सब पुराने लोग ऐसा कहते हैं। परन्तु किस प्रकार समझाना? अन्तर्मुहूर्त कितना? तो कहे चौबीस मिनिट जितना। दो घड़ी कितनी? अड़तालीस मिनिट अर्थात् दो घड़ी। एक घड़ी चौबीस मिनिट जितनी। अंग्रेजी शब्द है। लो! समझ में आया? अन्तर्मुहूर्त दो घड़ी के अन्दर अर्थात् क्या? अड़तालीस मिनिट के अन्दर। दूसरा क्या कहूँ? समझ में आया? यह समझे नहीं तब क्या कहना? अड़तालीस मिनिट-दो घड़ी। परन्तु घड़ी अर्थात् उसमें काल कितना जाता है? ऐई! भगवानजीभाई! परन्तु वह तो इसे समझाना है न? सेकेण्ड, मिनिट सर्वत्र यही बात है। (कोई पूछे कि) कितने बजे? तो कहे, तीन में पाँच कम। ऐसा ही बोले। कितने बजे हैं? तीन और पाँच। एक-एक व्यक्ति को अंग्रेजी तो (आती) हो न? अंग्रेजी से तीन में पाँच कम, ऐसा बोला जाता है। और वह बोला जाता है तीन और पाँच, यह अपनी भाषा है। परन्तु कम का अर्थ न्यून है अर्थात् कम कहते हैं। ऐसे नहीं तो तीन में पाँच कम, ऐसा कहते अपने भाई। तीन में पाँच ओछी। यह अपना गुजराती का शब्द है। उसमें (अंग्रेजी में) पाँच कम (कहते हैं)। कम, यह शब्द अंग्रेजी का आ गया। लो! परन्तु यह तो ऐसा शब्द सब प्रयुक्त हो गये हैं वे।

कहते हैं, ओहो! प्रतीति तो कर! तुझे भरोसा नहीं आता कि परमेश्वर कैसे हैं। यह आत्मा ऐसा ही है, इतने परमेश्वर आत्मा में से प्रगट हुए हैं। आहाहा! कैसे हैं परमेश्वर? 'अप्पा सो परमप्पा' आत्मा, वही शक्ति से परमात्मा है। जो परमात्मा हुए, वे प्रगट हो गये। एक समय-समय में, समय में समय में अर्थात्? छोटे में छोटा काल, जिसके दो भाग नहीं होते। एक समय-समय में सम्पूर्ण जानपना। एक समय में सम्पूर्ण, दूसरे समय में सम्पूर्ण, तीसरे समय में सम्पूर्ण। ऐसा आत्मा, उसे स्वीकार कराते हैं। देख तो सही! निर्णय तो कर तुझे, तू इतना है। आहाहा!

समय-समय में यहाँ अन्दर में इतना ही है। एक समय में उसका अन्तर ज्ञान पूर्ण को जाने—स्व-पर को, ऐसा उसका स्वभाव, उसकी ताकत है। वह तेरी शक्ति ही इतनी है। वह परमेश्वर को प्रगट हो गयी है। समझ में आया? वह तिल में तेल था, वह बाहर

निकला, तेल तो वही है। खल निकाल डाले, खल तो जो तेल है, वह तो वही है। खल कहते हैं न? हमारे गाँव में खल कहते हैं। खल, यह लो खल। खल अर्थात् दुष्टाई। आत्मा में से पुण्य-पाप के विकार की दुष्टाई निकाल जाये तो अकेला तेल रहे, ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा रहे, ऐसा। जैसे वह तेल रहे। खल समझे न? गाँव में किसान ऐसा उसे खल बोलता है। खोळ के बदले खल बोले। कहा, ठीक यह भाषा उसे कुछ खल की खबर नहीं हो, खल का अर्थ। खल अर्थात् वास्तव में तो दुष्टाई। उसमें से दुष्टाई निकल गयी तो अकेला तेल रह गया। ऐसा यह तेल में ढेबरा तले जाते हैं। कहीं तिल में तले जाते होंगे?

इसी प्रकार आत्मा में जो पुण्य-पाप के विकाररूपी खल है, उसे निकाल डालने से अकेला आत्मा रहे, वह ज्ञान और आनन्द की मूर्ति है। आहाहा! अरे! इसे विश्वास कहाँ से आवे इतना मैं, इतना मैं? और रंक हो, एक बीड़ी बिना चले नहीं, तम्बाकू बिना चले नहीं। जरा सा अपमान हो वहाँ कलेजा अन्दर से छिद जाये। आहाहा! भगवानजीभाई! यहाँ उसे दाह हो। सळ.. सळ.. सळ.. झनझनाहट होती हो न? अपमान हुआ और विचारा हुआ नहीं हुआ। ऐसे मरने पड़े कि क्या पहले अन्दर सुलगे ऐसे अन्दर में, यहाँ सुलगे पहले अन्दर में, फिर उलझन में आ जाये कि क्या मार्ग निकालना? पश्चात् मरे या अग्नि जले। बहुत से केरोसिन छिड़कते हैं। हाय! हाय! घर का विचारा हुआ नहीं, किसी ने माना नहीं, मैं ऐसा कहता था। समझ में आया या नहीं?

लींबड़ी में कहा नहीं था? मामा को कहे, मामा! इस विवाह में दूधपाक बनाना रहने दो। क्योंकि पच्चीस-पचास लोग अधिक आयेंगे तो दूधपाक कन्दोई की दुकान पर तैयार नहीं मिलता। और उस समय कम पड़ा तो अपने कन्दोई की दुकान में तुम माँगो और दूधपाक लेकर नहीं आ सकेंगे। हलुवा बनाया हो और हलुवा कम पड़े तो नया दो मण, पाँच मण हलुवा एकदम बनाया जा सकता है। मामा ने विचारा नहीं किया। विचारा किया उसने—मामा ने विचारा किया। उसकी इज्जत गयी, रात्रि में मर गया। जिसका विवाह है, उसके घर के लड़के का या लड़की का विवाह था। मर गया। वीसाश्रीमाली का बड़ा घर। यह पहली अन्दर से झनझनाहट हो, जले अन्दर से। आहाहा! विचारा हुआ हो नहीं, फिर सुलगे। घासलेट छिड़के या जहर खाये। समझ में आया?

इसी प्रकार आत्मा में पहले यह जलहल जागृत ज्योति अन्दर श्रद्धा में से जगे। चैतन्यमूर्ति आत्मा पूर्णानन्द जलहल ज्योति। उस जलहल ज्योति में जागृत अकर्ता होने से सर्वज्ञ हो जायेगा। वह मर जाये और यह जीवन्त हो। समझ में आया? यह जीव के जीवत्व का स्वरूप ही इतना है। जीवन्त जीव का स्वरूप ही इतना है। आहाहा! समझ में आया? चेतन ही इसके प्राण कहे हैं। यह तुम्हारे मुफ्त के जड़ के यह तो मिट्टी है। ऐसा होकर टूटेंगे। आहाहा!

अभी दृष्टान्त दिया था। बीस वर्ष का लड़का हो, दो वर्ष का विवाहित हो और मुम्बई का पानी लगा हो या ऐसा कुछ हुआ हो, आठ महीने-वर्ष पैसा खर्च करने में बिताया हो। दस-बीस-पच्चीस हजार खर्च किये हों। रात्रि जागरण करना पड़ा हो। खाट से उतरता न हो, उठता न हो, उसमें मर जाये। फिर महिलायें रोवे। यह हमारी चाकरी व्यर्थ में गयी रे! ऐसा महिलायें रोती हैं न? ऐई नवनीतभाई! हमारे समझे न? ऐसा कुछ बोले, अपने तो भूल गये। यह तो और भरे घर में से, परन्तु हमने चाकरी की, यह किया। बापू! बेटा! सब किया हमारा कुछ फला नहीं रे! ऐसा वापस रोवे। भोगीभाई! अब तुझे कितने दिन यहाँ रहना है? सुन न! रोनेवाले को किसलिए रोता है तू? रोनेवाला भी कहाँ रहनेवाला है? तू यहाँ रहनेवाला है? तूने किसकी लगायी है? तेरा कर न! आहाहा!

अवसर चला जाता है, देखो न? देखो भरा घर, पैसा, इज्जत, कीर्ति, स्त्री, पुत्र, आहाहा! क्या हुआ? हार्टफेल हुआ। एक सेकेण्ड में गया। हाय! हाय! वह तो उसकी स्थिति पूरी हो तो जाये। आत्मा कहाँ नाश हो, ऐसा है। आत्मा तो सर्वज्ञपना प्रगट करे, ऐसा जीव का जीवत्व है, ऐसा कहते हैं। देखो, भगवान को बतलाया तो उसका अर्थ तुझे बतलाया है कि तू इतना है। आहाहा! समझ में आया? अरे! यह कैसे जँचे?

भाषा क्या की, देखो! कहते हैं, **आप्त द्वारा उपदिष्ट होने से सफल है।** कहो, समझ में आया? हें? नीचे है, यह नीचे है। देखो। आप्त=विश्वासपात्र, प्रमाणभूत, यथार्थ वक्ता। सर्वज्ञदेव समस्त विश्व को। सर्वज्ञदेव, एक बात; परमेश्वर और समस्त विश्व को सब चीज़ों को और प्रत्येक समय में और सम्पूर्ण रूप से। समझ में आया? एक तो सर्वज्ञदेव की पर्याय ली, समस्त विश्व सामने लिया। उसे एक-एक समय में सब जानते हैं और वह

पूरा-पूरा जानते हैं। यह वीतराग (मोह-राग-द्वेष) रहित हुए। पूर्णानन्द सर्वज्ञदशा प्रगट हुई। ऐसा होने से तुमको असत्य कहने का लेशमात्र प्रयोजन रहा नहीं। इसलिए वीतराग सर्वज्ञदेव वास्तव में आप्त हैं। वे पुरुष विश्वासपात्र हैं। विश्वास के पात्र हैं। यह शब्द उनके निकले, वे प्रमाणभूत हैं, ऐसा कहते हैं।

ऐसे आप्त द्वारा आगम उपदेश में आया होने से वह (आगम) सफल है। लो! ऐसे परमेश्वर विश्वासपात्र को योग्य होने से उनके कहे हुए आगम उपदेश में आये होने से वे (आगम) सफल है। आहा!

अब कहते हैं। वहाँ **उसका आप्त द्वारा उपदिष्टपना इसलिए है कि जिससे वह 'श्रमण के मुख से निकला हुआ अर्थमय' है।** लो! वहाँ उसका आप्त द्वारा उपदिष्टपना इसलिए है, ऐसा। कि जिससे वे श्रमण के मुख में से निकले हुए अर्थमय है। मुँह में से निकले हुए। भाषा समझ आये न वह पूरे में से ध्वनि उठती है। समझ में आया? असंख्यप्रदेश से ओमध्वनि निकलती है। ओमकार आता है न? 'ओमकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' ओमध्वनि। तथापि यहाँ इस जाति का वाच्य लिया है। समझ में आया?

कहते हैं, ऐसे आप्त द्वारा आगम होने से आगम सफल है। सर्वज्ञ परमेश्वर की वाणी निष्फल नहीं। आहाहा! ऐसा करके वह वाणी सुने, उसे आत्मा के ज्ञान का फल आये बिना नहीं रहता। ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? परमेश्वर ने कहे हुए आगम जो श्रवण करता है, वह अर्थसमय को बतलानेवाली उनकी वाणी सफल है। आहाहा! समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा न? 'जदि दायेज्ज' बताऊँ तो अनुभव करना, प्रमाण करना। अनुभव करके प्रमाण करना। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि वाणी सफल है। परमेश्वर की वाणी जिसके कान में पड़ी, पड़ी यथार्थरूप से, उसका फल आत्मज्ञान आये बिना नहीं रहता। आहाहा! समझ में आया?

श्रुत नहीं, श्रुत किया नहीं। ऐसा कहते हैं। श्रुत करे तो उसे सफल है। आहाहा! स्वसन्मुख होकर उसे आत्मा का सफलपना प्रगट होता है और ऐसा करने से आगे बढ़ते हुए वह भी सर्वज्ञ जैसी दशा को (प्राप्त) होता है, ऐसा आगम का सफलपना है। आहाहा! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर की वाणी सफल है। वह वाणी सुनकर, उसका यथार्थ ज्ञान

करे तो उसे आत्मज्ञान हो और सम्यग्दर्शन हो और स्थिर होकर केवलज्ञान पाकर मोक्ष में जाये। ऐसी उनकी वाणी सफल है।

आप्त द्वारा उपदिष्ट होने से सफल है। ऐसा कहा है न? मूल तो इसमें आप्त द्वारा आया होने से सफल है, परन्तु उसका अर्थ यह है। **'श्रमण के मुख से निकला हुआ अर्थमय' है।** निकले हुए अर्थमय, अब आता है। उसे आप्त द्वारा कहने में इसलिए आया है कि जिससे श्रमण के मुख में से निकले हुए अर्थमय पदार्थ। जगत का जो पदार्थ स्वरूप है, उसे बताते हैं।

'श्रमण' अर्थात् महाश्रमण—सर्वज्ञवीतरागदेव; और 'अर्थ' अर्थात् अनेक शब्दों के सम्बन्ध से कहा जानेवाला, वस्तुरूप से एक ऐसा पदार्थ,... सब सब होकर पदार्थ है न? वस्तुरूप से एक ऐसा पदार्थ। जगत के पदार्थ हैं, 'है' सब यह। ऐसा कहनेवाली भगवान की वाणी है। **(उसकी-समय की) सफलता इसलिए है...** देखो अब आया। उसका (समय का) सफलपना इसलिए है कि जिससे वह समय अर्थात् सिद्धान्त नारकीपना, अहो! नरक की गति नीचे है। माँस, शराब, खाने (पीने वाले) मरकर नरक में जाते हैं। यह बड़े राजा-महाराजा होते हैं न, वे सब मछलियाँ खाये, माँस खाये, हिरण को मारे, झपाटा बोलावे शिकार यहाँ करो। आहाहा! जामनगर के रणजीतसिंह थे न? एक ब्राह्मण की जंगल में झोंपड़ी थी। वहाँ उस कुंजरा (पक्षी) को मारने गये। वह कुंजरा नहीं आता? अपने कम आये हैं। इस बार दाना-बाना... गये, फिर आये। बहुत थोड़े आये हैं। नहीं तो कार्तिक-मगसिर महीने में कुंजरा आते हैं। पक्षी नहीं कूं..कूं करते हजारों आवे। इस बार.... गया दिवाली पहले..... गया। थोड़े आये हैं। उन कुंजरा मारने राजा गये थे। ऐसे कितने ही मारे तो ब्राह्मण ने इतना कहा, साहेब! हम ब्राह्मण हैं, हमारी झोंपड़ी के निकट मारना नहीं। मार डाले। उठाव। हें? अर र र! गजब किया न!

निरोगी शरीर हो, राजा का अभिमान हो, करोड़ रुपये का तालुका हो। अरे! तू मर जायेगा! सुन न अब! मर गया, बापू! यह तो वह उसने कहा था। पश्चात् सागराणा एक बार गये थे। सागराणा उसके पास गये। राजा! यह सब पाप! अरे महाराज! हम क्षत्रिय हैं। इस हाथ से करेंगे और इस हाथ से भोगेंगे। अरे! मर जायेगा! अर र र! कुकर्म! क्षत्रिय डरे

नहीं। अरे, बापू! मर जायेगा तब खबर पड़ेगी। अभी नरक में चिल्लाहट मचाते होंगे। अपमान किया तो मर गया। वायसराय ने अपमान किया था। वायसराय ने तो कितने ही पैसे खर्च किये हैं। तीन दिन में बीस-पच्चीस लाख खर्च किये। डेढ़-दो लाख का तो दस्त जाने के लिये एक पायखाना बनाया था। उसमें जहाँ अवसर आया, स्वयं बोलने गये, भाई! राजा के पैसे को, ऐसा बोलने गये, वहाँ तुम्हारी अंग्रेजी भाषा है। हाय! हाय! यह राजा का मान-मान! यह भाई उलहाना लग गया, फिर उसमें मर गया। अपमान... अपमान... अपमान। समझ में आया? आहाहा!

मर गया, वहाँ ही मर गया है। कहाँ तेरा जीवत्व था! उस ब्राह्मण को कहा उठा, डाल मोटर में। हाय! हाय! हमारी झोंपड़ी के पास मारना नहीं, (ऐसा कहा वहाँ तो कहे) उठा। आँखें स्थिर हो गयी होगी। आहा! अरे, बापू! तू कहाँ जायेगा? वहाँ तू चिल्लाहट मचायेगा तो भी तेरा रोना कोई सुनेगा नहीं। आहाहा!

कहते हैं, यह आगम कैसा है कि नारकीपना मिटा दे। यह परतन्त्र के भव मिटा दे। आहाहा! भवरहित और भव के भावरहित चीज़ आत्मा, उसे यह बतलानेवाली चीज़ है। और यह आगम इस प्रकार परम्परा मोक्ष का कारण है। नारकत्व, तिर्यंचत्व-ढोरपना, यह देखो न? कीड़े, कौवे। आहाहा! यह कच्छ में दुष्काल जैसा कितना हुआ। गायों को ऐसा, छप्पनिया में देखा था छप्पनिया में। छप्पन में दस वर्ष की उम्र (थी) ५६ में। कुकर्म वर्ता है। सौ-सौ गायें, हों! ग्वाला खड़ा हो। गायों को दो-दो, तीन-तीन दिन से घास न हो। फिर कम्बल गाय के ऊपर डालकर रोवे। एक ओर गायें आँख में से रोती हो। छप्पन की बात है। पश्चात् तो बहुत (वर्ष) बीत गये। परन्तु अपने छप्पन के वर्ष दस वर्ष की उम्र थी। परन्तु वे गायें खड़ी हों तीन-तीन दिन की भूखी हों। स्वयं ग्वाला न खाये। अरे रे! हमारी गायें भूखी हैं। कहीं घास, तिनका नहीं मिलता। गाय के ऊपर कम्बल डालकर रोवे। भूख की मारी गायें रोती हों। आहाहा! यह देखो न संसार के दुःख! उसे आकुलता होती है, वह दुःख है। बाहर का दुःख तो निमित्त है।

भगवान आनन्दस्वरूप है, उसे भूलकर मुझे होता है, ऐसी मान्यता और मिथ्यात्वभाव, वह दुःख का कारण है। उस मिथ्यात्व और पराधीनता को मिटानेवाली वीतराग की वाणी

है। समझ में आया? जिसने भव का अभाव किया है, उनकी वाणी में भव के अभाव का स्वरूप (आता है), यह ऐसा कहते हैं। आहाहा! बापू! यह भव, यह शरीर अवसर है, भाई! वाणी, शरीर, भाई! यह तो जगत की चीज़ जड़ है। प्रभु! तू तो आत्मा है न! आहाहा! तू उस रूप हो तो पृथक् कैसे पड़े? यह तो एक क्षण में, आहाहा!

एक ओर स्त्री रोती हो। हाय रे! कुँए में उतारकर रस्सी काटी। ऐसे रोवे। महिलायें रोती हैं या नहीं? अपने तो पहले सुना हुआ है। वह कुँए में होता है न? उसमें उतारे। फिर ऊपर से काटे और पड़े नीचे। ऐसा बोले। हमारे घर में ही हुआ था न? हमारे बड़े भाई सत्तावन में गुजर गये। सत्तावन में खुशालभाई से बड़े भाई थे, (वे) गुजर गये। ग्यारह वर्ष की उम्र। उनका आठ वर्ष का विवाहित। एक लड़का.... जयन्ती। फिर महिलायें रोती। आहाहा! हमारे से देखा जाये नहीं। लड़कों को कहे, जाओ, चले जाओ। मामी के यहाँ चले जाओ। मेरे मामा गाँव में थे न! मामी के यहाँ चले जाओ। आहाहा! वह देखा है, वह अभी नजरों में दिखता है, लो! हमारे सबसे बड़े भाई थे। बहुत रूपवान थे। फिर पानी लग गया। अन्त में मरने की स्थिति। एक ओर अन्दर बहू रोवे। एक ओर मेरी माँ बाहर रोवे। मेरे पिताजी नहीं थे। वे बाहर परदेश में थे। लड़के भी चले जायें। आहाहा!

देखो! यह जगत की पराधीनता। इस पराधीनता को मिटानेवाली वीतराग की वाणी है। वीतरागभाव से निकली हुई यह वाणी वीतरागभाव को बतानेवाली है। हाँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवानजीभाई! उस समय देखा जाये नहीं, हों! लड़कों को भी रुदन आवे, वे रोवे-रोवे। स्तम्भ था न, आहाहा! क्या होता है? तब ग्यारह वर्ष की उम्र थी। छप्पनिया के पश्चात् सत्तावन की बात है। यह संसार बापू दुःख है। दुःख किसका है? उस अज्ञानभाव का, हों! उस अज्ञान को मिटानेवाली वीतराग की वाणी के शब्द हैं। उससे समझे और उससे समझकर जब मोक्षमार्ग करे तो उसका मोक्ष हुए बिना रहता ही नहीं।

ढोरपना, मनुष्यपना, देखो न! निर्धन और मनुष्य के बेचारे। आहाहा! मनुष्यपना, लो! कैसे दुःखी! एक छप्पनिया की याद थी। छप्पनिया (दुष्काल)। हमारे साथ किसान रहे। उसका साला था। मैं जहाँ, वहाँ लड़के घूमने गये, वहाँ सीढ़ियाँ हैं, वहाँ वह एक ओर आसन डालकर सोता और कोहनी उस ओर डाल गया। गाड़े में गाँव में से लाया होगा।

शरीर सूख गया। आहार मिले नहीं। ऊपर चढ़ने को सीढ़ियाँ नीचे बैठा था। चढ़ सके नहीं। कहा, कौन होगा? यह तो तुम्हारे साथ रहता है, उसका साला है। आहाहा! कौन उसे ले जाये? एक कदम सीढ़ियाँ भी चढ़ सके नहीं। शरीर जीर्ण हो गया। आहार न मिले, पानी न मिले। देखो, यह मनुष्य के दु:ख! देखो! पर की पराधीनता, पराधीनता।

ऐसे मनुष्यपने का भव और देवस्वरूप भव। उस देव में भी आकुलता और दु:ख का पार नहीं होता। समझ में आया? बड़े देव को देखकर जले। नौकर हो, वह वहाँ बड़ा हो और स्वयं सेठ हो, वह वहाँ छोटा (हो)। ऐसा शास्त्र में लेख आता है। समझ में आया? श्वेताम्बर में ऐसा लेख आता है। देव ऐसे आते-जाते थे। तो वह देखकर हाय! हाय! यह तो मेरा नौकर था! यह हुआ सेठ और यह बड़ी ऋद्धि लेकर गया होगा, ऐसी कुछ बात है। भूल गये। वापस एकदम कहने आवे। सेठ की बात है, कथाओं की बात है। बहुत कथायें पढ़ी नहीं परन्तु सुनी हुई है। उसमें आता है न एकदम स्वयं तैयार होकर पहले वहाँ पहुँच गया। मेरा मान जाता है। जलन... जलन... जलन...। देव में भी चैन नहीं। ईर्ष्या अग्नि से जल रहे हैं। ऐसे यह **देवत्वस्वरूप चार गतियों का निवारण' करने के कारण...** सफल है, ऐसा कहना है। आहाहा!

देखो! भगवान की वाणी चार गति का अभाव करानेवाली है। देवगति प्राप्त कराकर उसमें रुकावे, ऐसा वाणी में है नहीं, ऐसा कहते हैं। हें? आहाहा! चारों गति दु:खदायक है। नीचे नरक की, यह मनुष्य की और यह पशु की तथा यह देव की। चारों का निवारण करने के कारण यह वीतराग के आगम सफल हैं। कहते हैं, सफल है। आहाहा! और **शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धिरूप 'निर्वाण का परम्परा से कारण' होने के कारण...** लो! चार गति का अभाव करानेवाला और शुद्धात्मतत्त्व भगवान आत्मा में अन्दर पवित्र आनन्द का धाम प्रभु है। उसका अनुभव अर्थात् मुक्ति परम्परा से निर्वाण का कारण है। परम्परा से कारण है न? सम्यग्दर्शन, वह कारण है और सम्यग्दर्शन का शास्त्र निमित्त है, ऐसा। शास्त्र भगवान की यह ही वाणी सम्यग्दर्शन में निमित्त है और सम्यग्दर्शन साक्षात् मोक्ष का कारण है। इसलिए वाणी परम्परा से कारण है। किस प्रकार सिद्ध किया है? समझ में आया? अरे, जिसे सुनने का योग मिले, वह सुने नहीं। समय मिले नहीं, यह ले नहीं, अब इसका क्या होगा? समझ में आया?

'निर्वाण का परम्परा से कारण' होने के... परम्परा, समझ में आया? सम्यग्दर्शन पावे, वह आत्मा के आश्रय से पावे, वह सम्यग्दर्शन मोक्ष का कारण। उसका कारण-निमित्तकारण वाणी, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! 'चार गति दुःख से डरी...' आता है न? इसे दुःख में चैन लगता है। कुछ सुविधा हो न तो चैन लगता है। कुछ पैसा हो न, शरीर ठीक हो न, स्त्री ठीक हो न, लड़के आज्ञाकारी हो न। (और कहे कि हम) सुखी हैं। धूल में भी नहीं, सुन न अच्छा!

पराधीन दुखिया है और वे सब तो स्वार्थ के पुतले हैं।

मुमुक्षु : स्वयं भी स्वार्थ का पुतला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह भी स्वार्थ का पुतला है, उसके लिये। आठ महीने, वर्ष दो वर्ष, पच्चीस वर्ष का जवान लड़का हो और बह गया हो, अब तो यह मिट्टी छूट जाये तो अच्छा।

मुमुक्षु : दुःख से छूट जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख से छूटे क्या? हमारे यह रात्रि जागरण करना पड़ते हैं, उनसे छूटेंगे। ऐसा कहते हैं। बोला ऐसा जाता है। समझ में आया? ऐई! यह तो मैंने ताराचन्दभाई के यहाँ देखा था, हों! तुम्हारे ताराचन्दभाई जोबालिया, नहीं? ऐई! उसका सोमचन्द का लड़का था मगन। खबर है? यह तो बहुत वर्ष की बात है। तब तक हम वहाँ थे। वे सोमचन्दभाई थे न हमारे, उनके घर में बहिन थी न, वह हमारी भानेज थी, सन्तोकबा। इसलिए फिर ताराचन्दभाई आवे। फिर कहे, यह लड़का दुःखी होता है! रात्रि जागरण करना पड़ता है। कब मर गया? खबर नहीं थी ऐसा लड़का मर गया? तुम सो गये थे? कोई जगता नहीं था? ऐ... संजय! ऐसा का ऐसा सुलगता है। जगते नहीं थे? ऐसा जवान लड़का! यह कोई लकड़ा फटा है? यह क्या हुआ है? कोई जागता नहीं था? हाय! हाय! नम्बर से दो-दो व्यक्तियों को जागना पड़े। दो-दो व्यक्तियों में से एक व्यक्ति को झोंका आता हो तो? फिर वापस ऐसा बोलते थे, यह तो छूटे तो अच्छा। वापस ऐसा बोलते थे, लो! यह मगनभाई के लिये बोलते थे, मगन। फिर उसकी बहू चली गयी थी न? किसी के साथ। कहो, समझ में आया?

वहाँ आहार लेने गये थे। हाँ, यह तो सब खबर है। वहाँ आहार लेने जाते न, हम ठेठ यह तो पचास वर्ष (पहले) की बातें हैं। आहाहा! उसके पिता का पिता कहे, यह मिट्टी छूटे तो अच्छा। लो! ऐ भगवानजीभाई! क्योंकि, यह बचेगा तो जितने दिन खिचेंगे उतने पैसे का खर्च होगा। सगे-सम्बन्धी आवे उन्हें रोटियाँ भी ठीक से देनी पड़े न? यह सब स्वार्थ के पुतले हैं। ऐई! सच्चा होगा? यह हीराभाई तो...

मुमुक्षु : बाप स्वयं ऐसा है, फिर दूसरे की क्या बात करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम भी ऐसे और हीराभाई भी ऐसे, ऐसा यहाँ तो कहते हैं।

कहते हैं, अरे! भगवान की वाणी, एक तो चार गति के निवारण का कारण है; इसीलिए वाणी सफल है। आहाहा! कहते हैं कि भव ही नहीं। भव का उत्पन्न होना, वह भगवान की वाणी में ही नहीं। आहाहा! वीतरागपने का भाव, उसमें कोई भव नहीं हो सकता। आहाहा! **शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धिरूप 'निर्वाण का परम्परा से कारण' होने के कारण परतन्त्रता निवृत्ति जिसका लक्षण है...** लो! ठीक! चार गति। परतन्त्रता चार गति में जन्मना कलंक है। प्रभु महा आनन्द का पिण्ड, प्रभु! चार गति का अवतार परतन्त्रता है। आहाहा! इसे जँचे कैसे? इसे कुछ मजा लगे। उसमें कुछ पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़ रुपये हों, हो गया। मैं चौड़ा और गली सकरी। मर गया है परन्तु सुन न अब! यह रंक-भिखारी है! यह चाहिए और यह चाहिए और यह चाहिए। पराधीन... पराधीन... पराधीन। समझ में आया?

कहते हैं, यह **परतन्त्रता निवृत्ति जिसका लक्षण है और स्वतन्त्रता प्राप्ति जिसका लक्षण है...** अस्ति-नास्ति की। चार गति परतन्त्रता की निवृत्ति है और यह स्वतन्त्रता मोक्ष की प्राप्ति है। कथंचित्-फथंचित् यहाँ नहीं होता, कहते हैं। यहाँ (तो अज्ञानी) सिद्ध को भी जरा परतन्त्र है। लो!

मुमुक्षु : आगे जाया नहीं जाता न?

पूज्य गुरुदेवश्री : आगे नहीं जाया जाता, वह तो अपनी योग्यता की स्वतन्त्रता है। यहाँ तो पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति जिसका लक्षण है। स्वतन्त्रता प्राप्ति जिसका लक्षण है। सिद्ध भगवान भी ऊपर नहीं जा सकते, इसलिए परतन्त्र हैं। धूल भी नहीं। अनेकान्त नहीं हो

सकता। यह अनेकान्त हुआ। परतन्त्रता की निवृत्ति और स्वतन्त्रता की प्राप्ति। आहाहा! भव ही नहीं मिलते। और परतन्त्रता का अंश भी नहीं होता और स्वतन्त्रता की अपूर्णता नहीं होती। स्वतन्त्रता की पूर्णता मोक्ष। चार गति से छूटे और आत्मा की पूर्णता प्राप्त हो। **ऐसे फल सहित है।** लो! ठीक। नीचे है न? चार गति का निवारण (अर्थात् परतन्त्रता की निवृत्ति), ऐसा। और निर्वाण की उत्पत्ति, ऐसा। वह व्यय और यह उत्पाद। (अर्थात् स्वतन्त्रता की प्राप्ति) वह समय का—शास्त्र का फल है। इस वीतराग की वाणी का यह फल है। उसमें कहीं स्वर्ग मिले और अमुक मिले और अमुक मिले, यह वीतराग की वाणी का फल नहीं है। यह तो बीच में राग आवे, उसका फल है। समझ में आया? आहाहा! गजब बातें, भाई! ऐई रमणीकभाई! ऐसा सुहाता नहीं परन्तु बराबर है? जरा दुकान ठीक न चले तो ऐसा... ऐसा हो जाये। बेचारा... यहाँ बदलाना, यहाँ बदलाना। वहाँ बदलावे तो वहाँ वापस चैन नहीं मिलता। हैं? आहाहा!

एक क्षण में चला जायेगा। शरीर शरीर की जगह, स्त्री स्त्री के ठिकाने। पूरा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव बदल जायेगा। आहाहा! सब क्षेत्र बदले, काल बदले, भाव बदले। भव भी दूसरे हो जायें, इसे खबर भी नहीं कि यह क्या है भाई! ऐसा भगवान शुद्धात्मस्वरूप की प्राप्ति का कारण वीतराग की वाणी है। वीतरागसर्वज्ञ के अतिरिक्त यह ऐसा स्वरूप कोई दूसरे में नहीं हो सकता। समझ में आया?

भावार्थ :- वीतरागसर्वज्ञ महाश्रमण के मुख से निकले हुए शब्दसमय को कोई आसन्नभव्य (जीव) पुरुष सुनकर,... देखो! जिसके संसार का किनारा निकट है, मोक्ष के पाटण जाने की तैयारियाँ हैं। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ महाश्रमण। देखो, अरिहन्त को भी महाश्रमण कहा है। श्रमण नहीं कहलाते, ऐसा नहीं है। कहलाते हैं न श्रमण, परन्तु यहाँ तो महाश्रमण। महा साधक होकर पूर्ण दशा प्राप्त की है। महाश्रमण के मुख से निकले हुए। **शब्द समय को...** वीतराग की वाणी को **कोई आसन्नभव्य...** जिसकी योग्यता मोक्ष के लिये नजदीक है। ऐसे **पुरुष सुनकर, उस शब्दसमय के वाच्यभूत...** वह शब्दसमय तो वाचक शब्द हैं। उनमें कहे हुए भाव **पंचास्तिकायस्वरूप अर्थसमय को जानता है...** पंचास्तिकाय जो जगत के पदार्थ, उन्हें पदार्थरूप से समय को जानता है। **और उसमें आ जानेवाले शुद्ध जीवास्तिकायस्वरूप अर्थ में...** लो!

स्व को जाने, उसमें इकट्ठा जीवास्तिकाय अपना आया या नहीं ? अपना जीवास्तिकाय तो भगवान ने यही कहा है कि शुद्ध जीवास्तिकाय वह तू ही है। रागादि और पुण्यादि, वह शुद्ध जीवास्तिकाय में नहीं है। ऐसे भगवान की वाणी में ही आया था। छह द्रव्य का जहाँ कथन किया, उसमें शुद्ध जीवास्तिकाय तेरा आत्मा भी इकट्ठा आ जाता है।

वीतराग निर्विकल्प समाधि द्वारा स्थित रहकर... लो ! वीतराग निर्विकल्प समाधि, राग के विकल्प बिना की आनन्द की समाधि जिसमें अन्तर एकाग्र होने से आनन्द का उफान आता है। जिसमें आनन्द की धारा वर्ते। राग-द्वेष में आकुलता की अग्नि जलती है, उस आकुलतारहित निर्विकल्प स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र में रमते हुए **समाधि द्वारा स्थित रहकर....** समाधि अर्थात् निर्विकल्प मोक्षमार्ग। देखो, निर्विकल्प समाधि में निश्चयमोक्षमार्ग एक ही कहा। हें ? व्यवहारमोक्षमार्ग कहा और उसके द्वारा होगा, ऐसा नहीं कहा। वह तो राग हुआ। राग से तो बन्धन और गति मिलती है। वह मार्ग नहीं है। आहाहा !

वीतराग निर्विकल्प समाधि (शान्ति) द्वारा स्थित रहकर चार गति का निवारण करके,... ओहो ! चार गति का अभाव करके और यह उपाय भी कहा। **वीतराग निर्विकल्प समाधि द्वारा स्थित रहकर....** यह मार्ग। शुद्ध जीवस्वरूप भगवान आत्मा में सम्यग्दर्शन -ज्ञान-चारित्र, वह निर्विकल्प समाधि-शान्ति, उसके द्वारा प्राप्त करके **निर्वाण प्राप्त करके, स्वात्मोत्पन्न,...** आत्मा में से जो आनन्दस्वभाव था, वह पर्याय में उत्पन्न हुआ। चार गति का व्यय हुआ और आनन्द की पूर्ण प्राप्ति हुई। अनाकुलता लक्षण, जिसमें आकुलता बिल्कुल नहीं। भगवान आत्मा का अनाकुल शान्त स्वभाव, उसे—अनन्त सुख को प्राप्त करता है। वह बेहद आनन्द को प्राप्त करता है। कहो, समझ में आया ?

अब ऐसे दुःख सहे नहीं जाते, ऐसी चिल्लाहट मचाये। बहुत दुःख आवे न तब। आहाहा ! यह सब दुःख पराधीनदशा के हैं। उसे वीतराग की वाणी छुड़ाती है। समझ में आया ? इस कारण से द्रव्यागमरूप शब्दसमय नमस्कार करने के, अब सिद्ध करते हैं। इस कारण से सर्वज्ञ परमेश्वर के मुख से निकली हुई वीतराग की वाणी। समझ में आया ? देखो, आगम की बात।

पण्डित फूलचन्दजी को जब गयी, तब उसने लिखा था न? यह वाणी देव है, यह वाणी गुरु है, यह वाणी जो कोई समझे, भाई! उसने लिखा है। गुरु के गुरु हैं। यह समयसार, प्रवचनसार, नियमसार।

मुमुक्षु : बहुत प्रमोद बताया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत प्रमोद बताया है। ऐसा परमागम होवे तो कौन प्रसन्न न हो? यह तो देवों का देव वाणी है। गुरु का गुरु है। समझ में आया? आहाहा! वस्तु है न वस्तु। व्यवहार है न ऐसा! विकल्प उठता है न ऐसा, व्यवहार है। बहुमान है। समझ में आया? ऐसे निश्चयसहित दो नय की स्थापना करते हैं। निश्चय स्व के आश्रय से है और पर के विनय आदि का भाव होता है, वह व्यवहार का ज्ञान कराते हैं। वह ज्ञान छोड़कर अकेला निश्चय हो, ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया?

यह शब्दसमय भगवान की वाणी। लो! वह कहता है कि भगवान की वाणी नहीं। गुरु की वाणी है। हमारी वाणी तीर्थंकर की। और यहाँ ऐसा कहता था, यहाँ बैठा था। यहाँ आया था न? १९९९ के पौष महीने में (संवत्) १९९९ की बात है। यह वाणी गुरु की है। समयसार। क्या नाम तुम्हारा? दर्शनविजय। भव्य है या अभव्य, निर्णय किया है? तुमको गुरु की वाणी की परीक्षा हो गयी? खींच गये हैं वे। भव्य है या अभव्य? निर्णय किया है? वह कहता था भगवान जाने? बस, आ गया। अभी भव्य-अभव्य के निर्णय का ठिकाना नहीं होता और वीतराग की वाणी कैसी होती है, उसका निर्णय करने जाये! फिर तो बदले। नहीं, नहीं। अब तो हो गया, यह तो आ गया, कहा। हें? बापू! वीतराग की वाणी अर्थात् क्या? सन्तों की वाणी की परीक्षा करनेवाला कैसा होगा? आहाहा!

जिसमें अकेली वीतरागता झरती हो, वह सन्तों की और तीर्थंकरों की वाणी होती है। जिसमें कहीं राग के एक भी अंश का स्थापन आदर के लिये हो, ऐसा नहीं होता। बतलाने के लिये हैं। इस जगह यह होता है, ऐसा होता है, ऐसा होता है। समझ में आया? इसमें पंचास्तिकाय में १७२ गाथा में कहा नहीं कि शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है। पूरा तात्पर्य वीतरागता है। अकेला भगवान वीतरागस्वरूप है, वही पर्याय में वीतरागता होती है। पर की उपेक्षा करके स्व की पूर्ण अपेक्षा करे, यह शास्त्र का तात्पर्य है। समझे न? बीच

में पुण्य बाँधे और यह बाँधे, इसलिए अच्छा है, ऐसा तात्पर्य है ? जाना हुआ प्रयोजनवान है, बीच में व्यवहार आता है। जानने के योग्य है, आदरने के योग्य नहीं। आहाहा! यह वीतराग की वाणी सर्वज्ञ परमेश्वर की हो, इसके अतिरिक्त दूसरा हो नहीं सकता। समझ में आया ?

और वह **नमस्कार करने तथा व्याख्यान करने योग्य है।** ऐसा। वही व्याख्यान करनेयोग्य है। दूसरे शास्त्र व्याख्यान करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? इसकी व्याख्या, इसका स्पष्टीकरण, इसके प्रवचन, इसके करनेयोग्य है और यह वाणी परिणमनेयोग्य है, यह वाणी कहनेयोग्य है। नमन करनेयोग्य है और कहनेयोग्य है। आहाहा! कैसी सरल बात की। लो! द्रव्य आगमरूप हो शब्दसमय। यह शास्त्र द्रव्य आगम है न ? शब्दसमय पुद्‌गल, वह नमस्कार करने के योग्य और व्याख्यान करने के योग्य है। उसकी इस वाणी को मन्दिर बनानेयोग्य है। ऐ नवनीतभाई! कैसा और यह! वाणी ऐसी है, बापू! अकेले हीरे जड़ते हैं। वीतराग की वाणी में समयसार, प्रवचनसार कोई भी मुनि के ग्रन्थ सब— दिगम्बर सन्तों की वाणी कोई अलौकिक है। कोई भी सन्त हों, द्रव्यसंग्रह हो, इष्टोपदेश हो। दिगम्बर सनातन वीतरागमार्ग के सन्तों ने जो कुछ कहा है, वह महापरमागम ही कहा है।

नियमसार में कहा है न, भाई! नहीं ? मेरे मुख में से परमागम झरता है। आहाहा! देखो, ले। पद्मप्रभमलधारिदेव। समझ में आया ? दूसरा क्या हो, मुनि के मुख में से वीतरागता झरती है। आहाहा! वे मुनि थे, आचार्य नहीं। अब उनको मान्य नहीं। कहे, कहते थे कि नहीं, वे नहीं। खटकता है न ? निरपेक्ष तत्त्व बताते हैं और वह खटकता है। व्यवहार मोक्षमार्ग होवे तो ही निश्चयमोक्षमार्ग होता है, ऐसा है ही नहीं, कहते हैं। निश्चयमोक्षमार्ग पर की अपेक्षा रखता ही नहीं। ऐसा निरपेक्ष बतावे तो उसको लगता है कि अरर! मेरा यह व्यवहार ? तेरा व्यवहार कहाँ था। तेरा व्यवहार मानने से मिथ्यात्व है। समझ में आया ? इसलिए यह (आगम) नमस्कार करने के योग्य है। लो, और यही व्याख्यान करने के योग्य है। अब शुरु करते हैं।

गाथा - ३

*समवाओ पंचण्हं समउ त्ति जिणुत्तमेहिं पण्णत्तं।
सो चेव हवदि लोओ तत्तो अमिओ अलोओ खं।।३।।

*समवाद: समवायो वा पंचानां समय इति जिनोत्तमै: प्रज्ञप्तम्।
स च एव भवति लोकस्ततोऽमितोऽलोक: खम्।।३।।

अत्र शब्दज्ञानार्थरूपेण त्रिविधाऽभिधेयता समयशब्दस्य लोकालोकविभागश्चाभिहित:। तत्र च पंचानामस्तिकायानां समो मध्यस्थो रागद्वेषाभ्यामनुपहतो वर्णपदवाक्यसन्निवेशविशिष्ट: पाठो वाद: शब्दसमय: शब्दागम इति यावत्। तेषामेव मिथ्यादर्शनोदयोच्छेदे सति सम्यगवाय: परिच्छेदो ज्ञानसमयो ज्ञानागम इति यावत्। तेषामेवाभिधानप्रत्ययपरिच्छिन्नानां वस्तुरूपेण समवाय: संघातोऽर्थसमय: सर्वपदार्थसार्थ इति यावत्। तदत्र ज्ञानसमयप्रसिद्ध्यर्थं शब्दसमयसम्बन्धेनार्थ-समयोऽभिधातुमभिप्रेत:। अथ तस्यैवार्थसमयस्य द्वैविध्यं लोकालोकविकल्पात्। स एव पंचास्ति-कायसमवायो यावांस्तावाँल्लोकस्तत: परममितोऽनन्तो ह्यलोक:, स तु नाभावमात्रं किन्तु तत्समवायातिरिक्तपरिमाणमनन्तक्षेत्रं खमाकाशमिति।।३।।

पंचास्तिकाय समूह को ही समय जिनवर ने कहा।
यह समय जिसमें वर्तता वह लोक शेष अलोक है।।३।।

अन्वयार्थ :– [पंचानां समवाद:] पाँच अस्तिकाय का समभावपूर्वक निरूपण [वा] अथवा [समवाय:] उनका समवाय (–पंचास्तिकाय का सम्यक् बोध अथवा समूह) [समय:] वह समय है, [इति] ऐसा [जिनोत्तमै: प्रज्ञप्तम्] जिनवरों ने कहा है। [स: च एव लोक: भवति] वही लोक है। (–पाँच अस्तिकाय के समूह जितना ही लोक है।) [तत:] उससे आगे [अमित: अलोक:] अमाप अलोक [खम्] आकाशस्वरूप है।

टीका :– यहाँ (इस गाथा में) शब्दरूप से, ज्ञानरूप से और अर्थरूप से (शब्दसमय, ज्ञानसमय और अर्थसमय)—ऐसे तीन प्रकार से 'समय' शब्द का अर्थ कहा है तथा लोक–अलोकरूप विभाग कहा है।

---

* मूल गाथा में 'समवाओ' शब्द है; संस्कृत भाषा में उसका अर्थ 'समवाद:' भी होता है और 'समवाय:' भी होता है।

वहाँ, (१) 'सम' अर्थात् मध्यस्थ यानि जो रागद्वेष से विकृत नहीं हुआ; 'वाद' अर्थात् वर्ण (अक्षर), पद (शब्द) और वाक्य के समूहवाला पाठ। पाँच अस्तिकाय का 'समवाद' अर्थात् मध्यस्थ (रागद्वेष से विकृत नहीं हुआ) पाठ (मौखिक या शास्त्रारूढ़ निरूपण) वह शब्दसमय है, अर्थात् शब्दागम, वह शब्दसमय है। (२) मिथ्यादर्शन के उदय का नाश होने पर, उस पंचास्तिकाय का ही *सम्यक् अवाय अर्थात् सम्यक् ज्ञान, वह ज्ञानसमय है, अर्थात् ज्ञानागम, वह ज्ञानसमय है। (३) कथन के निमित्त से ज्ञात हुए उस पंचास्तिकाय का ही वस्तुरूप से *समवाय अर्थात् समूह, वह अर्थसमय है, अर्थात् सर्व पदार्थसमूह, वह अर्थसमय है। उसमें यहाँ ज्ञान समय की प्रसिद्धि के हेतु शब्दसमय के सम्बन्ध से अर्थसमय का कथन (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव) करना चाहते हैं।

अब, उसी अर्थसमय का, [१]लोक और अलोक के भेद के कारण द्विविधपना है। वही पंचास्तिकायसमूह जितना है, उतना लोक है। उससे आगे अमाप अर्थात् अनन्त अलोक है। वह अलोक अभावमात्र नहीं है किन्तु पंचास्तिकायसमूह जितना क्षेत्र छोड़कर शेष अनन्त क्षेत्रवाला आकाश है (अर्थात् अलोक शून्यरूप नहीं है किन्तु शुद्ध आकाशद्रव्यरूप है।।३।।

गाथा - ३ पर प्रवचन

समवाओ पंचण्हं समउ त्ति जिणुत्तमेहिं पण्णतं।
सो चेव हवदि लोओ तत्तो अमिओ अलोओ खं॥३॥

पंचास्तिकाय समूह को ही समय जिनवर ने कहा।
यह समय जिसमें वर्तता वह लोक शेष अलोक है॥३॥

---

* समवाय = (१) सम्+अवाय; सम्यक् अवाय; सम्यक् ज्ञान। (२) समूह। (इस पंचास्तिकायसंग्रह शास्त्र में यहाँ कालद्रव्य को कि जो द्रव्य होने पर भी अस्तिकाय नहीं है उसे – विवक्षा में गौण करके 'पंचास्तिकाय का समवाय वह समय है।' ऐसा कहा है; इसलिए 'छह द्रव्य का समवाय वह समय है' ऐसे कथन के भाव के साथ इस कथन के भाव का विरोध नहीं समझना चाहिए, मात्र विवक्षाभेद है ऐसा समझना चाहिए। और इसी प्रकार अन्य स्थान पर भी विवक्षा समझकर अविरुद्ध अर्थ समझ लेना चाहिए।)

१– 'लोक्यन्ते दृश्यन्ते जीवादिपदार्थ यत्र स लोकः' अर्थात् जहाँ जीवादिपदार्थ दिखाई देते हैं, वह लोक है।

मूल गाथा में है न ? नोट किया है–नीचे—मूल गाथा में समवाओ शब्द है, संस्कृत भाषा में उसका अर्थ समवाद: भी होता है और समवाय: भी होता है। देखो, ऐसे पाँच। दोनों। यह भी होता है। अर्थात् पंचास्तिकाय को समवाय कहा जाता है। उनका–पाँच का समुदाय है न ? समझ में आया ?

पाँच अस्तिकाय का समभावपूर्वक... शब्दार्थ में ऐसा है, देखो, शब्दार्थ में। **पाँच अस्तिकाय का समभावपूर्वक निरूपण अथवा उनका समवाय (-पंचास्तिकाय सम्यक्बोध अथवा समूह)...** लो ! इसका ज्ञान, वह समूह, दोनों कहा। **वह समय है, ऐसा जिनवरों ने कहा है।** ऐसा परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग ने दिव्यध्वनि में कहा है। वही लोक है। **(-पाँच अस्तिकाय के समूह जितना ही लोक है); उससे आगे अमाप अलोक आकाशस्वरूप है।** इस विषय में व्याख्यान करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

धारावाही प्रवचन नं. ४ (प्रवचन नं. ४), गाथा-३-४
दिनांक - १८-११-१९६९, कार्तिक शुक्ल ९, मंगलवार

पंचास्तिकाय तीसरी गाथा। **टीका :- यहाँ (इस गाथा में) शब्दरूप से, ज्ञानरूप से और अर्थरूप से....** ऐसे तीन प्रकार से समय (शब्द का अर्थ) कहा गया है। **(-शब्द-समय, ज्ञानसमय और अर्थसमय)—ऐसे तीन प्रकार से 'समय' शब्द का अर्थ कहा है तथा लोक-अलोकरूप विभाग कहा है।** दो बात है। लोक और अलोक ऐसे क्षेत्र के दो भाग हैं। और पंचास्तिकाय आदि शब्दों से कहा जायेगा।

अब, **वहाँ, (१) 'सम' अर्थात् मध्यस्थ यानी जो रागद्वेष से विकृत नहीं हुआ;...** वीतरागभाव से शब्द निकले, उसमें राग-द्वेष नहीं होते। यह राग-द्वेष का स्थापन है। राग-द्वेष से लाभ होता है, ऐसा शब्द में राग नहीं होता। वीतरागभाव से निकले हुए शब्द वीतरागभाव को कहनेवाले हैं। समझ में आया?

परमेश्वर वीतरागदेव, 'सम' राग-द्वेष से विकृत नहीं बना हुआ 'वाद' ऐसे शब्द नहीं बने हुए, उसका अर्थ कहते हैं। वीतराग परमात्मा है, उनसे निकले हुए शब्दों में विकृतपना नहीं होता। समझ में आया? और उसे शब्दसमय और शास्त्र कहा जाता है। अज्ञानी अपनी कल्पना से कुछ कहे, उसे शास्त्र नहीं कहा जाता, ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्हें एक समय में त्रिकाली ज्ञान और वीतरागदशा प्रगट हुई है, उनके मुख से निकला हुआ शब्दसमय। अर्थात् उसमें विकृतपना रागपना और राग का भाव और राग हो, ऐसा उन शब्दों में नहीं हो सकता। समझ में आया?

वीतराग समय है न? वीतराग समय अर्थात् आत्मा, ऐसा कहा। आत्मा वीतराग समय है, अर्थसमय। सब अर्थ को जानते हुए वह वीतरागभाव ही जानता है। समझ में आया? कहते हैं, **मध्यस्थ यानी जो रागद्वेष से विकृत नहीं हुआ; 'वाद' अर्थात् वर्ण (अक्षर), पद (शब्द)....** जैसे जी...व 'जी' अर्थात् अक्षर और जीव, वह पद। 'जीव है,' यह वाक्य। **ऐसा समूहवाला पाठ।** जीव है, आत्मा है। आ अक्षर आत्मा पूरा शब्द। और 'आत्मा है' यह वाक्य। समझ में आया? ऐसा भगवान के मुख से परमेश्वर त्रिलोकनाथ

तीर्थंकर के मुख में से विकृत नहीं बना हुआ ऐसा पाठ, उसे शब्दसमय कहते हैं। अज्ञानी के शब्द को शास्त्र नहीं कहते। ऐसा सिद्धान्त कहते हैं। समझ में आया?

अज्ञानी ने कल्पना से शास्त्र बाँधे हों और उसे फिर भगवान के शास्त्र कहे तो वे शास्त्र भगवान के नहीं हैं। जेठाभाई! क्या बराबर? समझ में आया? जिसमें राग से लाभ हो, ऐसी वाणी वीतराग की नहीं होती। वीतराग के पाठ में नहीं होता, वीतराग के भाव में नहीं होता और उनके कहने में दूसरे को राग से लाभ हो, ऐसा भी नहीं होता। समझ में आया? मध्यस्थ से कहा गया पाठ। वाद अर्थात् पाठ। वीतरागभाव से कहा गया पाठ, ऐसा। मध्यस्थ—राग-द्वेषरहित से कहा गया पाठ। उसे यहाँ शब्दसमय / शास्त्र कहा जाता है। देखो! यहाँ शास्त्र की सिद्धि की। सब कोई कहे मेरे शास्त्र, मेरे शास्त्र। ऐई! शास्त्र में सब जगह वीतरागता स्थापित की होती है, शब्द वीतराग से निकले हुए हैं और वीतराग के भाव से निकले हुए हैं। अविकृत बने हुए शास्त्र। समझ में आया?

एक बार हुआ था न? कि यह केवली विनय करे, वह यह शास्त्र कहलाये या नहीं? नहीं। ऐई! जेठाभाई! न्याय से तो शास्त्र नहीं कहलाता। ऐसा है। हें? ऐई! अतुलभाई! समझ में आया या नहीं? वह विकृत पाठ है। वस्तु वास्तविक पाठ नहीं है। वह वस्तु सैद्धान्तिक नहीं है। ऐई! चेतनजी! कहा न? उस लड़के ने प्रश्न नहीं किया था? कैसा? परेश, जामनगर का। परेश ने अभी प्रश्न किया था। पहले प्रश्न किया था दस वर्ष की उम्र थी तब। तब यह प्रश्न वहाँ किया था जामनगर। अभी वकील आये थे न, उनका भतीजा। महाराज! तुम आत्मा... आत्मा करते हो तो आँखें बन्द करें तो अन्धेरा दिखता है और बाहर देखें तो यह दिखता है, उसमें आत्मा कहाँ है? नवनीतभाई! दस वर्ष का लड़का। खड़ा होकर, हों! रात्रि में प्रश्न किया था। आत्मा देखो, आत्मा देखो, तो कहाँ आत्मा हमारे देखना। आँख बन्द करें तो अन्धेरा दिखता है। बाहर देखें तो यह दिखता है। (हमने) कहा, भाई! अन्धेरे का देखनेवाला अन्धेरा नहीं है। यह अन्धेरा है, उसे देखता है, वह ज्ञानप्रकाश है। यह ज्ञानप्रकाश, वह आत्मा है। यह अन्धेरा है, वह अन्धेरे में अन्धेरे द्वारा नहीं दिखता। आहाहा! ऐसे देखे और आँखें बन्द करे तो वह काले ढ़ेर लगें। उन्हें जाननेवाला अन्धेरा नहीं है। जाननेवाले में वह काबरापन आँखें बन्द करे और ऐसे अन्धेरा दिखाई दे न, वह

जाननेवाले में नहीं। जाननेवाले का तो वह विषय है। समझ में आया? वह ज्ञानमूर्ति। कैसा प्रश्न किया था? फिर अभी इस बार प्रश्न किया था। कि यह १९वीं गाथा है न, १९वीं नहीं? वह आत्मसिद्धि में १९वीं गाथा है। यह केवली विनय करे, ऐसा कैसे कहा? ऐसा प्रश्न किया। ठीक। हें? हाँ, आत्मा है न? कहा, इस प्रकार से बात आ गयी है। यह वस्तु सच्ची नहीं। केवली, छद्मस्थ का विनय करे-यह सिद्धान्त नहीं है, तत्त्व नहीं है। समझ में आया?

कहते हैं, वीतरागभाव से निकला हुआ पाठ, पाठ में वीतरागता ही होती है। कहो, श्वेताम्बर में ऐसा है कि मुनि को आहार दे (तो) परितसंसार करे। आहार देने का भाव तो राग है। वहाँ वीतरागता होती नहीं। और राग से परितसंसार करे, वह सिद्धान्त नहीं है, शास्त्र नहीं है। वह वीतरागता के मुख से निकले हुए नहीं हैं। समझ में आया? जीव की दया पालन की मेघकुमार के जीव ने हाथी होदे, परितसंसार किया। पैर खड़ा करके। यह वीतराग की वाणी नहीं। क्योंकि परद्रव्य का लक्ष्य हो, वहाँ तो राग ही आता है। और राग से संसार छूटे, यह सिद्धान्त नहीं है। यह शास्त्र नहीं है। ऐसी बात है। हें? बरोबर वह बैठा था न? यहाँ ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर की जहाँ मौजूदगी है। उनकी वाणी की मौजूदगी भी अविकृत बनी हुई होती है। उसे सिद्धान्त अथवा शब्दसमय (कहा जाता है), फिर मुख से कहा हुआ हो या लिखा हुआ। है न उसमें लिखा हुआ, देखो! मौखिक या शास्त्रारूढ़, मुख से बोले तो भी उसमें वीतरागता का भाव आना चाहिए और लिखा हुआ हो तो भी उसमें वीतरागभाव ही निकलता है। इसका नाम शब्दसमय, सिद्धान्त, आगम कहने में आता है। यह शब्द आगम कहो। समझ में आया? शब्दसमय कहो या शब्द आगम कहो। शब्द आगम। समझ में आया? **पाँच अस्तिकाय का 'समवाद' अर्थात् मध्यस्थ (-रागद्वेष से विकृत नहीं हुआ) पाठ....** लो! जगत में पाँच अस्तिकाय हैं, ऐसा जिसे सर्वज्ञ ज्ञानपना है, उनके मुख में से निकली हुई वाणी है। पंचास्तिकाय है। समझ में आया?

पंचास्तिकाय में पाँच अस्तिकाय, इसलिए इसमें काल नहीं लिया। काल अस्ति है

न, परन्तु काय नहीं है। उसमें इकट्ठा आ जाता है। पाँच अस्तिकाय का समय है या षट्द्रव्य का, सब एक ही है। विवक्षा भेद से है। वस्तु भेद से भेद नहीं। नीचे (फुटनोट में) है, देखो! (-**मौखिक या शास्त्रागढ़ निरूपण) वह शब्द समय है...** या वीतरागभाव से मुख में से निकली हुई वाणी हो, समकिती की भी वीतरागभाव से निकली हुई वाणी वास्तव में तो वह शब्दसमय है। समझ में आया? वीतराग ने जो कहा है, वैसा जानकर वह कहता है। वह कहीं अपनी कल्पना से नहीं कहता। धर्म के लिये। कहते हैं कि वह शब्दसमय है, सिद्धान्त है। **अर्थात् शब्दागम वह शब्दसमय है।** देखो! शब्दागम वीतराग के मुख से निकली हुई वाणी चली आती है। उसकी परीक्षा इसे करनी पड़ेगी न? कि यह वीतराग के शास्त्र हैं या यह कोई कल्पित हैं? कृत्रिम बनाये हुए, इसका निर्णय करना पड़ेगा या नहीं? भगवानजीभाई! यह सब वह उड़ जायेगा। अमुक दो धर्म हैं न, यह भी है और वह भी है, ऐसा इनकार करते हैं। देखो!

सनातन सर्वज्ञ परमेश्वर, उन्हें जो वाणी में आया, उस वाणी को आगम कहा जाता है। उसके अतिरिक्त बाद में आचार्यों ने उसे छोड़कर अपना काल्पनिक पन्थ चलाया और वे शास्त्र (बनाये), वे शास्त्र आगम नहीं है। वे शब्दसमय नहीं है। कहो, छगनभाई! गजब बात, भाई! धर्म के लिये क्या? संसार धर्म के लिये, वह तो इसलिए कहा था। धर्म के लिये है। संसार के लिये तो है नहीं। आता है न? धर्म के लिये आता है। संसार के लिये तो वह है। धर्म का जो तत्त्व स्थापित करे, उसमें विकृत बिल्कुल नहीं होता, ऐसा। संसार की अलग बात है। समझ में आया?

तत्त्व का सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र आत्मा जो कहे, वह शब्दसमय यथार्थ है। समझ में आया? क्योंकि उसमें बिल्कुल विकृतपना धर्म का नहीं आता। उसे शास्त्र और उसे समय शब्दागम उसे कहा जाता है। कहो, समझ में आया? **अर्थात् शब्दागम वह शब्दसमय है।**

(२) मिथ्यादर्शन के उदय का नाश होने पर,... देखो! अब ज्ञान कहते हैं। ज्ञानसमय किसे कहते हैं? मिथ्यादर्शन के उदय का नाश होने से यह पंचास्तिकाय का ही पाँच अस्तिकाय का सम्यक् अवाय सम्यक् ज्ञान, वह ज्ञानसमय है। अन्तर में पंचास्तिकाय

का ज्ञान सच्चा होना, उसका नाम ज्ञानसमय है। पर्याय में जो ज्ञान यथार्थ होना, वह ज्ञानसमय है। शब्दसमय और ऐसा ज्ञानसमय। कहो, समझ में आया? नीचे जरा अर्थ किया है।

समवाय=(१) सम+अवाय; सम्यक्ज्ञान। (२) जत्था; समूह। दो है न? दो कहाँ आया? (इस पंचास्तिकायसंग्रह शास्त्र में यहाँ कालद्रव्य कि जो द्रव्य होने पर भी अस्तिकाय नहीं है, उसे विवक्षा में गौण करके कहने में गौण करके पंचास्तिकाय का समवाय, वह समय है, ऐसा कहा है। इसलिए 'छह द्रव्य का समवाय, वह समय है'-ऐसे कथन के भाव के साथ इस कथन के भाव का विरोध नहीं आता। मात्र कथन भेद है, ऐसा समझना। और अन्य स्थल में भी विवक्षा समझकर अविरुद्ध अर्थ समझ लेना।) जो कहना चाहते हैं, उसके साथ दूसरे के साथ सत्य हो तो भी उसका विरोध नहीं आता। समझ में आया?

वापस कोई ऐसा ही कहे कि पंचास्तिकाय का यथार्थ ज्ञान, वही ज्ञान। और छह द्रव्य का सम्यग्ज्ञान, वह ज्ञान नहीं, ऐसा कोई इसमें से निकाले, तो ऐसा नहीं है। समझ में आया? लो, श्वेताम्बर में पाँच ही मानते हैं। कालद्रव्य को नहीं मानते। उपचार अर्थात् द्रव्य की पर्याय, वह काल, ऐसा। द्रव्य की पर्याय, वह काल, वस्तु नहीं। अट्ठाईसवें अध्ययन में तो छह द्रव्य कहे हैं। छह द्रव्य। पाठ में भी छह द्रव्य कहे हैं। टीकाकार ने बदल डाला। मूल पाठ में छह द्रव्य है। मोक्षमार्ग के अट्ठाईस में। यह सब पहले बहुत चर्चायें हो गयी हैं। उसमें तो और यह है और टीकाकार ने यह कहाँ निकाल डाला। परन्तु बाद में लिखे हुए को तो किसी ने ऐसा लिखा, किसी ने ऐसा लिखा। वीतराग की वाणी तो है नहीं। श्वेताम्बर शास्त्र जो हैं, वे वीतराग की वाणी नहीं है। वे स्वयं कल्पित और जो पंथ स्थापित करना था, उस प्रकार से स्थापित कर पंथ खड़ा किया है। और यह (दिगम्बर) तो अनादि सनातनमार्ग है। आगम कहा न? उसके ऐसे शब्द आगम अनादि से चले आते हैं। समझ में आया?

महाविदेह में, भरत में या ऐरावत में यह शब्दसमय अनादि का आगम (चला आता है)। यह कहीं नयी जोड़नी नहीं है। नया करना नहीं है। सर्वज्ञ परमेश्वर जो अनन्त हो गये, उनके मुख में से वीतरागभाववाला पाठ निकला, उसे परमागम और सिद्धान्त कहा जाता

है। इसलिए यहाँ यह परमागम छपते हैं न यह ? वहाँ परमागम लेखन मुख्य तो यह है। और यह कहाँ डाला ? रात्रि में बात हुई थी थोड़ी। कहो, समझ में आया इसमें ? इसका कोई बनारस देखने गये होंगे। कोई कहता था परन्तु यहाँ तो आगम की बात थी। उसमें मूर्ति की कहाँ बात थी ? आगम के अक्षरों में जो कुछ विस्तार डालना हो, उसमें समरूप करने का करे न ? समझ में आया ?

उसे यहाँ आगम कहते हैं, हों ! यह तो भगवान की वाणी है। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़, यह सब भगवान की वाणी है। समझ में आया ? मुनियों की वाणी, वह भगवान की वाणी है। परम्परा से भगवान ही बोलते हैं, ऐसा समझना। समझ में आया ? इसलिए उसे शब्दागम कहा जाता है। यह वह आगम है। नवनीतभाई ! परमात्मा की कही हुई वाणी है। इसमें कहा है न, पाँचवीं गाथा में नहीं कहा ? कुन्दकुन्दाचार्य (ने कहा है)। अपर गुरु, परापर गुरु सर्वज्ञदेव, वहाँ से चला आया हुआ, हमारे गुरु ने हमें शुद्धात्मा का उपदेश किया था। देखो, कुन्दकुन्दाचार्य समयसार में कहते हैं। भगवान सर्वज्ञदेव महावीरप्रभु, वहाँ से आयी हुई वाणी है। फिर गणधर, वहाँ से लेकर हमारे गुरुपर्यन्त यह शास्त्र चला आता है। और उन्होंने हमें उपदेश अनुग्रह करके दिया था, शुद्धात्मा हो, भाई ! आहाहा ! देखो, यह वीतराग की वाणी ! शुद्धात्मा हमारे गुरु ने, ऐसा हमें कहा। उससे उपजा हुआ हमारा वैभव है। आहाहा ! समझ में आया ?

वहाँ तो ऐसा कहा कि, गुरु ने कहा वहाँ से हमारा निजवैभव उत्पन्न हुआ। आत्मा से नहीं प्रगट हुआ, पर से प्रगट हुआ ? परन्तु वहाँ निमित्त सिद्ध करना है। ऐसा ही वहाँ निमित्त होता है। मुनि महा आत्मा वीतरागी सन्त और उन्होंने यह वाणी हमें कही, शुद्धात्मा, आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा कुछ आता है न ? अन्यमति में नहीं आता ? ऐसा कुछ आता है। सब भूल गये। अन्य में आता है। शब्द में आत्मा प्रगट हो, ऐसा आता है, हों ! ऐसे सब श्लोक आते हैं। एक श्लोक ऐसा था। किसी ने पढ़ा हुआ नहीं ? शब्द के मारे गये, ऐसा उसमें आता है। ज्ञानी की वाणी निकली शब्द की, परमागम की, मर गया अज्ञानी। जाग उठा आत्मा ऐसा। शब्द का मारा मर गया, ऐसी भाषा है। बहुत पढ़ा हो न ? पहले तो बहुत पढ़ा हो न ? यह शब्द ऐसा है, कहते हैं। वीतराग की वाणी ऐसी झपट मारती

है, कहते हैं। उसे ज्ञान.... भजन में आता है। आता है न? तो बोलो न? हाँ, यह आता है। सुना है। पालेज में सुना है। बहुत गुरु शब्द के मारे बाण शब्द के आत्मा... शुद्धात्मा... बाण आते हैं। पालेज में हमारे उस ओर बहुत वेवीशाल हो गये न? रखे थे ग्राहक हमारे सब भक्त थे। वे सबकी बातें करे। शब्द के मारे मर गये। बाण लगे आगम के। वीतराग की वाणी अपने तो वहाँ लेना है, हों!

सर्वज्ञ परमेश्वर की वणी चली आती है। उसका इसे अन्दर में बाण लगा, तू आत्मा वीतरागमूर्ति है, प्रभु! आहाहा! समझ में आया? और इस शब्द से इसे वहाँ समझकर ही छुटकारा है, ऐसा कहते हैं। कहा न, भाई! उस अनुभव से प्रमाण करना। यह वहाँ ऐसा कहा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! छोड़ न दूसरी बात, भाई! भगवान आत्मा! पंचास्तिकाय को जाननेवाला और ऐसी अनन्त पर्यायवाला वीतरागस्वभाव का पिण्ड प्रभु है, ऐसा शास्त्र कहते हैं। और वह शास्त्र शब्द आगम और उससे उत्पन्न हुआ जो ज्ञान, वह ज्ञान आगम। आहाहा! जैसा वाचक है, वैसा ही वाच्य प्रगट हुआ। समझ में आया? मोहनभाई के भजन में आता है न! यह आता है। **मिथ्यादर्शन के उदय का नाश होने पर, उस पंचास्तिकाय का ही सम्यक् अवाय अर्थात् सम्यक् ज्ञान वह ज्ञानसमय है,...** देखो! पाँच अस्तिकाय का ज्ञान, वह भी सम्यक् ज्ञान, उसमें आत्मा आ गया, भाई! पाँच अस्तिकाय कहे, जीवास्तिकाय उसमें तेरा भी आत्मा शुद्ध जीवास्तिकाय में आ गया। आहाहा! भगवान आत्मा! शुद्ध जीव असंख्य प्रदेश समूह है। ऐसा तू भी उसमें आ गया। ऐसे मिथ्यादर्शन के उदय का नाश होने से विपरीत अभिप्राय का नाश होने से, ऐसा। **पंचास्तिकाय का ही सम्यक् अवाय...** शुद्ध जीवास्तिकायसहित का पाँच का **सम्यक् ज्ञान वह ज्ञानसमय है, अर्थात् ज्ञानगम वह ज्ञानसमय है।** ज्ञानागम, लो! समझ में आया? वासुदेवभाई कहाँ गये? वे कहे, यह ठीक आया। अभी वह निश्चय का बहुत चलता था न? यह पंचास्तिकाय आया, वह ठीक आया। नहीं? इस समय कहते थे। कनुभाई!

यह तो वस्तु होनी चाहिए न? वस्तुस्थिति। व्यवहार नहीं? समझ में आता है? व्यवहार है, ऐसा साबित करने के लिये ज्ञान बताते हैं। समझ में आया? परन्तु ले, यह जाने बिना सत्यार्थ कहते हैं, उसके बिना सन्मुख किस प्रकार होगा? समझ में आया? गड़बड़

करेगा उल्टी और फिर सन्मुख होगा किस प्रकार? व्यवहार ज्ञान भी यथार्थ न हो तो सन्मुख होने के योग्य कहाँ से होगा? समझ में आया? भगवान कहे, मुनि कहे कि तेरा आत्मा शुद्ध जीवास्तिकाय है। उस सहित पंचास्तिकाय, ऐसा कहा। और उसे जानने में आया परन्तु वह जानना अभी परलक्ष्यी है। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि वह जानना यथार्थ कब हुआ कहलाये?—कि शुद्ध जीवास्तिकाय सन्मुख होकर हुआ, तब पंचास्तिकाय का ज्ञान और ज्ञानसमय कहने में आता है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

सम्यक् ज्ञान, वह ज्ञानसमय है। **ज्ञानगम वह ज्ञानसमय है।** लो! समझ में आया? लोग नहीं कहते कि पन्ने फिरे और सोना झरे। यह छोटे लोगों में होता है न? बहियाँ फिरावे उसमें। भाई ने भी लिखा है। न्यालभाई ने लिखा है। पन्ने फिरे और सोना झरे। वैसे भगवान की वाणी फिरे और उसकी ओर ज्ञान निर्मल झरे। समझ में आया? यह बनिया नहीं कहते कि-लड़के को कहते हैं कि भाई पन्ने फेर (पलट)। कितना लेना-देना है, यह बहियाँ देखते जाये ऐसे के ऐसे फिराकर वह नहीं। किससे कितना लेना, कितना नहीं। समझे न? चौरासी में आये थे। कहा न, यह नारणभाई के पिता। मेरे पास आये थे। मेरी पुस्तकें सब खोजना चाहिए। घर के नौकर को सौंपे, वह मुझे पूछते हो, कहा। मैं तो कहता हूँ, बहियाँ रख दे न? यहाँ आ न? यह नारणभाई के पिता। राणपुरवाले आते हैं न? तब पैसे (रुपये) अस्सी हजार थे। फिर वह हो गया। अस्सी हजार तब छोड़ गये थे। यह तो बहुत वर्ष पहले की बात है। ८४ वर्ष पहले की बात है। नौकर-बौकर दुकान चले। नौकर खोजे वहाँ उसे बैठो हो। भाई! घर के व्यक्ति को खोजना चाहिए महाराज? कहाँ, क्या कहते हो? मैं इसे बहियाँ शोधने की कहूँ ऐसा? छोड़ दे न, यहाँ चल न, वहाँ अकेला पाप है। यह बहियाँ खोज न। यह शब्दागम है न। इसे देख न! अब वहाँ धूल में क्या है? समझ में आया? भगवान की-आचार्य की वाणी अमृत के बिन्दु झरते हैं। उसकी दृष्टि में लेकर, आत्मा को लेकर यदि पढ़े तो उसे शान्ति झरे, ऐसा कहते हैं। शान्ति आवे। समझ में आया?

एक ओर यह कहा था कि सुने तो नुकसान है, पढ़े तो नुकसान है। और फिर कहे, आचार्य के शब्द पढ़े तो क्षण-क्षण में अमृत झरे, ऐसे शब्द हैं। और एक ओर ऐसा आया। ऐई! परन्तु जिस समय जो सिद्ध करना हो, वह सिद्ध करे न। समझ में आया या नहीं?

यहाँ कहते हैं कि सम्यग्ज्ञान पंचास्तिकाय का सम्यक् अवाय। पंचास्तिकाय में शुद्ध जीवास्तिकाय भी... उस शुद्ध जीवास्तिकाय का यथार्थ ज्ञान होने से उसे पंचास्तिकाय का ज्ञान भी उसकी पर्याय में आ जाता है। श्रुतज्ञान में आ जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा कहते हैं कि ज्ञान की पर्याय ही इतनी है कि जो सब छह द्रव्य है, उन्हें जाने ऐसा ही पर्याय का अस्तित्व है। ऐसा एक समय की पर्याय का छह द्रव्य को जाने इतना अस्तित्व है। ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय का एक गुण और ऐसे अनन्त गुणों का एक द्रव्य। उसकी जब प्रतीति करे कि सम्यग्ज्ञान स्व का और पर का दोनों का सच्चा ज्ञान होता है। समझ में आया? दो हुए। शब्दसमय और ज्ञानसमय।

अब अर्थसमय। **(३) कथन के निमित्त से ज्ञात हुए...** लो! **कथन के निमित्त से ज्ञात हुए, उस पंचास्तिकाय का ही वस्तुरूप से समवाय अर्थात् समूह, वह अर्थसमय है,...** लो! समझ में आया? वहाँ दूसरा शून्य आया। पहला शून्य सम्यक् के ऊपर था। दूसरा यहाँ आया। इस दो का अर्थ वहाँ किया। जत्था-समूह है और वह उसे अर्थसमय कहते हैं। पदार्थ का समूह। वह तो एक आत्मा जाने, उसके सब पदार्थ के समूह का ज्ञान आ जाता है। ऐसा है। आहाहा! **अर्थात् सर्व पदार्थसमूह वह अर्थसमय है।** लो! जगत के सब आत्मा आदि से लेकर सर्वज्ञ, निगोद आदि, परमाणु आदि। सर्व पदार्थसमूह, वह अर्थसमय है। कहो, समझ में आया?

उसमें, यहाँ ज्ञानसमय की प्रसिद्धि के हेतु.... अब कहेंगे, क्या करना है यह पंचास्तिकाय? सच्चे ज्ञान की प्रसिद्धि के लिये—ज्ञानसमय दूसरा आया था न? सच्चे ज्ञान की प्रसिद्धि के लिये, जीवास्तिकाय की प्रसिद्धि के लिये, **उसमें, यहाँ ज्ञानसमय की प्रसिद्धि के हेतु शब्दसमय के सम्बन्ध से अर्थसमय का कथन (श्रीमद् भगवतकुन्दकुन्दाचार्यदेव) करना चाहते हैं।** भगवान कुन्दकुन्दाचार्य अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त महामुनि, तीसरे नम्बर में आये हैं। देखो न! मंगलम् भगवान वीरो, मंगलम् गौतमोगणी, मंगलम् कुन्दकुन्दार्यो। समझ में आया?

गणधर के पश्चात् उनका नाम आया। उसमें (श्वेताम्बर में) स्थूलीभद्र आया था। वह तो सब कल्पित है। यह तो यथार्थ वस्तु है। सर्वज्ञ परमेश्वर की जो परम्परा थी, उसमें

कुन्दकुन्दाचार्य आये हैं। परम्परा के भाव में, इसलिए कहते हैं कि उनके कहने का यह इरादा है। ज्ञानप्रसिद्धि के लिये शब्दसमय के सम्बन्ध से, देखो, तीनों आ गये। ज्ञानप्रसिद्धि के लिये ज्ञानसमय होने के लिये। ज्ञानसमय होने के लिये **शब्दसमय के सम्बन्ध से अर्थसमय का कथन करना चाहते हैं।** तीनों आ गये। समझ में आया? वस्तु है न? निमित्त नहीं है, ऐसा किसने कहा? उससे होता है, यह कहना वह व्यवहार है। होता है अपने रूप से, (परन्तु) निमित्त चीज़ है या नहीं? देखो न, बहुत आया। क्या आया? नहीं आया इसमें? **कथन के निमित्त से ज्ञात हुए...** ऐसा आया पहले तो। **उस पंचास्तिकाय का ही वस्तुरूप से समवाय अर्थात् समूह वह अर्थसमय है,...** निमित्त था न, उसने जाना है अपनी पर्याय से, परन्तु निमित्त था, इसलिए उसे अर्थसमय कहते हैं। और ज्ञानसमय की प्रसिद्धि के लिये शब्दसमय के सम्बन्ध से, वह भी निमित्त है न? उसमें कथन किया था न? भीखाभाई!

यह निमित्त तब कहलाता है कि वह समझा, समझता है न, तब निमित्त होता है। उसे निमित्त-निमित्त सम्बन्ध कहने में आता है। अर्थात् कहीं निमित्त से हुआ नहीं है। होता है, उसके अपने से। तब यह निमित्त यह था, ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। वीतराग की वाणी विकृत नहीं हुई, ऐसी वीतराग की वाणी ज्ञानसमय में निमित्त है। इसके अतिरिक्त दूसरी कोई भी वाणी अज्ञानी की कल्पित हो, वह निमित्त नहीं हो सकती। समझ में आया? ऐसा कहने का श्रीमद् भगवान कुन्दकुन्ददेव का इरादा है। लो!

अब, उसी अर्थसमय का लोक और अलोक के भेद के कारण द्विविधपना है। दो तो है न? अलोक और वह पदार्थ है न? पदार्थ है या नहीं? उसी अर्थसमय का ऐसा कहते हैं। 'लोकयन्ति दृश्यन्ति जीवादि पदार्थाम् इति लोक' अर्थात् जहाँ जीवादिपदार्थ दिखाई देते हैं, वह लोक है। सवेरे ऐसा आया था कि जहाँ ज्ञान अपने को अवलोकता है, वह उसका लोक है। लोक है। अपना लोक चित्स्वरूप ज्ञानस्वरूप है। उसे अवलोके, इसलिए अवलोक अपना आलोक है। समझ में आया? परलोक की व्याख्या परमात्मप्रकाश में दी है। परप्रधान। परमात्मप्रकाश में परलोक का अर्थ प्रधान किया है। प्रधान स्वयं जो उत्कृष्ट भाव ज्ञानानन्द का है, वह अपना परलोक है। दूसरा कोई राग और राग के फल में

स्वर्ग में रहना, जानना, वह कहीं आत्मा का परलोक नहीं है। धर्मी तो जहाँ जाये वहाँ अपने आत्मा में ही है। स्वर्ग में जाये तो भी आत्मा में है, नरक में जाये तो भी आत्मा में है। वह कहीं राग में और शरीर में धर्मी नहीं है। अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में है। आहाहा! गजब! भगवान आत्मा चैतन्यद्रव्य, उसके अनन्तगुण और उसकी निर्मल पर्याय, बस। मलिन पर्याय नहीं, वह आत्मा नहीं। उसमें है। अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में है। वह उसका स्व और वह उसका स्वामी। जहाँ जाये वहाँ राग उसका स्वामी कहीं नहीं है। स्वर्ग में जाओ या नर्क में जाओ। नियमसार में नहीं आता एक कलश? ...हाँ, मूल तो यह कहना है। जहाँ होऊँ वहाँ मैं तो उसमें रहूँ? समझ में आया?

जिनभवन में होऊँ या वहाँ स्वर्ग में होऊँ, परमात्मा के मन्दिर में दर्शन... परन्तु मैं तो मेरे स्वरूप में होऊँ। आहाहा! समझ में आया? अज्ञानी भी जहाँ जाता है, वहाँ राग में है। मानता है न वह? बाहर में कहीं शरीर में या कहीं वास्तव में है ही नहीं। पुण्य-पाप के विकल्प को अपना मानता है, उसमें वह स्थिर है। उसमें वह रहा है। शरीरादि में भी नहीं। विकृतभाव में रहा है, विभाव के अध्यवसान से रहा है। विभाव को अपने स्वभाव के साथ अध्यास एकाकार करके उसमें रहा है। ज्ञानी विभाव का त्याग करके स्वभाव की एकाग्रता में रहे हैं। आहाहा! घर में दिखायी दे तो घर में नहीं। राग में दिखायी दे तो राग में नहीं। कहो, समझ में आया?

देखो! यह धर्म और धर्मी का आत्मा। कहते हैं, ऐसा जो अर्थपदार्थ स्व है, उसमें ज्ञानी तो है। अब यह अर्थसमय का क्षेत्र कितना? यहाँ पूरा, सब है, यह लेना है न? **लोक और अलोक के भेद के कारण द्विविधपना है।** लो! **वही पंचास्तिकायसमूह जितना है, उतना लोक है।** चौदह ब्रह्माण्ड में पंचास्तिकाय रहे हुए हैं। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, नहीं? पुद्गल और आकाश। काल को यहाँ गौण करके कहते हैं, काय नहीं है न इसलिए। समझ में आया? पंचास्तिकायसमूह जितना है, उतना लोक है। फिर उसमें से ऐसा निकाले कि लो! काल तो पंचास्तिकाय में नहीं आया? परन्तु यह पहले कहा न, स्पष्टीकरण कर गये। यहाँ पंचास्तिकाय सिद्ध करना है, इसलिए उनकी मुख्यता ली है। नहीं तो वहाँ जितने छह द्रव्य हैं, जो छह द्रव्य हैं, उतना लोक है। हाँ, छह

द्रव्य से कहना, पंचास्तिकाय से कहना, नौ पदार्थ से कहना, सात तत्त्व से कहना। कथन के बहुत प्रकार हैं न। समझ में आया ?

पंचास्तिकायसमूह जितना है, उतना लोक है। उससे आगे अमाप अर्थात् अनन्त अलोक है। वह अर्थसमय है या नहीं ? अर्थसमय की ज्ञान की प्रसिद्धि के लिये शब्दसमय से अर्थसमय को कहने का भगवान आचार्य का इरादा है। सूक्ष्म पड़े न, लोगों को निवृत्ति चाहिए, कुछ मस्तिष्क फैलाना चाहिए। इसलिए फिर उसमें न रुककर बाह्य में धमाधम। लेखों में आवे इतने अपवास किये। नौ वर्ष की लड़की और आठ (अपवास) किये। अमुक ने महीना। अब क्या किये ? उसमें धर्म क्या ? हें ? एक जगह एक महिला ने ९१ किये। ऐसे कठोर आवे ढ़ेर। बहुत धर्म का उद्योत हुआ। धूल भी धर्म नहीं। सुन न अब।

धर्म अर्थात् राग। राग और मिथ्यात्वभाव का उद्योत हुआ। आहाहा ! कठिन काम लोगों को, हों ! कठिन लगे। बापू ! वस्तु तो ऐसी है। यह कहीं तेरे... के लिये नहीं है। वस्तु की स्थिति ऐसी है न ! हें ? कठिन लगे स्वयं को जो करते हों और उन्हें मानते हों यह है वहाँ, तुम (ऐसा कहते हो) कि अधर्म है। अर र र ! इतने महीने के अपवास किये ! इतना ऐसा बड़ा आंकड़ा आया था। इतनी लड़कियों ने कितनी-कितनी ने तो आठ अपवास किये। कितनी ने सोलह किये। कितनों ने महीने के किये। पालीताणा में लड़कियों की कुछ पाठशाला चलती है न। इस चातुर्मास में तो बहुत धर्म का उद्योत हुआ (ऐसा कहते हैं)। अरे ! धर्म किसे कहना, इसकी कहनेवाले को भी खबर नहीं और करनेवाले को भी खबर नहीं। आहाहा ! धर्म तो राग, यह अपवास आदि का विकल्प उठता है, वह भी राग है। वह जड़ की लेने-देने की क्रिया मेरी नहीं। उससे भिन्न पड़कर आत्मा ज्ञानस्वरूप से परिणमे, श्रद्धास्वरूप से परिणमे, शान्तिरूप से परिणमे, तब धर्म कहने में आता है। समझ में आया ? आया था न ? सवेरे नहीं आया था ? विविक्त आत्मनम्-अर्थ में। विविक्त आत्मनम् जैसा भिन्न आत्मा है, वैसा परिणमे, तब उसे विविक्त आत्मा कहा जाता है। सवेरे आया था या नहीं ? यह कोष्ठक में आया था। विविक्त आत्मनम्। यहाँ से भिन्न आत्मनः राग, शरीर, कर्म (से) भिन्न आत्मा है। भिन्न पड़ा, तब आत्मा आत्मारूप से परिणमा तब

भिन्न कहलाया। श्रद्धारूप से, ज्ञानरूप से और स्थिरतारूप से। समझ में आया?

आत्मा अपने स्वभाव का आश्रय लेकर श्रद्धारूप परिणमा, ज्ञानरूप हुआ, स्थिरतारूप हुआ। यह उसका पर से भिन्नपना कहलाया। नहीं तो पर से भिन्न कहाँ हुआ? राग और शरीर, वे मेरे हैं - ऐसा मानकर परिणमे, वह आत्मा कहाँ हुआ? कहो, ऐसी महीने-महीने की क्रिया करते हों, जंगल में रहते हों, लो! परन्तु राग की क्रिया है, उसमें यह परिणमता है। भले मेरी माने नहीं परन्तु ध्यान करनेवाला साधन—ऐसे अनन्त बार ध्यान भी किये हैं न, अन्दर में राग और पररूप परिणमता है। परिणमन तो राग का है। भले अन्दर शुभविकल्प हो कि यह करना, यह करना, उस विकल्परूप परिणमता है, वह परिणमन है, वह तो मिथ्या और अशुद्ध है। अशुद्ध परिणमन है, वह मेरा धर्म है, ऐसा मानता है। वहाँ तो क्षण-क्षण में मिथ्यात्व है। समझ में आया?.....

यहाँ यह कहते हैं, यह पंचास्तिकाय है, उससे आगे अमाप अलोक है। **वह अलोक अभावमात्र नहीं है....** वापस ऐसा कहते हैं। अ अर्थात् अलोक अर्थात् अभावमात्र नहीं, **किन्तु पंचास्तिकायसमूह जितना क्षेत्र छोड़कर शेष अनन्त क्षेत्रवाला आकाश है...** इससे अनन्त गुणा आकाश है। लोक के क्षेत्र से तो अनन्त गुणा आकाश है। कहीं अन्त है नहीं। आहाहा! देखो तो यह स्वभाव! क्षेत्र स्वभाव तो देखो! परन्तु ऐसा क्षेत्र स्वभाव जाना किसने? ज्ञानसमय ने। शब्दसमय के सम्बन्ध से ज्ञानसमय की प्रसिद्धि के लिये इन सबको जानने के लिये छह द्रव्य को कहा है, पंचास्तिकाय। समझ में आया?

पंचास्तिकायसमूह जितना क्षेत्र छोड़कर शेष अनन्त क्षेत्रवाला आकाश है (अर्थात् अलोक शून्यरूप नहीं है किन्तु शुद्ध आकाशद्रव्यरूप है।) लो! आकाश के शुद्ध और अशुद्ध ऐसे दो भेद पड़ते होंगे?

मुमुक्षु : पाड़े न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पाड़े अर्थात् उसका अर्थ कि आकाश के साथ दूसरे द्रव्य हैं, इसलिए उसे अपेक्षित अशुद्ध कहा गया है। वह तो शुद्ध है। चार द्रव्य तो त्रिकाल शुद्ध है। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल। यहाँ वह दूसरा है न? जिसमें दूसरा नहीं, इस अपेक्षा से शुद्ध कहा। दूसरा है, इसकी अपेक्षा से अशुद्ध कहा। आहाहा! समझ में आया?

अपने आया नहीं था ? नय में पर्याय का भेद, वह अशुद्ध कहा। ऐई ! हरिभाई ! कहाँ आया ? सैंतालीस नय (में) अन्तिम। मिट्टी का घड़ा और रामपात्र, वह उपाधि है। हाय ! हाय ! एकरूप में भी उपाधि कही, देखो।

इसी प्रकार भगवान आत्मा एकरूप जिसका स्वरूप, उसके पर्याय के भेद में, भेद है, वह मेचक हो गया, अशुद्ध हो गया, ऐसा कहते हैं। आता है न सोलह (गाथा, समयसार) में मेचक-मैल। तीनपना मैला, उसमें कहा न भाई ! दर्शन, ज्ञान और चारित्र, ऐसा तीनपना कहना, वही मलिन है, भेद है। भेद है और विकल्प उठता है। भेद का कहा, वहाँ वह कहे—किम अशुद्धम् ? आया तुम्हारा पारिणामिकभाव। वह तो कहीं न कहीं.... वहाँ अशुद्ध कहा नहीं। परन्तु ये तीन भेद पड़े, वे अशुद्ध ही हैं। क्योंकि वहाँ तत्त्वार्थसूत्र में पारिणामिकभाव के तीन भेद किये—जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व, ये तीन भेद ही व्यवहारनय का विषय हैं। पर्याय का यह भेद पड़ा है, अशुद्ध ही है। तत्त्वार्थसूत्र में कहा है। समझ में आया ?

इसलिए कहते हैं कि जो आकाश के क्षेत्र में दूसरे द्रव्य हैं, उनकी अपेक्षा से दूसरे नहीं, उसे शुद्ध कहा, ऐसा। अकेला शुद्धाकाश। बाकी तो पूरा आकाश द्रव्य शुद्ध है। उसमें कभी अशुद्धता है नहीं। पर अपेक्षित बात करके उसे अशुद्ध कहा जाता है। लो ! तीन गाथा हुई। चौथी। अब सब छह द्रव्य शुरु करते हैं।

गाथा - ४

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा तहेव आगासं।
अत्थित्तम्हि य णियदा अणण्णमइया अणुमहंता।।४।।

जीवा: पुद्गलकाया धर्माधर्मौ तथैव आकाशम्।
अस्तित्वे च नियता अनन्यमया अणुमहान्त:।।४।।

अत्र पंचास्तिकायानां विशेषसंज्ञा सामान्यविशेषास्तित्वं कायत्वं चोक्तम्।

तत्र जीवा: पुद्गला: धर्माधर्मौ आकाशमिति तेषां विशेषसंज्ञा अन्वर्था: प्रत्येया:। सामान्यविशेषास्तित्वंच तेषामुत्पादव्ययध्रौव्यमय्यां सामान्यविशेषसत्तायां नियतत्वाद्व्यवस्थितत्वादवसेयम्। अस्तित्वे नियतानामपि न तेषामन्यमयत्वम्, यतस्ते सर्वदैवानन्यमया आत्मनिर्वृत्ता:। अनन्यमयत्वेऽपि तेषामस्तित्वनियतत्वं नयप्रयोगात्। द्वौ हि नयौ भगवता प्रणीतौ — द्रव्यार्थिक: पर्यायार्थिकश्च। तत्र न खल्वेकनयायत्ता देशना किन्तु तदुभयायत्ता। तत: पर्यायार्थादेशादस्तित्वे स्वत: कथंचिद्भिन्नेऽपि व्यवस्थिता: द्रव्यार्थादेशात्स्वयमेव सन्त: सतोऽनन्यमया भवन्तीति। कायत्वमपि तेषामणुमहत्त्वात्। अणवोऽत्र प्रदेशा मूर्ताऽमूर्ताश्च निर्विभागांशास्तै: महान्तोऽणुमहान्त: प्रदेशप्रचयात्मका इति सिद्धं तेषां कायत्वम्। अणुभ्यां महान्त इति व्युत्पत्त्या द्व्यणुकपुद्गलस्कन्धानामपि तथाविधत्वम्। अणवश्च महान्तश्च व्यक्तिशक्तिरूपाभ्यामिति परमाणूनामेकप्रदेशात्मकत्वेऽपि तत्सिद्धि:। व्यक्त्यपेक्षया शक्त्यपेक्षया च प्रदेशप्रचयात्मकस्य महत्त्वस्याभावात्कालाणूनामस्तित्वनियतत्वेऽप्यकायत्वमनेनैव साधितम्। अत एव तेषामस्तिकायप्रकरणे सतामप्यनुपादानमिति।।४।।

आकाश पुद्गल जीव धर्म अधर्म ये सब काय हैं।
ये हैं नियत अस्तित्वमय अरु अणुमहान अनन्य हैं।।४।।

अन्वयार्थ :– [जीवा:] जीव, [पुद्गलकाया:] पुद्गलकाय, [धर्माधर्मौ] धर्म, अधर्म [तथा एव] तथा [आकाशम्] आकाश [अस्तित्वे नियता:] अस्तित्व में नियत, [अनन्यमया:] (अस्तित्व से) अनन्यमय [च] और [अणुमहान्त:] *अणुमहान (प्रदेश से बड़े) हैं।

---

* अणुमहान = (१) प्रदेश में बड़े अर्थात् अनेकप्रदेशी; (२) एकप्रदेशी (व्यक्ति–अपेक्षा से) तथा अनेकप्रदेशी (शक्ति–अपेक्षा से)।

टीका :- यहाँ (इस गाथा में) पाँच अस्तिकायों की विशेष संज्ञा, सामान्य विशेष-अस्तित्व तथा कायत्व कहा है।

वहाँ जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म और आकाश—यह उनकी विशेष संज्ञाएँ *अन्वर्थ जानना।

वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमयी सामान्यविशेषसत्ता में नियत-व्यवस्थित (निश्चित विद्यमान) होने से उनके सामान्यविशेष-अस्तित्व भी है, ऐसा निश्चित करना चाहिए। वे अस्तित्व में नियत होने पर भी (जिस प्रकार बर्तन में रहनेवाला भी बर्तन से अन्यमय है उसी प्रकार) अस्तित्व से अन्यमय नहीं है; क्योंकि वे सदैव अपने से निष्पन्न (अर्थात् अपने से सत्) होने के कारण (अस्तित्व से) अनन्यमय है (जिस प्रकार अग्नि उष्णता से अनन्यमय है उसी प्रकार) 'अस्तित्व से अनन्यमय' होने पर भी उनका 'अस्तित्व में नियतपना' नयप्रयोग से है। भगवान ने दो नय कहे हैं—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। वहाँ कथन एक नय के आधीन नहीं होता किन्तु उन दोनों के आधीन होता है। इसलिए वे पर्यायार्थिक कथन से जो अपने से कथंचित् भिन्न भी है ऐसे अस्तित्व में व्यवस्थित (निश्चित स्थित) हैं और द्रव्यार्थिक कथन से स्वयमेव सत् (विद्यमान) होने के कारण अस्तित्व से अनन्यमय हैं।

उनके कायपना भी है क्योंकि वे अणुमहान हैं। यहाँ अणु अर्थात् प्रदेश-मूर्त और अमूर्त निर्विभाग (छोटे से छोटे) अंश; 'उनके द्वारा (-बहु प्रदेशों द्वारा) महान हो' वह अणुमहान; अर्थात् प्रदेशप्रचयात्मक (-प्रदेशों के समूहमय) हो वह अणुमहान है। इस प्रकार उन्हें (उपर्युक्त पाँच द्रव्यों को) कायत्व सिद्ध हुआ। (ऊपर जो अणुमहान की व्युत्पत्ति की उसमें अणुओं के अर्थात् प्रदेशों के लिये बहुवचन का उपयोग किया है और संस्कृत भाषा के नियमानुसार बहुवचन में द्विचन का समावेश नहीं होता, इसलिए अब व्युत्पत्ति में किंचित् भाषा का परिवर्तन करके द्वि-अणुक स्कन्धों को भी अणुमहान बतलाकर उनका कायत्व सिद्ध किया जाता है) 'दो अणुओं (-दो प्रदेशों) द्वारा महान हो' वह अणुमहान—ऐसी व्युत्पत्ति से द्वि-अणुक पुद्‌गलस्कन्धों को भी (अणुमहानपना

* अन्वर्थ=अर्थ का अनुसरण करती हुई; अर्थानुसार। (पाँच अस्तिकायों के नाम उनके अर्थानुसार है।)

होने से) कायत्व है। (अब, परमाणुओं को अणुमहानपना किस प्रकार है, वह बतलाकर परमाणुओं को भी कायत्व सिद्ध किया जाता है) व्यक्ति और शक्तिरूप से 'अणु तथा महान' होने से (अर्थात् परमाणु व्यक्तिरूप से एक प्रदेशी तथा शक्तिरूप से अनेक प्रदेशी होने के कारण) परमाणुओं को भी, उसके एक प्रदेशात्मकपना होने पर भी (अणुमहानपना सिद्ध होने से) कायत्व सिद्ध होता है। कालाणुओं को व्यक्ति-अपेक्षा से तथा शक्ति-अपेक्षा से प्रदेशप्रचयात्मक महानपने का अभाव होने से, यद्यपि वे अस्तित्व में नियत है तथापि, उनके अकायत्व है—ऐसा इसी से (-इस कथन से ही) सिद्ध हुआ। इसलिए, यद्यपि वे सत् (विद्यमान) हैं तथापि, उन्हें अस्तिकाय के प्रकरण में नहीं लिया है।

भावार्थ :- पाँच अस्तिकायों के नाम जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश हैं। वे नाम उनके अर्थानुसार हैं।

ये पाँचों द्रव्य पर्यायार्थिकनय से अपने से कथंचित् भिन्न ऐसे अस्तित्व में विद्यमान हैं और द्रव्यार्थिकनय से अस्तित्व से अनन्य हैं।

पुनश्च, यह पाँचों द्रव्य कायत्ववाले हैं क्योंकि वे अणुमहान हैं। वे अणुमहान किस प्रकार हैं, सो बतलाते हैं:—'अणुमहान्तः' की व्युत्पत्ति तीन प्रकार से है :- (१) अणुभिः महान्तः अणुमहान्तः अर्थात् जो बहु प्रदेशों द्वारा (-दो से अधिक प्रदेशों द्वारा) बड़े हों, वे अणुमहान हैं। इस व्युत्पत्ति के अनुसार जीव, धर्म और अधर्म असंख्यप्रदेशी होने से अणुमहान हैं; आकाश अनन्तप्रदेशी होने से अणुमहान है; और त्रि-अणुक स्कन्ध से लेकर अनन्ताणुक स्कन्ध तक के सर्व स्कन्ध बहुप्रदेशी होने से अणुमहान है। (२) अणुभ्याम् महान्तः अणुमहान्तः अर्थात् जो दो प्रदेशों द्वारा बड़े हों, वे अणुमहान हैं। इस व्युत्पत्ति के अनुसार द्वि-अणुक स्कन्ध अणुमहान हैं। (३) अणवश्च महान्तश्च अणुमहान्तः अर्थात् जो अणुरूप (-एक प्रदेशी) भी हों और महान (अनेक प्रदेशी) भी हों, वे अणुमहान हैं। इस व्युत्पत्ति के अनुसार परमाणु अणुमहान है, क्योंकि व्यक्ति-अपेक्षा से वे एकप्रदेशी हैं और शक्ति-अपेक्षा से अनेकप्रदेशी भी (उपचार से) हैं। इस प्रकार उपर्युक्त पाँचों द्रव्य अणुमहान होने से कायत्ववाले हैं, ऐसा सिद्ध हुआ।

कालाणु को अस्तित्व है किन्तु किसी प्रकार भी कायत्व नहीं है, इसलिए वह द्रव्य है किन्तु अस्तिकाय नहीं है।।४।।

गाथा - ४ पर प्रवचन

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा तहेव आगासं।
अत्थित्तम्हि य णियदा अणण्णमइया अणुमहंता।।४।।

आकाश पुद्गल जीव धर्म अधर्म ये सब काय हैं।
ये हैं नियत अस्तित्वमय अरु अणुमहान अनन्य हैं।।४।।

टीका :- यहाँ (इस गाथा में) पाँच अस्तिकायों की विशेष संज्ञा, सामान्य विशेष-अस्तित्व तथा कायत्व कहा है। इतना कहा है। इस गाथा में पाँच अस्तिकायों की विशेष संज्ञा-नाम। नाम दिये हैं न ? क्या नाम ? जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश नाम दिये न। इसमें पाँच अस्तिकायों की विशेष संज्ञा, सामान्य-विशेष अस्तित्व ध्रुव और उत्पाद-व्ययवाला अस्तित्व, प्रत्येक पदार्थ सामान्य-विशेषवाला अस्तित्व प्रत्येक वस्तु सामान्य-विशेषरूप है। सामान्यरूप अर्थात् ध्रुवरूप और विशेषरूप अर्थात् उत्पाद-व्ययरूप। और **कायत्व कहा है।** इस गाथा में तीन बोल हैं। समझ में आया ?

कायत्व=बहुत प्रदेशपना। **वहाँ जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश—यह उनकी विशेष संज्ञाएँ अन्वर्थ जानना।** नीचे है, अर्थ को अनुसरती, अर्थ प्रमाण। (पाँच अस्तिकायों का नाम उनके अर्थ अनुसार है)। लो ! धर्मास्तिकाय नाम उसके अर्थ अनुसार है। धर्मास्तिकाय, ऐसा दूसरा क्या ? वह इसका अर्थ। वहाँ काय धर्म अर्थात् आत्मा का धर्म, यह बात नहीं है। भावनगर थे, तब ऐसा आया है किसी का। एक धर्मास्ति और अधर्मास्तिकाय सब जीव की पर्याय है। धर्म और अधर्म पृथक् द्रव्य नहीं है। और ऐसा आया था। हें ? आता है न ? एक बार भावनगर थे, तब आया था। ७८ या ८६ में लेख आया था। ऐसे के ऐसे वापस। वह तो पदार्थ है। धर्म और अधर्म वह विशेष संज्ञावाला और कायवाला और सामान्य-विशेष अस्तित्ववाला। समझ में आया ?

पाँच अस्तिकाय में धर्मास्ति-अधर्मास्ति भी अभी आकाश तक तो कितने ही लोक... धर्मास्ति-अधर्मास्ति में अभी गड़बड़ उठती है। उसमें डाल दे। सर्वविशुद्ध में आता है न ? धम्मो, धम्मो जीव है। भाई ! कितने ही वहाँ डालते हैं। देखो, यहाँ कह दिया कि जीव है।

कहाँ ? सुन न ? वह तो अलग बात है। विशेष में आता है न, सप्तम को जानकर, अंगपूर्व आत्मा है। धर्म-अधर्म वह आत्मा है। धर्मास्ति-अधर्मास्ति कोई दूसरी चीज़ नहीं, आत्मा है। अरे ! ऐसा नहीं है। वहाँ तो पुण्य-पाप की बात है। उसकी पर्याय इसमें है। किसी का बड़ा लेख आया था, किसी का था, भूल गये। किसी के अखबार में बड़ा लेख आया था। श्वेताम्बर का या किसी का था। देखो, यह धर्मास्ति-अधर्मास्तिकाय जीव की पर्याय है। धर्म है, वह जीव की पर्याय है। अधर्म, वह जीव की पर्याय। अरे, यहाँ कहाँ यह बात है ?

धर्मास्ति-अधर्मास्ति नामक संज्ञावाले दो पदार्थ हैं। समझ में आया ? और वह सामान्य-विशेष अस्तित्वाले पदार्थ हैं। ध्रुव रहनेवाले और उत्पाद-व्यय होनेवाले। और वे कायवाले हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश। जीव है असंख्यप्रदेशी। आकाश है वह अनन्त प्रदेशी। देखो, ऐसा वस्तु का स्वरूप है और ज्ञान की पर्याय उसे इतने को जाने, तब तो उसने ज्ञान की पर्याय का अस्तित्व माना कहलाये। समझ में आया ? भगवान ने यह कहा, ऐसा जीव है। वह जीव की एक समय की दशा अपने को और पर को एक समय में ऐसे स्वसन्मुख होकर बराबर जाने, परन्तु एक समय की पर्याय में द्रव्य-गुण यह और यह। ऐसा तो एक पर्याय का उसका धर्म है। धर्म अर्थात् इतना सामर्थ्य है। एक समय की पर्याय का उत्पाद के अस्तित्व का इतना सामर्थ्य है। अस्तित्वरूप पर्याय माने, उसमें इतना सामर्थ्य है। पूरा आत्मा माने। आहाहा ! पूरा कब माना कहलाये ? ऐसे धारणारूप से पर्याय में माना, वह नहीं। स्वसन्मुख होकर जब आत्मा द्रव्य को अवलम्बे और जो ज्ञान हो, वह ज्ञान सम्यक् और यथार्थ है। समझ में आया ? यह ज्ञान का भाग, वह मोक्ष का कारण है। समझ में आया ?

कैसा ? **जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश—यह उनकी विशेष संज्ञाएँ अन्वर्थ जानना।** अन्वर्थ अर्थात् है तत्प्रमाण जानना, ऐसा। अर्थ को अनुसरते अर्थ प्रमाण। धर्म को धर्म का अर्थ दूसरा क्या ? अधर्म को अधर्म का पदार्थ, ऐसा शब्द जानना, वह तो रूढ़िवाचक है न ? वह शब्द कहाँ गुणवाचक है ? धर्मास्ति-अधर्मास्ति कहीं गुणवाचक है ? अनादि की रूढ़ि के ये शब्द हैं। धर्मास्ति-अधर्मास्ति को जानना।

वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमयी सामान्यविशेषसत्ता में नियत-व्यवस्थित (निश्चित विद्यमान) होने से उनके सामान्यविशेष-अस्तित्व भी है, ऐसा निश्चित करना चाहिए।

देखो अब। कहते हैं, आत्मा, परमाणु, और आकाश, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, वस्तु वह उत्पादव्ययध्रुवमय। नयी अवस्था उपजे, पुरानी अवस्था जाये, यह उत्पाद-व्यय विशेष; ध्रुव, वह सामान्य। वह सामान्य पहला शब्द है, सामान्य वह ध्रुव का लेना। विशेष लेना है उत्पाद-व्यय में। पश्चात् शब्द प्रमाण नहीं लेना। उत्पाद-व्यय अर्थात् सामान्य और ध्रुव अर्थात् विशेष। इसमें अन्दर शब्द की रचना प्रमाण आवे न? ध्रुवउत्पादव्यय नहीं परन्तु उत्पादव्ययध्रुव, ऐसा शब्द आया न! शब्द ऐसा आया कि 'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तम्सत्'। सत् अर्थात् विशेष और सामान्यसहित सत्। पहला तो विशेष आया। शब्द वापस ऐसा आया। यह उत्पादव्ययध्रौव्यमयी सामान्यविशेषसत्ता। उत्पाद-व्ययसामान्य और ध्रुव वह विशेष, ऐसा है?

मुमुक्षु : यह तो व्याकरण सिखलाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्याकरण शब्द में यह क्या है? यह शब्द जो कहता है, ऐसा अर्थ कर डाले। उत्पाद-व्यय वह सामान्य और ध्रुव वह विशेष। दो भाग पड़े हैं न, देखो! यह सब समझना पड़ेगा। बसन्तभाई! क्योंकि बापू कहते थे कि बिना भान के नहीं चलता। नहीं? हें? सारासार तत्त्व। यहाँ ऐसा समझाये। अध्धर से ऊपर-ऊपर से थोड़ा-बहुत ले लिया, इसलिए मानो...

मुमुक्षु : यह सब समझना पड़ेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे विरुद्धता बहुत हो गयी है तो अविरुद्धरूप से इतना समझना पड़ेगा। विरुद्धता नहीं, उसे तो एकदम आत्मा है, ऐसा जाना तो उसे सब आ गया। यहाँ तो विरुद्धता बहुत है न। समझ में आया?

भगवान कहते हैं कि यह पदार्थों के नामवाले पदार्थ हैं, ऐसा निर्णय करना और उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रुव सामान्यसत्ता में नियत व्यवस्थित है, निश्चित रहे हुए हैं। प्रत्येक पदार्थ अपने उत्पाद-व्यय और ध्रुव में रहा हुआ है। देखो! आत्मा भी अपने उत्पाद-व्यय और ध्रुव में रहा हुआ है। परमाणु भी उसके उत्पाद-व्यय विशेष और ध्रुव में रहा हुआ है। कोई किसी में कोई द्रव्य रहा हुआ नहीं है। कहो, समझ में आया? **वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमयी सामान्यविशेषसत्ता में नियत-व्यवस्थित (निश्चित विद्यमान) है।** उसमें निश्चित है। आत्मा अपने उत्पाद-व्यय-पर्याय और ध्रुव में रहा हुआ है। परमाणु उसकी

पर्याय के उत्पाद-व्यय और ध्रुव में रहा हुआ है। शरीर उसके उत्पाद-व्यय और ध्रुव में रहा हुआ है। देखो न? आया या नहीं? कि आत्मा के कारण रहा हुआ है। शरीर आत्मा के कारण रहा हुआ है? आत्मा शरीर के कारण रहा हुआ है?

मुमुक्षु : गोम्मटसार में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह गोम्मटसार में निमित्त का कथन है। कितने जीवों को शरीर होता है। जीव को शरीर का सम्बन्ध निमित्तरूप कितना, ऐसा वहाँ बतलाया है।

यहाँ तो कहते हैं कोई भी पदार्थ भगवान ने छह द्रव्य कहे और ऐसा है। प्रत्येक द्रव्य अपने विशेष और सामान्यसत्ता में रहा हुआ है। अर्थात् कि उसकी पर्याय और द्रव्य में रहा हुआ है। कोई द्रव्य, कोई तत्त्व किसी की अवस्था में रहा हुआ है, ऐसा है नहीं। कहो, बराबर होगा? पहले तो ऐसा होता था अभी तक तो—यह शरीर है न, वह भले निमित्त है, ऐसा रहे, ऐसा रहे, और अभी नया निकला। जीव अन्दर होवे तो ऐसा कुछ होवे तो ऐसा हो जाता है। यह नलिनभाई को हुआ था न, वहाँ से खबर पड़ी। नहीं तो ऐसा कि ऐसा निमित्तपना भी जीव हो, वहाँ तक ऐसे सीधे खड़े रहे। परन्तु अन्दर जीव है तो सीधा खड़ा नहीं रहता। यहाँ का कुछ होता है वह। २८ वर्ष का जवान व्यक्ति। लो! ऐसे डगमगाता था (पैरों पर खड़ा नहीं रह पाता था)। आहाहा!

उस काल में भी प्रत्येक परमाणु अपने सामान्य और विशेष शक्ति में रहा हुआ है। एक-एक परमाणु ध्रुव और उत्पाद-व्यय एक समय के तीन, उसमें वह रहा हुआ है। कहो, छगनभाई! अभी आत्मा कहाँ रहा है? क्या कहते हैं यह? उसके सामान्य और विशेष में रहा हुआ है। उसका कायम का ध्रुवपना और वर्तमान उत्पाद-व्यय की पर्याय में वह रहा हुआ है। निगोद का जीव भी उसके उत्पाद-व्यय और ध्रुव में रहा हुआ है। निगोद का जीव भी उसके शरीर के रजकण में रहा हुआ है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वहाँ से शुरु किया, देखा न? समझ में आया?

'**अत्थितम्हि**' शब्द है न? उसमें से सत्ता निकाली और सत्ता के तीन बोल निकाले। आहाहा! उन्हें सामान्य-विशेष अस्तित्व भी है। प्रत्येक पदार्थ को ध्रुवपना और उत्पाद-व्ययरूपी अवस्था सब वह उसमें है। इस प्रकार उसका अस्तित्व है। दूसरे प्रकार से अस्तित्व नहीं है, ऐसा निर्णय करना। विशेष बात कहेंगे।　　(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

धारावाही प्रवचन नं. ५ (प्रवचन नं. ५), गाथा-४
दिनांक - १९-११-१९६९, कार्तिक शुक्ल १०, बुधवार

पंचास्तिकाय नाटकत्रय कहा जाता है न ? समयसार, प्रवचनसार और पंचास्तिकाय तीनों नाटकत्रय कहे जाते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य के तीन (शास्त्र) हैं। द्रव्यसंग्रह में आता है न ? शुद्धनय के कथन करनेवाले, ऐसा आता है। जयधवल, धवल आदि में व्यवहारनय का कथन कहने में आता है। पंचास्तिकाय को शुद्धनय का कथन करनेवाला कहते हैं, ऐसा मेरा कहना है। समझ में आया ? परन्तु यह उसके साथ व्यवहार कैसा होता है, यह (साथ में) बतलाते हैं। भगवान ने केवलज्ञान में पाँच अस्तिकाय देखे। काल द्रव्य है, अस्ति है परन्तु काय नहीं है, इसलिए पाँच अस्तिकाय देखे। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश, इनका ज्ञान यथार्थ करना चाहिए। यह आत्मा का कहे, उसमें यह आ जाता है। आत्मा की एक समय की पर्याय में ऐसे द्रव्य हैं, उनका ज्ञान उसमें आ जाता है। पर्याय में उनका ज्ञान आ जाता है। समझ में आया ? ऐसी पर्यायसहितवाला जो त्रिकाली द्रव्य है, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन और ज्ञान होता है और उसमें प्रत्येक में स्वतन्त्रता बतलाते हैं।

देखो, देखो ! तीसरा पैरेग्राफ—**वे,...** वे अर्थात् जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश उनकी विशेष संज्ञायें नाम प्रमाण है। **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमयी...** यह प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु-पॉईन्ट **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमयी सामान्यविशेषसत्ता में नियत-व्यवस्थित (निश्चित विद्यमान) होने से उनके सामान्यविशेष-अस्तित्व भी है, ऐसा निश्चित करना चाहिए।** देखो, ऐसा निर्णय करना, ऐसा अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। समझ में आया ? क्यों ? कि जो यह आत्मा है, उसमें उत्पाद-व्यय समय-समय की जो अवस्था उत्पन्न होती है, पूर्व की व्यय होती है और ध्रुव। ऐसा वह सामान्य और विशेष अस्तित्व उनका है। उनका उत्पाद पर के कारण से है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

जीव की एक समय की पर्याय स्वयं से विशेषरूप से उत्पन्न हो, वह विशेष उसका अस्तित्व है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? भगवान को देखने से या भगवान की वाणी से, देखो ! यह उसमें आता है या नहीं ऐसा, भाई ! वाणी से उसका उत्पाद नहीं होता। उसमें

आता है या नहीं ? ऐंई ! परन्तु क्या है ? देखो, वही अर्थात् जीव और पुद्गल अपने तो अभी दो ही लेना है। धर्म, अधर्म और आकाश तो है। उत्पादव्ययध्रौव्यमयी तथा सामान्य-विशेष। ध्रुव, वह सामान्य है; उत्पाद-व्यय, वह विशेष है। उसके अस्तित्व में नियत-व्यवस्थित (निश्चित रहे हुए) होने से उन्हें सामान्य-विशेष अस्तित्व भी है, ऐसा निर्णय करना। क्या कहा इसमें, समझ में आया ?

इस जीव में भी, प्रत्येक जीव को प्रत्येक समय जो ज्ञान, दर्शन आदि की जो पर्याय उत्पन्न हो, उसका विशेष अस्तित्व उसमें होता है। सामान्य तो ध्रुव है। उसका विशेष जो उत्पाद-व्यय है, अस्तित्व है, उसका अपने में-उसमें होता है। पर के अस्तित्व के कारण उसके ज्ञान, दर्शन और आनन्द की पर्याय उत्पन्न हो, ऐसा नहीं है। यह पंचास्तिकाय का ज्ञान करना, परन्तु पंचास्तिकाय ऐसा कहता है। वह तो निमित्त से बात की है। समझ में आया ? यहाँ क्या कहते हैं ? कि जो ज्ञान पर्याय होती है, उसके उत्पाद का विशेष अस्तित्व है और ध्रुव कायम रहता है। दोनों होकर उस अस्तित्व में होनेपने में रहा हुआ जीव है। उसके उत्पाद की किसी भी पर्याय में दूसरे के उत्पाद के विशेष पर्याय से यह विशेष होता है, ऐसा नहीं है। कहो, भीखाभाई !

यह गुरु से और वाणी से वहाँ विशेष अवस्था होती है, ऐसा यहाँ इनकार करते हैं। ले, कहा न ? यह क्या कहते हैं ? वे अर्थात् कि जीव उत्पाद-व्यय और ध्रुव। अर्थात् कि ध्रुव सामान्य और उत्पाद विशेष। ऐसे सामान्य-विशेष के, अस्तित्व में निश्चित होकर रहे हुए हैं। समय-समय में उनका उत्पाद विशेषरूप से है, उसमें वह रहा हुआ है। उसके विशेष का अस्तित्व स्वयं के कारण से है। उसके विशेष का अस्तित्व दूसरे प्राणी या दूसरे जड़ के कारण नहीं है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : नास्ति से।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, अस्ति में से ही यहाँ तो अस्ति निकाली है। अस्ति है या नहीं ? इससे होता है। तब इसका अर्थ हुआ प्रत्येक में उससे होता है। अर्थात् इससे (दूसरे से) नहीं होता, यह तो उसमें आ जाता है साधारण बात में। कहो, बराबर है ? ज्ञानप्रसिद्धि के लिये शब्दसमय से अर्थ कहने में आया है। परन्तु ज्ञान की पर्याय जो यहाँ तो वापस यह

कहते हैं कि, उसकी जो समय-समय की पर्याय उत्पन्न होती है, उसमें जो शब्द की पर्याय का अस्तित्व है, इसलिए ज्ञान की पर्याय का अस्तित्व उत्पन्न होता है, ऐसा है नहीं। ऐसा उसमें है या नहीं ? नियत-व्यवस्थित निश्चित रहे हुए होने से, ऐसे परमाणु, यह रजकण-पॉईन्ट, वह भी उसकी समय-समय की उसकी अवस्था का जो ऐसा उत्पाद है, उसमें पूर्व की अवस्था का व्यय होता है। वह विशेष अस्तित्व और परमाणु सामान्य। सामान्य, विशेष में नियत-व्यवस्थित रहा हुआ है, ऐसा निर्णय करना। उसका विशेष अवस्था का अस्तित्व आत्मा के विकल्प या ज्ञान के अस्तित्व के कारण होता है, ऐसा है नहीं। ऐसा उसमें आया या नहीं। ऐई !

यह वाणी है, वाणी के रजकण हैं, उसका—वाणी का जो शब्दवर्गणा में से उत्पाद हुआ, उस उत्पाद का अस्तित्व विशेषपना उसके कारण से है। जीव का विकल्प है, इसलिए भाषा की पर्याय की उत्पत्ति होती है, ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया ? तथा भगवान ने कहे वे छह द्रव्य हैं। उन छह द्रव्य का शब्द की पर्याय शब्द से उत्पन्न हुई है। भगवान के ज्ञान की पर्याय से उत्पन्न नहीं हुई तथा शब्द की पर्याय से श्रवण करनेवाले को जो ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, भले परलक्ष्यी, उसका कुछ नहीं, परन्तु जो उत्पाद होता है, उसका उत्पाद का विशेषपना सामान्य का विशेष उसका है। उस भाषा के कारण वहाँ ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : आत्मा का और उसका मेल तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मेल का अर्थ क्या ? वह तो निमित्त, निमित्त हुआ।

मुमुक्षु : सुमेल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुमेल अर्थात् ? परन्तु वह भाषा की पर्याय का उत्पाद है, इसलिए यहाँ ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसा वस्तु के स्वरूप में नहीं है। स्वतन्त्र और उसका उत्पाद विशेष।

सामान्य-विशेष सत्ता में निश्चित रहे हुए होने से उसे सामान्य-विशेष अस्तित्व भी है, सामान्य-विशेष अस्तित्व भी है, ऐसा निर्णय करना। कहो, समझ में आया इसमें ? आहाहा! समवसरण के मध्य में आत्मा बैठा हो तो भी यहाँ तो कहते हैं कि उसका

सामान्यपना जो ध्रुव और उत्पाद-व्यय जो विशेष, उस सामान्य-विशेष अस्तित्व में ही उसका अस्तित्व है। उसका अस्तित्व पर के कारण है, ऐसा नहीं। कहो, समझ में आया? पर्याय का अस्तित्व यहाँ विशेष का। सामान्य तो कायम उसमें ध्रुव परमाणु है। या इसका ध्रुवपना चैतन्य का ध्रुव। परन्तु विशेष का जो समय-समय में पर्याय होती है, वह उसका विशेष का असितत्व। यह ध्रुव सामान्य का अस्तित्व। सामान्य-विशेष में यह रहा हुआ पदार्थ है और उसमें पर के कारण कुछ होता है, ऐसा पर के कारण रहा हुआ है, ऐसा नहीं। समझ में आया?

वस्तु तो ऐसी है। इसलिए तो यह पंचास्तिकाय लिया है। कुन्दकुन्दाचार्य ने इस प्रकार से पंचास्तिकाय कहा है। आहाहा! एक ओर शब्द से ज्ञानप्रसिद्धि के लिये शब्द द्वारा, अनेक शब्द उसमें आये थे न! अनेक शब्दों द्वारा, पहले ऐसा कही आया था या नहीं? अनेक शब्दों के सम्बन्ध से कहने में आता होने से। अर्थ, अर्थ। दूसरी गाथा में। अर्थ अर्थात् अनेक शब्दों के सम्बन्ध से कहने में आता हुआ। ठीक। ऐई! यह वस्तुरूप से एक है न सब? ऐसा है। सामान्य-विशेषरूप से है, है, है। बस, यह है। महासत्तारूप से सब है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान की प्रतिमा के पास जीव बैठा हो तो उसे जो शुभ परिणाम की उत्पत्ति और पूर्व पर्याय का व्यय और ध्रुवपना, उसका सामान्य-विशेष में वहाँ अस्तित्व उसका है। उसे भगवान के कारण से उसमें विशेष पर्याय उत्पन्न हुई है, ऐसा अस्तित्व का स्वरूप नहीं है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? चन्दुभाई! ऐई वकील! यह तो लॉजिक से बात चलती है। **वे अस्तित्व में नियत होने पर भी....** अब क्या कहते हैं? प्रत्येक परमाणु-पॉईन्ट एक-एक रजकण, हों! और एक-एक आत्मा प्रत्येक अपने ध्रुवपने के सामान्य में रहा हुआ है और उत्पाद-व्यय का विशेष, उसमें वह रहा हुआ है। उसमें सत्ता की समाप्ति इतने में है। उसके अस्तित्व के लिये दूसरे के अंश का अस्तित्व मददगार है, ऐसा नहीं है। भाई! हें? आहाहा!

अब सिद्धान्त एक करते हैं। कि **वे अस्तित्व में नियत होने पर भी (जिस प्रकार बर्तन में रहनेवाला भी बर्तन से अन्यमय है उसी प्रकार)....** बर्तन है, उसमें रहा हुआ घी, वह बर्तन से भिन्न है। भिन्न है या नहीं? इसी प्रकार यह आत्मा और परमाणु से उसका

अस्तित्व भिन्न है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

भाषा क्या आयी? सामान्य–विशेष अस्तित्व भी है, ऐसा निर्णय करना। और वह नियत–व्यवस्थित (अवस्थित) रहे हुए होने से उत्पाद–व्यय के रहे हुए अस्तित्व सत्ता में रहा हुआ पदार्थ होने से, सत् में रहा हुआ पदार्थ होने से। इसका अर्थ हुआ कि जैसे बर्तन में घी रहा है, वैसे सत् में आत्मा रहा और सत् में पदार्थ रहा, ऐसा नहीं है। ऐसा नहीं है। समझ में आया? बर्तन में घी। वह तो बर्तन अलग चीज़ और घी अलग, वह तो अन्य वस्तु है। ऐसे आत्मा अपने अस्तित्व में है, इसलिए अस्तित्व कोई अलग चीज़ और आत्मा उसमें रहा हुआ है, बर्तन में घी की भाँति (रहा हुआ है), ऐसा नहीं है। समझ में आया या नहीं इसमें?

मुमुक्षु : नयी बात आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें नयी बात कहाँ? यह तो बहुत बार कही गयी है। यह तो पाठ में से इतना निकलता है।

वे अस्तित्व में नियत होने पर भी... अर्थात् क्या कहते हैं? प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु अपने अस्तित्व में नियत–निश्चित होने पर भी, उनका अस्तित्व ऐसा नहीं कि जैसे बर्तन में घी हो। ऐसे अस्तित्व में आत्मा है, ऐसे अस्तित्व में परमाणु है – ऐसा नहीं है। समझ में आया?

अस्तित्व से अन्यमय नहीं। आत्मा अपनी विशेष पर्याय और सामान्य ध्रुव। ऐसा जो सत्। 'सत्द्रव्यलक्षणम्' कहा न? उस सत् में रहा हुआ द्रव्य है, वह बर्तन में रहा हुआ घी है, ऐसा नहीं है। समझ में आये ऐसा है, इसमें कुछ बहुत ऐसा सूक्ष्म नहीं है। हें? अस्तित्व से अन्यमय नहीं। जैसे बर्तन से घी भिन्न है, वैसे आत्मा अपनी जो उत्पाद पर्याय जो उत्पाद–व्यय की पर्याय जो एक समय की है और ध्रुव है, ऐसे अस्तित्व में सत् में द्रव्य है। परन्तु बर्तन में घी है, वैसे सत् में द्रव्य है, ऐसा नहीं है। द्रव्य और अस्तित्व दो तो अनन्यमय है। कैसी बातें! समझ में आया?

अस्तित्व से अन्यमय नहीं। कौन? वस्तु। बर्तन और घी अन्य है, वैसे आत्मा और परमाणु अस्तित्व से अन्य आत्मा उसमें रहता है, द्रव्य अन्य उसमें रहता है, ऐसा नहीं है।

अस्तित्व और द्रव्य दोनों एक ही वस्तु है। समझ में आया? पर्याय नहीं। यहाँ गुणगुणी तो ठीक परन्तु गुण और पर्याय दोनों में द्रव्य रहा हुआ है। गुण और पर्याय दोनों में रहा हुआ द्रव्य परन्तु किस प्रकार से रहा हुआ है? कि घी जैसे बर्तन में रहता है, ऐसा नहीं है। वह तो अस्तित्व में रहा हुआ वही द्रव्य, ऐसा। अस्तित्व / होनापना सामान्य-विशेष में रहा हुआ द्रव्य, वही वस्तु है। द्रव्य कोई भिन्न चीज़ है और सामान्य-विशेष सत् में द्रव्य रहा हुआ है, ऐसा नहीं है। गजब बात, भाई! समझ में आया? यह संयोगी सम्बन्ध है, वह तो पर्याय का सामान्य-विशेष वह स्वयं ही द्रव्य है। ऐसा कहते हैं। सामान्य-विशेषपना, वही स्वयं द्रव्य है, ऐसा। सामान्य-विशेष का अस्तित्व भिन्न है और उसमें रहा हुआ द्रव्य है, ऐसी कोई भिन्न चीज़ नहीं है।

क्योंकि वे सदैव अपने से निष्पन्न (अर्थात् अपने से सत्) होने के कारण... क्या है? सदा स्वयं से सत् होने के कारण। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु स्वयं से सत् होने के कारण अस्तित्व से अनन्यमय है। एकमेक है। आत्मा अपनी पर्याय विशेष और सामान्य से एकमेक है। समझ में आया? बर्तन और घी जैसे एक नहीं है, वैसा इसमें नहीं है। खबर नहीं होती इसमें कहीं लोगों को! कि यह क्या कहते हैं?

भगवान आत्मा अन्दर वस्तु है, कहते हैं कि उसका सामान्यपना अर्थात् ध्रुव। विशेषपना अर्थात् उत्पाद-व्यय की पर्याय। यह तीन होकर अस्तित्व है। और उस अस्तित्व की सत्ता में रहा हुआ द्रव्य है। 'सत्द्रव्यलक्षणम्' यह सत्। परन्तु यह सत ऐसा नहीं कि जैसे बर्तन में घी रहे, वैसे सत् में द्रव्य रहता है, ऐसा नहीं है। यह सत्मय ही द्रव्य है। समझ में आया? यह भाषा की जो पर्याय है, वह परमाणु की विशेष अवस्था है। और परमाणु जो है, वह ध्रुव है। उस सामान्य और विशेष में रहे हुए परमाणु द्रव्य है। परन्तु उस सामान्य-विशेष में रहे हुए परमाणु ऐसे नहीं कि जैसे बर्तन में घी रहे वैसे। वह तो सामान्य-विशेष का अस्तित्व, वही अनन्य द्रव्य है। अरे! गजब! यह तो पंचास्तिकाय है। वजुभाई!

(पंचास्तिकाय के) श्रीमद् ने अर्थ किये हैं। इसमें किये हैं न? मूल गाथा के अर्थ किये हैं। पूरे पंचास्तिकाय के। बहुत सरस है। उपोद्घात में भी है न? रहस्य जैन निर्ग्रन्थ मार्ग के कारण है और फिर सद्गुरुदेवाय नमः। कुन्दकुन्दाचार्य को सद्गुरुदेवरूप से

स्थापित कर फिर इसके-पंचास्तिकाय के अर्थ किये हैं। समझ में आया? लो! और याद आया न? अर्थ किये हैं न? किस वर्ष में है? लो, यही आया। ओम सर्वज्ञाय नमः, ऐसा कह दिया वापस। नमः सद्‌गुरुदेवाय, यह कुन्दकुन्दाचार्य को वन्दन किया है। फिर अपने यह चलता है न? तीसरीः—पंचास्तिकाय के समूहरूप अर्थसमय को सर्वज्ञ वीतरागदेव ने लोक कहा है, इससे उपरान्त मात्र आकाशरूप अनन्त ऐसा अलोक है। इतना अर्थ। शब्दार्थ किया न? अब देखो चौथी। जीव, पुद्‌गलसमूह, धर्म, अधर्म तथा आकाश वे अपने अस्तित्व में नियम से रहे हैं। देखो, महासिद्धान्त। शब्दार्थ ही किया है। जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश - ये अपने अस्तित्व में नियम से निश्चय से रहे हुए हैं। अपनी सत्ता से अभिन्न हैं। अनन्य हैं। बर्तन में घी है, ऐसा नहीं। परन्तु जैसे घी में सफेदी है, सफेदी में जैसे घी है; मिठास में जैसे शक्कर है, वैसे ये हैं। समझ में आया? अपनी सत्ता से एकमेक है और अनेक प्रदेशात्मक है, लो, यह चौथी। देखो, यहाँ अकेला शब्दार्थ किया है न मात्र? और यह तो उसकी टीका है। यह एक-एक रजकण और एक-एक आत्मा या एक-एक कालाणु आदि यहाँ अस्तिकाय में नहीं है। लिखा सबमें ले लेना। एक सामान्य-विशेषपना उसके अस्तित्व में है। सामान्य अर्थात् कायम रहना और विशेष अर्थात् वर्तमान अवस्थारूप रहना।

ऐसा कायम नित्य परिणामी वस्तु। नित्य अर्थात् सामान्य ध्रुव। उत्पाद-व्यय, वह विशेष। उसमें रहा हुआ द्रव्य है। वह उसका पूरा अस्तित्व सत्, उसमें रहा हुआ वह द्रव्य है। परन्तु वैसा कैसा है? कि सत् में रहा हुआ द्रव्य अनन्यमय है। भिन्न-भिन्न नहीं। क्या कहा? जैसे कि यह शब्द की पर्याय होती है, इसलिए सुननेवाले को ज्ञान की पर्याय उत्पाद होती है, ऐसा नहीं है। उसकी ज्ञान की पर्याय के विशेषपने का अस्तित्व और ज्ञानगुण का ध्रुवपना उस सामान्य-विशेष में रहा हुआ वह द्रव्य है, इसलिए वह विशेषपना उससे रहा हुआ है। समझ में आया? भाषा से हुआ नहीं। अरे! गजब बात! ले-छोड़े कौन? यह और ठीक निकाला। परन्तु वस्तु इस प्रकार से है, उसमें लेना तो किसे? यह कहते हैं कि ऐसा शब्द पड़े, ऐसा वहाँ ज्ञान हो, ऐसा मेल कौन करता था? परन्तु वह तो वहाँ ज्ञान की पर्याय, उसका ज्ञानगुण है न? त्रिकाली गुण है। जीवद्रव्य है, ज्ञानगुण है। उस गुण का वर्तमान विशेष जो पर्याय है, वह उसकी होती है।

मुमुक्षु : परन्तु उसका मेल कौन करता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु मेल कौन ? परन्तु मेल अर्थात् क्या ? मेल अर्थात् क्या ? भाषा की पर्याय भाषा में होती है, उसकी पर्याय उससे होती है, उसमें मेल क्या दूसरा करना है ?

मुमुक्षु : सुमेल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुमेल अर्थात् ? निमित्त-निमित्त का सुमेल। दूसरा इससे हुआ, ऐसा मेल नहीं। तब तो उसका विशेष अस्तित्व स्वयं से रहता नहीं। पर के कारण यदि उसे विशेष ज्ञानपर्याय, दर्शनपर्याय, चारित्रपर्याय कोई भी पर्याय विशेष हो तो उसका सामान्य-विशेषपने का अस्तित्व नहीं रहता। उसका विशेषपना पर के कारण हुआ। स्वयं के कारण विशेषपने सत् है, ऐसा तो रहता नहीं। समझ में आया ? गजब बात, भाई !

भ्रम टाल दे, ऐसी बात है। भ्रम टालने के लिये तो लिखा है। ऐ... शान्तिभाई ! क्या कहते हैं यह ? यहाँ तो भ्रमणा टालने के लिये बात है। तुझे तेरी खबर नहीं, तू किसमें किस प्रकार अस्तित्वरूप है ? तेरा सामान्यपना तो कायम है। परन्तु क्षण-क्षण में जो विशेषपना होता है, वह विशेषपना भी तेरे अस्तित्व के कारण तेरे सत् में तुझे होता है। वह विशेषपना पर के सत् के कारण और पर के कारण से होता है, ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है। ऐसा निर्णय करना - ऐसा कहते हैं। आहाहा !

देखो न ? निर्णय करना कहा नहीं इसमें ? देखो ! आहा ! तूने निर्णय किया। कहाँ आया ? चौथी। नहीं, नहीं, इस संस्कृत में। '**तेषामुत्पादव्ययध्रौव्यमय्यां सामान्यविशेषसत्तायां नियतत्वाद्व्यवस्थिततत्पादवसेवम्।**' है न ! अव-अव निश्चय। कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। समझ में आया ? तेरी वर्तमान एक समय की अवस्था की पर्याय तुझसे तेरी सत्ता में है। पर के कारण बिल्कुल उसमें कुछ होता नहीं। कल आया था न शब्द के मारे मर गये रे। ऐ मोहनभाई ! वह तो-शब्द तो निमित्त है। शब्द भी इस जगत के परमाणुओं की विशेष अवस्था है। परमाणु कायम रहनेवाले सामान्य हैं, उनकी एक विशेष दशा है। वह भी विशेष और सामान्य अस्तित्व में रहा हुआ वह पदार्थ है। उस पदार्थ की पर्याय दूसरे के ज्ञान की विशेष पर्याय करावे, ऐसा है नहीं। यह तो अपने आ गया।

प्रवचनसार में अन्तिम नहीं? अन्तिम। हम शब्दों के करनेवाले हैं, ऐसा तू न मान। अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं)। हम शब्दों के करनेवाले, ऐसा न मान। और शब्द तुझे ज्ञेय बनावे अर्थात् ज्ञान की पर्याय करावे, ऐसा न मान। और शब्द की रचना हमने की है, शास्त्र के व्याख्याता हम हैं, वाणी उसकी व्याख्येय है और वह उसका ज्ञेय हो सकता है, ऐसे तीनों भिन्न-भिन्न—ऐसा है ही नहीं। आहाहा!

ऐसा वीतराग का तत्त्व लोगों को... आहाहा! वस्तु निःसन्देहरूप से इस प्रकार से है, उसमें प्रश्न क्या? आहाहा! ऐसा न हो तो दूसरे प्रकार से वस्तु साबित, सिद्ध विशेषपना सामान्यपना सिद्ध होगा ही नहीं। हें? आहाहा! कहो, समझ में आया? कहते हैं कि यह मन्दिर के जो परमाणु कायम हैं, वे ध्रुव और यह अवस्था हुई, यह उसका विशेष। इस सामान्य-विशेष में रहा हुआ उसका अस्तित्व है। उसकी विशेष पर्याय को शुभभाववाला दूसरा जीव करे, ऐसा नहीं है। ऐई! बराबर है। यहाँ उसे सब बड़ा करना है न? परमागम मन्दिर। कहते हैं कि उसके एक-एक परमाणु सामान्यरूप से रहनेवाला और उस क्षण की उसकी उत्पाद-व्यय की अवस्था विशेषरूप से रहनेवाली; रहनेवाली अर्थात् अस्तित्व। इस प्रकार से उसके सामान्य और विशेष में परमाणु रहा है। उस क्षण के विशेष को दूसरा कोई आत्मा या दूसरा कोई परमाणु उसके विशेष के अस्तित्व को उत्पन्न करे, उसके कारण विशेषपना रहे, ऐसा नहीं है। चन्दुभाई! बराबर है? ऐई!

निमित्तरूप से तो उसके घर में रहा। निमित्त की अवस्था निमित्त में रही, उसमें किसे क्या पर्याय आयी? भावनिमित्त। भावनिमित्त, परन्तु निमित्त अर्थात् क्या? निमित्त अर्थात् उसकी पर्याय उसमें और इसकी पर्याय इसमें, इसका नाम निमित्त। कहो, समझ में आया? यह तो यहाँ कहते हैं। स्वयं दूसरे से न हो, वह स्वयं से हो, वह तो यहाँ सिद्ध करते हैं। निमित्त से एक प्रतिशत नहीं होता। समझ में आया? पानी गर्म हुआ, वह उष्ण की अवस्था पानी के रजकणों की विशेष अवस्था है। उसके रजकण कायम रहनेवाले, वे सामान्य हैं। वह सामान्य और विशेष में रहा हुआ अस्तित्व और सत् में रहा हुआ वह द्रव्य है परमाणु। इससे कोई ऐसा कहे कि अग्नि की उष्ण अवस्था, निमित्त है; इसलिए हुई है - ऐसा नहीं है। उष्ण निमित्त का है या उष्ण अग्नि हुई है? अग्नि तो अग्नि में रही है, गर्म तो यह हुआ है। इसमें हुआ है, इस काल में हुआ है, इससे हुआ है। कहो, समझ में आया?

दिखता हैं न वहाँ ? इस काल में हुआ परन्तु इससे, ऐसा कहाँ दिखता है ? इस काल में हुआ तो वह इसका विशेष भाव है। पानी का विशेष भाव अस्तित्व का विशेष उत्पाद-व्यय वह उसका है। यह विशेष उत्पाद-व्यय उस अग्नि का नहीं। समझ में आया ? गजब बात, भाई ! ऐई ! यह रोटी की उत्पाद-व्यय की पर्याय विशेष उसके रजकणों का ध्रुवपना सामान्य। इस सामान्य और विशेष में वे रजकण 'सत्‌द्रव्यलक्षणम्' ऐसा। वह सत् तीन होकर, हों ! तीन होकर। इन तीन में द्रव्य रहा। रहा अर्थात् वह है, ऐसा। अनन्यमय है। एक दूसरी चीज़ है, उसका ज्ञान कराने को कथन है। कहो, समझ में आया ? सदा अपने से सत् है। इसलिए वह अनन्यमय है, ऐसा है।

प्रत्येक रजकण और प्रत्येक आत्मा स्वयं से निष्पन्न है। निष्पन्न अर्थात् सत् है। स्वयं से अस्तित्वरूप है, ऐसा कहते हैं। सदा अपने से अस्तिरूप है। ध्रुव और विशेषपना सदा अपने से अस्तिरूप है। ध्रुव और विशेषपना। जगत को दिक्कत विशेष में है न ? तो यहाँ कहते हैं कि प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक आत्मा का विशेषपना स्वयं से है। नवनीतभाई ! परन्तु वह कहाँ विशेष बिना का है ? विशेष के अस्तित्व बिना का है कि दूसरे के कारण उसमें आवे ? 'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्' और 'सत्‌द्रव्यलक्षणम्', यह यहाँ सिद्ध करते हैं। आहाहा ! महासूत्र तत्त्वार्थसूत्र में।

कहते हैं कि एक मिश्री की डली जीभ के ऊपर पड़ी। और उसका जीभ को ज्ञान हुआ। ज्ञान हुआ कि यह मीठी है। यह मीठी है, हों ! मैं मीठा हूँ, ऐसा नहीं। तो कहते हैं कि मीठी जो अवस्था है, वह मिश्री के विशेष अस्तित्व में रही हुई है। और यहाँ ज्ञान हुआ, वह अपने उत्पाद के विशेष अस्तित्व में हुआ है। उस मिश्री के कारण ज्ञान की पर्याय हुई है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? बर्तन और घी की भाँति **अस्तित्व से अन्यमय नहीं है; क्योंकि वे....** वे अर्थात् पदार्थ जीव और पुद्‌गल। **सदा...** अर्थात् तीनों काल। **अपने से...** सत् है। सामान्य-विशेष अपने से सत् है। **होने के कारण (अस्तित्व से) अनन्यमय है (जिस प्रकार अग्नि उष्णता से अनन्यमय है उसी प्रकार)....** लो ! दृष्टान्त दूसरा दिया, देखा वह बर्तन और घी का छोड़ दिया। उष्णमय।

अग्नि उष्णता से अनन्यमय है। तथापि अग्नि उष्णमय है, ऐसा कहा जाता है परन्तु

वह उष्ण और अग्नि कहीं भिन्न चीज़ नहीं है। अग्नि उष्णता से अनन्यमय है इसी प्रकार। **'अस्तित्व से अनन्यमय ' होने पर भी...** अब देखो, दो नय सिद्धान्त करते हैं। अस्तित्व से एकमेक होने पर भी प्रत्येक आत्मा और परमाणु अस्तित्व की सत्ता से एकमेक होने पर भी, उनका अस्तित्वमय अर्थात् होनापने में **'अस्तित्व में नियतपना' नयप्रयोग से है।** अस्तित्व में नियतपना रहा हुआ-निश्चित रहा हुआ अस्तित्व में निश्चित रहा हुआ नय के प्रयोग से है। ये दो नय भगवान ने कहे हैं। समझ में आया? देखो, दो नय उसी और उसी में समाहित करते हैं। पर के कारण से नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आत्मा विशेषरूप हुआ, वह सत्। अब उस सत् में आत्मा है, उसे ऐसा कहना, यह व्यवहारनय हुआ। और सत्‌रूप है, वह निश्चयनय हुआ। परन्तु उसमें पर की अपेक्षा से व्यवहारनय और अपनी अपेक्षा से निश्चयनय, ऐसा नहीं। ऐसा यहाँ तो कहते हैं। फिर से। समझ में आया?

क्या कहा, देखो! जीव... परमाणुओं का होनापना में अस्तित्व है न? अस्तित्व में अर्थात् होनापने की सत्ता में-सत्ता में। अस्तित्व में। नियतपना अर्थात् निश्चित रहा हुआ। यह नय प्रयोग से है। नय के प्रयोग के व्यापार दो प्रकार से है। दो नय भगवान ने कहे हैं। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। एक द्रव्य-अर्थिक—द्रव्य वस्तु जिसका प्रयोजन है और पर्याय जिसका प्रयोजन है, ऐसे **भगवान ने दो नय कहे हैं। वहाँ कथन एक नय के आधीन नहीं होता किन्तु उन दोनों के आधीन होता है।** परन्तु यह दोनों नय के आधीन एक ही द्रव्य में दोनों समाते हैं, ऐसा। समझ में आया?

व्यवहारनय से पर के कारण हुआ और निश्चय से स्व के, ऐसा यहाँ कुछ नहीं। मात्र वह वस्तु है। आत्मा और यह रजकण, इसकी विशेष अवस्था वर्तमान उत्पाद-व्यय और कायम ध्रुव। ऐसे तीन का एकपना सत्, उस सत् में आत्मा है। अनन्यमय है। अनन्यमय रहा हुआ है, उसे जानने के लिये दो नय है। उसी और उसी में के नय। **वहाँ कथन एक नय के आधीन नहीं होता किन्तु उन दोनों के आधीन होता है। इसलिए वे पर्यायार्थिक कथन से जो अपने से कथंचित् भिन्न भी है।** कौन? अस्तित्व। अस्तित्व गुण है न वह। अस्तित्व, द्रव्य उसमें होनेपने है। इस अपेक्षा से कथंचित् व्यवहारनय से, पर्यायनय से भिन्न भी है। परन्तु वह पर्यायनय, हों! पर के कारण ऐसा है, वह तो यहाँ बात है ही नहीं। भाई! क्या कहा, समझ में आया?

दो नय कहे, परन्तु दो नय में एक नय स्व से होता है और दूसरा नय पर से होता है, यह प्रश्न यहाँ है ही नहीं। उसके अस्तित्व का विशेषभाव वह सामान्य। उसका जो अस्तित्व। उस अस्तित्व में जो है, वह भेददृष्टि से देखने पर वह पर्यायार्थिकनय से बराबर है। परन्तु पर्यायार्थिकनय के आधीन यह है कथंचित् भिन्न। वस्तु और वस्तु जो सत् में रही हुई है, वह अभी भेद से पर्यायनय से है। पर के कारण कुछ है, यह प्रश्न यहाँ है नहीं। अरे! गजब बात, भाई! समझ में आया?

भाई! यह पुस्तक सामने आयी, इसलिए यहाँ विशेष ज्ञान की पर्याय हुई, यह पर्यायनय से कथन है। हें? ऐसा नहीं। उसमें पर्यायनय से अर्थात्? है जो सामान्य-विशेष अस्ति होनेपनेरूप उसमें 'है'—ऐसा भेद पाड़कर कथन, वह पर्यायार्थिकनय का कथन है, ऐसा कहते हैं। उसमें है, इतना कहा न? वह किससे है पर से, यह प्रश्न व्यवहारनय का भी नहीं यहाँ तो। आहाहा! समझ में आया?

ओहो! सन्तों ने जंगल में रहकर ऐसे सिद्धान्त कहे, वह भी व्यवहारनय से कहे जाते हैं। नहीं। नहीं। अनन्यमय कहा, वह बराबर है। परन्तु अनन्यमय अर्थात् सत्‌रूप वह है, ऐसा। परन्तु अब सत् में है, सत् में है, वह कथंचित् पर्यायभेद हो गया। भेद पड़ गया न, इतना। सामान्य-विशेष अस्तित्व में द्रव्य है, ऐसा हुआ न? इतना भेद पड़ गया, इतना। अस्तित्व में 'यह' है। 'यह' इतना भेद पड़ गया न? पर के कारण से है, यह प्रश्न तो यहाँ है नहीं। समझ में आया? यह तो बहुत सादी बात है। जरा सा भी व्यापारी को यह करना पड़ेगा या नहीं? ऐ, भीखाभाई! यह चूड़ी के व्यापारी हैं न। सवेरे से थे। लड़का कहलाता है। वहाँ जाये थोड़ी देर जाये। वहाँ चैन पड़े। घण्टे दो घण्टे जाये, जाँच करे, कैसा है, कैसा नहीं? घर जा आवे। समझ में आया? परन्तु कहते हैं कि वहाँ जो पर्याय उत्पन्न होने की और जो द्रव्य है, वह सामान्य-विशेष सत्ता में रहा है, ऐसा कहना, उसके कारण वह पर्यायनय से कथन है और वह अनन्यमय है। वह स्वयं सत्‌रूप है—ऐसा कहना, वह द्रव्यार्थिकनय का कथन है। अरे! आहाहा!

दो नय भगवान ने कहे। परमेश्वर की वाणी में दो प्रकार आये हैं। एक-एक तत्त्व को सत् में रहा हुआ, इतना कहना, वह कथंचित् भिन्नता हुई। समझ में आया? मिठास में

शक्कर है। देखो! इतना भेद पड़ा या नहीं? यहाँ तो मिठास में शक्कर है। यहाँ तो सत्ता में द्रव्य है, ऐसा लेना है न? ध्रुवपने में नहीं लेना। यहाँ तो गुण-पर्याय दोनों की सत्ता है, दोनों की ध्रुव उसमें है। उसमें सामान्य-विशेष सत् में द्रव्य है। समझ में आया? इसलिए पर्याय से भेददृष्टि से कथन करें तो कथंचित् पर्याय से वह भिन्न भी कहा जाता है। **ऐसे अस्तित्व में व्यवस्थित (निश्चित स्थिति) हैं....** लो! उसका अस्तित्व विचार करे तो विचार थोड़ा-थोड़ा यहाँ तो चले ऐसा है। धीरे-धीरे तो कहा जाता है, यह तो यहाँ वेग नहीं होता। यह आत्मा और उसकी गुण-पर्याय, वह सब सामान्य और विशेष का अस्तित्व हुआ। परमाणु, उनका सामान्य और विशेष का अस्तित्व हुआ। आहाहा! यहाँ तो दूसरी बात है। इसमें ठीक आया है। सहज दूसरी चीज़ देखकर यह अच्छी है, ऐसा जो उत्पाद हुआ, समझ में आया? वह परवस्तु देखकर हुआ है? और दूसरी (वस्तु) अच्छी है, इसलिए अच्छा ऐसा उसे विकल्प का ज्ञान आया है? समझ में आया? वस्तु कोई अच्छी-बुरी है ही नहीं। वस्तु तो ज्ञेय है। तो यह अच्छी है। शरीर सुन्दर है, यह वाणी सुन्दर है। यह मिट्टी हमें प्रेम होता है, ऐसा कोई कहे तो वह खोटी बात है, कहते हैं। वह प्रेम की उत्पत्ति तेरे विशेष अस्तित्व में है। उसके कारण से अस्तित्व की उत्पत्ति है नहीं। संजय!

किसी के अस्तित्व के प्रकार के कारण, किसी के अस्तित्व में उसका कुछ होता है, यह तो यहाँ इनकार किया है। समझ में आया? भगवानजीभाई! यह तो समझ में आये ऐसा है। यह तो सादी भाषा है। इसमें कुछ बहुत ऐसा नहीं है। है तत्त्व सूक्ष्म, परन्तु ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। इस प्रकार से है, वैसे उसे ज्ञान में लेना चाहिए। विपरीत करे तो वह ज्ञान खोटा है, भ्रमणा है और अज्ञान है। आहाहा! लो! इस ज्ञान में से ज्ञान आया नहीं। ज्ञान स्वयं विशेषरूप परिणमा है। परन्तु यही कहा न? विशेषरूप परिणमा है। दूसरा यहाँ कोई विशेषरूप वहाँ परिणमने गया नहीं। मूल तो सामान्य-विशेष का चलता था न अपने उस दिन यहाँ। बंसीधरजी आये तब पहले-पहले। सेठ के साथ आये नहीं? प्रवचनसार की ४८ और ४९वीं गाथा। वे कहें, उसमें क्या है? अरे! उसमें तो सब है। कहा, इसमें क्या है? क्या नहीं? कुछ उसका मेल नहीं। तेरा निमित्त उड़ जाता है, उसमें ऐसा है। निमित्त से होता है, यह कहते हैं तेरा विशेषपना तेरे कारण से है, उसमें निमित्त से विशेष होता है, यह भाग उड़ जाता है, उसमें वह है। आहाहा! हें? हाँ। अरे! ज्ञानी से ज्ञान होता है, लोग

क्यों भूलते हैं। जिनवाणी में आता है न! यहाँ तो कहते हैं वे सब निमित्त के कथन हैं। ज्ञानी का निमित्त था, वह कथन है। परन्तु ज्ञानी से यहाँ ज्ञान होता है, ऐसा वस्तु का स्वरूप ही नहीं है। आहाहा! वह तो अज्ञानी निमित्त नहीं होता, इतना बताने को वह बात की है। परन्तु ज्ञानी से ज्ञान होता है, दीपक से दीपक होता है, नहीं आता? वह तो आता है और दोनों आते हैं। ध्यान का भी आता है। वहाँ कषाय की अग्नि है। व्यवहार की बात की है। सिद्ध का ध्यान करके, सिद्ध का ध्यान करके स्वयं अपने में समाये, तब ध्यान कहलाता है। कहो, समझ में आया? यहाँ तो क्या कहते हैं? सिद्ध भगवान तो अन्य चीज़ है, तो अन्य पर्याय के कारण यहाँ ध्यान की पर्याय और स्थिरता होगी? सिद्ध की पर्याय वह द्रव्य का विशेषपना है। उनका आत्मा त्रिकाली ध्रुव। अब उनकी-सिद्ध की पर्याय तो उसका विशेष है। अब वह विशेष-सामान्य में रहा हुआ आत्मा है। अब उसकी विशेषसत्ता में रहा हुआ आत्मा, उसकी यहाँ विशेष अवस्था उसके कारण यहाँ हो?

मुमुक्षु : जोरदार भेदज्ञान बतलाते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा मिले? वस्तु दूसरे प्रकार से (नहीं है)। यहाँ तो सामान्य-विशेष अस्तित्व ही सिद्ध नहीं होता, ऐसा सिद्ध करते हैं।

कोई भी गुण है, वह ध्रुव है। और उसकी उस क्षण की पर्याय, वह उत्पाद-व्यय। अब उत्पाद, व्यय और ध्रुव दूसरे प्रकार से सिद्ध नहीं होता। इससे उल्टा माने तो पूरे तत्त्व का ही लोप हो जाता है। आहाहा! परन्तु यह वस्तुस्थिति सिद्ध की है। **और द्रव्यार्थिक कथन से स्वयमेव सत्....** देखो! देखा? वह कथंचित् भिन्न पर्याय से देखें तो और द्रव्यार्थिक वस्तु से देखें तो महासत्ता सामान्य-विशेष है। वह स्वयं ही द्रव्य है, ऐसा। स्वयं ही द्रव्य है। कोई पृथक् नहीं है। **द्रव्यार्थिक कथन से स्वयमेव सत् (विद्यमान) होने के कारण अस्तित्व से अनन्यमय हैं।** उसके अस्तित्व के सामान्य-विशेष शक्ति से वह द्रव्य अनन्यमय (है), पृथक् नहीं है। एकरूप है। कहो, समझ में आया इसमें?

अब यहाँ कोई कहे कि हम तुम्हारे आधार से जीते हैं। भाई! यह कहते हैं, वह बात रहती नहीं, ऐसा कहते हैं। भाई! वस्तु में नहीं। यह तुझे निर्णय करना पड़ेगा। निश्चित करना पड़ेगा। स्वयं। हाँ। अमृतचन्द्राचार्य स्वयं महाभावलिंगी सन्त। जंगलवासी, वे ऐसा

कहते हैं कि तुझे निर्णय करना पड़ेगा। जैसा है, वैसा निर्णय नहीं करे और उल्टा निर्णय करेगा तो भ्रमणा में रहेगा। तब दिक्कत आती है न ? लो ! शुभभाव को हेय माने और गाँव-गाँव में कितने मन्दिर बनाते हैं, यह क्या है ? लोग ऐसा प्रश्न करते हैं, लो ! आज भायाणी का एक पत्र है, एक भाई को। भई, मुझे तो तुम्हारी बात अच्छी लगती है। मुझे तो प्रेम है, हों ! परन्तु मित्र पूछते हैं कि महाराज शुभ को हेय कहते हैं और मन्दिर गाँव-गाँव में बनावे। तो हमारे उत्तर क्या देना ? परन्तु कौन बनावे, बापू ! तुझे खबर नहीं। ऐई ! तुम्हारे काका विठ्ठलभाई भी कहते थे न, नहीं ? यह मन्दिर, भाई ! यह मन्दिर के रजकण हैं, अनन्त परमाणु हैं और उन परमाणुओं की विशेष अवस्था के काल में वहाँ पर्याय परिणमी है। दूसरे के विकल्प से या दूसरा कर्ता है, इसलिए हुई है, ऐसा है नहीं। उसके रजकणों में सामान्य-विशेषपने की सत्ता है, उसमें वे रहे हुए हैं। दूसरे के कारण वहाँ हुए हैं और रहे हैं, (ऐसा है नहीं)। आहाहा !

मुमुक्षु : अपने आप बनते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने आप बनते हैं। बने अर्थात् परन्तु वस्तु है या नहीं ? परिणमन है या नहीं ? बदलते हैं या नहीं ? बदलना उसका अस्तित्व है या नहीं ? तो अस्तित्वरूप रहते हैं, उसके अस्तित्वरूप होकर बदलते हैं और रहते हैं। ऐसे के ऐसे उघड़ते हैं। इसे भ्रम हो जाता है कि ताला ऐसे चाबी लगाऊँ तो खुलता है। कहते हैं, वह भ्रम है। आहाहा !

यह तो भेदज्ञान की बात है, बापू ! आहाहा ! विशेषपना तेरे द्रव्य से है। उसे द्रव्य के सामने देखना रहा। उसे विशेषपना पर से है, ऐसा देखना रहा नहीं। द्रव्य का विशेषपना द्रव्य से है। उसका विशेषपना पर से नहीं। विशेषपना मुझसे है और वह विशेषपना द्रव्य से द्रव्य का है। और उसे सामान्य के सामने देखना रहा। उसके विशेष के लिये पर के सामने देखना नहीं रहता। आहाहा ! कहो, बराबर है यह ? न्याय तो यह है, वस्तु तो ऐसी है। उसे कल्पित कर दूसरे प्रकार से माने, वह तो अनन्त काल से मानता है और भटकता है। दुःखी होकर भटकता है। आहाहा ! बराबर है या नहीं ? हिम्मतभाई ! परन्तु यह कहीं मण्डप-बण्डप अपने आप होगा ? भावनगर से किराया करके लकड़ियाँ मँगावे तब होगा।

कल रात्रि में कुछ लकड़ियाँ खड़कती थीं। मैंने तो कहा कहाँ होगा? रात्रि में आये थे? रात्रि में खड़कते थे। आहाहा!

भाई! क्षण-क्षण में उसका अस्तित्व जीव का जीव में है या क्षण-क्षण में जीव का अस्तित्व पर के कारण से है? परमाणुओं में भी क्षण-क्षण में विशेष का अस्तित्व उसमें उसके कारण से है या उसके विशेष का अस्तित्व दूसरे के कारण से है? यदि उसके कारण से न हो तो उसका उत्पाद-व्यय-ध्रुव का अस्तित्व सत् है, वह सिद्ध नहीं होता। आहाहा! ऐसा मानने से पर में सुख है, यह बुद्धि उड़ जाती है। समझ में आया? और पर में कुछ सुख-दुःख है, यह बुद्धि उड़ जाती है। पर के कारण सुख-दुःख है, यह बुद्धि जाने से अपनी कल्पना में जो सुख-दुःख की कल्पना है, वह तो विकृत है। द्रव्यस्वभाव निर्विकार है। ऐसे निर्विकारस्वभाव पर दृष्टि जाने से उसकी पर्यायबुद्धि टलकर द्रव्यबुद्धि होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ऐसा कि आत्मा को पर से सुख-दुःख नहीं। स्त्री, पैसा, कुटुम्ब, लक्ष्मी से, क्योंकि वह तो परपदार्थ है। सुख-दुःख की जो कल्पना उसमें होती है, वह तो इसका विशेष भाव है। विशेष भाव, वह विशेष अस्तित्व। अब जो विशेष अस्तित्व है, उसका सामान्य में से हुआ है तो सामान्य कौन है? सामान्य ध्रुव है, वह निर्विकारी वस्तु है। उसकी दृष्टि देने से विशेष सुख-दुःख की कल्पना का नाश होता है। समझ में आया? उसकी कुछ विशेषता पर के कारण से हुई नहीं है। विशेषता कल्पना में स्वयं के कारण से मानी है।

सुखी हूँ और दुःखी हूँ और धूल। अपनी कल्पना की जाल। पैसा-बैसा है, लड़का अच्छा, शरीर अच्छा, धूल अच्छी। कहाँ अच्छा था? वे तो सब, आहाहा! देखो न! क्षण में जवान लड़के, जवान लड़के क्या हुआ डॉक्टर शोध नहीं सकता। ले, यह तो किस प्रकार के डॉक्टर? ऐई! नवनीतभाई! हें! हाँ। श्वेताम्बर में मल्लिनाथ का लेख है। वे लोग मल्लिनाथ को स्त्री मानते हैं न, वह बात खोटी है। स्त्री ठहराया है। देवता ने वह कुण्डल दिया है। देवता ने दिया है। उस कुण्डल में जरा फेरफार हो गया। सोनी को बुलाया। गाँव के सोनी को। (बुलाया और कहा) कुण्डल को व्यवस्थित करो। वृद्ध पुराना-पुराना। देव ने दिया हुआ कुण्डल कहाँ से आया इस प्रकार का? सब सोनी बातें करने लगे। अपने

से होता नहीं। दरबार को कैसे कहना ? करना चाहिए होता नहीं तो ? तब तुम किसके कारीगर ? तुम्हारे से ऐसा क्यों नहीं होता ? देश बाहर। देश बाहर कर दिया। ऐई ! क्या आता है ? राजा का हुकम हुआ। तुम सोनी होकर यह कुण्डल नहीं सुधार सकते ? तो तुम सोनी कारीगर किसके ? चले जाओ हमारे देश में से। देश बाहर किये। ऐसा लेख आता है। यह तो सब खोटा।

मल्लिनाथ का अधिकार आता है न ? सोलहवाँ अधिकार है न ? इसमें सब आता है। वह सोनी महाजन ! तुम कारीगर नहीं ? कारीगर हो तो क्यों काम नहीं आता ? भाईसाहब ! यह कुण्डल कोई दूसरे प्रकार के हैं। हमने तो ऐसे कुण्डल देखे नहीं। कहाँ टूटा है, यह कुछ खबर पड़ती नहीं। उसमें डॉक्टर को कहीं चक्कर को क्या कहते हैं, चक्कर होता है न ? अब अट्ठाईस वर्ष का जवान व्यक्ति। चक्कर कहाँ से आते हैं, हमें खबर नहीं पड़ती। तो तब तुम डॉक्टर किसके ? कौन करे ? सब इस जाति के हों, उसमें करे किसे ?

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा की जो अन्दर कला है, विशेष आत्मा की कला स्वयं से प्रगट होती है। वह पर से नहीं होती। और अपना लक्ष्य करे और आश्रय करे और सम्यग्ज्ञान-विशेषता न हो, ऐसा हो नहीं सकता। ऐसा कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कोई पर से नहीं होता। आहाहा ! निसर्गज-अधिगमज, लो ! उसमें भी आता है। हें ? सब पहलू, निसर्गज-अधिगमज ऐसा आवे। निसर्गज-स्वयं से हो और अधिगमज-गुरु से हो, लो, ऐसा आता है। वह तो निमित्त का ज्ञान कराया है। उससे कुछ होता है, यह तो इनकार करते हैं। आवे न ? भाषा आवे तो ऐसी आवे न ? आत्मज्ञानी की सेवा नहीं की, इसलिए उसे आत्मज्ञान नहीं हुआ। ऐसा आता है। सेवा नहीं की तो क्या पैर दबाने थे ? वे क्या कहते हैं, इसे समझ में वह बात नहीं आयी, इसलिए इसने सेवा नहीं की। समझ में आया ?

एक ही परमाणु है, उसमें पर्याय और सामान्य दो के होने में रहा हुआ उसे दो नय से देखना। अस्तित्व में रहा हुआ ऐसा भेद पाड़ना, वह पर्यायार्थिकनय से है और स्वयं पूरा स्वयमेव सत् है, वह द्रव्यार्थिकनय। पर की अपेक्षा की कुछ बात ही यहाँ नहीं की। आहाहा ! देखो न ! समझ में आया ?

नय दो तो उसी और उसी में भेद और अभेद उतारा है। परन्तु व्यवहारनय से पर से कहना, निश्चय से स्व से कहना, एक तो नय भगवान ने कही न। कहो, इसमें बराबर है या नहीं? इसमें है या नहीं। परन्तु **पर्यायार्थिक कथन से जो अपने से कथंचित् भिन्न भी है...** भेद पड़ा न। अस्तित्व में यह आत्मा, ऐसा। अस्तित्व में यह द्रव्य परमाणु, ऐसा। **और द्रव्यार्थिक कथन से स्वयमेव सत् है।** स्वयं सामान्य-विशेष सत्‌रूप द्रव्य है। लो! स्वयं ही सामान्य-विशेष सत्‌रूप है। अर्थात् द्रव्य का द्रव्यार्थिकनय का विषय हुआ। देखो! समझ में आया?

अस्तित्व से अनन्यमय हैं। लो! भिन्न नहीं। अब **उनके कायपना भी है...** यह बात सिद्ध करते हैं। इतनी बात तो कही। अस्तित्व में सामान्य और विशेष के अस्तित्व में पदार्थ है। पर के कारण नहीं। सामान्य-विशेष के अस्तित्वरूप कहना, वह पर्यायनय से और स्वयमेव सत् है, वह द्रव्यार्थिकनय से। अब कायपना किस प्रकार है, यह बात कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

धारावाही प्रवचन नं. ६ (प्रवचन नं. ६), गाथा-४-५

दिनांक - २०-११-१९६९, कार्तिक शुक्ल १२, गुरुवार

पंचास्तिकाय। पंचास्तिकाय को समयसार कहा जाता है। इसकी चौथी गाथा। भगवान ने सर्वज्ञ ज्ञान में पाँच अस्तिकाय और छह द्रव्य, ऐसे देखे हैं। उसका कहते हैं कि यथार्थ व्यवहार से बराबर उसका ज्ञान होना चाहिए। समझ में आया ? निश्चय से तो अपने आत्मा के स्वभाव का ज्ञान, वह ज्ञान। वह मोक्ष के उपाय का ज्ञान। परन्तु उसके साथ ऐसा आत्मा के अतिरिक्त दूसरे द्रव्य हैं, वे कैसे हैं ? क्यों हैं ? प्रदेशी हैं या अप्रदेशी हैं। ऐसा इसे ज्ञान करना चाहिए। अपने में भी प्रदेश कायत्व है या नहीं, उसका भी ज्ञान इसमें इकट्ठा आता है। सत्ता की बात हो गयी।

प्रत्येक पदार्थ सामान्य-विशेष सत्तारूप है। आत्मा भी सामान्य-विशेष सत्तारूप है और परमाणु आदि सब। उसके गुण का सत्ता नाम का अस्तित्व है, उसमें वह रहा हुआ है, ऐसा कहना वह पर्यायनय से-भेदनय से कथन है। सत् ही स्वयं स्वयंसिद्ध है, वह द्रव्यार्थिकनय का कथन है। इस दो प्रकार से इसे निश्चय और व्यवहार से जानना चाहिए। अब उसमें कायपना।

कायपना अर्थात् ? आत्मा एक प्रदेशी है या असंख्य प्रदेशी है या अनन्त प्रदेशी है ?—यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। समझ में आया ? आत्मा असंख्य प्रदेशी है, यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त किसी जगह नहीं है। यह बात यहाँ सिद्ध करते हैं कि उन्हें कायपना है। पाँच, पाँच। जीव, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और पुद्गल। काल नहीं, पुद्गल। पाँच को अस्तित्वपना है और उनके प्रदेशों का समूहपना है। उनका स्वभाव ही ऐसा है। यह कायपना भी है। अकेला है ही पना (अस्तिपना) है। तदुपरान्त उसके बहुत प्रदेशों का समूहपना भी है। समझ में आया ?

ऐसा न जाने और आत्मा-आत्मा है और असंख्यप्रदेशी है, उसका क्षेत्र कितना स्वत: है, उसकी भी इसे खबर नहीं। और जीव के असंख्य प्रदेश हैं, उसमें संकोच-विकास होता है। वह एक प्रदेशी हो तो संकोच-विकास नहीं हो सकता। समझ में आया ?

वह क्षेत्र से असंख्य प्रदेश स्वरूप है। इसलिए संकोच-विकास का होना भी स्वयं के ही कारण से है; पर के कारण से नहीं। इसी तरह आत्मा के अतिरिक्त परमाणुओं का एक से दो और दो से तीन या अनन्त इकट्ठे होना और पृथक् होना, वह उनके स्वयं के कारण से उनका कायपना, प्रदेशपना, इकट्ठापना स्वयं के कारण से है। दूसरा द्रव्य उसे कायरूप करे, ऐसा नहीं है। क्योंकि कायवाला द्रव्य है। समझ में आया? वह यहाँ बताते हैं।

क्योंकि वे अणुमहान हैं। अणुमहान है। पाँचों ही अणुमहान है। ऐसा विशेषण है एक अन्त में। अब अणुमहान की व्याख्या। **यहाँ अणु अर्थात् प्रदेश (अंश)-मूर्त और अमूर्त निर्विभाग (छोटे से छोटे) अंश;....** वापस मूर्त के और अमूर्त के दोनों के। पुद्गल मूर्त है और दूसरे चार अमूर्त हैं। उनका निर्विभाग— भाग न हो, ऐसे अंश को प्रदेश कहते हैं। **'उनके द्वारा (-बहु प्रदेशों द्वारा) महान हो' छोटे में छोटा अंश, उसके द्वारा महान हो।** लो! ठीक! स्वयं आत्मा है, वह एक प्रदेशी नहीं। बहुत प्रदेशों द्वारा उसका क्षेत्र से महानपना है। वह पर के कारण से नहीं। उसमें परमाणु जो हैं... उसमें एक से अनन्त आदि इकट्ठे हों, असंख्य। वह अणुमहान, उसके स्वयं के कारण से है। दूसरा उसके अणुमहान को करे, ऐसा है नहीं। उसके तीन प्रकार आयेंगे। अब व्याख्या करते हैं। **अर्थात् प्रदेशप्रचयात्मक (-प्रदेशों के समूहमय) हो, वह अणुमहान है।** प्रदेश का समूह हो, प्रदेश प्रचयरूप स्वरूप हो, उसे अणुमहान कहते हैं।

इस प्रकार उन्हें (उपरोक्त पाँच द्रव्यों को) कायत्व सिद्ध हुआ। उन्हें कायपना है। वह आत्मा के असंख्य प्रदेश उसकी काय। शरीर उसकी काय नहीं। शरीर के अनन्त प्रदेश, वे उसकी काय। समझ में आया? **(ऊपर जो अणुमहान की व्युत्पत्ति की उसमें अणुओं के अर्थात् प्रदेशों के लिए बहुवचन का उपयोग किया है और संस्कृत भाषा के नियमानुसार बहुवचन में द्विवचन का समावेश नहीं होता, इसलिए अब व्युत्पत्ति में किंचित् भाषा का परिवर्तन करके द्वि-अणुक स्कन्धों को भी अणुमहान बतलाकर उनका कायत्व सिद्ध किया जाता है।)** यह क्या कहा? व्याकरण किया, परन्तु कहा क्या? कि क्रम से लेकर अधिकपने का अणुमहान में आता है। तीन, चार, पाँच, छह, असंख्य, असंख्य अनन्त। उसमें अणुमहान में आता है। परन्तु उसमें दो का नहीं आता

और एक का नहीं आता। तो अब उसे सिद्ध करते हैं। दो भी काय है और एक भी काय है। इस परमाणु को एक भी काय है। समझ में आया?

कालाणु है, वह किसी प्रकार से व्यवहार से काय नहीं और निश्चय से भी काय नहीं। वह तो अणु के एक रजकण को भी कायपना है। दो परमाणु को भी कायपना है। तीन से लेकर अनन्त को कायपना है, वह अणुमहान में आ जाता है। परन्तु उसे दूसरे प्रकार से अर्थ करके कहते हैं कि दो अणुओं द्वारा महान हो। वे तीन से अनन्त तक आ गये। परन्तु दो से लेकर भी उसे अणुमहान कहा जाता है। क्योंकि एक से दो हुए इसलिए। वे भी अणुमहान हैं। द्विअंक।

(अब, परमाणुओं को अणु महानपना किस प्रकार है, वह बतलाकर परमाणुओं को भी कायत्व सिद्ध किया जाता है।) एक रजकण भी अणुमहान। परमाणु भी अणुमहान। **व्यक्ति और शक्तिरूप से 'अणु तथा महान' होने से....** व्यक्तिरूप से अणु और शक्तिरूप से महान, ऐसा। क्या कहा यह? व्यक्तिरूप से एक, शक्तिरूप से महान क्योंकि उसकी शक्ति दो, तीन, चार में इकट्ठे होने की है, उपचार से।

(अर्थात् परमाणु व्यक्तिरूप से एकप्रदेशी तथा शक्तिरूप से अनेकप्रदेशी होने के कारण).... देखो! उसका स्वत: स्वरूप ऐसा है। आत्मा उन्हें दो और तीन को इकट्ठा करे, ऐसा नहीं है। आहाहा! या शरीर के रजकण-रजकण उनके कारण से एक के दो, दो के तीन, तीन के चार, चार के अनन्त ऐसे होते हैं। यह उनका कायत्व स्वभाव है। आत्मा उनके कायत्व को कुछ करे और फेरफार करे, यह है नहीं। इसमें लिखा नहीं। ऐई! ऐई, यह भी बड़े मकान कराते हैं न? वह तो अपने आप कराये थे, बड़े-बड़े दस-दस लाख के उनके राज में। राजा भी इनके जैसा था। उसे मकान का शौक था। इंजीनियर को इसलिए रास आ गयी बात। होशियार थे। तब व्याख्यान में आये थे न? इकरानवें में व्याख्यान में आये थे। वे और उनका कुँवर... दोनों आये थे। व्याख्यान में आये थे। बड़े राजा, लो! दस-दस लाख की आमदनी। हस्ताक्षर करना पड़ा, आँख में से आँसू की धारा। लो! यह पुण्य कम हुआ। राज हो... राजकुमार। ऐसा उसका दिखाव। फिर पागल हो गया। हाँ, परन्तु मस्तिष्क फिर गया। नहीं तो ऐसा दिखाव था राजबीज। क्षत्रियबीज दिखाव। दूसरे

साधारण ऐसे बहुत कम दिखते हैं। समझ में आया ? पोरबन्दर। वह भी जब हस्ताक्षर करने पड़े न महाराज! आहाहा! आँख में से आँसू की धारा बह जाये। देखो! यह पुण्य समाप्त हुए। उस पुण्य के कारण संयोग दिखता था। पुण्य जहाँ समाप्त हुआ वहाँ सब फेरफार। हाय! हाय! अब ? लड़के लड़कों का राज नहीं रहा। पेढी की परम्परा से राज का हक चला गया। यह संसार!

यह कायपना सब संसार में इकट्ठा होना और पृथक् पड़ना, यह इसके स्वभाव के कारण से है। आत्मा के कारण से है नहीं। आहाहा! समझ में आया ? इसमें क्या कहा ? यह पैसे के रजकण इकट्ठे होना और पृथक् पड़ना, वह कायपना है और वह उसके कारण से है। आत्मा पैसा संग्रह कर सके या प्रयोग कर सके, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। कहो, हीराभाई! भीखाभाई! हों ? ममता की सम्हाल करे। सम्हाल करे ममता की, कहा। बाकी उसका कुछ न करे। क्योंकि एक रजकण के बहुत रजकण में जाना होना या बहुत रजकण में से थोड़े का होना, थोड़ी कायपने और बहुत। वह उसका स्वत: स्वभाव है। आत्मा उसमें कुछ कर सके, ऐसा आत्मा के अस्तित्व में पर के कायपने के अस्तित्व में फेरफार कर सके, ऐसा आत्मा के अस्तित्व में नहीं है। समझ में आया ?

पूरा आत्मा के अतिरिक्त परवस्तु का अत्यन्त भिन्नता का अभिमान छुड़ाया। वह वस्तु मेरी नहीं। मैं उसका जाननेवाला, मेरे जाननेवाले के अस्तित्व में मैं हूँ। ज्ञात हो, ऐसी चीज़ छोटी-बड़ी हो, कम-ज्यादा हो, क्षेत्रान्तर-रूपान्तर हो, उसके कायपने में मेरा जरा भी अधिकार नहीं है। कहो, समझ में आया इसमें ? यह एक परमाणु के भी शक्तिरूप से तो है, कहते हैं। काय तो सिद्ध होती है। **उनके एकप्रदेशात्मकपना होने पर भी, (अणुमहानपना सिद्ध होने से) कायत्व सिद्ध होता है।** शक्तिरूप से है न ? एक परमाणु में दो, तीन, चार होने की अर्थात् ? स्कन्धरूप से व्यवहार से होने की उसमें योग्यता है न ? इतना। इसलिए एक परमाणु को भी कायपना उपचार से कहा जाता है। समझ में आया ? आहाहा! यह है परज्ञेय परन्तु इस ज्ञेय का जानने का सामर्थ्य स्व का है। उस स्व के सामर्थ्य में इतना सब इस प्रकार से है, ऐसा जानना चाहिए। उस जानने की पर्याय की इतनी स्वीकृति हो, तब तो उसकी पर्याय को माना कहा जाता है। समझ में आया ?

कालाणुओं को व्यक्ति-अपेक्षा से तथाा शक्ति-अपेक्षा से प्रदेशप्रचयात्मक महानपने का अभाव होने से,.... लो ! कैसे ? एक परमाणु में स्निग्ध और रुक्षता के अंश बढ़ते-घटते हैं। पुद्गल की बात चलती है। देखो, जहाँ हाँ किया वहाँ ऐसा हो जाये। एक परमाणु में स्निग्ध और रुक्षता बढ़े-घटे, वह योग्यता स्व के कारण से है। इसीलिए जब बढ़े-तीन आदि हो तब दूसरे के साथ कायकपना हो, उपचारिता हो। छूटे तो उसमें कायपना। परन्तु उसमें शक्ति अपेक्षा से कायपना होने की योग्यता है। कालाणु में नहीं। कालाणु असंख्य होने पर भी उनमें स्निग्ध-रुक्षता में पर्याय अधिक-न्यून हो, इससे वह संयोगरूप काय कहलाये, ऐसा तो कालाणुओं में तो है नहीं। निश्चय से शक्ति से नहीं तथा प्रगटता से भी नहीं।

अब उसमें अनेकान्त किस प्रकार लगाना ? किस प्रकार कालाणु बहुत परमाणु कालाणु होने के योग्य है। और एक हो तो योग्य नहीं, ऐसा अनेकान्त करना ? कहो, उसमें है ही नहीं। उसमें स्निग्ध-रूक्ष है ही नहीं। कालाणु में स्निग्ध-रूक्षता है नहीं। कहाँ से हो ? परमाणु में स्निग्धता-रूक्षता की योग्यता है, इसलिए स्निग्धता-रूक्षता की योग्यता प्रमाण बहुत परमाणु में इकट्ठे हों। इकट्ठे तो व्यवहार की बात है। वह तो व्यवहार भी नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

इसीलिए, यद्यपि वे सत् (विद्यमान) हैं.... जगत में कालाणु असंख्य हैं, ऐसा भगवान ने देखा है तो विद्यमान सत् है। परन्तु वे कालाणु एक मिटकर दो साथ में इकट्ठे हों, ऐसी उनमें योग्यता नहीं है। इसलिए उन्हें कायपना नहीं कहा जाता। कहो, प्रवीणभाई ! ऐसी बात वीतराग के अतिरिक्त कहीं होगी ? सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ यह तत्त्व ऐसा तत्त्व सर्वज्ञ के सिवाय अन्यत्र कहीं नहीं हो सकता। यह बात सिद्ध करने और सच्चा तत्त्व इतना है, इतने हैं और इस प्रकार से है, ऐसा इसे ज्ञान कराने को यह बात कही जाती है। **उन्हें अस्तिकाय के प्रकरण में नहीं लिया है।** लो !

भावार्थ :- पाँच अस्तिकायों के नाम जीव,.... यह जीव कहलाये अन्दर। परमाणु को पुद्गल कहा जाता है। एक परमाणु को भी पुद्गल कहा जाता है। **धर्म, अधर्म और आकाश हैं।** यह भी उसके नाम हैं। **वे नाम उनके अर्थानुसार हैं।**

यह पाँचों द्रव्य पर्यायार्थिकनय से.... अब ऊँची बात आयी। **अपने से कथंचित् भिन्न ऐसे अस्तित्व में विद्यमान हैं....** आत्मा वस्तु है, उसका सत्ता अस्तित्वगुण है। अस्तिपना है, वह आत्मा अस्तिपने में है, ऐसा कहना वह पर्यायनय का, भेदनय का कथन है। **और द्रव्यार्थिकनय से अस्तित्व से अनन्य हैं।** भिन्न नहीं। यह आत्मा अस्तिवाले गुण से अस्तिवाला स्वयं है। अस्तिवाले गुण में रहा हुआ है, ऐसा नहीं। अस्तिवाला तत्त्व है। ऐसे परमाणु आदि अस्तित्व में रहे हैं, ऐसा कहना वह भेदनय है। और स्वयं ही स्वयं अस्तित्वरूप है, यह अभेदनय का द्रव्यार्थिकनय का कथन है। दोनों का ज्ञान वीतराग की वाणी में दोनों नय से ज्ञान यथार्थरूप से करना चाहिए। कहो, समझ में आया?

पुनश्च, यह पाँचों द्रव्य कायत्ववाले हैं.... कालाणु के अतिरिक्त। जीव असंख्यप्रदेशी है। वह श्रीमद् में भी ध्वनि आती है, 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम, दूसरा कितना कहे कर विचार तो पाम।' आता है न? 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम' सब आ गया पाँच में। भगवान आत्मा शुद्ध है। आत्मा अन्दर पवित्र है। बुद्ध अर्थात् ज्ञान की मूर्ति है। चैतन्यघन अर्थात् असंख्यप्रदेशी चैतन्य है। समझ में आया? और स्वयं ज्योति है। उसका प्रकाश भाव स्वयं है। दूसरे के कारण से स्वयं प्रकाशित होता है, ऐसा नहीं है। स्वयं प्रकाशित होता है। स्वयं अपने को प्रकाशित करता है और स्वयं रागादि रजकण को भी रागादि रजकण को भी प्रकाशित करे, ऐसा स्वयं प्रकाश स्वभाव है। उसके प्रकाश के लिये किसी दूसरी चीज़ की आवश्यकता पड़े, ऐसा आत्मा नहीं है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

सुखधाम। यह भगवान आत्मा आनन्द का क्षेत्र है, ऐसा कहते हैं। चैतन्यघन कहा न? स्वयं ज्योति आनन्द का क्षेत्र है, ऐसा। आनन्द का धाम है। आहाहा! समझ में आया? आनन्द का वह क्षेत्र है। वहाँ तो आनन्द का पाक हो, ऐसा वह आत्मा है। और उस आनन्द के पाक की दृष्टि होने से जो अनुभव हो, तब उसने आत्मा जाना और तब उसने धर्म किया कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

लाख बात की बात परन्तु उसे आत्मा का अनुभव और आनन्द आवे, तब उसने आत्मा को जाना। कहते हैं, **वे अणुमहान किस प्रकार हैं, सो बतलाते हैं:-** अणुमहान

आत्मापना, हों! **'अणुमहान्तः' की व्युत्पत्ति तीन प्रकार से है....** व्युत्पत्ति का अर्थ संस्कृत, उसका कुछ नहीं। अपने उसका न्याय। **अणुभिः महान्तः अणुमहान्तः अर्थात् जो बहुप्रदेशों द्वारा (-दो से अधिक प्रदेशों द्वारा) बड़े हों वे अणुमहान हैं। इस व्युत्पत्ति के अनुसार जीव (अनन्त), धर्म (एक) और अधर्म (एक) असंख्यप्रदेशीय होने से अणुमहान हैं;...** लो! **आकाश अनन्त प्रदेशी होने से अणुमहान है;....** उसका पढ़ा न भाई! यह क्या कहलाता है? गेंडालाल का। आज आया आज। आज मेरे पास आया। अनेकान्त का, स्याद्वाद का। अब तो उसमें विवाद उठा है सर्वज्ञ के माननेवाले के। सर्वज्ञ जानते अवश्य हैं परन्तु सब जाने तब तो पहली पर्याय कौन सी? आहाहा! ऐसे तीन पूछते थे। पहली पर्याय कौन सी? विशेष को सबको जाने तो विशेष नियत हो जाता है। तो क्रमबद्ध हो जाता है। इसलिए ऐसा नहीं होता। ऐसे बहुत तर्क-कुतर्क लगाते हैं। भाई! तुझे तेरी खबर नहीं। यह सर्वज्ञस्वरूपी ही आत्मा है। भले असंख्य प्रदेशी हो। समझ में आया?

परन्तु इसका स्वरूप ही सर्वज्ञ होने का अर्थात् सर्वज्ञ स्वरूप वर्तमान है। शक्तिरूप से वर्तमान है। व्यक्तिरूप से हो। शक्तिरूप से हो तो व्यक्तरूप से होता है। आहाहा! ओहोहो! सर्वज्ञ के नहीं माननेवाले ने तो विपरीतता की है। ऐसा बहुत कहा। श्वेताम्बर में ऐसा कहते हैं न, एक समय में ज्ञान, दूसरे समय में दर्शन। आधे काल ज्ञान का उपयोग और आधे काल दर्शन का उपयोग, यह डाला था। उसने सर्वज्ञ को खण्ड कर डाला। पूरे नहीं रहे। सर्वज्ञ पूरे नहीं रहे। वह यहाँ सर्वज्ञ माने नहीं। स्वयं ऐसे माने नहीं। और अब यहाँ आया दिगम्बर में, उसे यह क्रमबद्ध आया, वहाँ अब उन्हें-सर्वज्ञ को उड़ाने लगे। वे कहे, सर्वज्ञ सब जाने तो फिर क्षेत्र का अन्त भी जाने। और काल से पहली पर्याय है, ऐसा जाने। पहली पर्याय। पर्याय पहली हुई या द्रव्य उसके पहले था या नहीं? यदि द्रव्य था तो पर्याय बिना का द्रव्य रहा? आहाहा!

जगत को वीतराग का मार्ग समझना (बहुत कठिन)। त्रिकाली पर्याय यदि भगवान जाने तब तो अनन्त काल की पहली पर्याय कौन सी थी, वह भी जाने। परन्तु पहली थी कब? पहली पर्याय कहो तो उससे पहले द्रव्य था और पर्याय नहीं थी। तो द्रव्य था तो पर्याय बिना का था। तो द्रव्य पर्याय बिना का होगा? ऐसा विवाद है। ऐसे तो भाषा से सब

कहे, सर्वज्ञ और केवली, (परन्तु) उसका जो स्वभाव जिस प्रकार से है, उस प्रकार से उनके ख्याल में न आवे वहाँ दिक्कत आयी। समझ में आया?

तीन काल, तीन लोक को भगवान जाने असंख्यप्रदेशी सर्वज्ञस्वरूपी आत्मा है। अर्थात् एक ही प्रदेश में रहे, ऐसा नहीं है। ऐसे असंख्यप्रदेशी हैं, वे आकाश के एक प्रदेश में, दो प्रदेश में रह सके, ऐसा भी नहीं है। स्वयं एकप्रदेशी नहीं है। असंख्यप्रदेशी है। चैतन्यधाम घन, सुख का धाम है। वह सुख पूरे असंख्यप्रदेश में भरा है। वह स्वयं वापस एक आकाश के दो-चार प्रदेश में रह सके, ऐसा भी नहीं है। ऐसा महान है। आहाहा! समझ में आया?

आकाश के एक प्रदेश में इस जीव के असंख्यप्रदेशी हैं, इससे अनन्त-अनन्त गुणे परमाणु के स्कन्ध भी एक प्रदेश में रहे। परन्तु आत्मा उससे अनन्तवें भाग के प्रदेशवाला भी एक प्रदेश में नहीं रह सकता। ऐसा वह अणुमहान है। समझ में आया? आहाहा! एक आकाश के प्रदेश में एक जीव के पूरे-पूरे प्रदेश नहीं रह सकते। उसका असंख्यवाँ भाग रहता है। ऐसे-ऐसे अनन्त जीव के एक प्रदेश पर अनन्त प्रदेश रहे। एक जीव के असंख्यात में न रहे सब। इतना क्षेत्र से भी महान है। यहाँ तो काय से महान कहा है। परन्तु क्षेत्र से महान अर्थात् एक प्रदेश में न रहे, ऐसा तत्त्व स्वरूप है। समझ में आया?

एक जीव के असंख्यवें भाग के असंख्य प्रदेश हैं, उन असंख्यवें भाग का एक अंश असंख्य एक प्रदेश में रहे। दूसरा जीव उसका असंख्यवें भाग का असंख्य प्रदेश रहे। तीसरे जीव के असंख्यवें भाग में असंख्य रहे। ऐसे अनन्त-अनन्त जीव के एक प्रदेश में अनन्तवें भाग के असंख्य प्रदेश वहाँ रहे। ऐसे अनन्तगुणे हो गये असंख्य से। परन्तु एक जीव एक प्रदेश में रहे, ऐसा नहीं हो सकता। भाव से भी बड़ा और क्षेत्र से भी काय और रहने में भी बड़ा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया इसमें? आहाहा! भाव से महासर्वज्ञ, क्षेत्र से स्वयं कायरूप से असंख्यप्रदेशी, दूसरे के प्रदेश में रहे तो भी असंख्यप्रदेश हो तो ही रह सके। एक प्रदेश में रहे नहीं, इतना महान है। समझ में आया? अधिक अनन्त है न? अभी एक प्रदेश के ऊपर अनन्त एक आकाश के प्रदेश से अनन्तगुणे जीव के एक प्रदेश से अनन्तगुणे परमाणु उस जगह रहे। उस जगह पूरा जीव न रहे। इतना संकोच हो सकता ही नहीं।

ऐसा उसका स्वरूप ही ऐसा अस्तित्व है। समझ में आया ? हाथी के शरीर में जाये, उतना चौड़ा हो असंख्य प्रदेश। एक शरीर में अनन्त निगोद रहे। असंख्यवें भाग में असंख्य प्रदेश कम-ज्यादा नहीं होते, ऐसा ही उसका स्वरूप है। ऐसा जिसका अस्तित्व है। ऐसा उसका स्वभाव है, ऐसा उसे ज्ञान करना चाहिए। यदि फेरफारवाला ज्ञान हो तो वह ज्ञान विपरीत है, ऐसा कहते हैं। वह व्यवहार ज्ञान। समझ में आया ?

बड़े हों वे अणुमहान हैं। इस व्युत्पत्ति के अनुसार जीव, धर्म और अधर्म असंख्यप्रदेशीय होने से अणुमहान हैं; आकाश अनन्तप्रदेशी होने से अणुमहान है; और त्रि-अणुक स्कन्ध से लेकर अनन्ताणुक स्कन्ध तक के सर्व स्कन्ध बहुप्रदेशी होने से अणुमहान हैं। (२) अणुभ्याम् महान्तः अणुमहान्तः... अब दो आये। **अर्थात् जो दो प्रदेशों द्वारा बड़े हों, वे अणुमहान हैं। इस व्युत्पत्ति के अनुसरा द्वि-अणुक स्कन्ध अणुमहान हैं। (३) अणवश्च महान्तश्च अणुमहान्तः अर्थात् जो अणुरूप (-एकप्रदेशी) भी हों और महान (-अनेकप्रदेशी) भी हों वे अणुमहान हैं।** अब तीसरा आया। तीन प्रदेश से लेकर अनन्त (प्रदेश) तक भी अणुमहान कहे। दो को इकट्ठे हों तो अणुमहान कहे। अब एक भी अणुमहान है। क्यों ? अकेला रहता है परन्तु बहुत संयोग में हो सकने की योग्यता है, इसलिए एक को भी बहुत प्रदेशवाला उपचार से कहा जाता है।

देखो, यह व्यवहार और निश्चय। कलश-टीका में तो कहा है। सम्यग्ज्ञान दीपिका में, सम्यग्ज्ञान दीपिका में है न, उसमें कहा है कि जगत के छह द्रव्य वस्तुरूप से है। ऐसे छह द्रव्य का अस्तित्व जिस प्रकार से है, उस प्रकार से यदि पर्याय न जाने तो वह पर्याय को ही मानता नहीं। जैसे छह द्रव्य हैं, जिस प्रकार से हैं, उसे जानने का ज्ञान की एक समय की पर्याय का सामर्थ्य है। कोई छह द्रव्य न माने, उसने एक समय की आत्मा की पर्याय कितनी है, उसे माना नहीं। समझ में आया ? और एक समय की पर्याय इतनी है, माना नहीं, उसने तो ऐसे अनन्त-अनन्त पर्याय का अनन्त गुणा द्रव्य मान नहीं सकता। आहाहा ! महा चैतन्य रत्नाकर समुद्र अन्दर है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

कहते हैं, **(-एकप्रदेशी) भी हों और महान (-अनेक प्रदेशी) भी हों वे अणुमहान हैं। इस व्युत्पत्ति के अनुसार परमाणु अणुमहान हैं; क्योंकि व्यक्ति-अपेक्षा**

से वे एक प्रदेशी हैं और शक्ति-अपेक्षा से अनेक प्रदेशी भी (उपचार से) हैं। एक प्रदेशी है और शक्ति अपेक्षा से ? व्यक्ति अपेक्षा से एक। व्यक्ति और शक्ति क्या, इसका अर्थ हुआ ? व्यक्ति अर्थात् एक है, इस अपेक्षा से एक प्रदेशी और एक है वर्तमान प्रगट एकरूप, वह एकप्रदेशी। परन्तु एक परमाणु बहुत परमाणु में उपचाररूप से स्कन्ध होने के योग्य है, इसलिए एकप्रदेशी को बहुप्रदेशी भी उपचार से कहा जाता है। आहाहा! गजब भाई!

मुमुक्षु : इसकी अपेक्षा तो समयसार सरल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ सरल नहीं है। यह सब सरल है और वह भी सरल है। यह जाने बिना जो ज्ञान व्यवहारुं एक पर्याय का सामर्थ्य है, उसे जहाँ नहीं जानता, वह द्रव्य को क्या जानेगा ? ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

ज्ञान की एक समय की पर्याय ही यह छह द्रव्य को जाने, इतनी है। और जिस प्रकार से काय और एकप्रदेशी आदि है, उस प्रकार से जाने तो एक समय की पर्याय इतनी है। उसे दूसरे शल्य बहुत घुस गये हैं न ? बराबर यह जानना चाहिए। बिना भान के नहीं चलता, ऐसा यहाँ कहते हैं। उसे आत्मा को मानना है या नहीं ? आत्मा जितना है, उतना मानना है या नहीं ? तो अब आत्मा की एक समय की पर्याय इतनी है कि छह द्रव्य को जाने इतनी है। समझ में आया ? और जो कायरूप से है, उसे कायरूप से जाने, एक प्रदेशी है, उसे एकप्रदेशी जाने, उसे ऐसा ही एक समय की पर्याय का, सत्ता का, अस्तित्व का इस अस्तित्व को जाने, ऐसा स्वभाव है। यह छह द्रव्य को निकाल डालना बने तो एक समय की पर्याय निकल जाती है। समझ में आया ? सूक्ष्म है सूक्ष्म, भाई! आये या नहीं तुम्हारे भाई ? गये ? क्या सुने ? यह सूक्ष्म पड़ता है। यह तो सुने तो समझ में आये, ऐसा है।

एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, दया पालना हो तो एकदम समझ में आये। अज्ञान। अपवास करना हो तो समझ में आये कि लो! यह रोटियाँ नहीं खाना चार दिन, आठ दिन, सोलह दिन एक अपवास करे और एक बार अन्तिम दिन खाना पड़े न ? पहले दिन एक बार, बीच में दो बार छोड़े और दूसरे दिन फिर एक बार उसे सोलह भथ्थु कहा जाता है। हें ? हाँ। अष्टमी का अपवास करना, हें ? अब तो वह निकल गया। यह तो मैल है। अष्टमी

का उपवास करना हो तो सप्तमी को एक बार खाना। शाम को खाया नहीं जाये। दोपहर में एक बार खाये। वापस दूसरे दिन पूरे दिन न खाये और तीसरे दिन एक बार खाये। तब उसे चौदह भक्त चार भक्त छेदे और उपवास हुआ, ऐसा कहा जाता है। चार बार भक्त, चार छोड़े। वह भी राग की मन्दता करके, वह भाव हो तो उसे पुण्य बाँधे। आहाहा! समझ में आया?

और उस राग का विकल्प और ग्रहण करना-छोड़ना, वह मेरे स्वरूप में नहीं है। ऐसा आत्मा ज्ञानमूर्ति है, ऐसा अनुभव करे, उसमें यदि इस प्रकार का विकल्प हो तो शुभपरिणाम से पुण्य बाँधे। और निवृत्ति के काल में जितना अन्दर एकाग्र हो, उतनी निर्जरा हो। कहो, समझ में आया? अकेले अपवास-बपवास से कुछ हो, ऐसा नहीं है।

इस प्रकार उपर्युक्त पाँचों द्रव्य अणुमहान होने से कायत्ववाले हैं —ऐसा सिद्ध हुआ। कालाणु को अस्तित्व है। देखो, दूसरे सम्प्रदायवाले कालाणु को अस्तिरूप नहीं मानते। जैन सम्प्रदाय में भी दूसरा सम्प्रदाय। किसी प्रकार से भी कायत्व नहीं है। एकप्रदेशी अणु है। जगत का द्रव्य है वहाँ। उसमें असंख्यप्रदेशी धर्मास्ति में प्रत्येक जगह एक-एक रहा है, तथापि वह कायपना नहीं पाता। उसमें स्निग्धता—रूक्षता की योग्यता नहीं है। परन्तु अस्तिकाय है, इसलिए वह द्रव्य है, परन्तु अस्तिकाय नहीं है। है अवश्य, काय नहीं है, ऐसा। अब पाँचवीं गाथा।

गाथा - ५

जेसिं अत्थि सहाओ गुणेहिं सह पज्जएहिं विविहेहिं।
ते होंति अत्थिकाया णिप्पण्णं जेहिं तेल्लोक्कं।।५।।

येषामस्ति स्वभावः गुणैः सह पर्ययैर्विविधैः।
ते भवन्त्यस्तिकायाः निष्पन्नं यैस्त्रैलोक्यम्।।५।।

अत्र पञ्चास्तिकायानामस्तित्वसंभवप्रकारः कायत्वसंभवप्रकारश्चोक्तः।

अस्ति ह्यस्तिकायानां गुणैः पर्यायैश्च विविधैः सह स्वभावो आत्मभावोऽनन्यत्वम्। वस्तुनो विशेषा हि व्यतिरेकिणः पर्याया गुणास्तु त एवान्वयिनः। तत एकेन पर्यायेण प्रलीयमानस्यान्येनोपजायमानस्यान्वयिना गुणेन ध्रौव्यं बिभ्राणस्यैकस्याऽपि वस्तुनः समुच्छेदोत्पादध्रौव्यलक्षणमस्तित्वमुपपद्यत एव। गुणपर्यायैः सह सर्वथान्यत्वे त्वन्यो विनश्यत्यन्यः प्रादुर्भवत्यन्यो ध्रुवत्वमालम्बत इति सर्वं विप्लवते। ततः साध्वस्तित्वसंभवप्रकारकथनम्। कायत्वसंभवप्रकारस्त्वयमुपदिश्यते। अवयविनो हि जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशपदार्थास्तेषामवयवा अपि प्रदेशाख्याः परस्परव्यतिरेकित्वात्पर्यायाः उच्यन्ते। तेषां तैः सहानन्यत्वे कायत्वसिद्धिरुपपत्तिमती। निरवयवस्यापि परमाणोः सावयवत्वशक्तिसद्भावात् कायत्वसिद्धिरनपवादा। न चैतदाशङ्क्यम् पुद्गलादन्येषाममूर्तत्वादविभाज्यानां सावयवत्वकल्पनमन्याय्यम्। दृश्यत एवाविभाज्येऽपि विहायसीदं घटाकाशमिदमघटाकाशमिति विभागकल्पनम्। यदि तत्र विभागो न कल्पेत तदा यदेव घटाकाशं तदेवाघटाकाशं स्यात्। न च तदिष्टम्। ततः कालाणुभ्योऽन्यत्र सर्वेषां कायत्वाख्यं सावयवत्वमवसेयम्। त्रैलोक्यरूपेण निष्पन्नत्वमपि तेषामस्तिकायत्वसाधनपरमुपन्यस्तम्। तथाच — त्रयाणामूर्ध्वाऽधोमध्यलोकानामुत्पादव्ययध्रौव्यवन्तस्तद्विशेषात्मका भावा भवन्तस्तेषां मूलपदार्थानां गुणपर्याययोगपूर्वकमस्तित्वं साध्यन्ति। अनुमीयते च धर्माधर्माकाशानां प्रत्येकमूर्ध्वाऽधोमध्यलोकविभागरूपेण परिणमनात्कायत्वाख्यं सावयवत्वम्। जीवानामपि प्रत्येकमूर्ध्वाधोमध्यलोकविभागरूपेण परिणमनाल्लोकपूरणावस्थाव्यवस्थितव्यक्तेस्सदा सन्निहितशक्तेस्तदनुमीयत एव। पुद्गलानामप्यूर्ध्वाधोमध्यलोकविभागरूपपरिणतमहास्कन्धत्व-प्राप्तिव्यक्तिशक्तियोगित्वात्तथाविधा सावयवत्वसिद्धिरस्त्येवेति।।५।।

अनन्यपन धारण करें जो विविध गुण पर्याय से।
उन अस्तिकायों से अरे त्रैलोक यह निष्पन्न है।।५।।

अन्वयार्थ :- [येषाम्] जिन्हें [विविधैः] विविध [गुणैः] गुणों और [पर्ययैः]

*पर्यायों के (–प्रवाहक्रम के तथा विस्तारक्रम के अंशों के) [सह] साथ [स्वभाव:] अपनत्व [अस्ति] है [ते] वे [अस्तिकाया: भवन्ति] अस्तिकाय है [यै:] कि जिनसे [त्रैलोक्यम्] तीन लोक [निष्पन्नम्] निष्पन्न है।

टीका :– यहाँ, पाँच अस्तिकायों को अस्तित्व किस प्रकार है और कायत्व किस प्रकार है, वह कहा है।

वास्तव में अस्तिकायों को विविध गुणों और पर्यायों के साथ स्वपना–अपनापन–अनन्यपना है। वस्तु के [१]व्यतिरेकी विशेष, वे पर्यायें हैं और [२]अन्वयी विशेषों, वे गुण हैं। इसलिए एक पर्याय से प्रलय को प्राप्त होनेवाली, अन्य पर्याय से उत्पन्न होनेवाली और अन्वयी गुण से ध्रुव रहनेवाली एक ही वस्तु को [३]व्यय–उत्पाद–ध्रौव्यलक्षण अस्तित्व घटित होता ही है। और यदि गुणों तथा पर्यायों के साथ (वस्तु को) सर्वथा अन्यत्व हो तब तो अन्य कोई विनाश को प्राप्त होगा, अन्य कोई प्रादुर्भाव को (उत्पाद को) प्राप्त होगा और अन्य कोई ध्रुव रहेगा–इस प्रकार सब [४]विप्लव प्राप्त हो जायेगा। इसलिए (पाँच अस्तिकायों को) अस्तित्व किस प्रकार है तत्सम्बन्धी यह (उपर्युक्त) कथन सत्य–योग्य–न्याययुक्त हैं।

अब, (उन्हें) कायत्व किस प्रकार है, उसका उपदेश किया जाता है :– जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, और आकाश यह पदार्थ [५]अवयवी हैं। प्रदेश नाम के उनके जो अवयव

---

* पर्यायें = (प्रवाहक्रम के तथा विस्तारक्रम के) निर्विभाग अंश। (प्रवाहक्रम के अंश तो प्रत्येक द्रव्य के होते हैं, किन्तु विस्तारक्रम के अंश अस्तिकाय के ही होते हैं।)

१. व्यतिरेक=भेद; एक का दूसरेरूप नहीं होना; 'यह वह नहीं है' ऐसे ज्ञान के निमित्तभूत भिन्नरूपता । (एक पर्याय दूसरी पर्यायरूप न होने से पर्यायों में परस्पर व्यतिरेक है; इसलिए पर्यायें द्रव्य के व्यतिरेकी (व्यतिरेकवाले) विशेष हैं।)

२. अन्वय=एकरूपता; सदृश्यता; 'यह वही है' ऐसे ज्ञान के कारणभूत एकरूपता। (गुणों में सदैव सदृश्यता रहती होने से उनमें सदैव अन्वय है, इसलिए गुण द्रव्य के अन्वयी विशेष (अन्वयवाले भेद) हैं।

३. अस्तित्व का लक्षण अथवा स्वरूप व्यय–उत्पाद–ध्रौव्य है।

४. विप्लव=अन्धाधुन्धी; उथलपुथल; गड़बड़ी; विरोध।

५. अवयवी=अवयववाला; अंशवाला; अंशी; जिनके अवयव (अर्थात्) एक से अधिक प्रदेश हों ऐसे।

हैं, वे भी परस्पर व्यतिरेकवाले होने से [१]पर्यायें कहलाती हैं। उनके साथ उन (पाँच) पदार्थों को अनन्यपना होने से कायत्वसिद्धि घटित होती है। परमाणु (व्यक्ति-अपेक्षा से) [२] निरवयव होने पर भी उनको सावयवपने की शक्ति का सद्‌भाव होने से कायत्वसिद्धि [३] निरपवाद है। वहाँ ऐसी आशंका करना योग्य नहीं है कि पुद्‌गल के अतिरिक्त अन्य पदार्थ अमूर्तपने के कारण[४] अविभाज्य होने से उनके सावयवपने की कल्पना न्याय विरुद्ध (अनुचित) है। आकाश अविभाज्य होने पर भी उसमें 'यह घटाकाश है, यह अघटाकाश (पटाकाश) है' ऐसी विभागकल्पना दृष्टिगोचर होती ही है। यदि वहाँ (कथंचित्) विभाग की कल्पना न की जाये तो जो घटाकाश है, वही (सर्वथा) अघटाकाश हो जायेगा; और वह तो इष्ट (मान्य) नहीं है। इसलिए कालाणुओं के अतिरिक्त अन्य सर्व में कायत्व नाम का सावयवपना निश्चित करना चाहिए।

उनकी जो तीन लोकरूप निष्पन्नता (-रचना) कही, वह भी उनका अस्तिकायपना (अस्तिपना तथा कायपना) सिद्ध करने के साधनरूप से कही है। वह इस प्रकार है :-

(१) ऊर्ध्व-अधो-मध्य तीन लोक के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाले भाव कि जो तीन लोक के विशेषस्वरूप हैं वे भवते हुए (परिणमत होते हुए) अपने मूलपदार्थों का गुणपर्याययुक्त अस्तित्व सिद्ध करते हैं। (तीन लोक के भाव सदैव कथंचित् सदृश रहते हैं और कथंचित् बदलते रहते हैं, वे ऐसा सिद्ध करते हैं कि तीन लोक के मूल पदार्थ कथंचित् सदृश रहते हैं और कथंचित् परिवर्तित होते रहते हैं अर्थात् उन मूल पदार्थों का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला अथवा गुणपर्यायवाला अस्तित्व है।)

(२) पुनश्च, धर्म, अधर्म और आकाश यह प्रत्येक पदार्थ ऊर्ध्व-अधो-मध्य ऐसे लोक के (तीन) [५]विभागरूप से परिणमित होने से उनके कायत्व नाम का सावयवपना

---

१. पर्याय का लक्षण परस्पर व्यतिरेक है। वह लक्षण प्रदेशों में भी व्याप्त है, क्योंकि एक प्रदेश दूसरे प्रदेशरूप न होने से प्रदेशों में परस्पर व्यतिरेक हैं; इसलिए प्रदेश भी पर्याय कहलाती है।
२. निरवयव=अवयवरहित; अंशरहित; निरंश; एक से अधिक प्रदेशरहित।
३. निरपवाद=अपवाद रहित। (पाँच अस्तिकायों को कायपना होने में एक भी अपवाद नहीं है, क्योंकि (उपचार से) परमाणु को भी शक्ति-अपेक्षा से अवयव-प्रदेश हैं।)
४. अविभाज्य=जिनके विभाग न किये जा सकें ऐसे।
५. यदि लोक के ऊर्ध्व, अध: और मध्य ऐसे तीन भाग हैं तो फिर 'यह ऊर्ध्वलोक का आकाशभाग

है, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। प्रत्येक जीव के भी ऊर्ध्व-अधो-मध्य ऐसे तीन लोक के (तीन) विभागरूप से परिणमित [१]लोकपूरण अवस्थारूप व्यक्ति की शक्ति का सदैव सद्भाव होने से जीवों को भी कायत्व नाम का सावयवपना है, ऐसा अनुमान किया ही जा सकता है। पुद्गल भी ऊर्ध्व अधो-मध्य ऐसे लोक के (तीन) विभागरूप परिणत महास्कन्धपने की प्राप्ति की व्यक्तिवाले अथवा शक्तिवाले होने से उन्हें भी वैसी (कायत्व नाम की) सावयवपने की सिद्धि है ही।।५।।

गाथा - ५ पर प्रवचन

जेसिं अत्थि सहाओ गुणेहिं सह पज्जएहिं विविहेहिं।
ते होंति अत्थिकाया णिप्पण्णं जेहिं तेल्लोक्कं।।५।।

अनन्यपन धारण करें जो विविध गुण पर्याय से।
उन अस्तिकायों से अरे त्रैलोक यह निष्पन्न है।।५।।

अन्वयार्थ :- जिन्हें.... अर्थात् पदार्थ को-आत्मा को, परमाणु को, धर्मास्ति, अधर्मास्ति इत्यादि। **विविध गुणों और पर्यायों के (प्रवाहक्रम के तथा विस्तारक्रम के अंशों के)....** और यह क्या आया ? समझ में आया ?

जैसे आत्मा है तो उसके प्रवाहक्रम में एक-एक समय की अवस्था होती है, वह प्रवाहक्रम की पर्याय कहलाती है। आत्मा है, वस्तु है। उसमें अनन्त गुण हैं, शक्ति। उसकी

है, यह अधोलोक का आकाशभाग है और यह मध्यलोक का आकाशभाग है'-इस प्रकार आकाश के भी विभाग किये जा सकते हैं और इसलिए यह सावयव अर्थात् कायत्ववाला है, ऐसा सिद्ध होता है। इसी प्रकार धर्म और अधर्म भी सावयव अर्थात् कायत्ववाले हैं।

१. लोकपूरण=लोकव्यापी (केवलसमुद्घात के समय जीव की त्रिलोकव्यापी दशा होती है। उस समय 'यह ऊर्ध्वलोक का जीवभाग है, यह अधोलोक का जीवभाग है और यह मध्यलोक का जीवभाग है' ऐसे विभाग किये जा सकते हैं। ऐसी त्रिलोकव्यापी दशा (अवस्था) की शक्ति तो जीवों में सदैव है, इसलिए जीव सदैव सावयव अर्थात् कायत्ववाले हैं ऐसा सिद्ध होता है।)

प्रगट अवस्था एक समय में, एक गुण की अनन्त। ऐसे दूसरे समय में अनन्त। ऐसे प्रवाहक्रम में हो उसे पर्याय प्रवाहक्रम की कहा जाता है और असंख्यप्रदेशी है, एक-एक प्रदेश को यह कहते हैं। देखो, विस्तारक्रम के अंश कहलाते हैं। असंख्यप्रदेश हैं, उन्हें विस्तारक्रम के अंशों को द्रव्य-पर्याय कहा जाता है। समझ में आया?

यह परमाणु है एक रजकण पॉईन्ट। उसमें क्षण-क्षण में नयी-नयी अनादि-अनन्त अवस्था होती है, वह प्रवाहक्रम। एक परमाणु है, उसका विस्तारक्रम का एक ही अंश है। विस्तार एक ही अंश है। आत्मा में क्षण-क्षण में अनादि-अनन्त पर्याय होती है, वह प्रवाहक्रम और असंख्यप्रदेश है, वह विस्तारक्रम है। विस्तार से क्रम से पड़ा हुआ प्रवाह, असंख्य प्रदेश। एक प्रदेश में दूसरा नहीं, दूसरे में तीसरा नहीं, ऐसे जो वर्तमान में विस्तार से रहे हुए में असंख्य प्रकार हैं, उसे विस्तारक्रम के भेदरूप द्रव्यपर्याय कहा जाता है। वीतरागमार्ग के अतिरिक्त ऐसा नहीं होता, ऐसा बताते हैं। असंख्य प्रदेश, उसे असंख्य पर्याय कहा जाता है। द्रव्यपर्याय कहा जाता है। विस्तारक्रम के भेद कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

यह चौड़ा भगवान आत्मा असंख्यप्रदेशी है। वह असंख्यप्रदेश चौड़ाई और ऐसे विस्तार... एकसार, परन्तु उसमें एक-एक अंश दूसरेरूप नहीं, इस प्रकार उसे विस्तारक्रम के असंख्य अंश, प्रदेश कहा जाता है, उसे पर्याय कहा जाता है। इसकी अपेक्षा तो समयसार अच्छा है। (ऐसा कहे) परन्तु समयसार में भी वस्तु तो यह है। इसे पंचास्तिकाय समयसार कहा है। पंचास्तिकाय समयसार है। सरल तो कोई नहीं। सब है वह है। वह व्यक्ति बिना भान के मान बैठे और फिर समझने की दरकार न करे और फिर जाओ करो आत्मा का ध्यान। परन्तु ध्यान किस प्रकार करेगा? जिस प्रकार से वस्तु का स्वभाव पर्याय में जिस प्रकार से है, उस प्रकार से न जाने, उसका विस्तार असंख्य प्रदेश है, उस प्रकार से न जाने और बिना भान के जाने तो उसका ज्ञान बिना भानवाला होगा। सम्यक् नहीं होगा। समझ में आया?

विविध गुणों और पर्यायों के (प्रवाहक्रम के तथा विस्तारक्रम के निर्विभाग अंश। नीचे (फुटनोट में) निर्विभाग। लो! जिसके भाग न पड़े, ऐसे अंश। अर्थात् यह आत्मा है और यह परमाणु है जड़। दोनों में क्रम-क्रम से जो पर्याये-अवस्थायें हों, वह

प्रवाहक्रम के अंश कहलाते हैं। और स्वयं वस्तु है एक परमाणु और एक अंश। वह विस्तारक्रम का एक अंश हुआ। आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं, विस्तारक्रम की असंख्य पर्यायें कहलाती हैं। प्रदेश अर्थात् अंश, ऐसा। **प्रवाहक्रम के अंश तो प्रत्येक द्रव्य के होते हैं, किन्तु विस्तारक्रम के अंश अस्तिकाय के ही होते हैं।** अर्थात् काल को होता नहीं, ऐसा सिद्ध करना है।

यह आत्मा को मानना पड़ेगा, उसमें छह द्रव्य ज्ञान में आवे, तब उसने आत्मा की पर्याय मानी कहलाये। समझ में आया? इसके बिना आत्मा को माना कहलाता नहीं। इतना ही आत्मा है। वह भी यह सब काय जो है, परमाणु एक रजकण आदि, उसे जाननेवाली पर्याय है। उसे फेरफार करनेवाली या उसे कम-ज्यादा को फेरफार करनेवाली पर्याय नहीं है। ऐसा दोनों प्रकार से उसका पर्याय में ज्ञान होना चाहिए। समझ में आया? समझ में आये ऐसा है, हों! न समझ में आये, ऐसा नहीं। भाषा तो सादी है।

वस्तु है या नहीं? आत्मा। वह आत्मा कितना चौड़ा है? इस जगह प्रदेश है, वे इस जगह है वे? अन्दर अलग-अलग है। असंख्य है, हों? इतने में असंख्य प्रदेश हैं। अंगुल के असंख्य भाग में आत्मा के प्रदेश लो, तब तो असंख्यात हैं। ऐई! यह इसमें देखो! यह अँगुली है न? उसका यह अन्तिम भाग नख का टुकड़ा लो तो उसमें अनन्त परमाणु हैं। उसमें इतने अंश में आत्मा के प्रदेश हैं, वे असंख्य हैं। इतने अंश में रजकण हैं, वे अनन्त हैं। ऐसा है। समझ में आया?

असंख्यवाँ भाग आ गया न? असंख्यवाँ भाग आ गया न? अँगुल के असंख्यवें भाग में इतना भाग है, उसमें असंख्य हैं। और इससे पूरा आत्मा असंख्यगुणा है। अनन्तगुणा नहीं। अनन्तगुणा है ही कहाँ? समझ में आया? इसी प्रकार यहाँ जो असंख्यप्रदेश में परमाणु की संख्या है अनन्त, उससे पूरे शरीर के परमाणु की संख्या असंख्यगुणी है। अनन्तगुणी नहीं। तो उसमें बहुत आ गये हैं। ऐई! भाई! यह तो पंचास्तिकाय चलता है। अस्ति अर्थात् होनापना और काय अर्थात् प्रदेश का समूह। ऐसा जिसका स्वरूप है, उसे उस प्रकार से जानना चाहिए। दूसरा जानने में रुक जाये, उसकी अपेक्षा यह तो जाने पहले?

जैसे-जैसे आगे चले, वैसे उसकी विशेषता स्पष्ट होती जाती है। चन्दुभाई! बिना

भान के भगवान करो, भगवान... भगवान... भगवान करो, आत्मा-आत्मा करो। आत्मा... आत्मा कौन है, कितना है, समझे बिना क्या आत्मा-आत्मा करेगा। समझ में आया? बिना भान के तो ऐसे अनादि काल के अनन्त बार ध्यान किये। शास्त्र में नहीं आता? मोक्षमार्गप्रकाशक में। प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान, व्युत्सर्ग, व्यवहार बारह तप व्यवहार सब अनन्त बार किये हैं। ध्यान भी अनन्त बार किया है। अन्दर की एकाग्रता ऐसा जो विकल्प, वह भी अनन्त बार किया है। मूल एकाग्रता कहाँ है? समझ में आया? मूल एकाग्रता नहीं। बहुत विकल्प इकट्ठे दिखायी दे तो ऐसा होता है, मानो कि अपने ध्यान करते हैं। वह ध्यान नहीं है। ध्यान का स्वरूप ही वह नहीं है। सम्यग्दर्शन के भान बिना ध्यान यथार्थ नहीं हो सकता। समझ में आया? और वह सम्यग्दर्शन यथार्थ ज्ञान बिना नहीं होता। विपरीत ज्ञान हो और सम्यग्दर्शन हो, ऐसा नहीं होता। कहो, समझ में आया? संसार में तो बहुत सूक्ष्मता से बातें करता है। यहाँ तो सब इसे समझना पड़ेगा या नहीं?

विविध गुण, देखा? विविध गुण। आत्मा में अस्तित्वगुण, ज्ञानगुण, दर्शनगुण, आनन्दगुण परमाणु (में) जड़गुण, रस-गन्ध-रस-स्पर्श इत्यादि। और पर्यायें दो प्रकार की—क्रम-क्रम से अवस्था हो, वह उसका अस्तित्व है। और असंख्यप्रदेशी या अनन्त प्रदेशी आकाश है, उसके इतने अंश हैं, इसलिए उसके विस्तारक्रम के भेद अर्थात् पर्यायें। समझ में आया? अब कुन्दकुन्दाचार्य जैसे यह बात लिखते हैं और दूसरे को उकताहट लगे! कुन्दकुन्दाचार्य तो कहते हैं कि यह तू समझ। ऊपर नहीं आया था कल? 'अवसेयम्' निर्णय कर।

अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि तू तेरे ज्ञान में निर्णय कर। आया था न कल, नहीं आया था? 'अवसेयम्' चौथी लाईन। '**वस्तुतत्वात अवसेवम्**' इस प्रकार से सत्ता है, काय है, ऐसा तुझे ज्ञान में निश्चय करना चाहिए। समझ में आया? वह सब करने जाये और इसमें कहे कि उकताहट आती है तो इसका अर्थ कि इसे एकाग्रता नहीं रहती। इसकी बुद्धि कम हो और स्वरूप की ओर दृष्टि करना चाहे तो और अलग बात है। समझ में आया? जिसकी बुद्धि दूसरे में तो बहुत प्रयोग करता है। इसमें जहाँ आवे वहाँ उसे प्रयोग करने में दिक्कत आती है। वह कहीं रुक गया है। समझ में आया?

देखो! आचार्य यह किस प्रकार से व्यवहार सिद्ध करते हैं। आहाहा! द्रव्य का ज्ञान और छह द्रव्य की प्रतीति, वह तो वस्तु हुई। अब उसे समकिती को व्यवहार होता है या नहीं? हाँ। उस प्रकार का ज्ञान जो है, वह उसका व्यवहारिकज्ञान है। समझ में आया? वह व्यवहार न ही हो, तब तो निश्चय भी नहीं रहता। निश्चयाभासी हो जाता है, ऐसा कहते हैं।

विस्तारक्रम के अंशों के साथ अपनत्व है। लो! कहते हैं कि प्रदेशों के अंश भी अपनेरूप से है और पर्यायों के अंश क्रम-क्रम से पर्याय होती है परन्तु अपनेरूप से है, ऐसा कहते हैं। यह अस्तिकाय है, इसलिए अस्तिरूप समूहात्मक है। कि जिससे तीन लोक निष्पन्न है। भाषा देखो! तीन लोक उत्पन्न हुए हैं। निष्पन्न हुए हैं अर्थात् तीन लोक हैं, ऐसा उसका अर्थ। इस प्रकार तीन लोक हैं। समझ में आया? विस्तारक्रमवाले प्रदेश पर्यायें, ऐसे उर्ध्वप्रदेश। विस्तारक्रम के भी ऐसे-ऐसे क्रम में, ऐसे भी क्रम में वे सब अस्तित्ववाले पदार्थ उनसे भी तीन लोक प्राप्त हैं। उनसे तीन लोक प्राप्त है। तीन लोक इस प्रकार रहा हुआ है। समझ में आया? तीन लोक निष्पन्न हैं।

टीका :- यहाँ, पाँच अस्तिकायों को अस्तित्व किस प्रकार है और कायत्व किस प्रकार है, वह कहा है। वास्तव में अस्तिकायों को विविध गुणों.... यह पाँच। आत्मा का अस्तिकाय, धर्मास्ति, अधर्मास्ति इत्यादि उसके विविध गुण होते हैं। प्रत्येक के भिन्न-भिन्न प्रकार के एक के भी भिन्न-भिन्न प्रकार के गुण कायम रहनेवाले पर्यायों के साथ। प्रत्येक को **गुणों और पर्यायों के साथ स्वपना-अपनापन-अनन्यपना है।**

आत्मा में प्रत्येक समय में पर्याय क्रम-क्रम से होती है, वह अपनेरूप से है। असंख्यप्रदेशी विस्तारक्रम की पर्यायें हैं, वह भी अपनेरूप से है। और उसमें अनन्त गुण जो हैं, वे भी अपनेरूप से है। समझ में आया? स्व-रूप से अस्ति है, ऐसा सिद्ध करते हैं। भाई! पररूप से नास्ति और स्व-रूप से अस्ति। आहाहा! समझ में आया?

वास्तव में अस्तिकायों को.... अस्तिकाय अर्थात्? काल के अतिरिक्त पाँच अस्तिकाय जीव अनन्त, पुद्गल अनन्त, धर्मास्ति एक, अधर्मास्ति एक और आकाश एक। ऐसे भिन्न-भिन्न प्रकार की शक्तियोंवाले और उसकी अवस्थावाले। जीव की अवस्था दो प्रकार कही। कौन से दो प्रकार कही? पर्यायें। विस्तारक्रम और प्रवाहक्रम। उसकी पर्याय

है, वह अपनेरूप से है, ऐसा कहते हैं। आत्मा, उसके गुण जो अनन्त हैं, विविध और उसकी दो प्रकार की पर्यायें। एक कालक्रम से होती और एक वर्तमान एक में दूसरी नहीं, ऐसी विस्तारक्रम में रहती हुई। विस्तारक्रम में रहती हुई। वह स्वयं स्वपने है। वह सब स्वपने है, पर के कारण से है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

असंख्यप्रदेशी आत्मा का संकोच-विकास हो, वह स्वपने है। पर के कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा असंख्य प्रदेश है। असंख्य चौबीसी के समय जितने प्रदेश हैं। समझ में आया? पूरे लोक के आकाश के प्रदेश जितने उसके प्रदेश हैं। वे असंख्य प्रदेश वे अपनेरूप से हैं, विस्तारक्रम के अंश हैं। एक अखण्ड वस्तु के अंशरूप से। समझ में आया? सोने का गले का गहना आता है न गहना। उसमें प्रदेश नहीं होते। वह तो पूरा दल होता है। सोने की सांकल होती है न सोने की, सांकल। उसमें मकोड़ा होते हैं। एक, एक, एक मकोड़ा होते हैं न? मकोड़ा रहे न, उन मकोड़ा में ऐसा होता है, ऐसा उसमें नहीं है। इसी प्रकार यहाँ प्रदेश... प्रदेश... प्रदेश... प्रदेश... प्रदेश वह उसका मकोड़ा है। समझ में आया? और पर्याय, पर्याय ऐसा मकोड़ा है। वह ऐसा अंश है। ऐसा अंश है, एक ऐसा अंश है। वह सब अपनेरूप से है। वे कहते हैं न, कर्म का निमित्त है तो कर्म के कारण जीव के असंख्य प्रदेश संकोच-विकास पाते हैं। वह यहाँ यह इनकार करते हैं। समझ में आया? ऐसा इसमें सिद्ध करते हैं। ऐसा जीव का स्वभाव है प्रदेशी। देह दूटे तब उसके प्रदेश यहाँ जितने हैं और जितने चौड़े जिस प्रमाण, वैसा रास्ते में रहता है। रास्ते में दूसरा तो नहीं होता। स्वर्ग में वहाँ उपजे तो वहाँ इन्द्रों के सम्बन्ध में आ जाये। जहाँ उपजे पहले समय में यहाँ के पाँच सौ धनुष का या हजार योजन का मच्छ हो। यहाँ असंख्य प्रदेश थे, यहाँ से छूटा तो हजार योजन के शरीरप्रमाण प्रदेश चौड़े और ऊँचे जायें। वहाँ स्वर्ग में उपजे। आठवें देवलोक में उपजे, वह जहाँ वहाँ पहले समय में उपजे अन्दर पूरा जाता जाए। यह कहते हैं कि अपनेरूप से है, ऐसा यहाँ कहते हैं। वह सब अपनेरूप से होता है। अपने से ही होता है। समझ में आया?

सिद्ध भगवान वे असंख्यप्रदेशी हैं। लो! वे सिद्ध यहाँ होते हैं। सिद्ध तो यहाँ होते हैं। अशुद्धता गयी, पूर्ण शुद्ध हो गये। वह शुद्ध पारिणामिकभाव हो गया। अब यहाँ से ऐसे

जाते हैं तो समय तो वह का वह है। वहाँ उपजे तो समय तो वह का वह है। वह उसका शुद्ध पारिणामिकभाव है। समझ में आया? कोई कहे कि भाई यहाँ से रास्ते में जाये, वहाँ अशुद्ध पारिणामिक है। शुद्ध यहाँ हुआ नहीं, ऐसा अर्थ लिया। रास्ते में जो गति करते हैं न? क्रिया हुई न? रास्ते की क्रिया हुई, इसलिए अशुद्ध पारिणामिक है। वहाँ जाये, वहाँ शुद्धपारिणामिक हों (ऐसा नहीं होता)। जाने में एक ही समय है। भेद कब था। समझ में आया?

असंख्यप्रदेशी अनन्त गुण पर्यायें शुद्ध हो जाये। सिद्धपद तो यहाँ उत्पन्न हुआ। चौदहवें गुणस्थान की अन्तिम पर्याय का व्यय और सिद्ध का उत्पाद यहाँ हुआ। यहाँ उपजने पर उन्हें रास्ते में एक समय लगता है। शुद्ध पारिणामिकभाव से यहाँ हुए, उसी शुद्धपारिणामिकभाव से रास्ते में और उसी शुद्ध पारिणामिक से वहाँ ऐसा और... समझ में आया? संसारी में ऐसा नहीं है। संसारी के शरीरप्रमाण आत्मा बाहर निकले। समझे? उपजे तब... हो जाये। समझ में आया? वह स्वयं के कारण से होता है। कर्म के कारण से या दूसरे द्रव्य के कारण से, ऐसा नहीं है। स्वपना-अपनापना अथवा अनन्यपना है। वे सब गुण और पर्यायें आत्मा से अथवा प्रत्येक द्रव्य से अनन्य हैं। अन्य-अन्य नहीं। अन्य-अन्य नहीं। अनन्य हैं। एकरूप। उनका स्वरूप ही ऐसा है। समझ में आया?

संसारी हो या सिद्ध हो। उसके गुण-पर्यायों से अन्य नहीं है। गुण-पर्याय से अनन्य है। आहाहा! समझ में आया? 'गुणपर्यायवत्द्रव्यम्' व्यवहार हो गया, ऐसा नहीं है। ऐई! भेद पड़ा है न? गुण और पर्याय भिन्न और उनका द्रव्य... इसलिए यहाँ के कारण से वहाँ आनुपूर्वी प्रकृति आयी, इसलिए उसे अकेला रहना पड़ा, ऐसा नहीं है। आहाहा! श्रेणिक महाराजा का आत्मा तीर्थंकरप्रकृति के रजकण साथ में है और अपनी पर्याय वहाँ इतनी योग्यतावाली, उस प्रकार की, इसलिए इतना रहना पड़ा, ऐसा नहीं है। क्यों हुआ? उसका अपनापना है, इसलिए पर के कारण से हुआ नहीं। आहाहा! बड़ा विवाद उठावे उसमें। प्रत्येक का अस्तित्व इस प्रकार से अपनेरूप से अस्तित्व, ऐसा सिद्ध करते हैं। ऐसा होता है, ऐसा होता है, छोटा हो या बड़ा हो, गुण-पर्याय में वह सब विस्तारक्रम और प्रवाहक्रम अपनेरूप से अपने में अनन्यरूप से होता है। पर के साथ कुछ सम्बन्ध है नहीं। समझ में आया? अब पर्याय की और दृढ़ता गुण की करते हैं। गुण और पर्याय।

वस्तु के व्यतिरेकी विशेष, वे पर्यायें हैं.... नीचे स्पष्टीकरण है। व्यतिरेक=भेद; एक का दूसरेरूप नहीं होना; 'यह वह नहीं' ऐसे ज्ञान के निमित्तभूत भिन्नरूपपना। (एक पर्याय) दूसरे पर्यायरूप नहीं होने से पर्यायों में परस्पर व्यतिरेक अर्थात् भिन्नता है, इसलिए पर्यायें द्रव्य के व्यतिरेकी (व्यतिरेकवाले) विशेष हैं। यह सब समझने का कठिन।

जैसे आत्मा है, उसके असंख्यप्रदेश हैं। वे एक-दूसरेरूप नहीं, इसलिए उन्हें व्यतिरेक द्रव्य-पर्याय अंश कहा जाता है। ऐसे क्रम-क्रम से पर्याय हो, वह एक दूसरे क्रम से भिन्न-भिन्न है। इसलिए उसे व्यतिरेक भिन्न-भिन्न पर्यायें उन्हें स्वयं से कहा जाता है। आहाहा! दूसरे समय में ऐसी क्यों हुई? प्रवाहक्रम में उसका वह क्रम था। अपने अस्तित्व से हुई है। दूसरे समय में ऐसी क्यों हुई? उसके प्रवाहक्रम में उसका अस्तित्वपना उसी प्रकार से है। समझ में आया?

क्रमबद्ध हो जाता है। ऐसा वस्तु का स्वरूप, उसमें भी क्रमबद्ध होता है। क्या करना इसमें? व्यतिरेक विशेष, व्यतिरेक विशेष। द्रव्य है न, वह सामान्य है और वह सामान्य तथा भेद, वे विशेष, ऐसा। **और अन्वयी विशेषों वे गुण हैं।** लो! अन्वय=एकरूपता; सदृशता; 'यह वही है।' ऐसे ज्ञान के कारणभूत एकरूपपना। (गुणों में सदा सदृशता रहती है इसलिए) उनमें सदा अन्वय है, इसलिए गण द्रव्य के अन्वय विशेष (अन्वयवाले भेद) है। ज्ञान-दर्शन जो आत्मा के गुण हैं और वे अनन्य हैं। अनन्य हैं। समझ में आया? (अर्थात्) एकमेक है। पृथक् नहीं। अर्थात् व्यतिरेक नहीं। भिन्न-भिन्न नहीं, ऐसा कहते हैं। वह पर्याय भिन्न-भिन्न थी। ज्ञान-दर्शन आदि गुण सदृश, सदा सदृश रहनेवाले हैं इसलिए एकरूप रहते हैं इसलिए वही ज्ञान, वही ज्ञान, वही दर्शन, वही दर्शन, वही दर्शन, वही आनन्द गुण, हों! उनमें सदा ही अन्वय है। गुण द्रव्य के अन्वय-साथ में एकरूप रहनेवाले विशेष-भेद हैं। लो! यह ऐसे आत्मा को आत्मा कहा जाता है। ऐसे परमाणु को परमाणु कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

धारावाही प्रवचन नं. ७ (प्रवचन नं. ११), गाथा-५
दिनांक - १७-१२-१९६३, पौष शुक्ल २, मंगलवार

पंचास्तिकाय, गाथा -५

जेसिं अत्थि सहाओ गुणेहिं सह पज्जएहिं विविहेहिं।
ते होंति अत्थिकाया णिप्पण्णं जेहिं तेल्लोक्कं।।५।।

अनन्यपन धारण करें जो विविध गुण पर्याय से।
उन अस्तिकायों से अरे त्रैलोक यह निष्पन्न है॥५॥

इसकी **टीका :- यहाँ, पाँच अस्तिकायों को अस्तित्व किस प्रकार है और कायत्व किस प्रकार है, वह चौथी गाथा में कहा है।** यह पहले आ गया। अब यहाँ इस गाथा का स्वरूप कहा है। वास्तव में अस्तिकायों को जीव अनन्त, पुद्गल अनन्त और आकाश, धर्मास्ति, अधर्मास्ति (एक-एक, इस प्रकार) पाँच। उन्हें विविध गुण, विविध गुण-अनेक प्रकार के गुण। जिन्हें जो हो वैसे। एक में भी विविध गुण, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व इत्यादि। **विविध गुण...** अस्तिकायों को भिन्न-भिन्न प्रकार के गुण **और पर्यायें...** यह प्रत्येक अस्तिकाय को-जीव को, पुद्गल को, जीव भी अपने विविध गुणों से सहित है और अपने पर्यायों के साथ विविध पर्यायें। उसमें भी ऐसा लेते हैं। अनेक प्रकार की पर्यायें हैं या नहीं ?

उनके **साथ स्वपना-अपनापन-अनन्यपना है।** प्रत्येक अस्तिकाय को जीव, पुद्गल आदि को अपने गुणों और अपनी पर्याय के साथ स्वपना-अपनापना अर्थात् कि अनन्यपना है। प्रत्येक वस्तु अपने गुण-पर्याय से अन्य नहीं। गुण-पर्याय से अनन्य है। क्या कहा, समझ में आया ? प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश। कालाणु में भी ऐसा है परन्तु यहाँ अस्तिकाय में वह नहीं लिया है।

वे अपने गुण, जैसे आत्मा के ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त गुण और उनकी अनन्त पर्यायें, उनके साथ आत्मा को अनन्यपना है। अर्थात् अपनापना है, इसलिए स्वपना है। उनसे उसका अन्यपना नहीं है। समझ में आया ? सहस्वभावो, आत्मभावो और अनन्यत्वम्

ऊपर दूसरी लाईन है। समझ में आया?

वस्तु के व्यतिरेक विशेष, वे पर्यायें हैं। अब इसका स्पष्टीकरण करते हैं। वस्तु अर्थात् प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु का व्यतिरेक अर्थात् एक का दूसरेरूप न होना। प्रत्येक द्रव्य में एक प्रदेश का दूसरे प्रदेशरूप न होना, और एक पर्याय का भी दूसरे पर्यायरूप न होना। **ये व्यतिरेकी विशेष वे पर्यायें हैं....** यह विशेष, वह पर्यायें हैं। द्रव्य में सामान्य गुण हैं, वह द्रव्य की अपेक्षा से एक न्याय से विशेष है। यह व्यतिरेक विशेष, वे पर्यायें हैं। कहो, समझ में आया? हें? व्यतिरेक अर्थात् एक-दूसरे का न होनापना। आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं, उसमें एक प्रदेश का दूसरे प्रदेशरूप नहीं होनापना। उसका व्यतिरेक अन्यपना भिन्नपना कहा जाता है।

उसी प्रकार आत्मा की जितनी अनन्त पर्याय हैं, उसकी एक पर्याय दूसरी पर्यायरूप न होना, उसका नाम पृथक्पना, व्यतिरेकपना, अनन्यपना प्रत्येक पर्याय का कहा जाता है। ओहो! यह तो अकेले सिद्धान्त हैं न? समझ में आया? यह वस्तु, पहली पर्याय से बात ली, देखो! आत्मा, परमाणु उसका व्यतिरेक विशेष, भिन्न-भिन्नता की पृथक्ता की विशेषता, वह उसकी पर्यायें हैं। कहो, रतिभाई! ऐसे शब्द याद भी रहे कुछ? यह मणियारे के बादाम और पिस्ता, उसमें कहाँ कुछ हाथ आवे? कहते हैं, प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक रजकण चार दूसरे भले रहे। उनके व्यतिरेक विशेष, अन्य-अन्य, भिन्न-भिन्न विशेष, उन्हें पर्यायें कहा जाता है।

उस पर्याय के दो प्रकार—प्रदेश को भी पर्याय कहा जाता है और ऊर्ध्वकाल की उस समय में ज्ञान, दर्शन आदि की पर्याय, उसे भी पर्याय कहा जाता है। परमाणु स्वतन्त्ररूप से प्रत्येक का अस्तित्व पर से भिन्न और अपने गुण पर्याय से अभिन्न। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु अपने गुण अन्वयी विशेष, यह बाद में कहेंगे। व्यतिरेक विशेष। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु व्यतिरेक-भिन्न-भिन्न विशेष, ऐसी पर्यायसहित जो द्रव्य हो। पर्याय बिना का द्रव्य हो नहीं सकता। कहो, समझ में आया? क्या है? यह लेंगे, लेंगे। आगे आयेगा। बाद में आयेगा, फिर स्पष्टीकरण आयेगा। यहाँ तो सामान्य बात है।

और अन्वयी विशेष, वे गुण हैं। देखो, **अन्वय=एकरूपता; सदृश्यता; 'यह वही**

है' ऐसे ज्ञान के कारणभूत एकरूपता। (गुणों में सदैव सदृश्यता रहती होने से उनमें सदैव अन्वय है, इसलिए गुण द्रव्य के अन्वयी विशेष हैं। अन्वय=सदृशरूप से रहनेवाले विशेष। **उसे अन्वयवाले भेद कहते हैं।** वस्तु तो समझाना है शास्त्र भाषा से। एक आत्मा और एक-एक रजकण जितने द्रव्य हैं, उसमें उनके व्यतिरेक भिन्न-भिन्न अवस्था। विशेष अवस्थासहित द्रव्य है। और अन्वय विशिष्ट गुणसहित द्रव्य, पर सहित नहीं। पर की पर्यायसहित नहीं परन्तु अपनी पर्याय और गुणसहित है। पर की पर्याय और गुणसहित नहीं। समझ में आया इसमें ?

जब तक आत्मा या रजकण ऋद्धि अपना व्यतिरेक विशेष भिन्न-भिन्न अवस्थाओं से सहित है। उसकी अवस्था को दूसरा कौन करे ? और उसकी अवस्था से दूसरे का अस्तित्व कैसे हो ? और अपने अन्वय विशेष से जब सहित है तो उस शक्ति को दूसरा कौन दे ? वे शक्तियाँ अपने पास अन्वय विशेषरूप शक्ति द्रव्य में कायम रहनेवाली है। उस शक्ति को दूसरा कौन दे ? और पर्याय दूसरे से कैसे हो ? कहो, समझ में आया इसमें ? **इसलिए एक पर्याय से प्रलय को प्राप्त होनेवाली,....** प्रत्येक वस्तु अस्तिकाय ली है न इसलिए। एक अवस्था से प्रलय पाती हुई, नाश पाती हुई। **अन्य पर्याय से उत्पन्न होनेवाली....** आत्मा और परमाणु (आदि) **और अन्वयी गुण से ध्रुव रहनेवाली....** अन्वय अर्थात् सदृशरूप रहनेवाली शक्तियों से कायम शक्ति। सदृशरूप से शक्ति से ध्रुव रहती हुई, कायम टिकती रहती शक्ति **एक ही वस्तु को व्यय-उत्पाद-ध्रौव्यलक्षण अस्तित्व घटित होता ही है।**

एक ही आत्मा को, एक ही परमाणु को, एक ही पदार्थ को व्यय, देखो ! अस्तित्व का लक्षण अथवा स्वरूप व्यय-उत्पाद-ध्रुव है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव सत् है न ? उत्पाद-व्यय-ध्रुव सत् है और सत् है, वह द्रव्य का लक्षण है। व्यय अर्थात् पूर्व की अवस्था का नाश, नयी अवस्था का उत्पाद, ध्रुवरूप से टिका रहना, यह लक्षण अस्तित्व में घटित होते ही हैं। प्रत्येक में अपना इस प्रकार से अस्तित्व घटित होता है। कहो, समझ में आया इसमें ? किसी के गुण-पर्याय के कारण किसी का द्रव्य नहीं है। अपने गुण-पर्याय के कारण अपना द्रव्य है। देवानुप्रिया ! तब क्या है ? उसके साथ क्या है अपवाद ? कुछ है या नहीं ? इसमें कुछ भूल गया है इसमें ? हाँ। ऐसा है। कहो, समझ में आया इसमें ?

भगवान तीर्थंकर परमात्मा ने जितने अनन्त जगत के पदार्थ देखे, उनमें एक-एक पदार्थ अपनी अन्वय अर्थात् कायम रहनेवाली शक्तियोंसहित है। और व्यतिरेक अर्थात् भिन्न-भिन्न अवस्थासहित वह अपनापन रखता है। पर के कारण से यह नहीं और इसके कारण से पर नहीं। आहाहा!

वीतरागमार्ग की एक-एक गाथा जगत के भिन्न पदार्थ का भेद करानेवाली है। भेदज्ञान, भेदज्ञान। एक रजकण की पर्याय उससे है, उसकी पर्याय पर से नहीं। एक आत्मा की पर्याय स्वयं से है, वह पर्याय पर से नहीं। पढ़ते नहीं, विचारते नहीं और यह ऐसे हो गया। समझ में आया? **और यदि गुणों तथा पर्यायों के साथ (वस्तु को) सर्वथा अन्यत्व हो....** देखो, प्रत्येक चीज़ का आत्मा एक-एक को और एक-एक रजकण को उसकी शक्तियों से और उसकी अवस्था और हालत से उसके साथ यदि सर्वथा अन्यपना है, सर्वथा नहीं, कथंचित् कहा जाता है। गुण-पर्याय के नाम, द्रव्य का नाम, इसकी अपेक्षा से कथंचित् कहा जाता है। **सर्वथा अन्यत्व हो तब तो अन्य कोई विनाश को प्राप्त होगा,....** किसी की दशा कहीं विनाश पावे। **अन्य कोई प्रादुर्भाव को (उत्पाद को) प्राप्त होगा और अन्य कोई ध्रुव रहेगा -इस प्रकार सब विप्लव प्राप्त हो जायेगा।** अन्धाधुन्धी, उथल-पुथल घोटालों का विरोध। कहाँ आया है, भाई! अपने दूसरे प्रवचनसार १०१ गाथा। १०१ में आया है न? कि द्रव्य ही यदि उत्पाद पावे, द्रव्य ही व्यय पावे और द्रव्य ही ध्रुव रहे तो घोटाला, विप्लव पावे। वहाँ ऐसा लिया है। १०१ गाथा प्रवचनसार। समझ में आया? क्या कहा?

वहाँ भगवान कुन्दकन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य ने ऐसा कहा। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु वह स्वयं उत्पाद-व्यय-ध्रुव उसके अंश के हैं, अंश के। अंशरूप से उपजे, अंशरूप से विलय और अंशरूप से ध्रुव। वस्तु स्वयं उपजे, वस्तु स्वयं नाश पावे और वस्तु स्वयं ध्रुव रहे तो अन्धाधुन्धी घोटाला हो जाये। वस्तु स्वयं अपनेरूप से रह नहीं सके। समझ में आया? यह प्रवचनसार की १०१ गाथा में कहा।

यहाँ ऐसा कहा कि सर्वथा उसके गुण-पर्यायें अन्य हों। सर्वथा क्यों लिया? कथंचित् नाम भेद से भेद है। द्रव्य एक है, गुण अनन्त हैं, पर्याय अनन्त है। संख्या भेद

से भेद है, परन्तु उनमें प्रदेशभेद से भेद नहीं है। प्रदेशभेद अर्थात्? एक आत्मा के असंख्य प्रदेश में वे सब गुण और पर्यायें एकरूप हैं। प्रदेश भिन्न, पर्याय के प्रदेश भिन्न और गुण के भिन्न और आत्मा के भिन्न, ऐसा नहीं है। परन्तु नामभेद, संख्याभेद से भेद है। समझ में आया?

कहते हैं कि उस प्रत्येक वस्तु को अपने **गुणों तथा पर्यायों के साथ (वस्तु को) सर्वथा अन्यत्व हो तब तो अन्य कोई विनाश को प्राप्त होगा,....** अन्य विनाश पावे। उसमें ऐसा कहा। भाई! द्रव्य विनाश पावे। वह तो अन्य विशेष पावे और अन्य दशा उत्पन्न हो। और **अन्य कोई ध्रुव रहेगा....** तीनों द्रव्य हो गये। इस प्रकार सब विप्लव पावे। घोटाला हो। **इसलिए (पाँच अस्तिकायों को) अस्तित्व किस प्रकार है, तत्सम्बन्धी यह (उपर्युक्त) कथन सत्ययोग्य-न्याययुक्त हैं।** अस्तित्व किस प्रकार से है। गुण-पर्यायसहित अस्तित्व है, ऐसा।

प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु का अस्तित्व, गुण और पर्याय से है। कुछ समझ में आता है? गुण और पर्याय। यह तो शास्त्र के शब्द बहुत बार सुने हों, समझे न हों। एक-एक वस्तु आत्मा, परमाणु एक-एक है न? प्रत्येक भिन्न-भिन्न, उसमें जो अनन्त गुण हैं, उन अनन्त गुणसहित ही वह होती है। वे अनन्त गुण और पर्याय जो है, वह उसका अस्तित्व है। उससे उसका अस्तित्व है। पर के कारण से अपना अस्तित्व नहीं। अपने कारण से गुण-पर्याय से अस्तित्व है। पर के कारण से नहीं। कहो, समझ में आया?

आत्मा का ध्रुवपना-टिकना, वह स्वयं के कारण से है। पोताने अर्थात् अपने। अपनी पर्याय का टिकना अपने कारण से है और पर्याय का होना, वह अपने कारण से है। पर के कारण से नहीं। ऐसे गुण-पर्याय के अस्तित्व किस प्रकार से है? कि इस प्रकार से उसका अस्तित्व है। अपनी शक्ति और अवस्था से उसका अस्तित्व है। वह द्रव्य का अपनी शक्ति और अवस्था से उसका अस्तित्व है। **तत्सम्बन्धी यह (उपर्युक्त) कथन सत्य योग्य-न्याययुक्त हैं। 'साधवस्तित्वसंभवयवगर कथनम्'** इतने शब्द प्रयोग किये हैं। झगड़ा चले, ऐसी बात है। उपादान। प्रत्येक द्रव्य का अपना अस्तित्वपना कैसे है? होनापना कैसे है? मौजूदगी कैसे है? आत्मा की मौजूदगी कैसे है? परमाणु की मौजूदगी कैसे है? कि उसके गुण-पर्याय के अस्तित्व से उसकी मौजूदगी है। कहो, समझ में आया?

इस रोटी के कारण से यह शरीर टिकता है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं... भाई! वह तो लिखते हैं न? उसे बैठा हो, वह भी भगवान आत्मा है न? उल्टा पड़ा, वह भगवान है। उसकी अशुद्धता की भी बलिहारी है। कल लेख आया। देवानुप्रिया! इच्छा, आत्मा की होती है कि मुझे खाना है... देखो न, कितना उपवास का काम शरीर से आत्मा में कर देता है। और शरीर का काम आत्मा करता है। शरीर को प्रसन्न रखे। भूख लगी हो तो खिलावे, पिलावे, नहलावे, धुलावे, स्वच्छ रखे। हाँ, ऊपर वस्त्र करावे। उसे सर्दी न लगे। अरे! जैनदर्शन। जैन नहीं, वस्तुस्थिति। जैन कोई सम्प्रदाय नहीं, वह तो वस्तु की स्थिति है। वस्तु ही ऐसी है। कोई भी वस्तु ऐसा कहो कि है, तो है, तो ध्रुव अनादि से स्वयं से है। है तो उसकी अपनी अवस्था भी वर्तमान स्वयं से अनादि से है। वस्तु ही ऐसी हो, उसमें द्रव्य अर्थात् तो परमेश्वर ने देखा, वैसा कहा। कहीं परमेश्वर ने बनाया और फिर कहा, ऐसा नहीं है। शरीर को कहा, ऐसा है? जाना कि ऐसा है। वस्तु अनादि से केवली जानते आये, अनादि से कहते आये, अनादि से वस्तु अपने गुण-पर्याय से अस्तित्व धरती आती है।

मुमुक्षु : शास्त्र में तो ऐसा आवे न, इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह किसे? जड़ को या आत्मा को?

मुमुक्षु : आत्मा को ही न,...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वह तो उघाड़ के भाग को अपने आत्मा का कहा है। जड़ के भाग को जड़ का कहा है। इसे आत्मा का कहा नहीं। वह तो असद्भूतव्यवहारनय से उपचार से कथन है। आत्मा का नहीं। उस इन्द्रिय के एक-एक परमाणु अपने गुण-पर्याय से अस्तित्व रखता है, वैसे आत्मा अपने गुण-पर्याय से अस्तित्व अर्थात् मौजूदगी रखता है। पर के कारण से नहीं।

मुमुक्षु : दूसरे भव में...

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे भव में अर्थात् भी क्या? यह बोलने में-जानने में तीन थे, उनका जानने में लेकर लगाओ। कहो, समझ में आया इसमें?

बोलने में आवे कि इस जीव को असद्भूतव्यवहारनय से दस प्राण हैं, पाँच इन्द्रियाँ

हैं, मन, वचन, बल और आयु जीव को है। परन्तु वह तो असद्भूतव्यवहारनय का कथन है। अर्थात् की उसमें नहीं परन्तु साथ में निमित्तरूप से है, ऐसा करके उसके हैं, ऐसा कहा गया है। व्यवहारनय अर्थात् उसके नहीं, असद्भूत अर्थात् कि उसके नहीं। तब कहा क्यों? कि निमित्तपना साथ में है, उसका ज्ञान कराया है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : साथ में है, यह भी सीखना चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या सिखलावे? सीखने का था, वह तो अनादि से सीखा नहीं। मेरे यह प्राण है और इन्द्रियाँ मेरी हैं, यह तो सीखकर बैठा है। उसे क्या सीखना तुझे? वे तेरे नहीं हैं, ऐसा इसे सीखना है। चन्दुभाई! यह तो जड़ है। वह तो अनादि का है। अरे! यह तो वहाँ तक कहा कि एक समय के अंश को, ज्ञान का अंश है वह स्वयं माने, वह तो अनादि की बुद्धि है। पर की तो बात तो एक ओर रखो परन्तु अंश में स्वयं माने, वह तो अनादि का है।

त्रिकाल चैतन्य ध्रुव का एकपना बतलाना है, वह भली बात है। क्या कहा? पर से बन्ध है और सम्बन्ध है, यह कथा तो अनन्त बार सुनी है। हाँ, यह समयसार में नहीं कहा? श्रुत, परिचित, अनुभूत सर्व को काम भोग बन्ध की कथा। वह तो सुनी हुई है, परिचय में आयी है, अनुभव में आयी है, उसे क्या करना है हमारे, ऐसा कहते हैं। पर से भिन्न एकत्व की कथा कभी सुनी है? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? श्रुत परिचित अनुभूत सर्व को काम भोग बन्धन कथा, पर से एकत्व विभक्त कभी सुना नहीं। समझ में आया? यह भी सुना नहीं। अब इसे क्या सुनाना चाहिए। पर से भिन्न एकत्व की उपलब्धि केवल सुलभ ना। ऐसा है। समझ में आया?

श्रुत परिचित अनुभूत सर्व को काम भोग बन्धन की कथा। इच्छा और इच्छा का करना और बन्ध का होना, बन्ध की बात, वह बात तो अनादि से सुनी है। परिचय में आयी है। वह बन्ध पराश्रय से मान्यता करके आ गयी है। परन्तु पर से भिन्न एकत्व की बात, पर से अकेला भिन्न, पर से अकेला भिन्न और पर से एकदम भिन्न '**णवरि एयत्तसुवलंभो**' पर से विभक्त, यह बात उसने सुनी नहीं। कहो, समझ में आया? यह ज्ञान तो अनादि का करना आता है, उसे क्या सुनाना था? आहाहा!

भगवान आत्मा अनादि से सुनता आता है, वही बात है। वहाँ तो ऐसा कहते हैं एकेन्द्रिय को भी वह है न, सुन न भाई! एकेन्द्रिय के जीव को उस बात का वेदन वर्तता है। ऊपरवाला है न, वह है और वह वेदन उसे भी वर्तता है। नग्न जैन दिगम्बर साधु होकर उसे पर के एकत्वपने का वेदन वर्तता है। वर्तता है, वह कर रहा है, करता है, समझता है, मानता है, पहिचानता है और उसमें स्थिर है। यह बात तो अनादि की है। हमें उसे क्या करना? चन्दुभाई! ठीक, परन्तु तुम लागत पड़ोसी हो। कहो, समझ में आया इसमें?

भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा कहते हैं, बापू! यह पर के सम्बन्धवाला और रागवाला, भोक्ता और कर्ता, यह बात तो तूने अनन्त बार की है, अब मुझे वह नहीं की ऐसा कुछ बतलाना है। नहीं की, ऐसा कुछ बतलाना है। वह यह है। कहो, समझ में आया इसमें? अरे! ऐसी वस्तु जहाँ स्वतन्त्र है, उसे कहाँ भान है? पर के कारण यहाँ और यहाँ के कारण पर, यह वस्तु स्वभाव में तीन काल में नहीं है।

प्रत्येक वस्तु अपने गुण-पर्याय के स्वभाव के अस्तित्व से है और दूसरे उसके पदार्थ दूसरे उनके गुण-पर्याय के अस्तित्व से है। ऐसा भेदज्ञान कराने के लिये बात की है। सत्य है और न्याययुक्त है, कहा? क्या कहा? वह कहना न्याययुक्त सच्चा नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु अपने गुण, शक्ति, अन्वय, व्यतिरेक, अन्वय विशेष। द्रव्य सामान्य हुआ तो गुण अन्वय सदृश रहनेवाले विशेष भाग और व्यतिरेक पर्याय भिन्न-भिन्न होती अवस्थायें, उनसहित उसका अस्तित्व है। ऐसा इसने अनन्त काल में निर्णय नहीं किया। निर्णय करे तो पर से लक्ष्य छूटकर अपने द्रव्य पर लक्ष्य जाये। कहो, समझ में आया?

अब, (उन्हें) कायत्व किस प्रकार है, उसका उपदेश किया जाता है :- जीव, पुद्गल,.... यह सब परमाणु **धर्म, अधर्म, और आकाश यह पदार्थ अवयवी हैं।** अब कायपना सिद्ध करते हैं, कायपना। वह तो ऐसा सिद्ध किया, उसके गुण और पर्याय से उसका अस्तित्व है, ऐसा सिद्ध किया। अब कहते हैं, यह जो पाँच पदार्थ है, उसका अवयवी है, ये पाँच अवयवी है। जीव अवयवी है। जीव को अवयव है, इसलिए अवयवी है। गजब बात, भाई! नीचे है, देखो! अवयववाला, वह अवयवी; सावयव, वह अवयवी;

अंशवाला, वह अवयवी; अंशी, वह अवयवी। जिसे अवयव (एक से अधिक प्रदेश) हों, ऐसा वह अवयवी। यह सब अवयवी की बात है। ले! यह अवयवी अर्थात् अवयववाला आत्मा। अवयववाला इसलिए आत्मा अवयवी। सावयव आत्मा, इसलिए अवयवी, अंशवाला आत्मा, इसलिए अवयवी, अंशी, इसलिए अवयवी। जिसके अवयव—एक से अधिक अंश हो, इसलिए आत्मा अवयवी। कहो, समझ में आया?

यह और शरीर अवयवी और अँगुली और यह अवयव। यह तो सुना है कहे। ऐई! स्थूल बात है। वे तो भिन्न-भिन्न परमाणु हैं, उन्हें इकट्ठा होकर स्कन्ध गिना, इसलिए अवयवी और उसके परमाणु, वे अवयव। समझ में आया? लोगों को इस मूल बात-मूल की बात का वाँचन नहीं, श्रवण नहीं। और अकेले प्रवृत्ति के क्रियाकाण्ड में लग गये। मूल बात का सम्यक्ज्ञान का जो वचन चाहिए, जिसका स्थूल माप अमाप ज्ञान का, वह ज्ञान का अपना अस्तित्व स्वीकार करना और पर से भिन्न जिसकी कीमत अपार, ऐसे ज्ञान की कीमत की नहीं। कीमत उसकी हो गयी, यह वाणी छोड़ी और यह त्याग किया और स्त्री छोड़ी, और पुत्र छोड़े और वस्त्र छोड़े और यह हुआ, इसकी कीमत हो गयी। जिसकी कोई कीमत नहीं, उसकी कीमत हो गयी। समझ में आया?

यह छोड़ कौन सकता है? वे तो छूटे पड़े ही हैं। जरा राग मन्द किया हो कोई, कि यह नहीं। तो उस मन्द राग से वस्तु अभिप्राय में मेरा अस्तित्व भिन्न है, उसे छोड़-ग्रहण नहीं कर सकता, ऐसा जहाँ अभिप्राय पड़ा है कि छोड़-ग्रहण कर सकता हूँ, उस अभिप्राय में अनन्त कषाय पड़ी है। यह राग मन्द हुआ, वह कहाँ तुड़ाया है वहाँ? समझ में आया?

कोई परिणाम में राग जरा मन्द किया हो कि यह वस्तु यह नहीं, यह नहीं, ऐसा करके। परन्तु अभिप्राय तो ऐसा है कि यह मैंने छोड़ा है, परन्तु पर का अस्तित्व ग्रहण कब किया है कि उसे छोड़ा? अर्थात् पर को ग्रहण-त्याग का जो अभिप्राय, वही अनन्त कषाय है। कषाय मन्द कहाँ पड़ी है? और वही बड़ा अशुभभाव है। शुभभाव होता है, शुभभाव होता है। ऐ देवानुप्रिया! तुम्हारा वापस याद आया। नडियाद से जाये तो शुभभाव तो हो, छोड़ूँ तो हो, अमुक हो। कहो, समझ में आया इसमें?

तो याद आवे तो ज्ञान का तो काम है या नहीं? कहते हैं कि शुभभाव जरा कुछ हुआ

हो परन्तु मान्यता में ऐसा है-कषाय के अभिप्राय में कि यह मैंने छोड़ा, इसलिए त्यागी हुआ। यह छूटा, इसलिए त्यागी हुआ, इस मान्यता में तीव्र कषाय का अभिप्राय है। क्योंकि उसका अस्तित्व तुझसे छोड़ा नहीं जाता और तुझसे लिया नहीं जाता, तथापि उसके अस्तित्व को न देखकर, देखो! आज अष्टमी थी तो यह नहीं खाया। देखो, रोटियाँ छोड़ दीं। दाल-पानी छोड़ दिया। कहते हैं कि मिथ्यात्वरूपी तीव्र अनन्त कषाय का पोषण हुआ। कि जो अस्तित्व उसके कारण से दूर होता था, और उसके कारण यहाँ आता था, उसे मैंने राग को मन्द किया, इसलिए मैंने उसे दूर किया और उसे मैंने लिया नहीं, ऐसा जो एक संयोगी द्रव्य का स्वामीपना अर्थात् तीन काल के जड़ और परपदार्थ के स्वामीपने का अभिप्रायरूपी कषाय, उसका तो वहाँ पोषण हुआ। ऐ विशालजी! यह बात ऐसी है। आहाहा!

वह किस कारण से? कि जिसका अस्तित्व भिन्न है, उसके अस्तित्व में तू अधिकारी हो कि इसको मैंने छोड़ा और इसको मैंने रखा और इतना त्याग किया और इतना ग्रहण किया, वह तो परद्रव्य का स्वामीपना तीन काल में हो नहीं सकता, उसका स्वामीपना तूने माना। अब तुझे किस काँटे से राग मन्द तोलना है वहाँ? अभिप्राय में तो इतना कषाय का, ग्रहण-त्याग का महा तीव्र कषाय पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? ऐ, रतिभाई! हें? चलता ही है न? उसमें वापस तुम सब घुस जाते हो। समझे बिना की खबर नहीं मिलती। वह यहाँ पूछा जाये या नहीं? ऐई! खबर नहीं होती। चीज़ क्या है? मैं कहाँ हूँ कितने में? वे दूसरे कहाँ हैं कितने में? जितने में वे हैं, वहाँ मैं नहीं, जितने में मैं हूँ, वहाँ वे नहीं। इसलिए मुझे पर का लेने-छोड़ने का स्वामीपना मुझमें है ही नहीं।

मैं तो मेरे गुण-पर्याय से सहित मौजूदगीवाला उसमें ही मेरा अस्तित्व और स्वामीपना है। पर में स्वामीपना नहीं। तथापि उसे एक अनन्त के स्वामीपने वर्ते, उसे अनन्त कषायरूपी मिथ्यात्वभाव का पोषण वर्तता है। मनहरभाई! गजब बातें परन्तु यह। ऐसे कठिन पहाड़े! इसका माप करना आवे नहीं। इसे राग मन्द करना है। हमको शुभभाव हुआ है। समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं। लो! वे पाँच पदार्थ अपने में अवयवी हैं। अब उसे पर्याय और प्रदेश दो को अवयव ठहराकर अवयवी कहना है। कहो, समझ में आया?

प्रदेश नाम के उनके जो अवयव हैं, किसके? इस जीव के असंख्य प्रदेश। स्कन्ध के दो से अनन्त प्रदेश पुद्गल के, हों! धर्मास्ति के असंख्य प्रदेश द्रव्य, अधर्मास्ति के असंख्य, आकाश के अनन्त। **जो अवयव हैं, वे भी परस्पर व्यतिरेकवाले होने से....** देखो, यहाँ उसे पर्याय कहा न? अब तुम्हारा प्रश्न आया, सेठी! **वे भी परस्पर व्यतिरेकवाले होने से पर्यायें कहलाती हैं।** लो! पर्याय का लक्षण परस्पर व्यतिरेक है। देखो, दो है। यह लक्षण प्रदेशों में भी व्याप्त होता है। क्योंकि एक प्रदेश दूसरे प्रदेशरूप नहीं होने से प्रदेशों में परस्पर व्यतिरेक अर्थात् भिन्नता है, इसलिए प्रदेश भी पर्यायें कहलाते हैं।

गुण को अवयव कहा जाता है। पर्याय को अवयव कहा जाता है। परन्तु गुण अन्वय विशेष है और पर्याय व्यतिरेक भिन्न-भिन्न विशेष है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **वे भी परस्पर व्यतिरेकवाले होने से....** आत्मा के असंख्य प्रदेश, धर्मास्ति के असंख्य प्रदेश, और आकाश के अनन्त, वह एक प्रदेश दूसरेरूप नहीं और दूसरा तीसरे रूप नहीं। समझ में आया? वे भिन्न-भिन्न प्रदेश एक-दूसरे से भिन्न-भिन्न है, इसलिए उस प्रदेश को भी पर्याय कहा जाता है। इस आकाश को अनन्त प्रदेश या अनन्त द्रव्य-पर्याय है। धर्मास्ति को असंख्य प्रदेश या असंख्य द्रव्य-पर्याय है। जीव को असंख्य प्रदेश या असंख्य द्रव्य-पर्याय है। समझ में आया?

कहो, अब यहाँ के सुननेवाले को जरा नया लगे तो उन नयों को सुनाना हो तो कैसा लगे? देखो न! पाँच के वे पदार्थ पाँचों अवयवी हैं। अर्थात् बहुत अंशवाले हैं। बहुत अवयववाले पाँच हैं। इसलिए प्रदेश नामक उनके जो अवयव, वे भी परस्पर भिन्न-भिन्न व्यतिरेक अर्थात् भिन्न, पृथक्। एक में दूसरा नहीं, दूसरे में तीसरा नहीं। **होने से पर्यायें कहलाती हैं।** जिनके साथ पाँच पदार्थों को अनन्यपना होने से कायत्वसिद्धि घटित होती है। देखो! यहाँ असंख्य प्रदेश के साथ या अनन्त प्रदेश के साथ उसे अनन्यपना है, अन्यपना नहीं। आकाश को अनन्त प्रदेश के साथ अनन्यपना है, अन्यपना नहीं। अनन्यपना है, अपनापना है, इसलिए अनन्त प्रदेशरूप से उसे कायत्व कहा जाता है। इसी प्रकार जीव के असंख्य प्रदेश हैं, वे प्रदेश अनन्यपना स्वयं से स्वयं में एकपना है, इसलिए उसे कायत्वसिद्धि घटित होती है। यदि भिन्न-भिन्न प्रदेश हों, तब तो कायत्वसिद्धि नहीं होती।

एक जीव के असंख्य प्रदेश आत्मा से भिन्न-भिन्न हो तो उस आत्मा को अवयवीपना-कायत्वपना सिद्ध न हो। परन्तु उस असंख्यप्रदेशी आत्मा को अवयवी सहितपना है। उसे कायत्व सहितपना है। असंख्यपना सहितपना है। इसलिए उसे कायपना कहा जाता है। कहो, यह कभी अकेले वाँचते हो या नहीं?

पाँच पदार्थों को अनन्यपना होने से.... देखो! क्या कहते हैं? **उनके साथ....** किसके? उन प्रदेशों के साथ। उन प्रदेशों के साथ अनन्यपना होने से **उनके साथ कायत्वसिद्धि घटित होती है।** उस-उस द्रव्य को कायपना-समूहपना घटित होता है। ओहो! अकेला न्याय का और सत्य की सिद्धि का विषय है। **परमाणु (व्यक्ति-अपेक्षा से) निरवयव होने पर भी....** एक रजकण व्यक्ति अर्थात् पृथक्पन की अपेक्षा से निरवयव, उसे अवयव है नहीं। अवयव बिना का, अंश बिना का, निरव—एक अधिक प्रदेश बिना का एक परमाणु। **होने पर भी उनको सावयवपने की शक्ति का सद्भाव होने से....** उस एक परमाणु को भी सावयवपने की शक्ति है। दोपने, तीनपने, चार परमाणुपने, स्कन्ध होने की शक्ति है। उस स्कन्ध में होता है, तो भी अपनी शक्ति के कारण से होता है। समझ में आया?

भले यहाँ स्थूलरूप से होकर यह स्कन्ध हुआ है। उसमें भी परमाणु स्वयं स्थूलरूप से हुआ है। परमाणु सूक्ष्मरूप से रहा है, ऐसा नहीं। उसमें परमाणु अपने कारण से स्थूलरूप से हुआ है, वह स्थूलपने की शक्ति उसमें थी, व्यक्तिरूप से नहीं थी। शक्ति थी। यहाँ स्थूलरूप से होकर दो, तीन, चार होकर कायपना कहा जाता है। अनन्त के साथ वे अनन्त परमाणु हैं। अनन्त परमाणु स्थूलरूप से परिणमित हुए हैं। उसमें सूक्ष्मरूप से नहीं रहा है। जो अकेला परमाणु रहे, ऐसा उसमें नहीं रहा। वह इसमें नहीं। बारीक-सूक्ष्म हों वे। यह क्या है? इसमें कहाँ है? वह तो स्थूल है। सूक्ष्म तो जो नजर में न चढ़े कि यह सूक्ष्म है, वैसे यह परमाणु सूक्ष्मरूप है और सब स्कन्ध भी सूक्ष्मरूप है। यह पूरा स्कन्ध स्थूलरूप हो गया है। स्थूल अर्थात् एक नहीं। एक-एक परमाणु में कोमल और भारीपन की पर्याय उसमें परिणमित परमाणु है। ऐसे अनन्त परमाणु का पूरा स्कन्ध अवयवी, उसे एक परमाणु को अवयव गिनने से सबको अवयवी कहा जाता है। इसलिए परमाणु को

शक्ति अपेक्षा से अवयव कहा जाता है। गजब भाई यह ज्ञान! कहो, समझ में आया?

परमाणु (व्यक्ति-अपेक्षा से) निरवयव होने पर भी उनको सावयवपने की शक्ति का सद्भाव होने से कायत्वसिद्धि.... परमाणु को **निरपवाद है।** क्या कहा? उसे अपवाद बिना की कायत्वसिद्धि है। देखा? परमाणु अकेला है न? निरपवादरूप से उसकी स्कन्ध होने की शक्ति है। निरपवाद, हों! नीचे।

निरपवाद=अपवादरहित। (पाँच अस्तिकायों को कायपना होने में एक भी अपवाद नहीं है, क्योंकि (उपचार से) परमाणु को भी शक्ति-अपेक्षा से अवयव-प्रदेश है)। ऐसा कहते हैं, देखो! उसे कायपना नहीं कहा जा सकता, ऐसा नहीं है। उपचार से भी पाँच अस्तिकाय में जैसे दूसरे में है अणु, वैसे पुद्गलस्कन्ध में परमाणु की अपेक्षा से, परमाणु शक्ति की अपेक्षा से परमाणु को भी अवयवी कहा जाता है।

वाँचन हो और समझण हो, उसे यह जरा दो-दो घण्टे, घण्टे-घण्टे स्वाध्याय करना चाहिए। कोई इकट्ठे होकर वांचन करना चाहिए। ऐसा है। कोई विशेष बुद्धिवाले हों, उनके निकट वाँचना चाहिए। इसका स्वाध्याय प्रतिदिन करना चाहिए। बहियाँ प्रतिदिन जाँचता है या नहीं? हें? प्रतिदिन बहियाँ जाँचता है। कितना आया, कितना गया, कितना... अब यह बहियाँ (शास्त्र) खोजता है कभी? कहो, मोहनभाई! जो देखने का है, उसे देखता नहीं और नहीं देखने का मुफ्त का, वहाँ हैरान होता है। यह कहीं रखने से नहीं रहते और टालने से नहीं टलते। उसमें मुफ्त का विकल्प करे, उसका ऐसा हुआ और उसका ऐसा हुआ। यह देख न! आहाहा!

एक-एक आत्मा में धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश में जैसे कायपना सिद्ध किया, वैसे पाँच अस्तिकाय में भी परमाणु में भी अपवादरहित हम कायपना सिद्ध करते हैं। नहीं कि उसमें अपवाद आता है कि परमाणु में, ऐसा कहते हैं। **वहाँ ऐसी आशंका करना योग्य नहीं है....** अब कहते हैं। क्या कहते हैं? देखो, अब अरूपी में उतारा। **वहाँ ऐसी आशंका करना योग्य नहीं है कि पुद्गल के अतिरिक्त अन्य पदार्थ....** अमूर्तपने के कारण पुद्गल के अतिरिक्त पदार्थ चार है न? चार गिनना है न पाँच में? अमूर्तपना चार है। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और जीव। उस **अमूर्तपने के कारण अविभाज्य होने से....** भाई!

उसमें भाग नहीं हो सकते। अरूपी के भाग चार। रूपी को तो यह भाग करो तुम, यह बहुत स्कन्ध यह... यह... यह... यह। अरूपी चीज़ आकाश, अरूपी चीज़ आत्मा उसके और भाग? आहाहा! समझ में आया?

इन जैन परमेश्वर के अतिरिक्त यह बात तीन काल-तीन लोक में हो नहीं सकती। वे (तो ऐसा कहे) आत्मा सर्व व्यापक है। अनन्त गुण का महा, महा, महन्त, महन्त महान, लो! असंख्य हैं प्रदेश कितने में हैं, किस प्रकार से शक्ति है, उसके अंश पड़ते हैं या नहीं? अंश पड़ते हैं या नहीं? उसकी अज्ञानी को (खबर नहीं)। वीतराग सर्वज्ञ मार्ग के अतिरिक्त यह बात कहीं नहीं हो सकती। कहो, समझ में आया? अरूपी में भाग। एक तो वस्तु अमूर्त। अमूर्त अर्थात् वर्ण, गन्ध, स्पर्शरहित और अविभाज्य। जिसका विभाग नहीं किया जा सकता। **होने से उनके सावयवपने की कल्पना न्याय विरुद्ध (अनुचित) है।** आशंका है, हों! शंका नहीं। शिष्य की आशंका है। प्रभु! परन्तु यह तुम क्या कहते हो? आपकी बात खोटी है, ऐसा हमें नहीं लगता। परन्तु हमें समझ में नहीं आती। यह रजकणों के पिण्ड के तो भाग पड़ते हैं, मूर्त के। परन्तु यह अरूपी के भाग तुम किस प्रकार कहते हो? यह तुम क्या कहते हो? **उनके सावयवपने की कल्पना न्याय विरुद्ध (अनुचित) है।** बहुत वार्ता हुई बहुत वर्ष से यह आकाश के प्रदेश तो कहनेमात्र, प्रदेश-ब्रदेश कुछ है नहीं। अरे भाई! प्रदेश पृथक् नहीं पड़ता परन्तु प्रदेश नहीं? यह खोटी बात है।

ऐसी शिष्य की आशंका है। क्या होगी आशंका? कि यह पुद्गल जो है मिट्टी-मूर्त, उसके तो भाग पड़ते हैं, तो दिखते हैं। इसलिए उसके अवयव कहो तो वह मुझे दिखते हैं। परन्तु अरूपी वस्तु वह कहीं टुकड़े अलग पड़े? उसके भाग तुम किस प्रकार मानते हो? भिन्न पड़े नहीं और उसके भाग किस प्रकार मानते हो? यह हमको समझ में नहीं आता, कहते हैं। तथापि आचार्य कहते हैं, ऐसी आशंका भी करना योग्य नहीं है। ऐसी आशंका करना उचित नहीं है। पुद्गल के अतिरिक्त पदार्थ अमूर्तपने के कारण अविभाज्य होने से उनके सावयवपने की कल्पना न्यायविरुद्ध (अनुचित) है। ऐसा यदि तू कहे तो वह खोटी बात है। क्यों? सुन!

आकाश अविभाज्य होने पर भी.... यह आकाश है न सर्वव्यापक। यह दिखता है,

वह नहीं, हों! यहाँ तो सर्वत्र अरूपी है। आकाश अविभाग्य, कोई भाग नहीं पड़ते। उसका टुकड़ा पृथक् नहीं पड़ता। कि यह प्रदेश यहाँ गया और यह प्रदेश यहाँ रह गया, आकाश द्रव्य यहाँ रह गया और अंश गया, यहाँ ऐसा कुछ नहीं है। आकाश सर्वव्यापक अनन्त प्रदेश अविभाग्य जिसके भाग नहीं होते। देखो, न्याय इसमें, घटाकाश है। लो! यह लकड़ी है न? देखो न, यह लकड़ी, लकड़ी में जितना आकाश रोका गया है, ऐसा कहा जाता है न कि इस लकड़ी प्रमाण का आकाश है। वैसे घट जितने में रहे, उतना घटाकाश। और यह अघटाकाश। अर्थात् कि यह पट हो तो पटाकाश, घटाकाश नहीं। जितने में घटे आकाश हो तो उतने में पट नहीं रहता। पट जितने में रोका हो उतने में घट ने नहीं रोका। दोनों भिन्न-भिन्न हैं। समझ में आया?

'यह घटाकाश है, यह अघटाकाश (पटाकाश) है'.... ऐसी विभागकल्पना देखने में आती है ही। यह कपड़ा यहाँ है, यह घट यहाँ है। ऐसा नहीं कहा जाता घट बढ़ता है और कपड़ा भी बढ़ता है, ऐसा नहीं। आकाश... आकाश। यह तो पूरा न्याय का विषय है। ओहोहो! प्रवचनसार में अँगुली का दृष्टान्त दिया है न? दो मुनि बैठे हैं तो एक मुनि जहाँ बैठे हैं, वहाँ दूसरे मुनि हैं? यह एक मुनि का भाग है, वह दूसरे मुनि का भाग है आकाश का? भिन्न-भिन्न आकाश है। इस प्रकार एक-एक घटाकाश, एक पटाकाश अर्थात् लकड़ी आकाश का इतने का भाग भिन्न-भिन्न प्रदेश भिन्न नहीं होने पर भी पदार्थ भिन्न-भिन्न के आकाश को जो रोकता है, उतने भाग भिन्न समझे जा सकते हैं।

ऐसी अविभागकल्पना दृष्टिगोचर होती ही है। ऐसी विभाग की कल्पना देखने में आती ही है। लो! देखो! यह दो-दो कहते हैं न। भिन्न-भिन्न है या नहीं? सेठी! आकाश तो ऐसे सर्वव्यापक है परन्तु तुमने जो आकाश का भाग रचा, इन भाई ने रचा है? उसे रचा, वह तुमने रचा है? भिन्न-भिन्न है। भिन्न-भिन्न भाग भिन्न-भिन्न भाग यह भाग इसने रचा, यह भाग इसने रचा और यह भाग इतने में रहा है। भाग भिन्न-भिन्न दिखते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : मकान में भी लिखाते हैं 'आकाश-पाताल...'

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखाते हैं न? ममता के लिये। हाँ, लिखाते हैं। ऊपर किसी से

मंजिल न हो। नीचे किसी से भोंयरा न हो। ऐ, सेठ! ये सेठ तो बहुत बड़ा है। लिखाते हैं न मकान को? कि पूर्व में यह, पश्चिम में यह, अमुक में यह। ऊपर-नीचे मेरी हद है। ऊपर जाने में मेरा यह मकान है, वहाँ कोई मंजिल-माला नहीं है। माघ-मेडी समझे? कोई दस माला बनाकर ऐसे ऊपर से हाल-चाल का रखे या नहीं, यह मेरी जगह है। मंजिल रखते हैं। नीचे मकान बनाया हो तो वह दो मंजिल करावे। फिर वह कोई दस मंजिल करे और दस दो ओर। ऊपर ऐसे दूर से मार्ग करे। नहीं, इस आकाश में हमारा भाग है। जेठालालजी! ऐसा होता है या नहीं? नीचे। भोंयरा दूर मकान है वहाँ से हमारे भोंयरा कर डालेंगे। नहीं, हमारे नीचे भोंयरा नहीं होगा। कहते हैं न? भोंयरा, भोंयरा। हमारी जमीन के नीचे भोंयरा नहीं। नीचे हमारी हद है। ओहोहो!

मुमुक्षु : हद कायम हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हें? हद कायम हो जाती है। उसकी हद दूसरी। दूसरे की हद दूसरी। आकाश के भाग पड़ गये या नहीं? आकाश के भाग हैं न।

मुमुक्षु : पदार्थ है, वहाँ ही भाग पड़ेंगे, पदार्थ नहीं वहाँ भाग नहीं पड़ेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भाग तो सबमें है। यहाँ तो प्रदेश में सिद्ध करना है। अरूप में भी पदार्थ नहीं परन्तु भाग तो है।

यहाँ तो समझाने के लिये कि जिस भाग में यह रुका है, यह रुका, उस भाग में हाथ नहीं। हाथ है तो नहीं। इसलिए आकाश में अविभाग एकरूप होने पर भी भाग दिखते हैं। अर्थात् उसके अंश भिन्न दिखते हैं। इतनी बात सिद्ध की। वे अंश तो अरूप में भी हैं। दृष्टान्त से सिद्ध करके भिन्न-भिन्न अवयवों को सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

यह सिद्ध करना है। बस इतनी बात है। यह देखने में आता ही है, ऐसा कहा न? यह घटाकाश है, यह अघटाकाश है। यह घटाकाश नहीं, ऐसा ले न? पश्चात् सब दूसरा। **ऐसी अविभागकल्पना दृष्टिगोचर होती ही है। यदि वहाँ (कथंचित्) विभाग की कल्पना न की जाये....** कथंचित् विभाग, हों! ऐसे सलंगरूप से नहीं। तथापि प्रदेशरूप से कथंचित् विभाग न माने जायें तो जो घटाकाश है, वही सर्वथा अघटाकाश होगा। जिस जगह घड़ा रखा है, उसी जगह पट रहे, ऐसा हो जाये। ऐसा है नहीं। दोनों आकाश भिन्न-

भिन्न हैं। हाँ, कथंचित् अर्थात् अवयव होने पर भी इस प्रकार से भाग पड़ते हैं। वस्तु सलंग होने पर भी प्रदेश के भाग का यह भाग पड़ता है। सर्वथा भिन्न नहीं। कहो, समझ में आया ? जो घटाकाश है, वह सर्वथा अघटाकाश हो। और यह तो इष्ट (मान्य) नहीं है। **इसलिए कालाणुओं के अतिरिक्त....** एक कालाणु के अतिरिक्त। कालाणु एक-एक भिन्न-भिन्न। **अन्य सर्व में कायत्व नाम का सावयवपना निश्चित करना चाहिए।** देखो! हाँ, अवसयम ऐसा है न ? '**कायत्वारव्यं सावयवत्वमवसेयम्**' सिद्ध करना। कहो, समझ में आया या नहीं ?

ओहोहो! वस्तु कितनी बड़ी चौड़ी कितनी, तथापि उसके भाग के अंश रजकण जितनी जगह में रहे, उतने में प्रदेश, ऐसे असंख्य प्रदेशी जीव, असंख्य प्रदेशी धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, अनन्त प्रदेशी है। पुद्गल दो से लेकर अनन्त प्रदेश का स्कन्ध है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न अपने कारण से अवयवी और अवयव स्वयं के कारण से है। कहो, समझ में आया इसमें ?

उसके अवयव पर के कारण से नहीं हैं। देखो! आचार्य कहते हैं कि निर्णय करना। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, निर्णय कर। ओहोहो! वह यह निर्णय करने बैठें या हमारे संसार के स्त्री, पुत्र लगे हैं, उन्हें पोषण करने में रुकें ? हें! जयन्तीभाई! परन्तु वहाँ तो समय अमुक होता है, वहाँ कहाँ कर सकता है मुफ्त का। यह तो बराबर जैसा है, वैसा निर्णय कर सके, ऐसा सत् है। अपने उसका कर सकने के लिये ऐसा करूँ, और वैसा करूँ और अमुक करूँ। धूल भी नहीं करता। व्यर्थ का आत्मा कचरा उठाता है। कल्पना में, हों! कल्पना में। मोहनभाई! उकरडा समझते हो ? क्या ? ताजा कचरा। कचरा होता है न कचरा ? कचरे के ढ़ेर। सिर मारे न ? बैल होते हैं न बैल ? बैल बहुत ही जोरदार। उसमें सिर डालते हैं। यहाँ सिर डाल तो धूल और राणा और गोबर सिर पर पड़े। बड़े व्यक्ति बनकर व्यर्थ का कचरा उठाता है। झवेरचन्दभाई! कहो, समझ में आया इसमें ?

इसलिए प्रत्येक को पाँच अस्तिकाय को कायप्रमाण यह सावयवपना निर्णय करना। जैसा है, उसके ज्ञान में इस बात को लेना। अब तीन लोक सम्पन्न शब्द कहा है न चौथा ? '**णिप्पण्णं जेहिं तेल्लोककं!**' इन तीन पद के अर्थ हो गये।

जेसि अत्थि सहाओ गुणेहिं सह, पज्जणहिं विविहेहिं! ते होंति अत्थिकाय।

उसे अस्तिकाय कहते हैं। अब '**णिप्पण्णं जेहिं तेल्लोककं!**' यह तीन लोक अनादि से ऐसे के ऐसे रहे हुए हैं। वह इस पंचास्तिकाय से रचित-बने हुए हैं। किसी ने उन्हें बनाया नहीं। किसी ईश्वर (ने) बनाया हुआ नहीं। यह पंचास्तिकाय तीन लोक में ऐसे के ऐसे रहे हुए हैं। उसके भाग पाड़कर कायपना सिद्ध करेंगे।

उनकी जो तीन लोकरूप निष्पन्नता (-रचना) कही। रचाना अर्थात् ? नया नहीं, ऐसा का ऐसा है, ऐसा। वह भी उनके अस्तिकायपना (-अस्तित्वपना और कायपना) सिद्ध करने के साधनरूप से कहा है। देखो! समझ में आया ?तीन लोक के भाग पाड़कर कहा, वह भी उनका अस्तित्व का कायत्व सिद्ध करने के साधनरूप से कहा है। तीन भाग करेंगे, लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

धारावाही प्रवचन नं. ८ (प्रवचन नं. १२), गाथा ५ - ६
दिनांक - १८-१२-१९६३, पौष शुक्ल ३, बुधवार

पंचास्तिकाय की गाथा चलती है। उसमें अस्तिकाय अर्थात् अस्तिपना और कायपना सिद्ध करते हैं। पाँच पदार्थ में काल तो अस्ति है परन्तु उसमें कायपना अर्थात् बहुप्रदेशपना नहीं है। अब यहाँ यह बात पहले तो कायत्व सिद्ध कर गये हैं। प्रत्येक आत्मा या धर्मास्ति आदि के प्रत्येक प्रदेश भिन्न-भिन्न है। व्यतिरेक अर्थात् भिन्न-भिन्न है। इससे भी उसका कायपना, वह असंख्य प्रदेश आदि, अनन्त प्रदेशसहितरूप से होने से जीव को और आकाश को दोनों को कायपना सिद्ध होता है।

यहाँ दूसरे प्रकार से सिद्ध करते हैं। **उनकी जो तीन लोकरूप निष्पन्नता (-रचना)....** पाँच पदार्थ तीन लोक में व्याप्त हैं। **वह भी उनका अस्तिकायपना....** अर्थात् अस्तिपना और कायपना **सिद्ध करने के साधनरूप से कही है।** जरा सूक्ष्म बात है न यह तो? अवयवरूप से तो सिद्ध कर गये। क्षेत्र के भागरूप से कायपने की सिद्धि करते हैं। सेठी! क्या कहा, परन्तु इसे इसमें याद रहता है? पाँच पदार्थ है या नहीं? काल के अतिरिक्त पाँच पदार्थ। अस्तिकाय। उनका कायपना प्रत्येक पदार्थ में एक प्रदेश का दूसरे प्रदेश में पृथक्पना है। एक का दूसरा, दूसरे में ऐसा अनेक का ऐसे पृथक्पनेवाले असंख्य प्रदेश या अनन्त प्रदेश, उससे उसका कायपना अर्थात् बहुप्रदेशों के समूह में सहितपना उस-उस द्रव्य को लागू पड़ता है। यह तो दूसरे प्रकार से आये। लोक के तीन भाग करके कायपना सिद्ध करते हैं। समझ में आया इसमें?

ऊर्ध्व-अधो-मध्य तीन लोक के.... ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक, इन तीन लोक के **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाले भाव....** नयी अवस्था उपजे, पुरानी व्यय हो और ध्रुवरूप से जाति बनी रहे, ऐसे भाव **कि जो तीन लोक के विशेषस्वरूप हैं,....** तीन लोक के विशेषस्वरूप है। तीन लोक सामान्य और यह उत्पाद-व्यय-ध्रुववाले भाव कि जो तीन लोक के विशेषस्वरूप है। **वे भवते हुए....** पाँच पदार्थ—आत्मा, पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, यह **(परिणमत होते हुए) अपने मूलपदार्थों का गुणपर्याययुक्त अस्तित्व सिद्ध करते हैं।** यह परिणमते हुए जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल

परिणमते हुए उनके मूल पदार्थों का गुण और पर्याययुक्त उत्पाद-व्यय-ध्रुव कहा न? अर्थात् गुण-पर्यायसहितपने का अस्तित्व सिद्ध करते हैं। 'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्'।

तीन लोक के भाव सदैव कथंचित् सदृश रहते हैं.... यह द्रव्य, गुण तीन लोक के जो यह पदार्थ हैं, वे किसी प्रकार से ध्रुवपने से सदृश रहते हैं **और कथंचित्....** उत्पाद-व्ययरूप से **बदलते रहते हैं, वे ऐसा सिद्ध करते हैं कि तीन लोक के मूल पदार्थ कथंचित् सदृश रहते हैं और कथंचित् परिवर्तित होते रहते हैं अर्थात् उन मूल पदार्थों का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला अथवा गुणपर्यायवाला अस्तित्व है।** सूक्ष्म बात है, यह भी वस्तु को न्याय से सिद्ध करते हैं न? समझ में आया?

तीन लोक में रहे हुए पाँच प्रकार के द्रव्य अस्तिकायरूप से एक काल को द्रव्यपना कहा है छठी गाथा में। उसमें विशेषरूप से प्रत्येक भाव उत्पाद, व्यय और ध्रुवपने रहा हुआ है। प्रत्येक वस्तु जातिरूप से सदृश रहकर ध्रुवपने, वह ध्रुव। और पलटाया करे, वह उत्पाद-व्यय। यह उत्पाद-व्यय और ध्रुव अथवा गुण और पर्याय, इस प्रकार से सभी द्रव्यों का अस्तित्व इस प्रकार सिद्ध होता है। ऐ रतिभाई! यह सब दिन गये ऐसे के ऐसे, हों! समझे बिना, ऐसा समझ में आये, ऐसा नहीं है। पढ़ना नहीं, कुछ करना नहीं, स्वाध्याय नहीं और धर्म करना है। मैं कौन हूँ, कितने में हूँ, कैसे गुण हैं, उनकी पर्यायें क्या हैं? उसका ज्ञान किये बिना वास्तविक दृष्टि और रुचि कहाँ करना, इसकी उसे खबर नहीं पड़ती। कहो, फावाभाई! यह पढ़ना और विचारना पड़ेगा या नहीं? घर में पढ़ते हो? घर में नहीं।

मुमुक्षु : किस प्रकार से पढ़ना समझ में नहीं आये तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहो, समझ में नहीं आये तो किस प्रकार पढ़ना? तुम्हारे ..... कराते हैं। बहियाँ कैसे घर में फिराते हो? वैसे पढ़ना चाहिए, यह क्या कहते हैं, देखो! पहले प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व है, यह सिद्ध कर गये। समझ में आया?

किस प्रकार? पहले उत्पाद-व्यय और ध्रुव लक्षण से और गुण-पर्याय से उसका अस्तित्व कैसे? कि प्रत्येक पदार्थ अपने गुण-पर्याय से अनन्य है। अनन्य अर्थात् भिन्न नहीं। प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु उसके गुण पर्याय से अनन्य अर्थात् एकमेक है।

इसलिए यहाँ गुण-पर्याय अस्तिरूप से है, उस प्रकार से द्रव्य भी अस्तिरूप से सिद्ध हुआ है। और दूसरे प्रकार से कायपना सिद्ध किया। पहले, कि प्रत्येक आत्मा और धर्मास्ति आदि को, एक प्रदेश से दूसरे प्रदेशरूप नहीं, ऐसा अन्य के भिन्नपने के व्यतिरेक द्वारा यह बहुप्रदेशवाला प्रत्येक द्रव्य है, ऐसा उसका कायपना सिद्ध करते हैं।

अब यहाँ दूसरे प्रकार से कहते हैं। समझ में आया? ऊर्ध्व-अधो और मध्य, तीन लोक में रहे हुए पदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रुववाले भाव हैं; इसलिए उसे अस्तिपना है। उत्पाद-व्यय, वह पर्याय है; ध्रुव, वह गुण है। इस प्रकार उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्, इस प्रकार उसे सिद्ध किया है। अस्ति (सिद्ध की)। अब काय सिद्ध करेंगे। **पुनश्च, धर्म, अधर्म और आकाश....** यह तीन पदार्थ लिये हैं, हों! धर्म अर्थात् यह करना, वह धर्म नहीं। चौदह राजू लोक में एक धर्मास्ति नाम का एक पदार्थ है। एक अधर्मास्ति नाम का पदार्थ है। अरूपी और आकाश। **यह प्रत्येक पदार्थ ऊर्ध्व-अधो-मध्य ऐसे लोक के (तीन) विभागरूप से परिणमित होने से....** प्रत्येक पदार्थ के लोक की अपेक्षा से तीन भाग पड़ते हैं। उन प्रदेश की अपेक्षा से कायत्व सिद्ध किया था। यहाँ लोक के भाग की अपेक्षा से कायत्व सिद्ध करते हैं। समझ में आया इसमें? क्या इसमें समझाते हैं? लो! यह कहा, फिर समझे क्या? इसे समझ में आये? मूल बात कही न।

पहले प्रत्येक जीव को उसके प्रदेश की भिन्नता द्वारा कायत्व अर्थात् प्रदेशों का समूहपना सिद्ध किया है। अब यहाँ लोक के तीन भाग करके उसका कायत्व सिद्ध करते हैं। क्योंकि उसके भाग पड़े, ऐसे बहुत भागवाला, वह आत्मा, बहुत भागवाला वह धर्मास्ति, ऐसा कहकर उसका कायत्व क्षेत्र लोक की अपेक्षा से उसका कायत्व सिद्ध करते हैं। अभ्यास नहीं होता। नहीं किया, नहीं। एक बार नहीं किया। बीड़ी, तम्बाकू में किया। मोहनभाई! आहाहा!

पहले में उत्पाद-व्यय-ध्रुव से अस्तित्व है, ऐसा सिद्ध किया था। यहाँ भी भवते -परिणमते होते मूल पदार्थ सामान्यरूप से वस्तु है, ऐसा लोक, उसका प्रत्येक का उत्पाद-व्यय-ध्रुव का समूह होता है, ऐसा करके अस्तित्व सिद्ध किया है। उसके प्रदेश की भिन्नता द्वारा प्रत्येक वस्तु का काय अर्थात् बहुप्रदेशवाला है, ऐसा सिद्ध किया। अब लोक के तीन भाग करके भी प्रदेश को सिद्ध करते हैं। समझ में आया? यह **ऊर्ध्व-अधो-**

मध्य ऐसे लोक के (तीन) विभागरूप से परिणमित होने से.... देखो! उसमें उत्पाद-व्यय के भवते-परिणत होने से। यहाँ तीन भागरूप से **परिणमित होने से उनके कायत्व नाम का सावयवपना है, ऐसा अनुमान किया जा सकता है।** सावयवपना है। नीचे नोट देखो, लोक का ऊर्ध्वभाग, अधोभाग और मध्यभाग, ऐसे तीन भाग हैं तो फिर यह ऊर्ध्वलोक का आकाश भाग, भाग पड़ा न? ऊर्ध्वलोक का आकाश भाग, देवानुप्रिया! भावनगर गये लगते हैं? यह अधोलोक का आकाश भाग और यह मध्य (लोक) का आकाश भाग, ऐसे तीन भाग पड़ सकते हैं। तीन भाग पड़े, इसलिए बहुत भागवाला, थोड़ा बहुत भागवाला कायत्व सिद्ध हो गया। समझ में आया?

इस प्रकार आकाश के भी विभाग किये जा सकते हैं। एक ऊर्ध्व आकाश, मध्य आकाश, अधो आकाश, ऐसे तीन भाग पड़ गये न? तीन भाग शून्यरूप से उसका एकपना तो अस्ति है। परन्तु तीन अवयवोंरूप से, तीन भागपने से भी आकाश का सावयवपना, कायपना सिद्ध होता है। समझ में आया? ऐई! क्या इसमें कुछ पूछा जाये जरा कि इसका क्या समझना? पूछना तो आवे नहीं तो क्या करना? इनकार करते हैं हमारे, रतिभाई कहते हैं पूछा जाये? कहो, संसार की तीन पेढ़ी पूछी जाये या नहीं? हाँ, तीन भाग किये।

एक आकाश है ऐसा। भगवान ने देखा हुआ अरूपी सर्वव्यापक लोक में। उसके लोक की अपेक्षा से तीन भाग पड़े। ऊर्ध्व आकाश, मध्य आकाश (अधो आकाश) अर्थात् आकाश एक होने पर भी उसके तीन भाग पड़कर भी उसका अवयवपना सिद्ध होता है। बराबर है न? क्योंकि ऊर्ध्व का आकाश, अधो में नहीं है। अधो का आकाश, मध्य में नहीं है - ऐसे भाग उसमें पड़ गये। उन तीन भाग से भी उसका अवयवपना, भागपना, कायत्वपना बहुत समूह होकर कायत्व सिद्ध होता है। तीन भाग होकर ऐसा नहीं परन्तु तीनों के समूहरूप से उसका कायत्व सिद्ध हुआ। समझ में आया? देखो, विभागरूप से परिणत होने से उसे सावयव अर्थात् कायत्ववाला है, ऐसा सिद्ध होता है।

इस शरीर को भी ऐसा होता है न? यह ऊँचा भाग, पैर नीचे का, यह मध्य, ऐसे तीन भाग पड़े हैं या नहीं? तो तीन भाग कहो या तीन अवयव कहो, तीन पहलू, ऐसा हुआ या नहीं? और तीनों का समूहरूप कायरूप अर्थात् यह शरीर काय हुई बहुत तीन के समूहरूप। समझ में आया? ओहोहो! मुनियों ने जंगल में रहकर वस्तु की अस्तित्वता और

प्रदेश की समूहता जिस प्रकार है, उसे सिद्ध करने के कितने प्रकार वर्णन किये हैं। समझ में आया ?

इसी प्रकार धर्म—धर्मास्ति यह ऊर्ध्व धर्मास्ति पूरे लोक में धर्मास्ति है न ? यह ऊर्ध्व धर्मास्ति, यह मध्य धर्मास्ति और नीचे भी धर्मास्ति, उसके तीन भाग लोक की अपेक्षा से तीन पड़े, तीन हुए तो अवयव हुए। अवयव हुए तो भाग पड़े। तो तीनों अवयववाला जो सावयव है, तीनों अवयववाला है, ऐसा उसका-धर्मास्ति का कायपना भी सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार अधर्म—अधर्मास्ति चौदह ब्रह्माण्ड में भगवान केवली परमात्मा ने देखा, वह उसके तीन भाग कहे। ऊर्ध्व अधर्मास्ति, मध्य अधर्मास्ति (अधो अधर्मास्ति) ये तीन भाग पड़कर तीन अवयवरूप—तीन भागरूप सिद्ध हुए। और तीन अवयव एक समुदाय ऐसा उसका कायत्व सिद्ध हुआ। कहो, रतिभाई ! इसमें समझ में आता है ? इसमें घर्षण पड़े, ऐसा कुछ (नहीं), इसमें तो सीधी-सादी भाषा है। हें ? (!

मुमुक्षु : भाषा सादी है परन्तु...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह होशियार व्यक्ति कहलाये व्यापार में, इन्हें भी गूढ़ार्थ लगता है। इसकी दरकार नहीं की। क्यों, अनुभाई ! दरकार की हो और न समझ में आये, ऐसा होगा ? दरकार नहीं की।

यह लो, अब फिर जीव की बात करेंगे। आकाश के तीन भाग पड़े तो तीन अवयव हुए। तीन अवयव हुए तो तीन अवयववाला हुआ। तीन अवयववाला तो कायवाला हुआ। बहुत समुदायवाला हुआ। जैसे धर्मास्ति के तीन, वैसे अधर्मास्ति के तीन। कहो, समझ में आया ? अब रहे पुद्गल और जीव दो। अब, **प्रत्येक जीव के....** इसमें तीसरी लाईन। **भी ऊर्ध्व-अधो-मध्य ऐसे तीन लोक के (तीन) विभागरूप से परिणमित....** प्रत्येक जीव को भी, जीव को भी कहा न ? वे तीन सच्चे ठहरे न। तीन उपरान्त चौथे की बात हैं।

इस जगत में भगवान ने छह द्रव्य देखे। तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी प्रभु वीतराग तीन काल, तीन लोक में भगवान ने छह द्रव्य देखे। उनमें एक काल है, उसे बहुत अवयव अर्थात् प्रदेश नहीं हैं। उसे अस्तिपना है परन्तु बहुप्रदेश नहीं है; इसलिए उसे अस्ति कहा,

काय नहीं। काय तो पाँच में हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, जीव और पुद्गल। उनमें कायपना किस प्रकार से है, यह इसमें सिद्ध किया। एक तो उसमें अस्तिपना सिद्ध किया कि उसके उत्पाद-व्यय और ध्रुव दिखायेंगे और तीनों से अस्तिपना है। उन तीन को अस्तिरूप से कहकर उसका अस्तित्व सिद्ध होता है। और कायरूप से उसके दो प्रकार लिये। एक प्रदेश को दूसरा प्रदेश नहीं है। एक-एक परमाणु के, इतने जीव के प्रदेश, इस प्रकार से व्यतिरेक प्रदेश से भी एक-एक प्रदेश में सहितपना है। इसलिए जीव को सावयवपना अथवा कायत्व सिद्ध होता है।

यहाँ तीन लोक के भाग करके कायत्व सिद्ध किया। अमृतचन्द्राचार्यदेव ने टीका भी कैसी की है, देखो न! जो यह तीन लोक कहे हैं, उसमें दो बात सिद्ध करते हैं। हम तो ऐसा कहते हैं। उसमें से दोनों सिद्ध होते हैं—अस्तिपना और कायपना। कहो, समझ में आया इसमें ?

सत्य वस्तु क्या है और उस सत्य में मेरा स्वरूप किस प्रकार है, और उस स्वरूप की फिर रुचि किस प्रकार करना ? समझे बिना रुचि क्या करे ? समझे बिना अन्दर रुचि या समझण नहीं होती। चुंदड़ी में कंकड़। हें ? वह तो कंकड़ है या रुपये, इसकी कुछ इसे खबर नहीं। इसी प्रकार आत्मा क्या चीज़ है, किस प्रकार कायत्व, किस प्रकार सावयवपना, किस प्रकार अस्तिपना और दूसरे पदार्थों का किस प्रकार अस्तिपना, होनापना किस प्रकार समूह अवयवपना – इसके बिना इसे सम्यग्ज्ञान होगा नहीं। छह द्रव्य का सम्यग्ज्ञान जिसे नहीं, यह उसे एक आत्मद्रव्य का यथार्थ ज्ञान होता नहीं। समझ में आया ?

धर्मदास क्षुल्लक ने लिखा है। अनुभवप्रकाश। कहते हैं, प्रत्येक जीव को भी प्रत्येक जीव निगोद से लेकर सब। **ऊर्ध्व-अधो-मध्य ऐसे तीन लोक के (तीन) विभागरूप से परिणमित लोकपूरण अवस्थारूप व्यक्ति की शक्ति का सदैव सद्भाव होने से....** और देखो! **प्रत्येक जीव के लोकपूरण अवस्थारूप व्यक्ति की शक्ति का सदैव सद्भाव होने से जीवों को भी कायत्व नाम का सावयवपना है, ऐसा अनुमान किया ही जा सकता है।** क्या कहा ?

नीचे नोट। प्रत्येक जीव निगोद का हो। एकेन्द्रिय का दूसरा स्थूल आदि हो या दो इन्द्रिय, मनुष्य आदि हो। वह लोकव्यापी केवलसमुद्घात के समय जब आत्मा को

केवलज्ञान हो और जब समुद्घात करे, पूरे लोकप्रमाण व्यापता है। समुद्घात लोकप्रमाण प्रदेश का पसरना। हें ? क्या ? शरीर गड़बड़ हुआ वह, अन्दर आवरण जरा आयुष्य प्रमाण वेदनीय न हो और वेदनीय विशेष हो तो हो जाता है। आयुष्य प्रमाण वेदनीय कर्म को असंख्य प्रदेश का चौड़ापन हो जाता है।

केवलसमुद्घात कायअन्त वह लोकपूरण शक्तिरूप से सिद्ध करना है न ! जीव को त्रिलोकव्यापी अवस्था होती है। भगवान जब केवलज्ञान पाते हैं, उसमें किसी को समुद्घात लोकप्रमाण होता है। पूरे लोकप्रमाण जितने आकाश के असंख्य प्रदेश हैं, उतने एक जीव के प्रदेश हैं। एक-एक प्रदेश में व्याप जाये आठ समय में, उसे समुद्घात है, उसमें अमुक समय लोकप्रमाण रहे। यह सहज बनता है। आयुष्य के प्रमाण में वेदनीय, नाम और गोत्र की स्थिति होने के लिये ऐसा प्रदेशों का वह स्वभाव है कि लोकपूरण हो अर्थात् आयुष्य के समान तीनों कर्म हो जायें। नहीं, यह दूसरी बात है। अभी उसकी बात नहीं। यहाँ तो कर नहीं सकता, ऐसी शक्ति है। कर तो नहीं सकता। केवलज्ञान पानेवाला नहीं और मोक्ष भी जाने का नहीं, ऐसे भी अनन्त जीव पड़े हैं।

उनमें असंख्य प्रदेश में चौड़ा होने की ताकत है।

मुमुक्षु : ....असंख्यात प्रदेश...

पूज्य गुरुदेवश्री : लोक के असंख्य प्रदेश। परन्तु यह लोक की बात है, वहाँ आकाश कहाँ से लाये ? लोक की बात चलती है। आकाश तो बाहर होता है अनन्त। असंख्य प्रदेश में पहले कहा न ? यह लोक है, वह आकाश का असंख्य प्रदेश में है। अर्थात् एक-एक प्रदेश जो है, धर्मास्तिकाय के असंख्य प्रदेश, अधर्मास्तिकाय के, एक जीव के और लोकाकाश के, चारों के समान होते हैं। आहाहा !

यह तो वस्तु का स्वभाव वर्णन करते हैं। ऐसा वस्तु का स्वरूप है। किसी का अस्तित्व सबका है। किसी का कायत्वपना दो भाग है। जगत में प्रत्येक में दो-दो भाग पड़ जाते हैं, दो-दो। योग और जड़, लोक और अलोक, द्रव्य, क्षेत्र और काल, समझे न ? क्षेत्र अनन्त, काल भी अनन्त क्षेत्र का काल, जीव और जड़, रूपी और अरूपी, मूर्त और अमूर्त इत्यादि। ऐसा कायत्व का अकायत्व। समझ में आया ?

ऐसा ही वस्तु का अनादि का स्वभाव किसी ने किया नहीं, किसी से बना नहीं, वस्तुस्थिति है। ऐसी भगवान को केवलज्ञान में बतलायी है। अब इतने विकल्प से यह लिखा गया, उसे समझनेवाले को समझने की दरकार नहीं। दूसरे मुझे समझा दे। तो यह समझाने के लिये लिखा है या नहीं? तो इसे प्रयास तो दूसरा समझे, वह कहे, मुझे समझ में नहीं आता। यह व्यर्थ गया न? वह समझेगा दूसरा इस प्रकार से। सेठी!

लोकव्यापी केवलसमुद्घात के समय जीव को त्रिलोकव्यापी अवस्था होती है। अवस्था हो! लोकप्रमाण होती है। उस समय यह ऊर्ध्वलोक का जीवभाग पहले तो प्रदेश से सिद्ध कर गये हैं। अब यह लोक के भाग से भी अलोकपना सिद्ध करते हैं। यह ऊर्ध्वलोक का जीवभाग, यह अधोलोक का जीवभाग पूरे लोकप्रमाण जीव जब होवे न? और यह मध्यलोक का जीवभाग। ऐसे विभाग किये जा सकते हैं। ऐसी त्रिलोकव्यापी अवस्था की शक्ति तो, त्रिलोकव्यापी अवस्था की शक्ति तो जीवों में सदा है। वह कभी त्रस नहीं हो, उसमें भी शक्ति तो है। हें? उसका स्वरूप ही ऐसा है। इसे भाग पाड़कर समझाना है न? एक जीव हो सकता है तो दूसरे में ऐसी शक्ति नहीं? व्यक्तरूप से भले न हो, परन्तु शक्ति तो है। समझ में आया? यह मध्यलोक का जीव भाग, ऐसा विभाग किया जा सकता है।

ऐसी त्रिलोकव्यापी अवस्था की शक्ति तो जीवों में सदा है। निगोद के अनन्त जीव में एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, (चौइन्द्रिय), पंचेन्द्रिय सबमें है। इसलिए जीव सदा सावयववाले तीन भाग की अपेक्षा से, लोकव्यापी होने की शक्ति की अपेक्षा से तीन भाग पड़े थे। ऊर्ध्वलोक में रहे हुए जीव का भाग, मध्य में रहा हुआ ऐसा पूरे लोक प्रमाण हो तब। तीन भाग पड़ गये। इस प्रकार भी जीव को अवयववाला, अंशवाला और बहुत अंशवाला होने से कायत्ववाला, ऐसा सिद्ध होता है। बराबर है?

अब आया पुद्गल। उस पुद्गल में कायपना सिद्ध करना है। पुद्गल है न, पुद्गल? दो परमाणु से (लेकर) अनन्त परमाणु होने की एक परमाणु में ताकत है। तो उसका कायपना है, यह सिद्ध होता है। पुद्गल भी ऊर्ध्व उन प्रदेशरूप है, यह सिद्ध किया था। एक प्रदेश में दूसरा नहीं, एक परमाणु में दूसरा नहीं, इस प्रकार सावयवपना करके कायत्व सिद्ध किया था। लोक के भाग रूप से कायत्व सिद्ध करते हैं। **पुद्गलों भी ऊर्ध्व**

अधो-मध्य ऐसे लोक के (तीन) विभागरूप परिणत महास्कन्धपने की प्राप्ति की व्यक्तिवाले.... ले ! प्रत्येक परमाणु महास्कन्ध में व्यापकर रहने की शक्तिवाला है। वह तो महास्कन्ध है पूरे चौदह ब्रह्माण्ड प्रमाण। चौदह राजु लोक प्रमाण पुद्गल का एक महास्कन्ध भिन्न है। उस महास्कन्ध के तीन भाग पड़ते हैं। यह ऊर्ध्व का महास्कन्ध, यह मध्य का महास्कन्ध, यह अधो का महास्कन्ध। पूरे चौदह ब्रह्माण्ड प्रमाण महास्कन्ध का बड़ा पिण्ड है। उसमें **विभागरूप परिणत महास्कन्धपने की प्राप्ति की व्यक्तिवाले अथवा शक्तिवाले....** कोई व्यक्ति महास्कन्ध में अभी है, परन्तु परमाणु है। और कोई न हो तो शक्तिवाला होने से महास्कन्ध होने की शक्तिवाला होने से उसमें केवलज्ञान समुद्घात है, उसकी शक्तिवाला होने से यहाँ महास्कन्ध प्राप्ति का व्यक्तिवाला है, वह तो अभी स्कन्ध में व्याप्त है। महास्कन्ध लोक प्रमाण। **शक्तिवाले होने से उन्हें भी वैसी (कायत्व नाम की) सावयवपने की सिद्धि है ही।** ओहोहो !

न्याय से कितना सिद्ध किया है, कहो। हें ? अभी पूरे लोकप्रमाण है अन्दर ! सदा ! अनादि-अनन्त होता है। तीन काल में महास्कन्ध होता है। दूसरा, हो ? दूसरे परमाणु भिन्न-भिन्न होते हैं। एक महास्कन्ध होता है। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त। क्या असंख्य प्रदेश में जीव अनन्त है नहीं ?

मुमुक्षु : असंख्यात प्रदेश में अनन्त परमाणु...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु एक जीव असंख्य प्रदेशी लोक प्रमाणवत्। ऐसे-ऐसे अनन्त जीव लोक में है। एक जीव के असंख्य प्रदेश हैं, उतने लोक के आकाश के प्रदेश हैं। उसमें एक आकाश के प्रदेश में अनन्त जीवों का एक जीव का असंख्यवाँ भाग, ऐसे अनन्त जीव के असंख्य अनन्त एक प्रदेश में प्रदेश रहे हैं। एक प्रदेश में एक गुण का असंख्यवाँ भाग, ऐसे अनन्त जीव के अनन्त प्रदेश रहे हैं, ऐसा कहा न ? समझ में आया ?

यह तो तत्त्व का विषय है। इसे भगवान ने देखा, ऐसा जाना तो उसे माने न ? जाने बिना क्या इसे माने वह ? समझ में आया ? एक जीव के प्रदेश इतने असंख्य हैं कि पूरे लोक प्रमाण हो जायें इतने हैं। ऐसा एक जीव यहाँ ले, वह भाग यहाँ... यहाँ है न खाली भाग है यहाँ। वहाँ ऐसे अनन्त जीव हैं। अनन्त जीव एक अंगुल के असंख्य भाग यहाँ अनन्त। उसके आकाश के एक प्रदेश में एक जीव के जो असंख्य (प्रदेश) हैं, उसका

असंख्यवाँ भाग एक प्रदेश में है। पूरा जीव एक प्रदेश में नहीं रह सकता। एक जीव का असंख्यवाँ भाग एक प्रदेश में है। दूसरे जीव का असंख्य, तीसरे जीव का असंख्य-ऐसे अनन्त जीव के असंख्य ऐसे अनन्त प्रदेश आकाश के एक प्रदेश है। पूरा लोक इस प्रकार व्यापकर रहा हुआ है।

वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है। अपने आप क्या? अनुमान में श्रुतज्ञान में भी आ सकता है। एक जीव है न, एक जीव, उस जीव के प्रदेश भिन्न-भिन्न हैं या नहीं? यह यहाँ नहीं, यह यहाँ नहीं, ऐसे भिन्न-भिन्न हैं न? इस अपेक्षा से असंख्य प्रदेश हैं। तो वे कितने संख्या में? लोक के आकाश प्रदेश जितने हैं, उतनी संख्या में हैं। केवलसमुद्घात हो तो एक प्रदेश में एक जीव के प्रदेश दूसरे में दूसरे, ऐसा करके असंख्य व्यापते हैं। कम-ज्यादा नहीं।

ऐसे अनन्त जीव यहाँ अँगुल के असंख्य भाग में यहाँ पड़े हैं। पूरे लोक में प्रत्येक जगह। अनन्त जीव। उसमें एक आकाश के प्रदेश में एक जीव असंख्य प्रदेशी पूरा नहीं रहा। एक जीव का असंख्यवाँ भाग रहता। ऐसे दूसरे जीव का असंख्यवाँ भाग, तीसरे जीव का असंख्यवाँ भाग, अनन्त के असंख्यवें भाग, ऐसे अनन्त असंख्यात एक प्रदेश का असंख्यातवें भागवाले अनन्त संग्रह है।

अब इसकी गिनती में कुछ इसकी तो वहाँ ७४-७३ में बात करते थे, हमारे उन मूलचन्द को नहीं बैठती थी। ७४ के वर्ष। यह तो दो और दो चार जैसी बात है। ७४-७४ (संवत् १९७४)। कितने वर्ष हुए? ४३। तब यह बात करते थे। आकाश के एक प्रदेश के अन्दर एक जीव का असंख्यवाँ भाग है। ऐसे अनन्त का असंख्य है। ऐसा कहाँ से निकाला? ऐसा कहाँ से निकाला? अरे! कहाँ से निकाले अब? एक यूरोपियन लावे और उसे न्याय से कहे तो समझ सकता है। परन्तु अब इसमें क्या है? हाँ, उसकी योग्यता से अनन्त है। एक-एक निगोद के एक जीव के एक प्रदेश आकाश में असंख्यवाँ भाग है। ऐसे अनन्त के असंख्य भाग है। हें? तीनों काल। अब उसमें क्या, यह तो साधारण बात है। समझ में आया?

गुरुदेव की याद न आवे और गुरुदेव को बैठे थे, तब गुरु को खबर नहीं हो न? गुरुदेव हैं या नहीं? कहाँ है? यह तब बैठे थे वे। तब यह बात हुई थी। उन्हें तो खबर भी

नहीं होगी। यह बात हुई थी। प्राणजीवन मास्टर थे बड़े। राजकोट से वे मास्टर बहुत गिनती में थे और वे मुझे पूछते थे। एक जीव में ऐसा होता है, वैसा होता है। तब वे पूछते थे। हम जवाब देते थे, वह उन्होंने सुना। यह सब भगवतीसूत्र में है। यहाँ कहते हैं कि स्वयं पढ़ा हुआ नहीं और स्वयं को खबर नहीं। कहाँ से निकाला यह ? परन्तु यह देखे तो सही कुछ पढ़ा हुआ हो तो एक जीव के असंख्य प्रदेश लोक प्रमाण है। तो एक जीव उसका उतने में रहा। उसके एक प्रदेश में कितने आवें, ऐसा तब कहा था, हों ! तो पूरे लोकप्रमाण रहे तो एक-एक प्रदेश जीव का हो। आधे भाग में रहे तो एक आकाश प्रदेश (में) दो-दो आवे। समझ में आया या नहीं ? क्या कहा ?

पूरे लोकप्रमाण एक जीव रहे तो एक आकाश प्रदेश में एक जीव का प्रदेश। आधे भाग में जीव रहे तो दो हुए। एक प्रदेश में दो-दो आ गये। चौथे भाग में रहे तो एक प्रदेश में चार-चार आ गये। दसवें भाग में रहे तो एक प्रदेश में दस आ गये। संख्यातवें भाग रहे तो संख्यात भाग। यह अभी असंख्यातवें भाग में है। असंख्यात प्रदेश में एक जीव है। लोक के असंख्यवें भाग में है, इसलिए एक-एक प्रदेश और उसका असंख्यवाँ भाग आ गया है।

यह तो तब ७४ में कहा था। एक प्रदेश में एक पूरा जीव नहीं रहा। एक जीव का असंख्यवाँ भाग। असंख्य प्रदेश में व्यापे बिना जीव नहीं रह सकता। इतनी उसकी चौड़ाई और महत्ता है। एक प्रदेश में एक जीव नहीं रहता परन्तु एक जीव का असंख्यवाँ भाग, ऐसे असंख्य प्रदेश में एक जीव रहता है। यह छोटे में छोटा आत्मा में। और एक का असंख्यवाँ भाग, ऐसे अनन्त का असंख्यवाँ भाग एक प्रदेश में अनन्त रहे। हें ? यह तो ठीक, दवा के तो रजकण हैं एक प्रदेशी। कहो, समझ में आया ? ...यह बात सिद्ध करनी है। उस दवा की बात इसे लागे नहीं पड़ती। यह तो कितने गुण हैं। वह तो गुण बतलाने हों तब। एक आकाश प्रदेश में एक जीव है, वह कभी नहीं रह सकता। तथापि उसके प्रदेश लोक के आकाश प्रदेश जितने हैं। चन्दुभाई ! परन्तु यहाँ अंगुल के असंख्यवें भाग में पूरा आत्मा लो न, वह लोक के असंख्य भाग में अभी है। क्या ? लोक असंख्य योजन में है। वह असंख्यवाँ भाग यहाँ है यह एक। तो उसमें आकाश के एक प्रदेश में अपने जीव के प्रदेश कितने आये ? असंख्य, असंख्य आये। असंख्य का असंख्यवाँ भाग। ओहोहो ! यह तो

व्यापारी की गिनती की चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? हें!

कोई दूसरा नहीं। ७३, ७२, ७१ में यह सब सबको कहा था। ७१ में भगवतीसूत्र लिया, तब यह सब दृष्टान्त देते थे। तब उन्हें ऐसा लगा कि यह कुछ नया सीखना? भाई सीखा न हो परन्तु यह है या नहीं, इसमें देखो न?

मुमुक्षु : सीखने की क्या आवश्यकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सीखना था, कहो, समझ में आया? ७४, क्या इसमें? ७६ वर्ष हुए। आहाहा! यह तो तब कहा था, कहा यह लोक का भाग है। पूरे प्रमाण एक जीव रहे। कहा, आधे भाग में कितना रहे? परन्तु यह तो साधारण बात है। पूरे में एक-एक प्रदेश है तो आधे भाग में दो-दो। चौथाई में चार-चार। अपने असंख्यवें भाग में असंख्य, इसलिए एक प्रदेश में असंख्य। परन्तु अब इसमें क्या है? कहो, समझ में आया इसमें? चन्दुभाई! इसने क्या कभी विचार भी नहीं किया। वढ़वाण नगर दिया। जाओ। परन्तु तुझे कहाँ सच्चा हो। तेरे ज्ञान में यह बात भावभासन हुए बिना तुझे सच्चा नहीं होगा। समझ में आया?

हाँ, यहाँ तो असंख्य प्रदेश के तीन भाग किये। यहाँ अभी। एक ऊर्ध्वभाग-मध्यभाग-अधोभाग। तीन भाग हो गये न? इसलिए तीन भागवाला एक जीव हो गया। तीन अवयववाला तीन भागवाला हो तो तीन भाग का समय वह सावयवी हो गया। इस प्रकार यहाँ सिद्ध किया अभी लोक का, अमृतचन्द्राचार्य। ओहो! दिगम्बर मुनियों ने सत् को सिद्ध करने के लिये हृदय प्रवाहित किया है। ऐसी बात कहीं अन्यत्र है नहीं। समझ में आया? पुद्गल का महास्कन्ध है चौदह ब्रह्माण्ड में एक पूरा। उसके अन्दर की अपेक्षा से उसके तीन भाग पड़ गये। ऊर्ध्व का महास्कन्ध-मध्य का उन परमाणु में अभी भी है और पृथक् हो तो उसकी महास्कन्ध में मिलने की शक्ति है। सत् की अपेक्षा से महास्कन्ध के समुदाय के तीन भाग पड़ जाते हैं। भाग पड़े, इसलिए वह भी अवयववाला और कायवाला सिद्ध हुआ।

गाथा - ६

ते चेव अत्थिकाया तेक्कालियभावपरिणदा णिच्चा।
गच्छंति दवियभावं परियट्टणलिंगसंजुत्ता।।६।।

ते चैवास्तिकायाः त्रैकालिकभावपरिणता नित्याः।
गच्छन्ति द्रव्यभावं परिवर्तनलिंगसंयुक्ताः।।६।।

अत्र पञ्चास्तिकायानां कालस्य च द्रव्यत्वमुक्तम्।

द्रव्याणि हि सहक्रमभुवां गुणपर्यायाणामनन्यतयाधारभूतानि भवन्ति। ततो वृत्तवर्तमानवर्तिष्यमाणानां भावानां पर्यायाणां स्वरूपेण परिणतत्वादस्तिकायानां परिवर्तनलिंगस्य कालस्य चास्ति द्रव्यत्वम्। न च तेषां भूतभवद्भविष्यद्भावात्मना परिणममानानामनित्यत्वम्, यतस्ते भूतभवद्भविष्यद्भावावस्थास्वपि प्रतिनियतस्वरूपापरित्यागान्नित्या एव। अत्र कालः पुद्गलादिपरिवर्तनहेतुत्वात्पुद्गलादिपरिवर्तनगम्यमानपर्यायत्वाच्चास्तिकायेष्वन्तर्भावार्थं स परिवर्तनलिंग इत्युक्त इति।।६।।

त्रिकालभावी परिणमित होते हुए भी नित्य जो।
वे पंच अस्तिकाय वर्तनलिंग सह षट् द्रव्य हैं।।६।।

अन्वयार्थ :- [त्रैकालिकभावपरिणताः] जो तीन काल के भावोंरूप परिणमित होते हैं तथा [नित्याः] नित्य हैं [ते च एव अस्तिकायाः] ऐसे वे ही अस्तिकाय, [परिवर्तनलिंगसंयुक्ताः] परिवर्तनलिंग [काल] सहित, [द्रव्यभावं गच्छन्ति] द्रव्यत्व को प्राप्त होते हैं (अर्थात् वे छहों द्रव्य हैं।)

टीका :- यहाँ पाँच अस्तिकायों को तथा काल को द्रव्यपना कहा है।

द्रव्य वास्तव में सहभावी गुणों को तथा क्रमभावी पर्यायों को [1]अनन्यरूप से आधारभूत है। इसलिए जो वर्त चुके हैं, वर्त रहे हैं और भविष्य में वर्तेंगे, उन भावों-पर्यायोंरूप परिणमित होने के कारण (पाँच) अस्तिकाय और [2]परिवर्तनलिंग काल (वे

---

१. अनन्यरूप=अभिन्नरूप (जिस प्रकार अग्नि आधार है और उष्णता आधेय है तथापि वे अभिन्न हैं, उसी प्रकार द्रव्य आधार है और गुण-पर्याय आधेय हैं, तथापि वे अभिन्न हैं।)

२. परिवर्तनलिंग=पुद्गलादि का परिवर्तन जिसका लिंग है; वह पुद्गलादि के परिणमन द्वारा

छहों) द्रव्य हैं। भूत, वर्तमान और भावी भावस्वरूप परिणमित होने से वे कहीं अनित्य नहीं है, क्योंकि भूत, वर्तमान और भावी भावरूप अवस्थाओं में भी प्रतिनियत (–अपने–अपने निश्चित) स्वरूप को नहीं छोड़ते, इसलिए वे नित्य ही है।

यहाँ काल पुद्गलादि के परिवर्तन का हेतु होने से तथा पुद्गलादि के परिवर्तन द्वारा उसकी पर्याय गम्य (ज्ञात) होती हैं, इसलिए उसका अस्तिकायों में समावेश करने के हेतु उसे [1]'परिवर्तनलिंग' कहा है। [पुद्गलादि अस्तिकायों का वर्णन करते हुए उनके परिवर्तन (परिणमन) का वर्णन करना चाहिए। और उनके परिवर्तन का वर्णन करते हुए उन परिवर्तन में निमित्तभूत पदार्थ का (काल का) अथवा उस परिवर्तन द्वारा जिनकी पर्यायें व्यक्त होती हैं, उस पदार्थ का (काल का) वर्णन करना अनुचित नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार पंचास्तिकाय के वर्णन में काल के वर्णन का समावेश करना अनुचित नहीं है, ऐसा दर्शाने के हेतु इस गाथासूत्र में काल के लिये 'परिवर्तनलिंग' शब्द का उपयोग किया है।] ।।६।।

गाथा - ६ पर प्रवचन

अब छठी गाथा। दरकार कहाँ की? माणेक और मोती में। छठी गाथा। बहुत सरस। ओहोहो! एक न्याय से एक न्याय और लॉजिक से सिद्ध करने की ताकत–मुनि जंगल में आत्मध्यान में मस्त, उन्हें यह वस्तु को सिद्ध करने का ज्ञान का विकास सर्वज्ञ ने जो सिद्ध किया, वह न्याय और अनुमान से सिद्ध होता है। जो यह है, यह है। कहो, मोहनभाई! इसमें कहाँ तुमने अभी तक दरकार की है? यह समझने की कहाँ की है? अब छठी गाथा। ओहोहो! अब काल डाला।

जो ज्ञान होता है वह। (लिंग=चिह्न; सूचक; गमक; गम्य करानेवाला; बतलानेवाला; पहिचान करानेवाला।)

१. (१) यदि पुद्गलादि का परिवर्तन होता है तो उसका कोई निमित्त होना चाहिए–इस प्रकार परिवर्तनरूपी चिह्न द्वारा काल का अनुमान होता है (जिस प्रकार धुआँरूपी चिह्न द्वारा अग्नि का अनुमान होता है, उसी प्रकार), इसलिए काल 'परिवर्तनलिंग' है। (२) और पुद्गलादि के परिवर्तन द्वारा काल की पर्यायें (–'कर्म समय', 'अधिक समय' ऐसी काल की अवस्थाएँ) गम्य होती हैं, इसलिए भी काल 'परिवर्तनलिंग' है।

ते चेव अत्थिकाया तेक्कालियभावपरिणदा णिच्चा।
गच्छंति दवियभावं परियट्टणलिंगसंजुत्ता।।६।।

त्रिकालभावी परिणमित होते हुए भी नित्य जो।
वे पंच अस्तिकाय वर्तनलिंग सह षट् द्रव्य हैं॥६॥

लो! त्रिकालभाव से परिणमता है, त्रिकालभाव से परिणमता है। यहाँ पूरा सिद्धान्त रखा है। यहाँ पाँच अस्तिकायों को और काल को द्रव्यपना कहा है। अब बढ़ाया। उसमें पाँच अस्तिकाय सिद्ध किये थे। यहाँ काल नाम का पदार्थ असंख्य कालाणु है। यह चौदह (राजू प्रमाण) लोक में जितने आकाश के प्रदेश हैं, एक-एक प्रदेश में एक-एक कालाणु, अनन्त गुण का पिण्ड है। एक-एक कालाणु अनन्त गुण का, अनन्त पर्याय का पिण्ड, ऐसा कालाणु अरूपी है। ऐसे असंख्य कालाणु हैं। उनका द्रव्यपना है, वस्तु है, कायपना नहीं। दो कालाणु इकट्ठे नहीं होते। वे परमाणु इकट्ठे हों, उनमें स्पर्श नाम का गुण है, उन्हें काय, इसे ऐसा है नहीं। अर्थात् इसे कायपना नहीं परन्तु अस्तिपना है। अर्थात् छहों द्रव्य अस्तिरूप से है। कायपना काल के अतिरिक्त पाँच को होता है। कहो, समझ में आया इसमें?

द्रव्य-गुण-पर्याय अनन्त गुण। जितने सिद्ध के गुण, उतने एक कालाणु में संख्या की अपेक्षा से गुण। संख्या की अपेक्षा से, हों? जाति की अपेक्षा से भिन्न। अब आया देखो, **द्रव्य...** अर्थात् छहों द्रव्य। **वास्तव में सहभावी गुणों को....** लो! सहभावी गुण—साथ में रहनेवाले गुण। प्रत्येक परमाणु, प्रत्येक कालाणु, आकाश, प्रत्येक जीव वास्तव में सहभावी गुणों को, साथ में रहनेवाले गुणों को, लो! इसमें द्रव्य के साथ रहनेवाले गुणों को या सहभावी गुणों को? परन्तु द्रव्य के साथ रहना या गुण के साथ रहना? ऐसा प्रश्न है। सहभावी गुण। साथ में रहे हुए गुण। गुण अनन्त एक साथ रहे हुए हैं। और **क्रमभावी पर्यायों को द्रव्य वास्तव में सहभावी गुणों....** सहभावी गुण अर्थात् एक साथ रहे हुए गुण, ऐसा। गुण एक साथ रहे हुए हैं। द्रव्य के साथ रहे हुए, ऐसा यहाँ नहीं। गुण एक साथ रहे हुए हैं। गुण हैं। द्रव्य वास्तव में सहभावी गुण अर्थात् अनन्त गुण एक साथ रहे हुए हैं। **तथा क्रमभावी पर्यायों....** पर्यायें एक के बाद एक भाव है। समझ में आया?

अनन्यरूप से आधारभूत.... एक यह दो सिद्धान्त पूरा। एक तो लिया कि वास्तव

में द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसमें साथ में रहे हुए, साथ में अनन्त गुण, अनन्त गुण साथ में रहे हुए और पर्यायें क्रम क्रम से रही हुई। क्रम-क्रम से होती है। चेतन में अनन्त गुणी एक समय में पर्याय होती है? सब पर्यायें एक साथ होती हैं? सभी पर्यायें एक साथ होती हैं? पहले समय में यह, दूसरे समय में यह, तीसरे समय में यह - ऐसे होती है। अनन्त गुणों की अनन्त पर्यायें हैं, वह दूसरी बात है। एक गुण की सभी पर्यायें एक साथ होती हैं? क्रमवार होती है। गुण अक्रम एकसाथ रहते हैं। समझ में आया? यह तो पंचाध्यायी में लिया नहीं? द्रव्य के साथ गुण कहोगे तो पर्याय साथ में है। यह लक्षण उसका नहीं होगा। ऐसा सिद्ध किया है। पंचाध्यायी में लॉजिक से-न्याय से सिद्ध किया है। एक द्रव्य है, उस द्रव्य के साथ गुण रहते हैं, ऐसा अर्थ नहीं करना। तब तो पर्याय भी द्रव्य के साथ रहती है। उसके भी लक्षण पर्याय में भी जायेंगे, तब सहभावी लक्षण का अर्थ (यह कि) गुण एक साथ रहते हैं। गुण एक साथ रहते हैं, ऐसे गुण एक साथ रहते हैं, ऐसा। समुदाय, ऐसा नहीं। यह तो एक ही शब्द में बड़ा अन्तर गुण का समुदाय, ऐसा अभी नहीं। बराबर।

यहाँ तो गुण एक साथ में, इसलिए सहभावी। द्रव्य के साथ गुण रहते हैं, इसलिए सहभावी, ऐसा नहीं। गुण सब एक साथ रहते हैं, ऐसा। और पर्याय क्रमसर ऐसे होती है। **द्रव्य वास्तव में सहभावी गुणों को तथा क्रमभावी पर्यायों को अनन्यरूप से आधारभूत हैं;....** ऐसा यहाँ तो कहा है। सहभावी गुणों को द्रव्य आधार और क्रमवर्ती पर्याय को भी द्रव्य आधार। क्या कहा? एक आत्मा है न? तो आत्मा के एक साथ अनन्त गुण हैं। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व अनन्त सहभावी गुणों का आधार द्रव्य और उसकी अनन्त क्रमसर पर्याय। प्रत्येक क्षण में होती है भिन्न... भिन्न... भिन्न... भिन्न वह सब क्रमवर्ती पर्याय का आधार द्रव्य। उसका आधार दूसरा द्रव्य नहीं।

यह घी बर्तन में नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। घी के परमाणु के एक-एक परमाणु उसके अनन्त गुण साथ में रहते हैं। गुण साथ में रहते हैं और पर्याय क्रमवर्ती होती है, उस गुण का-पर्याय का आधार वह परमाणु है। वह परमाणु दूसरे के गुण-पर्याय का आधार नहीं है।

मुमुक्षु : परमाणु को आधार सही?

पूज्य गुरुदेवश्री : परमाणु को आधार कोई नहीं। परमाणु को आधार क्या आवे?

कहो, समझ में आया ? यह तो वीतराग की बात है जैन की... न्याय का विषय है। न्याय का विषय है। समझ में आया इसमें ?

भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव वीतराग परमेश्वर, जिन्होंने ज्ञान में छह द्रव्य देखे। उन छह द्रव्यों में प्रत्येक द्रव्य-अनन्त जीव देखे, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश – छह (द्रव्य) भगवान ने देखे। वे छह (द्रव्य) देखने में प्रत्येक वस्तु उसके अनन्त गुण एक साथ होते हैं। पर्याय एक साथ नहीं होती। देखो न विशिष्टता! ऐसा कैसे ? परन्तु पर्याय एक साथ नहीं होती। ऐसी कैसे हुई ? निमित्त आया इसलिए ? नहीं। पर्याय के क्रमवर्ती। क्रमवर्ती कहो, क्रमबद्ध कहो, क्रमसर कहो, सब एक ही है, हों! संस्कृत, व्याकरणवाले को भले दूसरा लगता हो। कहो, समझ में आया इसमें ?

क्रम से इकट्ठा होना। यह छह धर्म साथ में रहना। गुणों का साथ में रहना। द्रव्य के गुणों का गुण का साथ में रहना और पर्याय का क्रमसर होना। इन दोनों का आधार वह परमाणु अथवा द्रव्य है। इसी प्रकार जीव अपने अनन्त गुण साथ में गुण रहते हैं, गुण साथ में रहते हैं। एक गुण पहले दूसरा गुण बाद में, ऐसा नहीं है। इसी प्रकार एक पर्याय समय की पहली और दूसरे समय की बाद में, ऐसे क्रमवर्ती। परन्तु तीन काल की पर्यायें एक समय में हो, ऐसा नहीं हो सकता। जैसे गुण एक साथ तीन काल के हैं, अनन्त हैं। वैसे पर्यायें एक साथ नहीं हो सकती। एक के बाद एक, एक के बाद एक, एक के बाद एक। ऐसे सहभूत गुण और क्रमबद्ध पर्याय-क्रम से होनेवाली भावी है न? क्रमभावी – होनेवाली पर्यायों का अनन्यपना, अनन्यपना अभिन्नरूप से। गाथा देखो! अभिन्नरूप से आधारभूत है। समझ में आया ?

मुम्बई में ऐसा रखे तो उनको ऐसा लगे कि यह क्या रखा ? यह क्या कहते हैं ? परन्तु यहाँ तो भाई बहुत वर्ष हुए, चलता है। यहाँ यह २९ वर्ष हुए, चलता है। नये लोगों को तो यह बात पकड़ाना और समझाना चाहिए या नहीं ? वहाँ नहीं रखी जाये न ? आठ-आठ हजार, दस-दस हजार लोग हों उसमें—उन्हें लगती बात होती है। क्या कहा ?

वास्तव में एक आत्मा के साथ रहे हुए गुण अनन्त और क्रमभावी पर्यायें अनन्त, इन दोनों का अनन्तपना द्रव्य को है। द्रव्य वह-वह अनन्यभूत आधार है। वह अनन्यभूत,

अन्य उसका आधार नहीं। **अभिन्नपने आधार।** लो! अभिन्नपने आधार। जैसे अग्नि आधार है, उष्णता अभिन्न है। अग्नि आधार है और उष्ण आधेय, तथापि वे अभिन्न हैं। परन्तु अग्नि भिन्न और उष्णता भिन्न, ऐसा नहीं है। इसी प्रकार द्रव्य आधार है और गुण-पर्यायें आधेय, तथापि वे अभिन्न हैं। आहाहा!

यह एक-एक गाथा कोई एक ही पढ़े न समझकर तो इसका फैसला। यह तो चक्कर... चक्कर। इसका आधार यह है, इसका आधार यह है। वह तो सब व्यवहार की बातें हैं। नहीं मिले अभी यह बातें। कहो, समझ में आया? अरे! परन्तु वस्तु को सम्बन्ध क्या है? निमित्त-निमित्त सम्बन्ध का अर्थ किसी को और तेरे आधार-आधेय (सम्बन्ध) है, ऐसा नहीं है। एक रजकण भी जहाँ रहा है पर यहाँ। कहते हैं कि उसमें गुण-पर्याय को परमाणु आधार है। उसका गुण-पर्याय का दूसरा परमाणु आधार नहीं है। तब भी परमाणु को दूसरा आधार? परन्तु परमाणु अर्थात् क्या? कि गुण-पर्याय का पिण्ड, वह परमाणु। ऐसा कि गुण-पर्याय का आधार परमाणु परन्तु परमाणु का आधार दूसरा। परन्तु वह वस्तु ही गुण-पर्याय का आधार है, वह वस्तु ही आधेय है। आधार और आधेय वहीं का वहीं है। समझ में आया?

यह पृथक्-पृथक् भेदज्ञान की बात है। भेदो भेदा किसी को कुछ सम्बन्ध है नहीं। मनुष्य जवान हो तब कमाने का काम। बालपन हो तब खेलने का काम। वृद्ध हो तब समझ में आये नहीं, समझ में आये नहीं। लड़कों को खुला करने का काम। ऐ झवेरचन्दभाई! आया है न तुम्हारा छोटा? लड़का आया है या नहीं? तुम्हारा है वह। वह तुम्हारा आता है न? आता है न? परन्तु यह क्या कहते हैं? बालपन में रोने का काम। जवान हो, तब स्त्री। 'बालपन खेल में खोया, जवानी स्त्री में मोह्या, वृद्धपन देखके रोया।' आता है न हमारे सज्झाय में तो। यह सज्झाय में है। अर्धमृतक कलेवर जीण हो जाये। कहो, समझ में आया इसमें? उसे समझने का काल कब आवे? रतिभाई! लड़का काम करके आवे अभी, वहाँ सिर मारना। यहाँ जड़ भी सावाई के बापू नहीं, देखो न? इतना तो छोड़कर बैठे होंगे या नहीं? कोई-कोई तो अच्छी रीति से रहते हैं तो सन्तोष है, उसे और... ऐसा कहते हैं। परन्तु यहाँ बैठे हैं न? वहाँ गये नहीं। लड़का चाहे जो करे, जा न भाई! तेरे साथ क्या हमारे कुछ नहीं। समय-अवसर आवे फिर लड़की समझाने का प्रयत्न भी करो। यह तो ढसरडा

किया ही करना। ढसरडा सिर पर लिया ही करना। ढसरडा समझते हो न? गाडा-गाडा होता है न? ऊँचा करे, वहाँ सिर डाले। परन्तु अब वह खेंचे तब डाल, वह अलग बात है। डोरी खींचे उसे भी ऊँचा करे वहाँ। ऐसा कुछ काम आया । झवेरचन्दभाई! हमें पूछे बिना करना नहीं। मुफ्त का परन्तु अब तो मरने की तैयारियाँ, जाने की तैयारियाँ। जितने वर्ष हुए उतने वर्ष, इसे कितने ५०-५०, ६० वर्ष हुए, इतने ५०-६० निकालने हैं? हैं? आहाहा!

एक सिद्धान्त—इस एक लाईन में। आहाहा! एक रजकण और एक आत्मा, एक कालाणु और एक धर्मास्ति-अधर्मास्ति, आकाश। वे अपने सहभावी गुणों और क्रमभावी पर्यायों को अभिन्नरूप से आधारभूत हैं। अभिन्नरूप से आधारभूत हैं। तब कहते हैं कि अभिन्नरूप से आधार परन्तु भिन्नरूप से दूसरा आधार है न? वह तो व्यवहारमात्र कथन है। निमित्त कौन, उसका ज्ञान कराने के लिये बात है। कहो, समझ में आया इसमें? **इसलिए जो वर्त चुके हैं, वर्त रहे हैं और भविष्य में वर्तेंगे उन भावों-पर्यायोंरूप....** देखो! वर्त चुके। प्रत्येक द्रव्य की पर्याय वर्त चुकी। पर्याय-अवस्था। और वर्तती वर्तमान पर्याय। प्रत्येक परमाणु, प्रत्येक जीव को। **और भविष्य में वर्तेंगे उन भावों-पर्यायोंरूप परिणमित होने के....** उस स्वरूप से स्वयं परिणमता है। वर्तमान पर्याय परिणमी, भूत में गयी, उसरूप परिणमा और भविष्य में भी परिणमेगा। स्वयं अपनी पर्यायरूप परिणमता है। उसे दूसरा कोई परिणमानेवाला नहीं है। कहो, समझ में आया?

वे **वर्त चुके हैं, वर्त रहे हैं....** वर्तमान, **भविष्य में वर्तेंगे....** ऐसे **भावों....** अर्थात् पर्यायों के स्वरूप से **परिणमित होने के कारण (पाँच) अस्तिकाय और परिवर्तनलिंग काल....** लो! अब छठवें में काल डाला। यह द्रव्य है। सब द्रव्य है। परिणमते पाँच हैं, वे भी और परिवर्तन लिंग से काल। नीचे स्पष्टीकरण किया है, देखो! पुद्गलादि परिवर्तन जिसका लिंग है वह। पुद्गलादि परिणमन द्वारा जो ज्ञात होता है वह। परिणमन द्वारा ज्ञात होता है न? वह एक समय का काल। उसे निमित्तरूप से दूसरा काल है। लिंग=चिह्न, सूचक, गमक, गम्य करानेवाला, बतलानेवाला, पहिचान करानेवाला। लो! यह पुद्गलादि का परिवर्तन निमित्त है। परिणमन का लिंग जो यह परिणमता है, उसमें बतलानेवाला दूसरा काल निमित्त है। उसके द्वारा काल की सिद्धि होती है। कहो, समझ में आया?

भूत, वर्तमान और भावी भावों स्वरूप परिणमित होने से वे कहीं अनित्य नहीं

हैं,... सभी पदार्थ भूतरूप से परिणमे भूतकाल में। वर्तमान में परिणमे और भविष्य में परिणमेंगे। इसलिए कोई अनित्य नहीं है। **क्योंकि भूत, वर्तमान और भावी भावरूप अवस्थाओं में भी....** भूतकाल की अवस्था, वर्तमान की अवस्था और आगामी काल की अवस्था **प्रतिनियत (—अपने-अपने निश्चित) स्वरूप को नहीं छोड़ते इसलिए वे नित्य ही हैं।** दोनों बात इसी और इसी में की है।

अनन्त काल से पर्यायें परिणमी, वर्तमान परिणमती है, भविष्य में परिणमेगी। ऐसे परिणमने से अनित्य होने पर भी, वह प्रत्येक पदार्थ प्रतिनियत निश्चय स्वरूप को छोड़ता नहीं। परमाणु, परमाणु को छोड़ता नहीं। आत्मा आत्मा को छोड़ता नहीं। हाँ... वे नित्य ही हैं। इतनी बात परिणमन की काल के सम्बन्ध में की।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

धारावाही प्रवचन नं. ९ (प्रवचन नं. १३), गाथा- ६ से ८
दिनांक - १९-१२-१९६३, पौष शुक्ल ६, गुरुवार

पंचास्तिकाय की छठी गाथा चलती है। उसका दूसरा पैरेग्राफ है। ऊपर ऐसा कहा कि इस जगत में एक पाँच अस्तिकाय हैं और एक परिवर्तनलिंगकाल ऐसा करके छह द्रव्य हैं। भगवान ने देखे हुए, केवलज्ञानी ने छह द्रव्य देखे। उनमें पाँच अस्तिकाय और एक परिवर्तनलिंगकाल, ऐसे छह द्रव्य हैं। वे सब भूत, भावी और वर्तमान भाव अर्थात् पर्यायरूप परिणमते होने पर भी कोई अनियत नहीं है, क्योंकि उसमें प्रतिनियत अपने-अपने स्वरूप को छोड़े बिना वे परिणमते हैं।

प्रत्येक वस्तु क्षण-क्षण में परिणमती है, वह अपना अस्तित्व छोड़कर नहीं परिणमती। कहो, समझ में आया? यहाँ तक आ गया है। **यहाँ काल...** अब काल की व्याख्या करते हैं। जगत में काल नाम का पदार्थ है। अणु असंख्य हैं, वे द्रव्य हैं। अस्तिकाय नहीं। समझ में आया? वह **काल पुद्‌गलादि के परिवर्तन का हेतु होने से....** पुद्‌गल और यह जीव दो। वह जरा धर्मास्ति का था उसे। **तथा पुद्‌गलादिक के परिवर्तन द्वारा उसकी पर्यायें गम्य (ज्ञात) होती हैं....** यह पुद्‌गल है न? और जीव। उनके बदलने के कारण उसका **परिवर्तन द्वारा उसकी पर्यायें गम्य....** अर्थात् काल की पर्यायें गम्य होती हैं। उसका अस्तिकायों में समावेश करने के लिये उसे परिवर्तनलिंग कहा है। परिवर्तनलिंग का नीचे आ गया है। दूसरा, देखो! दूसरा पेरेग्राफ, दूसरा नोट। नीचे है।

जो पुद्‌गलादि का परिवर्तन होता है तो उसका कोई निमित्त होना चाहिए—इस प्रकार परिवर्तनरूपी चिह्न द्वारा काल का अनुमान होता है। (जिस प्रकार धुँआरूपी चिह्न द्वारा अग्नि का अनुमान होता है, उसी प्रकार) इसीलिए काल 'परिवर्तनलिंग' है। एक बात। काल परिवर्तनलिंग है, एक बात। और पुद्‌गलादि के परिवर्तन द्वारा काल की पर्यायें (कम समय, अधिक समय, ऐसी काल की अवस्थायें) गम्य होती हैं। परिणमन द्वारा जीव और पुद्‌गल के बदलने द्वारा एक तो निश्चित होती है कि काल निमित्तरूप से दूसरी चीज़ है। और पुद्‌गल की पर्याय का एक समय, दो समय आदि का माप, उससे भी काल

की पर्यायें थोड़ा समय, बहुत समय, ऐसी अवस्थायें गम्य होती हैं। इसलिए भी काल परिवर्तनलिंग है। जरा सूक्ष्म बात पड़ती है।

यह पुद्गल के परिवर्तन की अपेक्षा से भी काल बदलता है। तो वह परनिमित्त होना चाहिए, एक बात। और यहाँ पर्याय में कम समय, अधिक समय, ऐसा जो लागू पड़ता है, उसके कारण भी द्रव्य की पर्याय काल की साबित होती है। कहो, रतिभाई! क्या इसमें कुछ समझ में आया इसमें? समझे बिना। कैसे समझे बिना कुछ समझ में आये? अन्दर कहा नहीं, देखो न? कि पुद्गलादि का परिवर्तन होता है। जीव और परमाणु पलटते हैं। बराबर है? उसका कोई निमित्त होना चाहिए। बदलने में निमित्त होना चाहिए। बदलने का मूल कारण तो स्वयं। परन्तु वह दूसरी चीज़ निमित्त होनी चाहिए। इस प्रकार परिवर्तनरूपी चिह्न द्वारा काल का अनुमान होता है। कि काल एक निमित्तरूप परिणमन में दूसरी चीज़ है। जैसे धुआँरूपी चिह्न द्वारा अग्नि का अनुमान होता है उसी प्रकार। यह धुआँ है तो नीचे अग्नि होना चाहिए। परिणमता है तो उसे परिणमन में निमित्त दूसरी चीज़ होना चाहिए। इसीलिए काल परिवर्तनलिंग है। यह एक बात सिद्ध की।

दूसरे प्रकार से, पुद्गलादि के परिवर्तन द्वारा काल की पर्यायें (कम समय, अधिक समय ऐसी काल की अवस्थायें) माप, वह भी गम्य होता है। इसलिए भी काल परिवर्तनलिंग है। ऐसा करके इस जगत में भगवान ने जो छह द्रव्य देखे, उनमें पाँच अस्तिकाय सिद्ध किये और एक अस्ति है परन्तु उसे काय नहीं। बहुत प्रदेशों को समूह नहीं, ऐसा यहाँ सिद्ध किया। कहो, समझ में आया? पुद्गलादि अस्तिकायों का वर्णन करते हुए उनका (परिवर्तन-परिणमन) वर्णन करना चाहिए। उनका परिवर्तन (परिणमन) वर्णन करना चाहिए। किसका? पुद्गलादि का। कोष्ठक में है न? और उनका परिवर्तन वर्णन करते हुए उस परिवर्तन में निमित्तभूत पदार्थ को (काल को) अथवा उस परिवर्तन द्वारा, एक बात। काल को, इतनी एक बात। अथवा परिवर्तन द्वारा जिसकी पर्यायें व्यक्त होती हैं, उस पदार्थ को (काल को) वर्णन करना अस्थान में नहीं गिना जायेगा। इस प्रकार पंचास्तिकाय के वर्णन में काल के वर्णन का समावेश करना अनुचित नहीं है, ऐसा दर्शाने के लिये इस गाथासूत्र में काल के लिये परिवर्तनलिंग शब्द प्रयोग किया है। कहो, समझ में आया?

देखो ! काल नाम का पदार्थ है असंख्य। एक जैन की आम्नाय मानता नहीं। पाँच अस्तिकाय मानता है, परन्तु उनकी पर्याय से काल माने परन्तु काल दूसरी चीज़ है, ऐसा वे नहीं मानते। इसलिए यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य महाराज परिवर्तनलिंग। परिणमन के द्वारा निमित्त दूसरी चीज़ है, ऐसा और परिणमन का थोड़ा-बहुत काल पर्याय का, इस माप से भी काल का माप, काल की पर्यायों की सिद्धि होती है। छह द्रव्य कहे। अब सातवीं गाथा।

गाथा - ७

अण्णोण्णं पविसंता देंता ओगासमण्णमण्णस्स।
मेलंता वि य णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति।।७।।

अन्योऽन्यं प्रविशन्ति ददन्त्यवकाशमन्योऽन्यस्य।
मिलन्त्यपि च नित्यं स्वकं स्वभावं न विजहन्ति।।७।।

अत्र षण्णां द्रव्याणां परस्परमत्यन्तसंकरेऽपि प्रतिनियतस्वरूपादप्रच्यवनमुक्तम्।

अत एव तेषां परिणामवत्त्वेऽपि प्राग्नित्यत्वमुक्तम्। अत एव च न तेषामेकत्वापत्तिर्न च जीवकर्मणोर्व्यवहारनयादेशादेकत्वेऽपि परस्परस्वरूपोपादानमिति।।७।।

परस्पर मिलते रहें अरु परस्पर अवकाश दें।
जल-दूध वत् मिलते हुए छोड़ें न स्व-स्व भाव को।।७।।

अन्वयार्थ :-[अन्योन्यं प्रविशन्ति] वे एक-दूसरे में प्रवेश करते हैं, [अन्योन्यस्य] अन्योन्य [अवकाशम् ददन्ति] अवकाश देते हैं, [मिलन्ति] परस्पर [क्षीर-नीरवत्] मिल जाते हैं। [अपि च] तथापि [नित्यं] सदा [स्वकं स्वभावं] अपने-अपने स्वभाव को [न विजहन्ति] नहीं छोड़ते।

टीका :- यहाँ छह द्रव्यों को परस्पर अत्यन्त *संकर होने पर भी वे प्रतिनियत (-अपने-अपने निश्चित्) स्वरूप से च्युत नहीं होते, ऐसा कहा है। इसीलिए (-अपने-

---

* संकर=मिलन; मिलाप (अन्योन्य-अवगाहरूप) मिश्रतपना।

अपने स्वभाव से च्युत नहीं होते इसलिए), परिणामवाले होने पर भी वे नित्य हैं-ऐसा पहले (छठवीं गाथा में) कहा था; और इसीलिए वे एकत्व को प्राप्त नहीं होते; और यद्यपि जीव तथा कर्म को व्यवहारनय के कथन से एकत्व (कहा जाता) है, तथापि वे (जीव तथा कर्म) एक-दूसरे के स्वरूप को ग्रहण नहीं करते।।७।।

गाथा - ७ पर प्रवचन

अण्णोण्णं पविसंता देंता ओगासमण्णमण्णस्स।
मेलंता वि य णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति।।७।।

परस्पर मिलते रहें अरु परस्पर अवकाश दें।
जल-दूध वत् मिलते हुए छोड़ें न स्व-स्व भाव को।।७।।

देखो, यह छह द्रव्य। छह द्रव्य स्वतन्त्र कैसे हैं, उनकी सिद्धि करते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज मूल गाथा द्वारा और अमृतचन्द्राचार्य महाराज, दोनों दिगम्बर सन्त थे। दोनों दिगम्बर मुनि। उन्होंने टीका द्वारा इस बात को सिद्ध किया है।

टीका :- यहाँ छह द्रव्यों को.... अर्थात् छह द्रव्य कहे न? छह द्रव्य के नाम आये या नहीं?

मुमुक्षु : जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय...

पूज्य गुरुदेवश्री : आकाश और काल। मुश्किल से पूरा हुआ। कहो, समझ में आया? कितनों को तो लड़के याद न रहे। नाम हो उनके। तुम्हारे तो अकेला है। एक ही है। तुम्हारे कहाँ था। फावाभाई को पूछो, लो! फावाभाई को पूछा भाणिया का नाम क्या है? तो कहे, मुझे भाणिया का नाम नहीं आता। वह सदा यहाँ रहता था। स्त्रियाँ थी, वह खबर नहीं थी गुंदाला में। काठियाणी नहीं? हं। तुम्हारे घर में स्त्रियाँ कितनी हैं? रानी? तो कहे, मुझे खबर नहीं। कामदार को पूछो। ऐसे भी होते हैं। मकनभाई नाम पहिचानते हैं। मैं भी पहिचानता हूँ। यहाँ उतरते, ऐसे निकलते थे। सोने की तलवार (लेकर) निकले। जय महाराज! हें? मूठ सोने की और निकले। नरम व्यक्ति बेचारा। ऐसा कुछ कोई भान नहीं

होता। मीठा खाये। अफीम पीवे। ऐई! दस हजार की आमदनी होगी, इतनी भी उसे तो बहुत न उस समय तो। दस हजार की भी नहीं होगी। परन्तु पाँच हजार की उसे तो उस समय गाँव में... ऐई! लहर करे! खबर नहीं कितनी स्त्रियाँ? घर में तीन, चार स्त्रियाँ थीं, महिलायें। बहुत मुझे खबर नहीं।

इसी प्रकार इस जगत में तू जहाँ है, वहाँ कितने द्रव्य हैं? ऐसा कहते हैं, कहते हैं, छह है (द्रव्य) इस जगत में वस्तुयें। उन छहों में पाँच अस्तिकायरूप से है। है और प्रदेशों का समूह है। तथा एक काल है, उसमें प्रदेशों का समूह नहीं। **यहाँ छह द्रव्यों को परस्पर अत्यन्त संकर....** देखो! एक जगह रहे हैं। जहाँ आत्मा है, वहाँ परमाणु है। वहाँ धर्मास्ति है, वहाँ अधर्मास्ति है, वहाँ आकाश है और वहाँ काल है। कहो, समझ में आया? देखो, यहाँ यह आत्मा है या नहीं? अरूपी, ज्ञानघन भिन्न। वहाँ शरीर के रजकण और कर्म के रजकण और तैजस के रजकण वहाँ ही अन्दर है। इसके अतिरिक्त दूसरे भी वहाँ हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ एक क्षेत्र में अनन्तगुणे रजकण अन्दर दूसरे पड़े हैं। एक धर्मास्तिकाय के असंख्य प्रदेश का समूह भी उतने में है। अधर्मास्तिकाय के असंख्य प्रदेश हैं। आकाश के असंख्य हैं। और कालाणु असंख्य इतने में द्रव्य हैं। आत्मा जितने में है, उसमें कालाणु असंख्य द्रव्य हैं। इतनी सब उसमें कहाँ इतनी सब यह सब खबर नहीं थी? घर में हीरा, माणिक के भाव, अमुक भाव उसकी इसे सब खबर नहीं थी? क्या कहा?

यह आत्मा यहाँ है या नहीं आत्मा? वह तो अनन्त गुण का पिण्ड अपना स्वरूप अत्यन्त भिन्न रखकर अस्तित्वरूप से पड़ा है। वह आत्मा है, वहाँ शरीर है एक जगह में, क्षेत्र में, हों? वस्तु से भिन्न, एक क्षेत्र में यह शरीर है। यह अनन्त रजकणों का पिण्ड औदारिक, अनन्त रजकणों का पिण्ड कार्मण, अनन्त रजकण का पिण्ड, तैजस वह यहीं का यहीं है। और इतने में धर्मास्तिकाय का असंख्यवाँ भाग पूरा धर्मास्ति प्रगट, उसका असंख्यवाँ भाग असंख्य प्रदेश इतने में यहाँ है। तथापि वह भिन्न-भिन्न है। इतने में अधर्मास्तिकाय, वह भी आत्मा से अत्यन्त भिन्न। इस प्रदेश से धर्मास्तिकाय के प्रदेश भिन्न, धर्मास्ति से अधर्मास्ति के प्रदेश भिन्न। आकाश असंख्य प्रदेश यहाँ है। आकाश भी असंख्य प्रदेश जितने धर्मास्ति के, उतने अधर्मास्ति के उतने ही आकाश के यहाँ हैं। और

असंख्य कालाणु इतने हैं। जितने आकाश, धर्मास्ति, अधर्मास्ति के प्रदेश हैं, उतने असंख्य कालाणु द्रव्य वहाँ अन्दर इतने में असंख्य कालाणु हैं। कहो, समझ में आया इसमें ?

जैन में जन्मे और जैन क्या कहते हैं, इसकी खबर भी नहीं होती। दुनिया की बड़ी बाहर की, अमुक की, हें ! ऐ मोहनभाई ! रतिभाई कहते हैं कि कभी निकाली नहीं परन्तु तुमने दरकार कहाँ की है ? ऐसा ले न ? कहो, समझ में आया इसमें ? कहो, यह कहा फिर से रात्रि में कोई कह सकेगा ? मोहनभाई ! नहीं हो सकेगा। लो ! यह तो मुझे...

इन छह द्रव्यों को, यह छह कहा या नहीं ? यहाँ, यहाँ, हों ! प्रत्येक जगह। यहाँ अँगुल का असंख्यवाँ भाग लो, यहाँ सब जगह। तो अँगुल के असंख्य भाग में वहाँ अनन्त तो जीव हैं। उससे अनन्तगुणे वहाँ परमाणु हैं। इतने अँगुल के असंख्यवें भाग में धर्मास्तिकाय का असंख्यवाँ भाग ऐसे असंख्य प्रदेश हैं। अधर्मास्तिकाय का असंख्यवाँ भाग ऐसे असंख्य प्रदेश हैं। आकाश लोक के असंख्य प्रदेश, उसका असंख्यवाँ भाग, उसके असंख्य प्रदेश हैं। इतने में असंख्य कालाणु द्रव्य हैं। इतने यहाँ इतने भाग में इस प्रमाण पूरे लोक प्रमाण है। पहले यह आत्मा का कहा। पश्चात् यह आत्मा का कहा। कहो, समझ में आता है या नहीं, ऐ देवानुप्रिया ? तथापि एक-दूसरे भिन्न हैं, ऐसा सिद्ध करना है। हाँ, कोई किसी को स्पर्श नहीं करते। कोई द्रव्य किसी द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। अड़ता नहीं, समझते हो ? छूते नहीं हैं।

स्वयं अपने स्वरूप में—आत्मा, आत्मा के स्वरूप में है। परमाणु, परमाणु के स्वरूप में है। धर्मास्ति, धर्मास्ति के स्वरूप में है। अधर्मास्ति अधर्मास्ति अर्थात् ? धर्म-अधर्म ऐसे दो पदार्थ भगवान केवली तीर्थंकरदेव ने देखे हैं। अरूपी हैं। परन्तु आगे बढ़े तो उसे न्याय से सिद्ध हो न ? और आकाश नाम का सर्वव्यापक उसमें लोक का आकाश भाग, उसका असंख्यवाँ भाग यहाँ अन्दर है। इस प्रमाण पूरे लोक में असंख्य कालाणु हैं। कहो, समझ में आया ?

इस प्रकार अग्नि सुलगती हो न अग्नि ? ज्वाला अग्नि। वहाँ भी छहों द्रव्य हैं। तब तो यह बात निकाली है। जहाँ अग्नि का भड़का है न, अरे दियासलाई लो न, यह बीड़ी पीवे उसमें। इतने भड़का में वहाँ छह द्रव्य है। उस भड़का में अनन्त परमाणु रजकण

दिखते हैं, असंख्य जीव एकेन्द्रिय अग्नि के असंख्य जीव। इसके अतिरिक्त वहाँ रहे हुए एकेन्द्रिय के निगोद के अनन्त। वहाँ इतने में रहे हुए असंख्य कालाणु। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश के असंख्यवें भाग के प्रदेश। उस दियासलाई के भड़का में इतना है। तथापि कोई किसी को अवरोधक नहीं है, छूते नहीं हैं, विघ्न नहीं करते, एक दूसरे में प्रवेश नहीं करते, स्वतन्त्र रहे हुए हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : तिजोरी को ताला लगाया हो वहाँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तिजोरी को ताला लगाया हो, वहाँ भी अन्दर छह द्रव्य हैं। उस ताला में और अन्दर में ताला का भाग है न ताला, उसका डालने का नकुचा हो, उतने भाग में छह द्रव्य हैं। उसमें अनन्त तो सूक्ष्म निगोद जीव है। इतना ताला का बिचला भाग होता है न, क्या कहलाता है वह? चाबी डालने का नकुचा। उतने में अनन्त तो सूक्ष्म निगोद जीव अन्दर है। अनन्त जीव, परमाणु सूक्ष्म हैं। और वे दिखायी दें, वे भी अनन्त स्थूल पदार्थ है। असंख्य (प्रदेशी) धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, (तथा) असंख्य कालाणु द्रव्य हैं। समझ में आया? भरे हैं। देखो, **छह द्रव्यों को परस्पर अत्यन्त संकर होने पर भी....** मिलन-मिलाप होने पर भी। अन्योन्य अवगाहरूप से क्षेत्र में मिश्रितपना होने पर भी **वे प्रतिनियत (-अपने-अपने निश्चित्) स्वरूप से च्युत नहीं होते....** वे अपने स्वरूप से च्युत होकर कोई पररूप नहीं होते। प्रत्येक स्थान में अनन्त पड़े होने पर भी प्रत्येक अपने स्वरूप में है। पररूप नहीं होते। कहो, समझ में आया?

देखो, इसमें कर्म की भी विशिष्टता लेंगे, ऐसा भगवान ने कहा है। तो कहा है, इसलिए उसका अर्थ (कि) ऐसा है। ऐसा वस्तु का स्वरूप है। **इसीलिए (-अपने-अपने स्वभाव से च्युत नहीं होते इसीलिए), परिणामवाले होने पर भी....** आत्मा क्षण-क्षण में बदलता है, परमाणु क्षण-क्षण में बदलता है, कालाणु क्षण-क्षण में बदलता है, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश के असंख्य प्रदेश भी यहाँ बदलते हैं। ऐसे बदलने पर भी **वे नित्य हैं — ऐसा पहले (छठवीं गाथा में) कहा था;....** ऊपर कहा था। समझ में आया?

वे परिणमते होने पर भी अनित्य नहीं हैं। ऐसा प्रतिनियत अपने स्वरूप को छोड़ते नहीं, इसलिए नित्य भी हैं। ओहोहो! जैन में जन्मे हुए को यह सब नया सीखना पड़े।

ऐकड़ा सीखे दूसरे (परन्तु) यह सीखने की दरकार (की नहीं)। जेठुभाई! मशीन की प्रत्येक बातें आती है। कैसे मशीन घूमती है, अटकती है और ऐसा होता है और ऐसा होता है। तेल डालूँ, यह करूँ और यह करूँ। यह चाबी यहाँ डालना, चाबी का या अमुक। इस जगत में क्या है? तू है वहाँ दूसरे, तथापि दूसरे और तू दोनों एक हुए नहीं। एक यहाँ रहे होने पर भी हुए नहीं। रहे, तथापि हुए नहीं। एक जगह छह रहे, तथापि एक हुए नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? चन्दुभाई! यह तो समझ में आये ऐसा है। यह तो न्याय बहुत सादी भाषा से है। बहुत ऐसा सूक्ष्म नहीं आता।

और इसीलिए वे एकत्व को प्राप्त नहीं होते;.... देखो! यहाँ निगोद के अनन्त आत्मा हैं। तथापि यह आत्मा उस दूसरे आत्मारूप नहीं होता। और एक आत्मा रजकणरूप भी हुआ नहीं, कर्मरूप आत्मा हुआ नहीं। आत्मा, आत्मारूप अन्दर है। कर्म के रजकणरूप हुआ नहीं। कर्म के रजकण आत्मारूप हुए नहीं। एक रजकण दूसरे रजकणरूप हुआ नहीं। अधर्मास्ति का प्रदेश आकाश के प्रदेशरूप हुआ नहीं। आकाश का प्रदेश अधर्मास्तिरूप हुआ नहीं। और उसमें अधर्मास्ति का प्रदेश आकाश और धर्मास्तिरूप हुआ नहीं अथवा परमाणु या जीवरूप हुआ नहीं। आहाहा! चौदह ब्रह्माण्ड की यह नगरी है। समझ में आया? उसमें प्रत्येक वस्तु एक जगह रहने पर भी, अपना-अपना जो स्वरूप है, नित्यानित्य टिककर परिणमना। परिणमने पर भी टिके रहना। उस अपने स्वरूप से कोई तीन काल-तीन लोक में अपने स्वरूप को कोई छोड़ता नहीं। कहो, बराबर होगा? यह कर्मरूप है, ऐसा हुआ नहीं आत्मा, ऐसा कहते हैं। क्या? और कर्म उसे नुकसान करते हैं? कर्म जीवरूप हुआ नहीं। यह आता है, देखो अभी आयेगा। नीचे पढ़ लिया है या नहीं? नहीं पढ़ लिया। कहो, समझ में आया? आहाहा!

यह तत्त्व का मूल ज्ञान घट गया न, इसलिए विवाद उठे कर्म के। और बहुत वाड़ा बँध गये। जहाँ ज्ञान कम हो, जहाँ पिता मर जाये, लक्ष्मी जाये, फिर लड़कों में विवाद हो। मोहनभाई! करोड़, दो करोड़ की पूँजी हो, पिता हो, तब तक दिक्कत (नहीं आती)। एक तो पूँजी जाये और फिर पिता मर जाये। ऐई... लड़कों में झगड़ा (शुरु हो जाये) विवाद कोर्ट में चढ़े। इसी प्रकार केवलज्ञान आदि ज्ञान या विशेष ज्ञान की दशा घट गयी, भगवान तीर्थंकर पिता का विरह। समझ में आया?

इसलिए सत्य की समझ बिना, ऐई झगड़ा, वाड़ा। ऐसा होता है, वैसा होता है, ऐसा होता है। बराबर ज्ञान हो तो यथार्थ सम्प्रदाय में से दो, तीन, चार भाग पड़े नहीं। परन्तु वस्तु घट गयी। सुननेवाले ने भी समझने की दरकार की नहीं। कमाने और खाने-पीने की दरकार, स्त्रियाँ, लड़के सम्हालने की दरकार, दरकार, हों! कर कुछ सकता नहीं। क्या कहा? मलूकचन्दभाई! कर कुछ सकता नहीं। परन्तु चिन्ता, इसका ऐसा करूँ और इसे सम्हालूँ। हराम कुछ (कर सकता हो तो) सब सम्हाल हुआ ही है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं।

अनन्त द्रव्य एक इतने अंगुल के असंख्य भाग में रहे हैं। अनन्त परमाणु और अनन्त जीव। असंख्य आकाश प्रदेश, असंख्य धर्मास्ति प्रदेश, असंख्य अधर्मास्ति (प्रदेश), असंख्य काल द्रव्य इतने में असंख्य प्रदेश। धर्मास्ति पूरा द्रव्य इतने में नहीं रहता। धर्मास्ति द्रव्य पूरे लोक प्रमाण है। अधर्मास्ति द्रव्य पूरे लोक प्रमाण है। और आकाश द्रव्य पूरे लोक और अलोक पूरे प्रमाण आकाशद्रव्य है। इतने में पूरा द्रव्य नहीं रहता। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश। परन्तु कालाणु असंख्य द्रव्य रहते हैं। और अनन्त परमाणु और अनन्त जीव इतने में रहे हैं। तथापि.... एक जगह रहे हैं, हों! इसमें लिखा है न इसमें। अपने-अपने नहीं होते। क्यों? नीचे कोष्ठक में है। अन्योन्यअवगाहरूप मिश्रितपना होने पर भी। अन्योन्यअवगाह, अन्योन्यअवगाह। नीचे (फुटनोट में) एक जगह रहे होने पर भी वे एकपना नहीं पाते। कहो, समझ में आया इसमें?

यह एक आत्मा, दूसरे आत्मारूप नहीं होता। दूसरा आत्मा एक आत्मारूप नहीं होता। आत्मा रजकणरूप नहीं होता। रजकण आत्मारूप नहीं होता। एक रजकण दूसरे रजकणरूप नहीं होता। एक कालाणु रजकणरूप नहीं होता। एक रजकण कालाणुरूप नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....आश्वासन बराबर मिलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ....ऐ मोहनभाई! एक घण्टे यहाँ आश्वासन के लिये तो इकट्ठे हो जाते हैं, ऐसा कहते हैं। इकट्ठे होंगे? किसी के साथ कोई नहीं मिलता। व्यर्थ का माँडकर बैठा है। यहाँ अन्दर रहे हुए, उसका नहीं होता तो अन्य स्त्री-पुत्र तो कहीं भिन्न

रह गये, दूर रह गये वे तो। पैसा और उसका बँगला-मकान कहीं दूर रह गये। यहाँ रहे हुए दूसरे द्रव्य भी उसके होते नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : यह समझने के लिये निवृत्ति लेनी चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : निवृत्ति अन्दर में लेनी चाहिए। स्त्री-पुत्र छोड़कर बाबा होकर बैठे तो कहीं समझ में आये, ऐसा नहीं है यह। सेठ! ऐसा कि इसके लिये बाहर से वस्त्र घटाये और अमुक करे, इसलिए फिर समझ में आये। धूल।

मुमुक्षु : आश्रम में जाना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसे आश्रम में जाना पड़े। स्त्री बिना के हो गये हैं न, अब वहाँ रहना और वहाँ जाना। ऐसा यहाँ नहीं है। इसे अन्दर में निवृत्ति लेनी चाहिए।

मुमुक्षु : अन्दर में निवृत्त ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निवृत्त ही है निवृत्ति। निवृत्त ही है, यहाँ क्या कहा ? पररूप नहीं है, फिर और पर से निवृत्ति करना, इसका अर्थ क्या ? देवानुप्रिया!

यह आत्मा कभी अपने स्वरूप से छूटकर पररूप तो यहाँ हुआ नहीं। अनन्त काल से पर में मध्य में रहा है, वह मध्य रहा होने पर भी एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप तीन काल-तीन लोक में होते नहीं। सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ भी छह द्रव्य हैं। वहाँ भी छह द्रव्य हैं। सेठी! सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ ? छह कैसे हैं ? छह द्रव्य है। सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ इतने में अनन्त सिद्ध हैं। इतने अर्थात् साढ़े तीन हाथ के। साढ़े तीन हाथ की छोटी में छोटी अवगाहना होती है। बड़ी सभा पाँच सौ धनुष की आत्मा की ऊँचाई होती है। एक-एक आत्मा जहाँ है, वहाँ अनन्त सिद्ध है। वहाँ अनन्त निगोद है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु के असंख्य जीव हैं। अनन्त रजकण हैं। धर्मास्ति का असंख्यवाँ भाग सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ है। अधर्मास्ति का असंख्यवाँ भाग, आकाश का असंख्यवाँ भाव, कालाणु असंख्य द्रव्य एक-एक सिद्ध विराजते हैं, वहाँ उनके अन्तर आकाश के प्रदेश पर असंख्य कालद्रव्य है।

तथापि सिद्ध उस कालरूप नहीं होते। परमाणु उन सिद्धरूप नहीं होते। एक सिद्ध

उन दूसरे सिद्धरूप नहीं होते। कहो, बदल जाये या नहीं? 'सिद्ध में ज्योति में ज्योति मिलाई' हें? बेचारे दु:खी हैं। आगे नहीं जा सकते। अरे भगवान! सब, परतन्त्र एक अंश भी नहीं। पूर्णानन्द की प्राप्ति पररूप हुए नहीं, स्वरूप को छोड़ा नहीं। यहाँ भी स्वतन्त्र है, वहाँ तो पूर्ण स्वतन्त्र और आनन्द के अनुभव में हैं, सीधे। अपने अतीन्द्रिय आनन्द का पूर्ण अनुभव, उसका नाम मुक्ति। इस संसार में राग-द्वेष और अज्ञान का अनुभव, वह संसार। दूसरा कोई संसार नहीं। राग-द्वेष और अज्ञान का अनुभव, वह संसार। ज्ञान और वीतरागीदशा का पूर्ण आनन्द का अनुभव, उसका नाम मुक्ति। और आत्मा के स्वभाव के भानसहित अपूर्ण ज्ञान, अपूर्ण आनन्द, अपूर्ण वीतरागता, वह साधकभाव। पूर्ण विज्ञान, पूर्ण वीतराग, पूर्ण आनन्द, वह मुक्तिभाव और अकेला अज्ञानभाव, राग-द्वेष का अनुभव अकेला संसारभाव। वह भी स्वतन्त्र है। समझ में आया?

एक भी बात का अभ्यास नहीं होता। और फिर समझाये धन्धा... धन्धा... धन्धा पाप का। पूरे दिन चौबीस घण्टे पाप। पाप होगा या क्या होगा? पुण्य होगा? हें? क्यों कनुभाई! इतना कमाकर देना, हें? क्यों लड़कों को कुछ सिखलावें तो भाव अच्छे नहीं होंगे। धूल में भी नहीं, पाप है। चौबीस घण्टे इसका यह करना और इसका यह करना। भाव, हों! कर सकता नहीं, हराम!

कहते हैं कि आत्मा उसके पाप के या पुण्य के परिणाम के अस्तित्व में रहा है। कहते हैं, आनन्द के अस्तित्व में रहा है। ठेठ साधक की अवस्था में रहा है। वह पररूप नहीं होता और परवस्तु वह इसरूप नहीं होती। आहाहा!

मुमुक्षु : पुरुषार्थ तो करने का कहते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहा यह? यह पर से भिन्न है, इसलिए मुझे स्वभाव की दृष्टि करना, इसका नाम पुरुषार्थ। पुरुषार्थ क्या कूदना है कहीं?

मुमुक्षु : यह अलग प्रकार का पुरुषार्थ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वस्त्र छोड़ना और अमुक छोड़ना। यह पुरुषार्थ, मान्यता का उल्टा पुरुषार्थ है मान्यता का।

आत्मा पर से निराला है। पररूप हुआ नहीं। मात्र उसकी दशा में स्वरूप का अज्ञान

और राग-द्वेष, उसे स्वरूप के ज्ञान और वीतरागभाव से टाले जा सकते हैं। यह उसका पुरुषार्थ। दूसरा कोई पुरुषार्थ है नहीं। कहो, समझ में आया? और इसीलिए वे इससे अर्थात् कि परिणमते होने पर भी नित्य रहते हैं। इसलिए वे एकपना नहीं पाते। और यद्यपि अब आया। इसका अधिक तो अज्ञानी को यह है न, इसलिए यह डाला है। हाँ, नहीं तो यहाँ हाँ, सामान्य बात थी परन्तु अमृतचन्द्राचार्य... ऐसा कि यह कर्म और आत्मा दोनों एक हो गये हैं? नहीं। इसलिए हो जगत की चीज़ जैनों को ऐसा कि हमारे तो कर्म बाधक है। उन्होंने ईश्वर कर्ता, आत्मा के अधिकार आदि का, जैन का कर्म कर्ता। ऐसा नहीं। **जीव तथा कर्म को व्यवहारनय के कथन से एकत्व (कहा जाता) है....** एकपना कहा जाता है न? है, ऐसा कहो न एकपना है कि व्यवहार ऐसा। दोनों एक जगह है न, इसलिए एक अपेक्षा से कहने में आता है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध के एकक्षेत्रावगाह के कारण उन्हें एकपना है।

तथापि वे (जीव तथा कर्म) एक-दूसरे के स्वरूप को ग्रहण नहीं करते। देखो! यह जीव के परिणाम को कर्म नहीं पकड़ता और कर्म के उदय परिणाम को जीव नहीं पकड़ता। आहाहा! कर्म जो जड़ है, उसका उदयभाव, उदयभाव अर्थात् कर्म की पर्याय, उसे जीव नहीं पकड़ता। कर्म जड़ है, आठ कर्म, उनका-मोह का उदय आवे तो ज्ञानावरणीय का उदय, दर्शनावरणीय का उदय, अन्तराय का उदय या आयुष्य का उदय, वेदनीय का, नाम का और गोत्र का (उदय)। यह ज्ञानावरणीय के उदय को जीव नहीं पकड़ता। तथा ज्ञानावरणीय के उदय ने जीव की पर्याय को पकड़ा नहीं। वैसे दर्शनावरणीय के उदय को जीव नहीं पकड़ता। क्योंकि वह उदय जड़ की पर्याय है। जड़ को आत्मा नहीं पकड़ता। तथा आत्मा की पर्याय को दर्शनावरणीय नहीं पकड़ता। वैसे मोहनीय का उदय अन्दर आया, वह जड़ के परमाणु की पर्याय है। उसे आत्मा नहीं पकड़ता और आत्मा के विकार की पर्याय को कर्म नहीं पकड़ता।

मुमुक्षु : पकड़ता नहीं तो उदय कहाँ रहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : उदय किसमें रहा उसमें। उदय अर्थात् बाहर पड़ा था, वह परिणमा। विपाक होकर आया। दाने थे वे पाक होकर पके। कोठी में थे वे पके। उसमें

पका, उसमें पर में कहाँ घुस गया मुँह में। इसी प्रकार सत्ता में रजकण जो थे, वे पके। पाक आया। कच्चा आम पका। पका, उसमें किसी के मुँह में कहाँ आ गया?

मुमुक्षु : वह तो पैसा देकर देते....

पूज्य गुरुदेवश्री : दिये। पैसा कौन दे और ले, सब बातें हैं। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

वहाँ भ्रमरूप वहाँ भ्रमणा है। जहाँ कल्पना, जल्पना, वहाँ भ्रमरूप वह तो भ्रमणा है। ऐसा कहते हैं। यह मेरा और तेरा और यह। यह शिथिल पड़ जाता है या नहीं रात्रि में अकेला हो वहाँ। यह कहते हैं, उसकी भ्रमणा की कल्पना है। ऐसा कहते हैं। परन्तु वह भ्रमणा किसी ने करायी नहीं। कर्म ने इसे पकड़ाई नहीं और कर्म को इसने पकड़ा नहीं। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : शरीर ने तो करायी न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कल्पना, जल्पना छूट गया। मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ। मुझे और पर को सम्बन्ध नहीं है। पर का मैं कर्ता-हर्ता नहीं। पर मुझे कर्ता-हर्ता हो नहीं सकता। ज्ञानस्वरूप चिदानन्द ऐसा (जानने से) कल्पना गयी, स्वरूप का भान हुआ। ज्ञाता-दृष्टा मैं, इसका नाम भान। कहो, समझ में आया?

कहो, यह पुरुषार्थ है या नहीं अब? कौन सा पुरुषार्थ तुम्हारे करना है? यह थोड़ा ऐसा खाना, या तो ऐसा पीना, या तो यह लेना और ऐसे वस्त्र बदलना, वह सब पुरुषार्थ। और या जनेऊ पहनना। जनेऊ पहनी है या नहीं? हें? है न? लो! तुमने नहीं कहा तो तुम्हारे मित्र ने कहा। वह तो यहाँ आया था न? कहाँ इस प्रमाण मुनि को आहार दिया, भक्ति की, यह कराया। सोनगढ़ हमारे आश्रम की है। ऐसा आया था, हों! बलिहारी, उसने नहीं लिखा था। परन्तु उसका अर्थ यह कि देखो, यह विशेषता। विशेषता।

मुमुक्षु : उसने भी यहाँ आकर हमारी बात स्वीकृत रखी।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वीकृत रखी। हमारे मुनि को स्वीकृत रखा। हमारे मुनि को आहार, पानी, भक्ति से दिया। नमस्कार करके दिया। कभी नमस्कार करनेवाले वे लोग

नहीं। उन्होंने उसमें से भ्रष्ट होकर नमस्कार किया। वे भ्रष्ट होकर, ऐसा नहीं लिखे परन्तु उसका अर्थ ऐसा लिखता है कि वहाँ के ऐसा किया, उन्होंने अर्थात् कि नहीं थे करनेवाले, वह किया ऐसा। उसका क्या अर्थ हुआ?

मुमुक्षु : वह तो होने का था वह हो गया साहेब अब।

पूज्य गुरुदेवश्री : होने का था वह.... वह तो होने का था, उसका जानने का ज्ञान कराते हैं न? कहो, समझ में आया इसमें?

देखो, मोहनीयकर्म का उदय, इस आत्मा ने पकड़ा नहीं। आत्मा की पर्याय राग-द्वेष की, उसे मोहकर्म पकड़ता नहीं। वैसे अन्तराय के उदय की पर्याय को जीव ने पकड़ा नहीं। जीव की पर्याय को दानान्तराय पकड़ रखे, ऐसा नहीं। वैसे वेदनीय का उदय आत्मा को सुख-दुःख के परिणाम को पकड़ावे, ऐसा नहीं। वह वेदनीय का उदय आत्मा को पकड़े, ऐसा नहीं। इसी प्रकार आयुष्य का उदय। आयुष्य के उदय को आत्मा ने पकड़ा नहीं और आत्मा के परिणाम की रहने की योग्यता वहाँ है, उसे आयुष्य के उदय ने पकड़ा नहीं।

इसी प्रकार नाम(कर्म) का उदय, इस अरूपी में रूपी आया। आत्मा के अरूपीपने के परिणाम को उसने पकड़ा है, ऐसा नहीं है। तथा अरूपी परिणाम ने नामकर्म के परिणाम को पकड़ा है, ऐसा नहीं है। तथा गोत्रकर्म के उदय को आत्मा ने पकड़ा है, ऐसा नहीं। आत्मा के परिणाम को गोत्रकर्म ने पकड़ा है, ऐसा नहीं। आठों आ गये। हें? अर्थात्? बोलने में आवे जीव, तब तो यह कहा? बोलने में आवे, उसमें क्या हो गया?

मुमुक्षु : कौन बोले?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहो। बोले भाषा जड़। उसमें आत्मा को क्या है। बोलने में आवे अर्थात् चूहे को मामा कहते हैं, नहीं कहते? शिथिल पड़ता होगा। यह तो स्वार्थ के कारण बोलते हैं। चूहा मामा अर्थात् भाईसाहेब! कपड़े कुतरना नहीं। हाँ, ऐसा। मेरा सामान-बामान कुतरना नहीं। देना चाहिए। ले कहाँ जायेगा तू? ऐसा करके स्वार्थिया बोलते हैं वे। चूहा मामा कहलाये। ऐसा कहते हैं न? मामा तो तू भरना चाहिए, उसके बदले समूह का कुछ ले जायेगा, कुतर जायेगा कुछ। दाणा-बाणा के वे हों तो कुतरकर उसके बिल में दाणा

ले जाये। कहो, मोसाला पूरता होगा वह ? इसी प्रकार बोला जाता है कि कर्म आत्मा के अर्थात् आत्मा के कर्म हो जाते होंगे ?

मुमुक्षु : कोई देश में होते होंगे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई देश में होते हों तो उसे खाना वहाँ। कहो, समझ में आया इसमें ?

व्यवहारनय के कथन से एकत्व है.... अर्थात् निमित्त-निमित्त एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध के कारण से उसे खास सम्बन्ध के कारण से, लो न! **एकत्व (कहा जाता) है।** असद्भूतव्यवहारनय से, झूठी नय से कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। लो! **तथापि वे (जीव तथा कर्म) एक-दूसरे के स्वरूप को ग्रहण नहीं करते।** महासिद्धान्त है। मोक्षमार्गप्रकाशक में भी टोडरमलजी ने कहा है, एक जगह रहे हैं, इकट्ठे, परन्तु जिसका कोई कर्ता-हर्ता नहीं। कि आत्मा की पर्याय का कर्म कर्ता और कर्म की पर्याय का आत्मा कर्ता। एक जगह भले रहे हों, इसलिए कर्ता-हर्ता नहीं है। कोई कर्म का आत्मा कर्ता और आत्मा के परिणाम का-विकार का कर्म कर्ता, ऐसा है नहीं कभी। तो भी कहे, नहीं.... नहीं.... नहीं। व्यवहार से कर्ता, व्यवहार कर्ता। व्यवहारनय है या नहीं ? निश्चयनय और व्यवहारनय। अरे, सुन न... !

कहते हैं, एक खास आचार्य ने डाला, देखो! '**मेलंता वि य णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति**' खास एक यह बात अलग की है। नहीं तो यहाँ यह छह द्रव्य एकसाथ होने पर भी अपने स्वरूप को छोड़ते नहीं, इतनी बात है। परन्तु अमृतचन्द्राचार्य... यह लकड़ी (विपरीतता) है न जगत और कर्म एक जगह रहे, भाई! दूसरे कर्म इसे बाधक नहीं परन्तु इसके तो बाधाक हैं न ? कहते हैं कि इसके कर्म की पर्याय तुझे राग में पकड़ती नहीं और राग की पर्याय उसके उदय को पकड़ती नहीं। कहो, ऐसे 'जड़ और चैतन्य का दोनों प्रगट स्वभाव भिन्न'। प्रगट स्वभाव भिन्न। ऐसा जाने बिना इसे जड़ से पृथक् आत्मा की मान्यता सच्ची नहीं होती। समझ में आया ? यह सात (गाथा) हुई, लो! अब बड़ी आठवीं आती है। बड़ी विवादी गाथा। यह एक द्रव्य में सब आवे, अभी एक व्यक्ति ऐसा कहेगा। क्योंकि सब इसमें सब द्रव्य के लिये यह है। एक द्रव्य के लिये पूरी बात है। ऐसा कहते हैं न ? दो मत है न जगत में ? सब छहों की इसमें बात है।

गाथा - ८

सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया।
भंगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का।।८।।

सत्ता सर्वपदार्था सविश्वरूपा अनंतपर्याया।
भंगोत्पादध्रौव्यात्मिका सप्रतिपक्षा भवत्येका।।८।।

अत्रास्तित्वस्वरूपमुक्तम्।

अस्तित्वं हि सत्ता नाम सतो भाव: सत्त्वम्। न सर्वथा नित्यतया सर्वथा क्षणिकतया वा विद्यमानमात्रं वस्तु। सर्वथा नित्यस्य वस्तुनस्तत्त्वत: क्रमभुवां भावानामभावात्कुतो विकारवत्त्वम्। सर्वथा क्षणिकस्य च तत्त्वत: प्रत्यभिज्ञानाभावात् कुत एकसन्तानत्वम्। तत: प्रत्यभिज्ञानहेतुभूतेन केनचित्स्वरूपेण ध्रौव्यमालम्ब्यमानं काभ्यांचित्क्रमप्रवृत्ताभ्यां स्वरूपाभ्यां प्रलीयमानमुपजायमानं चैककालमेव परमार्थतस्त्रितयीमवस्थां बिभ्राणं वस्तु सदवबोध्यम्। अत एव सत्ताप्युत्पादव्ययध्रौव्यात्मिकाऽवबोद्धव्या, भावभाववतो: कथञ्चिदेकस्वरूपत्वात्। सा च त्रिलक्षणस्य समस्तस्यापि वस्तुविस्तारस्य सादृश्यसूचकत्वादेका। सर्वपदार्थस्थिता च त्रिलक्षणस्य सदित्यभिधानस्य सदिति प्रत्ययस्य च सर्वपदार्थेषु तन्मूलस्यैवोपलम्भात्। सविश्वरूपा च विश्वस्य समस्तवस्तुविस्तारस्यापि रूपैस्त्रिलक्षणै: स्वभावै: सह वर्तमानत्वात्। अनन्तपर्याया चानन्ताभिर्द्रव्यपर्यायव्यक्तिस्त्रिलक्षणाभि: परिगम्यमानत्वात्। एवंभूतापि सा न खलु निरंकुशा किन्तु सप्रतिपक्षा। प्रतिपक्षो ह्यसत्ता सत्ताया:, अत्रिलक्षणत्वं त्रिलक्षणाया:, अनेकत्वमेकस्या:, एकपदार्थस्थितत्वं सर्वपदार्थस्थिताया:, एकरूपत्व सविश्वरूपाया:, एकपर्यायत्वमनन्तपर्यायाया इति। द्विविधा हि सत्ता — महासत्तावान्तरसत्ता च। तत्र सर्वपदार्थसार्थव्यापिनी सादृश्यास्तित्वसूचिका महासत्ता प्रोक्तैव। अन्या तु प्रतिनियतवस्तुवर्तिनी स्वरूपास्तित्वसूचिकाऽवान्तरसत्ता। तत्र महासत्ताऽवान्तरसत्तारूपेणाऽसत्ताऽवान्तरसत्ता च महासत्तारूपेणाऽसत्तेत्यसत्ता सत्ताया:। येन स्वरूपेणोत्पादस्तत्तथोत्पादैकलक्षणमेव, येन स्वरूपेणोच्छेदस्तत्तथोच्छेदैकलक्षणमेव, येन स्वरूपेण ध्रौव्यं तत्तथा ध्रौव्यैकलक्षणमेव, तत उत्पद्यमानोच्छिद्यमानावतिष्ठमानानां वस्तुन: स्वरूपाणां प्रत्येकं त्रैलक्षण्याभावादत्रिलक्षणत्वं त्रिलक्षणाया:। एकस्य वस्तुन: स्वरूपसत्ता नान्यस्य वस्तुन: स्वरूपसत्ता भवतीत्यनेकत्वमेकस्या:। प्रतिनियतपदार्थस्थिताभिरेव सत्ताभि: पदार्थानां प्रतिनियमो भवतीत्येकपदार्थस्थितत्वं सर्वपदार्थस्थिताया:। प्रतिनियतैकरूपाभिरेव सत्ताभि: प्रतिनियतैकरूपत्वं वस्तूनां भवतीत्येकरूपत्वं सविश्वरूपाया:। प्रतिपर्यायनियताभिरेव सत्ताभि:

प्रतिनियतैकपर्यायाणामानन्त्यं भवतीत्येकपर्यायत्वमनन्तपर्यायाया:। इति सर्वमनवद्यं सामान्यविशेष-प्ररूपणप्रवणनयद्वयायत्तत्वात्तद्देशनाया:।।८।।

सत्ता जनम-लय-ध्रौव्यमय अर एक सप्रतिपक्ष है।
सर्वार्थ थित सविश्वरूप-रु अनन्त पर्ययवंत है।।८।।

अन्वयार्थ :- [सत्ता] सत्ता [भंगोत्पादध्रौव्यात्मिका] उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक, [एका] एक, [सर्वपदार्था] सर्वपदार्थस्थित, [सविश्वरूपा] सविश्वरूप, [अनन्तपर्याया] अनन्त पर्यायमय और [सप्रतिपक्षा] सप्रतिपक्ष [भवति] है।

टीका :- यहाँ अस्तित्व का स्वरूप कहा है।

अस्तित्व अर्थात् सत्ता नामक सत् का भाव अर्थात् [१]सत्त्व।

विद्यमानमात्र वस्तु न तो सर्वथा नित्यरूप होती है और न सर्वथा क्षणिकरूप होती है। सर्वथा नित्य वस्तु को वास्तव में क्रमभावी भावों का अभाव होने से विकार (-परिवर्तन, परिणाम) कहाँ से होगा? और सर्वथा क्षणिक वस्तु में वास्तव में [२]प्रत्यभिज्ञान का अभाव होने से एकप्रवाहपना कहाँ से रहेगा? इसलिए प्रत्यभिज्ञान के हेतुभूत किसी स्वरूप से ध्रुव रहती हुई और किन्हीं दो क्रमवर्ती स्वरूपों से नष्ट होती हुई तथा उत्पन्न होती हुई- इस प्रकार परमार्थत: एक ही काल में तिगुनी (तीन अंशवाली) अवस्था को धारण करती हुई वस्तु सत् जानना। इसलिए 'सत्ता' भी 'उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक' (त्रिलक्षणा) जानना; क्योंकि [३]भाव और भाववान का कथंचित् एक स्वरूप होता है।

और वह (सत्ता) 'एक' है, क्योंकि वह त्रिलक्षणवाले समस्त वस्तुविस्तार का सादृश्य सूचित करती है।

और वह (सत्ता) 'सर्वपदार्थस्थित' है; क्योंकि उसके कारण ही (-सत्ता के कारण ही) सर्व पदार्थों में त्रिलक्षण की (-उत्पादव्ययध्रौव्य की), 'सत्' ऐसे कथन की तथा 'सत्' ऐसी प्रतीति की उपलब्धि होती है।

१. सत्त्व=सत्पना; अस्तित्वपना; विद्यमानपना; अस्तित्व का भाव; 'है' ऐसा भाव।
२. वस्तु सर्वथा क्षणिक हो तो 'जो पहले देखने में (-जानने में) आई थी वही यह वस्तु है' ऐसा ज्ञान नहीं हो सकता।
३. सत्ता भाव है और वस्तु भाववान है।

और वह (सत्ता) 'सविश्वरूप' है, क्योंकि वह विश्व के रूपोंसहित अर्थात् समस्त वस्तुविस्तार के त्रिलक्षणवाले स्वभावोंसहित वर्तती है।

और वह (सत्ता) 'अनन्तपर्यायमय' है। क्योंकि वह त्रिलक्षणवाली अनन्त द्रव्यपर्यायरूप व्यक्तियों से व्याप्त है। (इस प्रकार [1] सामान्य-विशेषात्मक सत्ता का उसके सामान्य पक्ष की अपेक्षा से अर्थात् महासत्तारूप पक्ष की अपेक्षा से वर्णन हुआ।)

ऐसी होने पर भी वह वास्तव में [2] निरंकुश नहीं है किन्तु [3] सप्रतिपक्ष है। (१) सत्ता को असत्ता प्रतिपक्ष है; (२) त्रिलक्षणा को अत्रिलक्षणपना प्रतिपक्ष है; (३) एक को अनेकपना प्रतिपक्ष है; (३) सर्वपदार्थस्थित को एकपदार्थस्थितपना प्रतिपक्ष है; (५) सविश्वरूप को एकरूपपना प्रतिपक्ष है; (६) अनन्त पर्यायमय को एकपर्यायमयपना प्रतिपक्ष है।

(उपर्युक्त सप्रतिपक्षपना स्पष्ट समझाया जाता है:-)

सत्ता द्विविध है : महासत्ता और अवान्तरसत्ता। उनमें सर्व पदार्थसमूह में व्याप्त होनेवाली, सादृश्य अस्तित्व को सूचित करनेवाली महासत्ता (सामान्यसत्ता) तो कही जा चुकी है। दूसरी, प्रतिनिश्चित (-एक-एक निश्चित) वस्तु में रहनेवाली, स्वरूप-अस्तित्व को सूचित करनेवाली अवान्तरसत्ता (विशेषसत्ता) है।

(१) वहाँ महासत्ता अवान्तरसत्तारूप से असत्ता है और अवान्तरसत्ता महासत्तारूप से असत्ता है, इसलिए सत्ता को असत्ता है (अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होने से 'सत्ता' है, वही अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'असत्ता' भी है)।

(२) जिस स्वरूप से उत्पाद है, उसका (-उस स्वरूप का) उस प्रकार से उत्पाद एक ही लक्षण है; जिस स्वरूप से व्यय है, उसका (-उस स्वरूप का) उस प्रकार से व्यय एक ही लक्षण है और जिस स्वरूप से ध्रौव्य है, उसका (-उस स्वरूप का) उस प्रकार से ध्रौव्य एक ही लक्षण है; इसलिए वस्तु के उत्पन्न होनेवाले, नष्ट होनेवाले और

---

१. यहाँ 'सामान्यात्मक' का अर्थ 'महा' समझना चाहिए और 'विशेषात्मक' का अर्थ 'अवान्तर' समझना चाहिए। सामान्य विशेष के दूसरे अर्थ यहाँ नहीं समझना।

२. निरंकुश=अंकुशरहित; विरुद्ध पक्षरहित; निःप्रतिपक्ष। (सामान्यविशेषात्मक सत्ता का ऊपर जो वर्णन किया है, वैसी होने पर भी सर्वथा वैसी नहीं है; कथंचित् (सामान्य-अपेक्षा से) वैसी है। और कथंचित् (विशेष-अपेक्षा से) विरुद्ध प्रकार की है।)

३. सप्रतिपक्ष=प्रतिपक्षसहित; विपक्षसहित; विरुद्ध पक्षसहित।

ध्रुव रहनेवाले स्वरूपों में से प्रत्येक को त्रिलक्षण का अभाव होने से त्रिलक्षणा (सत्ता) को अत्रिलक्षणपना है। (अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होने से 'त्रिलक्षणा' है, वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'अत्रिलक्षणा' भी है)।

(३) एक वस्तु की स्वरूपसत्ता अन्य वस्तु की स्वरूपसत्ता नहीं है, इसलिए एक (सत्ता) को अनेकपना है। (अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होने से 'एक' है, वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'अनेक' भी है।)

(४) प्रतिनिश्चित (व्यक्तिगत निश्चित) पदार्थ में स्थित सत्ताओं द्वारा ही पदार्थों का प्रतिनिश्चितपना (-भिन्न-भिन्न निश्चित व्यक्तित्व) होता है, इसलिए सर्वपदार्थस्थित (सत्ता) को एकपदार्थस्थितपना है। (अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होने से 'सर्वपदार्थस्थित' है, वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'एकपदार्थस्थित' भी है।)

(५) प्रतिनिश्चित एक-एक रूपवाली सत्ताओं द्वारा ही वस्तुओं का प्रतिनिश्चित एक एकरूप होता है, इसलिए सविश्वरूप (सत्ता) को एकरूपपना है (अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होने से 'सविश्वरूप' है, वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'एकरूप' भी है।)

(६) प्रत्येक पर्याय में स्थित (व्यक्तिगत भिन्न-भिन्न) सत्ताओं द्वारा ही प्रतिनिश्चित एक-एक पर्यायों का अनन्तपना होता है, इसलिए अनन्त पर्यायमय (सत्ता) को एकपर्यायमयपना है (अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होने से 'अनन्त-पर्यायमय' है, वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'एकपर्यायमय' भी है।)

इस प्रकार निरवद्य है (अर्थात् ऊपर कहा हुआ सर्व स्वरूप निर्दोष है, निर्बाध है, किंचित् विरोधवाला नहीं है) क्योंकि उसका (-सत्ता के स्वरूप का) कथन सामान्य और विशेष के प्ररूपण की ओर ढलते हुए दो नयों के आधीन है।

भावार्थ :- सामान्यविशेषत्मक सत्ता के दो पक्ष हैं :- एक पक्ष वह महासत्ता और दूसरा पक्ष वह अवान्तरसत्ता।

(१) महासत्ता अवान्तरसत्तारूप से असत्ता है और अवान्तरसत्ता महासत्तारूप से असत्ता है; इसलिए यदि महासत्ता को 'सत्ता' कहे तो अवान्तरसत्ता को 'असत्ता' कहा जायेगा।

(२) महासत्ता उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ऐसे तीन लक्षणवाली है, इसलिए वह 'त्रिलक्षणा' है। वस्तु के उत्पन्न होनेवाले स्वरूप का उत्पाद ही एक लक्षण है, नष्ट होनेवाले स्वरूप का व्यय ही एक लक्षण है और ध्रुव रहनेवाले स्वरूप का ध्रौव्य ही एक लक्षण है; इसलिए उन तीन स्वरूपों में से प्रत्येक की अवान्तरसत्ता एक ही लक्षणवाली होने से 'अत्रिलक्षणा' है।

(३) महासत्ता समस्त पदार्थसमूह में 'सत्, सत्, सत्' ऐसा समानपना दर्शाती है, इसलिए एक है। एक वस्तु की स्वरूपसत्ता अन्य किसी वस्तु की स्वरूपसत्ता नहीं है, इसलिए जितनी वस्तुएँ उतनी स्वरूपसत्ताएँ; इसलिए ऐसी स्वरूपसत्ताएँ अथवा अवान्तरसत्ताएँ 'अनेक' हैं।

(४) सर्व पदार्थ सत् है, इसलिए महासत्ता 'सर्व पदार्थों में स्थित' है। व्यक्तिगत पदार्थों में स्थित भिन्न-भिन्न व्यक्तिगत सत्ताओं द्वारा ही पदार्थों का भिन्न-भिन्न निश्चित व्यक्तित्व रह सकता है, इसलिए उस-उस पदार्थ की अवान्तरसत्ता उस-उस 'एक पदार्थ में ही स्थित' है।

(५) महासत्ता समस्त वस्तुसमूह के रूपों (स्वभावों) सहित है, इसलिए वह 'सविश्वरूप' (सर्वरूपवाली) है। वस्तु की सत्ता का (कथंचित्) एक रूप हो तभी उस वस्तु का निश्चित एक रूप (-निश्चित एक स्वभाव) रह सकता है, इसलिए प्रत्येक वस्तु की अवान्तरसत्ता निश्चित 'एक रूपवाली' ही है।

(६) महासत्ता सर्व पर्यायों में स्थित है, इसलिए वह 'अनन्तपर्यायमय' है। भिन्न-भिन्न पर्यायों में (कथंचित्) भिन्न-भिन्न सत्ताएँ हों, तभी प्रत्येक पर्याय भिन्न-भिन्न रहकर अनन्त पर्यायें सिद्ध होंगी, नहीं तो पर्यायों का अनन्तपना ही नहीं रहेगा-एकपना हो जायेगा; इसलिए प्रत्येक पर्याय की अवान्तरसत्ता उस-उस 'एक पर्यायमय' ही है।

इस प्रकार सामान्यविशेषात्मक सत्ता, महासत्तारूप तथा अवान्तरसत्तारूप होने से, (१) सत्ता भी है और असत्ता भी है, (२) त्रिलक्षणा भी है और अत्रिलक्षणा भी है, (३) एक भी है और अनेक भी है, (४) सर्वपदार्थस्थित भी है और एकपदार्थस्थित भी है। (५) सविश्वरूप भी है और एकरूप भी है, (६) अनन्तपर्यायमय भी है और एक पर्यायमय भी है।।८।।

गाथा - ८ पर प्रवचन

सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया।
भंगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का।।८।।

यह गाथा बहुत महा जोरदार है। कितनों को तो इस गाथा में से वेदान्त जैसा लगता है। मानो सब आत्मा एक है। देखो, 'सत्ता सो पयथ्था' कहा। कितने को यह सब बात एक द्रव्य की है। यहाँ अभी तक भिन्न-भिन्न बातें की और फिर यहाँ सब एक है, ऐसा कहाँ से कहा? और ऐसा हो तर्क-वितर्क। अभी तक तो कहा सब भिन्न-भिन्न है। और आत्मा में सब होकर महासत्ता कहने में आती है संग्रहनय से, वह और यहाँ कैसे लिया, ऐसा किसी को तर्क होता है, परन्तु यह बात यहाँ ऐसी ही है। श्रीमद् ने अर्थ किया, परन्तु ऐसा है भाई! इसका अर्थ किया है न? पंचास्तिकाय में। अब अपने इसकी सत्ता, उसका यह सत्ता का अर्थ किया महासत्ता का है न?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वह नहीं, वह नहीं। यह तो आठवीं गाथा।

सत्तास्वरूप से सर्व पदार्थ एकत्ववाले हैं। यह तो बहुत चर्चा हो गयी न? हाँ, यह मुझे यहाँ कहना है। वह बात नहीं। सत्ता स्वरूप से भाई, हिम्मतभाई! यह तो (संवत्) १९९० के वर्ष में वनेचन्द सेठ के साथ बात हुई थी सम्प्रदाय में। उन्हें ऐसा कि यह सब क्या कहते हैं? मैंने कहा है यह। है, अर्थात् क्या सब एक हो गये हैं? एक आधार है सबका? एक अधिष्ठान है? बिल्कुल नहीं। सत्ता स्वरूप से सर्व पदार्थ एकत्ववाले हैं। वह सत्ता अनन्त प्रकार के स्वभाववाली है। उत्पाद-व्यय-ध्रुववाली है और सामान्य विशेष, बस! इतनी बात है न? परन्तु यहाँ तो इतने यह शब्द अपने लेना है। सत्तास्वरूप से सर्व पदार्थ एकत्ववाले हैं। सब पदार्थों को 'है' अपेक्षा से एक कहा है। 'है' अपेक्षा से। एक ऐसे हो नहीं गये। आत्मा है, परमाणु है, काल है, आकाश है। ऐसा 'है' न? 'है', इस अपेक्षा में कोई नहीं, ऐसा कहलाये? वह है, इस अपेक्षा से सब 'है' में समा जाते हैं। 'है' अर्थात् महासत्ता।

सत्ता जनम-लय-ध्रौव्यमय अर एक सप्रतिपक्ष है।
सर्वार्थ थित सविश्वरूप-रु अनन्त पर्ययवन्त है॥८॥

टीका :- यहाँ अस्तित्व का स्वरूप कहा है। यहाँ छह द्रव्य में अस्तित्व का स्वरूप कहा है। अस्तित्व का स्वरूप कहा है। है न? पाठ ही है वहाँ। '**अत्रास्तित्वस्वरूपमुकतम**' **अस्तित्व अर्थात् सत्ता नामक सत् का भाव।** सत्ता नाम का सत्त्व कहना है न? सत्ता। सत्ता नाम का सत्त्व का अस्तित्व कहना है न? सत्ता। सत्ता को अस्तित्व कहा। कि **सत्ता नामक सत् का भाव।** उसे सत्त्व अर्थात् अस्तित्व कहा जाता है।

नीचे है। सत्त्व, सत्त्व=सत्पना, अस्तित्वपना, विद्यमानपना, अस्तित्व का भाव, '**है**' ऐसा भाव। अब तो बहुत स्पष्ट कर दिया है। कहो, समझ में आया? ऐसी टीका कहाँ अक्षर-अक्षर में थी पंचास्तिकाय की, प्रवचनसार की, नियमसार की, समयसार की। दो में तो एकदम थी ही नहीं। दो तो एकदम संस्कृत की ही थी। गुजराती पहले-बहले दो हजार वर्ष में बाहर आया। कहो, समझ में आया? **अस्तित्व अर्थात् सत्ता नामक सत् का भाव अर्थात् सत्त्व।** अस्तित्व है न? सत्, सत्पना अर्थात् अस्तित्व।

विद्यमानमात्र वस्तु न तो सर्वथा नित्यरूप होती है.... क्या कहते हैं? अस्ति धारक सभी वस्तुएँ, विद्यमान, **विद्यमानमात्र वस्तु न तो सर्वथा नित्यरूप होती है और न सर्वथा क्षणिकरूप होती है।** जितने विद्यमान पदार्थ-चीज़ें हैं अनन्त आत्मायें, परमाणु, कालाणु। वे नहीं सर्वथा नित्यरूप होती या वे नहीं सर्वथा क्षणिक अर्थात् अनित्यरूप होती।

सर्वथा नित्यवस्तु को वास्तव में क्रमभावी भावों का अभाव होने से.... सर्वथा यदि आत्मा और परमाणु आदि नित्य ही हों और परिणमे नहीं, अनित्य न हों, क्षणिक अवस्था न हो तो क्रमभावी भाव, क्रम-क्रम से होती अवस्था। भाव अर्थात् अवस्था। ऐसे परमाणु और आत्मा आदि छहों द्रव्य में सर्वथा नित्य वस्तु को वास्तव में क्रमभावी—क्रम-क्रम से होनेवाली भाव अर्थात् पर्यायों का अभाव होने से... देखो! पर्याय को भी भाव कहा जाता है। **विकार (-परिवर्तन, परिणाम) कहाँ से होगा?** पलटा कहाँ से खाये?

एक वस्तु कायम नित्य ही हो और उसमें क्रम-क्रम से होती उत्पाद-व्यय की अवस्था न हो तो उसमें पलटा कैसे होगा? फेरफार कैसे होगा? बदले कैसे? दूसरा रूप

कैसे दिखायी दे ? समझ में आया ? यह तो वीतराग का पदार्थ विज्ञान है। वीतरागदेव ने देखा हुआ पदार्थ का विज्ञान। यह लोग पदार्थ विज्ञान कहते हैं, वह अमुक अपेक्षा से माने, उसकी बात, परन्तु यह तो सर्वज्ञ से त्रिकाल वस्तु कैसी है, यह जाने तो..... माननेवाले निकले, ऐ तुझसे होता है यह बात उसे... समझ में आया ?

क्योंकि पर में हो तो पर परिणमे बिना का तत्त्व है ? विद्यमान चीज़ है तो परिणमे बिना की होगी ? क्रमभावी दशा बिना की होगी ? नयी-नयी अवस्था हुए बिना की चीज़ होगी ? ऐसी हो तो फेरफार और पलटा हो नहीं सकता। और फेरफार-पलटा तो दिखता है। कहो, समझ में आया ? धूल में से गेहूँ और गेहूँ में से आटा और आटा में से यह रक्त और रक्त में से यह थूँक और, श्लेष्म, कफ और विष्टा... अरे! भिन्न-भिन्न अवस्थायें होती दिखती हैं। यदि पलटा न हो तो वे अवस्थायें, वह चीज़ विद्यमान तो है। है तो सही न ? है, तथापि यदि पलटा न हो तो उसके फेरफार कैसे दिखाई दे ? और फेरफार होते हैं, ऐसा पलटा पलटती चीज़ का स्वभाव है। कहो, समझ में आया ?

कहाँ से हो ? नित्य वस्तु को अकेली नित्य यदि सर्वथा वस्तु एकरूप है, टिकती, त्रिकाल एकरूप, ऐसा कहो तो वास्तव में क्रमभावी पर्यायों का अभाव होने से विकार अर्थात् फेरफार... देखो ! विकार अर्थात् यहाँ राग-द्वेष का विकार, ऐसा नहीं लेना। वि-कार्य, विशेष कार्य। जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में ऐसा डाला है। पर्याय किसे कहते हैं ? आता है ? किसे कहते हैं ? गुणविकारापर्याय:, ऐसा वहाँ कहा है। गुण का विकार, वह पर्याय। आता है ? धन्नालालजी ! आता है। ऐसा तो इसे ऐसा याद रहे, मस्तिष्क है। गुणविकारापर्याया, ऐसा है अन्दर। गुण का विकार, वह पर्याय। विकार अर्थात् विशेष कार्य। समझ में आया ? जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में है। पढ़ा है ? अब कहाँ निवृत्त हों ? यह तो लड़के पढ़ें। अब तो बड़े हो गये, पढ़ें न ? ऐई ! कहाँ गया आशीष ? आता है या नहीं ? क्या आता है उसमें ?

आशीष : गुणों के विशेष कार्य को पर्याय कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : विशेष कार्य को पर्याय कहते हैं। देखो ! यह कार्य की बात है यहाँ। वि-कार विशेष कार्य, पलटना, फेरफार होना। **(-परिवर्तन, परिणाम) कहाँ से होगा ?**

यदि प्रत्येक द्रव्य नित्य हो तो उसमें फेरफार और पलटा कहाँ से होगा? प्रत्येक रजकण और प्रत्येक आत्मा में कायमपना रहकर, उसमें पलटा और फेरफार हुआ करता है। उसमें क्रमभावी पर्यायें होना, उसका स्वभाव है। कहो, चन्दुभाई! दूसरे किसी के कारण नहीं, उसका अपना स्वभाव है। शरीर की क्रमभावी पर्याय उसके कारण से, आत्मा की क्रमभावी पर्याय आत्मा के कारण से, कर्म की क्रमभावी पर्याय उसके कारण से, दाल, भात, रोटी में से पलटना हुआ, वह उसके कारण से। किसे के कारण से नहीं। कहो, समझ में आया इसमें?

और सर्वथा क्षणिक वस्तु में.... एक बोल का निषेध किया। यदि सर्वथा नित्य हो तो उसमें फेरफार न हो और सर्वथा क्षणिक वस्तु हो अनित्य ही हो। बदलती ही हो परन्तु वस्तु टिकनेवाली न हो तो **क्षणिक वस्तु में वास्तव में प्रत्यभिज्ञान का अभाव होने से....** नीचे है। वस्तु सर्वथा क्षणिक हो तो 'जो पहले देखने में (जानने में) आयी थी, वही यह वस्तु है, ऐसा ज्ञान नहीं हो सकता।' यह था, इसे मैंने पैसे दिये थे। इसके पास से लेता हूँ। ऐसा नित्यपना टिकता न हो तो यह था, वह यह है। यह वह पहले था, वह यह है, ऐसा नित्यपना न हो तो ऐसा नहीं बन सकता। समझ में आया?

पैसा लेनेवाला दूसरा और देनेवाला दूसरा और हो गया। वह कहे लेनेवाला दूसरा था, तुमने मुझे क्या दिया? बौद्ध कहते हैं न क्षणिक। हें? मुझे पैसे नहीं दिये, वह तो दूसरा आत्मा था। उसके पास माँगो। वह तो रहा नहीं क्षणिक। परन्तु आत्मा और परमाणु पलटने पर भी उनके कार्य विशेष से होने पर भी उनका कायमपना-टिकनापना यदि न हो तो **प्रत्यभिज्ञान का अभाव होने से एकप्रवाहपना कहाँ से रहेगा?** वह की वह जाति कहाँ रहे, ऐसा। एक प्रवाह। पानी की तरंगें उठने पर भी पानी, पानीरूप से तो कायम रहता है। वैसे स्वर्ण में गहने भिन्न-भिन्न होने पर भी स्वर्णत्व तो कायम (रहता है)। आत्मा के परिणाम बदलने पर भी आत्मा तो कायम रहता है। एक प्रवाहरूप अनादि का चला आता है। अनादि का। अनादि... अनादि... अनादि। भिन्न... भिन्न... भिन्न... भिन्न —ऐसी पर्याय क्षण-क्षण में ऐसे प्रवाहरूप से अनादि ध्रुवरूप से अनादि का आत्मा है। समझ में आया?

इसी प्रकार परमाणु। परमाणु में क्षण-क्षण में पर्याय न हो तो एक प्रवाहपना न हो

तो कार्य नहीं होगा। और एक प्रवाहरूप न हो तो नित्य न हो तो प्रवाहरूप नहीं होगा। वह के वह परमाणु की यह पर्याय, इस परमाणु की यह। यह परमाणु पहले हरा और फिर हुआ पीला। यह परमाणु पहले हुआ खट्टा और फिर हुआ मीठा, मीठा आम। तो यह आम, ऐसा कहते हैं या नहीं ? कि आम खट्टा था, तब दूसरा था और मीठा हुआ तब दूसरा। यह आम, भाई ! मीठा हो गया, हों ! इसलिए आम मीठा हुआ वह स्वयं रहकर मीठा हुआ है। अवस्था भी बदली और आम आमरूप से भी रहा।

वस्तु को बहुत संक्षिप्त में समझाना। कुन्दकुन्दाचार्य के शास्त्र ऐसे ! एक-एक गाथा में कितना अधिक, देखो न ! इसमें कितना भरा है !! कि परमाणु आदि क्षण-क्षण में पलटते हैं उनके कारण से। और न पलटते हों तो फेरफार नहीं और फेरफार है तो उससे है। तुझसे तेरा और उससे उसका। किसी का फेरफार तू कर सके शरीर का और कर्म तेरा फेरफार कर सके और तू कर्म को फेरफार कर डाले, (ऐसा नहीं बनता)। संक्रमण कर डाले या नहीं फेरफार ? कैसे शास्त्र में नहीं आता ? कर्म की स्थिति घटाये। बोलने का। स्थिति बढ़ाये, रस बढ़ाये, रस घटाये। जीव विसंयोजना करे, कर्म का विसंयोजन अनन्तानुबन्धी का करे। लो ! अपकर्षण करे, घटाये। उत्कर्षण करे। समझ में आया ? कितने करण। बहुत ऐसे करण आते हैं। उदीरणा, निध्धत और निकाचित करे न। जीव निकाचित और निध्धत कर्म को करे और तोड़े। उसें क्या आया ? कि निध्धत को तोड़ने की क्रिया, वह जड़ की है, उसे आत्मा नहीं करता।

कर्म का विसंयोजन होना, फेरफार, वह फेरफार परमाणु का स्वभाव है। आत्मा से नहीं होता। कहो, यह विवाद कर्म का। जीव परिणाम करे तो बदले, वहाँ बदले। अरे ! परन्तु वहाँ बदलने का स्वभाव उसका है। तूने परिणाम तुझमें किये और वहाँ उसके परिणाम उसके कारण से हुए। तेरे परिणाम के कारण हुआ ? कहो, सेठी ! क्या है ? यह बात थी परन्तु उसमें कर्ताकर्म घुस गया कि आत्मा कर्म के परमाणु का ऐसा करे, गोम्मटसार में, धवल में और ऐसा कथन आवे, हों ! विसंयोजन करे, ऐसा करे, वैसा करे, उसमें आता है, देखो ! धवल, जयधवल में सर्वत्र आता है। ऐसी प्रकृति को संक्रमित करे, पलटावे, पलटे, ऐसा हो। एक ठिकाने कर दे या सबके कारण से सब होता है। अन्तर कारण से होता

है, बाह्य कारण से निरपेक्ष। जाओ। उड़ाओ सब। कहो, समझ में आया? कभी बाधक नहीं। कहीं अवरोधक नहीं कहीं।

यदि इसे स्वतन्त्रता की दृष्टि हो और स्वतन्त्रता की दृष्टि रखकर यदि वाँचन करे तो सब जैसा है, वैसा इसे दिखाई दे, ज्ञात हो, बैठे, रुचे, सुहावे। पहले तो सुनने को ही नहीं मिलता। नहीं? भाई! यह सुनने को मिले, वह वापस दूसरे में विपरीतता में फँस जाये तो इसका कहीं निपटारा नहीं होता, ऐसा यहाँ कहते हैं। **इसलिए प्रत्यभिज्ञान के हेतुभूत....** प्रत्यभिज्ञान अर्थात् नीचे (फुटनोट में) कहा न? यह पूर्व में देखने में आता था, वह यह। **किसी स्वरूप से ध्रुव रहती हुई....** कौन? प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु। अर्थात् वस्तु कहनी है न? वस्तु थी न? विद्यमान वस्तु शब्द पहला था न? प्रत्यभिज्ञान के कारणभूत—कारण उसी और उसी का, उसमें, हों! **ध्रुव रहती हुई और किन्हीं दो क्रमवर्ती स्वरूपों से नष्ट होती हुई....** यह देखो! दो क्रमवर्ती। उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय, उत्पाद का भी क्रम और व्यय का भी क्रम। इस समय का उत्पाद दूसरे समय में नाश। यह समय का समझ में आता है न? उत्पाद, दूसरे समय में व्यय, दूसरे समय का उत्पाद, तीसरे समय में व्यय। इसलिए व्यय का भी क्रम और उत्पाद का भी क्रम। **दो क्रमवर्ती स्वरूपों से....** अर्थात् क्या कहा? वर्तमान में जिस समय में उत्पाद होता है, उसका फिर दूसरा उत्पाद दूसरे समय में। इसलिए उत्पाद का क्रम हो गया। व्यय वर्तमान का जो व्यय हो, उससे दूसरे समय में दूसरे का व्यय हुआ। वर्तमान व्यय है, वह पूर्व का-बाद का व्यय हो उत्पन्न हो उसका। इसलिए व्यय भी क्रम और उत्पाद भी क्रम। आहाहा! समझ में आया इसमें?

जिस पर्याय का उत्पाद हुआ, उसका दूसरा समय में दूसरा उत्पाद उसका न, इसलिए उत्पाद क्रम हो गया। यह उत्पाद वह दूसरे समय में नहीं। उत्पाद का क्रम हो गया न? प्रत्येक परमाणु और आत्मा में। इस समय में उत्पाद पर्याय हुई, और दूसरे समय में क्रम में दूसरा। उसमें इस समय जो व्यय हुआ, वह दूसरे समय में दूसरी पर्याय हुई। यह उत्पाद हुआ, उसका व्यय। व्यय का भी क्रम और उत्पाद का भी क्रम। आहाहा! समझ में आया? **प्रत्यभिज्ञान के हेतुभूत किसी स्वरूप से ध्रुव रहती हुई....** और टिकती, क्या टिकती?

क्या टिकती? वस्तु। यहाँ ऊपर वस्तु कही है न? **विद्यमानमात्र वस्तु....** ऐसे वस्तु से उठाया है। द्रव्य से उठाये तो द्रव्य कहा जाता है। प्रत्येक वस्तु, वस्तु क्यों कहा कि उसमें बसे हुए गुण-पर्याय है। अपने-अपने गुण-पर्याय बसे हुए हैं, इसलिए उसे वस्तु कहा जाता है। प्रत्येक रजकण और प्रत्येक आत्मा, उसमें अपने गुण-पर्याय बसे हुए हैं, इसलिए वस्तु। यह वस्तु टिकने की अपेक्षा से ध्रुव है। क्रमवर्ती दो पर्याय की अपेक्षा से क्रमवर्ती है। दो क्रमवर्ती स्वरूप से नष्ट होती और उपजती है। नष्ट होती और उपजती दोनों क्रम है। समझ में आया?

पहले समय में जो व्यय हुआ, वह दूसरे समय में दूसरा, दूसरे का व्यय, यह क्रम। पहले समय में जो उत्पाद हुआ, दूसरे समय में दूसरा उत्पाद। उसका भी क्रम। आहाहा! किसके कारण से? स्वयं के कारण से। पर के कारण से नहीं। देखो न! **प्रत्यभिज्ञान के हेतुभूत किसी स्वरूप से ध्रुव रहती हुई और किन्हीं दो क्रमवर्ती स्वरूपों से नष्ट होती हुई....** यह वस्तु। दो क्रमवर्ती स्वरूपों से नष्ट होती वस्तु। और वह वस्तु क्रमवर्ती स्वरूपों से नष्ट होती और क्रमवर्ती से उपजती। क्रमवर्ती से उपजती और क्रमवर्ती से नष्ट होती। पर के कारण नहीं। **इस प्रकार परमार्थतः एक ही काल में तिगुनी (तीन अंशवाली) अवस्था को धारण करती हुई वस्तु सत् जानना।** त्रिगुनी हुई त्रिगुनी। त्रिगुनी दाल करते हैं या नहीं? तेवठी। तेवठी अर्थात् तीन। मूँग की दाल, चने की दाल और उड़द की दाल डालकर तीन करते हैं न? यह सब तेवठी है। तेवठी कहते हैं न उसे क्या कहते हैं? ऐ मोहनभाई! क्या क्या कहते हैं? तेवठी! यहाँ भाई ने त्रेवडी लिखा है। त्रेवडी, त्रेवडी। प्रत्येक वस्तु त्रेवडी है।

कायम रहनेवाली एक, वह ध्रुव, एक और उत्पाद क्रम तथा व्यय का क्रम, इसलिए दो यह। त्रेवडी हुई। एक समय में त्रेवडी वस्तु। प्रत्येक वस्तु एक समय में त्रेवडी वस्तु सत् जानना। लो! इसकी-सत् की व्याख्या की। सत् है न, उसकी व्याख्या की। विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

धारावाही प्रवचन नं. १० (प्रवचन नं. ९), गाथा- ६ - ७
दिनांक - २३-११-१९६९, कार्तिक शुक्ल १५, रविवार

यह पंचास्तिकाय, जगत में पाँच अस्तिकाय द्रव्य है। अस्ति अर्थात् है और बहुत प्रदेश अंशवाले पदार्थ हैं, इसलिए उसे अस्तिकाय कहा जाता है। इस आत्मा में ज्ञान की एक समय की पर्याय वह छह द्रव्य को जानने की सामर्थ्य रखती है। जिसे जीव शुद्ध आत्मा अखण्ड आनन्दरूपी वस्तु की दृष्टि करके अनुभव करना हो और वही आदरणीय द्रव्य है। परन्तु वह आदरणीय उपादेय आत्मा, उसकी ज्ञान की एक समय की पर्याय में पाँच अस्तिकाय और छठा काल, सबको जानने की ताकतवाला अस्तित्व एक समय की पर्यायवाला इतनी उसकी सत्ता है। पर्याय की इतनी सत्ता है। समझ में आया?

सार में तो सब जानकर शुद्ध चैतन्य वस्तु अभेद अखण्ड वस्तु आनन्द, उसका आश्रय लेकर, उसका अनुभव करना, इसका नाम जीव को उपादेयपने जाना, माना, अनुभव किया, उसे धर्म होता है। करने का तो यह है। परन्तु ऐसा करनेवाले को उसकी एक समय की पर्याय के अस्तित्व की स्वीकृति में जो छह द्रव्य हैं, अस्तिकाय तीन काल में रहनेवाले और पर्यायवाले। यह है न? '**ते चेव अत्थिकाया तेक्कालियभाव परिणहा णिच्चा**' समझ में आया? वह वस्तु है जगत की, वे छह द्रव्य अथवा पाँच अस्तिकाय और छठवाँ काल। छह अस्ति परन्तु वे सब छह द्रव्य जगत की चीज़ है। इतना सामर्थ्य आत्मा की ज्ञान की एक समय की अवस्था का सामर्थ्य, शक्ति, सत्त्व, इतना एक समय की पर्याय का तत्त्व। वह छह द्रव्य को जाने इतना तो उसका तत्त्व है। जो छह द्रव्य को न माने, वह तो आत्मा की एक समय की पर्याय का अस्तित्व भी नहीं मानता। समझ में आया?

ऐसा जो नहीं मानता, उसे जीव अखण्ड, अभेद, चिदानन्द शुद्ध ध्रुव है, ऐसी अनन्त पर्याय का एकरूप गुण और अनन्त गुण का एकरूप द्रव्य। उस द्रव्य का आश्रय करना हो तो इतने सामर्थ्यवाली पर्याय और ऐसे सामर्थ्यवाला द्रव्य। समझ में आया? सूक्ष्म है, सूक्ष्म। आहाहा! भगवान आत्मा एक समय में तीन काल-तीन लोक को एक समय की पर्याय निगल जाये, इतना बड़ा है। आहाहा! तथापि वह द्रव्य पूरा इतना नहीं। समझ में

आया ? पूरा तत्त्व जो है, वह तो उस अनन्त पर्याय का स्वामी मैं हूँ। ज्ञानादि ऐसे अनन्त गुणों का एकरूप चैतन्य द्रव्य अखण्ड आनन्द है। आहाहा! उसकी वह शरण ले, तब धर्म होता है।

पर्याय का शरण नहीं, छह द्रव्य का नहीं, एक समय की पर्याय का नहीं। अनन्त गुण हैं, उन गुणों के भेद का शरण नहीं। शरण तो भगवान ध्रुव चैतन्यस्वरूप कायम टिकनेवाला तत्त्व, वहाँ दृष्टि दे तो कहते (हैं कि) टिकनेवाले पर दृष्टि स्थिर हो, परन्तु अस्थिर हो वहाँ दृष्टि दे तो अस्थिर में दृष्टि स्थिर नहीं होती। समझ में आया ? देखो न, है कोई शरण ? करोड़ों रुपये हों, बँगला हो, स्त्री खड़ी हो, टग-टग देखे! आहाहा! हाय! हाय! इस काया में अब कुछ नहीं। हो गया। खड़ी हुई टग-टग देखे! और सुबक-सुबक कर हाय! हाय! फिर महिलायें रोती हैं या नहीं ? वे स्वयं के लिये रोती हैं, वे कहीं इसके लिये, मर गया उसके लिये नहीं रोती। मर गया तो क्या हुआ ? कहाँ जायेगा ? देखता है कोई ?

मुमुक्षु : कहाँ गये, यह खबर नहीं पड़ती।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं गया तो है न ? यह ममता करके गया, गया वह कहाँ जाये ? भटकने की गति में गया। उसके लिये तो यह रोते हैं ? अरे भाई! तुम किस गति में गये ? अरे! हमें खबर नहीं। हाय... हाय! उसे रोते हैं कोई ? स्वार्थ के पुतले, स्वयं का स्वार्थ उससे कुछ मिलता था, वह गया, उसे रोते हैं। आहाहा! जगत में कोई शरण नहीं। सब खड़े हों तो भी क्या ?

यहाँ कहते हैं कि यह छह द्रव्य तेरे अतिरिक्त भिन्न चीज़ें हैं। वे तुझमें नहीं, इसलिए तुझे शरण नहीं। तेरी जानने की एक समय की पर्याय इतनी है। वह भी वास्तव में शरण नहीं, क्योंकि एक समय की अवस्था का शरण लेने जाये, तब तो विकल्प उठे, अस्थिर होकर दृष्टि वहाँ स्थिर नहीं हो। ऐसी अनन्त अवस्था का एक-एक गुण है। एक-एक गुण के ऊपर भेद डालकर दृष्टि करे तो भी विकल्प उठते हैं, वे कोई शरण नहीं है। समझ में आया ?

अनन्त-अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसी अनन्त शक्तियों का अस्तित्व, उसका-द्रव्य का एकरूप अस्तित्व, वह आश्रय करनेयोग्य उपादेय है। इसके लिये उसे समझना

पड़ेगा कि आत्मा कितना है। समझना पड़ेगा या नहीं इसे ? समझ में आया ? ऐसा आत्मा है कि अनन्त द्रव्य जैसा। द्रव्य, उसमें एक-एक आत्मा ले लेना। **वास्तव में सहभावी गुणों और क्रमभावी पर्यायों के अनन्यरूप से आधाररूप है।** है ? यह कायदा तो अलग प्रकार का है। यह कोई डॉक्टर-फॉक्टर और इंजेक्शन और वह कहीं यहाँ काम नहीं आते। (यह डॉक्टर का करता है न ? इसे तो अभी देरी है)। वह देरी कैसी ? इस क्षण में नहीं करे तो करेगा कब ? फिर वायदा करे, उसे वास्तव में उसकी रुचि (नहीं है)। जिसकी रुचि, उसका वायदा नहीं होता। हें ? यह देश ही ऐसा नहीं। यह तो आत्मदेश है। इस देश में धूल में अनन्त बार आया और अनन्त बार मरा और जन्मा है। आहाहा!

देखो न ? कोई शरण ? हें ? आहाहा! करमचन्दभाई ऐसे बेचारे देखो! बात करते-करते उन्हें खबर होगी कि अभी देह छूट जायेगी ? बँगला, पैसा कितने लाखों रुपये, कितने लाखों वापस! समझ में आया ? माँ, बाप, भाई। हाँ, बात करते-करते दर्द (उठा) हो गया। बैठ गया। बैठे न ? बैठने के टाईम में बैठे न ? न बैठे तो कहाँ जाये ? वह कहाँ संयोगी चीज़ शाश्वत् है ? संयोगी है। उस संयोगी का ज्ञान करनेवाला सही, परन्तु संयोगी को अपना माननेवाला, ऐसा इसका स्वभाव नहीं है। हें ? समझ में आया ?

कहते हैं, द्रव्य अर्थात् वस्तु। आत्मा भी द्रव्य है, रजकण भी-यह परमाणु पॉईन्ट इसका अन्तिम भाग टुकड़ा, वह द्रव्य है। वास्तव में साथ में रहनेवाली शक्तियाँ उसमें साथ में रहनेवाली शक्तियाँ अर्थात् गुण, देखो! साथ में रहे हुए हैं। यह स्त्री, पुत्र, घर और इज्जत कोई साथ में रहे हुए नहीं हैं। है इसका.... है वह ?

मुमुक्षु : रहे हुए हैं न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ साथ में रहे हैं ? यह पड़े अलग। सुमनभाई वहाँ भटकते हैं, और तुम यहाँ बैठे हो।

मुमुक्षु : अन्तर में साथ में है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो मेरा माना हो तो ममता साथ में है। वह चीज़ साथ में नहीं। यह तो कहते हैं। क्रमभावी पर्यायें और गुण, उनका अनन्यरूप से आधारभूत है। इसकी पर्याय इसमें है, इसके कारण से हुई है। यह ममता तो इसकी पर्याय है। समझ में आया ?

वह चीज़ इसकी नहीं। उस चीज़ का ज्ञान इसकी पर्याय में, वह पर्याय ऐसी है। क्रम-क्रम से होती पर्याय वह इसकी है। आहाहा!

पर्याय अर्थात् (क्या) समझ में आता है? अवस्था। **सहभावी गुणों और क्रमभावी पर्यायों के अनन्यरूप से आधारभूत है।** अभिन्नरूप से आधारभूत है। लो! जैसे अग्नि आधार है और उष्णता उसका गुण है-आधेय है। उसी प्रकार भगवान आत्मा के ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि गुण, वे आधेय हैं; भगवान आत्मा आधार है। उसकी क्षण-क्षण में ज्ञान, दर्शन आदि की पर्याय होती है, विकारी या अविकारी, वह भी उसकी पर्याय से द्रव्य अनन्य है और अनन्य उसका आधार है। समझ में आया?

इस पर्याय की आधारशिला तो द्रव्य है। कहो, समझ में आया इसमें? यह हीराभाई बीराभाई आधार नहीं, ऐसा इसमें कहते हैं। ऐसा कि अभी यहाँ नहीं, ऐसा कहते हैं। अभी मुम्बई है। उसके साथ बहू खड़ी थी, देखो न! और बात करती थी। बात करते-करते (देह छूट गयी)। आहाहा! खोटे कर्म हैं। शरण... शरण... कोई कहीं नहीं होता। यह पैसा भी क्या करे और डॉक्टर भी क्या करे? डॉक्टर भी भूल गया। डॉक्टर ने किसी का कुछ कहा। माँस का अमुक भाग है यह। डॉक्टरी भाषा में कुछ कहा। परन्तु नीचे गिर गया एकदम छिद्र पड़ गया। आहाहा!

भावना में आज वाँची थी, वह कुन्दकुन्दाचार्य की आती है न? बारह भावना। कोई शरण नहीं। वहाँ तो यहाँ तक लिया है। संवर भी तेरा स्वरूप नहीं, कहते हैं। वह तो एक समय की पर्याय है, ले! ऐसा कहते हैं। भावना में, हों! कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं)। आस्रव अनर्थ का कारण। पुण्य और पाप विकल्प-राग, वह विकल्प विभाव दया, दान, व्रत, भक्ति आदि राग, वह तो आस्रव है, विकार है। अनर्थ का कारण है। आहाहा!

उसमें लिखा है। परम्परा से अनर्थ का कारण है।

मुमुक्षु : आस्रव परम्परा से संवर का कारण होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं होता। पहले लिखा है जरा। वह किसे? सम्यग्दृष्टि को हेयबुद्धि से वर्तता है, इसलिए उसे परम्परा से—उसे छोड़कर सिद्ध होगा, ऐसा। ऐसा लिखकर फिर यह कहा है। समझ में आया?

आत्मा को, जिसने शुद्ध चैतन्य भगवान परमानन्द का कन्द प्रभु है, ऐसा जहाँ अन्तर अनुभव में दृष्टि हुई है, और उसे राग है, उसमें दृष्टि से पहले टाला है, अस्थिरता से टाला नहीं, वह बाद में अस्थिरता को टालकर स्थिरता करेगा ही। इसलिए उसे परम्परा कारण कहा गया है। दृष्टि से छोड़ दिया है। स्थिरता से छोड़ा नहीं। वह स्थिरता करके अस्थिरता छोड़ेगा। इसलिए उसे परम्परा से कहा है। अज्ञानी को तो राग ही मेरा है। पुण्य-दया, दान, व्रत, भक्ति मेरी है। वह तो राग, उसे आत्मा में परम्परा अनर्थ का हेतु है। अनर्थ का अर्थात् आत्मा के प्रयोजन की सिद्धि का कारण नहीं। गजब बात, भाई! समझ में आया?

देखो, वह लड़का कहाँ सो रहा है? यहाँ सोने को नहीं आया जाता। ध्यान रखना, सोने के लिये नहीं आया जाता। यह तो वहाँ घर में सोये तो कौन कहनेवाला? भाई कुछ कहे नहीं। भाई आये हैं या नहीं? परन्तु कहाँ इस समय सोये। यहाँ तो सुनना चाहिए जरा कि यह क्या है? भले न समझ में आये परन्तु कुछ कहते हैं, ऐसा तो समझ में आये न, ऐसा तो समझ में आये या नहीं। हें! कुछ हम नहीं समझते, ऐसा कहते हैं-ऐसा समझे। वह भी समझना है या नहीं? कुछ नहीं समझ में आता, ऐसा कठिन कुछ कहते हैं। ऐसा तो समझे पहले।

कहते हैं कि यह आत्मा है न, तू है न, तू अन्दर, वह तू है तो कैसा है? तो कहते हैं कि अनन्त गुण का धारक ऐसा तू है। और अनन्त पर्याय का धारक-आधार ऐसा तू है। आहाहा! यह आधार जो है, उसकी शरण ले, तब तुझे धर्म—शान्ति और मोक्ष का मार्ग प्रगट होगा। समझ में आया? वह अनन्यरूप से आधार (भूत है)।

इसलिए वर्त चुके, देखो! प्रत्येक द्रव्य में जो समय-समय में अवस्था होती है, वह वर्त चुकी भूतकाल में। पर्याय अर्थात् अवस्था, हालत, दशा। वर्त चुकी अनन्त पर्यायें, प्रत्येक आत्मा में परमाणु में वर्तते वर्तमान में वर्तती अवस्था और भविष्य में वर्तनेवाली, ऐसी पर्यायों के... पर्याय अर्थात् अवस्थायें। स्वरूप से परिणमता होने के कारण। उस पर्यायरूप स्वयं परिणमता है। भूतकाल की पर्यायरूप परिणमा, वर्तमान पर्याय-अवस्थारूप परिणमता है, होता है। भविष्य की अवस्थारूप होगा। वह स्वयं होगा। पर के कारण नहीं।

कहो, समझ में आया? भूतकाल में आत्मा या परमाणु जो अवस्था बीत गयी, उसरूप परमाणु और आत्मा स्वयं हुआ था। पर के कारण नहीं। वर्तमान में भी जो अवस्थारूप होता है, वह स्वयं आत्मा उस अवस्थारूप परिणमता है, होता है, रहता है, उपजता है। पर के कारण नहीं। और भविष्य में भी जो अवस्थायें होंगी, वे भी स्वयं आत्मा के कारण वे अवस्थायें होंगी। स्वद्रव्य के कारण होंगी, पर के कारण नहीं। आहाहा!

यह परिणमता होने के कारण, वस्तु कायम रहती होने पर भी उसकी अवस्थायें-हालत-अंश बदलते हैं। ऐसा बदलाव है, वह भी स्वयं के कारण स्वयं बदला, बदलता है और बदलेगा। दूसरे के कारण से नहीं। ऐसा उसका अस्तित्व है, ऐसा कहते हैं। वह अस्तिकाया। अस्तिकाय की व्याख्या चलती है। पहला शब्द है न? उसकी व्याख्या चलती है। 'ते च ऐव अस्तिकाया' बस। त्रिकाली भावपरिणमा, यह उसका आता है। त्रिकाली भावपरिणमा। प्रत्येक वस्तु तीनों काल में अपनी पर्यायरूप परिणमती है। समझ में आया?

अस्तिकाय और परिवर्तनलिंग काल.... एक काल नाम का द्रव्य है। अस्ति है। असंख्य कालाणु (अस्ति है) परन्तु काय नहीं। बहुत अंग इकट्ठे नहीं होते क्योंकि उनमें स्निग्धता-रूक्षता नहीं है। परमाणु इकट्ठे दिखाई दें, परन्तु ऐसे तो अन्दर भिन्न-भिन्न है। परन्तु एक-एक अवस्था उसकी एक जाति की हो २-४, ४ रूप हो। एक क्षेत्रावगाह यह जाये तो आये—जाये स्वयं के कारण से, हों! परन्तु अपने-अपने कारण से ऐसी स्निग्धता रूक्षता के कारण से परमाणु में बहुत रजकण इकट्ठे होने का व्यवहार सम्बन्ध है। कालाणु में वह नहीं, इसलिए कालाणु का परिवर्तन लिंग काल में साथ में सिद्ध किया। जड़ की पर्याय बदलती है तो बदलने के एक निमित्तरूप दूसरा काल होना चाहिए, ऐसा यहाँ तो अस्तिकाय की मुख्यता वर्णन में काल की मुख्यता नहीं, इसलिए उसके परिसर नियम द्वारा काल है, ऐसा बतलाया है। काल भी पदार्थ है। एक सम्प्रदाय में काल को नहीं मानते। कहो, समझ में आया?

जैन में दो सम्प्रदाय हैं। दिगम्बर, श्वेताम्बर। श्वेताम्बर तो काल मानते नहीं। काल वस्तु नहीं। वह तो जड़-चैतन्य की पर्याय है। वह काल है, ऐसा नहीं है। ऐसा नहीं है। वह

तो असंख्य कालाणु अनन्त गुणवाले और अनन्त पर्यायें भूत-भविष्यरूप परिणमे ऐसे। ऐसे को जानने की एक समय की पर्याय है, उतना पर्याय को स्वीकार नहीं किया। कहो, समझ में आया?

एक-एक कालाणु सहवर्ती अनन्त गुण हैं। क्रमवर्ती अनन्त पर्यायें हैं। वह प्रत्येक द्रव्य को और ऐसे असंख्य कालाणुओं को दूसरे अनन्त जीव और पुद्गल के साथ एक जीव को एक समय में जानने की इतनी ताकत है। तो इतना उसे इससे छोटी एक समय की पर्याय पूरी इतनी है, वैसी मानी नहीं। तो उसने द्रव्य भी पूरा सरीखा माना नहीं। समझ में आया? इसमें सब अन्तर पड़ा, भाई! द्रव्य में अन्तर, गुण में अन्तर, पर्याय में अन्तर। सब अन्तर पड़ा, देखो। बड़ा विवाद है।

द्रव्य में काल, ऐसा नहीं माना। अब उसकी पर्याय एक समय की है, सब काल को जानने की इतनी है, तो इतनी पर्याय को भी उसने नहीं माना। ऐसी अनन्त पर्याय है, इतनी अनन्त पर्यायवाला गुण है तो गुणवाला द्रव्य नहीं माना और ऐसे अनन्त गुणवाला द्रव्य है, वैसा द्रव्य भी नहीं माना। शशीभाई! समझ में आया? ऐसी बात।

इसलिए आचार्य महाराज, वे निर्ग्रन्थ मुनि वीतरागी सन्त थे, उन्हें जंगल में विकल्प उठा (और) शास्त्र रच गये। समझ में आया? उन्हें कुछ दूसरा हेतु नहीं था। करुणा आयी। जगत के जीव यह तत्त्व समझे और यह तत्त्व समझे बिना दुःखी होकर चार गति में भटकते हैं। जंगल में बसते छठे गुणस्थान में विकल्प में आकर शास्त्र रच गये; शास्त्र रचे गये। हें? रचे कौन? परमाणु की पर्याय तो कहा न? वह परमाणुओं की पर्याय परिणम गयी, परिणमती है और परिणमेगी। वह उसके कारण से है, दूसरे के कारण से नहीं। आहाहा! गले उतरना भारी (कठिन पड़े)। साधारण व्यक्ति तो कहेगा कि यह क्या कहते हैं इसमें? परन्तु भाई! बापू! तेरा सामर्थ्य स्वभाव कितना है! कितनी शक्तिवाला तत्त्व है। जितनी शक्तिवाला तत्त्व और जितनी शक्तिवाले गुण और जितनी शक्तिवाली पर्याय, उतनी माने तो उसे यथार्थपना कहने में आता है। इतना न माने तो विपरीत दृष्टि और विपरीत ज्ञान है, वहाँ दुःखरूप दृष्टि है। समझ में आया?

यह परिवर्तनलिंग काल भूत, वर्तमान और भावी भावोंस्वरूप परिणमता होने से

वे कहीं अनित्य नहीं हैं। अब क्या कहते हैं? हाँ, आत्मा और परमाणु समय-समय में अवस्था हो गयी, वे स्वयं से होती है, स्वयं से, होगी स्वयं से। ऐसा बदलता होने पर भी, अवस्था से पलटता होने पर भी वह कहीं पर्याय जितना अनित्य नहीं है। है न पाठ, इसमें है न देखो! नीचे पाठ है न? '**तेककालियभाव परिणहा णिच्चा**' इसका अर्थ करते हैं। समझ में आया?

पानी में तरंग उठाने पर भी उस तरंग जितना काल नहीं। पानी तो कायम रहनेवाला है। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ क्षण-क्षण में अवस्था बदलता होने पर भी वह पदार्थ स्वयं कहीं अनित्य नहीं है। उसकी अवस्था अनित्य है। समझ में आया?

जब अवस्था अनित्य है तो पूरा लोक भी अनित्य है। जब अवस्था अनित्य है, वस्तु अनित्य नहीं तो पूरा लोक भी अनित्य नहीं, नित्य है। समझ में आया? छह द्रव्यस्वरूप लोक है या नहीं? छह द्रव्य की अस्तिवाला यह जगत है। तो यह जब पर्याय भी अनित्य होने पर भी वह (तत्त्व) तो अनित्य नहीं, तो पूरी दुनिया की पर्याय पलटने पर भी वह तत्त्व जो है, वह तो अनित्य नहीं। पूरा जगत नित्य है। अनन्त पदार्थ के समूहवाला जगत पलटने पर भी वह जगत एकान्त अनित्य नहीं। समझ में आया?

भूत, वर्तमान और भावी भावों स्वरूप.... देखो! परन्तु भाव शब्द से पर्याय को लिया है। अवस्था होती है, उसे भाव गिनने में आया है। परिणमता होने से वे कोई अनित्य नहीं। क्योंकि भूत, वर्तमान और भावी भावरूप अवस्थाओं में भी, ऐसी दशाओं में भी आत्मा की हुई, होती है और होगी, ऐसी अवस्थाओं में भी; परमाणु में हुई, है और होगी – ऐसी अवस्थाओं में / दशाओं में भी प्रतिनियत स्वरूप को नहीं छोड़ते, अपना-अपना कायमी स्वरूप जो है, उसे वस्तु नहीं छोड़ती। अपना नित्यपना है, उसे नहीं छोड़ती। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए वे नित्य ही हैं।**

दोनों सिद्ध किये। त्रिकालभाव से परिणमते होने पर भी वे अनित्य नहीं। वस्तु से नित्य है। स्वरूप ही एक समय में आ गया और स्वरूप से भ्रष्ट हो जाते हैं, ऐसा नहीं। चैतन्य स्वरूप से। चैतन्यरूप से ही रहकर परिणमते हैं। परमाणु जड़ है, वह जड़ रहकर परिणमता है। इसलिए परिणमने पर भी वस्तु स्वयं कहीं अनित्य नहीं है। समझ में आया?

देखो, किस प्रकार से सिद्ध किया है। आहाहा! इस प्रकार आत्मा अनन्त अवस्थायें बीत गयी, बीत गयी न अनन्त संसार में, अनन्त भव में। वर्तमान में अनन्त गुण की अनन्त अवस्थायें वर्तती हैं। भविष्य में भी यह पर्याय का परिणमन तो कायम वर्तेगा, चालू रहेगा ही। ऐसी अवस्था का बदलना होने पर भी वस्तु स्वयं च्युत होकर अकेले परिणाम में ही आ जाये, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? यह तो समझ में आये ऐसा है या नहीं ? जीतुभाई ! यह भाषा तो सादी है। यह कहीं तुम्हारे कोलेजिया जैसी नहीं वहाँ।

हथौड़ा उठाना और मेहनत करना और पार नहीं होता। आहाहा! हथौड़ा है वहाँ तो मुफ्त का। मेहनत का विकल्प। वह हैरान होने का रास्ता। भाई! ऐसा होगा यह ? आहाहा! इन पर्यायों का आधार द्रव्य है। ऐसी यदि द्रव्य की दृष्टि हो, तब तो उस-उस पर्याय का ज्ञान भी सच्चा हो। भले राग हो। समझ में आया ?

इस पर्याय का आश्रयदाता तो आत्मा है। यहाँ अभी यह सिद्ध करना है, हों! हाँ। अभी वह सिद्ध नहीं करना। यहाँ तो वापस पर्याय का दाता द्रव्य नहीं, यह फिर सिद्ध करना हो तब दूसरी बात। वह दूसरी नम्बर का भेदज्ञान। अभी पहले का-पर से भिन्न का भान न हो, तब पर्याय का दाता द्रव्य नहीं, ऐसा भेदज्ञान तो उसे होगा नहीं।

गजब बात, भाई! ऐ कान्तिभाई! भूत, भावी और वर्तमान अवस्था में परिणमते में भी ऐसी दशाओं में भी, ऐसा। ऐसी अवस्थायें बदलने पर भी उसमें भी प्रतिनियत (अपने-अपने निश्चित) प्रतिनियत जो प्रतिनियत अपना-अपना जो निश्चय ध्रुवभाव है, उस स्वरूप को नहीं छोड़ता, इसलिए वह नित्य ही है। नित्य परिणामी वस्तु है, ऐसा सिद्ध किया। परिणामी परिणमने पर भी अकेले परिणाम में ही आता नहीं और ध्रुवपना छोड़ता नहीं, इसलिए वस्तु ध्रुव और अपरिणामी है। नित्य रहकर बदलती है।

यह बदलना स्वयं से स्वयं में है और नित्यपना भी स्वयं से स्वयं के कारण है। आहाहा! जगत के साथ तुझे कुछ सम्बन्ध नहीं है, कहते हैं, भाई! आहाहा! परन्तु ऐसा रच-पच गया मोह का मारा-प्रेरा। थोड़े बहुत पाँच-पच्चीस वर्ष जहाँ स्त्री और पुत्र यह और वह और लड़के को ऐसा हो कि यह मेरा पिता, पिता को ऐसा हो कि यह मेरा लड़का। हें ? यह शरीर हो जाये उसका ऐसा हो जाये। वह लड़का भी उसे बाप माने, लड़का यह शरीर

ऐसा माने नहीं तो आत्मा का है, ऐसा तो माने नहीं। आत्मा माने कि शरीर मैं हूँ, लो। शरीर ऐसा माने कि मैं आत्मा हूँ।

मुमुक्षु : शरीर को क्या खबर ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर को खबर नहीं। वह तो जड़-मिट्टी है। उसे खबर नहीं कि मैं कौन हूँ ? तो फिर यह शरीर कहीं आत्मा है, ऐसा माने नहीं। आत्मा है, वह शरीर है— ऐसा माने। भारी जाननेवाला, भाई ! भगवान ! तू तो जाननेवाला है न प्रभु !

यह जाननेवाला, तुझे जानने का समय नहीं, दूसरा ज्ञात हुआ वहाँ तेरा कहाँ से हो गया वह ? उसमें तो स्त्री हो, वह पति को मानती है और पति हो पत्नी मानता है। शरीर माने ? आहाहा ! वह तो जड़ है, मिट्टी है, धूल, राख। ऐसा अज्ञानी मानता है कि यह मेरे हैं परन्तु वे नहीं मानते कि मैं तेरा हूँ। गजब बात, भाई ! हें ? ठीक कहते हैं, भाई !

ऐसा कि जड़ है, वह ऐसा नहीं मानता कि मैं आत्मा का हूँ और आत्मा कहता है कि जड़ है, वह मेरा है। यह तो अनादि जड़ है, वह ऐसा नहीं मानता कि मैं आत्मा का हूँ। कहो, समझ में आया इसमें ? चैतन्यघन भगवान आत्मा वह तो ज्ञान का पुंज है। वह ज्ञानपुंज है, वह स्वयं अपने को न मानकर यह (जड़) मेरा है, यह मेरा है, यह मेरा है - ऐसा भ्रमणा से मानता है। जड़ कभी ऐसा नहीं मानता कि मैं तेरा हूँ। आहाहा ! है ? इसी प्रकार स्त्री का शरीर कभी ऐसा नहीं मानता कि मैं तेरी पत्नी हूँ, ऐसा माने ? वह आत्मा मानता है। यह सब है न ? शरीर ऐसा नहीं मानता कि मैं तेरी पत्नी हूँ। आत्मा मानता है कि मैं तेरी पत्नी हूँ। परन्तु यह कहाँ से आया यह ? क्या हुआ यह ? भारी गड़बड़। आहाहा ! दीवार को भूला।

जहाँ से निकलना चाहिए, वहाँ से निकलना तो नहीं आया फिर दीवार में भटका। इसी प्रकार राग और शरीर मेरे नहीं। राग कभी ऐसा मानता है कि मैं आत्मा का हूँ ? यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हुए - विकल्प (हुए), वह विकल्प मानता है कभी ? वह जड़, राग, अचेतन है। यह मैं चैतन्य हूँ, वह कभी मानता है मैं तेरा हूँ, तेरा हूँ, तेरा हूँ ? यह आत्मा भगवान ज्ञानस्वरूपी (है वह) राग को जानता है कि यह राग दया का हुआ, परन्तु वह मेरा ? हाँ किया। समझ में आया ?

ऐसी भ्रमणा होने पर भी उसका अस्तित्व नहीं जाता, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। पर्याय में ऐसी भ्रमणा और उस भ्रमणा का आधार द्रव्य, ऐसा होने पर भी द्रव्यपना, ध्रुवपना कहीं नहीं जाता। वह भ्रमणारूप नहीं हुआ। ऐसा कहते हैं, लो। भ्रमणा की पर्याय-अवस्था हुई परन्तु उसरूप ध्रुव नहीं होता। आहाहा! देखो, इसमें ऐसा आया। भ्रमणा ने ऐसा माना। समझ में आया? कि मैं पर का, परन्तु भ्रमणा को द्रव्य ने माना नहीं। ध्रुव ऐसा नहीं मानता कि मैं मानता हूँ। पर्याय ने माना कि मैं पर का हूँ। क्या कहा, समझ में आया? पर्याय में अवस्था ने माना कि मैं शरीर का हूँ, इसका हूँ, उसका हूँ। परन्तु उस पर्याय ने ध्रुव को नहीं माना, उसे माना परन्तु ध्रुव ने ऐसा नहीं माना कि मैं पर्याय का हूँ। ध्रुव माने भी किसका? ध्रुव में मानने का है कहाँ? ध्रुव तो कूटस्थ है। आहाहा! समझ में आया? ध्रुव नित्यानन्द प्रभु अनादि अनन्त शाश्वत् वस्तु है। शाश्वत है न! वह शाश्वत् ऐसा माने कि मैं पर्याय जितना हूँ? या मैं राग का हूँ, ऐसा माने? ऐसे धर्म में मानने का कहाँ है। आहाहा!

जैसे शरीर में मानने का नहीं है, भाई! यह तो और दूसरा आया, देखो! कि जैसे शरीर को, राग को मानने का नहीं कि मैं तेरा हूँ, वैसे ध्रुव को मानने का नहीं कि मैं राग का-पर्याय का हूँ। यह सब गड़बड़ पर्याय में, अवस्था में है। आहाहा! समझ में आया? बदलने की अवस्था ऐसा मानती है कि मैं उसका हूँ। परन्तु बदलती अवस्था ध्रुव को तो देखती नहीं। उसे खबर नहीं। ध्रुव, ऐसा न माने कि मैं पर्याय जितना हूँ या इतना हूँ। ध्रुव ऐसा नहीं जानता क्योंकि परिणमन उसमें है ही नहीं। परिणमन है, वह माने। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि ऐसा परिणमन होने पर भी वह नित्य है। अनित्य नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। बदलना होने पर भी वस्तु तो नित्य है। परमाणु भी बदलते होने पर भी नित्य है। आत्मा भी बदलता होने पर भी नित्य है। परमाणु बदलते हैं, वे ऐसा नहीं मानते कि मैं परमाणु का हूँ। क्योंकि उसमें जड़ता है। जड़ता में है? परमाणु की वह पर्याय ऐसा मानती है कि मैं आत्मा का हूँ? मीठे की अवस्था जड़ की है। मीठी-मीठी, शक्कर की अवस्था जड़ की है। वह ऐसा माने कि मैं यह आत्मा ऐसा है, उसकी मैं मीठी अवस्था हूँ, ऐसा माने? यह मूढ़ होकर अपने को न जानकर मीठी अवस्था को जाने (वह मूढ़ है)। मुझे मीठा लगा।

मुमुक्षु : किसे मीठा लगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी को लगा, वह तो (ज्ञान) जानता है मीठा तो। यह मीठा है, यह तो ज्ञान ने जाना है। मीठी अवस्था तो जड़ की है। जड़ की अवस्था ज्ञान में आ गयी है? जड़ की अवस्था हो तो ज्ञान जड़ हो जाये। समझ में आया?

शक्कर की मीठी अवस्था-पर्याय, (उसे) शक्कर जानती है? तथा मीठी अवस्था आत्मा के ज्ञान में ज्ञात हुई कि यह मीठी है। आत्मा के ज्ञान में मीठापन आया है? वह तो यह मीठी है, यह आत्मा ने अपने अस्तित्व में जाना। वह तो उसका स्व-परप्रकाशक जानने का अस्तित्व है। स्व को जानना और पर को जानना, ऐसी सत्तावाला पदार्थ-तत्त्व है। इसलिए स्व को और पर को जाने, वह तो उसका स्वभाव है, परन्तु मीठे का स्वभाव है? मैं तेरा हूँ। तू मीठा हो गया, तू मीठा हो गया। मैं मीठा हुआ तो तू मीठा हो गया?

इसने भ्रमणा खड़ी की है। चरपरा हो गया, मीठा हो गया, क्या परन्तु? आज की मिठास वाह! दूधपाक हो, लो न बर्फी हो तो कहे गजब मीठास! ओहोहो! डकार आवे न डकार। डकार, वह जड़ है। वह जड़ जानता नहीं कि मैं ऐसा हूँ। हें? आहाहा! वे बर्फी के परमाणु हैं, वे जड़ हैं, धूल हैं, अचेतन है। वे जानते हैं कि मैं इसमें यह... यह... यह... यह खाता है और मीठास वह मुझसे होती है, ऐसा जानता है? भगवान आत्मा तो ज्ञानस्वरूप ध्रुव रहकर ज्ञान की पर्यायरूप परिणमता है। उस परिणमने में ऐसा नहीं आता कि मीठी अवस्था वह मैं हूँ और उसरूप परिणमता हूँ। ऐसा है कभी? उसके अस्तित्व में तो यह पर्यायरूप परिणमना, वह अस्तित्व है। भूतकाल में, वर्तमान में और भविष्य में ज्ञानगुण का परिणमना, ज्ञान की अवस्थारूप होकर रहना-परिणमना, परिणमन परिणमेगा ऐसा उसका अस्तित्व है। परन्तु ज्ञान की अवस्था का दयारूप होकर परिणमना कभी है? भ्रमणा है, भ्रमणा।

मैं आनन्दकन्द मीठा हूँ, उसका तो उसे भान नहीं। यह शक्कर मीठी है। धूल में भी नहीं अब सुन न! शरीर सुन्दर-अच्छा लगे जहाँ। सुकोमल नाक, आँखें ऐसे-ऐसे... ओहोहो! वह बेचारी चीज़ वह आती है न भाई उसमें नहीं? सर्वविशुद्ध अधिकार में। वे नहीं कहते हैं कि तू मुझे जानने के लिये खड़ा रह। आती है सब बात शास्त्र में है, कहते

हैं। समझ में आया? यह स्पर्श इन्द्रिय ऐसा नहीं कहती कि तू मुझे स्पर्श, जानने के लिये खड़ा रह। और तेरा ज्ञान भी तुझसे हटकर वहाँ स्पर्शकर जानने जाता नहीं। तेरा ज्ञान तो तुझमें रहकर उसे स्पर्श किये बिना जानता है। आता है न? सब बात, समयसार तो बड़ा समुद्र है। ओहोहो! यह स्पर्श हो तो इसे कोमल लगे। कहते हैं कि कोमल अवस्था तो जड़ की है। इस शरीर की, वह शरीर की अवस्था ऐसा कहती है कि तू मुझे शरीर अच्छा है, ऐसा जानने में रुक? ऐसा कहती है? वह तो जड़ है। और ज्ञान अपने प्रदेश के क्षेत्र में रहा हुआ परिणमन, उसे छोड़कर ऐसे परक्षेत्र में जाता है? स्पर्श, स्पर्श के क्षेत्र में, उस स्पर्श के ठण्डे-गर्म क्षेत्र में वह ज्ञानपर्याय जाती है? वह तो अपने क्षेत्र में है। अपने क्षेत्र में वह तो यहाँ सिद्ध करते हैं। पर्याय का, गुण का, उसका अस्तित्व वह तो अपने में है। समझ में आया?

अरे! लो, वे नित्य ही हैं। भाई! नित्य ही हैं, और वापस अनित्य हैं। और नित्य है। है, ऐसा ही है। कायम टिकने की अपेक्षा से नित्य है, बदलने की अपेक्षा से अनित्य है। इसी प्रकार यहाँ टिकने की अपेक्षा से कदाचित् नित्य है और कदाचित् अनित्य है। ऐसा है? और बदलने की अपेक्षा से कदाचित् नित्य और कदाचित् अनित्य, ऐसा नहीं। बदलने की अपेक्षा से तो अनित्य ही है और टिकने की अपेक्षा से तो नित्य ही है। ऐसा तेरा भाव तुझमें तेरे कारण से दोनों हैं। ऐसा अस्तित्व उत्पादव्ययध्रुववाला, ऐसे अस्तित्वमयवाला तू है। दूसरे को कुछ सम्बन्ध नहीं है।

धूल ऐसे अन्दर फिरा करे तो उसके घर में। कहीं तेरे घर में वह नहीं आती। यह पैसा तो आता होगा या नहीं घर में? अभी जहाँ जाना पड़ेगा यदि 'थाणा' में। आठ दिन तो सम्हाल करे न बारह महीने। ऐई! यह भी वहाँ जाता है तो जाता होगा दुकान में, हों! जाये नहीं, ऐसा नहीं कुछ। कुछ कहता था दो-दो घण्टे जाये। होशियार है, देखा!

मुमुक्षु : फुरसत में बैठकर क्या करे थोड़ा सा पाप तो करे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ८१ में थे प्रेमचन्द डोसाभाई, अकेला व्यक्ति था बहुत सज्जन, फिर उसने तेरह हजार रुपये रोकड़ दिये। तब तो तेरह हजार रोकड़ अर्थात् बहुत कहलाये न? (संवत्) १९८१ की बात है। १९ और २५ = ४४ वर्ष हुए न? फुरसत में बैठे, हम

क्या करें – ऐसा उसने कहा। मैंने कहा कि तुम यहाँ अकेले व्यक्ति, विवाह किया नहीं, स्त्री, पुत्र नहीं। तेरह हजार रोकड़ रुपये अकेले पड़े रोकड़। और महीने में दस रुपये का भोजन अच्छा खाये, हों! तब तो छह रुपये का होता था, परन्तु अच्छा करके खाये तो दस रुपये। अब इसमें तुम्हारे कम नहीं हैं, ऐसा कहे, फुरसत में बैठे, क्या करना? सूत की पेटी का धन्धा करता था। सूत की, क्या कहलाता है? हरिजनों को दे अमासनी आवे हरिजनों को दे। लावे और दे। कहा, इसकी अपेक्षा लम्बा पैर करके अच्छा छुरो ले लो हाथ में। उसे मैंने १९८१ में ऐसा कहा। परन्तु फुरसत में बैठे, क्या करना तब? कहा, छुरो लेकर बैठना। यही कहते हैं न? क्या करें? वह यह शब्द कहे थे, हों! शब्दश: शब्द। नहीं तो उसे कुछ कमाने की आवश्यकता नहीं थी। ६०–६५ वर्ष हुए होंगे। तेरह हजार रोकड़ पड़े थे और उसका ब्याज आवे इतना कुछ खाये नहीं। तो भी कहे, तब क्या करना? फुरसत में बैठे क्या करना? वाँचन करना, विचार करने में समय नहीं मिलता? उसमें कोई अपने को बहुत समझ में नहीं आता। तुम यहाँ आओ तब सुनते हैं। इसलिए तो ऐसा कहा। छुरो लेकर। निवृत्त होकर राग–द्वेष करके जीव को कुचल डालते हो। ऐई! सच्ची बात है, भगवानजीभाई! हमारे पास तो बहुत प्रकार के लोग आते हैं न? फिर उताशणी में करे कुछ। पैसे दे, गोबर की खली हरा और डाले ऐसा करे। हीरा गोबर की खली डाले न उस उताशणी में सुलगाने में। फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा में। कोई पैसा दे। सुखा डालना पहले थे। लकड़ियाँ सूखी डालना। जलावे और उसमें ही पैसा दे। खर्च तो हुआ हो न! ऐसा करे परन्तु ऐसा करने की अपेक्षा वाँचन करके विचार करे, परन्तु वाँचन में सूझ तो पड़ती नहीं। अब तुम्हारे ऐसा है?

मुमुक्षु : ऐसा हो तो भी आपको कहा जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बहुत वर्ष हुए, चलता है न? अब कहाँ का समझ में आये?

यहाँ तो कहते हैं अपने स्वरूप को कोई छोड़ते नहीं। अरे! पररूप तो होते नहीं परन्तु उसकी एक पर्यायरूप होते नहीं। आहाहा! ऐसा है यहाँ तो। आहाहा! परन्तु क्या शैली! भगवान आत्मा, वह शरीर, परमाणु पैसा आदि जड़ की अवस्थारूप तो होता नहीं,

कभी हुआ नहीं, हुआ नहीं, होगा नहीं। परन्तु उसकी एक समय की पर्यायरूप परिणमा, परन्तु उसरूप ध्रुव होता नहीं। आहाहा!

ऐसा उसका अस्तित्व सत्ता का-अस्तित्व का यह दो अंशवाला, तीनों अंशवाला है। अभी कहेंगे कहीं, नहीं? त्रेवड़ी-त्रेवड़ी कुछ कहेंगे न? कहीं है त्रेवड़ी दूसरे में है। आठवें में है नहीं? आठवें में है। त्रेवड़ी वस्तु है। त्रिलक्षण त्रेवड़ी कहीं है। यह क्या है, गुजराती है न? इक्कीस पृष्ठ। हाँ, बराबर यह। त्रेवड़ी बस, यह। 'इस प्रकार एक ही काल में परमार्थ से त्रेवड़ी अवस्था को धरती वस्तु सत् जानना।' देखो न उत्पाद, व्यय और ध्रुव। उत्पाद, व्यय और ध्रुव, भाई!

द्रव्य, गुण और पर्याय नहीं। उत्पाद, व्यय और ध्रुव, तीन अंश। समझ में आया? वस्तु ही ऐसी है आत्मा, परमाणु। समय-समय का नया उत्पाद पर्याय का होता है, पुरानी पर्याय का व्यय होता है और ध्रुव रहता है। त्रेवड़ी स्वयं अस्तित्वरूप त्रेवड़ी स्वयं चीज़ इतनी है। समझ में आया? लो! भारी संक्षिप्त में बहुत डाला है। अब फिर एक पैरेग्राफ ऐसा है कि काल को सिद्ध करते हैं। उसका कुछ नहीं। समझ में आया? पंचास्तिकाय का वर्णन, तथापि परिवर्तन लिंग कहकर बताया, वह तो उसका मुख्यपना नहीं, इसलिए इस प्रकार से काल को सिद्ध किया। बस इतना।

अब सातवीं गाथा, सातवीं।

अण्णोण्णं पविसंता देंता ओगासमण्णमण्णस्स।
मेलंता वि य णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति।।७।।

परस्पर मिलते रहें अरु परस्पर अवकाश दें।
जल-दूध वत् मिलते हुए छोड़ें न स्व-स्व भाव को ।।७ ।।

आहाहा! यह गाथा आलापपद्धति में आती है। आलापपद्धति में।

टीका :- यहाँ छह द्रव्यों को.... छह द्रव्य जाति से छह, संख्या से अनन्त। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु रजकण वह अनन्त है। असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और एक आकाश, ऐसी जगत में छह चीज़ अनादि-अनन्त हैं। **छह द्रव्यों को परस्पर अत्यन्त संकर होने पर भी....** एक जगह इकट्ठे दिखने पर भी। है? मिलन मिलाप

अन्योन्य अवगाहरूप देखो, अन्दर लिखा है। कोष्ठक में, अन्योन्य अवगाहरूप मिश्रितपना।

जहाँ आत्मा है, वहाँ अनन्त आत्मायें भी यहाँ है दूसरे। अन्दर दूसरे सूक्ष्म जीव, परन्तु वे एक जगह होने पर भी एक-दूसरेरूप नहीं होते। अपनापना छोड़ते नहीं और एक जगह रहते हैं, तथापि अपनी-अपनी जाति को भिन्न रखकर रहते हैं। ओहो! यह घर में स्त्री-पुत्र रहते हैं, वे तो कहीं रह गये। वह तो स्थूल रह गये। यह आत्मा है असंख्य प्रदेशी चिद्घन, अस्तित्व उसी स्थान में, उसी क्षेत्र में दूसरे अनन्त सूक्ष्म जीव भी हैं। निगोद के, पृथ्वी, अग्नि, वायु, प्रत्येक (वनस्पति) के और निगोद के और इतने में कालाणु असंख्य हैं। और धर्मास्ति के असंख्य प्रदेश हैं, अधर्मास्ति के हैं, आकाश के हैं। ऐसे एक जगह परस्पर अत्यन्त अवगाह से होने पर भी वे प्रतिनियत दूसरे आत्मा साथ में वहाँ सूक्ष्म है। परन्तु वह स्वयं आत्मा अपने स्वरूप का परिणमन और ध्रुवपना छोड़कर और पर आत्मारूप नहीं होते। कहो, बराबर है?

सिद्ध भगवान जहाँ विराजते हैं न सिद्ध भगवान। आत्मा की आनन्द पूर्ण दशा प्रगट हुई अर्थात् आत्मा ऊँचा हो जाता है। धुँआ जैसे ऊँचा जाता है, वैसे उसमें से तथा फली में से जैसे मूँग का दाना फली फटे और जैसे मूँग का दाना ऊँचा जाता है, वैसे यह पूर्ण आत्मा का स्वरूप आनन्द का भान हुआ, उस समय यह प्रस्फुटित होकर एकदम आत्मा ऊँचा जाता है। जहाँ अनन्त परमात्मा विराजते हैं, एक जगह एक क्षेत्र में मिलन होने पर भी एक सिद्ध दूसरे सिद्धरूप नहीं होते। आहाहा!

इतना अस्तित्व है। जहाँ सिद्ध भगवान हैं, वहाँ निगोद के जीव हैं। निगोद के जीव की पर्याय में दुःख का वेदन है। उनकी पर्याय में अनन्त आनन्द का वेदन है। एक जगह रहने पर भी अपने-अपने अस्तित्व से दूसरे के पर्याय के अस्तित्व में भी नहीं जाते। समझ में आया? 'परस्पर अत्यन्त संकर' भाषा ऐसी प्रयोग की है। अवगाह है न नजदीक एकदम नजदीक, हों! यह आत्मा के प्रदेश यहाँ हैं, वहाँ यह परमाणु है जड़।

यह मिट्टी यहाँ है और आत्मा भी वहाँ है, यहाँ का यहाँ सब है। आत्मा है, वह अपने अस्तित्व में भिन्न है और यह परमाणु हैं, वे उनके अस्तित्व में आत्मा से भिन्न हैं। यह अँगुली है, देखो जड़, आत्मा है अन्दर है तो आत्मा और परमाणु एक जगह होने पर भी

आत्मा अपने अस्तित्व को छोड़कर परमाणु की पर्याय के अस्तित्वरूप नहीं होता। और यह परमाणु जो है, वह नित्य रहकर बदलते हैं, उस पर्याय में रहने पर भी, एक जगह रहने पर भी उन परमाणु की पर्याय आत्मा के ज्ञान की पर्यायरूप कभी नहीं होती। बराबर है यह ? कहो समझ में आया या नहीं इसमें ? तो अब यहाँ स्त्री-पुत्र तो कहीं दूर रह गये। उनका घर और उनके वस्त्र और उनके कपड़े और उनके गहने कहीं रह गये।

एक जगह रहने पर भी एक को अपनी सत्ता की अस्ति उत्पाद, व्यय और ध्रुव की, उसे छोड़कर दूसरे के परमाणु या आत्मा की पर्याय के उत्पादरूप कोई नहीं होता। आहाहा! कर्म का उदय जड़ है। कर्म के रजकण जड़ हैं न ? उनकी पर्याय उदय होकर पकती है, तो उसकी पर्याय का अस्तित्व जड़ में है। वह पर्याय छोड़कर जीव को राग करावे या ज्ञान करावे, ऐसा उसमें है नहीं। बराबर होगा यह ? कर्म राग करावे या नहीं ?

मुमुक्षु : वह तो स्वयं करे तो कर्म निमित्त कहलाये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह निमित्त तो परवस्तु हो गयी। कहते हैं, कर्म के कारण हमारे कारण राग हो, कर्म के कारण हमारे दोष हो, यह यहाँ इनकार करते हैं। एक जगह परस्पर अत्यन्त संकररूप इकट्ठे रहने पर भी कोई कोई अपने निश्चित स्वरूप से च्युत नहीं होते, ऐसा वहाँ कहा है। भले आत्मा स्वरूप के भान बिना राग की पर्यायरूप परिणमे या मिथ्यारूप भ्रमणारूप परिणमे, परन्तु वह अपनी पर्याय में कर्म का अवगाहन, उसी क्षेत्र में होने पर भी, अपनी पर्याय पर को स्पर्श नहीं करती, पररूप नहीं होती और कर्म की पर्याय का अस्तित्व रागरूप और मिथ्यात्वरूप नहीं होता। आहाहा!

कर्म का बड़ा विवाद है। यही है न ? उदय आवे, तब करना ही पड़े, होना ही पड़े फिर राग-द्वेष हो, उसके कारण से भी राग-द्वेष को अपना नहीं मानना, ऐसा कहते हैं। होते हैं उसके कारण से परन्तु राग-द्वेष को अपने मानना, वह विकार कर्म का है और मानना, वह इसकी भूल है, ऐसा। समझ में आया ? परन्तु ऐसा है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। राग-द्वेष और विकार होता है जीव में, वह स्वयं भूलकर करता है। अपने अस्तित्व में करता है।

उसके अस्तित्व के क्षेत्र में कर्म के रजकणों का अस्तित्व होने पर भी स्वयं अपनी पर्याय स्वरूप से हटकर और कर्म के उदय की पर्यायरूप नहीं होता। और कर्म के उदय

की पर्याय अपने स्वरूप से हटकर जीव को राग करावे, राग का अस्तित्व करावे, ऐसा है नहीं। यह तो सब जैनदर्शन उड़ जायेगा, कर्म ही कर्म बाँधे जैन में तो ऐसा कहते हैं। हें? ऐसा कहते हैं न? कर्म राग है। धूल भी राग नहीं, सुन न! तुझे खबर नहीं।

जैन तो कर्म को माननेवाले, कर्म को माननेवाले जैन? किसने कहा तुझे? जैन तो आत्मा अखण्ड आनन्द प्रभु आत्मा है, ऐसे राग और अज्ञान को जीतकर अपने स्वरूप को माने, उसे हम जैन कहते हैं। यह कर्म से माननेवाले तो जड़ हैं। जैन की पहिचान यह। कर्म से माने, कर्म से होता है, दूसरे ईश्वर से होता है, ऐसा मानते हैं, यह कर्म से होता है—ऐसा मानता है। उनका ईश्वर चैतन्य बेचारा। उसे करे। इसका ईश्वर जड़। जड़ सब करे। उनसे मूढ़ हुआ यह तो। ऐसा है नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं।

भगवान आत्मा अपने आनन्दस्वरूप को भूलकर और अपनी अवस्था में-दशा में राग-द्वेष-मिथ्यात्व करता है। वह उसके उत्पाद-व्यय का अस्तित्व उसमें है। और एक जगह कर्म रहने पर भी कर्म की अवस्था को यह राग-द्वेष कराता नहीं है। कहो निकलेगा या नहीं इसमें अभी। ऐ वजुभाई! निकलेगा। आहाहा!

छह द्रव्यों को परस्पर मांहोमांहे। मांहो, देखा न? आत्मा और शरीर को, शरीर और आत्मा को, आत्मा और कर्म को, कर्म और आत्मा को, ऐसा परस्पर अत्यन्त एकमेक अवगाह मिश्रितपना; अवगाहरूप से मिश्रित, हों! वस्तु का यथार्थरूप से मिश्रितपना, ऐसा नहीं। एक जगह बहुत पदार्थ रहनेरूप मिश्रित गिनने में आया है।

वे अपने-अपने निश्चित स्वरूप से च्युत नहीं होते, ऐसा भगवान ने कहा है। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। **इसीलिए (-अपने-अपने स्वभाव से च्युत नहीं होते इसीलिए), परिणामवाले होने पर भी....** देखो! प्रत्येक आत्मा और परमाणु बदलने की पर्याय-अवस्थावाले होने पर भी **वे नित्य हैं — ऐसा पहले (छठवीं गाथा में) कहा था; और इसीलिए वे एकत्व को प्राप्त नहीं होते;....** ऐसा। यह सिद्ध किया। इसीलिए किसी तत्त्व की कोई पर्याय किसी पर्यायरूप हो, ऐसा नहीं होता। **इसीलिए वे एकत्व को प्राप्त नहीं होते।** समझ में आया?

कर्म के रजकण कर्मरूप हैं, आत्मा, आत्मारूप है, शरीर शरीररूप है। भले हों एक

जगह में। परन्तु कोई एक-दूसरेपने को प्राप्त हो, ऐसा वस्तु में नहीं है। अज्ञानी मान बैठे, इसलिए वस्तु कहीं ऐसी हो जाये? कर्म मेरे, शरीर मेरा। यहाँ तो कहते हैं कि मेरा कहाँ से होगा? उसके अस्तित्व में रहा हुआ है वह और तेरे अस्तित्व में तू रहा हुआ है। कोई अपनी सत्ता को छोड़कर, पर अस्तित्वरूप नहीं होता। मेरा, कहाँ से आया तेरा?

मेरा, कहाँ से आया तेरा। **परिणामवाले होने पर भी वे नित्य हैं—ऐसा पहले (छठवीं गाथा में) कहा था; और इसीलिए वे एकत्व को प्राप्त नहीं होते;....** आत्मा और कर्म एकक्षेत्र में रहे होने पर भी एकपना एक मिटकर दो हो, दूसरेरूप हो – ऐसा कभी नहीं होता। बराबर है? आहाहा!

अब यहाँ कर्म का डाला है, भाई! देखो! बहुत ही विवाद जगत को बाधक है न, इसलिए यह डाला। **'मेलंता वि य णिचं सगं सभावं ण विजहंति'** जीव और कर्म का व्यवहारनय के कथन से एकपना है। व्यवहारनय के कथन से। तो भी वे एक-दूसरे के स्वरूप को ग्रहण नहीं करते। यह सिद्धान्त। कर्म का उदय राग को नहीं करता और राग का उदय कर्म के उदय को नहीं पकड़ता। आहाहा! देखो, आचार्य ने भी यह डाला। स्वयं इन अमृतचन्द्राचार्यदेव ने। दूसरी बात की विपरीतता घुस गयी है। यह कर्म का एक जगह है न, इसलिए यह डाल। मानों कि एक आत्मा दूसरे आत्मारूप होता नहीं, दूसरा आत्मा इस रूप होता नहीं, यह आत्मा शरीररूप होता नहीं। परन्तु आत्मा कर्म की अवस्थारूप होता नहीं। और कर्म की अवस्था आत्मा के रागरूप होती नहीं। राग भिन्न है, कर्म की अवस्था भिन्न है। दोनों जड़ हैं। आहाहा!

यह गोम्मटसार का बड़ा स्पष्टीकरण। जीव और कर्म एक-दूसरे के स्वरूप को ग्रहण नहीं करते। कर्म की अवस्था जीव के ज्ञान को पकड़ती नहीं, राग को पकड़ती नहीं और राग तथा ज्ञान जीव के उदय की अवस्था को पकड़ता नहीं। अपनी-अपनी अवस्था में रहे हुए अपनी सत्ता के स्वीकार में हैं। पर की सत्ता का स्वीकार इसमें नहीं है और इसकी सत्ता का स्वीकार पर में नहीं है। ऐसी भिन्नता वस्तु की है, वैसा उसका ज्ञान करे, तो पर से पृथक् होकर, फिर राग से पृथक् होकर आत्मा का अनुभव करे। समझ में आया? और आत्मा का अनुभव करना, इसका नाम धर्म है। बाकी धरम-बरम दूसरी कोई चीज़ है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

धारावाही प्रवचन नं. ११ (प्रवचन नं. १०), गाथा-८
दिनांक - २४-११-१९६९, कार्तिक कृष्ण १, सोमवार

पंचास्तिकाय, आठवीं गाथा—पंचास्तिकाय का स्वरूप कहते हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और जीव तथा पुद्गल। पाँच अस्तिकाय हैं, और काल है, अस्ति है परन्तु काय नहीं। उसका स्वतन्त्र स्वरूप कैसा है, उसकी बात करते हैं। गाथा आठवीं।

सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया।
भंगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का।।८।।

इसमें नहीं, नहीं पीछे है। है या नहीं ? हिन्दी नहीं इसमें गुजराती। मिल गया ? हें ? इसमें हिन्दी है।

देखो, इसका अन्वयार्थ—सत्ता यहाँ वस्तु नहीं ली, सत्ता ली है। फिर दृष्टान्त में वस्तु सिद्ध करके सत्ता का सिद्धान्त सिद्ध करेंगे। प्रत्येक पदार्थ सत्ता अर्थात् अस्तित्व गुणवाला है। है न, टीका में है। यहाँ अस्तित्व का स्वरूप कहा है। है न टीका ? यहाँ अस्तित्व का स्वरूप कहा है।

प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु में अस्तित्व अर्थात् होनापना-सत्ता नाम का गुण, उसे यहाँ सिद्ध किया है। वह सत्ता अपने से है। अन्वयार्थ में देखो। **सत्ता उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक एक, सर्वपदार्थस्थित, सविश्वरूप, अनन्तपर्यायमय और सप्रतिपक्ष है।** जरा सूक्ष्म बात है। आता है, बहुत सब जगह। यह शब्द सब पंचाध्यायी में लिये हैं। पंचाध्यायी में से इस प्रकार से लिये हैं। पंचाध्यायी में। पंचाध्यायी है न ?

देखो टीका—**अस्तित्व अर्थात् सत्ता नामक सत् का भाव अर्थात् सत्त्व।** आत्मा में अस्तित्व नाम का गुण है। ऐसे परमाणु में अस्तित्व नाम का—सत्ता नाम का गुण है। वह स्वयं से है। यह यहाँ सिद्ध करना है। वह पर से है, ऐसी कोई बात नहीं है। अस्तित्व अर्थात् सत्ता अर्थात् सत् का भाव सत् अर्थात् वस्तु, वस्तु आत्मा, परमाणु आदि छह द्रव्य, उनमें अस्तित्व अर्थात् सत्। सत्ता अर्थात् सत् का भाव। क्या कहा ? वस्तु जो सत् है, वस्तु जो सत् है, उसकी सत्ता, उसका भाव है। वस्तु, वह भाववान है, वस्तु जो भाववान है, तो सत्ता उसका भाव है। सूक्ष्म है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : वस्तु भाववान और सत्ता भाव और मजे की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्म मजा की बात है। बाजार में कहीं बिके यह दाना बाजार में? वस्तु जो आत्मा है आत्मा, वह वस्तु, वह सत् और उसकी सत्ता उसका भाव। सत् का सत्व, सत् का सत्व, भाववान का भाव। समझ में आया? अस्तित्व सत्ता अर्थात् सत् भगवान आत्मा सत् है, परमाणु भी सत् है। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल भी सत् है।

यह सत् का सत्ता नाम का गुण है। सत्ता भाव है और सत् भाववान है। आहाहा! यह वस्तु का स्वरूप ऐसा है, यह सिद्ध करते हैं। उसका सत्तापन पर से नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु का सत्पना-सत्पना सत् वस्तु की सत्ता का भाव स्वयं से है। किसी ईश्वर से है या दूसरी चीज़ से उसका (भाव) है, वैसा है नहीं। देखो, दृष्टान्त देते हैं। सिद्ध करना है अस्तित्व गुण। सत्ता नाम का गुण-भाव को सिद्ध करना है, परन्तु भाववान को सिद्ध करके भाव को सिद्ध करेंगे। भाववान वस्तु है, उसका सत्ता भाव है, उस भाववान को सिद्ध करके जैसा भाववान में है, वैसा भाव में है। जादवजीभाई! यह तो बहुत सूक्ष्म पड़ता है। यह समझना पड़ेगा या नहीं लोगों को? सब वे रुपये में और उसमें रचपच गये हैं। यह क्या चीज़ है? आत्मा वस्तु है सत्, सत् और उसका सत्ता नाम का गुण है। वस्तु ऐसी है तो सत्ता भी ऐसी है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? विद्यमान मात्र वस्तु, देखो! सत्ता का अर्थ है नीचे, देखो! सत्त्व, सत्त्व सत्पना, सत्त्व अर्थात् सत्पना। सत्पना अर्थात् सत्ता, ऐसा। अस्तित्वपना, विद्यमानपना, अस्तित्व का भाव, 'है' ऐसा भाव, 'है' ऐसा भाव। भगवान आत्मा और यह परमाणु एक एक में 'है'। 'है' ऐसा भाव। और सत् वस्तु उसका 'है' ऐसा भाव। 'है' ऐसा गुण। सत् तो गुणवान विद्यमान मात्र वस्तु। अब पहले वस्तु सिद्ध करेंगे।

आत्मा वस्तु है और यह परमाणु भी वस्तु है। धर्मास्तिकाय एक पदार्थ है चौदह राजू लोक में। एक अधर्मास्तिकाय है, एक आकाश है और काल असंख्य हैं। **विद्यमानमात्र वस्तु न तो सर्वथा नित्यरूप होती है और....** अस्ति धरानेवाली वस्तु, अस्ति रखनेवाली चीज़, न तो सर्वथा नित्यरूप रहती है, और **न सर्वथा क्षणिकरूप होती है।** यह तो एकदम लॉजिक से सिद्ध करते हैं। समझ में आया? पहले क्या शब्द लिया, देखो!

विद्यमान मात्र वस्तु अर्थात्, जो 'है', ऐसी सब चीज़ें। अनन्त आत्मा हैं, अनन्त परमाणु हैं, असंख्य कालाणु हैं, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, आकाश एक-एक है। ऐसी छह वस्तु जाति, संख्या अनन्त। तो विद्यमान मात्र वस्तु अस्ति धरानेवाली मात्र वस्तु। किसकी बहियों में कुछ आता नहीं। हें! बाबूभाई, आता है? झवेरी बाजार में आवे नहीं, कहीं नहीं आवे। अर्थात् कहीं ऐई! थाणा में आवे वहाँ, जाओगे वहाँ आवे कुछ? बहियों में नहीं होगा कहीं।

यहाँ तो वस्तु सिद्ध करते हैं। परमेश्वर सर्वज्ञ की वाणी में जैसी वस्तु आयी है, वैसी वस्तु की सत्ता सिद्ध करते हैं। वस्तु जितनी विद्यमान मात्र पदार्थ है, अस्ति धरानेवाले जितनी (जैसी) चीज़ है, उतनी (वैसी) चीज़ न तो सर्वथा नित्यरूप होती है, अस्ति धारक शब्द आता है न हिन्दी में, आता है न? हयाति। हें? मौजूदगी... मौजूदगी... मौजूदगी। जो चीज़ मौजूदगीरूप है। समझ में आया?

यह सब ऐसी नहीं कि सर्वथा नित्यरूप होती है, और सर्वथा क्षणिकरूप हो, ऐसी भी नहीं। लो! वेदान्त कहता है, एकान्त नित्य है। ऐसा नहीं है। और बौद्ध कहते हैं क्षणिक है। ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? एकान्त नित्य ही हो तो कार्य नहीं हो सकता। एकान्त क्षणिक हो तो किसके आधार से वह कार्य-पर्याय होती है? तो कहते हैं, विद्यमान मात्र वस्तु। यहाँ से शुरु किया है, देखो! है? सिद्ध करनी है तो सत्ता, हों! अस्तित्वगुण सिद्ध करना है। परन्तु अस्तित्वगुणवाला जो पदार्थ है, वह पदार्थ ऐसा है, ऐसा उसका सत्ता नाम का गुण भी ऐसा है। आहाहा!

सर्वथा नित्यवस्तु को वास्तव में क्रमभावी भावों का अभाव होने से.... क्या कहते हैं अब? विद्यमान मात्र वस्तु जितनी है, 'है', उतनी सब वस्तु सर्वथा नित्य भी नहीं है और सर्वथा क्षणिक-अनित्य भी नहीं है। क्यों? क्योंकि सर्वथा नित्य वस्तु को वास्तव में क्रमभावी भावों का अभाव होने से यदि सर्वथा नित्य हो तो क्रम-क्रम से होनेवाले कार्य बिना विकार कहाँ से होगा? बदलना, पलटना होगा नहीं। एकान्त नित्य वस्तु हो तो पलटना—क्रम-क्रम से कार्य होने का अभाव होगा।

न्याय समझ में आता है? एकान्त वस्तु यदि विद्यमान वस्तु है, वह सर्वथा यदि

नित्य ही हो तो क्रम-क्रम से कार्य होता है, उसके अभाव में वह नित्य सिद्ध नहीं होता, समझ में आया ? क्योंकि नित्य को तो क्रम-क्रम से होती पर्याय सिद्ध करती है। समझ में आया या नहीं ? ऐ अतुलभाई ! गजब, यह तो साधारण बात है यह। यह वह तुम्हारे प्रोफेसर और वे सब बोलें, उसमें तो समझने जैसा होता है।

यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने जो छह द्रव्य, पंचास्तिकाय सर्वज्ञ पद में देखे, उनका अस्तित्व नाम का गुण कैसा है, तो अस्तित्वगुण में भी तीन सिद्ध करेंगे। त्रेवड़ी कहते हैं न, अपने तीन गुणी, तीन गुणी, उसमें महा सिद्धान्त है। जो वस्तु विद्यमान है, उस नित्य वस्तु को यदि सर्वथा मानो तो क्रमभावी अवस्थाओं का अभाव होने से क्रम-क्रम से अवस्था-हालत न होने से उसमें विकार कहाँ से होगा ? विकार अर्थात् विशेष से दशा कार्य कहाँ से होगा ? लो, यहाँ विकार कहते हैं। विकार का अर्थ विभाव और अशुद्धता, ऐसा यहाँ नहीं लेना। यहाँ तो (विकार का अर्थ) विशेष कार्य।

आता है न ? जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में आता है। गुण-पर्याय किसे कहते हैं ? यह आता है ? भूल गये होंगे। पर्याय किसे कहते हैं ? गुण के विकार को, गुण के विकार को। यह जीतु नहीं बोला, इसको नहीं आया होगा। कहाँ गयी तुम्हारी ज्योति ? गयी ? कहो, समझ में आया ? गुण के विकार को पर्याय कहते हैं।

जैन सिद्धान्त प्रवेशिका। बरैया गोपालदास। गोपालदास, खबर है न ? जैन सिद्धान्त प्रवेशिका उनकी है न ? पर्याय किसे कहते हैं ? गुण के विकार को पर्याय कहते हैं। अर्थात् गुण के विशेष कार्य को पर्याय कहते हैं। यह तो सीधी भाषा बहुत सादी है।

मुमुक्षु : विषय जरा गम्भीर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विषय बहुत गम्भीर कहलाता है परन्तु एकदम कभी अभ्यास नहीं होता। हें ? खोटा अभ्यास। लो ! यह डॉक्टर के अभ्यास की बात करते हैं और घुस गये तो यह बात समझ में नहीं आती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

कहते हैं। बहुत सादी भाषा में और सीधी बात है। प्रभु तू है ? है। वस्तु है। तो कहते हैं। तो वस्तु जो है, वह सर्वथा यदि कायम एकरूप रहनेवाली हो तो उसमें क्षण-क्षण में भिन्न-भिन्न कार्य जो होता है, वह नहीं हो सकता। बराबर है ? ऐ जीतु ! यह नौकरी का भाव

होगा, यह पढ़ने का भाव होता है। वह सब भाव यदि एकरूप हो तो भिन्न-भिन्न हो नहीं। यह बराबर है या नहीं?

मुमुक्षु : परिणाम में तो कार्य ही नहीं होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणाम बदले बिना कार्य किसमें होगा? ऐसा कहते हैं। बदलने का स्वरूप न हो क्षण-क्षण में क्रम-क्रम से, ऐसा कहा न? क्रमभावी भाव, क्रमभावी क्रम-क्रम से होती अवस्था का यदि अभाव हो तो विकार नहीं होगा अर्थात् कार्य नहीं होगा। ऐसा कहते हैं। वहाँ वह मैट्रिक के और बी.ए. के और एम.ए. पढ़ना हो तो उसमें सिर घुस जाए अन्दर। इसमें तो बहुत सरल सीधी बात है। परन्तु अभ्यास नहीं होता।

भगवान आत्मा एकरूप यदि नित्य रहे तो कार्य होना है, वह क्या? कि सच्ची समझण करना और झूठी समझण का नाश करना, वह क्रमभावी अवस्था न हो तो कार्य नहीं होता। कहो, बाबूभाई! समझ में आया या नहीं? अरे भाई! हमें धर्म करने दो। परन्तु कहाँ से करेगा तू? धर्म करनेवाला, धर्म करनेवाला एकान्त कायम हो तो धर्म कार्य होता नहीं। धर्म कार्य करना है न? धर्म का कार्य करना है न? तो धर्म का कार्य यदि आत्मा एकान्त कूटस्थ नित्य हो तो धर्म का कार्य होगा ही नहीं।

अधर्म का नाश होकर धर्म की पर्याय उत्पन्न होना, अधर्म का नाश होना, ऐसी क्रमभावी पर्याय बिना कार्य होता ही नहीं। समझ में आया? सर्वथा नित्य वस्तु को वास्तव में क्रमभावी भावों का—वास्तव में क्रम-क्रम से होनेवाली पर्याय का अभाव होने से परिवर्तन / परिणाम / कार्य / दशा भिन्न-भिन्न कहाँ से होगी? एकरूप चीज़ में भिन्न-भिन्न अवस्था कहाँ से होगी? इसलिए सर्वथा एकरूप नित्य रहती है, ऐसी वस्तु नहीं है। सर्वथा नित्य ऐसी वस्तु नहीं है। समझ में आया? नित्य है, वह एकान्त है। पलटती है। कायम रहकर पलटती है। आहाहा! विचार पलटते हैं या नहीं? भाव पलटते हैं या नहीं? तो पलटे कहाँ? पर्याय में। यदि एकान्त ध्रुव हो तो पलटे कहाँ? एकान्त ध्रुव नहीं है। ध्रुव के साथ पलटनेवाली चीज़ है। यह पलटना स्वयं से है, ऐसा सिद्ध करना है।

यह अपने परिणाम जो होते हैं, वह पलटना अपने से स्वयं की सत्ता स्वयं से होते हैं। यहाँ पहले वस्तु सिद्ध करते हैं। पश्चात् वस्तु का सत्ता गुण सिद्ध करेंगे। समझ में

आया ? आहाहा ! जंगल में रहकर सन्तों ने (गजब काम किया है) । कायम रहनेवाले हैं । समझ में आया ? वे आये थे न प्रश्न किया था न ? ऐसा कि यहाँ से मरकर जाये कि तुरन्त जीव उपजता होगा या नहीं ?

ऐसा पहले प्रश्न किया था भाई ने आकर । आज आया है न वह राजुल की रिपोर्ट लेने । एक अमेरिकन है और एक बाबा है, दो है । आये थे अभी अन्दर । कहते हैं यहाँ से मरकर जन्मता है तो तुरन्त जन्मता है ? ऐसा पूछता था । अमेरिकन है । हाँ । बीच में कितना काल रहता है ? कहा कि कोई समय कदाचित् सूक्ष्म में सूक्ष्म समय हो तो, एक, दो, तीन समय । चौथे समय में वहाँ तो जन्म हो जाता है । जन्म तो बाहर शरीर का होता है । ओहोहो ! हो जाता है ।

ऐई ! क्योंकि सबको ऐसा जातिस्मरण क्यों नहीं होता ? ऐसा प्रश्न किया था । सबको नहीं होता, सबकी योग्यता ऐसी नहीं होती । और उसका सिद्धान्त ऐसा है कि जहाँ से मर जाये, देह छूट जाये, वहाँ से एक समय में यदि एक सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग एक समय सीधा उपजा हो तो उसे जातिस्मरण होने का सम्भव है, परन्तु एक समय में दूसरा समय हो गया हो यहाँ से यहाँ तो उसे नहीं होता । होवे या न हो, सम्भव नहीं ।

अमेरिकन आया था न, उसने तीन प्रश्न किये थे । फिर वजुभाई के यहाँ जीमने गया । फिर राजुल की रिपोर्ट ली । अभी उसके पिता के पास वहाँ जूनागढ़ जानेवाले हैं । भाई ने जातिस्मरणवाली लड़की देखी है या नहीं देखी ?

पूर्व भव का ज्ञान है । अभी दस वर्ष की है । यहाँ है । अभी अमेरिकन उसकी रिपोर्ट लेने आये हैं । ठेठ अमेरिका से आये हैं । एक व्यक्ति आया है, डॉक्टर आये हैं, चार (आदमी) आये हैं । सामने मकान है, वहाँ हैं । तुम्हारे घर में दूसरा कोई प्रकार है ? ऐसा और पूछा । भाई ! यह बात कहने की नहीं । तुमको समझ में नहीं आयेगी । पूछा, हों ! भाई ! तुमको समझ में नहीं आयेगी, यह सब शंका करते हैं । ....विश्वास रखने जैसी चीज़ है । विश्वास बिना समझ में आये ऐसी नहीं है ।

वह यह तत्त्व के लॉजिक-न्याय यथार्थ क्या, वह समझ में नहीं आता, वह तो विश्वास की चीज़ है । समझ में आया ? यह क्या चीज़ है । किस प्रकार होता है, उसकी

खबर नहीं, ठिकाना नहीं और पर से होता है और मैं पर का कर्ता हूँ, यह सब तो तत्त्व के न्याय से विरुद्ध है। इस वस्तु का वास्तविक अर्थ क्या है, वह भी समझ में नहीं आता तो ऐसा दूसरा विश्वास कहाँ से आवे? समझ में आया?

और सर्वथा क्षणिक वस्तु में, एक ऐसा सिद्ध किया कि यदि सर्वथा नित्य हो तो कार्य पलटना-बदलना या रूपान्तर होना, ऐसा कुछ नहीं होता और ऐसा हुए बिना कार्य भी नहीं होता। और वस्तु सर्वथा क्षणिक, पहले तो वस्तु सिद्ध करते हैं। सिद्ध तो अस्तित्व करना है, परन्तु आचार्य की शैली ऐसी है कि अस्तित्व सिद्ध करना है तो पहले वस्तु सिद्ध करते हैं। है न अमृतचन्द्राचार्य की शैली ऐसी है।

सत्ता गुण सिद्ध करना है। पाठ में तो यह है न भाई! 'सत्ता सव्वपयथ्था' सत्ता की बात सिद्ध करनी है। यहाँ तो पहले सत्ता सिद्ध करनी है। अस्तित्व, होनापना। तो यहाँ आत्मा स्वयं से सर्वथा नित्य हो तो कार्य नहीं हो सकता। और यदि सर्वथा क्षणिक हो तो वास्तव में प्रत्यभिज्ञान का अभाव होने से यह था, वही मैं हूँ। प्रवाहरूप आत्मा था, वही मैं हूँ। ऐसा पहले से देखा है, वही यह है, ऐसे ज्ञान का अभाव होता है। यदि क्षण-क्षण में अकेला पलटना ही हो तो यह मैं था, वही मैं हूँ - ऐसे ज्ञान का अभाव होता है। आहाहा! खबर पड़ती नहीं। समझ में आया?

पचास वर्ष पहले मैं ऐसा था, वही मैं प्रवाहरूप हूँ। भले पर्याय बदल जाये परन्तु पचास वर्ष पहले मैं ही था और अभी भी वही मैं हूँ। समझ में आया? और सर्वथा क्षणिक वस्तु में, यह क्या सिद्ध करते हैं। समझ में आया? कि वस्तु ऐसी है तो वस्तु के गुण भी ऐसे हैं। तो उसका उपजना, विनशना और ध्रुव रहना, वह अपनी सत्ता के कारण से स्वयं से है। किसी पर के कारण से उपजना, विनशना या टिकना है, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

शरीर यह रजकण है, देखो! यह रजकण परमाणु है। परमाणु में पर्याय उत्पन्न होती है? ऐसी देखो! पहले कहे व्यय होता है? परमाणु ध्रुवरूप रहता है। तो कहते हैं कि अपनी सत्ता का-गुण का वस्तु का ऐसा स्वभाव है तो उसकी सत्ता का ऐसा स्वभाव है। सत्ता का ऐसा स्वभाव है तो उत्पाद-व्यय पर से होते हैं या आत्मा से उसमें होते हैं, ऐसा नहीं है। सूक्ष्म है कविजी! आहाहा! जैन कहाँ? वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है, जैन कहाँ कोई

सम्प्रदाय है ? वस्तु ऐसी है, वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। लो! जैन कहो चलो। तो जैन किसे कहें ? जिसने राग-द्वेष और अज्ञान को जीता है और जिसने उस जगह वीतरागता की पर्याय प्रगट की है और कायम वह का वही रहा है, उसका नाम जैन।

मुमुक्षु : उत्पाद-व्यय-ध्रुव तो सिद्ध कर दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐई! समझ में आया या नहीं ? भाषा तो हिन्दी समझते हो न, तुम्हारे यहाँ यह तो समझे न बाहर में तो लड़के-वड़के अब हिन्दी का बहुत प्रचार हो गया। समझ में आया ? क्या कहा, फिर से कहते हैं। देखो!

'जैन', जैन शब्द में तीन (बातें) पड़ी हैं। देखो! जैन अर्थात् जीतना, किसे ? अज्ञान और राग-द्वेष को जीतना। तो अज्ञान और राग-द्वेष है या नहीं ? है या नहीं ? व्यय है या नहीं ? तो है, उसका व्यय करना। तो व्यय की जगह राग-द्वेष और अज्ञान गये तो ज्ञान और वीतरागता हुई, वह उत्पाद हुआ। तो उत्पाद और व्यय हुआ तो ध्रुव में से हुआ। वह कायम टिकती चीज़ है तो उसमें से उत्पाद-व्यय हुआ। समझ में आया ? ऐई! रमणीकभाई! अरे! भाई! एक जैन शब्द लो तो उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रुव सिद्ध होता है। क्योंकि वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। हें ? दूसरा हो जायेगा, ऐसा है नहीं। जीतना किसे ? अन्दर दूसरी कोई चीज़-दशा है ? दशा है न ? तो है, उसे जीतना अर्थात् नाश करना, ऐसा है न ? है उसका नाश करे या न हो उसका नाश करे ?

तो आत्मा में यदि अज्ञान और राग-द्वेष है तो उत्पाद की पर्याय है। उपजी हुई, नयी उपजी हुई है और उसका नाश करना है। तो नाश कब होगा कि ध्रुव चीज़ है, वह वीतराग विज्ञान पिण्ड है। आत्मा है, वह ध्रुव वीतराग विज्ञान पिण्ड है। समझ में आया ? तो उसकी दृष्टि करने से पर्याय में वीतराग विज्ञान उत्पन्न होता है। समझ में आया ? क्या कहा ?

दोष को जीतना, ऐसा हुआ न ? दोष का नाश करना। कोई भी धर्म करनेवाला ऐसा समझे कि मुझे धर्म करना है, इसका अर्थ मुझे निर्दोषदशा प्रगट करनी है, वह धर्म। तो निर्दोष दशा प्रगट करनी है, इसका अर्थ सदोषदशा का नाश करना है। सदोषदशा का 'नाश' करना है और निर्दोषदशा 'उत्पन्न' करना है। तो निर्दोषदशा जो उत्पन्न होती है, वह सदोष गयी, उसमें से उत्पन्न होती है ? सदोषदशा तो गयी, व्यय हो गया। सदोषदशा का

तो नाश हो जाता है। तो नाश में से निर्दोषदशा का उत्पाद होता है ? निर्दोष स्वभाव तो ध्रुव है। वीतराग विज्ञान। वीतराग विज्ञानघन आत्मा है। उसमें से वीतरागी ज्ञान उत्पन्न होता है और राग तथा अज्ञान का नाश होता है। समझ में आया ?

सीधी बात है परन्तु जरा, परन्तु अभ्यास अभी लोगों को द्रव्य, गुण और पर्याय का अभ्यास घट गया है। बाहर की बातें कथा और चरणानुयोग में ऐसे घुस गये तो तत्त्वदृष्टि में गड़बड़ हो गयी तो उसे खबर नहीं पड़ी। किस प्रकार हो गयी ? समझ में आया ? तो कहते हैं कि कोई भी प्राणी ऐसा कहे, विचार करे कि मुझे अच्छा होना है। अच्छा होना है। अच्छा होना है न ? तो उसकी दशा में अच्छा नहीं है न ? उसकी दशा में अच्छा नहीं है न ?

यदि अच्छा होना है तो इसका अर्थ धर्म करना है, हित करना है, भला करना। अच्छा होना है तो इसका अर्थ यह हुआ कि उसकी वर्तमान दशा में अच्छा है नहीं। यदि अच्छा हो तो अच्छा करना है, ऐसा नहीं रहता। समझ में आया ? तो मुझे अच्छा होना है, इसका अर्थ मुझे मेरी अवस्था-दशा अच्छी करनी है या वस्तु अच्छी करनी है ? वस्तु तो ध्रुव है। अच्छा बनना है तो अच्छा अर्थात् सत् बनना है। निर्दोष होना है, हितकर होना है। श्रेय करना है। तो वह श्रेय और हितकर की दशा मुझे प्रगट करनी है। तो उत्पाद हुआ; जो नहीं था वह उत्पन्न हुआ। और करना है तो इसका अर्थ यह हुआ कि पहले अहितकर सदोषदशा थी, उसका व्यय हुआ, अभाव हुआ, निर्दोष का भाव हुआ। निर्दोष का वीतराग विज्ञान भाव हुआ और सराग अज्ञानभाव का नाश हुआ तो वीतराग विज्ञान दशा जो सम्यग्दर्शन धर्म है, वह कहाँ से उत्पन्न हुई ? ध्रुव चीज़ वीतराग विज्ञानघन है, उसमें से उत्पन्न होती है। कहो, समझ में आया या नहीं ? बाबूभाई !

ऐसा कानून तुम्हारे जवाहरात में कहीं होंगे ? आहाहा ! इसका अर्थ तुझमें और तुझमें। दोष भी तेरी दशा में और निर्दोष होना तो इसका अर्थ (यह कि) दोष है, उसका नाश होता है। पलट जाता है। यदि पलटे नहीं तो निर्दोष होने का बन नहीं सकता। तो दोष पलटते हैं तो उसकी जगह निर्दोष होता है तो निर्दोष चीज़ कहाँ से आयी ? सदोष गयी, उसमें से आयी ? वह तो गयी है। तो निर्दोषता प्रगट होती है और सदोष का नाश होता है, वह निर्दोष का भण्डार भगवान आत्मा है, उसमें से निर्दोषता उत्पन्न होती है। ध्रुव, उत्पाद और व्यय तीनों सिद्ध हो गये। समझ में आया ?

यह तो वस्तु का स्वभाव ऐसा है। यह कोई जैनदर्शन वह सम्प्रदाय या ऐसी कोई चीज़ नहीं है। समझ में आया? व्यापारी व्यक्ति को न्याय-लॉजिक की बहुत खबर नहीं होती न, इसलिए जरा उलझ जाता है। उलझे कि यह क्या कहते हैं? परन्तु सीधी सादी बात है। क्यों भीखाभाई! हें? एकदम सीधी-सादी बात। यह इसे समझनेयोग्य सर्व है, तो सर्व होता है न? आहाहा! कहते हैं। दूसरे प्रकार से कहूँ, कि अपनी पर्याय में, पर्याय में। पर्याय अर्थात् अवस्था में, यदि सदोषता न हो तो सदोषता की जगह निर्दोष आनन्द की दशा होना चाहिए। तो आनन्द की दशा नहीं है तो उसकी दशा में अणआनन्द अर्थात् दु:ख की दशा है। दु:ख की दशा कहो या सदोषदशा कहो। उस सदोष का नाश करके उसके स्थान में आनन्द का निर्दोषपना लाना है तो नयी अवस्था उत्पन्न हुई। पुरानी अवस्था गयी और नयी हुई। नयी हुई, वह आयी कहाँ से? ध्रुवस्वरूप है, उसमें आनन्द पड़ा, उस आनन्द का प्रवाह पर्याय में प्रगट हुआ। बस उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् हो गया।

यह कोई पर के कारण दोष नाश होते हैं और पर के कारण निर्दोषता उत्पन्न होती है? यहाँ तो अस्तित्व सिद्ध (करना है)। सत्ता का अंश ही ऐसा है, वस्तु ही ऐसी है। फिर उसे पर के कारण से होता है, ऐसी बात है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

इसलिए प्रत्यभिज्ञान के हेतुभूत किसी स्वरूप से ध्रुव रहती हुई.... ध्रुव रहती हुई किसी स्वरूप से अर्थात् कायमरूप से आत्मा नित्य रहता हुआ, परमाणु भी कायमरूप से नित्य रहता हुआ। यह दूसरा कहते हैं कि आत्मा में यदि अकेला ध्रुव हो तो सदोष का नाश होकर निर्दोषता की पर्याय क्रमसर उत्पन्न है, वह नहीं हो सकती। और यदि अकेला सदोष का नाश और निर्दोष का उत्पाद अकेला हो (तो) वह किसके आश्रय से? प्रवाह क्या है? कायम रहनेवाली चीज़ प्रवाहरूप से है... है... है... है... है... रहती है। ऐसा सदोष का नाश निर्दोष की उत्पत्ति। दूसरी भाषा में कहें तो मिथ्यात्व का नाश, समकित की उत्पत्ति और ध्रुव का रहना। और दूसरी बात। जब यहाँ मिथ्यात्व का नाश हुआ तो सामने कर्म की चीज़ है तो कर्म का उत्पाद जो दर्शनमोह पर्याय में था। यहाँ मिथ्यात्व का नाश हुआ तो दर्शनमोह पर्याय का नाश वहाँ हुआ। परमाणु में भी दर्शनमोह की पर्याय का उत्पाद था, उस पर्याय का नाश हुआ। और अकर्म पर्यायरूप से पर्याय हुई और परमाणुरूप से कायम रहा। समझ में आया?

यह वकीलों को और सबको यह समझ में आता होगा, ऐसा होगा और व्यापारी को नहीं समझ में आता होगा।

मुमुक्षु : व्यापारी को समझ में आता है, वकीलों को नहीं समझ में आता...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब लॉजिक-न्याय, सब आये हैं सही न, इसलिए कहता हूँ, मस्तिष्कवाले होते हैं न वकील और जज। वकील नहीं थे अपने एक राजकोटवाले, क्या कहलाते हैं ? झवेरचन्दभाई, झवेरभाई नहीं थे वे ? कुछ समझते नहीं, कुछ ठिकाना नहीं। कितनी बार पूछे, हो ! गोरे लोगों के पास जाये और मक्खन चुपडे। ग्राहक, ब्राहक, ग्राहक क्या कहलाता है तुम्हारे ? एकाध दो दे। हें ? झवेरभाई थे। उनका लड़का वहाँ है मुम्बई, बड़ा मकान है। घर में चरण किये थे।

यहाँ कहते हैं, आहाहा ! अरे ! यह तो आत्मा हो उसे समझ में आये ऐसा यह है। व्यापारी और वकील की यहाँ बात नहीं है। आत्मा है। है या नहीं ? तो आत्मा में तो ज्ञान स्वभाव तो आत्मा ज्ञानस्वभाव है। ज्ञानस्वभाव कायम है। और कायम ज्ञानस्वभाव में यदि अज्ञान उत्पन्न हुआ है पर्याय में। अज्ञान का नाश कर। ज्ञानपर्याय ध्रुव जो ज्ञानस्वभाव ध्रुव है, उसका आश्रय करके ज्ञान की पर्याय प्रगट होती है, अज्ञान का नाश होता है और ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान गुण तो कायम रहता है। समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं, सम्यग्ज्ञान अथवा धर्म की उत्पत्ति में पर की सहायता की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। क्योंकि अपनी सत्ता का उत्पाद होना, वह तो अपना स्वभाव है और अधर्म का नाश करने में भी किसी परचीज़ की आवश्यकता नहीं है। यहाँ निमित्त से उत्पन्न होता है ? निमित्त से कुछ नहीं, ऐसा कहते हैं। सब झगड़े। निमित्त-निमित्त सम्बन्ध व्यवहार नहीं। आज आया था, तब आया था पहले ? भाई है कोई, व्यवहार नहीं... व्यवहार नहीं, निश्चय है। आज आया था। कर्म का निमित्त और नैमित्तिक तो निश्चय है। परन्तु दो चीज़ में निश्चय नहीं होता। सुन न ! (निश्चय को वास्तव में सम्बन्ध है) वास्तव का अर्थ दो का सम्बन्ध है परन्तु वह सम्बन्ध भी वास्तविक नहीं है। उसकी पर्याय में यह और इसकी पर्याय में वह, यह सम्बन्ध कहाँ से आया ? यह कहते हैं, वह सम्बन्ध नहीं है। लो, समझ में आया ?

यह तो यहाँ क्या सिद्ध करते हैं ? कि आत्मा है, उसकी पर्याय में यदि विकार है तो उस विकार का अस्तित्व अपनी पर्याय में धारता है और उस विकार का अभाव होता है तो अपने स्वभाव के आश्रय से होता है। अपनी सत्ता के अवलम्बन से होता है। और अविकारी दशा उत्पन्न होती है, वह भी सत्ता स्वयं से उत्पन्न हुई है। पर के कारण से हुई है और पर निमित्त है, इसलिए (हुई है), यह बात भी यहाँ है नहीं। समझ में आया ? आहाहा!

न्याय से समझे तो हो, यह तो वस्तु ऐसी है। कहते हैं, **प्रत्यभिज्ञान के हेतुभूत किसी स्वरूप से ध्रुव रहती हुई....** कौन ? वस्तु, सत्ता नहीं। यहाँ तो वस्तु की बात चलती है। **और किन्हीं दो क्रमवर्ती....** स्वरूप से नष्ट होती हुई। देखो! दो क्रमवर्ती स्वरूप से व्यय, उत्पाद। अज्ञान का व्यय, ज्ञान का उत्पाद। मिथ्यात्व का नाश, समकित का उत्पाद। अशान्ति का नाश, अव्रत का नाश, शान्ति का उत्पाद। ऐसी **क्रमवर्ती स्वरूपों से....** जो क्रमवर्ती स्वरूप है। दो क्रमवर्ती का अस्तित्व है। उसका स्वरूप है। **नष्ट होती हुई....** पूर्व की पर्याय से नाश होती और नयी पर्याय से उपजती हुई तथा उत्पन्न होती हुई **इस प्रकार परमार्थतः एक ही काल में...** परमार्थ एक ही काल में, **तिगुनी (तीन अंशवाली) अवस्था को धारण करती हुई....** देखो, ध्रुव को भी एक अवस्था ली है।

है न 'अवस्थ' अव निश्चय स्थ। वस्तु भगवान ध्रुव अवस्था। अव निश्चयस्थ। और उत्पाद-व्यय भी अवस्था-पर्याय है। तीनों अवस्थावाली चीज़ स्वयं सिद्ध है। वह कोई दूसरे के सहारे से है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? आहाहा! देखो, यह अक्षर लिखते हैं, अक्षर। यह कबीर का याद आया तुम्हारा। अक्षर लिखते हैं न अक्षर। अक्षर समझते हो न ? तो पहली पर्याय उसमें भाषा की नहीं थी। अक्षर की नहीं थी। फिर लिखने में आया तो अक्षर की पर्याय उत्पन्न हुई। वह उत्पन्न हुई उत्पाद, वह परमाणु से उत्पन्न हुई है। कलम से नहीं, विकल्प से नहीं। वह तो परमाणु है और परमाणु में एक समय में तीन प्रकार हैं। नयी अवस्था का उत्पन्न होना, पुरानी अवस्था का व्यय होना और ध्रुव का (कायम) रहना। तीन गुण—तीन अंशवाले परमाणु हैं। उन परमाणु में जो अक्षर की पर्याय उत्पन्न होती है, वह उसके अस्तित्व से है और पूर्व में अक्षर की पर्याय नहीं थी, दूसरी पर्याय थी, उसका व्यय हुआ। और परमाणुरूप से कायम रहे। तो उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीन अंशवाली

वस्तु सिद्ध हुई। तो स्वयं से हुई है। दूसरे परमाणु से नहीं या दूसरे आत्मा से नहीं। बात तो सीधी-सादी है, परन्तु ऐसी बात लोगों को मस्तिष्क में शीघ्र नहीं उतरती। मस्तिष्क में वापस गड़बड़ घुस जाती है।

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ऐसे न्याय और युक्ति से बात करते हैं। समझ में आया? एक ही काल में तीन गिनी। काल एक और अंश तीन। परमाणु में अक्षर की पर्याय उत्पन्न हुई, वह भाषा होती है, देखो भाषा। तो पहले परमाणु थे, उनमें भाषा की पर्याय नहीं थी। परमाणु साधारण वचन वर्गणायोग्य परमाणु थे। फिर दूसरे समय में यह भाषा होती है, तो उत्पाद हुआ, और पहले समय में परमाणु की पर्याय थी, उसका व्यय हुआ। परमाणु ध्रुव है। तो एक-एक परमाणु तीन गुणवाले-तीन अंशवाले, स्वयं से सिद्ध है। पर से कोई (सिद्ध) है नहीं। समझ में आया?

तिगुनी (तीन अंशवाली) अवस्था को धारण करती हुई.... तीन पर्याय ली न? तीन भेद। **वस्तु सत् जानना।** लो! इस प्रकार पदार्थ को सत् जानना। आत्मा पदार्थ भी सत् जानना, परमाणु भी सत् जानना, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल सब सत् जानना। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? इसीलिए ही, अब आया। मूल मुद्दे पर आये। गाथा का भाव है, वह अब कहते हैं। समझ में आया?

गाथा में जो सत्ता सिद्ध करनी है, उसकी बात अब करते हैं। पहले वस्तु की सिद्धि की, सत्तावान को सिद्ध किया। अब उसके सत्तागुण की सिद्धि करती हैं। हें? सत्ता भी वह। जैसी वस्तु है, वैसी उसकी सत्ता है। वस्तु में उत्पाद-व्यय-ध्रुव है, तो सत्ता में भी उत्पाद-व्यय-ध्रुव है। 'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्' और 'सत् द्रव्यलक्षणम्।' तत्त्वार्थसूत्र। बात तो बहुत सीधी सरल परन्तु लोगों को अभ्यास नहीं न? इसलिए महा गड़बड़ ऐसी खड़ी हुई है न? फिर कहे, ऐई! सोनगढ़वाले व्यवहार का नाश करते हैं, परन्तु सुन न अब! तुझे व्यवहार किसे कहना, इसकी तो खबर नहीं।

यह विकल्प उठता है, वह व्यवहार। तो व्यवहार तो स्वभाव की पर्याय निर्मल है, उससे भिन्न है। समझ में आया? आत्मा आनन्द स्वरूप है, ऐसी जहाँ दृष्टि हुई तो पर्याय में आनन्द आया और थोड़ा दु:ख का विकल्प रहा। आनन्द की पर्याय से दु:ख का विकल्प भिन्न है। एक समय में एक पर्याय के दो भाग। धर्म की पर्याय आनन्दस्वरूप

आत्मा है, ऐसी प्रतीति हुई (तो) आनन्द तो त्रिकाल रहा, पर्याय में जो अकेला दु:ख था, उसका नाश होकर आनन्द की पर्याय उत्पन्न हुई। जब पूर्ण आनन्द न हो, तब सिद्ध हो तब तक थोड़ा दु:ख है परन्तु वह दु:ख व्यवहार है। उस दु:ख को जाननेवाला आत्मा है, परन्तु दु:ख को अपना माननेवाला आत्मा नहीं है। ऐसी बात है। समझ में आया?

यहाँ तो दु:ख अपने में है, ऐसा मानता है। परन्तु अपने में है तो दो प्रकार हुए न? दो प्रकार हुए न? एक दु:ख का उत्पाद और एक आनन्द का उत्पाद। दोनों का आधार तो आत्मा है। हें? आहाहा! सूक्ष्म बात है। परन्तु यह तो दु:ख की पर्याय और आनन्द की पर्याय एक साथ हुई। उसमें दु:ख से, व्यवहार से निश्चय होता है, यह कहाँ रहा? दु:ख तो आकुलता, राग, विकल्प है। तो विकल्प से आनन्द हुआ, यह कहाँ रहा? हें? लोग सत्य के शोधक होकर सत्य कैसा है, उसकी दरकार नहीं करते। अपनी मानी हुई बात को शास्त्र में से पुष्टि किस प्रकार मिले? ऐसा निकालते हैं। परन्तु शास्त्र क्या कहते हैं, वैसी दृष्टि नहीं करते और अपनी दृष्टि प्रमाण शास्त्र का अर्थ करते हैं। समझ में आया? आहाहा!

यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का है। चन्द्र का बहुत आता है। चन्द्र का। अभी भी आया आज। उसने भी बेचारे ने कहलवाया। अब छोड़ न चन्द्र का, आत्मा का कर न अब! उसने भी बेचारे ने कहा। बड़ा लेख आया है। चन्द्रमा का हो वह ठीक, अपने उसे मिलाने का (क्या काम है?) अब यह प्रत्यक्ष है, होता है, यह आत्मा अब प्रत्यक्ष है, प्रत्यक्ष है, हो सकता है, होता है, होता है, उसका कर न अब। चन्द्रमा में गया या नहीं गया, उसके घर में रहा। परन्तु यह अभी निर्णय तो करने दे, अभी बहुत देरी जाये पश्चात् क्या करते हैं, कहाँ गये हैं, कहाँ नहीं। अभी तो गये कितनी बार और कहाँ जाते हैं, निर्णय तो करने दे। अभी गये नहीं और निर्णय कर दिया तुझे? यह भगवान आत्मा महाशीतल, शीतल आनन्दस्वरूप ध्रुव, उसमें दृष्टि करने से, उसमें जाने से आनन्द की दशा होती है, दु:ख की दशा जाती है, वह तो वस्तु का स्वरूप प्रत्यक्ष है। समझ में आया? और आनन्द के धाम में न जाकर अकेले विकल्प के धाम में रहे, (वह तो) दु:ख है। विकल्प, वह शुभ-अशुभभाव, वह तो दु:ख है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि वस्तु सत् जानना। इस कारण से वस्तु तीन प्रकार के अंशवाली होने से वस्तु को सत् कहते हैं।

इसीलिए **'सत्ता' भी।** जो आया। अब आया। मूल **'सत्ता सव्वपयत्था' 'सत्ता'** भी उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक त्रिलक्षणा जानना। लो, ठीक! भगवान आत्मा और परमाणु वस्तु। वह कोई परमाणु एक-एक नहीं, वह तो टुकड़े कर-करके अन्तिम परमाणु रहे, वह वस्तु। तो उस वस्तु में भी तीन अंश हैं। नयी अवस्था का उत्पाद, पुरानी अवस्था का व्यय और ध्रुव का (कायम) रहना।

तो वस्तु जैसे तीन अंशवाली है, वैसे आत्मा भी तीन अंशवाला है। नयी पर्याय का उत्पन्न होना, पुरानी (पर्याय) का नाश होना, ध्रुव का रहना। तो वस्तु जैसे तीन अंशवाली है, वैसे उसका सत्ता नाम का गुण भी तीन अंशवाला है। न्याय से स्वत:सिद्ध है। सर्वज्ञ परमेश्वर कोई सम्प्रदाय नहीं। जैनधर्म वाड़ा नहीं। यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। विश्व धर्म ऐसा है। समझ में आया? इसलिए सत्ता भी उत्पाद-व्यय और ध्रौव्यात्मक त्रिलक्षणवाली जानना।

क्यों ?अब सिद्ध करते हैं। पहले वस्तु सिद्ध की न? वस्तु त्रिलक्षणवाली है तो सत्ता भी त्रिलक्षणवाली है। आत्मा और परमाणु एक-एक द्रव्य, जैसे उत्पाद-व्यय और ध्रुव लक्षणवाली है तो उसका सत्ता नाम का गुण, गुणी के साथ अभेद है, तो सत्ता भी तीन लक्षणवाली है। अस्तित्वगुण भी त्रिलक्षणवाला है। समझ में आया?

देखो, क्यों? कि भाव और भाववान का कथंचित् एकस्वरूप होता है। कथंचित्, हों! नहीं तो नाम और लक्षण भिन्न है न? क्योंकि भाव वह सत्ता, भाववान वह वस्तु। उनका कथंचित् एक स्वरूप है। देखो, नीचे इसका अर्थ—सत्ता भाव है, वस्तु भाववान है। क्या कहा इसमें? क्या कहा? सत्ता नाम का गुण है, वह भाववान है। बराबर है न, हें? ऐसा नहीं है। सत्ता नाम का गुण है, वह भाववान नहीं, वह तो भाव है। और भाववान तो वस्तु है। समझ में आया? इसमें समझे बिना हाँ पाड़े तो कुछ मेल खाये, ऐसा नहीं है। ऐ, माथुभाई!

जो भाववान है, भाववान है, वह भाव है। अभेद है, किस अपेक्षा से? कि उनके प्रदेश भिन्न नहीं हैं। नाम लक्षण से भिन्न है। समझ में आया? परन्तु उसका प्रदेश तो जो आत्मा है, उसका सत्तागुण भी ऐसा ही है। परमाणु है तो है। तो उसके परमाणु त्रिलक्षणवाले हैं, तो उसका सत्ता नाम का गुण भी त्रिलक्षणवाला है।

इसी प्रकार आत्मा है, तो उसका ज्ञानगुण है, ज्ञानगुण। यह तो सत्ता सिद्ध करते हैं। अर्थात् आत्मा उत्पादव्ययध्रुववाला है तो उसका ज्ञानगुण भी उत्पादव्ययध्रुववाला है। क्यों ज्ञानगुण और गुणी कोई भिन्न नहीं है। समझ में आया? आत्मा है, वह त्रिलक्षणवाला है। सर्वथा क्षणिक हो तो प्रवाहरूप रहती है जो चीज़, वह नहीं रहती। सर्वथा नित्य हो तो विकार अर्थात् कार्य नहीं रहता। तो आत्मा का ज्ञानगुण जिस प्रकार आत्मा सर्वथा क्षणिक नहीं, सर्वथा नित्य नहीं; उसी प्रकार आत्मा का ज्ञानगुण, आत्मा का ज्ञानगुण जो त्रिकाली है, वह सर्वथा नित्य नहीं और सर्वथा अनित्य नहीं। गुण की अपेक्षा से नित्य है और पर्याय उत्पन्न होती है, इस अपेक्षा से ज्ञानगुण भी अनित्य है। समझ में आया?

क्योंकि, भाव और भाववान का कथंचित् एक स्वरूप होता है। भाव गुण और भाववान गुणी भिन्न नहीं होते। जिस प्रकार शक्कर, शक्कर। शक्कर में मिठास की नयी अवस्था उत्पन्न होती है, पुरानी अवस्था का नाश होता है और शक्कररूप से कायम रहती है। इस प्रकार शक्कर जैसा ही उसका मिठास गुण लो। मिठास गुण, मिठास, मिठास कहते हैं न? स्वाद मिठास गुण है, वह भी कथंचित् ध्रुव और कथंचित् उत्पाद-व्यय है। समझ में आया? उस मिठास की उत्पत्ति नयी होना, वह उत्पाद है। पुरानी मिठास का व्यय होना, वह अभाव है और ध्रुवरूप मिठास रहती है, वह नित्य है।

तो शक्कर का जैसे उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीन है, वैसे शक्कर के गुण का भी उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीन है। भाषा तो सादी आती है, उसमें कुछ न समझ में आये, ऐसा नहीं है, है तो भाव ऊँचे। समझ में आया? परन्तु लोगों को ऐसा हो जाता है (कि) ऐसा यह सूक्ष्म... सूक्ष्म... सूक्ष्म। परन्तु सूक्ष्म तू है और परमाणु भी सूक्ष्म है। वस्तु सूक्ष्म है। इन्द्रियातीत वस्तु है। इन्द्रिय से परमाणु जानने में आते हैं? इन्द्रिय से आत्मा जानने में आता है? चीज़ भिन्न है। तो यहाँ कहते हैं कि अभी वस्तु कैसी है, इसकी खबर नहीं, धर्म क्या है? कहाँ करेगा? समझ में आया? धर्म तो वीतरागी पर्याय है।

वह धर्म वीतरागी दशा है। तो वीतरागी दशा अपने से अपने में होती है और राग और अज्ञानदशा अपने में थी, उसका व्यय होता है-नाश होता है। किसी पर के कारण से नहीं। इतने अपवास किये, इतना यह किया तो अज्ञान का नाश हुआ, ऐसा है नहीं। समझ में आया? यह तो पर की क्रिया हुई, उसमें अज्ञान का नाश कहाँ आया?

अज्ञान का नाश, ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा ध्रुव, उसके ऊपर दृष्टि देने से सम्यग्ज्ञान-धर्म की उत्पत्ति होती है और अज्ञान-अधर्म का नाश होता है। वह तो स्वयं के कारण से है, किसी पर के कारण से है? है ही नहीं। समझ में आया? विकल्प जो है शुभ-अशुभराग, वह तो अधर्म है। तो अधर्म का नाश करना है तो उसे कहाँ दृष्टि करना? जिसमें आनन्द भरा है, सुख भरा है, धर्म है, 'वस्तु सहावो धम्मो' वस्तु का स्वभाव जो कायम आनन्द ज्ञानादि है, उसमें दृष्टि देने से अधर्म का नाश होगा, धर्म की उत्पत्ति होगी, ध्रुव तो कायम रहेगा। आहाहा! समझ में आया?

यह समझे न तो यह झगड़ा व्यवहार-निश्चय का, निमित्त-उपादान का और क्रमबद्ध का सब मिट जाये। बड़े झगड़े खड़े हुए हैं। यह हमने लिखा है, लो, ऐसा का ऐसा हो जाता होगा? वह स्थानकवासी साधु है न? वह नानालालजी हैं न? अभी। मारवाड़ के नहीं? नानालालजी। वहाँ ऐसा लिखा है पत्र में। लो, भूख लगी है तो आहार यहाँ बैठे-बैठे ही आ जायेगा? लो! अरे भगवान! इसमें है, हो वह। ऐसी बात उसने की है। नित्य, नित्य का कुछ है, हों? क्या है?

पुरुषार्थ... पुरुषार्थ... पुरुषार्थ। पुरुषार्थ के आठ पेज हैं न? यह लिखा। पुरुषार्थ करे तो पैसा और सब मिले न? बहुत स्थूल... बहुत स्थूल। वीतराग भगवान ने इस मार्ग को यही बताया है। नीतिकार भी कहते हैं, ऐसा कहकर डाला है उसने। नीतिकार का क्या भान है कुछ? नीतिकारों ने लिखा है। अपनी शक्ति का वीतराग प्रभु की आज्ञा पुरुषार्थ से मोड़ी, आया था आज ३१ पृष्ठ, कहाँ आया?

देखो, आप भी पुरुषार्थ के बल से जीते हो। यदि तुम पुरुषार्थ नहीं करो तो तुम्हारा जीवन टिक नहीं सकता। यदि तुम ऐसा विचारकर बैठ जाओगे कि भोजन भी होनेवाला होगा वह होगा तो हो जायेगा। बैठो, एक जगह बैठ जाओ और फिर देखो कि तुम्हारा भोजन ऐसा का ऐसा हो जाता है या नहीं? ऐसा का ऐसा है गप्प। तो परमाणु तो आनेवाले हैं, वे ही आते हैं, उसके कारण से। लोग भी नहीं कहते? 'दाने-दाने पर लिखा है खानेवाले का नाम।' भैयाजी! वह नहीं? हिन्दी में है? कि दाने-दाने पर खानेवाले का नाम है। इसका अर्थ क्या? उसका अर्थ क्या? जो दाने आनेवाले हैं, वे आयेंगे, वे तुझसे नहीं आते। तेरे पुरुषार्थ से आवें, वे यहाँ ऐसा कहते हैं, देखो!

आता है क्या, कदाचित् नौकर-चाकर ने भोजन आपके सामने लाकर रख दिया है, समझे न? वह लिखना चाहिए। समझे न? आप हाथ से पुरुषार्थ नहीं करो तो भोजन हो जायेगा क्या? हाथ से पुरुषार्थ करेगा। यह हाथ आत्मा कर सकता है ऐसा?

मुमुक्षु : यह सत्ता का अज्ञान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सत्ता का अज्ञान है।

मान लो कि आपकी माँ ने ग्रास उठाकर आपके मुँह में दिया। चलो! देने की कोशिश की, परन्तु आपने मुँह खोला ही नहीं। मुँह खोला ही नहीं तो मुँह से पुरुषार्थ नहीं किया तो वह भोजन क्या तुम्हारे पेट में आ जायेगा? ऐसे के ऐसे साधु नाम धरावे और वस्तु का कुछ भान नहीं होता। मिथ्यात्व का पोषण है। समझ में आया?

यह तो अस्तित्व जड़ का है परमाणु। आना-जाना खाने की क्रिया, वह तो सब जड़ की क्रिया करते हैं। आत्मा कुछ नहीं करता। आत्मा में विकल्प होता है। परन्तु यह खाने-पीने की क्रिया तो जड़ की पर्याय की है। यह उत्पाद-व्यय-ध्रुव अपनी सत्ता से होते हैं। क्या आत्मा की सत्ता से उसमें आना-जाना होता है? समझ में आया?

पेट में चुभे जो होनेवाला है वह हो जायेगा। पेट में भी चला गया, पेट यह बेचारे की होनेवाला है वह हो जायेगा। तो मैं खलभाग और रसभाग अलग-अलग किसलिए करूँ? आप सब रहो और उठो नहीं और ऐसा विचारो कि हम किसलिए करें? जो होनेवाला होगा वह हो जायेगा। ठीक। अरे भगवान! और नाम है श्रवणोपासक का। अरे भगवान! तुझे खबर नहीं। स्थानकवासी है।

यहाँ तो कहते हैं कि एक-एक परमाणु में अपने से वस्तु की ध्रुवता और नयी-नयी अवस्था का आना-जाना, उसका उत्पाद है। आत्मा बिल्कुल पर की सत्ता में कुछ कर नहीं सकता। ऐसी सत्ता की जिसे खबर नहीं, उसे धर्म की बिल्कुल खबर नहीं। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

धारावाही प्रवचन नं. १२ (प्रवचन नं. ११), गाथा-८
दिनांक - २५-११-१९६९, कार्तिक कृष्ण २, मंगलवार

यह पंचास्तिकाय, षट्द्रव्य का स्वरूप। इस जगत में भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने छह वस्तुएँ देखी हैं। जाति से छह, संख्या से अनन्त। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति और आकाश। यह सब सत्तास्वरूप है, ऐसा सिद्ध करते हैं। पहले वस्तु को सिद्ध किया। प्रत्येक वस्तु स्वयं उत्पाद-व्यय-ध्रुव लक्षणवाली है। कहो, समझ में आया? प्रत्येक आत्मा प्रत्येक परमाणु एक-एक समय में एक समय, एक सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग। जिसके-काल के दो भाग नहीं पड़ते। ऐसे एक समय में प्रत्येक आत्मा और परमाणु नयी अवस्था से उपजे, पूर्व की अवस्था से व्यय और अपनी जाति को ध्रुवरूप से बनाये रखे, ऐसा उसका स्वरूप है। कहो, समझ में आया इसमें?

इसलिए यह आत्मा, पर परमाणु आदि की किसी पर्याय को करे (—ऐसा नहीं बनता), क्योंकि उसके अस्तित्व में वे नहीं हैं, इसलिए पर के अस्तित्व को आत्मा करे, ऐसा नहीं होता। यह खाने-पीने की क्रिया आत्मा करे, ऐसा नहीं होता - ऐसा कहते हैं। यह तो एक-एक परमाणु खाने-पीने के जो रजकण हैं, परमाणु, उनमें एक-एक परमाणु नयी अवस्था से उपजे, पुरानी व्यय हो और ध्रुव रहे, अपने अस्तित्व की सत्ता में वह परमाणु है। वह सत्ता परसत्ता की अपेक्षा नहीं रखती। समझ में आया?

परमाणु में भी उत्पाद-व्यय होने में दूसरे आत्मा की या दूसरे परमाणु की वह अपेक्षा नहीं रखता। क्योंकि स्वयं सिद्ध स्वयं उत्पाद, व्यय और ध्रुव लक्षणवाली चीज़ है। यदि यह समझे तो सब झगड़े निकल जायें। ऐसा बोले अजीव को जीव माने तो मिथ्यात्व। आता है न? हें? पच्चीस बोल में आता है। अजीव में आता है न? अजीव में जीव माने तो मिथ्यात्व, जीव को अजीव माने तो मिथ्यात्व, कुसाधु को साधु माने तो मिथ्यात्व, साधु को कुसाधु माने तो मिथ्यात्व। ऐसे पच्चीस बोल आते हैं। पहाड़े बोले। वापस ऐसा कहे कि परमाणु की खाने-पीने की क्रिया आत्मा करता है।

एक अजीव की क्रिया आत्मा करे तो जीव को अजीव माना। समझ में आया? इसमें आता होगा न कहीं इसमें?

मुमुक्षु : एक में दूसरा क्या कर सकता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर नहीं सकता क्यों? दिखता है, देखो हाथ ऊँचा किया जाता है, भाषा बोली जाती है, कहते हैं कि तुझे खबर नहीं। वे अनन्त परमाणु इस अँगुली के अनन्त रजकण अस्तिरूप से है, उनमें समय-समय की उनकी तीन अवस्थायें होती हैं— उत्पाद, व्यय और ध्रुव तीन अवस्था अर्थात् उसके अंश एक समय में तीन हैं। उसके अस्तित्व में आत्मा के अस्तित्व के कारण कुछ होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि वस्तु आत्मा और परमाणु, वे यह चार अरूपी हैं—धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल। परन्तु इन दो का ही विवाद है न मूल तो? विवाद दो का। समझ में आया? हमने यह पैसा खर्च किया, हम पैसा खर्च कर सकते हैं। कहते हैं कि मिथ्यात्व भाव है, ऐसा कहते हैं। ऐई भगवानजीभाई! क्योंकि पैसा है, वह अनन्त परमाणुओं का एक पुंज-स्कन्ध तत्त्व है, तो वह अनन्त परमाणु का स्कन्ध है, उसमें समय-समय में प्रत्येक परमाणु भिन्न-भिन्न रहकर, स्कन्ध में भी, नयी-नयी अवस्था से रूपान्तर होना, क्षेत्रान्तर होना, रूपान्तर होना, ऐसा उसका उत्पाद—व्यय और ध्रुव का उसका स्वयं का स्वभाव है। समझ में आया? उसके बदले ऐसा माने कि मैंने यह पैसा किसी को दिया, दूसरे जीव की दया मैंने पालन की। तो कहते हैं कि दूसरा जीव है, उसमें यह उत्पाद-व्यय-ध्रुव होता है? उसके रजकणों में यह उत्पाद-व्यय-ध्रुव होता है। दूसरा जीव कहे कि मैंने उसकी दया पालन की, इसका अर्थ कि उसके उत्पाद की पर्याय को मैंने किया। यह मिथ्यात्व दृष्टि का मिथ्यात्व भाव है। उसे स्वसत्ता और परसत्ता भिन्न है, इसका उसे भान नहीं है।

यह वकील तो भी बराबर वहाँ कोर्ट में कानून प्रमाण करते होंगे या नहीं? बोलते होंगे या नहीं? रामजीभाई नहीं बोले तब। मूक रहा जाये? कोर्ट में जाये और मूक रहा जाये? हें? पैसा उसके कारण से आवे, मिले कहाँ से धूल? यहाँ तो पैसा वह अनन्त परमाणुओं का पुंज है। इस पैसे के एक-एक रजकण में उत्पाद, व्यय और ध्रुव द्रव्य का स्वभाव है। वह तो यहाँ सिद्ध करना है। पैसे का यहाँ आना, वह उसके उत्पाद की पर्याय

से यहाँ आता है। दूसरे के विकल्प से और हस्ताक्षर करके अमुक किया, क्या कहलाता है कोर्ट में? इस प्रकार उसके कारण पैसा आता है, इस बात में दम नहीं है। ऐसा है, कहते हैं यहाँ। समझ में आया? देखो! कहते हैं। कि प्रत्येक आत्मा और एक-एक परमाणु प्रत्येक में एक समय में वह त्रिअंशी वस्तु है। त्रेवडी आया है न इसमें? कल तो अपने त्रिअंशी था। हिन्दी था न कल तो? कल हिन्दी था। त्रेवडी अंशवाली वस्तु ही वह है, ऐसा कहते हैं। है? **परमार्थतः तिगुनी (तीन अंशवाली) अवस्था को धारण करती हुई वस्तु सत् जानना।** यह तो महासिद्धान्त है। समझ में आया?

एक-एक परमाणु (पुद्गल) का अन्तिम टुकड़ा, उसमें उसे तीन अंशवाली वस्तु जानना। उसके तीन अंश में दूसरे के कारण से अंश सत्ता हो, ऐसा वस्तु में नहीं है। क्योंकि वस्तु स्वयं त्रेवडी—तीन अंशवाली है। अब तीन अंश में कौन सा अंश दूसरा दे? समझ में आया? ऐसे कर्म का उदय अनन्त रजकणों के विपाक का एक कर्म का भाग है। वह भी समय-समय में तीन अंशवाले वे परमाणु हैं। वे आत्मा को राग करावे या आत्मा को ज्ञान करावे, आत्मा का उत्पाद और ज्ञान का उत्पाद और पूर्व की अवस्था का व्यय और ध्रुव, वह तो आत्मा के तीन अंशवाली आत्मा चीज़ है। उसे पर के कारण तीन अंश में कोई अंश हो, ऐसा नहीं है। तो कर्म के कारण विकार होता है, यह आता है किस अपेक्षा से? विकार उसका कायमी स्वभाव नहीं है, इतना बतलाने के लिये कर्म का निमित्त है, उसके लक्ष्य से हुआ, परन्तु हुआ है इसके अस्तित्व में—जीव के अस्तित्व में। नहीं कि परमाणु के अस्तित्व में या परमाणु के अस्तित्व के कारण यहाँ अस्तित्व आया है, ऐसा नहीं है। वस्तु ऐसी है। इस प्रकार न हो तो कोई वस्तु सिद्ध होती ही नहीं। समझ में आया? कहते हैं कि परमार्थ से प्रत्येक वस्तु तीन अंशवाली अवस्था को धरती वस्तु सत् जानना। तब वह सत् है ऐसा। उसके सत् के तीनों अंशों में कोई भी अंश पर के कारण हो तो वह तीन अंशवाली सत्ता सिद्ध नहीं होती। मिथ्यादर्शन, मिथ्या-विपरीत मान्यता होती है। जैसा वस्तु का स्वरूप है, वैसा न मानकर विपरीत माने तो मिथ्यात्व का महा पाप है। आहाहा! समझ में आया?

परजीव की दया का भाव-विकल्प उठा, परन्तु वह विकल्प उठा है, इसलिए वहाँ

दया पली है, ऐसा नहीं है। और वहाँ दया पलने की थी, इसलिए यहाँ विकल्प उठता है, ऐसा नहीं है। क्योंकि प्रत्येक वस्तु अपने तीन अंश की सत्ता रखती है। जो भाव-विकल्प आया, वह उसका उत्पाद का अंश था। पहले का व्यय हुआ, इसका उत्पाद हुआ और ध्रुवरूप से कायम है। इसलिए उत्पाद के अंश के कारण वहाँ दया पली, ऐसा मानना, वह तो दो द्रव्यों की एकताबुद्धि मिथ्यात्व है। समझ में आया? और वह उत्पाद राग का हुआ, वह धर्म है, शुद्ध है, संवर-निर्जरा है, धर्म है—ऐसा मानना भी अज्ञान मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **इसलिए ही 'सत्ता' भी...** ऐसा। वस्तु भगवान आत्मा अनन्त है। निगोद के और सिद्ध के आदि शरीर। निगोद के जीव एक शरीर में अनन्त और वह एक-एक जीव तीन अंशवाली सत्ता से टिका हुआ तत्त्व है। कोई अन्दर दूसरा जीव है, उसके कारण से नहीं, आयुष्य के कारण से नहीं, श्वास के कारण से नहीं। श्वास की क्रिया श्वास के कारण, आत्मा की क्रिया आत्मा के कारण है। समझ में आया?

इसीलिए 'सत्ता' भी 'उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक' (त्रिलक्षणा) जानना;.... क्योंकि वस्तु आत्मा और परमाणु स्वयं जब तीन लक्षणवाला सिद्ध होता है तो उसका जो 'सत्ता' नाम का गुण है, वह भी तीन लक्षणवाला ही सिद्ध होता है। यह तो तत्त्व की वस्तु है, भाई! यह कोई जबरदस्ती तोड़-मरोड़कर बैठाना और मान बैठे, यह कोई ऐसी चीज़ नहीं है। सवेरे आया नहीं था? सम्यग्दृष्टि जीव टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावमयपने के कारण; उसमें रागपने के कारण आया था? धर्मी की दृष्टि ज्ञायकभाव अकेला ज्ञायकभाव... ज्ञायकभाव... ज्ञायकभाव हूँ, यह है। उस ज्ञायकभावमयपने के कारण ज्ञानी को उसकी पर्याय में रागादि नहीं है। यह राग से भेद किया। यहाँ तो अकेला पर से भेद करना है। समझ में आया? यहाँ तो पर से भेद कराते हैं। और वहाँ तो फिर पर से तो ठीक, परन्तु राग से भी भिन्न है। समझ में आया?

यहाँ जो सिद्ध करना है। एक-एक आत्मा भले मिथ्यात्वभाव को उत्पन्न करे और पहले मिथ्यात्वभाव था, उसका व्यय हो, दूसरा उत्पाद हो और ध्रुवरूप से कायम रहे। उसका श्रद्धागुण आदि तत्त्व से। यह तीन अंशवाली ही वह चीज़ है। इसलिए उसके

मिथ्यात्वभाव को कर्म का उदय उसके मिथ्यात्वभाव के अंश को करावे, (ऐसा नहीं है)। कहीं मिथ्यात्व का अंश हुआ, इसलिए परमाणु को कर्मरूप होना पड़ा, ऐसा नहीं है। सूक्ष्म है। रमणीकभाई! आहाहा! समझ में आया?

इन परमाणुओं में भी जिस समय कर्म की अवस्था के उत्पाद का अंश हुआ और पूर्व में परमाणु की जो कर्म अवस्था नहीं थी, उसका व्यय हुआ और हुए, और परमाणु कायम रहे। वह वस्तु त्रिअंश परमाणु स्वयं है। आत्मा के कारण उसमें कर्म की अवस्था हुई, ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! यहाँ से जीव स्वर्ग में जाता है तो वहाँ भी क्षण-क्षण में समय की अपनी नयी पर्याय का उत्पाद, पुरानी का व्यय और ध्रुव त्रिअंश वस्तु है। उसे कर्म यहाँ से स्वर्ग में ले जाते हैं, ऐसा नहीं है। रखते भी नहीं और ले भी नहीं जाते और टालते भी नहीं। यह तो उसकी पर्याय (में है) कर्म कर्म की पर्याय में और जीव जीव की पर्याय में है, ऐसा कहते हैं। आयुष्य का उदय है, इसलिए वहाँ जीव को शरीर में रहना पड़ता है, ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया? ठीक किया है।

कर्म तो उसकी पर्याय में उसकी अवस्था में है। यहाँ अवस्था में है? परन्तु उसकी अवस्था में अस्ति से यहाँ की अवस्था की अस्ति है? एक के सत् के अंश से दूसरे के सत् का अंश है? भिन्न-भिन्न है। क्या हो? पूरा जगत पूरा तत्त्व ही बदल डाला है। दृष्टि के विपर्यास में फिर सब घूंटा घूंट करते हैं। मिथ्यात्व की भूमिका में फिर जहर को घोंटते हैं। इस राग को एकाकार करे। यह व्रत पालन किये और भक्ति की और पूजा की और दान किया, यह मिथ्यात्वभाव है, उसे वहाँ एकाग्रता से विशेष घोंटता है। समझ में आया?

क्योंकि उसकी दृष्टि तो पर के ऊपर है। पर के कारण ऐसा हुआ अथवा मेरे कारण उसमें हुआ। एकदम वस्तु एक सत् को दूसरे सत् का सहारा माना। ऐसा है नहीं। लो! समझ में आया? लो, सिद्ध भगवान स्वयं वहाँ रहे, वे अपनी उत्पाद पर्याय से वहाँ रहे हैं। आगे गये नहीं, इसलिए धर्मास्ति का तत्त्व नहीं है, इसलिए नहीं गये - ऐसा नहीं है। उसमें आया है? उसमें आता है। ऐई! उन्होंने तो सब लिखा है। तुमको कैसे है यह?

सिद्ध भगवान आत्मा की पवित्र पूर्ण दशा प्रगट हुई। अब वे सिद्ध भगवान लोक के अन्त में विराजते हैं। क्योंकि अब वे सिद्ध हो गये। अब वे आगे नहीं जा सकते, इसलिए

धर्मास्तिकाय तत्त्व का अभाव है, इस कारण नहीं जा सकते, ऐसा नहीं है। वह तो निमित्त का कथन बतलाते हैं कि यह वह निमित्त नहीं है। परन्तु इस उपादान में भी उस समय की उनकी उस क्षेत्र में उस प्रकार की उत्पत्ति, व्यय और ध्रुव की त्रिअंशी वस्तु स्वयं से है। आहाहा! सिद्ध भगवान को भी केवलज्ञान की पर्याय जो है, वह जिस सम उत्पन्न हुई, वह दूसरे समय उसका व्यय होता है और दूसरे समय नयी केवलज्ञान की पर्याय होती है। और गुणरूप से कायम। यहाँ सत्तारूप से कायम, सत्ता के तीन अंश लेना है न? जैसे वस्तु के तीन अंश हैं, वैसे उसके गुण के भी तीन अंश हैं। यहाँ सत्ता के साथ में तीन अंश मिलाते हैं। समझ में आया? आत्मा में चार ज्ञान की पर्याय उत्पादरूप थी और उसका व्यय होकर केवलज्ञानी की पर्याय हुई। वह उत्पाद, चार ज्ञान की पर्याय का व्यय और ज्ञानगुणरूप से ध्रुव। ज्ञानगुणरूप से, वह गुण ही तीन अंशवाला है। समझ में आया? गजब बात, भाई! ज्ञानगुण, आत्मा वस्तु, उसका ज्ञानगुणशक्ति, वह तीन अंशवाली चीज़ है। जैसे वस्तु तीन अंशवाली है, वैसे उसकी शक्ति का गुण भी तीन अंशवाला ही है। समझ में आया?

ऐसा क्या धर्म का?—इसके अपेक्षा तो अपवास करना, व्रत पालना या वस्त्र छोड़कर साधु हो जाये अब। मर जा न वहाँ बाहर साधु कौन अभी साधु (किसे कहना)? अपवास में भ्रमणा होती है इसे। भ्रमणा होती है कि मुझे कुछ धर्म होता है। है विकल्प। आहार का नहीं आना, उसके उपवास के कारण वहाँ नहीं आया और इसने ऐसा माना कि मैंने आहार के त्याग का विकल्प किया, इसलिए वहाँ आहार आया नहीं। अर्थात् सामनेवाले की सत्ता का उत्पाद नहीं हुआ, वह मेरे कारण से नहीं हुआ। समझ में आया? मैंने आज आहार का त्याग किया, विकल्प में आहार नहीं, ऐसा विकल्प हुआ, अब वह एक शुभराग है। उससे आहार नहीं आया, उसके कारण से नहीं आया, यह बात एकदम झूठ है।

अन्तराय कर्म क्या करे? अन्तराय कर्म इसने यह बाँधा। अन्तराय कर्म उसके घर में रहा। वह तो निमित्त से कथन है। बाकी वहाँ आहार उस प्रकार से आनेवाला था ही नहीं। और यहाँ विकल्प हुआ और ऐसा माना कि मैंने आहारत्याग का विकल्प किया, इसलिए मैंने आहार नहीं खाया। वह मिथ्यात्वभाव है। कठिन काम, भाई! यह जहाँ हो, वहाँ मिथ्यात्व ही होगा? मिथ्यात्व, वह बादशाह है। बादशाह अनादि का जहाँ हो, वहाँ चिपका हुआ है। आहाहा!

तत्त्व को अतत्त्व माने, अतत्त्व को तत्त्व माने, एक अवस्था की उत्पत्ति स्वयं से (हुई), उसे पर के कारण से (हुई ऐसा) माने, पर की उत्पत्ति मेरे कारण माने, यह महा दो द्रव्यों की एकता का मिथ्यात्वभाव है, भाई! उसके जैसा पाप कोई (है नहीं)। लोगों को ऐसे हिंसा की क्रिया देखे, वहाँ दया की क्रिया देखे, तो ऐसा लगता है कि हाँ, यह कुछ करता है। यह मिथ्यात्वभाव सेवन करता है, उसकी तुझे खबर नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि, इससे सत्ता भी उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप त्रिलक्षण जानना। इससे अर्थात् क्या? ऐई! क्या? द्रव्य का कहा; द्रव्य का कहा, पर्याय का नहीं। पहले द्रव्य का कहा, इस प्रकार सत्ता का भी उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप जानना। जैसी वस्तु की नयी अवस्था उपजे, वह एक समय में तीन अंशवाली वस्तु कही। इसी प्रकार उसके सत्ता नाम के गुण में भी तीन अंशवाली सत्ता जानना। आहाहा! कितना स्पष्ट किया है। ओहोहो! सन्तों ने जंगल में रहकर.... यह गुजराती कितना किया है। देखो न, इन भाई ने किया है- हिम्मतभाई ने। आहाहा! समझ में आया?

अरे भाई! प्रत्येक पदार्थ का एक-एक अंश उसे यहाँ अवान्तरसत्ता कहेंगे। और सब होकर महासत्ता कहेंगे। कैसी कथन की पद्धति तो देखो! वस्तु का वस्तुपना एकरूप और अनेकरूप, इस प्रकार से सिद्ध करते हैं। सत्ता नाम का गुण है, वह गुण है, वह एकरूप है। परन्तु उसके अन्तर्भेद गिनो तो तीन अंश अवान्तरसत्ता है। उत्पाद, उत्पाद के कारण; व्यय, व्यय के कारण; ध्रुव, ध्रुव के कारण।

पूरी सत्ता को महासत्ता कहते हैं, तो एक-एक अंश के अन्तर्भेद को अवान्तरसत्ता कहते हैं। जरा यह तो तत्त्व का विषय है ऐसा कि जरा इसे ध्यान रखकर समझे तो समझ में आये ऐसा है। इसका घोटाला उल्टा-उल्टा कहाँ है, इसकी इसे अनादि से खबर नहीं है। भगवान आत्मा तो ज्ञायकभाव है। उस ज्ञायकभावपने की दृष्टि के कारण उसमें ज्ञान और आनन्द की पर्याय का उत्पाद होता है, पुरानी पर्याय का व्यय होता है, ध्रुवरूप से कायम रहता है। इसी प्रकार आत्मा, उसमें जैसे आत्मा के तीन अंश लिये, वैसे ही आनन्द के तीन अंश लेना। यहाँ सत्ता के लेंगे, वैसे आनन्द के लेना। कि आत्मा वस्तु है, उसकी भी जब त्रिअंशी-तीन अंशवाली गिनी तो उसका आनन्द नाम का जो गुण है, वह भी तीन

अंशवाला है। समझ में आया?

एक आनन्द की पर्यायरूप उत्पन्न हुआ। पुराने आनन्द की पर्याय अथवा दुःख की पर्याय का नाश हुआ। और आनन्दगुण से कायमरूप वह ध्रुव रहा। एक आनन्द के भी तीन अंशवाली चीज़ गिनने में आयी है। आहाहा! इसमें समझ में आता है या नहीं? ऐई! माथुरभाई! यह तो सब सादी भाषा की बात है। इसमें कोई बड़े संस्कृत और व्याकरण का कुछ पढ़ा हो तो समझ में आये, ऐसा कुछ इसमें है नहीं। आहाहा!

इस प्रकार सत्ता भी वस्तु जैसे कही, वैसे उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वरूप सत्ता जानना। अस्तित्व नाम का जो गुण है जीव में या परमाणु में अस्तित्वगुण। पहला ही गुण सीखते हैं न, अस्तित्व-सत्ता। उसमें नहीं? जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में। छह सामान्यगुण प्रत्येक द्रव्य में होते हैं। अस्तित्वगुण के कारण से जीव नया उत्पन्न नहीं होता, नाश नहीं होता, पर की आशा रखता नहीं। पर की अपेक्षा नहीं रखता, ऐसा। अपने अस्तित्व के लिये पर की अपेक्षा नहीं रखता।

इसलिए कहते हैं कि जैसे वस्तु, वैसे सत्ता भी उत्पाद-व्यय-ध्रुव त्रिलक्षणवाली जानना। **क्योंकि भाव और भाववान का कथंचित् एक स्वरूप होता है।** भाव जो सत्ता और भाववान अर्थात् सत्तावान द्रव्य। उसके कथंचित् एक स्वरूप है। क्योंकि भाव के लक्षण, नाम, प्रयोजन में अन्तर है। भाववान का लक्षण, प्रयोजन अन्तर है, इस अपेक्षा से। कथंचित् एक स्वरूप होता है। सर्वथा एक स्वरूप नहीं। समझ में आया इसमें?

जैसे यह आत्मा है, सर्वज्ञस्वरूपी भगवान आत्मा है। अब जब वह है तो उसके तीन अंश ज्ञान के पड़े। नयी अवस्था ज्ञान की उत्पन्न हो, समय-समय में उपजती है। समय-समय में न उपजे तो दो समय में उपजते तो वह उसका कारण है। छोटे में छोटे काल में नयी अवस्था स्वयं से होती है, पुरानी अवस्था स्वयं से जाती है (व्यय होती है), सदृशरूप कायम स्वयं से रहता है, ऐसा जो ज्ञान का स्वभाव है अथवा द्रव्य का स्वभाव है, ऐसा ही ज्ञान का स्वभाव है। समझ में आया? ऐसा उसकी सत्ता का स्वभाव है। आहाहा! **और वह (सत्ता) 'एक' है,...**

अब यहाँ यह गाथा है न सत्ता 'भंगोत्पादध्रौव्यात्मिका' यह अन्तिम शब्द है एका।

जैसी वस्तु है आत्मा और परमाणु, उत्पाद-व्यय और ध्रुव त्रिअंशवाली, ऐसी ही उसकी सत्ता उत्पाद-व्यय-ध्रुववाली है। इस प्रकार सत्ता के साथ दूसरे पद का पहला वाक्य कहा। अब उसका वाक्य कहा सत्ता एका अन्तिम वाक्य अब। **वह (सत्ता) 'एक' है,.... 'एक' है, क्योंकि वह त्रिलक्षणवाले समस्त वस्तुविस्तार का सादृश्य सूचित करती है।** सब है, 'है', उत्पाद है, व्यय है, ध्रुव है, सब है। वह सब है और एकरूप सत्ता संग्रहनय से एक सत्ता कहने में आती है। एक कहने से 'है' 'है' की अपेक्षा से। समझ में आया? कहीं सब एक नहीं हो जाता।

परन्तु है। 'आत्मा है।' उसका ध्रुवपना है, उसके पर्याय का उत्पादपना है, व्ययपना है, परमाणुपना है, उत्पादपना है, व्ययपना-ध्रुवपना है। एक सत्ता। कहो, समझ में आया? इस कारण त्रिलक्षणवाले समस्त वस्तुविस्तार का सदृश्यपना—समानता सूचित करता है। एका में। या कोई है और कोई नहीं, ऐसा है? व्यय भी है, उत्पाद भी है। देखो, यहाँ सत् सिद्ध करते हैं। प्रत्येक परमाणु में और आत्मा में व्यय अर्थात् अवस्था का नाश होना भी है, उत्पाद भी है, ध्रुव भी है।

जब है... है... है... सब कहो, तब एक में सब आ जाता है। 'है' बस। उसमें एक उत्पाद है और व्यय नहीं, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! और वह सत्ता, अब आया दूसरा। 'सत्ता सो पयत्था' वहाँ आया। मूल गाथा में। यह सत्ता अस्तित्ववाला भावगुण परमाणु में, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और जीव में। निगोद के जो अनन्त जीव हैं जो एक शरीर के अन्दर कहलाते हैं। शरीर में नहीं, वह जीव, जीव की सत्ता में है। शरीर की सत्ता शरीर की सत्ता से है।

शरीर अनन्त रजकणों का बना हुआ स्कन्ध है। उसके उत्पाद, व्यय और ध्रुव शरीर के शरीर में हैं। और निगोद के अनन्त जीव में एक-एक जीव का उत्पाद, व्यय और ध्रुव तीन अंशवाला, वह निगोद का जीव है। ऐसे दूसरे अनन्त साथ में तीन अंशवाले हैं। अब उन्हें 'है' ऐसा कहना, उसे एकपना हो गया। समझ में आया? यह पठन कैसा होगा यह? यह तो वीतरागी विज्ञान है, भाई! चन्द्र का सिर फोड़े और बेचारे अन्दर इतने गोते खायें। कुछ लेख आते हैं, अलग गुण के, अब भाई इसका कर और इसे मान न! वह तो है वह

मिलेगा। अब उसके ठिकाने बिना के काम करते हैं अभी बेचारे, उसके लिये तो एकदम डाँवाडोल।

उसे कर्म है वह यहाँ से स्वर्ग में ले जाता है, ऐसा नहीं है। एक-एक परमाणु तीन अंशवाला तो उसका एक-एक गुण तीन अंशवाला, उसका अस्तित्व यह एकरूप जो सब 'है... है' वही '**सर्वपदार्थस्थिति' है;....** सबमें स्थित है न वह ? उत्पादपने में है, व्ययपने में है, ध्रुवपने में है, आत्मापने में है, परमाणुपने में है। ध्रुव, वह अधर्मास्ति आदि है। '**सर्वपदार्थस्थिति' है;....** क्योंकि उसके कारण ही-सत्ता के कारण ही सर्व पदार्थों में त्रिलक्षण की-तीन लक्षण की 'सत्' ऐसे कथन की, तीन लक्षण की, सत् ऐसे कथन की और सत् ऐसे ज्ञान की उपलब्धि होती है।

क्या कहा यह ? अनन्त आत्मायें हैं, अनन्त परमाणु हैं, असंख्य कालाणु हैं। वह सब है। वह सर्वपदार्थस्थित है। अस्तित्व सब पदार्थों में है। किसी में अस्तित्व नहीं है- ऐसा है ? इस कारण कि उसके कारण ही सर्व पदार्थों में त्रिलक्षण की सर्व पदार्थ तीन लक्षणवाले की वह भी सत्। वह तो तीन लक्षणवाला एक बात। वस्तु। दूसरा सत् कथन वाणी और तीसरा सत् का ज्ञान, तीन आ गये। आगम ज्ञान और शब्द समयसार ज्ञानसमय, अर्थसमय। गजब बात, भाई! यह धर्म कथा कैसी होगी ऐसी ?

एक बार श्रीमद् में आता है। श्रीमद् राजचन्द्र में। छह काय की बातें करे न पूरे दिन। छह काय के जीव ऐसे होते हैं और छह काय के जीव ऐसे होते हैं। महाराज! अब छह काय के जीव सब कैसे होते हैं, यह सुना बहुत। अब यह समकित का निश्चित करना, श्रीमद् में आता है। भाई! भई, यह तो सुना बहुत काल से। पूरे दिन यह छह काय के जीव ऐसे हैं और एकेन्द्रिय के जीव और पृथ्वीकाय ऐसे होते हैं न। अब यह तो बहुत बार सुना, लो! इस समकित का करना। कुछ भाषा दूसरी है। हें! व्यवस्थित करना। समकित की रचना करना आज। यह कर न अब। यह है... है... है... है... उसका तू ज्ञान करनेवाला है। उनकी दया पालनेवाला, उनकी सत्ता का स्वीकार करनेवाला, ज्ञान तेरा है। सब है, उसका स्वीकार करनेवाला। यहाँ कहा न ?

ऐसी प्रतीति की उपलब्धि होती है। ज्ञान में सब है। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु,

तीन अंशवाली वस्तु, ऐसे तीन अंशवाली सत्ता। सर्वपदार्थस्थित है, ऐसा ज्ञान तुझे होता है। वह तेरा ज्ञान ऐसा है। समझ में आया? कथन में भी ऐसा आवे 'सत्' वस्तु में भी ऐसा आवे तीन लक्षणवाला 'सत्' तीन लक्षणवाला सत्। समझ में आया? आहाहा! उत्पाद, व्यय और ध्रुव तो भिन्न करके एक-एक अंश स्वयं से है, ऐसा सिद्ध कर दिया। अब समझ में आवे नहीं, समझे नहीं और नहीं, इसके बिना हो नहीं—इसके बिना होगा नहीं। कर्म के बिना विकार होगा नहीं। ठीक! आत्मा न हो तो खाने की क्रिया होगी नहीं। आत्मा न हो तो हिल नहीं सकेगा। इस शरीर को हिला सके, वह आत्मा। सब भ्रमणा और अज्ञान है। समझ में आया? सर्वपदार्थस्थित है। क्योंकि एक सत्ता के कारण ही सर्व पदार्थ में त्रिलक्षण की, तीन लक्षणवाला, एक बात, यह वस्तु हुई। सत् ऐसा कथन हुआ, (यह) वाणी हुई।

वस्तु तीन लक्षणवाली कथन सत् सब है, ऐसा और उसका ज्ञान। सब है, उसका जो ज्ञान। पदार्थ, वाणी और ज्ञान तीनों एकरूप हुए, ऐसा इसमें कहते हैं। एकरूप अर्थात् सब है, उसका तीन लक्षणवाला कथन भी सत् है ऐसा और ज्ञान भी सब है, ऐसा ज्ञान होता है। ज्ञान में ऐसा हो कि कुछ है और कुछ नहीं? व्यय भी है, ऐसा ज्ञान होता है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! यह व्यक्ति ऐसा हो और पढ़े नहीं। मस्तिष्क काम न करे और वह बाहर की बात हो तो चले यह व्रत पालने और दूसरे जीव की दया पालना और यह रोटियाँ छोड़ना, सब भ्रमणा अज्ञानभाव कावे सेवन करने की बात इसे ठीक लगती है।

यह बात सम्यग्ज्ञान की चीज़! पंचास्तिकाय शब्द द्वारा ज्ञान की प्रसिद्धि के अर्थ पदार्थ की प्रसिद्धि करते हैं। उसमें आया है न? पहले आ गया। आत्मा में सम्यग्ज्ञान की प्रसिद्धि के लिये शब्द द्वारा पदार्थ की व्याख्या कुन्दकुन्दाचार्य महाराज करते हैं। ऐसा इरादा है। ऐसा आया था न? समझ में आया? यह वस्तु सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त ऐसी कहीं नहीं हो सकती। क्योंकि आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है।

यहाँ तो देखो, नहीं कहा कि, जितना है, उतना उसके जानने की पर्यायवाला प्रतीतिवाला जीव है। भाई! यह कहा न, प्रतीति कही न, देखो! भले छद्मस्थ हो। जितना है और जितने द्रव्य अनन्त और जितनी उनकी तीन अंशवाली सत्ता, उन सबका ज्ञान एकरूप हो, ऐसा जीव है। ज्ञान हो। उसे पर की पाले, दया पाले या पर को रखे या छोड़े, ऐसा आत्मा

में नहीं है। आहाहा! प्रतीति करे, ऐसा है। समझ में आया ?

धीरे से शान्ति से समझना न हो और फिर यह झगड़ा खड़ा करे, यह तो सब निश्चय से है, निश्चय से है। ऐसा कहे, भाई! यह तो निश्चय से है। परन्तु व्यवहार क्या ? व्यवहार कौन सा दूसरा ? आहाहा! इसी और इसी के द्रव्य में भेद डालना हो तो उत्पाद-व्यय, वह व्यवहार है; ध्रुव, वह निश्चय है। समझ में आया ? एक समय की अवस्था उत्पाद-व्यय की है, वह व्यवहार है; ध्रुव, वह निश्चय है। दोनों का यथार्थ ज्ञान करना, यह बात उचित है। समझ में आया ?

कहो, क्या है ? कथन आया था। ज्ञान ने जाना है या कथन ने जाना है ? कथन का भी ज्ञान, त्रिलक्षण का भी ज्ञान। समझ में आया ? कथन में भी उत्पाद-व्यय-ध्रुव अंशवाली सत्ता है या नहीं ? कथन है, उसमें भी उत्पाद-व्यय-ध्रुववाले परमाणु हैं, इसका नाम कथन है। वह कहाँ आत्मा का है ? आत्मा कहाँ कथन करता है या बोलता है। आहाहा! कहो, समझ में आया ? इस वाणी के कथन में भी एक-एक रजकण में तीन लक्षणवाला परमाणु तो उसकी तीन लक्षणवाली सत्ता तो 'है', ऐसा यहाँ ज्ञान होता है। बस, इतनी बात आयी। आहाहा! है, वैसा ज्ञान होता है।

दूसरे प्रकार से कहे न ? भगवान ने अनन्त निगोद के जीव कहे, एकेन्द्रिय के जीव कहे, इसलिए दया पालने के लिये कहे हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? बड़ा विवाद आया है न, उन दो व्यक्तियों को तेरापन्थी और स्थानकवासी को व्याकरण के एक शब्द में एक महीने चर्चा चली थी। एक शब्द है व्याकरण का कि सव्वजीवरखणसायभगवया -पावयमसुखयम - यह एक शब्द है। एक शब्द की एक महीने चर्चा चली। पचास वर्ष पहले की बात है। एक महीने चर्चा, हों!

एक ओर तेरापन्थी तथा एक ओर स्थानकवासी। जवाहरलालजी के साधु। यह खबर नहीं, किस गाँव में हुई है। बड़ी चर्चा। लीलाधरभाई! लीलाधर गया था न हमारे एक तेरापन्थी बड़ा साधु था। छोड़ दिया एकदम। हमारे साथ रहे थे। यहाँ आये थे। वह कहे, ऐसे बहुत पढ़ा हुआ-वांचन किया हुआ सही न ? श्रद्धा का ठिकाना नहीं। अस्थिर मस्तिष्क था। वह यहाँ आये थे। उन्हें मेरे प्रति बहुत प्रेम परन्तु वापस निर्णय का ठिकाना

नहीं होता। वे कहते थे कि एक महीने चर्चा (चली) जहाँ कुछ ठीक दलील आवे उन तेरापन्थी की, वहाँ स्थानकवासी को अकुलाहट हो। उनका जहाँ ठीक आवे वहाँ उनको अकुलाहट हो। खाना भावे नहीं। आहार लेने जाये तो भावे नहीं। क्या चर्चा में क्या दोनों की? एक शब्द प्रश्न व्याकरण का है कि भगवान ने सव्वजीवरखणसायभगवया-पावयमसुखयम - यह एक शब्द है। इसका अर्थ करने लगे स्थानकवासी। कि सव्वजीवरखणसयाअे। सब जीव की रक्षा के लिये प्रवचन किये। वह कहे कि नहीं, रक्षा के लिये नहीं परन्तु परजीव को नहीं मारने के लिये प्रवचन किये। क्योंकि तेरापन्थी तो परजीव की रक्षा करना, वह तो मानते नहीं। समझ में आया? वह नहीं, वह तो उसकी श्रद्धा का कुछ ठिकाना ही नहीं।

यह तो तेरापन्थी की श्रद्धा का कुछ ठिकाना नहीं। कुछ ठिकाना ही नहीं। वस्तु की खबर ही नहीं। परन्तु एक पद पर महीने (चर्चा चली)। हों! दोनों की खोटी बात। भगवान ने प्रवचन किये, वह ज्ञान करने के लिये, जैसा है, वैसा ज्ञान करने के लिये किये हैं। पर की रक्षा करना, वह कहाँ और पर को न मारना तो भी कहाँ? वह तो जगत की स्वतन्त्र सत्ता है। आहाहा! है? नहीं रहती। बहुत वर्ष पहले, हों! लीलाधरजी हमारे पास आये थे। (संवत्) १९७६ के वर्ष के पहले की बात है। ७६ में पहले नागनेश में आये थे। नागनेश में। ७६ के वर्ष। सुनने आये थे। तब सब बात करते थे। आचारंग का पहला अध्याय है न? सूक्ष्म है और वह पढ़ते थे। ऐसे एक महीने चर्चा चली। खून उबला। सामने की दलील कुछ ठीक लगे, वहाँ वह कहे, ऐसा नहीं। परन्तु दोनों की दलील खोटी है।

भगवान ने यहाँ क्या कहा? कि जो जगत के प्राणी अनन्त जीव हैं, अनन्त परमाणु हैं, असंख्य कालाणु हैं। वे सब हैं। हैं, उनका जीव को ज्ञान हो, उस ज्ञान के लिये बात की है। हें? अपनी बात सिद्ध करने.... आहाहा! ऐसी प्रतीति की उपलब्धि होती है। क्या कहते हैं? प्रत्येक पदार्थ की सत्ता तीन लक्षणवाली है, वह वस्तु। कथन भी तीन लक्षणवाली सत्ता है, ऐसा कथन और उसकी ज्ञान की प्राप्ति।

अनन्त पदार्थ सब एक समय में तीन लक्षणवाले हैं, ऐसा यहाँ ज्ञान होना। जीव को ज्ञान होना, इसका नाम सम्यग्ज्ञान के लिये कहा है। दूसरे को पाल सके और टाल सके

और रख सके, इसलिए प्रवचन किये हैं, ऐसा नहीं है। परन्तु उसमें शब्द ऐसा है भाई! सौ जीव रखण है न, इसलिए जो रक्षा के लिये कहा है। भाषा तो पाठ ऐसा है न ? रक्षा तो अपने भी ऐसा आता है। नियमसार में 'रक्षा के लिये' (परन्तु) रक्षा का अर्थ क्या ? (है, वह तो) समझना चाहिए न ? इसे ऐसा विकल्प होता है कि यह न मरे, इतना। बाकी मेर, न मरे, वह कहीं तेरे आधीन है ? वह तो उसकी पर्याय स्वतन्त्र है। उसका उपजना मृत्यु का अथवा जीवन का उपजना उसके अंश से उसकी रक्षा के कारण से है। तेरी सत्ता से है ? समझ में आया ?

अनुकम्पा तो आत्मा की अनुकम्पा, वह अनुकम्पा है। अनुकम्पा बाहर में कहाँ धूल में थी ? पर की सत्ता की अनुकम्पा ? पर के अस्तित्व की अनुकम्पा करना कि मैं अनुकम्पा करूँ तो वह रहे, ऐसा ? मैं अनुकम्पा करूँ तो वह जीव रहे। नहीं, नहीं। ठीक है। यह तो एक बात है। सब बात ही खोटी-खोटी है। यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! जँचे ऐसा है, हों; न जँचे, ऐसा नहीं। यह तो सादी भाषा और सादा ज्ञान है। उसमें कुछ संस्कृत व्याकरण बड़ा पढ़ा हो तो जँचे, ऐसा कुछ है नहीं। यह तो आठ वर्ष की बालिका को भी जँचे। समझ में आया ?

इस जगत में एक आत्मा नहीं परन्तु अनन्त आत्मायें हैं। वैसे एक परमाणु नहीं परन्तु अनन्तगुणे आत्मा की संख्या से परमाणु हैं। 'है सब'। प्रत्येक वस्तु तीन लक्षणवाली तो उसका एक-एक गुण सत्ता तीन लक्षणवाली है। तीन लक्षणवाला है तो उसका कथन है तीन लक्षणवाला और उसका ज्ञान है, तीन लक्षणवाला। बस। ज्ञान में यह तीन लक्षणवाला पदार्थ है, ऐसा ज्ञान होता है। परन्तु उसकी पर्याय को मैं उत्पन्न करूँ या मैं उसे जिला दूँ या मारूँ, ऐसा वस्तु में है नहीं। आहाहा! क्या हो ? जगत लुटाया है न ? अनादि से लुटाया है। वास्तविक चैतन्य प्रभु, वह ज्ञान का सागर चैतन्यमूर्ति प्रभु है। वह तो जगत के अनन्त पदार्थों को एक समय में जाने, वैसी पर्यायवाला है। समझ में आया ? किसी का करे और किसी को रखे-टाले, ऐसा वह आत्मा नहीं है। आहाहा! क्या हो ? दूसरे को समझा सके, ऐसा भी आत्मा नहीं है। तथा दूसरे से समझे, ऐसा भी आत्मा नहीं है। ऐई!

क्यों ? कि उसके ज्ञान का गुण जैसा सत्ता का उत्पाद, व्यय और ध्रुव के अंशवाला

है, वैसा उसका ज्ञान गुण तीन अंशवाला है। उस क्षण में उसके ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हो, पूर्व की व्यय हो और ध्रुव रहे। अब यह किससे समझे और किसे यह समझाये? अरे! ऐसी गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : इसमें तो धर्म की प्रभावना होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म की प्रभावना यहाँ होती होगी या बाहर में होती होगी? विचार करे कि पर्याय तुम्हारे अस्तित्व में होती है या इस अस्तित्व में होती है? ज्ञान का अंश है तो यहाँ रहा, यहाँ होगा तो यहाँ रहा। चिमनभाई! इसमें कुछ बोला जाये, ऐसा कुछ नहीं है। भगवानजीभाई! भगवान के नियम के कायदा वस्तु के कायदा हैं। ऐसा भगवान ने देखा, तत्प्रमाण लॉजिक-न्याय से तो कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं। सभी चीज़ें सर्व पदार्थों में सत्ता तीन लक्षणवाली है। है न? और सत् ऐसा कथन भी सत् ऐसा सब। बताया है। सत् कहते तो, सब है ऐसा। वाणी। बस एक शब्द जगत 'है' 'है' सब सत् और सबका सत्, ऐसी प्रतीति, सब है।

अनन्त आत्मायें हैं तीन लक्षणवाले; अनन्त गुण हैं, तीन लक्षणवाले। यह सब है, ऐसी प्रतीति की उपलब्धि। बस, उसके ज्ञान की प्राप्ति। वह भी सब है, ऐसे ज्ञान की प्राप्ति यहाँ होती है। मेरे कारण से यह है और उसके कारण से यह है, ऐसा इसमें नहीं आया। हें? समझ में आया? आहाहा! गजब समेटा है। सर्व पदार्थ स्थित है, देखो! इसमें एक तर्क हुआ, ९० के वर्ष में। प्रेमचन्द सेठ ने! देखो, इसमें सर्वपदार्थस्थित सब एक है न। वह कहाँ यहाँ बात है?

यहाँ तो है... है... है... है... है... सदृश्यपना, वह सर्व पदार्थ स्थित। उन सर्व पदार्थ में एक-दूसरा आत्मा है और व्यापक है और स्थित है, ऐसा कहाँ है यहाँ? तो सर्वपदार्थस्थित कहाँ से रहेगा? सर्व पदार्थ हैं। उसमें वह पदार्थ अपने तीन लक्षण से हैं। आहाहा! उन सिद्ध भगवान को तीन लक्षण है। अरे! उन्हें भी अभी पर्याय लागू पड़ी? वे कहते थे न। हें! डेरिया! भाई! पर्याय में तो अभी भगवान को भी अभी छोड़ा नहीं। बेचारे को कुछ खबर नहीं और बड़े भाषण करे। और वह समझे न कुछ ब्रह्मचर्य पालते हों और वस्त्र-बस्त्र बदल डाले, इतना सा ओढ़ते हों, इतना वापस बड़ा पैसेवाला हो कुछ, ओहोहो! गजब

भाषण देते हैं। गधा भोंके ऐसा हो सब। समझ में आया? आहाहा!

पर्याय सिद्ध को भी लागू? परन्तु बापू! सिद्ध एक आत्मा है या नहीं? और आत्मा है तो उसके तीन अंश उत्पाद, व्यय और ध्रुव ये तीन लक्षणवाले तो यहाँ द्रव्य के सिद्ध किये। और उसका एक-एक गुण सिद्ध का है, ज्ञानादि, उसके भी तीन लक्षणवाले सत्ता की अपेक्षा से सिद्ध किये। तो सिद्ध भगवान को भी एक समय का केवलज्ञान है, वह पहले समय में उत्पन्न हुआ, वह दूसरे समय में नहीं रहता। केवलज्ञान। आहाहा! गजब बात! केवलज्ञान को उत्पाद-व्यय लगा दिया, वापस कहे, परन्तु भाई! यह तो अपने को लगाया, वैसे सब गुणों को ले लेना। हें?

'है', बस, इसका ज्ञान। सब है, उसका ज्ञान। वह तेरी पर्याय का स्वभाव है। वह भी उत्पाद प्रतीति का तेरे कारण से। वह सब महासत्ता है। सब है, इसलिए यहाँ ज्ञान की पर्याय उत्पाद हुआ, ऐसा नहीं। नहीं। नहीं। ऐसा कहाँ कहा है? उसके कारण से अर्थात् यह है... है, ऐसा यहाँ ज्ञान हुआ। ऐसा कहते हैं। एकरूप का ज्ञान हुआ। एकरूप वस्तु तीन लक्षण, एकरूप कथन और एकरूप ज्ञान, ऐसा। ऐसी वस्तु है, इसलिए ऐसा ज्ञान हुआ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ज्ञेय ऐसा है, इसलिए ज्ञान भी ऐसा है। ज्ञेय के कारण कहाँ है? है, इसलिए यहाँ हुआ अपने कारण से, ऐसा कहते हैं। सत् की प्रसिद्धि का इसका भाव इतना है, यह प्रसिद्ध करते हैं। पर सत्ता है, इसलिए परन्तु जैसा उसका ज्ञान है, वैसा उसका विषय भी पूर्ण है न पूरा। परन्तु विषय है, इसलिए यहाँ ज्ञान है उसका? समझ में आया? बहुत सूक्ष्म। सूक्ष्म कातने जाये तो।

लो! '**सविश्वरूप**' इसमें पूरा हुआ। अब सविश्वरूप वह तो आया सर्व पदार्थ स्थित कहा। अब '**सविश्वरूप**' है। क्या कहते हैं? सत्ता सविश्व समस्तरूप है। ऐसा सविश्वरूप है। सत्ता समस्तरूप है। सब समस्तरूप है। अनन्त आत्मा के रूप, अनन्त परमाणु सविश्वरूप है-समस्तरूप है। क्योंकि वे विश्व के रूपों सहित अर्थात् समस्त वस्तु विस्तार के त्रिलक्षणवाले समस्त वस्तु के विस्तार के तीन लक्षणवाले स्वभावसहित वर्तते हैं।

यह विश्वरूप है, ऐसा कहा। विश्वरूप है। एक ओर एक्का कहा। एक ओर

विश्वरूप कहा। यह अलग अपेक्षा है। विश्वरूप है न, सब सत्ता पूरा विश्व। समस्त है या नहीं ? या थोड़ेरूप सत्ता को दूसरे रूप सत्ता, ऐसा है ? और वह सत्ता अनन्त पर्यायमय है। यह सत्ता वर्णन करना है न! अनन्त भेदवाली है। अनन्त प्रकारवाली है। अनन्त पर्यायें हैं, अनन्त द्रव्य हैं, अनन्त गुण हैं, अनन्त पर्याय है। ऐसी अनन्त पर्यायमय महासत्ता एकरूप सत्ता को यहाँ अनन्त पर्यायमय कहा जाता है।

क्योंकि वह त्रिलक्षणवाली अनन्त द्रव्यपर्यायरूप व्यक्तियों से व्याप्त है। देखा ? अनन्त पर्यायमय अर्थात् क्या कि अनन्त द्रव्य और पर्यायरूप व्यक्तियों से व्याप्त है। अनन्त द्रव्य, भेद और उनकी पर्यायें, यह सब अनन्त पर्यायमय हो गया। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु और उनकी पर्यायें, यह सब अनन्त पर्यायमय, अनन्त भेदरूप वस्तु है। उसे ज्ञानी ज्ञान में सब जैसे है, वैसे जानता है। समझ में आया ? हें ? विश्वरूप यह आ गया न, आ गया। फिर कितना लम्बा करे ? कहा न ? उसमें ऐसा कहा सर्वपदार्थस्थित है। क्या है ? है, वह सर्व पदार्थ में है या किसी में है और नहीं ? यह वहाँ रहा। बस हो गया। 'है'। यहाँ विश्वरूप है, ऐसा सिद्ध करना है। एकरूप नहीं। महासत्ता है न ? समस्तरूप है। समस्तरूप है। आत्मापने आत्मारूप, परमाणुपने परमाणुरूप, धर्मास्तिकायपने धर्मास्तिकायरूप सविश्वरूप है। आहाहा! समझ में आया ?

इस संसार का वह अभ्यास करना हो तो बहुत सिर फोड़े। लो! हें ? यह एम.ए. करना और धूलधाणी अकेला पाप बँधे। पढ़ने के लिये। ऐई अतुलभाई! समय मिले तो तुरन्त चला आवे बेचारा, हों! तुरन्त यहाँ आवे समय मिले तो छोड़ कॉलेज-बॉलेज। आहाहा! एक व्यक्ति तो अभी कहता था, भाई गये न मणिकान्त, वह कहता था। मेरे भाई ने महाराज से सुना तो कॉलेज छोड़ दिया, कहते हैं। हाय! हाय! यह सब तो पाप है। अब मुझे यह करना नहीं। मणिकान्त गये न ? तार आया था उसके पिता का। समझ में आया ?

इसमें बालक, जवान और वृद्ध आत्मा कहाँ है ? आत्मा तो तीन लक्षणवाला है। उसे जाने और पहिचाने। और वास्तव में तीन लक्षण में भी उत्पाद-व्यय है, वह व्यवहार है और ध्रुव है, वह निश्चय; इसलिए ध्रुव का आश्रय लेकर तीन लक्षण को जानना। समझ में आया ? यहाँ ज्ञान और आत्मा। समझ में आया ? आहाहा!

और '**अनन्त पर्यायमय' है,....** अनन्त भेद है न ? महासत्ता एकरूप परन्तु एकरूप हुई है किस रीति से ? कि अनन्त भेदवाली है। अनन्त भेदवाली है। कुछ बाकी नहीं। अनन्त जितने द्रव्य-गुण पर्यायें सब भेदवाली है। क्योंकि एक-एक होकर अनन्त हुआ न ? वह अनन्त भेदवाली वस्तु है। क्योंकि वह तीन लक्षणवाली अनन्त द्रव्य और अनन्त पर्याय, देखो ! वस्तु भी भेदवाली है न ? अनन्त द्रव्य हैं न ? एक ही द्रव्य नहीं है, पर्याय भी अनन्त है।

व्यक्ति अर्थात् प्रगटता, द्रव्य की प्रगटता और पर्याय की प्रगटता... वह सत्ता अनन्त पर्याय में व्याप्त है। अनन्त भेदों में व्याप्त है। इस प्रकार सामान्य-विशेषात्मक सत्ता का, कहो, सामान्य अर्थात् क्या यह ?—महासत्ता, विशेष अर्थात् अवान्तर सत्ता, ऐसा लेना। यहाँ वह सामान्य-विशेष नहीं लिया। वह द्रव्य अर्थात् सामान्य और पर्याय तथा गुणभेद विशेष, ऐसा यहाँ नहीं लेना। नीचे लिखा है, देखो। **'सामान्यात्मक' का अर्थ 'महा' समझना चाहिए और 'विशेषात्मक' का अर्थ 'अवान्तर' समझना चाहिए। सामान्य विशेष के दूसरे अर्थ यहाँ नहीं समझना।**

सामान्य—विशेष सत्ता का उसके सामान्य पहलू की अपेक्षा से, महासत्ता की अपेक्षा से वर्णन किया। महासत्तारूप पहलू की अपेक्षा से वर्णन हुआ। अब इसकी प्रतिपक्ष अवान्तरसत्ता की व्याख्या करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

धारावाही प्रवचन नं. १३ (प्रवचन नं. १२), गाथा-८
दिनांक - २६-११-१९६९, कार्तिक कृष्ण ३, बुधवार

क्या कहा ? प्रत्येक वस्तु है, ऐसी सत्तारूप से गिनो तो महासत्ता अर्थात् सब है। वह 'है' उसमें भी अवान्तरसत्ता की अपेक्षा से है नहीं। पूरी चीज़ है, सब है, उसकी अपेक्षा से अन्तर्भेदरूप वह सब नहीं है। समझ में आया ? सूक्ष्म विषय है। पूरी वस्तु है सब, महासत्ता है। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु हैं। उस महासत्ता की अपेक्षा से अवान्तर सत्ता नहीं अथवा महासत्ता में अवान्तरसत्ता नहीं। पूरे में एक-एक रूपम नहीं। महासत्ता अवान्तरसत्ता की अपेक्षा से असत्ता है। समझ में आया ?

पूरापना है, वह थोड़ेपने की अपेक्षा से असत्ता है। लो ! ऐसा होने पर भी वह वास्तव में निरंकुश नहीं है। अर्थात् अंकुश बिना की अर्थात् विरोधपक्ष बिना की, प्रतिपक्ष बिना की नहीं है। वह प्रतिपक्ष है। सब है, इस अपेक्षा से वह बराबर है। परन्तु वापस इसके अन्तर्भेद की अपेक्षा से सब नहीं है। बराबर है या नहीं ? सबकी अपेक्षा से सब है और अन्तर्भेद की अपेक्षा से भी सब है, ऐसा हो सकता है ? सौ मनुष्य सौ मनुष्यरूप से है परन्तु सौ मनुष्य वापस एक मनुष्यरूप से वह सौपना है। देखो, एक वस्तु की स्थिति।

अब अनन्त आत्मायें एक-एक द्रव्य पूरा महासत्ता गिनो और सब महासत्ता गिनो, 'सब है।' इस अपेक्षा से उसमें सब एकमेकपना है, यह नहीं। पूरे में एकमेकपना नहीं। ऐसे प्रतिपक्ष सहित महासत्ता है। विशेष आगे कहा जायेगा। प्रतिपक्ष है। **सत्ता को असत्ता प्रतिपक्ष है;....** लो, पहला बोल यह आया। 'है सब', इसकी अपेक्षा से सत्ता असत्ता प्रतिपक्ष जो एक-एक चीज़ है, उस अपेक्षा से नहीं है। सत्ता और असत्ता प्रतिपक्ष है। 'है' इसकी अपेक्षा से 'नहीं' वह 'प्रतिपक्ष' है। सब है, इसकी अपेक्षा से एक-एक नहीं, यह प्रतिपक्ष है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : धर्म की बात करो न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह धर्म यह है। जहाँ सब है, वह भी है और अन्तर्भेद एक-एक अंश, एक-एक अंश सत् स्वतन्त्र है, ऐसा सिद्ध करना है। एक-एक अंश प्रत्येक द्रव्य का, पर्याय का अंश, उत्पाद का अंश, व्यय का अंश, ध्रुव का अंश, परमाणु के तीन, आत्मा

के तीन, अनन्त द्रव्यों के। वे अन्तर्भेद भी स्वतन्त्र स्वयं है। उस काल के उस-उस समय के वह-वह सत् है। परन्तु सब सत् की अपेक्षा से अन्तर्भेद के सत् की अपेक्षा से वह असत् है। समझ में आया? ऐसा वस्तु का सप्रतिपक्ष स्वभाव है। दूसरी रीति से कहें तो स्वचतुष्टयरूप से है, वह पर चतुष्टयरूप से नहीं है। लो, यह तो ठीक है न?

आत्मा और सब स्वचतुष्टयरूप है। आत्मा अपना द्रव्य, उसकी चौड़ाई, उसकी अवस्था और उसकी शक्ति, इसरूप से है। और दूसरा आत्मा दूसरे परमाणु की अपेक्षा से नहीं। उसकी अपेक्षा से भी है और अपनी अपेक्षा से भी है, ऐसा नहीं हो सकता। आहाहा! समझ में आया? ऐसा निर्णय कराने का अर्थ कि एक चीज़ अपनेरूप से है और पररूप से नहीं। अर्थात् पर से कुछ भी उसमें इसके अंश के लिये हो, ऐसा इसमें है नहीं। ऐसा पररूप से तो नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात ही अत्यन्त झूठी, यहाँ कहते हैं। कहो, समझ में आया?

यह पानी गर्म होता है, गर्म। वह स्वचतुष्टयरूप से पानी है। परमाणुरूप से परमाणु, क्षेत्ररूप से चौड़ाई, अवस्थारूप से उष्ण, शक्तिरूप से त्रिकाल गुण। उसरूप से है। परन्तु अग्निरूप से वह नहीं है। इसलिए अग्नि से गर्म हुआ है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : निमित्त के कारण से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके कारण से कुछ है ही नहीं। निमित्त के कारण से कुछ है ही नहीं। यह तो यहाँ सिद्ध करना है। महासत्ता का अस्तित्व अवान्तरसत्ता की अपेक्षा से असत्ता और अवान्तरसत्ता का अस्तित्व महासत्ता की अपेक्षा असत्ता। वास्तविक तत्त्व क्या है, इसका ज्ञान नहीं और इस धर्म के नाम से बड़ा घोटाला उठा। हम पर की दया पाल सकते हैं और पर का हित कर सकते हैं, यह सब ही दृष्टि अत्यन्त विपरीत है।

क्योंकि जो वस्तु अवान्तर अन्तर्भेद से भिन्न-भिन्न है, वह कहीं पर के कारण से है, ऐसा नहीं है। महा सब है, इसलिए उसके कारण से यह है, ऐसा है? वह तो स्वयं के कारण से स्वतन्त्र अवान्तर अन्तर्भेद स्वयं से है। एक-एक अंश की अवान्तरसत्ता आत्मा की एक-एक समय की अवस्था, वह अवान्तरसत्ता का अन्तर्भेद हुआ। वह उत्पाद, उत्पाद

के कारण से है। वह सब है, इसलिए है, ऐसा नहीं है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अरे! यह तो वीतरागमार्ग है। एक-एक समय की चीज़ भिन्न-भिन्न है। और वैसे उसका न माने तो उसकी दृष्टि में विपरीतता हो जाती है। समझ में आया? एक-एक अंश अवान्तर अर्थात् अन्तर्भेद। एक द्रव्य वस्तु, उसके अन्तर्भेद तीन। उत्पाद, व्यय और ध्रुव। अब महा रूप से है। परन्तु एक-एक अंश रूप से पूरा नहीं। और एक-एक अंश पूरेरूप से नहीं। एक अंश पूरेरूप से तीनपने है? समझ में आया? आहाहा!

यह बड़ा भेदज्ञान है। समझ में आया? 'भेदज्ञान, वह ज्ञान है बाकी बुरो अज्ञान' प्रत्येक पदार्थ ऐसा कहना कि हम और तुम हैं। यह हम और तुम है, यह हैं कि अपेक्षा से बराबर है। परन्तु हम और तुम भिन्न अर्थात् हमारे रूप से हम हैं और सब रूप से हम हैं, ऐसा नहीं। हम हमारे रूप से हैं तो सब रूप से नहीं और सब सबरूप से है, तो वे हमारे रूप से एकपने नहीं। उसमें बहियों में कुछ आवे, ऐसा है नहीं। आहाहा! वैसे तो लोग कहते हैं कि अनन्त आत्मा है। अनन्त जड़ द्रव्य है। परन्तु है तो उसका प्रत्येक का प्रत्येकपना भिन्न-भिन्न होकर सब है? या अकेला सत्ता अकेला सब होकर एक ही है, ऐसा ही है। है, वह तो सब है... है... है... है... है... है... है... है... इस अपेक्षा से सब एक है। परन्तु उसका एक-एक द्रव्य और एक-एक द्रव्य का अन्तर अंश-भाग उत्पाद-व्यय का एक-एक अंश, वह स्वयं से है। महासत्ता सब है, इसलिए उससे यह है, ऐसा नहीं। समझ में आया?

लो! यह स्पष्टीकरण आयेगा, हों! सत्ता को असत्ता प्रतिपक्ष है। त्रिलक्षण को अत्रिलक्षणपना प्रतिपक्ष है। एक-एक पदार्थ में तीन-तीन है। उत्पाद, व्यय और ध्रुव, एक समय के अन्दर। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में, एक समय में, एक-एक पदार्थ में तीन लक्षण हैं। नयी अवस्था उत्पन्न हो, पुरानी व्यय हो, ध्रुवपने रहे-तीन अंश। यह तीन लक्षण की अपेक्षा से अत्रिलक्षणपना अर्थात् तीन लक्षणपना नहीं। अर्थात् एक-एक लक्षणपना विरुद्ध है। अरे! गजब बात, भाई!

वस्तु तीन अंशवाली है, इस अपेक्षा से एक अंशवाली, उसका प्रतिपक्षपना है। भगवानजीभाई! सब मस्तिष्क करना पड़ेगा, फैलाना पड़ेगा। वह मगज के लड्डू बनाते हैं न, उसमें मगज फैलाना पड़ता होगा? आहाहा! इसी प्रकार कहते हैं कि मगज का

लड्डू है न, उसका जो उत्पाद होता है, उस उत्पाद के कारण सब है, इसलिए लड्डू का उत्पाद होता है, ऐसा नहीं-ऐसा कहते हैं। वह स्वयं से होता है। समझ में आया? दूसरी साथ में स्त्री है, अँगुलियाँ हैं, यह सब है; इसलिए वहाँ लड्डू की पर्याय उत्पाद होती है, ऐसा नहीं है। वजुभाई नहीं, यह तो लिखनेवाले हैं, इसलिए इन्हें क्या कहना? ऐई जेठाभाई! क्या? रामजीभाई कहे, ऐसा इसमें होगा? इसमें-लेखन में, ऐसा कहते हैं। परन्तु है या नहीं उसमें? हें? हजार लोग हैं, इसलिए एक मनुष्य है अन्दर? और एक मनुष्य है, इसलिए हजार मनुष्य है? सब भिन्न-भिन्न है। समझ में आया? आहाहा! द्रव्य का स्वरूप अनेकान्त है, इसमें यह बात सिद्ध करते हैं। आहाहा! समझ में आया इसमें?

यह सुनने की भाषा भी है, वहाँ ज्ञान होने का भी है। यहाँ ज्ञान भी है। समझ में आया? पूरा द्रव्य भी है। सब है। है, इसलिए वहाँ ज्ञान की पर्याय है? सब है, इसलिए वहाँ ज्ञान की पर्याय है? वह तो स्वतन्त्र पर्याय है। अवान्तर अन्तर्भेद है। समझ में आया? क्या परन्तु सिद्ध करते हैं। प्रत्येक द्रव्य का उस समय का अंश, वही सत् और उसी अपेक्षा से, वही अवान्तरसत्ता उस काल का वह सत् है। सब पूरा है, उसमें तीन काल का है और तीन काल है और सब है। इसलिए वह समय का अंश है, ऐसा नहीं। उस समय का अंश अवान्तरसत् का अंश वह त्रिकाल है, उसकी अपेक्षा से अवान्तरसत्ता से प्रतिपक्ष है। समझ में आया? सूक्ष्म है। आणन्दभाई!

वह तो ईश्वर की भक्ति करो और भगवान... भगवान करो। भगवान करो। धूल भी नहीं भगवान तेरा। भगवान तो तू यहाँ है। भगवान दूसरा कौन सा? तीर्थंकर तिरा दे, ऐसा है?

मुमुक्षु : तो कौन तिराता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा स्वयं ही अपने से तिरता है। भगवानजीभाई! णमो अरिहन्ताणं, यह क्या हुआ? यह तो विकल्प उठा। णमो अरिहन्ताणं, यह भाषा तो जड़ है। विकल्प उठा, वह राग है। तिरने का स्वभाव तो इसका अपना स्वतन्त्र उत्पाद होकर होता है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान की मूर्ति का आश्रय करने से जो समय की पर्याय उत्पन्न हुई, वह सत् है। अवान्तर अन्तर्भेद उस प्रकार से उस काल में उस प्रकार

का सत् है। सब सत् है, इसलिए इतना अंश सत् है, ऐसा नहीं है। उस अंश का सत् महासत् की अपेक्षा से असत्ता है और महासत्ता अंश की अपेक्षा से असत्ता है। समझ में आया? सब उत्पन्न हुआ, इसलिए यहाँ उत्पन्न हुआ, ऐसा नहीं, कहते हैं। ऐसा कहते हैं। ऐई! पूरी दुनिया के जितने द्रव्य हैं, एक समय में उपजते हैं-उत्पाद, इस प्रकार से है। वह सब है, इसलिए यहाँ उत्पाद है, ऐसा नहीं है। और यह एक उत्पाद है, वह सब है; इसलिए यह उत्पाद नहीं है। अवान्तर अन्तर्भेद की अपेक्षा से महासत्ता का अभाव है और महासत्ता की अपेक्षा से अवान्तरसत्ता का अभाव है। महासत्ता में अवान्तरसत्ता नहीं और अवान्तरसत्ता में महासत्ता नहीं। अरे! कठिन, भाई! आहाहा! हें? वस्तुस्थिति ऐसी है। लोगों को ख्याल न आवे, इससे कहीं वस्तु बदल जाये? उसकी दृष्टि विपरीत होगी। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं। सब है। सर्वज्ञ परमेश्वर है। अनन्त केवली है। अनन्त निगोद के जीव हैं। वे सब हैं, उनमें तू यह है। तेरा द्रव्य, गुण और पर्याय भी है। देखा! सब है, इसलिए यहाँ समकित की पर्याय का उत्पाद हुआ, वह कहीं सब है; इसलिए यह है? वह तो स्वतन्त्र है। समझ में आया? अथवा सब है, उसके जानने की यहाँ ज्ञान की पर्याय हुई। समझ में आया? परन्तु वह सब है, इसलिए यहाँ ज्ञान की पर्याय है? नहीं। हें? जाना सब एक समय में, हों! श्रुतज्ञान की पर्याय में जाना सब, सब। परन्तु वह सब है, इसलिए यहाँ एक समय की पर्याय है? और एक समय की ज्ञान की पर्याय है, इसलिए सब है? सर्वज्ञ वीतराग का मार्ग अलौकिक है, भाई! यह कोई साधारण बाहर से समझ में आ जाये ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा!

महाप्रभु! कहते हैं कि ध्रुव और उत्पाद, व्यय एक द्रव्य में तीन है। समझ में आया? अब ये तीन हैं, वे तो महासत्ता में गये। इन तीन लक्षण का विरुद्ध क्या?—कि एक-एक लक्षणपना। अर्थात् कि ध्रुव है, इसलिए उत्पाद है—ऐसा नहीं है। उत्पाद है, इसलिए व्यय है - ऐसा नहीं। व्यय है, इसलिए ध्रुव है - ऐसा नहीं। आहाहा! गजब किया। समझ में आया? कहते हैं - **(२) त्रिलक्षणा को अत्रिलक्षणपना प्रतिपक्ष है;....** अत्रिलक्षण अर्थात् एक लक्षण, ऐसा। समझ में आया? तीन लक्षणपना नहीं, ऐसा। तीन लक्षण को तीन लक्षणपना नहीं, इसलिए एक लक्षणपना विरुद्ध है। यह तो अभी स्पष्टीकरण आयेगा। यह तो अभी शब्द कहते हैं।

(३) एक को अनेकपना प्रतिपक्ष है;.... एक्का सत्ता कही एक। उसके अन्तर्भेद जो अनेक हैं, उस एक का अनेक प्रतिपक्ष है। समझ में आया? **(४) सर्वपदार्थस्थित को एकपदार्थ स्थितपना प्रतिपक्ष है;....** सर्वपदार्थ है, उसमें एकपदार्थस्थितपना विरुद्ध हो गया। प्रतिपक्ष हो गया। सब पदार्थ में व्याप्त है। है... है... है... है... इतना, हों! एक सत्ता नाम का गुण है, और सब में व्याप्त है, ऐसा यहाँ नहीं। ईश्वर जैसे सब द्रव्यों में व्याप्त एक ही है, ऐसी कोई चीज़ नहीं। समझ में आया? परन्तु ईश्वर है, यह आत्मा है, परमाणु है, इस अपेक्षा से सर्व पदार्थ में सत्ता रही हुई है, ऐसा कहने में आता है। 'हैपना' रहा हुआ है। एक पदार्थ से भी प्रतिपक्ष है। एक-एक पदार्थ का अस्तित्व सर्व पदार्थ की अपेक्षा से प्रतिपक्ष है।

(५) सविश्वरूप को एकरूपना प्रतिपक्ष है;.... सब विश्व समस्तरूप पूरी दुनिया का रूप, उसकी अपेक्षा से एक-एक रूप, वह प्रतिपक्ष है। **(५) अनन्तपर्यायमय को एकपर्यायमयपना प्रतिपक्ष है।** लो। अनन्त पर्यायें पूरी दुनिया की अथवा एक द्रव्य की एक समय की अनन्त पर्याय। समझ में आया? उसकी अनन्त पर्याय की अपेक्षा से एक पर्यायपना प्रतिपक्ष है। आहाहा! आत्मा के अनन्त गुण हैं, उनकी एक समय की अनन्त पर्याय। वह अनन्त पर्याय महासत्ता हुई। उसके एक-एक दर्शन और ज्ञान की एक-एक पर्याय अन्तर्भेद हो गया। इसलिए अनन्त पर्याय की अपेक्षा से एक पर्यायमयपना प्रतिपक्ष है।

हें! क्या हुआ इसमें और? ऐसा स्वरूप है, या तो ऐसा कहो और व्रत पालो, तप करो। कहाँ करें? धूल करे? सुन न अब! परन्तु यह तो आत्मा के सन्मुख तब हो सकता है कि सब है, और मैं भी मेरे सन्मुख हो सकता हूँ, ऐसा भी है। समझ में आया? मेरे सन्मुख होना, वह कहीं सब है, इसलिए सन्मुख होना, ऐसा नहीं है। मेरा सन्मुख होना मुझसे है। दूसरे का विमुख होना, सन्मुख होना उससे है। सब है, उसमें सब समाये। समझे न? कितने ही समन्वय करते हैं न? भाई! यह सच्चे-खोटे धर्म का समन्वय करो। थोड़ा-बहुत ढीला करो।

मुमुक्षु : ढीला करने से एकता हो जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : एकता कहाँ इस प्रकार से खोटा किस प्रकार से हो? उसने नहीं

कहलवाया, कहा था न ? पूनमचन्द घासीलाल। हिम्मतभाई को कहलवाया था कि जरा कानजीस्वामी थोड़ा सा ढीला करे और हम थोड़ा ढीला करें (तो) कहीं इकट्ठे हो जायें। यह तो कोई मेल खाता नहीं। गृहस्थ है न वह करोड़पति पूनमचन्द घासीलाल। दीक्षा ली उनके उस भाई ने। मोतीलालजी ! नग्न हो गये दिगम्बर। कहाँ दीक्षा किसे कहना अभी, खबर नहीं होती। कुछ ढीला करो। क्या ढीला करूँ ? कहा, यह एक समय की पर्याय उस समय में उत्पन्न होती है, ऐसा न कहूँ तो आड़े-टेड़े समय में होती है, ऐसा कहूँ तो ढीला किया कहलाये। ऐसा है ? वह तो विपरीत हो गया।

मुमुक्षु : पचास प्रतिशत तुम्हारा पचास प्रतिशत हमारा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। पचास प्रतिशत परन्तु किस प्रकार पचास प्रतिशत ? एक समय की उस द्रव्य की पर्याय उस काल में उस समय में दूसरे की अपेक्षा रखे बिना होती है। अब उसमें पचास-पचास प्रतिशत करो। कहा, सौ के सौ प्रतिशत पूरे रहेंगे।

एक समय की पर्याय उस द्रव्य की उस क्षण में व्यय और ध्रुव की अपेक्षा रखे बिना, अवान्तरसत्ता का अंश स्वयं से है। सब है, इसलिए नहीं। अब उसमें ढीला क्या रखना ? अरे ! वस्तु ऐसी है वह, रमणीकभाई ! अब यह तो अलौकिक है, बापू ! आहाहा ! यह तो सर्वज्ञ दरबार का मार्ग है। परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ने कहा हुआ, इस मार्ग में गये और पाये, वह मार्ग यह है। आहाहा !

कहते हैं कि अनन्तपर्यायमय को एकपर्यायमयपना विरुद्ध है। एक पर्याय में अनन्त पर्याय आ जाती होगी ? हें ? अनन्त गुण की अनन्त पर्याय एक समय में एक हो जीव की। परमाणु में भी ऐसा है। एक परमाणु है, उसके अनन्त गुण हैं। पॉईन्ट, हों ! पॉईन्ट यह अन्तिम टुकड़ा। उसकी एक समय की अनन्त पर्याय है। अनन्त पर्याय की अपेक्षा से महासत्ता और एक-एक पर्याय अवान्तर। वह अनन्त पर्यायपने है तो एक पर्यायपने नहीं। अनन्त एकपने हो, तब तो अनन्त का रहता नहीं। और एक, एकपने है, वह अनन्तपने नहीं है। आहाहा !

यह तो एक समय के अनन्त गुण की अनन्त पर्याय में एक पर्याय अनन्त पर्याय के कारण नहीं। ऐसा, भाई ! आहाहा ! सम्यग्दर्शन की पर्याय सम्यग्ज्ञान की पर्याय है, इसलिए

नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? हें?

मुमुक्षु : तो अवान्तरसत्ता न रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर्भेद स्वतन्त्र न रहे, स्वयं सत्ता अपने से न रहे। उसके कारण यह, ऐसा हो ही नहीं सकता। आहाहा! क्या परन्तु सर्वज्ञ की बात। हें? ओहोहो! सर्वज्ञ है उसका जाननेवाला। वह जाननेवाला सबके सामने देखकर नहीं। तेरे सामने देखकर जाननेवाला हो, इसका नाम धर्म। इसका नाम सम्यग्दर्शन, इसका नाम सम्यग्ज्ञान और इसका नाम चारित्र। समझ में आया?

अब इसे समझाते हैं, हों! यह तो ऊपर से इतने अर्थ किये। **उपरोक्त सप्रतिपक्षपना स्पष्ट समझाया जाता है....** अब आता है, हों! **सत्ता द्विविध है,....** अस्तित्व के भाव दो प्रकार के हैं। कहो अब, इसमें तो सादी भाषा है, परन्तु अब थोड़ा सा मस्तिष्क को फैलाना तो पड़ेगा या नहीं? अरे! रोटी होती है तो आटे को फैलाये बिना होती नहीं। ऐसे की ऐसी रोटी होती होगी? पानी डाले आटा में और पिण्ड करे और रोटी बनाने लगे तो मुक्का जैसी होगी।

मुमुक्षु : होगी ही नहीं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हो। होती होगी मुक्का जैसी, अपने को कहाँ खबर है। आटा को पहले बहुत मसलते हैं। बाजरा के आटे की रोटी बनावे तो पहले मसलते हैं। ऐसे दबाव देकर। यह ऐसे नहीं दिया जाता, हों! ऐसे वह कुछ नहीं होता। ऐसा होता है। हथेली से। अपने तो देखा हो न वह करते हों तो। यह किस प्रकार रोटियाँ बनाते हैं? बनायेंगे? वह कहीं ऐसे-ऐसे करते होंगे? तब अब उसके कारण शिक्षा आती होगी? वह तो यहाँ कैसे कहते हैं, कि यह भी है, वह भी है... है... है में है, सब आ गया।

अब यहाँ जो स्वतन्त्र जहाँ इसकी पर्याय होती है, शिक्षा वह स्वयं से स्वतन्त्र है। यह है, इसलिए यह है, ऐसा नहीं—ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! जादवजीभाई! यह तो मस्तिष्क फैलाना पड़ेगा। शिक्षा-शिक्षा करते हैं न दुनिया की। ऐई! कोलेजियन। कोलेजियन अब। यह शिक्षा सच्ची है, दूसरी शिक्षा वह तो सब थोथा है। यह तो जागेश्वरी कहलाये। लाभ लेकर फिर नौकरी करेगा। आहाहा! क्या कहते हैं यह?

कहते हैं, **सत्ता द्विविध है, महासत्ता और अवान्तसत्ता। उनमें, सर्वपदार्थसमूह में व्याप्त होनेवाली,....** सब आत्मायें, परमाणु है... है... बस इतना। है, ऐसे व्यापनेवाली, **सादृश्य-अस्तित्व को....** सादृश्य अर्थात्? सदृश्यपना। है, उसमें सदृश्यपना आवे या नहीं, ऐसा कुछ है कहीं? है... है... है... है... है... है आत्मायें हैं, परमाणु हैं, सिद्ध हैं, निगोद है, अनन्त महास्कन्ध हैं, एक परमाणु है, धर्मास्ति है, ऐसे सादृश्य अस्तित्व समानपने होनेवालों में **सूचित करनेवाली महासत्ता (सामान्यसत्ता) तो कही जा चुकी है। दूसरी प्रतिनिश्चित (-एक-एक निश्चित) वस्तु में रहनेवाली,....** अब सब है, उसमें से एक-एक आत्मा या एक-एक परमाणु और एक-एक आत्मा में भी एक-एक पर्याय। स्वरूप अस्तित्व को सूचित करनेवाली एक-एक वस्तु में रहनेवाली **स्वरूप-अस्तित्व को सूचित करनेवाली....** आहाहा!

आत्मा, आत्मारूप से है ऐसा अवान्तर को सूचित करनेवाली; परमाणु परमाणुरूप से है, ऐसे अन्तर्भेद को सूचित करनेवाली, आत्मा में एक-एक समय की पर्याय, व्यय और ध्रुव के अतिरिक्त की है, ऐसी एकपने को सूचित करनेवाली, ऐसा जो स्वरूप का अस्तित्व, उसे सूचित करनेवाली अवान्तरसत्ता है। अरे! गजब बात भाई! मुनियों ने भी जंगल में रहकर (अलौकिक काम किया है)। सम्यग्दर्शन और आत्मा के आनन्द में रहते थे। मुनि तो आनन्द में-महाआनन्द (में रहते हैं)। नग्नमुनि जंगल में बसते हैं। समझ में आया? उसमें ऐसे शास्त्र (की रचना की) शास्त्र का क्षयोपशम कितना है, वह इसमें ज्ञात होता है या नहीं? आहाहा!

कहते हैं, सब है वह कहा गया। अब इसमें से एक-एक वस्तु में रहनेवाली, एक-एक पदार्थ या एक-एक पदार्थ की एक-एक पर्याय। **स्वरूप-अस्तित्व को सूचित करनेवाली....** अपने-अपने स्वरूप के अस्तित्व को बतलानेवाली अवान्तर (विशेष सत्ता) है। महा है, ऐसा कहा, वहाँ अन्तर्भेद का भी विशेषपना है। विशेष शब्द से यहाँ अवान्तर अन्तर्भेद।

वहाँ, महासत्ता अवान्तरसत्तारूप से असत्ता है.... सब है, वह अन्तर का एक भाग या एक प्रकार, वह असत्ता है। सब है, वह एकपने से असत्ता है। सब है, वह एकपने से भी है? समझ में आया? यह कॉलेज में भी ऐसा नहीं आता होगा, आता होगा? यह तो

भगवान की कॉलेज है, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव केवलज्ञान तीन काल, तीन लोक देखा। कहते हैं, महासत्ता में 'है' इसमें मैं भी 'है' आया हूँ, कहते हैं। केवलज्ञान है, अनन्त केवलज्ञान है, अनन्त सिद्ध है, निगोद है, पर्याय है, उत्पाद है, व्यय है – सब आ गया। है, तथापि मेरे केवलज्ञान की एक पर्याय है, वह सब है, इसलिए (है), ऐसा नहीं है। सबकी अपेक्षा से एक समय की पर्याय असत्ता है। आहाहा! समझ में आया?

महासत्ता अवान्तर होनेरूप महा अस्तित्व में अन्तर्भेद के अस्तिरूप से असत्ता है। पूरी सत्ता, वह एक अंश की सत्तारूप या एक द्रव्य की सत्तारूप से असत्ता है। वह तो एकदम कहे कि व्रत ले लो। यह सब बहुत कहते थे, हों, वह भावसार है वरतेज में। महाव्रत ले लो न, सब मिथ्यादृष्टि है। गृहित मिथ्यादृष्टि है और कहे, हम साधु हैं। वह कहे मैं तो किसी के चरणवन्दन नहीं करता। किसी को साधु नहीं मानता। अकेला रहता हूँ या क्या करूँ? यहाँ कहा था हों! जरा सा यहाँ व्यवहार का। मैंने कहा, हम कहीं पढ़ते नहीं मैं कहीं नहीं पढ़ता। हमारा काम नहीं हम तो मात्र उपदेश देते हैं। ऐसी लप में कहाँ पड़ें। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

श्रीमद् का बराबर है कुछ, परन्तु वहाँ अगास में भी भक्ति के लय खींचते हैं। समझ न हो, यहाँ तो समझण दी (तो कहे) ऐसी तो हमने कभी सुनी नहीं कहीं। वहाँ ऐसा कहे 'आतम भावना भावता जीव लहे केवलज्ञान रे' लो परन्तु आत्मा क्या? उसकी भावना क्या और केवलज्ञान क्या? ऐई! आहाहा! यह बात भी खोटी है, यहाँ तो कहते हैं। ऐई! भीखाभाई!

गुरु की सत्ता से यहाँ आत्मा की सत्ता की पर्याय है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। केवली और गुरु 'है', उसमें सब आ गये। परन्तु ऐसा कहते हैं कि आत्मा है। शिष्य का आत्मा है, गुरु का आत्मा है, केवली का आत्मा है, शास्त्र है। यह 'है' इसमें सब आ गया। परन्तु 'है' की अपेक्षा से एक-एक की सत्ता है कि यह महासत्ता है। यह सब है, इसलिए उनकी पर्याय है, ऐसा नहीं है। और यह महासत्ता है, इसलिए अन्तर्भेद है, ऐसा नहीं है। सब है, इसलिए उसकी ज्ञान की पर्याय इसे होती है, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। अपवास तो निन्दा कहलाये। अपवास को निन्दा नहीं कहते? हें, निन्दा में लाभ होगा? अपवास का लाभ होगा? दोष है। आहाहा!

तीन काल, तीन लोक, अनन्त द्रव्य हैं। वे हैं, उसमें से कोई नहीं, ऐसा नहीं होता। महासत्ता, ऐसा कहते हैं। देखा ? है, इस अपेक्षा से एक-एक भाग द्रव्य लो और एक-एक पर्याय लो तो महासत्ता की अपेक्षा से पर्याय सत्ता है, वह असत्ता है और महासत्ता अवान्तर सत्ता की अपेक्षा से असत्ता है। परस्पर। दोनों हैं, देखो। **वहाँ, महासत्ता अवान्तरसत्तारूप से असत्ता है और अवान्तरसत्ता महासत्तारूप से असत्ता है, इसलिए सत्ता को असत्ता है (अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता....)** सामान्य-विशेषात्मक अर्थात् ? महा और अन्तर्भेद, ऐसी सत्ता **(महासत्तारूप होने से 'सत्ता' है, वही अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'असत्ता' भी है।)** अन्तर्भेदरूप से है, इसलिए असत्ता भी है। समझ में आया ?

अरे ! यह तो वह कायदा निकाले न वकील के, ऐसे तो कायदे निकाले थे अन्दर से। वे कायदा तो सब समझने जैसे। यह तो तीन काल—तीन लोक में अस्तित्व का महापना है। है... है... है... है, उसमें नहीं क्या आयेगा ? है... है... है उसमें नहीं आयेगा ? बस ! है... है... है। अब है... है, उसमें एकपना नहीं ऐसा आयेगा। महा में एकपना नहीं, ऐसा आयेगा। समझ में आया ? इसलिए महाअस्तिपने में एक की अपेक्षा से असत्ता और एक के अस्तित्व में महाअस्तिपने की अपेक्षा से असत्ता। ऐ देवशीभाई ! समझ में आया या नहीं यह ? यह तो पुराने व्यक्ति हैं, बैठता है या नहीं यह ? आहाहा !

कहते हैं एक द्रव्य है आत्मा। उसके अनन्त गुण हैं। उसकी अनन्त पर्यायें हैं। है और उसे अब एक महासत्ता गिनो। एक की अब तो हो। सब द्रव्य तो ठीक, अब एक जब महा है... है... है, वह स्वयं एक समय की पर्याय के उत्पाद की अपेक्षा से, एक समय के व्यय की अपेक्षा से असत्ता है। और एक समय की अपेक्षा की अवस्था अवान्तर, वह महासत्ता की अपेक्षा से महा है, इसलिए यह एक समय की पर्याय है, ऐसा नहीं। आहाहा ! वाह ! जिस प्रकार यह एक समय के सत् को सिद्ध करने की छोटी गली और मोटा प्रमाणज्ञान। हैं ? आहाहा ! दूसरी कोई वस्तु नहीं हो सकती। भाई ! कहे कि हम सामनेवाले की दया पालते हैं और या दया पालो, दया पालो। नहीं कहते लोग ? दया पालो भाई ! दया पालो, धर्म है। किसकी दया ? वह जीव नहीं ? उसके परमाणु नहीं ? और उसका टिकना भी सत्ता-अस्तिरूप नहीं ? कि उसका अस्तित्व उसके कारण (नहीं इसलिए) तू उसका अस्तित्व रखे ? उसकी दया पाले ? मिथ्यादृष्टि है, कहते हैं। समझ में आया ?

सब है, उसकी अपेक्षा से इसका जो है, वह अवान्तरपना पृथक् है। तू भी है, वह है, उत्पाद-व्यय है, ध्रुव है, सब है। परन्तु उसकी अपेक्षा से उसकी जो जीने की पर्याय है, उसकी स्वतन्त्र अवान्तरसत्ता, उसकी एक अपेक्षा से, इस अवान्तर की अपेक्षा से महासत्ता वह नहीं। और महासत्ता की अपेक्षा से अवान्तरसत्ता नहीं। आहाहा! परन्तु क्या शैली है। हें! अनेकान्त करते हैं। अस्ति-नास्ति। आहाहा! यह तो लेंगे आगे, हों! ऐसा सत् है न, सत् है इसलिए आत्मा के तीन अंश सत् हैं अथवा अनन्त गुण सत् हैं, अथवा उन गुणों की एक समय की अनन्त पर्यायें सत् हैं। यह सब सत् में गया-महासत्ता में। सब महासत्ता की अपेक्षा से पृथक् करें तो एक भी स्वयं महासत्ता कहलाती है।

अब इसके अन्तर्भेद करो तो ज्ञानपर्याय, दर्शनपर्याय, ज्ञानगुण, ध्रुव इन प्रत्येक की प्रत्येक सत्ता महा की अपेक्षा से एक-एक भिन्न है। इसलिए महा की अपेक्षा से अवान्तरसत्ता, वह नहीं है और अवान्तरसत्ता की अपेक्षा से महासत्ता वह नहीं है। क्या कहा यह ? पूरा आत्मा है और अनन्त गुण हैं। अनन्त पर्याय है और इसलिए उसकी एक समय की पर्याय है, ऐसा नहीं, कहते हैं। सम्यग्दर्शन की पर्याय है, इसलिए साथ में सम्यग्ज्ञान की पर्याय है, ऐसा नहीं है। 'है' की अपेक्षा से अनन्त पर्याय एक समय में है। हें! आहाहा! परन्तु है में एक-एक अन्तर्भेद की अपेक्षा से महासत्ता, वह असत्ता है और अवान्तरसत्ता, वह महासत्ता की अपेक्षा से असत्ता है। आहाहा! किस प्रकार सिद्ध करते हैं इसे।

एक-एक द्रव्य परन्तु सब द्रव्य की अपेक्षा से महासत्ता पहले कहा। परन्तु वह महासत्ता एक-एक द्रव्य की अपेक्षा से वापस असत्ता है। क्योंकि एक-एक द्रव्य अवान्तरसत्ता, वह महासत्ता की अपेक्षा से असत्ता है। सब है, इसलिए आत्मा है; सब आत्मा है, इसलिए एक आत्मा है; सब परमाणु है, इसलिए एक परमाणु है—ऐसा नहीं। अरे! गजब बात, भाई! सबकी सत्ता भिन्न है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। सबके कारण नहीं, अपने कारण से है, ऐसा कहते हैं। सबकी सत्ता भिन्न। एक की सत्ता तो भिन्न परन्तु एक-एक आत्मा में अनन्त गुणों की सत्ता भी भिन्न-भिन्न। एक गुण के कारण दूसरे गुण की सत्ता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! और एक गुण की वर्तमान पर्याय है, इसलिए उस गुण की सत्ता है और एक गुण की पर्याय है, इसलिए दूसरी पर्यायें हैं, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! गजब बात भाई! कहो, समझ में आया या नहीं इसमें। शान्तिभाई! घड़ी का कांटा मिलाना हो,

वहाँ तो सब स्थूल लगे। यह तो सब सूक्ष्म है यह। आहाहा!

क्या अस्तित्व की श्रद्धा कराते हैं न! हें ? लो, सम्यग्दर्शन कारण और चारित्र कार्य। आता है न ? यहाँ कहते हैं कि वह सब है। 'है' में भले समा जाये। परन्तु एक मोक्ष के मार्ग की पर्याय है, इसलिए मोक्ष की पर्याय है, ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन की पर्याय है, इसलिए सम्यक्चारित्र की पर्याय साथ में है, ऐसा नहीं है। 'है' में सब आ जाता है। परन्तु अन्तर्भेद की अपेक्षा से महासत्तापने का अभाव है। और एक-एक में महासत्ता का अभाव है। आहाहा! ईश्वर कर्ता तो कहीं गया। ईश्वर कर्ता-वर्ता तो नहीं। वह तू ही ईश्वर है, कहते हैं। तेरे ईश्वर के अस्तित्व में दूसरे ईश्वर के अस्तित्व से तेरा ईश्वरपना है, ऐसा नहीं है। अथवा सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा है, इसलिए तेरा परमात्मपना अन्दर ध्रुवपना है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अथवा आत्मा की सर्वज्ञपर्याय प्रगट हुई, वह सब 'है' में समा जाती है। परन्तु सर्वज्ञपर्याय है, इसलिए यहाँ ज्ञानगुण है - ऐसा नहीं। और ज्ञानगुण ध्रुव है, इसलिए सर्वज्ञ की पर्याय है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? ऐसा सिद्ध करते हैं। है, इतना है, बस। पर्याय के भेद की अपेक्षा से महासत्ता वह सब होकर है, ऐसा कहा था। पश्चात् अवान्तरसत्ता है, वह स्वतन्त्र है। एक में महासत्ता सब यह है, ऐसा है नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? लो, पहले बोल का स्पष्टीकरण उसमें आया था न पहले ? सत्ता और असत्ता प्रतिपक्ष है। उस ओर आया था पहले। यह उसका स्पष्टीकरण किया है। कि **प्रतिनिश्चित वस्तु में रहनेवाली, स्वरूप-अस्तित्व को सूचित करनेवाली अवान्तरसत्ता (विशेषसत्ता) है।** अन्तर्भेद सत्ता है। वह तो ज्ञान का भण्डार है, भगवान! उस ज्ञान के भण्डार में यह सब कुछ तुच्छ लगे, ऐसा नहीं लगता। कुछ न समझ में आये, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

ज्ञान का तो भण्डार है। चाहे जितना निकाले न, केवलज्ञान निकाले तो गुण कम हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! **वहाँ, महासत्ता अवान्तरसत्तारूप से असत्ता है....** लो! सब अस्तित्व अन्तर्भेद के एक भाग नहीं, वह असत्ता है। **और अवान्तरसत्ता...** जो अन्तर्भेदरूप सत्ता है, **महासत्तारूप से असत्ता है,....** एक अंश है, वह कहीं सबरूप हो जाता है ? एक द्रव्य है, वह सबरूप हो जाता है ? लो, एक बोल हुआ। एक बोल हुआ।

अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता.... सामान्यविशेषात्मक अर्थात् क्या ? सामान्य

अर्थात् महासत्ता और विशेष अवान्तरसत्ता। सब होकर एक होकर एक सत्ता, वह **महासत्तारूप होने से वहीं 'सत्ता' है वही अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'असत्ता' भी है।** अब त्रिलक्षण के अत्रिलक्षणपना प्रतिपक्ष है। अब सिद्ध करते हैं, देखो!

जिस स्वरूप से उत्पाद है, उसका (उस स्वरूप का) उस प्रकार से उत्पाद एक ही लक्षण है। आत्मा में ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, वह उत्पाद लक्षण है, वह उसका एक ही लक्षण है। उत्पाद के तीन लक्षण हैं? तीन लक्षण तो सामान्य पूरे द्रव्य के कहे। उपजना, व्यय होना और ध्रुव। इन तीन लक्षण के सामने एक-एक लक्षण विपरीत है। आहाहा! जिस स्वरूप से उत्पाद है। परमाणु, परमाणु है न? उसमें जहाँ पर्याय उत्पन्न हुई है अभी यह रक्त की। वह एक उत्पाद है। उस उत्पाद की अपेक्षा से उसके स्वरूप का उत्पाद एक ही लक्षण है। उसमें से पूर्व की जो अवस्था का व्यय हुआ और ध्रुव हुआ, ऐसे तीन लक्षण एक में नहीं आते। एक में तो उत्पाद लक्षण एक ही आया। समझ में आया?

ओहोहो! ऐसी शैली! दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त कहीं नहीं है। सर्वज्ञ के पथानुगामी। पूरा है, उसकी अपेक्षा से एक असत्ता; एक सत्ता की अपेक्षा से महासत्ता, असत्ता है। तीन लक्षण की अपेक्षा से सत्ता, एक लक्षणपने की अपेक्षा से असत्ता है। जिस स्वरूप से उत्पाद है। आत्मा के सम्यग्दर्शन का उत्पाद हुआ, उस स्वरूप से सत् है, वह एक ही लक्षण है। उत्पाद का एक ही लक्षण है। मिथ्यात्व का व्यय हुआ, इसलिए समकित का उत्पाद हुआ, ऐसा नहीं है। और ध्रुवपने में सम्यक् श्रद्धागुण पड़ा है, इसलिए सम्यग्दर्शन की पर्याय का उत्पाद हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

कुछ है, ऐसा तो रखना। बहुत न समझ में आये मस्तिष्क में तो कुछ वस्तु गूढ़ है। भगवानजीभाई! भगवान आत्मा उस समय के क्षायिक समकित की पर्याय हुई। कहते हैं कि क्षायिक समकित की पर्याय एक लक्षणवाली है। उसका ध्रुव और व्यय लक्षणवाली एक नहीं। हें! उसके स्वरूप से उत्पाद है, उस उत्पादरूप ही है; व्ययरूप नहीं, ध्रुवरूप नहीं। इसी प्रकार अन्तर में चारित्र की पर्याय उत्पन्न हुई। आनन्द का चारित्र, वह चारित्र पर्याय उत्पाद अपेक्षा से उत्पाद बराबर है। एक लक्षण हुआ। वह पूर्व का अचारित्र पर्याय का व्यय हुआ, ऐसे लक्षणवाला यह लक्षण नहीं है। यह तो उत्पाद का लक्षण है। व्यय का लक्षण दूसरा है। ध्रुव का लक्षण तीसरा है। समझ में आया?

अब यहाँ पर के कारण तो नहीं परन्तु उसके एक अंश के कारण दूसरा अंश नहीं है। आहाहा! यह वह कुछ बात है? छगनभाई! भगवान आत्मा! अरे! परमाणु ईश्वर है, वह जड़ेश्वर है। परमाणु में भी जो कुछ एक समय की शीत अवस्था है, वह उत्पाद लक्षण से उत्पाद शीत हुई, वह स्वतन्त्र है। उस उष्णता का व्यय हुआ, इसलिए शीतल हुई—ऐसी एक लक्षण में दूसरे लक्षण की मिलावट नहीं होती। अब यह तो अभी चिल्लाहट मचाते हैं। अग्नि से पानी गर्म हुआ। अरे भगवान! क्या कहता है तू? अग्नि है तो पानी गर्म हुआ। समझ में आया?

मुमुक्षु : तो फिर कर बताओ न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कौन बतावे? कौन करे? होता है, उसमें कौन कर बतावे? होता है, उसमें कर कौन बतावे? देख न तू? ऐसा कि गर्म अग्नि के बिना उष्णता कर बताओ न, ऐसा कहते हैं?

मुमुक्षु : वह कहाँ कोई कर बताते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु करता कौन है? इसने कभी किया था वहाँ? वहाँ तो ऐसा दिखता है कि अग्नि अग्निरूप से है; पानी की उष्णता, उष्णतारूप से है, पानी के शीतलपने का व्यय, व्ययरूप से है; पानी का ध्रुवपना ध्रुवपने है। अग्नि का ध्रुवपना (अग्निपना) पर्यायरूप से है, उसके व्ययरूप से है और उसके ध्रुवपने वहाँ है। अब उसमें इसके कारण यहाँ वह है कहाँ वस्तु में? ऐसा कहे, हमने तो कर बताया, देखो हमने तो। धूल में भी नहीं। तेरी दृष्टि मिथ्या है। देखो! तेजाब में हाथ डालकर देखो, वह जलेगा या नहीं? अब पर से कुछ नहीं होता। अब सुन न! तेजाब में हाथ डालो, देखो! पर से कुछ नहीं होता, यह नहीं होता? मारो मुक्का एक।

अरे! भगवान! तू क्या करता है, बापू? तू सत् की अवहेलना करता है। भाई! सत् स्वरूप की अवहेलना करता है। भाई! समझ में आया? तू तेरे स्वरूप की अवहेलना निन्दा करता है तू। आहाहा! तेरा ज्ञान तो ऐसा जानना चाहिए कि उस समय में उस सत् की वह पर्याय उससे हुई है, उसके व्यय-ध्रुव से नहीं, परन्तु पर से तो नहीं, नहीं और नहीं। ऐसा तेरा ज्ञान होना चाहिए, उसके बदले तू यह मेरी ज्ञान की अवहेलना, अनादर करके असातना करता है। समझ में आया?

सुना नहीं, उसमें बेचारा क्या करे? भाई! यह ऐसी बातें हैं। यह तो बहुत पुण्य का योग हो, उसकी क्षयोपशम की योग्यता हो, तब तो सुनने को मिले। उसकी क्षयोपशम की योग्यता हो, हाँ! सुनने को मिले, इसलिए नहीं, उसकी योग्यता, ऐसा यहाँ कहते हैं। यहाँ ऐसा कहते हैं या नहीं? भाई! आहाहा! सुनना मिले, इसलिए यहाँ ज्ञान होता है—ऐसा नहीं है। कुछ सुनने की पर्याय भाषा की पर्याय तो भाषा में है। कान को वास्तव में स्पर्श नहीं करती। वह तो अन्दर में ज्ञान हुआ है, वह तो स्वयं से हुआ है। ज्ञान की पर्याय का उत्पाद स्वतन्त्र है। वह उत्पाद पर के कारण नहीं है। उसके व्यय के कारण नहीं है, ध्रुव के कारण नहीं तो वाणी के कारण उत्पाद है, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

जिस स्वरूप से उत्पाद है। आहाहा! परमाणु। परमाणु की शीत अवस्था थी, उसका व्यय हुआ, इसलिए उष्ण अवस्था हुई, ऐसा नहीं है, कहते हैं। तो फिर अग्नि से उसकी उष्णता हुई, भगवान! ऐसा है नहीं, भाई! आहाहा! अब यह क्या कहते हैं? चश्मा छोड़ दो। अरे भगवान! तू यह क्या कहता है? चश्मा अस्तित्व धराता है, उसकी सत्ता, उसकी सत्ता को तू ऐसे आड़ी-टेढ़ी कर सके, उसकी सत्ता को तू? उसके अस्तित्व की जो सत्ता इस प्रमाण है, उसके बदले ऐसे हो, वह तो उसकी पर्याय के अस्तित्व के कारण होता है। अँगुली के कारण और तेरे विकल्प के कारण होता है?

वे कहते हैं, देखो! चश्मा निकाल डालो। ज्ञान चश्मे के कारण होता है या नहीं? अरे! तुझे भान नहीं, सुन न! आँख निकाल डालो, दिखाओ सबको लाओ, कहे। लींबड़ी में वह चन्द्रशेखर कहे, सबने चश्मा चढ़ाया है देखो, चश्मे से ज्ञान होता है या नहीं? भाई! सूक्ष्म बात है, बापू! सूक्ष्म क्या है, करके स्पष्टीकरण करावे। भाई! परन्तु तुझे इसमें क्या करना है? यह स्पष्टीकरण क्या होगा? आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञान की जो क्षयोपशम की पर्याय है, वह स्वयं से है। यह चश्मा आया, इसलिए हुआ और चश्मा गया, इसलिए वह पर्याय दूसरी हुई—ऐसा है नहीं। आहाहा! अरे रे! ऐसा वह सत्! ऐई रमणीकभाई! खोटे से कहीं सच्चे में खड़ा रहा जायेगा? उसका उत्पाद, व्यय और ध्रुव उसमें है-परमाणु में है।

वह उत्पाद ऐसा ऐसे-ऐसे हो, उसके कारण यहाँ ज्ञान होगा? यहाँ ज्ञानगुण का उत्पाद एक समय का है, यह तो कहते हैं कि उसके कारण तो नहीं; सब है, इसलिए तो

नहीं, परन्तु ध्रुव है, इसलिए भी नहीं। आहाहा! तीन लक्षण का एक लक्षण विपरीतपना है। यह अनेकान्त है। आहाहा! भाई! हर्षद! सूक्ष्म बात आवे तो सब सुननी तो पड़े। अब तो पैंतीस-पैंतीस वर्ष हो गये लो! बहुत विस्तार पहले इतना अधिक नहीं करते थे। पहले नहीं होता था। अब तो धीरे-धीरे जरा लोग (समझनेवाले हुए हैं)।

वस्तु तो वही है, वस्तु तो वही है पहली। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म पड़ जाता है, सूक्ष्म पड़ जाता है। बापू! परन्तु तू सूक्ष्म कितना? इन्द्रिय से न ज्ञात हो ऐसा। इन्द्रिय का अस्तित्व भिन्न, तेरा अस्तित्व भिन्न। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय महाप्रभु चैतन्य है। उसके भान की पर्याय, वह इन्द्रिय से नहीं होती। सुनने से नहीं होती। आहाहा! यह विकल्प उठा। ऐसा कहते हैं। उससे भी अतीन्द्रिय ज्ञान की पर्याय उत्पन्न नहीं होती। विकल्प और यहाँ ज्ञान की पर्याय हुई परन्तु उस विकल्प के कारण पर्याय हुई, ऐसा नहीं है और वह पर्याय ज्ञान की हुई, इसलिए विकल्प है, ऐसा भी नहीं। उत्पाद, उत्पाद स्वतन्त्र। विकल्प का उत्पाद स्वतन्त्र, उस समय ज्ञान का उत्पाद, वह स्वतन्त्र। यह व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। लो! ऐसा आया वापस इसमें। समझ में आया? धर्मी को जो ज्ञानस्वभाव में अन्दर जो रागादि दिखते हैं, कहते हैं कि राग रागरूप से उत्पाद स्वतन्त्र है और उस समय का उसका ज्ञान, वह अपना ज्ञान, वह उत्पाद अपनेरूप से स्वतन्त्र है। समझ में आया? ओहोहो!

जो ग्यारह और बारह (गाथा, समयसार में) कहा है, 'जाना हुआ'। सर्वत्र एक सिद्धान्त खड़ा होता है चारों ओर से। हें? सत् को दूसरे प्रकार से हो किस प्रकार? सत् का कोई भी अंक मिलाओ तो अकेला सत् आकर खड़ा रहेगा, बस। आहाहा! जरा आग्रह छोड़ देना चाहिए तो यह सत् समझ में आये। कारण, इसे समझना है न? तो यह आग्रह छोड़े तो यह समझे। आहाहा! और छोड़े तो उत्पाद हो, उसके कारण से नहीं। उत्पाद, उत्पाद के कारण से होता है। 'बढ़े न शीर अनन्तता घटे न वास निगोद, जैसे के तैसे रहे जिनवचन विनोद।' संख्या अनन्त है, उसमें कहते हैं बढ़े-घटे क्या कहना? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अनन्त सिद्ध है, वे सिद्ध ही हैं। अनन्त निगोद के जीव, वे निगोद के हैं। है... है... है, उसमें से एक-एक पर्याय उत्पन्न हो, वह भी अपने स्वलक्षण से उत्पाद से उत्पाद है। आहाहा!

सर्वज्ञ ने जाना है, इसलिए यहाँ होता है, ऐसा नहीं है – ऐसा कहते हैं। उसकी पर्याय इस समय में होगी, ऐसा सर्वज्ञ ने जाना है। और सर्वज्ञ ने जाना है, वह है यही है, परन्तु सब है, इसलिए सर्वज्ञ ने जाना, इसलिए यहाँ पर्याय होती है—ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ ज्ञान की पर्याय अपना स्वसंवेदन होकर जो पर्याय उत्पन्न हुई, वह अपने उत्पाद लक्षण से हुई है। वह सर्वज्ञ ने देखा, इसलिए हुई है, ऐसा नहीं है। आहाहा! देखो न! इसमें तो क्रमबद्ध सिद्ध हो गया सब। और सर्वज्ञ ने देखा, इसलिए क्रमबद्ध है, ऐसा नहीं है। वस्तु का स्वभाव ऐसा है। उत्पाद के काल में उस उत्पाद लक्षण से उसकी एक ही पर्याय सिद्ध होती है। उसके सत् का अंश उस काल में उत्पाद लक्षण से ही लक्षित है। व्यय लक्षण से लक्षित नहीं, ध्रुव लक्षण से लक्षित नहीं, ध्रुव लक्षण से वह ज्ञात होता है, ऐसा नहीं। वह तो उत्पाद लक्षण से ज्ञात होता है। समझ में आया?

जिस स्वरूप से उत्पाद है उसका (-उस स्वरूप का) उस प्रकार से उत्पाद एक ही लक्षण है; जिस स्वरूप से व्यय है उसका (-उस स्वरूप का) उस प्रकार से व्यय एक ही लक्षण है,.... पूर्व की अवस्था का व्यय एक ही लक्षण से है। उत्पाद हुआ, इसलिए व्यय हुआ, ऐसा नहीं है – ऐसा कहते हैं। आहाहा! विशेष कहा जायेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

धारावाही प्रवचन नं. १४ (प्रवचन नं. १३), गाथा-८
दिनांक - २७-११-१९६९, कार्तिक कृष्ण ४, गुरुवार

पंचास्तिकाय, षट्द्रव्य। अस्तिकाय है न? अस्तिकाय। अस्ति है। बहुत प्रदेशोंवाले पाँच तत्त्व है, पाँच द्रव्य हैं। यहाँ क्या कहते हैं? यह आत्मा है या परमाणु है। उसका तीन लक्षण स्वरूप है। प्रत्येक पदार्थ का त्रि-लक्षण (अर्थात्) उत्पाद, वह भी है, व्यय है, ध्रुव है। त्रि-लक्षण स्वरूप है। ये त्रि-लक्षण स्वरूप से नहीं। एक-एक लक्षण की अपेक्षा से है तीन लक्षण स्वरूप नहीं। ऐसी बात है। समझ में आया?

जिस स्वरूप से उत्पाद है... इस आत्मा में एक समय की पर्याय में जो उत्पादरूप है, उस प्रकार से एक उत्पाद एक ही लक्षण है। यहाँ तो छहों द्रव्यों की बात है। एक समय की ज्ञान की पर्याय है, अनन्त गुण की जो एक समय की पर्याय है, वह उत्पाद है; वह उत्पादरूप से ही है; वह कहीं व्यय और ध्रुव-लक्षणरूप नहीं है। समझ में आया? वह उत्पाद एक ही लक्षण है।

जिस स्वरूप से व्यय है... पहले समय की अवस्था का व्यय है, जिस स्वरूप से अभाव है-व्यय है, **उसका (-उस स्वरूप का) उस प्रकार से व्यय एक ही लक्षण है...** समझ में आया? जैसे कि आत्मा में अनन्त गुण की एक समय की जो पर्याय उत्पन्न हुई, वह उत्पन्न लक्षण से उत्पन्नस्वरूप ही है; व्यय लक्षणवाला स्वरूप वहाँ नहीं है। समझ में आया? अर्थात्?-कि एक समय में यहाँ आत्मा में ज्ञान की पर्याय में... यह तो अनन्त पर्यायों को साथ में लेना है। बाद में अनन्त पर्याय में पर्याय अलग निकालेंगे। यहाँ तो एक समय में अनन्त पर्यायें हैं, वह उत्पादलक्षण पर्याय से है। है अनन्त एक साथ। परमाणु में भी एक पॉईन्ट / रजकण है, उसमें भी एक समय में अनन्त गुणों की अनन्त पर्यायें जो उत्पन्न होती है, वे उत्पाद लक्षणवाली है। पूरा लो तो तीन लक्षणवाली है, परन्तु एक-एक लो तो एक लक्षणवाली है। इसलिए तीन लक्षणवाली, एक लक्षणवाली है। तीन लक्षणवाली महासत्ता, वही एक लक्षणवाली अवान्तरसत्ता है। समझ में आया?

जो आत्मा में एक समय की ज्ञानपर्याय उत्पन्न हुई, एक उत्पन्न है, तो उसमें वास्तव

में ज्ञान की पर्याय उपजी, वह अनन्त सिद्धों को तीन काल, तीन लोक के द्रव्य को, सिद्ध की पर्याय को, सिद्ध के द्रव्य के, अनन्त परमाणु रूपी द्रव्य को, उसके गुण को उसकी पर्याय को एक समय की ज्ञानपर्याय-उत्पाद उन्हें जान लेती है। यह दूसरी चीज़ है, इसलिए उत्पाद है, दूसरी ध्रुव चीज़ है, इसलिए उत्पाद है अथवा स्वयं ध्रुव है, इसलिए उत्पाद है-ऐसा नहीं है। समझ में आया?

एक समय की ज्ञान की उत्पादरूप पर्याय (हो), जिसमें अनन्त परमेश्वर एक समय की पर्याय में समा गये हैं। अनन्त सिद्ध, अनन्त केवली अर्थात् सिद्ध केवली अथवा लाखों केवली, अनन्त जीव जो 'ज्ञ' स्वभाव से ध्रुव हैं और परमाणु जो ध्रुव स्वभाव से नित्य है, उन सबको ज्ञान की एक समय की पर्याय उत्पाद, वह अपने उत्पादरूप ही है। समझ में आया? इतनी सामर्थ्यवाली एक पर्याय उत्पन्न होती है, लो! उसे व्यय की अपेक्षा नहीं, उसे ध्रुव की अपेक्षा नहीं। समझ में आया? कहते हैं कि यह उत्पाद है, वह उत्पादस्वरूप से ही है और पूर्व की अवस्था का व्यय है, वह व्ययस्वरूप से है। उत्पाद के कारण व्यय है अथवा व्यय के कारण उत्पाद है-ऐसा नहीं है। समझ में आया?

और जिस स्वरूप से ध्रौव्य है... ज्ञान का जो ध्रुवपना और अनन्त गुण का जो ध्रुवपना है, ध्रुवपना; वह ध्रुवपना, ध्रुवपने के कारण है। उसके ध्रुवपने में-भगवान आत्मा के ध्रुवपने में एक में अनन्त परमेश्वर, अनन्त द्रव्य एक समय की पर्याय में उत्पादरूप हुए। ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायें, अनन्त-अनन्त पर्यायें, अनन्त परमेश्वर की एक समय की पर्याय में अनन्त परमेश्वर, उस अनन्त पर्याय में अनन्तगुणा परमेश्वर, वे सब पर्याय का अन्दर ध्रुवपना देखो तो ध्रुव, ध्रुव के कारण है; उत्पाद के कारण भी नहीं। पर के कारण तो नहीं... समझ में आया? वह ज्ञान की पर्याय का उत्पाद, उत्पाद के कारण अर्थात् पर के कारण तो नहीं... आहाहा! क्या सत्ता की सिद्धि करते हैं! देखा? समझ में आया? एक समय की ज्ञान की पर्याय उत्पादरूप से उत्पाद है, वह पर के कारण तो नहीं, परन्तु ध्रुव के कारण (भी) नहीं है। समझ में आया? ओहोहो!

कहते हैं, अन्दर भगवान महा समुद्र ध्रुव है। समझ में आया? ध्रुव में महाभगवान अनन्त विराजते हैं। अनन्त परमेश्वर एक पर्याय में, ऐसी अनन्त पर्याय के परमेश्वर वे

उसके एक ज्ञानगुण में हैं। यहाँ तो सब गुणों का ध्रुवपना ऐसा उसका सामर्थ्य एक ज्ञान में, ऐसा दर्शन में, ऐसा आनन्द में—ऐसा ध्रुवपना जो है, उस ध्रुवपने का स्वरूप उसमें एक लक्षण से सिद्ध है। उत्पाद के और व्यय के कारण से ध्रुव है – ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

इतना ज्ञान महासागर है आत्मा! ध्रुव का ज्ञान महासागर!! अनन्त केवली उस उत्पादरूप वर्तते हैं। उनके उत्पाद का ज्ञान अपने कारण से अपना ज्ञान हुआ, ऐसा जो उत्पाद, ऐसे-ऐसे अनन्त उत्पादरूप ध्रुव जो है, उत्पाद की अपेक्षा रखता नहीं। अन्तर भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव समुद्र अनन्त-अनन्त परमेश्वर को तो एक पर्याय पी गयी! ऐसी अनन्त-अनन्त पर्यायों को एक ध्रुव पी गया!! आहाहा! समझ में आया? ऐसा अनन्त गुण का साहिबा आत्मा महासत्ता है। अभी तीन होकर (महासत्ता), हों! उसमें एक अवान्तरसत्ता का अन्तर्भेद तीन में से एक पड़ा न ध्रुव का! तीन होकर महासत्ता! त्रिलक्षणी महासत्ता है। वह अत्रिलक्षणी अर्थात् एक लक्षणी; उसरूप महासत्ता नहीं। अवान्तरसत्तारूप महासत्ता नहीं। समझ में आया?

ऐसा परमेश्वर का परमेश्वर जानने की अपेक्षा से, हों! दूसरे का परमेश्वर नहीं। एक समय में अनन्त परमेश्वर का अस्तित्व एक समय में जाना, वह अपनी पर्याय का उत्पाद अपने से हुआ है। परमेश्वर हैं, इसलिए हुआ है-ऐसा नहीं। समझ में आया? समवसरण में त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमेश्वर बिराजते हैं और ज्ञानी का लक्ष्य वहाँ गया, इसलिए उसकी पर्याय का उत्पाद हुआ, सामने चीज़ है, इसलिए (उत्पाद हुआ)-ऐसा नहीं है। समझ में आया? उस ज्ञान की पर्याय का उत्पाद अपने से, अपने कारण, महासत्ता जो तीन की गिनी है, उसमें की अवान्तरसत्ता अपने से उत्पन्न हुई है। आहाहा! और उस उत्पाद की अवान्तरसत्ता ध्रुव की अपेक्षा नहीं रखती। पर की अपेक्षा तो है ही नहीं कि भगवान थे, इसलिए यह ज्ञान की पर्याय हुई-(ऐसा तो है ही नहीं)। उसका उत्पाद उसमें है, इसका उत्पाद यहाँ का इसमें है। अस्तित्व है न यहाँ। समझ में आया?

ऐसा भगवान आत्मा है(-ऐसा) कभी सुना नहीं होगा। इसलिए आत्मा को पामर कर डाला। राग का कर्ता। अरे! ऐसा ज्ञान का महासमुद्र, वह राग का कर्ता हो सकता नहीं।

समझ में आया ? वह राग का जाननेवाला, एक समय की पर्याय में रागादि, पूरी दुनिया का जानने का एक समय की पर्याय का सामर्थ्य है। उस ज्ञान की पर्याय का उत्पाद, राग है और पर है; इसलिए होता है-ऐसा नहीं है। समझ में आया ? अर्थात् वह विकल्प और व्यवहार है, इसलिए उस क्षण यहाँ ज्ञान की उत्पत्ति होती है, ऐसा नहीं है। दूसरे क्षण में यहाँ राग की उत्पत्ति है, इसलिए दूसरे क्षण में उसके कारण से ज्ञान की पर्याय हुई (-ऐसा नहीं है), वह तो व्यय लक्षण व्यय में गया। अरे! ज्ञान की पर्याय जो पहले समय में थी, वह व्ययलक्षण तो व्यय में गया और नयी जो पर्याय उत्पन्न हुई, वह अपनी स्वतन्त्र पर्याय ज्ञान के उत्पादलक्षण से सिद्ध हुई है। समझ में आया ?

यहाँ तो अब कहते हैं कि उत्पादलक्षण से उत्पाद है; व्ययलक्षण से व्यय है और ध्रुवलक्षण से ध्रुव है। तीन लक्षणवाली जो पूरी महासत्ता गिनने में आयी है, उसमें अन्तर्भेद एक लक्षणवाला है, इन तीन में उसका अभाव है। तीन में एक लक्षण का अभाव है और एक लक्षण में तीन का अभाव है। अस्ति-नास्ति। महासत्ता में अवान्तरसत्ता का अभाव; अवान्तरसत्ता में महा (सत्ता) का अभाव। गजब बात! समझ में आया ? परवस्तु का तो अभाव है, परन्तु अपनी एक-एक अवस्था में-अवान्तर भेद में अपना दूसरा भेद है, वह इसमें नहीं। ऐसा एक-एक अस्तित्व का लक्षण स्वतन्त्र उत्पाद का, व्यय का और ध्रुव का है। आहाहा!

ऐसा ज्ञानस्वभाव ध्रुव.. अरे! यहाँ तो अनन्त गुण का ध्रुवपना लेना है, क्योंकि अनन्त गुण को यहाँ तीन लक्षण में ध्रुव को एक लक्षण गिना है। पश्चात् फिर ध्रुव को महासत्ता गिनकर उसके गुण के अन्तर्भेद को अवान्तरसत्ता गिनते हैं। समझ में आया ? ध्रुव एक आत्मा का है, वह महासत्ता है और उसके अन्दर में एक-एक गुण का अन्तर्भेद है, वह अवान्तरसत्ता है। समझ में आया ?

यहाँ तो तीन लक्षण में से एक लक्षण पूरा भिन्न करना है, परन्तु यहाँ तो वापस एक ध्रुव में लो तो ध्रुव एक जिस लक्षण में है, उसमें जो ध्रुव जो महासत्तारूप से है, वह अनन्त पर्यायों में पर्याय... महासत्तारूप से अनन्त पर्यायों का पिण्ड जो ध्रुव है, उसका एक-एक गुणभेद ग्रहो; एक ज्ञानगुण-जिसमें अनन्त पर्यायें समा गयी हैं, अनन्त परमेश्वर को जाने,

तीन काल-तीन लोक को जाने, इससे अनन्त गुणा हो तो जाने, ऐसा भगवान आत्मा के ज्ञान की एक समय की पर्याय का सामर्थ्य है। ऐसा सामर्थ्यवाले को ऐसा मानना कि यह राग था, इसलिए ऐसी सामर्थ्य पर्याय उत्पन्न हुई; पामर राग था, (वह गया, इसलिए) प्रभुता उत्पन्न हुई... यहाँ तो कहते हैं कि ध्रुव था, इसलिए पर्याय उत्पन्न हुई-ऐसा भी नहीं है, ले सुन! आहाहा! क्या परन्तु समुद्र वर्णन किया है न बड़ा!! चैतन्यरत्न... हें!

हाँ... जहाँ हो, वहाँ आता है न? बनारसीदास में आता है। आहाहा! एक जरा मनन तो-विचार तो करे कि यह मैं कितना हूँ? जिसके अनन्त-अनन्त गुण एक-एक द्रव्य के, सिद्ध के; वैसा द्रव्य, उसके अनन्त गुण; कितने गुण हैं? कि तीन काल के समय से अनन्तगुणे गुण हैं। तीन काल के समय से एक द्रव्य के अनन्तगुणे गुण।

आकाश के प्रदेश अनन्त है, तीन काल से भी इस आकाश के प्रदेश अनन्तगुणे हैं। उससे भी एक द्रव्य के अनन्तगुणे गुण हैं; ऐसे अनन्तगुणे जो एक-एक द्रव्य के गुण हैं और उनकी पर्याय, उनके अनन्त गुण का एकरूप-ऐसे अनन्त द्रव्य एक ज्ञान की पर्याय में जान लिये हैं। एक समय की पर्याय उत्पादरूप हुई, उसने सब जाना। वे हैं, इसलिए जाना है-ऐसा नहीं है। ध्रुव है, इसलिए जाना है-ऐसा नहीं है। समझ में आया? अथवा पूर्व की अवस्था का व्यय हुआ, इसलिए यह उत्पाद में जाना है-ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? वजुभाई! गजब, भाई!

इसका अस्तित्व ही इतना है। अस्तिरूप से एक समय की जो अनन्त गुण की पर्याय, उसका अस्तित्व इतना सत्त्व है। आहाहा! भगवान आत्मा अनन्त परमेश्वर को एक समय में जाने, ऐसे ज्ञान को राग का काम सौंपना कि यह राग करे, वह दया, दान, व्रत का राग करे... परन्तु राग तो साथ में होता है, भाई! समझ में आया? क्या कहा? साधक (दशा) में राग तो साथ में होता है, (ज्ञान और राग) दोनों साथ में होते हैं। उत्पाद, उत्पादरूप से है तो राग का उत्पाद है, यहाँ ज्ञान का उत्पाद है। एक समय का उत्पाद दोनों साथ में है। अब इसे ऐसा कहना कि यह राग का उत्पाद है, राग है, इसलिए यहाँ (ज्ञान का) उत्पाद होता है, तो कहते हैं कि ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

किस प्रकार से अस्तित्व को सिद्ध किया है? ऐसा है, वह सिद्ध किया है न! यहाँ

कहाँ इसे कल्पना से सिद्ध किया है। आहा! द्रव्यानुयोग तत्त्वज्ञान का विषय महासमर्थ है, गम्भीर है। श्रीमद् में आता है न? द्रव्यानुयोग गम्भीर है, शुक्लध्यान का रहस्य है। आहाहा! समझ में आया? ओहो! भगवान की वाणी दिव्यध्वनि और भगवान, इन सबको एक समय में ज्ञान की पर्याय जाने। वह दिव्यध्वनि है; इसलिए पर्याय का अस्तित्व है-ऐसा नहीं है। समझ में आया? भगवान को तो, किसी को तो आठ वर्ष में केवलज्ञान होवे और दिव्यध्वनि निकले। आठ वर्ष से कोटिपूर्व तक। समवसरण में दिव्यध्वनि.. उसे जो ज्ञानगुण का उत्पाद है, वह उत्पादलक्षण से है, ऐसा सिद्ध करते हैं। वह वाणी है और यह है; इसलिए उत्पाद हुआ है (-ऐसा नहीं है)। आहाहा! देखो न, एक बात! वस्तु की स्थिति ही ऐसी है, उसकी खबर नहीं होती और दृष्टि में विपरीतता तथा जैसा स्वभाव है, उसका अनादर (हो) और इसे धर्म होवे (-ऐसा नहीं है)। व्रत पालन कर मर जाए, अपवास कर-करके सूख जाए तो मिथ्यात्व का पाप हो। ऐई! जेठाभाई! यह अभी तक यही किया है न सब? आहाहा!

बापू! तुझे खबर नहीं। तेरे अस्तित्व में, एक-एक समय के अस्तित्व में कितना सामर्थ्य है! अरे! व्यय के अस्तित्व में भी, उत्पाद के कारण नहीं-ऐसा अभावरूप होने का सामर्थ्य है; और ध्रुव को ध्रुवरूप रहने का महासामर्थ्य है, ध्रुव महाप्रभु है। समझ में आया? उत्पाद द्वारा ध्रुव को देखे भले, परन्तु ध्रुव, उत्पाद के कारण से नहीं है। समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म पड़े, परन्तु है कुछ-इसका ध्यान में तो रखना चाहिए या नहीं? महासत्ता की खान की बातें चलती है। समझ में आया?

अस्तिकाय सिद्ध करते हैं। आहाहा! असंख्य प्रदेशी भगवान, वह काय। उसमें जो अनन्त गुण (और) पर्याय। उत्पाद, उत्पाद के कारण से-लक्षण से सिद्ध है। ध्रुव, ध्रुव के लक्षण से सिद्ध है। तीन लक्षणवाली महासत्ता; उसमें एक लक्षणवाली अवान्तरसत्ता का तीन में अभाव है। एक लक्षणवाली सत्ता में तीन लक्षण का अभाव है। उत्पाद में-पर्याय में ध्रुव का अभाव है; उस उत्पाद में व्यय का अभाव है; व्यय में उत्पाद का अभाव है; ध्रुव में उत्पाद का अभाव है और ध्रुव में व्यय का अभाव है। ऐसी वस्तु सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखकर इस प्रकार से कही है। इससे दूसरे प्रकार से कहे तो वह परमेश्वर को पहिचानता

नहीं और द्रव्य को जानता नहीं, विपरीत दृष्टि को घोंटता है। समझ में आया?

राग की मन्दता, कषाय के परिणाम, व्रत, नियम आदि के हों तो उनसे आगे जाया जा सकता है, ऐसा अस्तित्व का स्वरूप नहीं है-ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! क्यों? कि आत्मा में जब एक समय में ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, श्रद्धा की उत्पन्न हुई, उस समय अभी राग की भी उत्पन्न हुई है। वह उत्पन्न लक्षण से उत्पाद है, बस! वह उत्पाद, राग का उत्पाद ज्ञान की पर्याय को उपजावे (-ऐसा नहीं है)। वे दोनों स्वयं तो उपजे हैं, उसमें उपजावे किसे? आहाहा! समझ में आया? अथवा पूर्व की मन्दराग की, मन्दकषाय की पर्याय है, व्रत-नियम आदि के भाव हैं, इसलिए उसे अन्दर आत्मा को पहुँचाते हैं-(ऐसा नहीं है)। (क्योंकि) वह व्यय तो व्यय हो गयी है। व्यय हो गयी, वह उत्पाद में तो आती नहीं, अत: व्यय हुई, वह उत्पाद को करे-यह तो है नहीं। अभी भारी गड़बड़ है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, उत्पाद है, वह ध्रुव है, इसलिए उत्पाद है-ऐसा भी नहीं है। आहाहा! देखो न भाई! यह पर्याय का एक समय का स्वतन्त्र (अस्तित्व सिद्ध करते हैं)। सत् सत् है न? सत् को कोई हेतु नहीं होता। एक समय की भगवान आत्मा की पर्याय ज्ञान, दर्शन, शान्ति, आनन्द इत्यादि या रागादि (है) परन्तु वह उत्पाद, उत्पाद से है; उत्पाद, पर से तो नहीं और उस राग का उत्पाद है, वह कर्म से नहीं; उस राग का उत्पाद है, वह ज्ञान से नहीं; राग का उत्पाद है, उस समय में ज्ञान का उत्पाद राग के कारण नहीं। इसमें आवे क्या? कल तुम नहीं थे। यह सब यहाँ पूछने का था कल। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? इसमें भगवान घोंटा जाता है।

ऐसा भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ अनन्त-अनन्त शान्ति और आनन्द की-अनाकुल की खान—ऐसा जो ध्रुव। आहाहा! महासमुद्र चैतन्य रत्नाकर ध्रुव है, वह ध्रुव अपने लक्षण से ही लक्षित है। उत्पाद से ज्ञात हो ध्रुव; ध्रुव कहीं ध्रुव से ज्ञात नहीं होता परन्तु उत्पाद से ज्ञात होता है परन्तु ध्रुव, ध्रुव के कारण रहा हुआ है; उत्पाद के कारण ध्रुव रहा है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह मूल तो तत्त्व का अस्तित्व और उसकी सत्ता किस प्रकार है, उसकी खबर नहीं, इसलिए यह सब गड़बड़ी उठी है। सम्प्रदाय के नाम

से यह धर्म है और यह धर्म है। अधर्म है, वह धर्म है (ऐसा अज्ञानी मानता है)। ऐई! भगवान की भक्ति और व्रत का भाव, वह विकल्प है, वह विकल्प है, वह अधर्मभाव की उत्पत्ति है। अरे! गजब बात है।

मुमुक्षु : सम्प्रदाय को धर्म मान लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मान लिया। दृष्टि पूरी तत्त्व भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द साहेब बड़ा है, आनन्दकन्द का नाथ है, अनन्त परमेश्वर जिसने गर्भ में रखे हैं। अरे! उसकी क्या खबर। पूरी दुनिया तीन काल—तीन लोक से अनन्तगुने सिद्ध हों, अनन्तगुणा काल हो तो उसकी एक समय की पर्याय में जान सके, ऐसी ताकतवाला प्रभु है। वह राग के कारण नहीं। वे इतने संयोग हैं, इसलिए नहीं। आहाहा! समझ में आया? बाबूभाई! समझ में आया या नहीं?

अरे! जहाँ निधान भगवान विराजता है, वहाँ नजर तो कर, कहते हैं। अनन्त परमेश्वर जिसके पेट में-गर्भ में पड़े हैं। उसके ध्रुव में पुण्य-पाप जरा भी नहीं हैं। वह तो उत्पाद में गया। वह उत्पाद में कहा पहला। पुण्य का विकल्प उठा, उस क्षण में धर्मी को ज्ञान की पर्याय भी उत्पन्न हुई तो वह तो एक समय में दो हुए हैं। तो उसको व्यवहार कहना और इसे निश्चय कहना परन्तु व्यवहार है, इसलिए निश्चय है, ऐसा नहीं है। राग है, इसलिए ज्ञान का उत्पाद है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो अन्तिम ध्रुव आया न जरा? कहते हैं। **जिस स्वरूप से ध्रौव्य है, उसका (उस स्वरूप का) उस प्रकार से ध्रौव्य एक ही लक्षण है...** परमाणु है परमाणु, यह परमाणु सूक्ष्म पॉईन्ट, उसमें भी अनन्त पर्यायें जो होती हैं, अनन्त गुण की रंग की अवस्था, रंग की अवस्था (होती है)। एक समय में अनन्त गुण की रंग की अवस्था है, वह उत्पाद, उत्पाद के कारण हैं। रंग गुण है; इसलिए नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परमाणु में निमित्त आया, इसलिए रंग आया, यह तो है ही नहीं, परन्तु रंगगुण ध्रुव पड़ा है, इसलिए रंग की पर्याय अनन्त गुणे वर्णरूप परिणमी है, ऐसा नहीं है। अरे! जगत को सुनने को मिलता नहीं। ऐसा तत्त्व है और ऐसा वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया?

यहाँ तो... ऐई! वह पण्डित आया था न? (वह कहता था), दिखता है, अग्नि

आयी तो पानी गर्म हुआ। भाई! क्या तुमने कहा? अग्नि, अग्नि में है; पानी, पानी में है। पानी की अवस्था का अस्तित्व पानी की अवस्था में है। अग्नि की अस्तित्व की अवस्था अग्नि में है। उसके कारण यहाँ गर्म हुआ, यह तूने कैसे किस प्रकार माना? समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि अग्नि का जो उत्पाद, उस क्षण का है, उसके उत्पादरूप उसमें ही है और पानी का जो उष्णपने का उत्पाद है, वह स्वयं उत्पाद, उत्पाद के कारण है; अग्नि के कारण उष्ण की पर्याय उत्पन्न हुई है, ऐसा नहीं है। उत्पन्न उसके कारण (तो हुई) नहीं परन्तु ध्रुव में स्पर्शगुण है, इसलिए उष्ण पर्याय उत्पन्न हुई है, (ऐसा भी नहीं है)। आहाहा! अकेली वीतरागता! अकेली ज्ञायकता है! ऐसा कैसे? यह ज्ञान में प्रश्न ही नहीं। होने ही रूप से इस प्रकार से वस्तु है, उसमें फिर ऐसा कैसे, इस प्रश्न को अवकाश नहीं है। समझ में आया?

यह बड़े-बड़े पण्डितों को विवाद उठता है, लो! उस समय भाई ने प्रश्न किया था। धीरुभाई के भाई ने। उसने पूछा, होनेवाला होगा, वह होगा तो फिर पुरुषार्थ कहाँ रहा? यह सबको व्यवधान है। धीरुभाई को पूछा और धीरुभाई ने कहा परन्तु तू नहीं समझे अभी। होनेवाला होगा, वह होगा। बापू! होनेवाला होगा, वह होगा अर्थात् उत्पाद। समझ में आया? होनेवाला होगा, वह होगा, इस उत्पाद का ज्ञान कौन करे? यह ज्ञान जाने। ज्ञान का उत्पाद कैसे हो? स्वयं के कारण ज्ञान का उत्पाद हो। समझ में आया? यह होनेवाला होगा, (वह) होगा, इसका निर्णय ज्ञायकभाव पर जाता है। ज्ञायकभाव हूँ, अकेला जाननेवाला हूँ अर्थात् जिस समय की मुझमें पर्याय होनी है, वह होनी है; जड़ में जिस समय (होनी है) वह होनी है, उसे मैं जाननेवाला हूँ, यह जाननेवाले का निर्णय किया, ज्ञानस्वरूप से ज्ञायक भगवान हूँ, ऐसा निर्णय किया तो होनेवाला वह होगा का जाननेवाला रहा। इसका नाम पुरुषार्थ है। आहाहा! क्या हो? ऐसी गड़बड़ चढ़े न! यह सूक्ष्म बात है, हों! पूछते थे, बेचारे प्रेम से पूछते थे, हों! (मैंने पूछा), धीरुभाई को पूछा नहीं? (तो उसने कहा) कि धीरुभाई ने मुझे कहा कि परन्तु तू नहीं समझेगा अभी। धीरुभाई की बात सत्य। धीरूभाई चतुर व्यक्ति है और उसे अभ्यास है न! आहाहा! उसने कहा, भाई! ऐसा है, बापू! हों! मार्ग ऐसा है। आया था, घूमकर यहाँ आया था न? कहा, ऐसा मार्ग है, एकदम जँचे ऐसा

नहीं है। होनेवाला होगा वह होगा, अर्थात् क्या? उसे जाना किसने? होना होगा वह होगा, इसका ज्ञान किया हो, तब होना होगा वह होगा। तब होना होगा वह होगा किसमें? – कि द्रव्य में। तो द्रव्य का ज्ञान किया हो तो होना होगा वह होगा, उसका जाननेवाला रहे। उसके बिना ज्ञान हुआ कहाँ से? होनेवाला होगा, वह होगा का ज्ञान कहाँ से हुआ? आहाहा! समझ में आया? देखो! वीतराग का मार्ग दुनिया के साथ कुछ मेल खाये ऐसा नहीं है। समझ में आया? वस्तु की स्वरूप की स्थिति ही ऐसी है।

कहते हैं कि भगवान आत्मा ध्रुवस्वरूप जो चिदानन्द अनादि-अनन्त ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. जिसमें अनन्त परमेश्वर के परमेश्वर के पर्याय के पिण्डरूप ध्रुवपना पड़ा है। आहाहा! जिसका / ध्रुव का ज्ञान, वह पर्याय से भी अधिक है और पूरी दुनिया से अधिक अर्थात् भिन्न है। समझ में आया या नहीं? '**णाणसहावाधियं मुणदि आदं**' सब चीज़ से भिन्न, ज्ञानस्वभाव से अधिक। अधिक अर्थात् पर से भिन्न, ऐसा जान। '**णाणसहावाधियं**' ज्ञान भगवान आत्मा जाननहार प्रज्ञाब्रह्म चैतन्यबिम्ब वह राग और पर से अत्यन्त भिन्न अर्थात् अत्यन्त पृथक् है।

ऐसा अन्तर्ज्ञान करे उसे सम्यग्दर्शन धर्म की पहली शुरुआत होती है। पश्चात् उसे चारित्र होता है, स्वरूप में स्थिर हो, तब चारित्र। ये व्रत-ब्रत के विकल्प आवें, वे चारित्र-फारित्र नहीं हैं। चारित्र अर्थात् चरना। चरना, वह स्वरूप में हो, उसमें चरे या राग में चरे? समझ में आया? आहाहा! यह हंस मोती को चरे! यह हंस दाने को नहीं खाये। समझ में आया? मानसरोवर का हंस मोती खाता है, भूखा रहे परन्तु ज्वार नहीं खाता। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा तो शुद्ध ज्ञान और आनन्द के चारे को चरनेवाला आत्मा है। वह राग को चरे और राग को खावे, वह आत्मा नहीं है। वह हंस नहीं है, वह हंस नहीं है। समझ में आया? भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, उस आनन्द के चारे को चरे अर्थात् रमे, उसका नाम चारित्र है। (आत्मा) आनन्द का चारा खाये। राग का भूसा खायेगा? आहाहा!

कहते हैं, **ध्रौव्य है उसका (-उस स्वरूप का) उस प्रकार से ध्रौव्य एक ही लक्षण है इसलिए वस्तु के...** अब पूरी वस्तु ली। **उत्पन्न होनेवाले, नष्ट होनेवाले और ध्रुव रहनेवाले स्वरूपों में से प्रत्येक को त्रिलक्षण का अभाव होने से...** पूरे द्रव्य की अपेक्षा

से तीन लक्षण हैं। यह पूरी चीज के कारण तीन लक्षण हैं, परन्तु प्रत्येक को एक-एक को तीन लक्षण का अभाव है। आहाहा! अस्ति और नास्ति! अनेकान्त! यह वीतराग का अनेकान्त देखो! आहाहा! यह (अज्ञानी) तो खिचड़ा (करता है) ऐसा भी होता है और ऐसा भी होता है। निमित्त से होता है और उपादान से होता है, राग से धर्म होता है और वीतरागपर्याय से धर्म होता है। अरे! यह तो खिचड़ा-मिथ्यात्व भाव है। समझ में आया?

कहते हैं कि **ध्रुव रहनेवाले स्वरूपों में से प्रत्येक को त्रिलक्षण का अभाव होने से त्रिलक्षणा (सत्ता) को...** त्रिलक्षण सत्ता को। एक-एक आत्मा, एक-एक परमाणु उनके तीन लक्षण अस्तित्व को **त्रिलक्षण को अत्रिलक्षणपना है...** महासत्ता की अपेक्षा से तीन और अन्तर्भेद की अपेक्षा से एक लक्षणपना है। अर्थात् तीन लक्षणपना उसमें नहीं है। समझ में आया? ध्रुव में कहीं तीनों लक्षण आ जायें? उत्पाद में तीनों आ जायें? व्यय में तीनों आ जायें? पूरे द्रव्य की अपेक्षा से तीन हुए। एक-एक में तीन नहीं आते, इसलिए एक महासत्ता में तीन है, तब एक-एक में अवान्तरसत्ता का उसमें अभाव है। गजब सूक्ष्म, भाई!

यह तो वीतराग तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ भगवान यह 'महावीर महावीर' तो बहुत करते हैं सब। महावीर की देशना, महावीर की देशना... आता है न वर्धमान देशना? हेमचन्द्राचार्य का। अन्दर सब गप्प मारी है। महावीर की देशना आती है एक पुस्तक हेमचन्द्राचार्य की। कुछ ठिकाना नहीं होता। लोगों को खबर नहीं होती और कहनेवाले की जरा क्षयोपशम की दशा विशेष देखे... आचार्य हो, इसलिए लगे कि... आहाहा! क्या रोचक ज्ञान इनका! क्या रोचक कथन! मिथ्यात्व का रोचक है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि **अत्रिलक्षणपना है (अर्थात् जो सामान्य-विशेषात्मक सत्ता...)** अर्थात् महासत्ता और अवान्तरसत्ता, यह सब होकर जो सत्ता, ऐसी जो **(महासत्तारूप होने से त्रिलक्षणा है, वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से...)** वह महासत्ता, वह भी एक सत्तारूप से है। तीनों भी एकरूप हैं। **(अवान्तरसत्तारूप भी होने से अत्रिलक्षणा भी है)**। ओहोहो! समझ में आया? समझ में आता है? उसके अन्तर्भेद में भी है न

अवान्तरसत्ता ? कहते हैं। महासत्ता है, उसके अन्तर्भेद अवान्तरसत्ता, वही स्वयं अवान्तरसत्ता है। ऐसा कहते हैं। दो बोल हुए न ? तीसरा, तीसरा आया न ?

(३) एक वस्तु की स्वरूपसत्ता अन्य वस्तु की स्वरूपसत्ता नहीं है... एक-एक आत्मा की, एक-एक परमाणु की जो स्वरूपसत्ता है, वह अन्य वस्तु की स्वरूपसत्ता नहीं है। **इसलिए एक (सत्ता) को अनेकपना है...** जो एक ऐसा कहा है सब होकर एक है, सब होकर एक है, ऐसा कहा था परन्तु उसमें एक-एक स्वरूप की सत्ता वह दूसरी स्वरूप सत्तारूप से नहीं है। इसलिए वह एक कही थी, वही अनेक है। समझ में आया ? वेदान्त कहता है वैसा नहीं, हों! सब होकर आत्मा एक है, ऐसा नहीं। आहाहा! वह तो वस्तु एक ही कहता है। यह तो अस्तित्व की अपेक्षा से सब एक है। उसकी अपेक्षा से एक-एक स्वरूप की सत्ता भिन्न-भिन्न है; इसलिए महासत्तारूप से एक है, वही अवान्तरसत्तारूप से अनेक है। समझ में आया ? ऐसा तो पढ़ने में भी कठिन नहीं आता होगा, नहीं ? पढ़ने में क्या आवे ?

यह तो भगवान होने का मार्ग है! परमेश्वर होने का मार्ग है! स्वयं परमेश्वरस्वरूप ही है। महाचैतन्य प्रभु है, वह भाषा ऐसी बोले परन्तु वह किस प्रकार है ? समझे न ? ....उसे बोले चैतन्य महाप्रभु... महाप्रभु यहाँ बैठते थे। बैठे कहाँ महाप्रभु ? महाप्रभु तो महाप्रभु में है। समझ में आया ? आहाहा! वहाँ धूल भी नहीं, सुन न! महाप्रभु तो यहाँ अन्दर में है। बाहर में कहाँ था ? और दूसरा महापरमेश्वर त्रिलोकनाथ, वह समवसरण में बैठे हों तो उसमें तुझे क्या ? तुझे क्या ? तेरा अस्तित्व उनके कारण है ? और उनका अस्तित्व तेरे कारण है ? तेरे श्रद्धा और ज्ञान की पर्याय की उत्पत्ति, वे हैं तो है ? आहाहा! समझ में आया ? लो! बहुत वेदना, वह सम्यग्दर्शन का कारण; भगवान का दर्शन, वह सम्यग्दर्शन का कारण; देव की महाऋद्धि देखे तो... अब सुन न, वह तो निमित्त का (कथन) है। निमित्त कौन था, उसका कथन है। ऐ.. भीखाभाई! इसमें चर्चा किसके साथ करना ? ऐसा नहीं, किसके साथ इसमें मेल खाये किस प्रकार खाये ? पूरा पूर्व-पश्चिम का अन्तर है।

ऐ.. क्रियाकाण्ड को उत्थापते हैं। भाई! बड़ी पुस्तक बनायी है न ? चन्द्रशेखर। प्रेमविजय के शिष्य। उसके गुरु की पुस्तक बनायी। क्रिया का नाश करते हैं, लाख-लाख

नाश करते हैं, सुन न! क्रियाकाण्ड का विकल्प है, वह विकार है और विकार, वह आत्मा नहीं तथा आत्मा का अस्तित्व उसमें नहीं। समझे? आस्रवतत्त्व में आत्मा का अस्तित्व है? आहाहा! देखो! चन्द्रशेखर ऐसा लिखता है, इसलिए अपने मन्दिरमार्गीयों को वह पढ़ने योग्य है, पढ़ो.. अरे! भगवान! तुझे खबर नहीं, बापू! तेरी सम्पदा और तेरी ऋद्धि कितनी बड़ी है, इसकी तुझे खबर नहीं है। महाप्रभु चैतन्य भगवान, वह राग के क्रियाकाण्ड से प्राप्त हो, वह पामर की... समझ में आया? क्या कहलाता है? तुम्हारी भाषा भूल जाते हैं। किसी की सिफारिश.. सिफारिश.. सिफारिश। यहाँ राग की पहुँच काम न आवे, कहते हैं। ऐई! जयन्तीभाई! विकल्प तो अन्धा है। यह व्यवहार जितना दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प है, वह तो अन्धा है, जड़ है, अचेतन है; वह आत्मा का स्वरूप नहीं है। अचेतन अर्थात् उसमें चैतन्य का कण नहीं है। आहाहा! भारी कठिन काम। यह तो अचेतन कहा है भगवान ने उसे तो। राग के भाग को अचेतन कहा है। दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प उठते हैं, वे अचेतन हैं। उनमें चैतन्य भगवान ज्ञान का पुंज प्रभु का कण उसमें कहाँ राग में है? वह राग तो अन्धा है। अन्धे से जगे? कोई अन्धा कर नहीं सकता धूल भी वह। ऐ.. भीखाभाई! आहाहा!

कहते हैं, वस्तु की एक-एक सत्ता अवान्तर से दूसरी रूप की सत्तारूप से नहीं है। 'है' अपेक्षा से सबको एकरूप कहा परन्तु एक में अनेक होकर एक है न? अनेक होकर एक है न? अनेक अपेक्षा से अवान्तरसत्ता एक की अपेक्षा से नास्ति और अनेक की अपेक्षा से एकपना भी नास्ति।

(अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होने से 'एक' है, वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'अनेक' भी है।) लो! ओहोहो! बहुत समाहित किया है, हों! थोड़ी भाषा में। यह पढ़े तो कुछ समझ में नहीं आवे, बहुत पढ़ जाये। अब अध्यात्म की बात चली है न बाहर? पढ़ो अपने। (फिर) निकाले, उसकी दृष्टि हो, वैसा निकाला करे। आहाहा! भगवान महावीर ने दीक्षा ली, तब इन्द्र ने वस्त्र दिया। अरे! भगवान को वस्त्र नहीं होता। मुनि को वस्त्र नहीं होता, भगवान को कौन दे? यह तो कल्पित उठायी हुई मिथ्या बात है। मुनि नग्न-दिगम्बर हों, उन्हें वस्त्र का धागा नहीं

हो सकता। ऐसा मुनिपना होता है, उन्हें अन्तर में तीन कषाय का अभाव होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : देना पड़ा। हमारी दीक्षा में गाया था, भरत वैरागी.।'देवों ने दीक्षा ओघा मोहपत्ती, जैनशासन के राजीभरतेश्वर, भयो रे भूपत वैरागी।' हमारी दीक्षा हुई थी न! ५६ वर्ष हुए, ५६ वर्ष होंगे। उतारा में गाया था। मगसिर शुक्ल ९ की दीक्षा थी और लोग बहुत आये थे। दीक्षा के बाद गाया, 'भरतेश्वर भूपत भयो रे वैरागी...' फिर गाया यह अन्दर। केवलज्ञान हुआ परन्तु जब तक ओघो और मुँहपत्ती नहीं दिये, तब तक कोई वन्दन नहीं करे। ऐसी बातें कुकर्म है न! ऐई! छगनभाई! सुना है या नहीं?

इसी प्रकार भगवान ने दीक्षा ली, तब इन्द्र ने वस्त्र दिया था। किसलिए दिया? कन्धे पर रखने को। परन्तु यह किस प्रकार का न्याय? ओढ़ने के लिये नहीं और कन्धे पर रखा। यही गप्प मारी है न एकदम! और फिर वापस एक ब्राह्मण आया तो उसे आधा फाड़कर दिया। यह उन्होंने करुणा की। कुकर्म करते हैं। वीतराग को दूसरे को देने का भाव! समझ में आया? उसे वस्तु के गुण के अस्तित्व की खबर नहीं है। मुनि वीतरागदशा जहाँ प्रगट हुई, उसे वस्त्र का टुकड़ा कैसा? और वह वस्त्र रखे और दूसरे को दे... अरे! अत्यन्त विपरीत मान्यता के सब लक्षण हैं। आहाहा! जेठाभाई!

अब कहते हैं, **सर्वपदार्थस्थित...** है न? सर्वपदार्थस्थित, एक पदार्थस्थित। **(४) प्रतिनिश्चित (-व्यक्तिगत निश्चित) पदार्थ में स्थित सत्ताओं द्वारा ही पदार्थों का प्रतिनिश्चितपना (-भिन्न-भिन्न निश्चित व्यक्तित्व) होता है...** प्रत्येक वस्तु अपनी-अपनी सत्ता में होने से अनेकरूप से प्रत्येक का भिन्न-भिन्नपना है। **इसलिए सर्वपदार्थस्थित (सत्ता) (सर्व पदार्थ में रहा हुआ अस्तित्व) को एकपदार्थस्थितपना है।** समझ में आया? एकपदार्थस्थितपना है। महासत्ता वह एक की अपेक्षा से एक पदार्थ सिद्ध है। ओहोहो! वीतरागता किसे कहना? मुनिपना किसे कहना? ऐसे शाम-सबेरे प्रतिक्रमण में बोले। कुसाधु को साधु नहीं, असंजमम परिणामी... किया है न? भगवानभाई! ये सब पहाड़े बहुत किये थे हमने वहाँ। अबहूं परिणामी, आतपतमं परिणामी अकल्प को छोड़

देता हूँ, कल्प को अंगीकार करता हूँ। श्वेताम्बर के साधु को हो, श्वेताम्बर के साधु को होता है और श्रावक को। स्थानकवासी में दोनों को होता है। ....अज्ञान को छोड़ता हूँ, परन्तु ज्ञान किसे कहना और अज्ञान किसे कहना, इसका भान नहीं होता। ज्ञान छोड़ दिया है। ...मिथ्यात्व को छोड़ा है परन्तु मिथ्यात्व कहना किसे, यह खबर नहीं होती। क्या छोड़े? धूल। शाम-सबेरे झूठ बोलता है। भगवान की साक्षी में झूठ बोलता है।

यहाँ कहते हैं, सब पदार्थों में भी एक-एक पदार्थ भिन्न-भिन्न स्थित है। सर्व पदार्थ स्थित की अपेक्षा से वही वस्तु एक-एक है, वह अवान्तरसत्तारूप से वह है। महासत्ता महाविश्वरूप है सब, वह एकरूप है, एक की अपेक्षा से। जो सबरूप है, वह एकरूप भी है। **(अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होने से 'सर्वपदार्थस्थित' है, वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'एकपदार्थस्थित' भी है।)** समझ में आया? लो! ये चार बोल हुए।

(५) प्रतिनिश्चित एक-एक रूपवाली सत्ताओं द्वारा ही वस्तुओं का प्रतिनिश्चित एक-एकरूप होता है। समझ में आया? यह रूप आया। विश्वरूप, विश्वरूप अर्थात् सब रूप। सब होकर सब। उसमें एक-एक रूप, वह एकरूप है। विश्वरूप की अपेक्षा से एकरूप असत्ता है और एक सत्ता की अपेक्षा से विश्वरूप असत्ता है। **(अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता...)** सामान्य अर्थात् महासत्ता, विशेष अर्थात् अवान्तरसत्ता। सब होकर सत्ता ऐसी **(महासत्तारूप होने से 'सविश्वरूप' है...)** सब, समस्तरूप। विश्व अर्थात् समस्त, समस्तरूप है।

(वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'एकरूप' भी है)। महासत्ता के अन्तर्भेद में एक-एक द्रव्य है, वह एकरूप भी है। एक यह अलग और एकरूप अलग। एक यह वह महासत्ता को लागू पड़ता है और एकरूप अवान्तरसत्ता को लागू पड़ता है। समझ में आया? थोड़ा-थोड़ा पढ़कर विचार करना चाहिए। समझ में आया? यह तो अध्यात्मशास्त्र है। वस्तु की स्थिति को बतलानेवाला है। है, है-ऐसा तो कहते हैं परन्तु है, वह किस प्रकार से है, ऐसा जो जैसा है, वैसा न समझे और न माने तो उसकी विपरीत दृष्टि जाती नहीं है।

अब **(६) प्रत्येक पर्याय में स्थित (व्यक्तिगत भिन्न-भिन्न) सत्ताओं द्वारा ही प्रतिनिश्चित एक-एक पर्यायों का अनन्तपना होता है...** आहाहा! एक द्रव्य है आत्मा, उसकी अनन्त पर्याय है। वे अनन्त पर्याय महासत्ता। ऐई! एक भगवान आत्मा, उसके अनन्त गुण। एक द्रव्य है महासत्ता, उन गुण के अन्तर्भेद की अपेक्षा से अवान्तरसत्ता। अब गुण की एक समय की अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें प्रत्येक जीव में हैं। अब वे अनन्त पर्यायें एक समय की, उन्हें महासत्ता कहा, तब उनको-एक-एक पर्याय को अवान्तरसत्ता कहा। समझ में आया?

आत्मा में अनन्त पर्यायें हैं। वे अनन्त पर्यायें एक साथ अनन्त गुण की हैं, इस अपेक्षा से महाअस्तिरूप है। उनकी एक-एक ज्ञान की पर्याय, एक ज्ञान की पर्याय अवान्तरसत्ता है। इतनी एक समय की पर्याय, अनन्त परमेश्वर को जाने, ऐसी एक पर्याय है, तथापि वह अवान्तर अन्तर्भेद है। महासत्ता की अपेक्षा से एक समय की पर्याय ध्रुव को जाने, गुण को जाने, परमेश्वर को जाने, तीन काल को जाने, तीन लोक को जाने, तथापि अनन्त पर्यायें जो अनन्त गुण की हैं, उनमें की एक समय की पर्याय है अवान्तर अन्तर्भेद भिन्न है। वह अवान्तरसत्ता है तो अनन्त पर्यायें हैं, ऐसा नहीं है। अनन्त पर्यायें हैं तो एक अवान्तर पर्याय की सत्ता है, ऐसा नहीं है। गजब ऐसा... समझ में आया?

परमाणु में एक समय में अनन्त गुणों की अनन्त पर्याय महासत्ता। पश्चात् एक गुण की हरी पर्याय है, दो गुण, चार गुण, वह अवान्तरसत्ता है। तो कहते हैं, दूसरी अनन्त पर्यायें हैं, इसलिए यह हरी पर्याय है, ऐसा नहीं है। हरी पर्याय अवान्तर है, इसलिए सब पर्यायें हैं, ऐसा नहीं है। ओहोहो!

ज्ञान की एक पर्याय अवान्तरसत्तारूप से, दूसरी श्रद्धा की एक पर्याय अवान्तरसत्तारूप से, तीसरी आनन्द की पर्याय अवान्तरसत्तारूप से—ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायें! एक में इतना सामर्थ्य है, ऐसा ही एक दूसरी पर्याय में श्रद्धा में भी इतना सामर्थ्य है। समझ में आया?

ज्ञान में एक समय में अनन्त परमेश्वर को जानने का सामर्थ्य है, वह स्वतन्त्र अवान्तरसत्ता है और दूसरी श्रद्धापर्याय में भी इतने सब आत्मा को और पूर्ण आत्मा को

श्रद्धे, ऐसी सामर्थ्यता, वह इस ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य है, इसलिए श्रद्धा की पर्याय का सामर्थ्य है–ऐसा नहीं है। समझ में आया? पुराने व्यक्ति को बहुत सूक्ष्म लगे। पहले तो एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय... जाओ! हो गया.. अप्पाणं वोसरे करके आत्मा को छोड़ दिया। कुछ भान नहीं होता। क्या है अप्पाणं और क्या है तस्सुतरी... कुछ नहीं मिलता। ऐसा का ऐसा चला जाता है।

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा में अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें हैं। अनन्त है, वह सामान्य हैं। एक-एक पर्याय है, वह स्वतन्त्र है। सब है, इसलिए एक है—ऐसा नहीं है और एक ज्ञान की, श्रद्धा की ऐसी पर्याय है, इतने बड़े द्रव्य को, गुण को, तीन काल के परमेश्वर को श्रद्धे, ऐसी एक समय की पर्याय है; इसलिए ज्ञान की पर्याय का ज्ञानपना है, ऐसा नहीं है। चारित्र की पर्याय इतनी बड़ी एक समय की है कि यह पूर्ण द्रव्य और पूर्ण गुण में एकाग्र होकर स्थिरता (हुई)। इतना सामर्थ्य है उसका, स्थिरता का इतना सामर्थ्य है, तथापि वह सामर्थ्य श्रद्धा की पर्याय और ज्ञान की पर्याय के कारण नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

(६) प्रत्येक पर्याय में स्थित (व्यक्तिगत भिन्न-भिन्न) सत्ताओं द्वारा ही प्रतिनिश्चित एक-एक पर्यायों का अनन्तपना होता है... एक-एक होवे तो अनन्त होता है, ऐसा कहते हैं। एक-एक होवे तो अनन्त होवे न! या सीधे अनन्त मिले। इसलिए अनन्त पर्यायमय (सत्ता) को एकपर्यायमयपना है, इसलिए अनन्त का एकपना है। **इसलिए अनन्त पर्यायमय (सत्ता) को एकपर्यायमयपना है (अर्थात् जो सामान्य-विशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होने से 'अनन्तपर्यायमय' है वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'एकपर्यायमय' भी है।)** इस प्रकार अवान्तरपर्यायसत्ता, वह महासत्ता नहीं है; महासत्ता, वह एक समय की पर्यायरूप नहीं है। ऐसा अस्ति-नास्ति का अनेकान्तपना वस्तु के स्वभाव में विराजमान है। ऐसा जो समझण समझे, उसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुए बिना नहीं रहता।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

धारावाही प्रवचन नं. १५ (प्रवचन नं. १४), गाथा-८
दिनांक - २८-११-१९६९, कार्तिक कृष्ण ५, शुक्रवार

पंचास्तिकाय, आठवीं गाथा—अन्तिम बोल है, छठवाँ। देखो, छठवाँ। भावार्थ के ऊपर है न सात लाईन। आठवीं गाथा का छठवाँ, छठवाँ। छह है छह। आठवीं गाथा पंचास्तिकाय।

प्रत्येक पर्याय में स्थित सत्ताओं द्वारा ही प्रतिनिश्चित एक-एक पर्यायों का अनन्तपना होता है, इसलिए अनन्तपर्यायमय (सत्ता) को एकपर्यायमयपना है.... एक पर्यायमयपना है। अब इसका अर्थ। सूक्ष्म बात है जरा। यह तो शब्द हो गये। अब इसका अर्थ होता है। यह आत्मा है या यह परमाणु है। यह रजकण है न ? यह एक-एक आत्मा में अनन्त गुण है शक्ति। और उसकी एक समय में छोटे में छोटे काल में अनन्त पर्यायें अनन्त गुणों की हैं। पर्याय अर्थात् अवस्था; अवस्था अर्थात् हालत। समझ में आया ?

इस देह में रहा हुआ भगवान आत्मा, उस एक आत्मा के अनन्त गुण हैं। ज्ञान-दर्शन-चारित्र वे संख्या से अनन्त हैं। काल से अनन्त रहते हैं, वह तो शाश्वत् वस्तु है। परन्तु संख्या से अनन्त हैं। और वह संख्या से अनन्त की एक समय में-सेकेण्ड के असंख्य भाग में-छोटे में छोटे काल में उन अनन्त गुणों की अनन्त पर्यायों का अस्तित्व है। उसे महासत्तारूप से कहते हैं। है, सब है। अनन्त पर्यायें हैं। पर के कारण नहीं, यह प्रश्न यहाँ है ही नहीं अब। आत्मा में जो अनन्त गुण की अनन्त अवस्थायें होती हैं, वे कोई कर्म, शरीर, वाणी और देव-शास्त्र-गुरु से होती है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? उसमें एक परमाणु है, उसका अन्तिम भाग-टुकड़ा, उसमें अनन्त गुण हैं। अनन्त गुण की एक समय में सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त पर्यायें हैं। वे अनन्त पर्याय दूसरे परमाणु के कारण नहीं हैं, आत्मा के कारण नहीं है। समझ में आया ?

प्रत्येक द्रव्य की अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें एक समय में है, वह स्वयं के कारण से है। पर के कारण से नहीं। समझ में आया ? उसका अस्तित्व स्वयं के कारण से है। पर के कारण से नहीं। दूसरे द्रव्य के कारण से नहीं, ऐसी महासत्ता का स्वीकार करे तो कहते

हैं कि एक... एक... एक... एक प्रतिनियत होता है, वह अनन्त होता है। अनन्त पर्याय कही न? परन्तु अनन्त हुई कब? कि एक... एक... एक... एक ऐसे अनन्त बार उसमें भी जो एक... एक... पर्याय (वह) स्वतन्त्र सत्ता रखती है। दूसरे अन्तर आत्मा के ज्ञान की पर्याय हुई, इसलिए यहाँ समकित की पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

आत्मा आनन्दमूर्ति अनन्त ज्ञानगुण का पिण्ड प्रभु आत्मा है। यह आत्मा सच्चिदानन्द-स्वरूप, तो उसकी संख्या से गिनती से उसके गुण अनन्त हैं। और उतनी ही उसकी गिनती से पर्यायें अनन्त हैं। अवस्था-हालत। वह है, वह पर के कारण नहीं। समझ में आया? यह लिखा नहीं न दो दिन का? दो दिन का लिखा है? नहीं लिखा। अब सब गया। यह दो दिन की गाथा आयी, वह लोगों को ऐसी थी कि दोबारा आना मुश्किल, लिखने में ध्यान बिल्कल नहीं था। यहाँ यह लिखते हैं किसी समय तो अपने शब्द डालते हैं। लोग कहते हैं कि महाराज के शब्द आते नहीं। सेठियाजी ने भी चिल्लाहट की थी। महाराज के शब्द इसमें नहीं आते। यह दो दिन का चला गया, फिर सामने देखकर खड़े लिखते ऐसी व्याख्या। कल और परसों, दोनों (गयी)। मुझे स्वयं को अन्दर से नया लगा। निकले तब निकलता है न यह कुछ, ऐसा था। परन्तु इसमें लिखा नहीं। जरा भी लिखा नहीं परन्तु अब फिर से हो गया। यह तो नया कुछ लिखता नहीं, उसके बदले कोई ऐसा हो, तब तो लिखना चाहिए या नहीं? यहाँ लिखना ही बन्द कर दिया। स्वतन्त्र है। इसमें रिकॉर्डिंग होता है परन्तु रिकॉर्डिंग हो वह अलग और ऐसे सीधी लिखे वह अलग। इसमें रिकॉर्डिंग भी निकले, तब सही न! वह वापस निकालनेवाले... यह बात ऐसी है। यह स्वकाल में आयी, वह आयी। वापस वहाँ कहीं फिर से नहीं आती। लिखी हुई है अन्दर? अन्दर रचकर रखी है? ऐसा भी नहीं। विचाककर रखी है? ऐसा भी नहीं। इस समय प्रवाहरूप से आवे, वह आ गयी। ऐसी सूक्ष्म बात है। समझ में आया? ...भाई! देखो, यह विषय कल आया था, यह विषय तो इतने वर्ष में नहीं आया। आहाहा! इतने वर्ष में आया नहीं, लोगों ने ऐसा सोचा कि हमने धार लिया है। वह का वह आयेगा तो उसकी पर्याय को बदलना नहीं इसे। इसे बदलना नहीं अर्थात् सुलटी करना नहीं, ऐसा। वह का वह है यह। इसे रखना है, इसका अर्थ। समझ में आया?

जगत में सब ऐसे पड़े हैं। ऐई! भगवानजीभाई! यह परमाणु है एक रजकण, अनन्त परमाणु का यह तो पिण्ड है। यह कहीं एक चीज़ नहीं। टुकड़े हो जाते हैं न इसके? राख होती है न? राख होकर एक-एक रजकण पृथक् है। उस एक-एक रजकण में अनन्त गुण हैं। रंग, गन्ध, रस, स्पर्श, अस्तित्व हो अस्तिरूप से। उसकी एक समय के-सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त पर्यायें हैं। वे अनन्त पर्याय उसकी अनन्त एक समय में है, उसे महासत्ता अर्थात् सब होकर 'है', ऐसा कहना है। अब उसमें से एक-एक रंग की एक पर्याय है, उसे अवान्तरसत्ता अन्तर्भेद कहा जाता है। अर्थात् अनन्त सब है, इसलिए एक अंश है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? जेठाभाई! आहाहा!

अनन्त जो आत्मा में, वैसे इस परमाणु में, इसलिए कोई कहे कि हम यह भाषा कर सकते हैं, हम बोल सकते हैं और शरीर को ऐसे हिला सकते हैं, जीव जाति के लिये जीव न मरे, यह हमारा विकल्प है तो शरीर को ऐसे ऊँचा करते हैं, कहते हैं कि मूढ़ है। सौ में सौ प्रतिशत मिथ्यादृष्टि है। क्योंकि परमाणु जो स्कन्ध है, एक-एक रजकण में अनन्त गुण है। और अनन्त गुण की एक समय में एक समय की अनन्त पर्यायें हैं। यह उनका अस्तित्व परमाणु के कारण है, ऐसा भी नहीं। यहाँ तो कहते हैं। पर्याय, पर्याय के कारण से है। ध्रुव, ध्रुव के कारण से है। अब यहाँ तो एक समय की अनन्त पर्यायें जो हैं, उनमें भी एक-एक रंग की एक पर्याय अनन्त दूसरी पर्याय है, इसलिए यह है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

अरे! कुछ मिलती नहीं। कौन मिले? सोने का रजकण भिन्न, हल्दी का रजकण भिन्न। दो रजकण इकट्ठे होकर लाल हुई है, इस बात में कुछ दम नहीं है। दम तो कुछ नहीं है। वह तो दूसरे समय में परमाणु पलटता है। उस सफेद को क्या कहा जाता है वह? पीले का लाल हुआ, वह सफेद था, वह लाल हुआ, इसलिए स्वयं अपनी पर्याय से लाल हुआ है। सूक्ष्म बात है, भाई! बिल्कुल सम्बन्ध नहीं है। संयोगी सम्बन्ध की व्याख्या क्या? संयोग अर्थात् दूसरी चीज़। वह उसके कारण और यह इसके कारण, इसका नाम संयोग। स्वयं वह अपने कारण से। भिन्न, वह भिन्न सब। शान्तिभाई! गजब (बात)।

कहते हैं कि तुझे है, इस अस्तित्वरूप मानना है या नहीं? या नहीं, ऐसा तुझे मानना

है। तब है, ऐसा, एक-एक परमाणु में और अनन्त अवस्था एक-एक अवस्था स्वयं से स्वयंसिद्ध स्वतन्त्र है। क्योंकि उत्पाद का समय वह सत् है। और एक पर्याय का सत् दूसरी पर्याय के सत् के कारण से नहीं है। आहाहा! दूसरे द्रव्य के कारण तो नहीं। सूक्ष्म तत्त्व है। लोगों को सत् का मिला नहीं न, इसलिए ऐसा लगता है कि यह क्या होगा, यह ? आहाहा!

एक समय की जो परमाणु की पर्याय अनन्त है, उस अनन्त की महासत्तारूप से सब है। परन्तु सब है,वह एक-एक होकर सब हुआ है न ? लाख अंक कहा, परन्तु एक, दो, तीन, चार, सौ ऐसे एक-एक होकर लाख हुए हैं या नहीं ? इसी प्रकार आत्मा में और परमाणु में अनन्त पर्याय एक समय की महारूढ़ है। महारूढ़ अर्थात् महासत्ता अस्तित्व अनन्त परन्तु एक-एक पर्याय गिन-गिनकर अनन्त हुई है या एक-एक बिना सीधे अनन्त का थोक नया हुआ है ? आहाहा! यह तत्त्व सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! यह तो हम कुछ पर की दया पाल सकते हैं और पर की हिंसा कर सकते हैं न, समझ में आया ? पर का उपकार कर सकते हैं, सब बात एकदम मिथ्याभ्रम अज्ञानी का है। ऐई! यह तुम क्या वह सरपंच कहलाये। हें! पूरे गाँव के सरपंच। सरपंच क्या ? कहीं सब करते होंगे ?

यहाँ तो कहते हैं कि भाई! जैसा है, वैसा तुझे ख्याल में लेना हो तो प्रत्येक पदार्थ अनन्त शक्ति-गुणवाला है, स्वभाववाला है और उसकी एक-एक समय में अनन्त पर्याय का समूह, वही समय का, वही समय का अनन्त के समूह का सत्, उसी समय में है। वह अनन्त पर्याय पूर्व के कारण नहीं, वह निमित्त के कारण नहीं, उन अनन्त पर्याय का समूह आत्मा में या एक-एक परमाणु में उसके कारण से है। एक बात-महासत्ता। अब उसमें का एक-एक जैसे आत्मा में ज्ञान की पर्याय जानने की, वह एक-एक पर्याय ज्ञान की पर्याय, ज्ञान की पर्याय के कारण से है, उस समय श्रद्धा की पर्याय श्रद्धा की पर्याय के कारण से है। ज्ञान की पर्याय के कारण श्रद्धा की पर्याय नहीं। श्रद्धा की अवस्था के कारण आनन्द की नहीं। आनन्द की के कारण अस्तित्व की नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन के समय ज्ञान कारण होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब कथन व्यवहार से। ऐसा है यह तो। कहते हैं न। यह

व्यवहार नहीं कहते ? कहते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान कारण बिना चारित्र नहीं होता। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि एक-एक पर्याय स्वयं से हैं, वह कोई दूसरे कारण से नहीं होती। आहाहा! ऐई! वजुभाई! आहाहा! गजब धर्म, भाई! है या नहीं ऐसा पहले सिद्ध करते हैं। तू है ? कहे, हाँ। तू है, वह इस परशरीर के, वाणी के कारण है या तेरे कारण है ? तेरी सत्ता है या नहीं ? भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति ज्ञायक चैतन्य है या नहीं ? वह 'है'। वह है, वह पर के 'है' के कारण से है या अपने 'है' के कारण से है ? अर्थात् उसका कोई ईश्वर कर्ता है या दूसरा द्रव्य कर्ता है या दूसरा द्रव्य है, इसलिए यह है—ऐसा है नहीं। आहाहा! भगवानजीभाई! जगत को तत्त्व की अस्तिता वास्तविक जैसी है, वैसी बैठे, तब तो उसे सम्यग्दर्शन हो जाये। आहाहा! इसलिए तो यह अधिकार लिया है। ज्ञानप्रधान सम्यग्दर्शन का अधिकार। समझ में आया ?

आत्मा और यह परमाणु, (तथा) ऐसे चार द्रव्य। छह द्रव्य की बात है यहाँ तो। इस आत्मा में कहते हैं, कि भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य प्रभु, ऐसी अन्तर द्रव्य की दृष्टि होने से सम्यग्दर्शन की पर्याय, धर्म की पर्याय जो प्रगट हुई, उसके साथ स्वसंवेदन का ज्ञेय का ज्ञान प्रगट हुआ, वह पर्याय कहीं श्रद्धा की पर्याय के कारण ज्ञान की पर्याय है, ऐसा नहीं है। समुच्चयपर्याय वह सामान्य सत्तासहित है। एक-एक है, वह सब है, इसलिए नहीं और सब है, वहाँ एक है, इसलिए सब है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! समझ में आया ? सूक्ष्म बहुत, भाई! अरे! तत्त्व की बात! 'यत के भेद बहु नयन निहाळता, तत्त्व की बात करता न लागे।' ऐसा आनन्दघनजी कहते हैं। 'यत के भेद बहु नयन निहाळता, तत्त्व की बात करता न लागे।' फिर क्या आता है ? 'उदर भरणादि निज काज करतां थका, मोह नळिया कलि काल लागे' हें ? कहते हैं, पेट भरता है। आहाहा!

जिन्होंने आत्मा भगवान क्या है ? और उसकी अवस्था स्वतन्त्र क्या है ? उसके अस्तित्व का स्वतन्त्रपने में किसी की दखल या किसी की सहायता नहीं है। ऐसी वस्तु की स्थिति की जिसे खबर नहीं, वे सब साधु आदि कहते हैं कि पेट भरा है। उदर भरणादि निज काज करता थका, मोह नळिया मिथ्यात्वरूपी अकेला बैरी, मिथ्यात्वभाव बाधक कलिकाल रागे। कलिकाल में मिथ्यात्व का राग है। कठिन बात है, बापू! समझ में आया ?

कहते हैं, अनन्त आत्मा की जो पर्यायें हैं, वे महासत्ता अर्थात् महा बहुत सही न? अनन्त सही न, इसलिए महा अस्तित्वरूप हुई। उसकी एक-एक अवस्था, वह अवान्तरसत्तारूप एकरूप हुई। वह एकरूप है, वह अनन्त है, इसलिए है—ऐसा नहीं है। और अनन्त है, इसलिए एक है—ऐसा भी नहीं है। अनन्त अवस्था में एक का अभाव है। और एक में अनन्त का अभाव है। आहाहा! भारी सूक्ष्म! आणन्दभाई! इसमें वहाँ कहाँ चलता है, वह तुम्हारे क्या कहलाता है? ढसरडा।

आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने केवलज्ञान में जो द्रव्यों के अस्तित्व के भाव देखे, उन्होंने अस्तित्व के अस्तित्वरूप से प्ररूपित किये, वह यह पंचास्तिकाय। समझ में आया? परमेश्वर वीतरागदेव सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक देखने में आये, ऐसी वाणी बिना इच्छा सहज स्व-पर कथा कहने की योग्यता से वाणी भगवान के ज्ञान सिवाय निकली। भगवान को केवलज्ञान है, इसलिए वाणी निकली, ऐसा नहीं है। क्योंकि वाणी के रजकण स्वतन्त्र पदार्थ हैं। और उस पदार्थ में एक-एक में अनन्त गुण-शक्तियाँ हैं। उसकी एक-एक समय में अनन्त अवस्थायें महासत्तारूप से अस्तित्वरूप से स्वयं के कारण से है। आहाहा! यह केवलज्ञानी के ज्ञान के कारण वाणी नहीं। वह वाणी की पर्याय परमाणु और ध्रुव के कारण नहीं। आहाहा! वारियाजी! ऐसा क्या ऐसा होगा तत्त्व, ऐसा सत्य होगा?

ऐई! वकालत करते हो अभी? वकालत चलती है वहाँ? वकालत कौन करता था? रामजीभाई वहाँ वकालत करते थे? वाणी तो वाणी के कारण से निकलती थी। अभिमान करते थे। हम वाणी करते हैं, हम जज को उल्टा-सुल्टा पढ़ाते हैं। वह एक व्यक्ति कहता था। भरे दोपहरी यह तारे दिखाते हैं। यह तुम्हारे रामजीभाई ऐसा पढ़ाते हैं। ऐसा वह कहता था।

यहाँ तो परमेश्वर जज है। आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर तीन काल-तीन लोक का जिन्हें ज्ञान है। वह पूरी दुनिया के जज हैं। वे दुनिया के समक्ष लॉजिक-न्याय से यह बात सिद्ध करते हैं। भाई! भगवान! तू आता है न, नाथ! और यह परमाणु जड़, जड़रूप है न

भाई ! इस जड़ की अवस्था तुझसे होती है और तेरी अवस्था जड़ से होती है, भाई ! ऐसा मैंने ज्ञान में देखा नहीं। देखा नहीं और वस्तु में ऐसा है नहीं। है नहीं, ऐसा देखा हो न ? समझ में आया ? गजब काम ! सब सोनगढ़वालों को ऐसा कहे, यह सोनगढ़ की बात है या भगवान के घर की बात है ? ऐई ! सोनगढ़वाले अकेले निश्चय की बात करते हैं, व्यवहार को तो उड़ा दिया है। अब सुन न ! तुझे तो-अज्ञानी को व्यवहार भी नहीं होता, सुन न ! समझ में आया ?

जिसे आत्मा ज्ञायकमूर्ति चिदानन्द प्रभु परमानन्द की मूर्ति है, ऐसा अन्तर अनुभव दृष्टि नहीं है, उसे तो दया-दान के, व्रत के विकल्प को व्यवहार भी कहनेयोग्य नहीं है। समझ में आया ? गजब काम, भाई ! जगत में से छूटना और छूटा हुआ ही है, ऐसा रखना। जगत में से छूटना और छूटा हुआ ही है ऐसा रखना। छूटा हुआ ही है, भाई ! यह कर्म के रजकण के साथ तेरी पर्याय बिल्कुल सम्बन्ध में नहीं है, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा ! कर्म के रजकण जड़ हैं। उनका पाक हो तो उसके अनन्त परमाणु की पर्याय एक समय में इकट्ठी हो। इसलिए तुझे तेरे राग का विकल्प और तेरा ज्ञान उसके कारण से होता है, ऐसा नहीं है। ज्ञानावरणीय का परमाणु है, वह जब हटता है-क्षयोपशम हो तो ज्ञान की पर्याय होती है (ऐसा नहीं है) देखो न ! यह तो बड़े-बड़े मानधाता भूलते हैं इसमें तो।

ज्ञानावरणीय कर्म मार्ग दे, तब आत्मा में ज्ञान की पर्याय होती है। ऐई ! देवानुप्रिया ! साधन, वह तो निमित्त कौन था, उसका ज्ञान कराते हैं। उस समय में निमित्त में उस प्रकार का उघाड़ की क्षयोपशम अवस्था परमाणु में हुई। बस इतना ही। और उसके कारण यहाँ हुई, ऐसा कुछ कहा नहीं। समझ में आया ? और कहा हो तो निमित्त का कौन ज्ञान कैसी चीज़ है, ऐसा कराया है। ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से ज्ञान की पर्याय होती है... ८१ में बहुत चलता था हंसराजभाई के साथ, गढडा (में)। वजुभाई ! बहुत चला। यह ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम के कारण केवली को ज्ञान होता है। अमुक होता है। कहा, किसके कारण होता है ? उसके कारण होता है। यह तो गढडा (संवत्) १९८१ की बात है। सब आते तो थे न ? उन्हें अन्दर से भाव खाये। काशी के पढ़े हुए। धूल के पढ़े हुए और काशी में कहाँ ज्ञान है ? ज्ञान तो यहाँ आत्मा में है। समझ में आया ?

यह आत्मा का ज्ञानगुण है, उसकी उस समय की ज्ञान की पर्याय–अवस्था वह स्वयं से है। वह कर्म से नहीं, द्रव्य से नहीं, गुण से नहीं। वह एक समय की पर्याय दूसरे अनन्त समय की पर्याय एकसाथ है, इसलिए भी नहीं। समझ में आया? ठीक, अब इसमें रिकॉर्डिंग तो होता है। अब निकाले तब सही। यह तैयार होता नहीं, वापस दूसरा कोई? हें? क्या कहा जाता है, समझ में आया? तेरा भगवान (तू है)। तुझे तेरे सामने देखना है। और तेरे सामने देखकर जो दशा हुई, वह दशा उस काल में स्वतन्त्र तुझसे वह पर्याय पर्याय से हुई है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई! यह लड़के पढ़ते हैं और यह क्या होगा अतुलभाई? परन्तु वह मास्टर–प्रोफेसर पूछे, तब तुम्हें यहाँ ज्ञान होता है न? प्रोफेसर चतुर था या पागल हो कितना भील सीखे तो भी उसको समझ में नहीं आये, पकड़ में नहीं आये। कहो, समझ में आया?

हमारा ऐसा एक मास्टर था, नरोत्तम ब्राह्मण। देखो! तुम्हारे पाठ लेना हो तो थोड़ा पढ़कर आना। वह ऐसा कहते थे कि पढ़कर आना, इसलिए तुम्हें खबर पड़े कि तुम्हें समझने में क्या आया था, हम समझाते हैं, उसमें कैसा अन्तर है, तुम्हें उसकी विशेषता लगेगी। यह पाँचवीं, छठवीं कक्षा के समय की बात है, हों! नरोत्तम कणबीवाड में रहते। रोटियाँ पकाते। फिर पूछे, पढ़कर आये न थोड़ा? वह कहीं पर का सिखाया आता है? यहाँ ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वाणी वाणी के कारण से वाणी की अवस्था हुई है। यहाँ जो ज्ञान की अवस्था हुई है, वह ज्ञान की अवस्था उस समय के, उसी काल की, उसी सत् के अंश से अवस्था हुई है। यह तो वह अधिक विस्तार था न कल, यह बात अधिक आयी थी। समझ में आया? आहाहा!

तेरा भगवान ध्रुव अन्दर नित्यानन्द प्रभु है। कहते हैं कि वह ध्रुव ध्रुव के कारण से है। यह पर्याय उत्पन्न होती है, इसलिए है, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह अवान्तरसत्ता तीन गिनकर भले तीन लक्षण कहेंगे। तीन है न तीन? तीन लक्षण से भले महासत्ता कहो, उसका एक–एक लक्षण स्वतन्त्र सत्तावाला है। बहुत सूक्ष्म। बाल को चीरे, उससे भी अनन्तगुणा सूक्ष्म है। बाल देखे हैं? कितने ही बाल डबल होते हैं। बाल होते हैं न? उस बाल को भी दो ऐसे अन्तिम सिरे होते हैं। एक बाल के अन्तिम दो सिरे होते हैं, बाल, हों!

अन्तिम दो सिरे फटे हों। पहले-पहले राणपुर में देखा। यह क्या बाल के दो टुकड़े। बाल बढ़े न यह बाल ? उस एक बाल के अन्तिम दो सिरे हों। किसी-किसी को हैं, सबमें नहीं। बाल में दो सिरे एक ऐसे और एक ऐसे। उसे चीरे तो नहीं चीरा जाता।

यह तो चीरे तो चीर सकता है, ऐसा है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? भगवान आत्मा रजकण-रजकण और कर्म-कर्म के परमाणुओं को उसकी पर्याय से भिन्न। ओहोहो ! अब वह कहे, देखो ! विकार जीव की पर्याय से स्वयं से हो तो वह स्वभाव हो जायेगा। स्वभाव है। परिणमन स्वभाव है। इसलिए कर्म है, तो विकार होता है, वह यहाँ इनकार करते हैं। समझ में आया ? कर्म का उदय है, इसलिए यहाँ दोष होता है ? नहीं। अंश-अंश डण्डा मारकर भिन्न किया है। भेदज्ञान का डण्डा। ऐई, जयन्तीभाई ! कर्म आवे, वे भटकावे। कहो, समझ में आया ?

कर्म का पक्का उदय आवे तो भटकना पड़े, बिल्कुल झूठ है। ऐ वजुभाई ! समझ में आता है यह ? गजब बात, भाई ! तेरी पर्याय में, अवस्था में राग की अवस्था का काल उस समय की चारित्रगुण की विपरीत का है, वह स्वतन्त्र पर्याय है। साथ में भले ज्ञान की पर्याय हो, दर्शन की पर्याय हो, इसलिए राग की पर्याय है—ऐसा है नहीं। और राग की पर्याय है, वह उस क्षण में राग को जानने की ज्ञान की पर्याय भी साधक को है। आहाहा ! समझ में आया ? तथापि उस ज्ञान की एक पर्याय का एक अंश सम्यग्ज्ञान का है और दूसरा उसमें जरा राग का अंश है। स्थिरता का अंश है और एक राग का अंश है, तथापि उस राग के अंश को राग का उत्पाद, ज्ञान के अंश को ज्ञान का उत्पाद वह दूसरे के कारण उत्पाद है, राग के कारण ज्ञान का है, ज्ञान के कारण राग का है, कर्म के कारण राग का है, राग के कारण कर्म के बन्धन की पर्याय होती है—ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

जिस प्रकार से अस्तित्व है, उस प्रकार से अस्तित्व न माने तो उसकी दृष्टि में मिथ्यात्व का शल्य पड़ा है। आहाहा ! वह मिथ्यात्व शल्य महापाप है। छह काय की हिंसाओं के बड़े, क्या कहलाता है ? कसाईखाना-कत्लखाना, उससे भी मिथ्यात्व, वह महापाप है। मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है। मिथ्यात्व अर्थात् विपरीत मान्यता क्या ? उसकी लोगों को कुछ कद्र ही नहीं है। उल्टे की कद्र नहीं और सुलटे की कद्र नहीं। समझ में आया ? यह

तो लोग ऐसा कहते हैं कि लो, यह धर्मी है न, यहाँ तो स्त्री सेवन करते हैं। यह अमुक करते हैं, सुन तो सही? स्त्री का सेवन ज्ञानी या अज्ञानी कोई नहीं कर सकता। तुझे खबर नहीं। कहो। उस समय जरा राग हुआ, उस राग में भी ज्ञानी की दृष्टि राग के ऊपर नहीं है। उस राग के समय भी ज्ञान का उत्पाद है। राग को जानने का उस ज्ञान में वह स्वयं है। वह राग में है नहीं। पर से पृथक्रूप से कहने से राग में है परन्तु राग से पृथक्पने कहने पर राग में है नहीं। आहाहा! ज्ञान में वह नहीं। पर से पृथक्पने है। समझ में आया? आहाहा!

क्या चैतन्य की तत्त्वज्ञान की लीला है और वह है। कहते हैं कि प्रत्येक पर्याय में रही हुई व्यक्तिगत भिन्न-भिन्न सत्ता। एक-एक पर्याय की सत्ता, उसके द्वारा ही प्रतिनिश्चित अर्थात् एक-एक, प्रतिनिश्चित अर्थात् प्रत्येक निश्चय एक-एक पर्याय का अनन्तपना होता है। एक-एक, एक-एक होवे तो अनन्तपना (होता है), इसलिए अनन्त पर्याय में यह सत्ता का... सूक्ष्म तो थोड़ा है परन्तु भाई! यह इसे समझना पड़ेगा। यदि आत्मा का कल्याण करना हो तो, यह समझे बिना किसी प्रकार से कल्याण हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! 'छह सत्पद प्ररूपणा' आता है न? मूल बात ही षट्खण्डागम में यह पहली ली है। सत्पद प्ररूपणा। है, उसका कथन है। सद्-सद्प्ररूपणा आता है अनुयोग द्वार में श्वेताम्बर में भी, उसमें कुछ स्पष्टीकरण नहीं है। यहाँ तो षट्खण्डागम में जो बात कही है कि है, अनन्त आत्मायें हैं, अनन्त पर्यायें, अनन्त परमाणु हैं। अनन्त हैं, उनके सत् के पद की प्ररूपणा व्याख्या द्वारा कथन किया जाता है। है, उसका कथन आता है। न हो, उसका कथन आवे? वह यह सत् प्ररूपणा को इस प्रकार से कहते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा, स्वयं पर के शरीर है, इसलिए अन्दर आत्मा है, ऐसा है? तो कहते हैं, नहीं। शरीर, शरीर में है। आत्मा, आत्मा में है। यह इन्द्रियाँ हैं, इसलिए अन्दर ज्ञान की पर्याय है? नहीं। इन्द्रियाँ जड़ की पर्याय है, वह जड़ में है। ज्ञान की पर्याय ज्ञान में है। इन्द्रियाँ बिना ज्ञान नहीं होता, चश्मे बिना ज्ञान नहीं होता—यह तो इसकी अनन्त पदार्थों की एकता की बुद्धि है। आहाहा! समझ में आया? कहो, पकड़ में आता है या नहीं इसमें? छगनभाई! आहाहा! कहते हैं कि अनन्त पर्यायों की सत्ता जो एक-एक तत्त्व की है, जैसे वस्तु है, वैसे उसकी एक-एक की शक्तियाँ अनन्त हैं। ऐसी एक-एक की अनन्त पर्यायें

हैं। एक-एक द्रव्य की, एक-एक पदार्थ की अनन्त पर्याय। अनन्त पर्याय एक-एक प्रतिनिश्चित, एक-एक प्रतिनिश्चित होकर अनन्त हुई है।

वे अनन्त हैं, इसलिए एक है, ऐसा नहीं है। अनन्त महासत्ता में अवान्तर एक सत्ता का अभाव है। आहाहा! ज्ञान की एक समय की पर्याय में सम्यग्दर्शन की पर्याय का अभाव है। कहो, समझ में आया इसमें? और आत्मा में जो शान्ति की रमणता, आनन्द की रमणता ऐसी आनन्द की पर्याय, धर्मी की धर्म पर्याय, यह कहते हैं कि श्रद्धा की पर्याय में उस आनन्द की पर्याय का अभाव है। आहाहा! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म। एक तो मानो निवृत्ति नहीं होती और निवृत्ति हो तो लोगों को बेचारों को बाहर की दूसरी बातें मिलती हैं। हाँ, एक-एक गुण की एक पर्याय में दूसरे गुण की पर्याय का अभाव है। हाँ, नहीं तो उसका अस्तित्व सिद्ध किस प्रकार होगा? प्रतिनिश्चित कहा न, प्रतिनिश्चित एक-एक, एक-एक है, ऐसा निश्चित है। शान्तिभाई! नहीं तो अनन्त साबित नहीं होता। एक-एक होकर अनन्त साबित होता है। एक-एक स्वयं से है तो अनन्त है। अनन्त है, इसलिए एक है, ऐसा है नहीं। आहाहा! श्रद्धा कारण और ज्ञान कार्य है, ऐसा नहीं है। समकित होने पर भी ज्ञान का पृथक् पुरुषार्थ करना, ऐसा कहा है। रत्नकरण्ड श्रावकाचार, पुरुषार्थसिद्धि उपाय में। यह तो कहते हैं कि बापू! एक आत्मा जहाँ वस्तु है, पूरा पदार्थ जहाँ श्रद्धा ने स्वीकार किया, तब अनन्त गुण की सब पर्यायें इकट्ठी ही आयी है। वह श्रद्धा एक ही प्रगट हुई है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

वे कहते हैं न कि चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण नहीं होता। अभी लेख आया है। वह स्वरूपाचरण माने, उन सबकी श्रद्धा भ्रष्ट है। अरे भगवान! यह क्या कहता है? यह क्या कहते हैं यहाँ कि आत्मा में अनादि-अनन्त चारित्रगुण है, स्थिरतागुण है, आनन्दगुण है अनादि-अनन्त और अस्तित्वगुण, श्रद्धागुण, कर्ता, कर्म, करण आदि ऐसी अनन्त शक्तियाँ हैं। अब जब इन अनन्त गुण का स्वीकार हुआ अथवा वह गुण-पर्याय बिना का होगा? एक चारित्रगुण की पर्याय भी अन्दर सम्यग्दर्शन होने पर स्वरूपाचरणरूप से स्थिरतारूप चौथे गुणस्थान में प्रगट होती है, वह भी अपने कारण से सम्यक् श्रद्धा प्रगटी है, इसलिए स्वरूपाचरण हुआ है, ऐसा नहीं, कहते हैं। आहाहा! ऐई! अरे! परन्तु आगे

जाये नहीं, गहरे उतरे नहीं (और) ऊपर-ऊपर से बातें करे, ऐसे तत्त्व का पता नहीं लगता। यह तो अभी बहुत आया था। रतनचन्दजी (का) बहुत आया था। प्रश्न दूसरा था, परन्तु उसमें वापस यह डाला था।

भगवान आत्मा की जितनी शक्तियाँ गुणरूप से संख्या से है, उन सबकी पर्यायें प्रगटरूप अज्ञान में चारित्रगुण की पर्याय विपरीतरूप होती है। सम्यग्ज्ञान हुआ, तब अविपरीतपने का अंश न प्रगटे तो वह सम्यग्ज्ञान हुआ नहीं। आहाहा! इतनी शान्ति है। सम्यग्दर्शन होने पर अनन्तानुबन्धी कषाय का निमित्त था, उसमें जितना यहाँ कषायभाव था, उतना व्यय हुआ, उतनी वहाँ शान्ति है। आहाहा! समझ में आया? नहीं तो चारित्रगुण कार्य बिना का और पर्याय बिना का रहेगा। समझ में आया? राग... 'वाद विवाद करे सो अन्धा, सद्गुरु कहे सहज का धन्धा, वाद विवाद करे सो अन्धा।' यह तो सहज का धन्धा है। समझ में आया?

कहते हैं, देखो न! एक बोल में कितना डाला है! लो, यह सब चला। रामजीभाई कहे, नहीं चला था कल। ऐई! चला तो सही। बात सच्ची। आहाहा! उसका तो थोक का थोक पड़ा है। उसमें प्रत्येक द्रव्य की अनन्त पर्याय अस्तिरूप से सब एक समय में तो भी उसकी एक-एक पर्याय होकर अनन्त हुई है। उसमें एक-एक प्रतिनिश्चित की सत्ता की अपेक्षा से अनन्त पर्याय का अभाव है, असत्ता है। और उसकी सत्ता की अपेक्षा से एक समय की पर्याय असत्ता है। आहाहा! समझ में आया? लो! अस्ति-नास्ति एक-एक पर्याय अपना अंश है, वह सत्ता है। दूसरी पर्याय असत्ता है। अस्ति-नास्ति पर्याय अनेकान्त है। वह अनेकान्त है। समझ में आया? एक समय की श्रद्धागुण की पर्याय को ज्ञानगुण की पर्याय असत्ता है। एक में दो पर्याय कहाँ से होगी? अरे! कठिन भाई!

ऐसा सब कहीं नहीं चलता, हों! जलगाँव में नहीं चलता। यहाँ तो सब समझते हैं। क्या मार्ग है। कुछ खबर नहीं होती। यह कहे, दया पालो, व्रत करो, तपस्या करो और अपवास करो। मर जाये कर-करके। जप करो। भगवान... भगवान... भगवान... भगवान क्या है? भगवान तो वाणी है। जड़ है और विकल्प उठा, वह राग है। भगवान... भगवान... करे, वहाँ राग है। वहाँ कहाँ आत्मा है? आहाहा! ईश्वर स्वयं है, वह किसका ईश्वर का

क्या ईश्वर का जाप करे वह ? ऐसा कहते हैं। ऐई ! यह पंच परमेष्ठी स्वयं है। उनका जाप कर, ऐसा कहते हैं। गजब बात ! भगवान स्वयं एक समय की पर्याय में (है)। वह पर्याय स्वयं ईश्वर है। उसकी ईश्वरता का कोई खण्ड करे और पर के कारण ईश्वरता उत्पन्न हो, (ऐसा नहीं)। ओहोहो ! यह भगवान तो चैतन्य महाप्रभु। स्वयं पर्याय महाप्रभु है। समझ में आया ?

आत्मा में एक प्रभुत्व नाम का गुण है। प्रभु परमेश्वर होने का एक गुण है। आत्मा में अनादि-अनन्त परमेश्वर होने का एक गुण है। अनन्त गुण में ऐसा एक गुण है। उस गुण की पर्याय परमेश्वर अर्थात् परम ईश्वरपने प्रगट होती है, वह स्वयं के कारण से स्वतन्त्र है। वह ईश्वरता की पर्याय कोई कर्म का निमित्त विघ्न टला, इसलिए हुई है—ऐसा नहीं है। आहाहा ! उसमें कहते हैं न, ऐसा तुम कहो केवलज्ञानावरणीय का नाश हो तो केवलज्ञान हो - ऐसा तुम कहो। झूठ बात है। यहाँ तो केवलज्ञान की पर्याय होती है, इसलिए केवलज्ञानावरणीय का नाश हो, ऐसा भी नहीं है। ऐ चेतनजी ! गजब बात, भाई ! भगवान ! केवलज्ञानावरणीय प्रकृति है, जड़ के परमाणु की पर्याय है। उस जड़ की अनन्त रजकणों की पर्याय उससे उसमें है। और इसका अभाव / व्यय हुआ तो अकर्म पर्याय हुई। अकर्म पर्याय हुई, इसलिए ज्ञान की पर्याय हुई ? आहाहा ! यहाँ तो यहाँ की पर्याय है। समझ में आया ? परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि केवलज्ञान की पर्याय हुई, इसलिए साथ में केवलदर्शन की पर्याय हुई, ऐसा भी नहीं है, तो फिर पर के कारण से होता है, यह बात तो है नहीं। आहाहा ! गजब बात, भाई ! तत्त्वार्थसूत्र में आता है न, 'मोहक्षयात्' मोह का क्षय हो, तब ऐसा होता है, वह तो सब व्यवहार के कथन हैं। सुन न ! परमार्थ समझे बिना तेरे व्यवहार को जानेगा कौन ? अन्धा व्यवहार को जाने ? समझ में आया ?

ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से जीव का ज्ञान उघड़ता है - झूठी बात है, ऐसा कहते हैं। ज्ञानावरणीय का उदय जितना हो, उतना ज्ञान में उघड़ने का आवरण हो, खोटी बात है। ऐई ! क्या तुम्हारे विवाद था न फिर ? उसमें गुरु के साथ चर्चा करने में बाधा थी। चर्चा करो। कर्म आत्मा को हैरान करते हैं, कर्म से भटकते हैं, यह पहली बात तुम्हें स्वीकार है ? हमारे स्वीकार नहीं। तुम चर्चा छोड़ दो। कहो, आहाहा ! गजब करते हैं न ?

(संवत्) २००६ के वर्ष में गये थे न वहाँ रामविजयजी के पास। तुम कहते हो कि आत्मा विकार की अवस्था से स्वयं से दु:खी होकर भटकता है। तीन लोक के नाथ कहते हैं कि आठ कर्म के कारण जीव भटकता है। करो चर्चा। अरे! सुन न अब! तुझे चर्चा की क्या खबर पड़े? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि एक समय की ज्ञान की पर्याय प्रगट हुई, वह स्वयं से सत् है, इसलिए प्रगट हुई। कर्म के कारण से नहीं। यह राग प्रगट हुआ, वह स्वयं के कारण से प्रगट हुआ, कर्म के कारण से नहीं और राग हुआ, इसलिए कर्म को बन्धन होना पड़ा, परमाणु को कर्मरूप अवस्था होनी पड़ी—ऐसा नहीं है। कर्म की अवस्था—पर्याय कर्म के कारण से स्वयं से हुई है। और राग किया, इसलिए हुई है, ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब बात भाई! बात-बात में अन्तर। 'आणंदा कहे परमाणंदा माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मळे ने एक त्रांबियाना तेर' ऐसे यह भगवान कहते हैं कि मेरे और तेरे बात-बात में अन्तर है। मुझे मानता है कि भगवान सच्चे, परन्तु तू कहता है कि मैं सच्चा, यह तो तू है, उसकी तो तुझे खबर नहीं।

भगवान ने तो ऐसा कहा है कि उसकी ज्ञान की पर्याय तुझसे होती है, कर्म की पर्याय कर्म से होती है, एक समय के कर्म की पर्याय की अनन्त पर्याय में एक पर्याय दूसरे से नहीं होती, तो उसकी इस पर्याय से आत्मा में कुछ हो, ऐसा भगवान ने कहा नहीं। यह तो सब लोगों को विवाद कर्म का है न? जैन को कर्म बाधक है। अन्य को फिर ईश्वर प्रसन्न हो तो धर्म हो। ईश्वर की मेहरबानी हो जाये तो मोक्ष हो जाये। सब गप्पागप्प गप्प है सब। धूल भी नहीं, ऐसा कहते हैं। यह आती है प्ररूपणा 'कर्म प्रधान विश्व रचि राखा', रामायण में आता है। ऐसा है ही नहीं। राग की पर्याय आत्मा में आत्मा से स्वयं से होती है। उसी क्षण में ज्ञान की पर्याय भी राग के कारण नहीं परन्तु स्वयं से होती है। ऐसा स्वरूप है। ऐसी सत्ता का अस्तित्व न माने और दूसरे प्रकार से माने तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? गजब, भाई!

इसमें अपवास करना, रात्रिभोजन नहीं करना, कन्दमूल नहीं खाना यह कहाँ से आयेगा कब? कहते हैं, कन्दमूल की पर्याय है, वह जड़ की-शरीर की है। उसे तू खा

सकता है तो उसकी पर्याय की सत्ता तुझमें आ जाती है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? और उसमें कन्दमूल खाना तो छोड़ दिया। क्या छोड़ा? कन्दमूल की पर्याय तो यहाँ आनेवाली नहीं थी और कन्दमूल की पर्याय तो वहाँ रही, उसमें तूने क्या छोड़ा? तेरी मिथ्यादृष्टि हुई कि मैंने यह छोड़ा। ऐई! आहाहा!

रोटी की पर्याय तो आज के अष्टमी का इसने अपवास किया है। रोटिया ही खाना नहीं। रोटी की पर्याय तो जड़ की पर्याय है। उसे आत्मा खा सकता है? एक की पर्याय दूसरे की पर्याय को नहीं कर सकती। ऐ रघुभाई! क्या कहते हैं, यह वह इतना सब अन्तर होगा? छगनभाई! यह सब कार्यकर्ता तो होशियार होकर काम करते होंगे या नहीं? वहाँ दिल्ली में बहुत विवाद चलता है, हों! धमाधम चलती है। हैं? वह कहे, मेरी कुर्सी और वह कहे मेरी कुर्सी, हैरान-हैरान हो जाते हैं। बापू! तेरी सत्ता तुझमें है, भाई! तेरा अस्तित्व तेरे कारण से तुझमें और पर का अस्तित्व का पर के कारण से पर में।

तेरी कोई भी अवस्था का अस्तित्व पर के कारण नहीं और पर की किसी अवस्था का अस्तित्व तेरे कारण नहीं। आहाहा! यह शरीर हिलता है। एक जीव है। लो, समझ में आता है न? ....कहते हैं कि कुण्डल की पर्याय को आत्मा करता है और अँगुली करती है, ऐसा नहीं है। क्योंकि कुण्डल के अनन्त परमाणुओं की पर्याय उनसे हुई है। और उसके कारण वह जीव बचता है, ऐसा है नहीं। अरे! अरे! गजब बात, भाई! भगवान जाने क्या होगा इसमें? जगत ने तो उल्टा मारा है। ऐ भगवानभाई! यह यहाँ ऐसा कहते हैं। मुझे आज खाना नहीं, ऐसा माननेवाला, जड़ की पर्याय मैं खाता ही नहीं, जड़ खाता हो तो वह मिथ्यात्वभाव को सेवन करता है। परन्तु खा सकता है? ऐई! परमाणु की पर्याय परमाणु से होती है। यहाँ आवे, पेट में रहे या न रहे, वह परमाणु के कारण से है, आत्मा के कारण से नहीं। आहाहा! यह वह क्या उसमें भारी भ्रमणा रही है जगत को सब। हें? सत है या नहीं? वह भी सत् है या नहीं?

रोटी के परमाणु सत् है या नहीं? अस्ति है या नहीं? और है तो उसकी पर्यायें-अवस्था-रूपान्तर-हालत होवे तो अस्ति है या नहीं? तो वह पर्याय, पर्याय के कारण से हुई है या तूने छोड़ने का विकल्प किया, इसलिए हुई है? जेठाभाई! गजब बात, भाई!

अनन्त सत्व है द्रव्य, ऐसा मानना और ऐसा कहना कि अनन्त में एक-दूसरा कुछ घालमेल करे तो वे अनन्त रहते ही नहीं। अनन्त का अस्तित्व कहना, यह तो पर्याय का अभी है। परन्तु अनन्त द्रव्य हैं, ऐसा कहना; अनन्त है, ऐसा कहना और एक द्रव्य दूसरे को कुछ घालमेल करे तो अनन्तपना अनन्तपने रहता नहीं। उसने अनन्त का स्वीकार जैसा है, वैसा उसने किया नहीं। कहो, समझ में आया? यह तो सब दृष्टान्त दिये जाते हैं, हों! सिद्धान्त के...

लो, यह मैं अब नहीं बोलूँ, लो! मुझसे तुम्हें कुछ लाभ नहीं होता न? निमित्त से तुम्हें लाभ नहीं होता न? यह क्या कहा है। बोलने की पर्याय तुझसे थी? कि बोलने की पर्याय तूने बन्द की? हें? दूसरा तो इसमें कुछ लगता नहीं। अज्ञानी को कुछ दूसरा लगता नहीं। जीव मर जाये, परन्तु मर गया तो क्या उसमें सत् को असत् मानकर। समझ में आया? अपने मौन व्रत रहेंगे भाई! तो अपने को लाभ होगा। अपने अर्थात् कौन, मौन रहना अर्थात् कौन? क्या हुआ अर्थात् लाभ होगा। क्या हुआ? मौन की पर्याय वाणी की थी, वह तो वाणी के कारण से उत्पन्न हुई थी। और मौन के समय वाणी की पर्याय नहीं थी, इसलिए नहीं हुई। उसमें तेरे कारण से मौनपना हुआ, यह आया कहाँ से? तब तो लाभ होगा। मौनव्रत लो तो लाभ होगा। पर्याय जड़ की नहीं हो तो तुझे लाभ होगा? इसका अर्थ क्या? आहाहा! समझ में आया?

यह तो सब इसमें से दृष्टान्त हैं। इसका ख्याल आवे कि प्रत्येक द्रव्य की अनन्त पर्यायें हैं, अवस्थायें (हैं), वे पर के कारण से नहीं हैं, यह तो बात यहाँ कही। इसमें है एक के कारण दूसरी है, ऐसा भी नहीं, वहाँ पर के कारण से है, यह बात भी कहाँ आयी। भाई! समझ में आया? आहाहा! गजब परन्तु आचार्यों ने गजब किया है। सत्ता-महासत्ता। आठवीं गाथा में आठ कर्म का अभाव।

(अर्थात् जो सामान्य-विशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होने से 'अनन्तपर्यायमय' है, वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'एकपर्यायमय' भी है।) अनन्तपना जो कहा, वह एकपना है। एकपने है, वह अनन्तपने है। अनन्त में एक का अभाव और एक में अनन्त का अभाव। **इस प्रकार सब निरवद्य है।** आचार्य कहते हैं कि यह कही हुई बात एकदम निर्दोष है। देखो, **ऊपर कहा हुआ सर्व स्वरूप निर्दोष है, निर्बाध है,....** बाधा

बिना, विघ्न बिना सत् का ऐसा स्वरूप है। **किंचित् विरोधवाला नहीं है।** आहाहा! **क्योंकि उसका (सत्ता के स्वरूप का) कथन सामान्य और विशेष की प्ररूपणा की ओर ढ़लते हुए दो नयों के आधीन है।**

महासत्ता और अन्तर्भेद, ऐसे दो नय से इसका कथन चलता है। वस्तु का स्वरूप ही (ऐसा है कि जिसका) दो नय से कथन चलता है। सामान्य अर्थात् महासत्ता, विशेष अर्थात् अवान्तरसत्ता, उसका कथन के प्रति ढलने से, झुकने से दो नयों के आधीन कथन है। मूल सूक्ष्म ज्ञान नहीं न, इसलिए इसे सम्यक् के समझण में बाधा आती है। यह क्या? यह क्या है, वह है। श्वास चलता है, यह कहते हैं कि वह अनन्त परमाणु की पर्याय है। वह श्वास की पर्याय जीव प्रेरणा करे, इसलिए श्वास चलता है, बिल्कुल झूठी बात।

वह पर की सत्ता का जिस प्रकार है, उसका स्वीकार उसे नहीं है। उसकी सत्ता मानो जीव के कारण से है? श्वास हो तब तक जीवे। श्वास बन्द हो तो मर जाये। लो! कौन मरे? भगवान मरे? वह तो अनादि अनन्त शाश्वत् वस्तु है। श्वास बन्द हुआ अर्थात् जड़ की पर्याय बन्द हुई। स्वयं तो ऐसा का ऐसा है। समझ में आया? श्वास के कारण जीव था? और श्वास गया, इसलिए जीव गया? ऐसा है? ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। श्वास बन्द हुआ तो जीव निकल जाता है। ऐसा है? निकल गया परन्तु श्वास बन्द हुआ, इसलिए निकल गया? श्वास की पर्याय श्वास में रही। बन्द हो गयी और वह पर्याय स्वयं के कारण से नयी हुई। आहाहा! ऐसा समझे तो इसे पर से भेदज्ञान होकर स्वतन्त्रता की प्रतीति हो। तो इसे परतन्त्रता की बुद्धि और मिथ्यात्व का नाश हो। यह वीतराग ने ऐसा तत्त्व कहा, इस प्रकार समझे तो....

यह भावार्थ में कहते हैं। सामान्य-विशेषात्मक सत्ता अर्थात् सब है और अन्तर्भेद है। ऐसे सत्ता के दो पहलू हैं। दो भाग। एक पहलू, वह महासत्ता सब है—द्रव्य है, गुण है, पर्याय है। जड़ है, चेतन है, अनन्त पर्याय इत्यादि।

दूसरा पहलू अवान्तर अन्तर्भेद है। **महासत्ता अवान्तरसत्तारूप से असत्ता है।** सब है, वह अन्तर्भेद की अपेक्षा से नहीं। पूरा है, वह कम की अपेक्षा से नहीं। **अवान्तरसत्ता महासत्तारूप से असत्ता है;....** अन्तर्भेद के एक अंशरूप जो है, वह सबरूप वह असत्ता

है। सबरूप वह नहीं है। एकरूप है, वह सबरूप नहीं। अरे! गजब भाषा रची है न! 'अन्न ऐवा प्राण' लो! अन्न हो तो जीव जीवे। नहीं, यह तो इनकार करते हैं। अन्न की पर्याय अन्न में और तेरी पर्याय तुझमें। उपादान से होता है न! यह खाये तो जीवे और न खाये तो मर जाये। क्या है? मर कहाँ जाता है? खाता हो और खाते-खाते भी मर जाता है। क्योंकि क्रिया होती हो जड़ में और यहाँ स्थिति पूरी हो जाये तो देह छूट जाती है। समझ में आया? उसकी पर्याय स्वयं की स्वतन्त्र है। इसके कारण से है नहीं। आहाहा!

इसलिए यदि महासत्ता को सत्ता कहें तो अवान्तरसत्ता को असत्ता कहा जाता है, ऐसा। महा है, ऐसा कहें तो एक को नहीं, ऐसा कहा जाता है, ऐसा। महा का एक में नहीं। महा सब है, ऐसा कहें तो एक में सब नहीं, ऐसे असत्ता कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अब दूसरी व्याख्या थोड़ी अलग है। **इसलिए यदि महासत्ता को 'सत्ता' कहें तो अवान्तरसत्ता को 'असत्ता' कहा जायेगा।** अब दूसरी बात थोड़ी आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

धारावाही प्रवचन नं. १६ (प्रवचन नं. १५), गाथा-८, ९
दिनांक - २९-११-१९६९, कार्तिक कृष्ण ६, शनिवार

पंचास्तिकाय-आठवीं गाथा। इसके भावार्थ में दो, दो, है न? क्या है? बराबर। क्या कहते हैं? इस जगत में सर्वज्ञ परमेश्वर ने तीर्थंकर भगवान सर्वज्ञदेव परमात्मा ने छह द्रव्य देखे हैं। छह द्रव्य भगवान ने देखे। उन छह द्रव्यों में पाँच अस्तिकाय है और एक अस्ति है। काल है, वह बहुत अंश इकट्ठे नहीं होते, इसलिए उसे समूहरूप से काय नहीं कहा जाता। काल है, वह अस्ति कहलाता है। इसके अतिरिक्त आत्मा, परमाणु, धर्मास्ति, अधर्मास्ति और आकाश, ये अस्ति हैं और बहुत प्रदेशों का समूह है। वह अस्ति है, ऐसी अस्तिवाली चीज़ है। उसे यहाँ सिद्ध करते हैं।

महासत्ता, दो। पूरे जगत में महासत्ता, वह उत्पाद, व्यय और ध्रुव, ऐसे तीन लक्षणवाली है। सामान्य सब प्रकार से है और एक-एक आत्मा या एक-एक परमाणु में भी एक समय में उत्पाद, व्यय और ध्रुव, यह तीन होकर महासत्ता है। इसलिए बहुत, कहा न तीन? महासत्ता अर्थात् महारूप है। क्या? कि आत्मा में नयी अवस्था उत्पन्न हो, पुरानी जाये और ध्रुव रहे। इन तीन की महासत्ता है। वह तीन महासत्तारूप से है। वह स्वयं महासत्तारूप से नहीं। अर्थात् कि महासत्ता अवान्तरसत्तारूप नहीं परन्तु एक-एक सत्ता, वह अवान्तरसत्ता है। अवान्तर अर्थात् क्या?

यह बात तीन दिन से चलती है। कि आत्मा में, जैसे कि कोई मनुष्य कहे कि हम व्रत पालते हैं, ब्रह्मचर्य पालते हैं, दृष्टान्त है। समझ में आया? तो उसने पाला अर्थात् उसकी पर्याय में क्या हुआ? समझ में आया? शरीर की क्रिया का उत्पाद, व्यय और ध्रुव तो शरीर में है। अर्थात् कि उसके कारण से कुछ पालता है, ऐसा तो कुछ रहा नहीं। समझ में आया इसमें? यह शरीर है, उससे विषय सेवन नहीं हुआ तो वह तो शरीर की पर्याय का उत्पाद था। एक-एक परमाणु पर्याय से उत्पन्न होते हैं, पूर्व की पर्याय से व्यय होते हैं और ध्रुव। वह तो उसके परमाणु के अस्तित्व में मौजूदगी में हुआ। परन्तु एक व्यक्ति कहे कि भाई! हम व्रत पालते हैं। तो उसमें हुआ क्या? उसकी सत्ता में क्या हुआ? समझ में आया?

उसकी सत्ता में बहुत तो राग की मन्दता का विकल्प उत्पन्न हुआ है, बस। बाकी यह शरीर की अवस्था विषयरूप नहीं हुई, वह कहीं इसका अधिकार नहीं है। वह तो उसका अस्तित्व उसके कारण से है। समझ आया या नहीं?

मैं झूठ नहीं बोलता, सत्य बोलता हूँ। वह इसकी पर्याय में क्या हुआ? क्या आया? बोलना, न बोलना तो जड़ की पर्याय है। जड़ का अस्तित्व जड़ में है। वह आत्मा के कारण जड़ में झूठापना–सच्चापना बोला गया या झूठापना बोला गया, वह कहीं आत्मा के कारण से नहीं है। क्योंकि वह तो परमाणु में एक समय में अनन्तगुण की अनन्त पर्याय है, उसमें जिस जाति की भाषा की पर्याय हुई कि झूठ नहीं बोलना। वह तो जड़ की पर्याय हुई, वह तो जड़ का अस्तित्व है। उसके कारण यहाँ सत्य का विकल्प है कि सत्य बोलता हूँ या असत्य नहीं बोलता, ऐसा विकल्प उसके कारण से नहीं है। समझ में आया?

उसमें राग की मन्दता का ऐसा विकल्प हुआ हो कि मैं सत्य बोलता हूँ, बस इतना। अब वह राग की मन्दता का उत्पाद स्वतन्त्र है। मैं सत्य भाषा बोलता हूँ, इसलिए सत्य का विकल्प है, ऐसा नहीं है। समझ में आया इसमें? ऐसे एक पर जीव को न मारना हुआ, बचा। वह उसका उत्पाद तो वहाँ उसके परमाणु में हुआ। इसने उसमें पर को बचाने में वहाँ क्या किया? एक विकल्प हुआ हो कि इसे नहीं मारना। उस विकल्प की अस्ति में, वह उसमें इतना उत्पाद हुआ, इसकी पर्याय में यह उत्पाद हुआ। अब वह कोई धर्म है? राग का उत्पाद हुआ, वह धर्म है?

मुमुक्षु : परन्तु दूसरा नहीं मरा, वह धर्म नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दूसरा नहीं मरा, वह उसके अस्तित्व के कारण। यहाँ यह तो सिद्ध करना है। उसके उत्पाद, व्यय और ध्रुव उसमें है। इसलिए तो यह महासत्तावान और सत्तावान तत्त्व का बोल कहा। वह जीव नहीं मरा अर्थात् शरीर से पृथक् नहीं पड़ा, उसका उत्पाद तो उसकी पर्याय में हुआ। जीव की पर्याय में जीव का और जड़ की पर्याय में जड़ का। उसका अस्तित्व कोई इसके अस्तित्व के कारण नहीं है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म है।

मुमुक्षु : इसमें तो कर्तापना आ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : होनेपने का निषेध है न यहाँ तो ? कर्तापना मैंने कहाँ कहा ? मैंने तो होनापना कहा। इसके कारण यह है और इसके कारण यह है, ऐसा नहीं हुआ-ऐसा कहा। कर्तापना नहीं कहा। होनापना क्या हुआ, इतनी यहाँ बात हुई। करना या नहीं करना, यह प्रश्न अभी है नहीं। भई ! लाओ अपने यह बैठे। सामायिक की, लो ! सामायिक की। सामायिक अर्थात् क्या ? तेरी पर्याय में क्या हुआ ? तेरी अवस्था में अस्तित्व जो तेरी अवस्था है, उसमें क्या हुआ ? बहुत तो राग की मन्दता का भाव हुआ हुआ। शरीर ऐसा हुआ, ऐसा रहा, वह कहीं तुझसे नहीं रहा। वह तो उसका अस्तित्व उसमें है। समझ में आया ? ताव काय ठाणेणं मोणेणं जाणेणं अप्पाणं वोसिरामि। यह ताव काय ठाणेणं की भाषा तो जड़ की है। वह जड़ में अस्तित्व में वह भाषा हुई है। वह कहीं तेरे अस्तित्व के कारण हुई है ? तू वहाँ है ? और वह यहाँ आत्मा में है ? अब वहाँ हुआ क्या, उसने ऐसा किया तो वहाँ तो जड़ की पर्याय है ऐसी। अब उसे वहाँ हुआ क्या ? शुभ विकल्प—राग हुआ। वह तो परसन्मुख का राग है। राग का उत्पाद राग के कारण से है। वह बाहर की क्रिया हुई, इसलिए नहीं। तथा कर्म है, इसलिए राग का उत्पाद है (नहीं), और राग का उत्पाद है, इसलिए वहाँ आनन्द और ज्ञान की धर्म की पर्याय का उत्पाद है, ऐसा नहीं। समझ में आया ?

तत्त्व ऐसा सूक्ष्म है। लोगों को वीतराग का तत्त्व मिला नहीं। यह राग का विकल्प हुआ, इतना अस्तित्व लो। अब उस समय धर्मी को धर्म कहाँ हुआ ? कि धर्मी को कहाँ धर्म हुआ कि जो स्वरूप मेरा ध्रुव सत् महाप्रभु है। महाचैतन्य भगवान आनन्द ध्रुव ध्रुवरूप से है। वह उत्पादरूप से नहीं। इसलिए ज्ञान की पर्याय का जो उत्पाद का लक्ष्य था, वह द्रव्य पर गया है, इसलिए उसे सम्यग्ज्ञान की पर्याय धर्म की शान्ति की उत्पन्न हुई। उसके साथ राग भी है। परन्तु राग और शान्ति की पर्याय एक समय में दो है। परन्तु वे दोनों उत्पाद, उत्पाद के कारण से हैं। पर के कारण से राग नहीं, राग के कारण ज्ञान नहीं, ज्ञान की पर्याय के कारण ध्रुव नहीं। समझ में आया ? मगनभाई !

ऐसा वीतराग का मार्ग है, भाई ! परन्तु इसे सुनने को भी मिला नहीं, क्या करे बेचारा ? अनादि से महासत्प्रभु ! आज एक लेख आया है, कोई पुस्तक मुझे भेजी है।

उसमें बहुतों का वह क्या कहलाता है ? हाँ, अभिप्राय बहुतों के, परन्तु बहुतों के नाम बड़े-बड़े साधु के और दिगम्बर के और स्थानकवासी, श्वेताम्बर ने पुस्तक बनायी है। लोगों में, यह लौकिक रखा है, क्या कहलाता है ? क्या कहा ? .....भाई ! सामायिक समय को अनुसरकर। बहुत नाम दिये हैं। कितने ही तो ओहोहो ! अभिमान का सेवन। क्या किया परन्तु उसमें ? उसमें सामायिक समय को अनुसरकर, क्या कहना है ? समय को अनुसरकर अर्थात् क्या ? वह वर्तमान समय, उसे अनुसरकर ? वह तो परपदार्थ है।

यह समय ऐसा जो भगवान आत्मा सम-अय, सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र को प्राप्त हो, वह समय आत्मा। ऐसा जो आत्मा स्वयं समय अर्थात् आत्मा को अनुसरकर उसके काल में जो ज्ञान-दर्शन की पर्याय हो, वह समय को अनुसरकर हुई दशा कहलाती है। ऐई ! यह तो आया है बहुत, बहुत वाँचा है न।........लोग बहुत महिमा करते हैं। गुप्त नाम दिये हैं, हों ! मन्दिरमार्गी, दिगम्बर सब बहुत के आध्यात्मिक सेवा का एक महान संकल्प। हें ! उसकी व्याख्या है। उठना कहाँ और आगे बढ़ना कहाँ ? आत्मा आनन्दमूर्ति भगवान चैतन्य सत् साहेब है चैतन्य, उसकी अन्तर्दृष्टि करके उठो और उसमें स्थिरता करके बढ़ो, इसका नाम सत् में उठना और जागना है। कि जो कायम टिके। इस राग में कोई उठे और कोई बाहर का हुआ, उसमें कुछ टिकने का नहीं है। वह तो वापस बदल जायेगा। वह तो वापस निगोद हो जायेगा, चींटी, कौआ हो जायेगा।

उठा तो उसे कहा जाता है कि जो वापस फिरे नहीं। समझ में आया ? उठा अर्थात् भगवान आत्मा परमानन्द की मूर्ति सर्वज्ञस्वभावी परम आनन्दस्वभावी ऐसा महासत् प्रभु आत्मा, उसमें जिसने दृष्टि दी, वह आत्मा में उठा। समझ में आया ? और वह उसमें आगे बढ़ा, बढ़ा क्या कहा, उठो फिर ? आगे बढ़ो। ऐसा कुछ होता होगा ? बहुत उसमें पूरी दुनिया इकट्ठी होगी। आहाहा ! परन्तु उसमें क्या है ? यह आत्मा क्या वस्तु है ? जो जागना हो और टिका रहे, उसका नाम उठा और जगा कहा जाता है। वह तो शाश्वत् चिदानन्द आत्मा में अन्तर्मुख में महासत् स्वरूप है, उस सत् में एकाग्र हो और जो सत् की उत्पत्ति सम्यग्दर्शन आदि की हुई, वह उठा कहलाता है। बाकी सब ऊंघ में और सो रहे हैं। उसमें आता है न, भाई ? सोता नहीं ? व्यवहार में सोता है। अन्दर में जागता है, वह व्यवहार में

सोता है और व्यवहार में जागता है, वह अन्दर में सोता है। गाथा तो अपनी ही है, भाई! कुन्दकुन्दाचार्य की अष्टपाहुड़ की (मोक्षपाहुड़ की ३१ गाथा में है)।

जो कोई जीव पुण्य-पाप के विकल्प हैं, उनमें सोता है अर्थात् उसमें मेरे नहीं, परन्तु मैं तो ज्ञानानन्द हूँ, वह जागृत है। व्यवहार में सोता है। निश्चय में जागता है। वह जगा सो जगा, वह सत् है। समझ में आया? आहाहा! जहाँ सत्स्वरूपी भगवान आत्मा में जिसने दृष्टि दी और पुण्य-पाप के, दया, व्रत आदि के विकल्प हैं, वह व्यवहार है, वह उसमें सोता है। वे मुझमें नहीं अथवा मेरे नहीं और मेरे अस्तित्व के कारण उनका वास्तविक अस्तित्व नहीं। समझ में आया? आहाहा! वह यहाँ कहते हैं, देखो। आत्मा में भले महासत्ता हो। उत्पाद-नयी अवस्था का होना, पुरानी का जाना, ध्रुव का रहना है, हो। परन्तु एक-एक, एक-एक स्वरूप है। उसका उठा जो जागृत सम्यग्दर्शन हुआ। सत् स्वरूप महाप्रभु का आश्रय लेकर जो उत्पाद हुआ, वह उत्पाद उत्पाद के आश्रय से है। ध्रुव के आश्रय से नहीं, ऐसा कहते हैं। और राग था, इसलिए सम्यग्दर्शन का उत्पाद हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा!

लोग कहते हैं न भाई! हम ऐसा करते-करते अन्दर अध्यात्म में जायेंगे, सत् में। परन्तु असत्रूप से रहकर सत् में जाया जायेगा? आहाहा! क्या है? वह तो असत् है। तेरी पर्याय में हुआ क्या? यह व्रत किये और अपवास किये, एक महीने के अपवास किये, चलो। उसमें तेरी पर्याय में क्या हुआ? वह तो आहार नहीं आनेवाला था, वह तो उसकी पर्याय थी। तेरी पर्याय में क्या हुआ? नया क्या हुआ? इसने ऐसा कहा, मुझे यह खाना नहीं। ऐसी राग की मन्दता का, नहीं खाने का विकल्प किया। इतनी उत्पत्ति हुई। अब इसमें धर्म कहाँ आया?

इस विकल्प के काल में भी स्वभाव का ज्ञान होकर राग का ज्ञान करता है, स्वभाव का ज्ञान होकर राग का ज्ञान करता है और ज्ञान में एकाग्रता है, उसे तपस्या, उसे निर्जरा और उसे भगवान धर्म कहते हैं। आहाहा! गजब काम। समझ में आया? वीतराग धर्म ऐसा अलौकिक (है कि) जगत के साथ कहीं मेल खाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! सम्प्रदाय में रहे, उसके साथ भी मेल खाये, ऐसा नहीं है। परन्तु आत्मा तो वीतरागस्वरूप है। परमेश्वर ने कहा वैसा आत्मा है। आत्मा स्वयं परमेश्वर है। आहा! महाप्रभु अनन्त परमेश्वर को

जिसने गर्भ में-पेट में रखा है। प्रसव होगा तो वह परमात्मा पूर्ण पर्याय, दूसरी स्थिति से पूर्ण पर्याय, तीसरी पर्याय ऐसी अनन्त पर्याय प्रसव होगी। आहाहा! समझ में आया?

यह आत्मा यह भगवान ध्रुवस्वरूप है, वह ध्रुवरूप ही है। वह अनन्त ज्ञान आदि का स्वतन्त्र उत्पाद हुआ, इसके लिये यहाँ ध्रुव में कुछ कम हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु भगवान आत्मा में तीन अंश है। एक नयी अवस्था का बदलना, पुरानी अवस्था का जाना, नया उपजना और ध्रुव। अब यहाँ कहते हैं कि ध्रुव, ध्रुवरूप से है। यह सर्वज्ञ का उत्पाद हुआ या अल्पज्ञ पर्याय का हुआ तो ध्रुव में कुछ कमी है या ध्रुव में कुछ दूसरा है, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? और अकेला अज्ञान उत्पन्न हुआ, 'राग, वह मैं हूँ और राग से मुझे लाभ होगा'—ऐसा मिथ्यात्व हुआ, तो भी उस मिथ्यात्व के उत्पाद के कारण ध्रुव में कुछ कमी है, या ध्रुव अभी बहुत पुष्ट हुआ, क्योंकि पर्याय अभी कमजोर निकली इसलिए; और उग्र पर्याय निकली इसलिए ध्रुव में कुछ कमी हुई है, ऐसा है नहीं। गजब बात भाई! समझ में आया?

वीतराग सर्वज्ञ ने कहा हुआ धर्म का स्वरूप सूक्ष्म है, भाई! श्रीमद् भी कहते हैं न वीर के वचनों का सूक्ष्मपना समझो। सूक्ष्म बोध का अभिलाषी, वह भगवान के मार्ग का कामी है। आहाहा! हाथ-हाथ आवे वहाँ। आँखें किसी की, यह होंठ किसी के, वाणी किसी की वह तो जड़ है। जड़ पुद्गल का है, वह कहीं आत्मा का है नहीं। और यह सब बोला जाता है, बोला जाता है, वह पुद्गल का पुद्गल में बोला जाता है। आत्मा में आत्मा से नहीं। आहाहा! कैसे जँचे?

हम उपदेश करते हैं। इस उपदेश का लाभ हमें मिलता है। किसका? भाषा निकली उसका? भाषा के उत्पाद-व्यय तो उसके जड़ में हुए हैं। हमारे उपदेश से जीव समझते हैं, उसका लाभ हमें मिलेगा। धूल भी नहीं मिलेगा, सुन न! उसका उत्पाद उसमें है। तेरा उत्पाद विकल्प किया, इतना उत्पाद तुझमें है। समझ में आया? और उस विकल्प का स्वभाव सन्मुख रहकर ज्ञान कर तो उस ज्ञान का उत्पाद तुझमें है। उस उत्पाद का लाभ तुझे है। बाकी पर के कारण कुछ है नहीं। लाख लोग समझ जाये, इसलिए समझानेवाले को जरा ही लाभ मिलता होगा या नहीं? कौन करता है मेहनत? क्या करे?

भाषा में किया जाए वह तो जड़ है। वह तो उत्पाद-व्यय, यही चलता है यहाँ। उन परमाणुओं में रजकण का अस्तित्व है पुद्गल का, तो एक-एक परमाणुओं में उत्पाद, व्यय और ध्रुव तीन हैं, महासत्ता है। तीन हुए न, इसलिए, और उसका एक-एक भाग भाषारूप से उत्पन्न हुआ, वह उत्पाद उस उत्पादरूप से है। पूर्व में पुद्गल की पर्याय साधारण थी, उसका व्यय हुआ, वह व्ययरूप से है और परमाणु, वह ध्रुवरूप से है। उसमें आत्मा के कारण कोई परमाणु भाषा होती है, यह बात तीन काल में एक अंश सच्ची नहीं है। आहाहा! कहो, वजुभाई! सत्य होगा यह सब?

मुमुक्षु : समझना ही पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझना ही पड़ेगा, लो यह ठीक पड़ गया। यह सच्ची बात भाई। मार्ग तो यह है। इसे समझना ही पड़ेगा। सुखी होना हो तो। बाकी यह दु:खी का सरदार चौरासी में भटक मरता है। जवाब ठीक दिया। कहाँ गये आणन्दभाई? भाई ने जवाब ठीक दिया है। आहाहा!

महाप्रभु सत् हो न, नाथ! ऐसे ध्रुव के, ध्रुव के अंश को उत्पाद के कारण कुछ, ऐसा कहते हैं, हों! आहाहा! सम्यग्ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई तो इससे यहाँ कुछ कम हुआ? और केवलज्ञान की (पर्याय) हुई, इससे यहाँ पुष्टि कम हुई? ओहोहो! क्या तत्त्व, वह तत्त्व है। आहाहा! समझ में आया? लो, और यह थोड़ी बात आज और आयी। अलग-अलग कहीं से आती है, हों! तीन दिन में हुआ। और यह दूसरा ये आया। वस्तु की महासत्ता अर्थात् एक आत्मा और एक-एक परमाणु वह महासत्ता पूरी। उसका उत्पाद, व्यय और ध्रुव अनन्तगुण का एक समय की पर्याय, वह उत्पाद; पूर्व की पर्याय का व्यय और अपना ध्रुव। यह तीन लक्षणवाली है। इसलिए वह त्रिलक्षणा है। वह तीन लक्षणवाली महासत्ता कहलाती है।

वस्तु के उपजते स्वरूप का उत्पाद ही एक लक्षण है। वह एक लक्षण कहलाता है। त्रिलक्षणवाली वह एक लक्षणवाली है। अरे! ऐसा। वह तो कहे कि भाई दया पालो, व्रत पालो, अपवास करना, सूर्यास्तपूर्व भोजन करना, कन्दमूल नहीं खाना। एकदम समझ में आये अज्ञान और भटक मरता है। समझ में आया? क्योंकि पर सत्ता के आश्रय में मैं कुछ

हूँ और मेरे अस्तित्व में पर कुछ है, यह बुद्धि मिथ्यादृष्टि की मिथ्यात्व है। कहो, नवलचन्दभाई! समझ में आया या नहीं यह ? गजब सूक्ष्म बाते हैं। हें ?

मुमुक्षु : अजीब बात कही।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वज्ञ परमेश्वर इन्द्रों के समक्ष बात करते होंगे, गणधरों के समक्ष ध्वनि निकलती होगी, वह कैसी होगी ? समझ में आया ?

पूरे लोक के स्वामी, अर्ध लोक के स्वामी शकेन्द्र, अर्ध लोक का स्वामी सौधर्म, दोनों एकावतारी—एक भव करके मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा! और तीन-तीन ज्ञान के धनी। वे भगवान की दिव्यध्वनि सुनने आवे और दिव्यध्वनि में आता होगा। समझ में आया ? ओहोहो! उसकी गम्भीरता, उसकी ऊँचाई, और उसकी गहराई अलौकिक है। समझ में आया ? आहाहा! कहते हैं कि महासत्ता वह वस्तु के उपजते स्वरूप का उत्पाद एक ही लक्षण है। वह अवान्तरसत्ता हुई। नष्ट होते स्वरूप का व्यय है, व्यय का अवान्तर एक अन्तर्भेद हो गया। अवस्था बदल गयी समय-समय में प्रत्येक द्रव्य की। और ध्रुव रहते स्वरूप का ध्रौव्य ही एक लक्षण है। ध्रुव रहते स्वरूप का ध्रौव्य ही—ध्रुवपना ही एक लक्षण है। वह तो एकरूप सत् प्रभु विराजता है, ऐसा का ऐसा। परमाणु भी ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव...ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... हें ?

मुमुक्षु : ऐसा ही विराजता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही विराजता है। परमाणु ध्रुव ध्रुवरूप से विराजता है।

भले यह अवस्थायें बदलें, परन्तु वह अवस्था तो उत्पाद-व्यय की, उसका लक्षण भिन्न है। परमाणु में ध्रुवता तो कायम है। इस परमाणु में भी। आहाहा! हें ? पूरा जड़ेश्वर। जितने आत्मा में गुण हैं, उतने ही एक परमाणु में हैं। जितने सिद्ध में गुण हैं, उतने गुण एक परमाणु में हैं। उतने संख्या से, ऐसा। यह चेतन के हैं, वे जड़ के हैं। एक-एक परमाणु स्वतन्त्र अनन्त गुण का स्वामी है। और उसकी पर्याय उत्पन्न हो, वह उसके कारण से होती है। दूसरे परमाणु से नहीं, आत्मा से बिल्कुल नहीं। आहाहा!

जगत को अभिमान है न, अभिमान। हम उपदेश देते हैं। हम शास्त्र बनाते हैं। हें ?

कौन बनावे ? भाई ! यह तो तेरा अभिप्राय मिथ्या है। अभिप्राय तो मिथ्यात्व का पोषक है। झूठे भाव का पोषक है। उसमें सच्चापन आता होगा उसमें से ? इसलिए इन तीन स्वरूपों में प्रत्येक की अवान्तरसत्ता प्रत्येक की एक-एक अन्तर्भेद की अलग सत्ता, एक ही लक्षणवाली होने से, अरे ! भारी गूढ़ ! अत्रिलक्षणा है। तीन होकर तीन लक्षण, एक-एक होकर अत्रिलक्षण। एक-एक में तीन लक्षण है नहीं। कठिन बात ! चलो, भाई ! सब इकट्ठे होकर अपन काम करें। वह ऐसा कहता था, नहीं ? नहीं एक मण्डल चलता वड़ोदरा में, नहीं ? एक साथ बैठे और फिर सबके विचार, एक साथ बैठे और जिससे एक-दूसरे के विचारों का आन्दोलन मिले। ऐसा कुछ मण्डल वड़ोदरा में है। था, उस समय था। शाम को अमुक समय में ही सब एकत्रित हों गाँव-गाँव सत्-सत् ऐसा कुछ मण्डल था। सब मण्डल के एकत्रित हों। है किसी को खबर ? वडोदरा में ऐसा था। ऐसा एक था। यह सत्संग मण्डल है, ऐसा। ऐसा था। सब एक जगह एकत्रित होकर विचार करे। एक-दूसरे के विचार को आन्दोलन मिले न। धूल भी नहीं मिलता, यहाँ ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? हें ? वे सब वहाँ इकट्ठे हों। समय, एक समय में गाँव-गाँव में इकट्ठे हों। एक-दूसरे के विचारों का आन्दोलन का एक-दूसरे को असर हो। यहाँ भगवान कहते हैं कि तीन काल में किसी की पर्याय का असर पर में नहीं होता। कहो, समझ में आया ? क्योंकि असर अर्थात् क्या ? सामने का पदार्थ है, उसकी पर्यायरूप से उत्पन्न होता है। उसमें इसकी पर्याय ने वहाँ क्या किया ? अथवा इसके अस्तित्व के कारण वह अस्तित्व रहा ? यहाँ अस्तित्व की व्याख्या है न ? इसके अस्तित्व का वहाँ अस्तित्व हुआ ? सबका अस्तित्व भिन्न-भिन्न है। समझ में आया ? यह दूसरा बोल हुआ।

अब **महासत्ता समस्त पदार्थसमूह 'सत्, सत्, सत्'—ऐसा समानपना दर्शाती है,....** आत्मा है, पर्याय है, ध्रुव है, उत्पाद है, व्यय है, जीव है, धर्मास्ति-अधर्मास्ति है... है... है। वह सब सत्... सत्... सत्.... बतानेवाला होने से एक है। सब होकर एक है, ऐसा। है... है बतलानेवाले की अपेक्षा। एक वस्तु की स्वरूप सत्ता किसी दूसरी वस्तु की स्वरूप सत्ता नहीं है। एक परमाणु की सत्ता दूसरे परमाणु की सत्ता से नहीं है। एक आत्मा का अस्तित्व दूसरे आत्मा के कारण दूसरे परमाणु के कारण नहीं है। **इसलिए जितनी**

वस्तुएँ उतनी स्वरूपसत्ताएँ;.... स्थित होता है। **इसलिए ऐसी स्वरूपसत्ताएँ अथवा अवान्तरसत्ताएँ 'अनेक' हैं।** सत्, सत्, सत्, सत् ऐसे गिनो तो सत् की अपेक्षा से सब एक है, परन्तु अन्तर्भेद (करो तो) प्रत्येक के स्वरूप का अस्तित्व अत्यन्त पृथक् है। आहाहा!

वहाँ भी यह आत्मा है। यह वहाँ परमाणु है। यह परमाणु की सत्ता का अस्तित्व परमाणु में है। आत्मा की सत्ता का अस्तित्व आत्मा में है। और यहाँ भी अन्दर सूक्ष्म निगोद के जीव हैं। पूरे लोक में भरे हैं न?

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु प्रत्येक है और निगोद साधारण है। वहाँ भी अन्दर अनन्त जीव पड़े हैं। एक-एक जीव का उत्पाद-व्यय-ध्रुवपना अपना स्वरूप सत्ता भिन्न है। इसकी सत्ता के कारण उसकी नहीं और उसके कारण से आत्मा की नहीं। एक क्षेत्र में साथ में इकट्ठे दिखने पर भी उनकी अस्ति स्वरूप के अस्तित्व की सत्ता सबकी भिन्न-भिन्न है। किसी के कारण कोई है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

यह सब मिल मालिक और बड़े गृहस्थ हों, यह कहते हैं कि हम बहुतों को निभाते हैं। यह सच्ची बात होगी? अरे! दस-दस हजार लोगों को निभाते हैं, लो, ऐसा कहते हैं। सात हजार को निभाते हैं। हें? धूल भी निभाते नहीं। कौन निभाना अर्थात् टिकाना? वह तत्त्व टिकता नहीं? ध्रुवरूप से टिकता है और उत्पाद-व्यय से भी सत् है या नहीं? एकरूप से भी टिका हुआ है या नहीं? इसके कारण वहाँ टिका हुआ है या तेरे कारण वहाँ टिका हुआ है? आहाहा! बाहर कहाँ था? बाहर में बाहर, अन्दर में अन्दर। क्या होगा इसमें? .....कर सकता होगा या नहीं? कार्यवाहक कहलाये न बड़ा, पर का करे या इसका करे? उसके अस्तित्व में यह बदले या पर के अस्तित्व में यह बदले? धूल भी किसी को पड़ती नहीं। काम अर्थात् सबकी कार्य सीमा। दूसरे का कार्य उसमें। बराबर होगा यह? यह तीन बोल हुए।

सर्व पदार्थ सत् हैं, इसलिए महासत्ता 'सर्व पदार्थों में स्थित' है। है। है... है... वह सबमें रही हुई है न? **व्यक्तिगत पदार्थों में स्थित भिन्न-भिन्न व्यक्तिगत सत्ताओं द्वारा ही पदार्थों का भिन्न-भिन्न निश्चित व्यक्तित्व रह सकता है,....** लो। एक-एक का अस्तित्व होकर सबका अस्तित्व है न? एक-एक का अस्तित्व पृथक् है। एक-एक

पदार्थ स्थित है। और सबमें पदार्थ स्थितरूप से जो सदृश है, वह सदृशता है। **उस-उस पदार्थ की अवान्तरसत्ता उस-उस 'एक पदार्थ में ही स्थित' है।** लो।

पाँचवाँ—महासत्ता समस्त वस्तुसमूह के रूपों (स्वभावों) सहित है, इसलिए वह 'सविश्वरूप' है। सब होकर समस्तपना है—अनेकपना है। वस्तु की सत्ता का (कथंचित्) एकरूप हो तभी उस वस्तु का निश्चित एकरूप (-निश्चित एक स्वभाव) रह सकता है, भिन्न-भिन्न सत्ता एकरूपपने रह सकती है। इसलिए प्रत्येक वस्तु की अवान्तरसत्ता निश्चित 'एक रूपवाली' ही है।

छठवाँ बोल—महासत्ता सर्व पर्यायों में स्थित है, उत्पाद-व्यय-ध्रुव, अनन्त गुण का उत्पाद-व्यय-ध्रुव। इसलिए वह 'अनन्तपर्यायमय' है। भिन्न-भिन्न पर्यायों में (कथंचित्) भिन्न-भिन्न सत्ताएँ हों, तभी प्रत्येक पर्याय भिन्न-भिन्न रहकर अनन्त पर्यायें सिद्ध होंगी, नहीं तो पर्यायों का अनन्तपना ही नहीं रहेगा —एकपना हो जाएगा।

अपने आज यह चौथा दिन है। इसलिए यह समेटा है, हों! जरा यह। तीन दिन से तो यह सब चल गया है। यह तो जरा अधिक आ गया। उत्पाद, व्यय, ध्रुव में कुछ कम नहीं होता। घटता नहीं। आहाहा! समझ में आया? बहुत बोल आ गये। कितने ही कहते हैं कि हम कुछ क्रिया करें तो फिर आत्मा का कुछ कल्याण हो न? हम इतना रखते हैं। क्या करे तू? तेरी पर्याय में कदाचित् तू राग की मन्दता करे, इतना है। परन्तु उस राग की मन्दता से आत्मा का सम्यग्दर्शन प्राप्त हो, ऐसा है? राग तो विकार है। सम्यग्दर्शन तो अविकारी दशा है। तो अविकारी दशा अविकारी ध्रुव के आश्रय से होगी या राग की मन्दता के आश्रय से होगी? समझ में आया?

भगवान कहते हैं कि मेरे आश्रय से तुझे सम्यक्त्व नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। लो! आहाहा! ऐई! भगवान कहते हैं कि मुझे मान तो तुझे समकित होगा, 'नहीं'। तुझे मान तो होगा, 'यह हाँ ।' तू परमेश्वर पूरा प्रभु है, भाई! तेरे ध्रुव में तो अनन्त सिद्ध भगवान विराजते हैं। ऐसा परमात्मस्वरूप प्रभु स्वयं ही परमात्मा है। मेरा परमात्मा मुझमें है, ऐसी अन्तर में सन्मुख होकर सत् का स्वीकार, सत् की प्रसिद्धि सम्यग्दर्शन में होना, इसका नाम भगवान

धर्म कहते हैं। धर्म की यहाँ से शुरुआत होती है। समझ में आया? लो।

नहीं तो पर्यायों का अनन्तपना ही न रहे—एकपना हो जाये। इसलिए प्रत्येक पर्याय की अवान्तरसत्ता उस-उस 'एक पर्यायमय' ही रहती है। इसका स्पष्टीकरण। **इस प्रकार सामान्यविशेषात्मक सत्ता,....** अर्थात् कि सब है और भिन्न-भिन्न है, **सत्ता, महासत्तारूप तथा अवान्तरसत्तारूप होनेसे, (१) सत्ता भी है और असत्ता भी है,....** संक्षिप्त कर दिया। महासत्ता, महासत्तारूप से है और अवान्तरसत्ता से असत्ता है। **त्रिलक्षणा भी है और अत्रिलक्षणा भी है।** तीन लक्षणरूप तीन लक्षणपना है और एक-एक लक्षणवालीरूप से त्रिलक्षणपना नहीं है। एक-एक लक्षण त्रिलक्षणरूप नहीं। वहाँ बँगड़ी का व्यापार करना, वह यहाँ नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? त्रिलक्षणा भी है और अत्रिलक्षणा भी है। एक भी है और अनेक भी है। सब होकर एक कहलाता है और भिन्न-भिन्न होकर अनेक कहलाता है। **सर्वपदार्थस्थित भी है और एकपदार्थस्थित भी है, सविश्वरूप भी है और एकरूप भी है, अनन्तपर्यायमय भी है और एकपर्यायमय भी है॥** लो, आठवीं गाथा पूरी हुई।

अब नौवीं गाथा—यह तो सब आ गया है न, फिर इसमें क्या कहे? यह चार दिन हुए, चलता है। लो, तीन घण्टे चला और यह आधे घण्टे चला, ३५-३६ मिनिट चला। दृष्टान्त भी अलग-अलग आते हैं। बाकी दूसरा तो सिद्धान्त तो जो है, वह है। दृष्टान्त अलग हों, इसलिए कुछ नया लगे। अब नौवीं गाथा।

गाथा - ९

दवियदि गच्छदि ताइं ताइं सब्भावपज्जयाइं जं।
दवियं तं भण्णंते अणण्णभूदं तु सत्तादो।।९।।

द्रवति गच्छति तांस्तान् सद्भावपर्यायान् यत्।
द्रव्यं तत् भणन्ति अनन्यभूतं तु सत्तातः।।९।।

अत्र सत्ताद्रव्ययोरर्थान्तरत्वं प्रत्याख्यातम्।

द्रवति गच्छति सामान्यरूपेण स्वरूपेण व्याप्नोति तांस्तान् क्रमभुवः सहभुवश्च सद्भावपर्यायान् स्वभावविशेषानित्यनुगतार्थया निरुक्त्या द्रव्यं व्याख्यातम्। द्रव्यं च लक्ष्यलक्षणभावादिभ्यः कथञ्चिद्भेदेऽपि वस्तुतः सत्ताया अपृथग्भूतमेवेति मन्तव्यम्।ततो यत्पूर्वं सत्त्वमसत्त्वं त्रिलक्षणत्वमत्रिलक्षणत्वमेकत्वमनेकत्वं सर्वपदार्थस्थितत्वमेकपदार्थस्थितत्वं विश्वरूपत्वमेकरूपत्वमनन्तपर्यायत्वमेकपर्यायत्वं च प्रतिपादितं सत्तायास्तत्सर्वं तदनर्थान्तरभूतस्य द्रव्यस्यैव द्रष्टव्यम्। ततो न कश्चिदपि तेषु सत्ताविशेषोऽवशिष्येत यः सत्तां वस्तुतो द्रव्यात्पृथक् व्यवस्थापयेदिति।।९।।

जो द्रवित हो अर प्राप्त हो सद्भाव पर्ययरूप में।
अनन्य सत्ता से सदा ही वस्तुतः वह द्रव्य है।।९।।

अन्वयार्थ :– [तान् तान् सद्भावपर्यायान्] उन–उन सद्भावपर्यायों को [यत्] जो [द्रवति] द्रवित होता है– [गच्छति] प्राप्त होता है, [तत्] उसे [द्रव्यं भणन्ति] (सर्वज्ञ) द्रव्य कहते हैं–[सत्तातः अनन्यभूतं तु] जो कि सत्ता से अनन्यभूत है।

टीका :– यहाँ सत्ता को और द्रव्य को अर्थान्तरपना (भिन्नपदार्थपना, अन्य पदार्थपना) होने का खण्डन किया है।

'उन–उन क्रमभावी और सहभावी सद्भावपर्यायों को अर्थात् स्वभावविशेषों को जो [1]द्रवित होता है–प्राप्त होता है–सामान्यरूप स्वरूप से व्याप्त होता है, वह द्रव्य है'–

१. श्री जयसेनाचार्यदेव की टीका में भी यहाँ की भाँति ही 'द्रवति गच्छति' का एक अर्थ तो 'द्रवित होता है अर्थात् प्राप्त होता है' ऐसा किया गया है; तदुपरान्त 'द्रवति' अर्थात् स्वभावपर्यायों को द्रवित होता है और गच्छति अर्थात् विभावपर्यायों को प्राप्त होता है' ऐसा दूसरा अर्थ भी यहाँ किया गया है।

इस प्रकार [२]अनुगत अर्थवाली निरुक्ति से द्रव्य की व्याख्या की गयी। और यद्यपि [३]लक्ष्यलक्षणभावादिक द्वारा द्रव्य को सत्ता से कथंचित् भेद है, तथापि वस्तुत: (परमार्थत:) द्रव्य सत्ता से अपृथक् ही है, ऐसा मानना। इसलिए पहले (८वीं गाथा में) सत्ता को जो सत्पना, असत्पना, त्रिलक्षणपना, अत्रिलक्षणपना, एकपना, अनेकपना, सर्वपदार्थ-स्थितपना, एकपदार्थस्थितपना, विश्वरूपपना, एकरूपपना, अनन्तपर्यायमयपना और एकपर्यायमयपना कहा गया, वह सर्व सत्ता से अनर्थान्तरभूत (अभिन्नपदार्थभूत, अनन्यपदार्थभूत) द्रव्य को ही देखना (अर्थात् सत्पना, असत्पना, त्रिलक्षणपना, अत्रिलक्षणपना आदि समस्त सत्ता के विशेष द्रव्य के ही है, ऐसा मानना)। इसलिए उनमें (-उन सत्ता के विशेषों में) कोई सत्ताविशेष शेष नहीं रहता जो कि सत्ता को वस्तुत: (परमार्थत:) द्रव्य से पृथक् स्थापित करे।।९।।

गाथा - ९ पर प्रवचन

दवियदि गच्छदि ताइं ताइं सब्भावपज्जयाइं जं।
दवियं तं भण्णंते अणण्णभूदं तु सत्तादो।।९।।

जो द्रवित हो अर प्राप्त हो सद्भाव पर्ययरूप में।
अनन्य सत्ता से सदा ही वस्तुतः वह द्रव्य है॥९॥

सत्ता और द्रव्य एक है। वस्तु है और उसकी सत्ता गुण है। ऐसे जितने विशेषण सत्ता को लागू पड़े, उतने ही विशेषण द्रव्य को लागू पड़ते हैं, ऐसा कहते हैं। देखो, इसका अन्वयार्थ लेते हैं। इसमें अन्वयार्थ लिया है, हों! उसमें गाथार्थ लिया है। इसमें अन्वयार्थ है, ऐसा। समयसार में गाथार्थ है। एक हो जाये नहीं इसलिए। उसमें क्या बाधा है? बाधा क्या आती है?

उन-उन सद्भाव पर्यायों को क्या कहते हैं अब? एक-एक आत्मा और एक-एक परमाणु वह उसके सद्भाव पर्यायों को द्रवता है। सत्रूप है, उसे परिणमता-द्रवता है।

---

२. यहाँ द्रव्य की जो निरुक्ति की गयी है, वह 'द्रु' धातु का अनुसरण करते हुए (-मिलते हुए) अर्थवाली हैं।

३. सत्ता लक्षण है और द्रव्य लक्ष्य है।

जैसे पानी (में) तरंग उठती है, वैसे आत्मा में और परमाणु में सद्भाव-विद्यमान अवस्था को वह द्रवता है, अर्थात् पाता है। दो अर्थ अलग करेंगे। जयसेनाचार्य में अलग किया है। क्या कहा उसमें, कि आत्मा स्वयं सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्मल पर्याय को द्रवता है, उस द्रव्य में-स्वद्रव्य में। वह पर के कारण नहीं गया, कर्म के उघाड़ से, कर्म के क्षयोपशम से द्रवता है, ऐसा नहीं है। उसका सद्भाव पर्याय को द्रव्य द्रवता है। भगवान पूर्णानन्द प्रभु आत्मा, इस सम्यग्दर्शन और धर्म की पर्याय को पाता है, वह द्रव्य स्वयं है तो द्रवता है। द्रव्य स्वयं उसे द्रवता है। द्रव्य स्वयं उस सद्भाव पर्यायरूप परिणमता है। कहो, समझ में आया?

यह सम्यग्दर्शन और धर्म की पर्याय उस राग के कारण द्रवता है, पुण्य के कारण द्रवता है, व्यवहार के कारण द्रवता है—ऐसा नहीं है। आहाहा! भगवान की वाणी और भगवान को मानता है, इसलिए वह द्रव्य सम्यग्दर्शनरूप से परिणमता है, ऐसा नहीं है। द्रव्य द्रव्यन्ति, ऐसा कहा है न? एक परमाणु भी पॉइन्ट उसका अन्तिम भाग, वह स्वयं द्रवता है। अपनी एक-एक परमाणु की स्वाभाविक अवस्थारूप से पृथक् द्रवता है। स्वयं से वह पर्यायरूप परिणमता है। पर के कारण नहीं। और गच्छन्ति अर्थात् आत्मा विभाव पर्याय को पाता है, यह गच्छन्ति में जाता है। समझ में आया?...

नीचे है उस ओर, फुटनोट इस ओर है। **श्री जयसेनाचार्यदेव की टीका में भी यहाँ की भाँति ही 'द्रवति गच्छति' का एक अर्थ तो 'द्रवित होता है अर्थात् प्राप्त होता है' ऐसा किया गया है; तदुपरान्त 'द्रवति' अर्थात् स्वभावपर्यायों को द्रवित होता है और गच्छति अर्थात् विभावपर्यायों को प्राप्त होता है - ऐसा दूसरा अर्थ भी यहाँ किया गया है।** 'गच्छन्ति' यहाँ थे तब अपने अब नहीं। इस गाथा के समय। यह बाधा है न सबको? कि आत्मा में जो कुछ पुण्य-पाप का विकार होता है, वह कर्म के कारण होता है। वह यहाँ इनकार करते हैं। समझ में आया?

यह आत्मा ही अपनी शुद्धपर्यायरूप पर की अपेक्षा बिना परिणमता है। और अशुद्धरूप, विकाररूप, मिथ्यात्वभावरूप, राग-द्वेषरूप होता है, वह स्वयं ही आत्मा, उस विभावरूप परिणमता है। कर्म के कारण से है और पर के कारण से है, काल में अन्तर है इसलिए परिमणता है, ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया? गजब भाई!

किस प्रकार से सिद्ध किया है देखो न, ऐसी शैली! **उसे द्रव्य कहते हैं। उसे सर्वज्ञ....** देखो! सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकर, केवलज्ञानी उसे द्रव्य कहते हैं, उसे वस्तु कहते हैं। उसे पदार्थ कहते हैं कि वह-वह पदार्थ अपनी-अपनी निर्मल पर्यायरूप से होओ या विकाररूप से होओ, उसे भगवान ने द्रव्य अथवा वस्तु कही है। पर के कारण से स्वभाव पर्यायरूप धर्म हो या पर के कारण विभावपने हो, ऐसा भगवान ने कहा नहीं। और वस्तु में ऐसा है नहीं। भाई! कर्म का कठोर उदय आवे तो तीव्र विकार करना पड़े, ऐसा होगा या नहीं? निद्धत और निकाचित कर्म भी कठोर, लो। जीव को न हो और विकार में खिंचना पड़े। यह यहाँ इनकार करते हैं। ऐसा नहीं है। हें?

और वह आया है भोगावली कर्म में। अरे! गप्प-गप्प मारी है। हें? परन्तु भोगावली कर्म अर्थात् क्या? राग को भोगे, वह भाव है, उसके पास ऐसा दूसरा क्या? देखा अब। ऐसा कि आर्द्रकुमार, नन्दीसेन आते हैं न? भोगावली (कर्म)। दीक्षा लेनेवाले थे परन्तु उन्हें किसी ने कहा, देखो भाई! तुम्हारे भोगावली कर्म का उदय है (इसलिए) दीक्षा नहीं रह सकेगी। ऐई! चेतनजी! सब सुना है या नहीं? अभी आया था..... कहीं आया था। अरे! परन्तु भोगावली कर्म कैसा? कर्म जड़ में है! तुझमें कहाँ आया परन्तु वह। यहाँ तो यह कहते हैं। कर्म का अस्तित्व कर्म में और विभाव का अस्तित्व तुझमें, इसमें तुझमें होने से पर के कारण हुआ, ऐसा है कहाँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भई! चारित्रमोह का उदय हो तो उसे भोग भोगने के लिये रुकना पड़ता है। लो, भोगावली कर्म का उदय तुमने सुना है या नहीं?

मुमुक्षु : हाँ, सुना है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : गप्प बहुत सुने हैं इसने। भोगावली कर्म के कारण गिरे। वह सुनानेवाले कहे, हाँ। गप्प मारे तो भी हाँ। सुननेवाले को कहाँ भान है? देखो, भाई! कर्म के कठोर भोण में से भाला निकले तो बड़े नन्दीसेन को और आर्द्रकुमार को भी मुड़ना पड़ा। भगवान बात ऐसी कहते हैं कि ऐसा है नहीं। तू कहता है, वह बात अत्यन्त झूठ और असत्य है। यह सब सुननेवाले थे, पाट के सामने बैठनेवाले। कहो, समझ में आया?

क्या कहा? यहाँ यह द्रव्य की व्याख्या है, हों!

मुमुक्षु : द्रव्य किसे कहना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य किसे कहना ? सत्ता की व्याख्या हो गयी। अब यहाँ द्रव्य। वह-वह सद्भाव पर्याय, ऐसा ही है न सद्भाव। विद्यमान पर्याय है न ? विकारी और अविकारी परन्तु विद्यमान पर्याय है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! बात तो देखो! सत्‌रूप से है, वह परिणमता है न ? आहाहा! परमाणु को कहीं उसकी खबर नहीं। समझ में आया ?

एक-एक आत्मा निगोद का हो या सिद्ध का हो, परन्तु स्वयं अपनी स्वभाव पर्यायरूप परिणमे तो भी वह और विभावरूप परिणमे तो भी वह। निगोद में भी सत्ता की पर्याय स्वभावरूप है न ? राग-द्वेष की पर्याय विभावरूप है। समझ में आया ? वह-वह सद्भाव प्रत्येक विद्यमान अवस्थारूप पर्यायें, उन्हें द्रवता है। नीचे भी कहा न, द्रवता है। वहाँ कहा न! अर्थात् इसमें एक ध्रुव धातु को अनुसरता अर्थ आया था और द्रवता है यह। टीका में अन्दर आयेगा न। यह एक परमाणु है पॉइन्ट। वह भी रंग, गन्ध, रस वस्तु की जो अवस्था, उसरूप परमाणु द्रवता है तो होता है। दूसरे परमाणु के संग में आया, इसलिए होता है, ऐसा नहीं है। पानी गर्म होता है। उस गर्म की अवस्था को परमाणु द्रवता है। द्रवता है। नहीं कि वह पानी की अवस्था अग्नि के कारण हुई है। ऐसा नहीं है। सबको यह बड़ी दिक्कत है न ? वहाँ से पाड़े। देखो! यह सिगड़ी को क्या कहा जाता है रखने का ? अग्नि हो तो यह चटाई सुलगे। नीचे बिछाने की चटाई हो न ? क्यों नहीं सुलगती। अग्नि हो तो सुलगे। यहाँ भगवान इनकार करते हैं। कि उस चटाई की जो ठण्डी अवस्था बिछाने की थी, उसकी दूसरे क्षण में जो गर्म हुई, वह द्रव्य में स्वयं द्रवी है। सद्भाव पर्याय से अग्नि की उष्ण अवस्था हुई। अग्नि के कारण नहीं। हें! गजब बात, भाई! ऐसा स्वरूप है, उसे जैसा है, वैसा न माने और उल्टा माने तो मिथ्यात्व के भाव और मिथ्यात्व को पोषता है। और चार गति में भटकने जाता है। वह साधु हुआ तो भी मिथ्यात्व का सेवन करता है और चार गति में जाता है। समझ में आया ?

उस-उस राग को अथवा स्वभाव को पाता है। उसे सर्वज्ञ परमेश्वर द्रव्य कहते हैं। कि जो सत्ता से अनन्य है। क्या कहा ? जो उसका अस्तित्वगुण है, सत्ता-अस्तित्वगुण है, जिसके यह सब विशेषण वर्णन किये आत्मा में। वह सब सत्तागुण से वह द्रव्य भिन्न नहीं

है। अस्तित्वगुण में जितने प्रकार वर्णन किये, उतने ही प्रकार द्रव्य के हैं। क्योंकि द्रव्य उस सत्ता से अन्य नहीं है। अनन्यभूत है। आहाहा! समझ में आया? अकेले न्याय से बात को सिद्ध किया है।

देखो! यह आँख की पलक ऐसे हिलती है न ऐसी, कहते हैं कि आत्मा का विकल्प है, इसलिए आँख ऐसे-ऐसे होती है, ऐसा नहीं – ऐसा कहते हैं। आँख की पलक ऐसे होती है, वह परमाणु द्रवते हैं, इसलिए यह होता है। आत्मा के कारण या आत्मा उसे— आँख को ऐसा करता है या ऐसा करता है, यह बात तीन काल में होती नहीं। आँख उघाड़ो, तो नहीं उघाड़ता? नहीं। आँख बन्द करो, कौन करे? अरे! गजब बात, भाई! जीव जला जाता है, होता है। उसकी पर्याय उस प्रकार से होती है। जीव के कारण से होती है, ऐसा मानना महामिथ्यात्व है। अजीव की पर्याय जीव से होती है, ऐसा मानना महामिथ्यादृष्टि है। सूक्ष्म बात है, भाई! इसके लिये तो यह भगवान सर्वज्ञ द्रव्य उसे कहते हैं कि उसकी अपनी पर्याय को पावे, या विभावरूप हो, वह द्रव्य का स्वरूप अपना है। पर के कारण से अस्तित्व में बिल्कुल कुछ घालमेल नहीं होती। आहाहा! असत् है न। वास्तव में तो अवस्तु है। देखो! आत्मा की अपेक्षा से सभी चीज़ें अवस्तु है, अद्रव्य है। आहाहा! भारी कठिन।

लो, आत्मा खाये, आत्मा पीये, आत्मा बोले, सब मिथ्यादृष्टि की बात है। कहते हैं कि बोलने की पर्याय जड़ की, उसे आत्मा ने उत्पाद किया, ऐसा माना। अजीव को जीव ने उपजाया। इसकी पर्याय इसने उपजायी। यहाँ तो यह कहा कि उसकी पर्याय सद्भाव पर्याय उसने उपजायी, उसने प्राप्त की है। पर के कारण से पाया है? भारी कठिन काम जगत को सत्य (समझाना कठिन है)। समझ में आया? लो! आत्मा जाने के बाद पलक ऊँची क्यों नहीं होती? वह तो उसके कारण से। जिस समय का उसका उत्पाद, उस उत्पादपने के लक्षणवाला है। पहला उत्पाद लक्षण दूसरा था और बाद का उत्पाद लक्षण दूसरा है। समझ में आया? वह आत्मा के कारण है, ऐसा नहीं है। गजब काम।

अस्तिपने मान्यता सत् की अस्तित्व की श्रद्धा में अन्तर है, कहते हैं। जैसा स्वरूप अस्तिरूप है, उस प्रकार से न माने और दूसरे प्रकार से माने, वह विपरीत मिथ्यात्व और विपरीत अभिप्राय है। उसका महापाप है। मिथ्यात्व जैसा कोई महापाप नहीं है। आहाहा!

आया था न?

मुमुक्षु : वहाँ पंचास्तिकाय है, उसका क्या अर्थ करते होंगे?......

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ वे जो करते हों वह। यह तुमने सुना हो, अपने को कहाँ खबर है। हम कहीं गये नहीं। नहीं, उसमें नहीं थे। स्थानकवासी में कहाँ करते हैं? यह बात तो वाँचन नहीं होती। यह पढ़ते नहीं। है एक बात अट्ठाईसवें अध्ययन में बात है। परन्तु वह कोई कुछ पढ़ता नहीं। उसका विस्तार नहीं करते। ऐसा है अट्ठाईस में, कि प्रत्येक गुण एक दव्यसीय गुणाने प्रत्येक द्रव्य। द्रव्य के आश्रय से गुण है। और गुण द्रव्य के आधार से है। पर्याय का लक्षण अट्ठाईसवाँ अध्ययन है। उत्तराध्ययन। द्रव्य और गुण के आश्रय से पर्याय है। ऐसा वहाँ पाठ है। वहाँ पाठ तो ऐसा है परन्तु चला आता होगा इसलिए ले लिया। वापस वहाँ उसका अर्थ ऐसा करने लगे, ऐई दूसरी गड़बड़-गड़बड़।

आसवो दव्वम्। यह गाथा है। गुणानन्द २८वीं गाथा है। २८वाँ उत्तराध्ययन मोक्षमार्ग उत्तरार्धन में २८वाँ अध्ययन है। यह छठवीं गाथा है। गुणाणं आसो दवम, एक दवस्या गुणा। गुण का आधार द्रव्य है और द्रव्य के आधार से गुण रहे हैं। 'लखणं पज्वाणंतु' और उसकी अवस्था का लक्षण 'उभो असियाभवे' वह द्रव्य और गुण के आश्रय से वह पर्याय होती है। उसमें ऐसा कहा है परन्तु वापस माने ऐसा। और (वापस) माने ऐसा कि आत्मा बिना कुछ पलक हिले? परन्तु यह क्या कहा? पलक के परमाणु हैं, उस पलक का एक परमाणु उसके वर्ण, गन्ध के आश्रय से है। वह वर्ण, गन्ध परमाणु के आश्रय से है। और वह पलक की पर्याय होती है, वह द्रव्य-गुण के आश्रय से होती है। पर के आश्रय से नहीं होती। यह तब कहते थे। इसका अर्थ करते न, इसमें से न समझे फिर इसमें से कहे।

देखो, इसमें क्या कहा है? कहा, इसमें क्या कहा है? माणिकचन्द भाई ने पढ़ा है। पढ़ा है समयसार? कहा, यह पढ़ते हो? कहा, यह छठवीं गाथा नहीं यह उसका विस्तार है। समयसार से तो भड़के। अभी वहाँ मुम्बई में थोड़ा समयसार चला था न? विवाद चला था। समयसार कैसे पढ़ा जाता है? उन स्थानकवासी ने पढ़ा था। भड़के बेचारे। नहीं तो इस शब्द में स्पष्ट है, देखो। प्रत्येक पदार्थ 'गुणाणं आसो दवम'। आत्मा के ज्ञान दर्शन

आनन्द के गुण का आश्रय द्रव्य है। उस गुण का आश्रय कोई पर है, ऐसा नहीं है। और 'एक दवस्या गुणा' एक-एक द्रव्य के आश्रय से गुण रहे हुए हैं। दो।

अब पर्याय का लक्षण। 'लखणं पज्वाणंतु'। इसका अर्थ हमारे वीरजीभाई दूसरा करते थे। चले गये कान्तिभाई? 'लखणं पज्वाणंतु' पर्याय, वह लक्षण है। पहले ८२ के वर्ष में जामनगर गये थे, वहाँ मिले तब ऐसा अर्थ करते थे। पर्याय है, वह लक्षण है। ऐसा नहीं है। तब? 'लखणं पज्वाणंतु' पर्याय का लक्षण यह है कि... फिर खबर न हो। पहले ८२ के वर्ष में जामनगर गये न, तब वीरजीभाई के साथ बात हुई। पर्याय का लक्षण यह है कि ऐसी पर्याय, वह उसका लक्षण है, वे ऐसा कहते। पर्याय उसका लक्षण है, ऐसा। द्रव्य गुण का पर्याय लक्षण है। ऐसा उसका अर्थ करते थे। ऐसा नहीं, कहा। ८२ के वर्ष की बात है। कितने वर्ष हुए? ४६। ८२ के वर्ष। वीरजीभाई का बहुत वांचन था जामनगर। ऐसा नहीं तब? 'लक्षणं पजवाणंतु' पर्याय का लक्षण यह है कि पर्याय लक्षण है, ऐसा नहीं। पर्याय का लक्षण यह है कि 'ऊभो असिया भवे' द्रव्य और गुण के आश्रय से पर्याय हो, वह उसका लक्षण है। पर के आश्रय से पर्याय हो, ऐसा है नहीं। परन्तु कौन पढ़ता है? समझे नहीं और ऐसा का ऐसे दिये जाये। समझ में आया? लो।

टीका :- यहाँ सत्ता को और द्रव्य को अर्थान्तरपना (भिन्न पदार्थपना, अन्य पदार्थपना) होने का खण्डन किया है। है न? प्रत्येक आत्मा और अनन्त आत्मायें हैं, भगवान ने कहे हैं। अनन्त परमाणु हैं। प्रत्येक में सत्ता नाम का गुण है। और द्रव्य को और उस सत्ता को अर्थान्तरपना-अन्य पदार्थपना नहीं है। वस्तु और वस्तु का गुण अन्य पदार्थरूप नहीं है। सत्ता और द्रव्य दोनों एकमेक हैं। द्रव्य पृथक् रहे और सत्ता पृथक् रहे, ऐसा नहीं है। वह भिन्न पदार्थपना है, उसका इसमें खण्डन किया है। है न? संस्कृत में है।

उन-उन क्रमभावी और सहभावी सद्भावपर्यायों को.... देखो! यहाँ उसे-सहभावी गुणों को लिया। **अर्थात् स्वभाव विशेषों को....**

मुमुक्षु : पर्याय समाहित कर ली।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, (पर्याय) समाहित कर ली। **जो द्रवित होता है—प्राप्त होता है—सामान्यरूप स्वरूप से व्याप्त होता है....** लो। आत्मा और एक-एक परमाणु

उसकी क्रम से होती अवस्था और सद्‌भाव रहे हुए गुण उसरूप विशेषभाव, ऐसा। पर्याय अर्थात् विशेष भाव। स्वभाव विशेषों को वह-वह द्रव्य, गुण को पाते हैं और उस-उस पर्याय को पाते हैं। सामान्यरूप स्वरूप से पाते हैं। अपना जो सामान्य स्वरूप है, उसे वह सब अपना स्वरूप है। द्रव्य अपनी पर्याय को और गुण विशेष को पाते हैं। वह द्रव्य है - **इस प्रकार अनुगत अर्थवाली निरुक्ति से द्रव्य की व्याख्या की गई।** अनुगत की व्याख्या नीचे की गयी द्रु धातु को अनुगत, वह तो नीचे संस्कृत है। धातु का अर्थ है। समझ में आया ? आहाहा !

घड़ीक में पर्याय में पक्षपात हो इसे। कहते हैं कि इस सम्बन्ध की पर्याय, उसे परमाणु परिणमता है। आत्मा के कारण कुछ है नहीं। कर्म के कारण नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। कर्म दूसरी चीज़ है, यह दूसरी चीज़ है। इसलिए इसमें रोग होना, वह उत्पाद और परमाणु की पर्याय, वह परमाणु स्वयं उसे पाता है। कर्म के कारण रोग की पर्याय पाता है, ऐसा है नहीं। भारी कठिन बात। पैसे आते होंगे वह पुण्य के कारण आते होंगे न ? या कर्म के कारण ? यहाँ तो ममता आवे न कि मेरे पास है, ऐसी। नजदीक आवे न, नजदीक। ऐसे यह थाणा में जाये और बैठे तो खबर पड़े कि यह भगवानजीभाई का है। क्या कहलाता है वह ? मशीन। प्लास्टिक की मशीन, ऐसा कहलाता है या नहीं ? कहो। पेट्रोल-बेट्रोल किसी का नहीं, ऐसा कहते हैं। वह परमाणु की पर्याय है। उस फैक्ट्री की पर्याय को परमाणु पहुँचते हैं। भगवानजीभाई का आत्मा वहाँ नहीं पहुँचता है।

इस प्रकार स्वतन्त्र जगत की पर्याय का करनेवाला वह द्रव्य है। दूसरे के कारण से नहीं। ऐसा सत्य रीति से स्वीकार करे तो इसकी पर्यायदृष्टि टलकर द्रव्यदृष्टि हो। क्योंकि पर्याय जहाँ मुझसे होती है, फिर पर से नहीं तो मेरा द्रव्य तो ध्रुव अनन्त आनन्द का कन्द है। उस पर दृष्टि हो तो उसे सम्यग्दर्शन हो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

धारावाही प्रवचन नं. १७ (प्रवचन नं. १६), गाथा-९, १०
दिनांक - ३०-११-१९६९, कार्तिक कृष्ण ७, रविवार

पंचास्तिकाय ९वीं गाथा। जरा सूक्ष्म विषय है। सत् का स्वरूप है। यह आत्मा है और यह परमाणु हैं, इन प्रत्येक में अस्तित्व नाम का-होनेपने नाम का एक गुण है। इसलिए होनेपने के गुण में बहुत लक्षण पहले वर्णन किये। वे सब लक्षण जितने अस्तित्व में हैं, उतने ही द्रव्य में हैं। समझ में आया?

यह आत्मा है न, आत्मा। यह परमाणु हैं, यह सब भिन्न-भिन्न अस्तित्व है। कहो, बराबर है यह। अब आत्मा में और प्रत्येक परमाणु में एक अस्तित्व नाम की शक्ति अर्थात् अस्तित्वगुण है। वह गुण है, वह गुणी द्रव्य से नाम लक्षण से कथंचित् भिन्न है। वस्तु से भिन्न नहीं। इसलिए कहते हैं कि सत् के जितने लक्षण वर्णन किये, देखो! यहाँ आता है। **यद्यपि लक्ष्यलक्षण भावादिक द्वारा द्रव्य को सत्ता से कथंचित् भेद है....** होनेपने का अस्तित्व यह लक्षण है और द्रव्य, वह लक्ष्य है। उस अस्तित्व के गुण द्वारा यह वस्तु है, ऐसा लक्ष्य में आता है। पर का अस्तित्व है, इसलिए आत्मा लक्ष्य में आता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

अर्थात् कि यह प्रतिकूल संयोग हैं, इसलिए मैं दुःखी हूँ—ऐसा दुःख का अस्तित्व पर की प्रतिकूलता के कारण नहीं है। समझ में आया? अब यह क्या होता है, देखो! ऐई भगवानजीभाई! पर की प्रतिकूलता शरीर में रोग है, निर्धनता है - ऐसा अस्तित्व पर में है, इसलिए मैं दुःखी हूँ, तो भगवान कहते हैं कि वह तेरी मान्यता एकदम भ्रम और अज्ञान है। पर के अस्तित्व के कारण तुझमें दुःख का होनापना, ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : विपरीत मान्यता....

पूज्य गुरुदेवश्री : हें? तेरी मान्यता विपरीत पाप की मान्यता है। ऐसे पर की अनुकूलता हो तो हम सुखी हैं-सुख है, यह मान्यता अज्ञानी का भ्रम है। क्योंकि पर के अस्तित्व के कारण आत्मा में अस्तित्व की पर्याय / अवस्था या गुण है नहीं। गये लगते हैं। भाई! समझ में आया? क्या कहा? यह तो मूल तत्त्व की बात है। ऐसा माने कि हम

हैं और यह परवस्तु भी है। अब परवस्तु अनुकूल है, ऐसा अज्ञानी मानता है और इसलिए हम सुखी हैं, ऐसी जो कल्पना है, वह एकदम मिथ्याभ्रम अज्ञान की कल्पना है। परवस्तु के अस्तित्व के कारण तूने सुखी की कल्पना की, यह मान्यता एकदम झूठी बात है। समझ में आया?

और परवस्तु की प्रतिकूलता अर्थात् कि शरीर में रोग, निर्धनता, कुंवारापन, विधुरपन, मकानरहितता, वस्त्ररहितता, ऐसी चीज़ और संयोग है, इसलिए हम दुःखी हैं। अज्ञानी को भगवान कहते हैं कि तेरी दृष्टि में मिथ्यात्व है। झूठापन है। पर के अस्तित्व के कारण तू दुःखी है, ऐसा है नहीं। रवजीभाई! बराबर होगा यह? यह दुनिया तो सब ऐसा सच्चा मानती है। पहला सुख वह निरोगी काया, ऐसा नहीं कहते? आता है या नहीं? हें? मिथ्यात्व की भ्रमणा की बात है। दूसरा सुख घर में चार पुत्र, तीसरा सुख सुकुल की नारी और चौथा सुख कोठी में अनाज। अब वह तो परवस्तु हुई। चारों पर हुई। पर के अस्तित्व के कारण मैं सुखी हूँ, अज्ञान से सुखी, हो। वह भी इसका नहीं, ऐसा कहते हैं।

आनन्द को भूलकर तेरी सत्ता में तेरी कल्पना उठी है। भगवान आत्मा तो आनन्द का धाम है। उसका अस्तित्व आनन्द में आत्मा का है। और पर्याय में भी अस्तित्व है, वह उसके कारण से है। तब दुःख की कल्पना स्वयं के कारण से स्वयं के अस्तित्व में आनन्द को भूलकर हुई है। परवस्तु की अनुकूलता है, इसलिए सुख है, इस मान्यता में विपरीत अभिप्राय—मिथ्यात्वभाव है। वह मिथ्यादृष्टि जीव है, उसे जैनपने की श्रद्धा नहीं है। समझ में आया? कहो, भीखाभाई! क्या करना इसमें?

मुमुक्षु : क्या करना, भगवान कहे, वह करना दूसरा कुछ नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इन हीराभाई के साथ ऐसा वहाँ हो भाई-भाई करे। आहाहा!

यह बात यहाँ सिद्ध करते हैं। समझ में आया? कि यह परमाणु हैं और इन परमाणुओं के अस्तित्व में विकृत अवस्था हुई, इसलिए आत्मा ऐसा मानता है कि मैं उसके कारण दुःखी हूँ, अत्यन्त झूठ बात है। अपना सत् पर से भिन्न नहीं माना है। पर के कारण दुःखी हूँ, माना, इसलिए पर को स्वयं ने एक माना है। दो की भिन्नता का इसे ज्ञान नहीं है। बराबर होगा? गजब बात, भाई! तो कहते हैं कि जैसा अपना अस्तित्व है, वैसा पर का

अस्तित्व उसके कारण से है। उस प्रत्येक अस्तित्व में और उसके अस्तित्व का गुण और अस्तिवाला पदार्थ कथंचित् किस प्रकार से नाम लक्षण से भेद है। तो भी पारमार्थिकद्रव्य से सत्ता अपृथक् ही है। उसके अस्तित्व से आत्मा, परमाणु में अस्तित्व से परमाणु भिन्न नहीं है। जैसे दूसरी चीज़ भिन्न है, आत्मा के अस्तित्व से (जैसे) दूसरे अस्तित्व द्रव्य भिन्न हैं, वैसे परमाणु में अस्तित्व से आत्मा आदि का अस्तित्व भिन्न है, वैसे आत्मा के अस्तित्व के गुण से आत्मा भिन्न नहीं, ऐसा। इस प्रकार से भिन्न नहीं है। समझ में आया ? अरे ! गजब बात।

परमेश्वर तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा केवलज्ञानी ने देखे हुए यह तत्त्व इस प्रकार से अस्तिरूप से टिक रहे हैं। बराबर है ? लो। कर सके नहीं, उसके कारण कुछ होता नहीं। कर सकने का अभी यहाँ नहीं है। यहाँ तो उसके अस्तित्व से यहाँ अस्तिपना हो, ऐसा नहीं है। इतनी बात अभी है। कर्ता-कर्म में इतनी बात है। समझ में आया ? पहले यह शरीर अच्छा हो, निरोगी हो तो धर्म कर सकते हैं। यह बात ऐसा कहते हैं कि झूठी है। क्योंकि शरीर है, वह जड़ है। रजकण हैं, अजीव है। उसके अस्तित्व की अनुकूलता के कारण, तुझे धर्म हो, यह बात एकदम मिथ्यादृष्टि की है। और प्रतिकूल हो घड़ ऐसे बैठती न हो, ऐसे बैठना हो तो बैठ नहीं सके, ऐसी जड़ की शक्ति हो तो हमें धर्म होगा नहीं। यह बात झूठी है, ऐसा कहते हैं। उसके अस्तित्व में कुछ हो, उसमें तेरे अस्तित्व में वह कहाँ से घुस गया ? समझ में आया ? प्रवीणभाई ! गजब बात भाई यह।

कहते हैं कि **ऐसा मानना। इसलिए पहले (आठवीं गाथा में) सत्ता को जो सत्पना,....** कहा था 'है, वह है' और पर की अपेक्षा से वह नहीं। असत्पना कहा था। ऐसे द्रव्य को भी ऐसा मानना। वस्तु स्वयं अपने से है और पर से नहीं। ऐसा त्रिलक्षणपना कहा था। सत्ता-अस्तित्व में तीन लक्षण। नयी अवस्था उपजे, पुरानी व्यय और ध्रुव—तीन लक्षण से अस्तित्व-सत्ता नाम के गुण को कहा था, वैसा जो गुण का धारक आत्मा और गुण का धारक परमाणु, उसे भी तीन लक्षणवाला जानना। अरे ! गजब बात, भाई ! समझ में आया ?

अस्तित्व नाम का जो आत्मा में गुण है, उसके परमाणु जड़ में अस्तित्वपना उस

गुण में तीन लक्षण वर्णन किये थे। प्रत्येक पदार्थ अस्तिरूप है, और नयी अवस्था उपजे, पुरानी अवस्था जाये और ध्रुवपने कायम रहे। ऐसे सत्ता के जो तीन लक्षण जो वर्णन किये थे, वे लक्षण हैं और सत्ता, वह लक्ष्य है। ऐसे ही द्रव्य के तीन लक्षण जानना। यह उत्पाद, व्यय और ध्रुव जैसे अपने हैं, वैसे द्रव्य में भी तीन हैं। समझ में आया?

आत्मा में नयी अवस्था उपजना, पुरानी अवस्था जाना और ध्रुव। ऐसे द्रव्य के भी तीन लक्षण हैं। जैसे अस्तित्व के-गुण के तीन लक्षण कहे थे और वे लक्षण और सत्ता लक्ष्य। अब यहाँ तीन लक्षण द्रव्य के और द्रव्य लक्ष्य। हें? सत्ता के लक्षण ऐसे द्रव्य के लक्षण हैं। अत्रिलक्षणपना। देखो, जैसे सत्ता को एक-एक लक्षण भिन्न किया था, वैसे इस द्रव्य में भी एक-एक लक्षण भिन्न करना। तीन लक्षण हैं, वह महासत्तारूप से और एक-एक लक्षण है, वह अवान्तरसत्तारूप से। परन्तु वह एक-एक सत्ता भी जैसी गुण में ली थी उत्पाद, व्यय और ध्रुव, वैसे द्रव्य में भी उत्पाद, व्यय और ध्रुव एक-एक लक्षणवाली सत्ता उतारना।

वीतरागमार्ग सूक्ष्म है, भाई! शाम सवेरे उस मांगलिक में बोलते हैं न, केवलीपणंत्तो धम्मो शरणं, परन्तु समझे नहीं कुछ? अंक पहाड़े बोले जाये। समझ में आया? केवली भगवान ऐसा कहते हैं कि तेरा शरण तेरे अन्दर में तेरे पास है। तेरी पर्याय में जो दुःख आदि की कल्पना होती है, वह तेरे अस्तित्व में तेरे कारण से, द्रव्य के पर्याय के लक्ष्य के कारण होती है। समझ में आया? पर के कारण से नहीं। आहाहा!

परन्तु भाई यह सब पैसेवाले बड़े गिनायें, वे सुखी कहलायें। फिर उसे भाई जवानी में पहले पैसेवाले थे और यह वृद्धावस्था होकर वह सब गया। जवानी में जो पैसे थे न, तो उस समय नहीं था कौन कह सकता है। बहुत ऐसे इसलिए। और वृद्धावस्था में प्रतिकूल संयोग आया, अब क्या होगा, ऐसा कहते हैं। इसमें कितनी बात सत्य होगी? हें? भाई जवानी में यदि प्रतिकूलता आयी होती तो उस समय सहन करने की ताकत थी। जवान शरीर के कारण। अरे! वृद्धावस्था में आ पड़े। अरे! घर में स्त्री मर गयी। यह कल पत्र आया है न? कल किसी का बड़ा (पत्र) आया है। किसी ने दावा किया है। मेरे पर डाला है कि तुम्हारे लोग हैं न वे, उन्हें यदि नहीं समझाओ तो मर जाऊँगा तो तुमको पाप लगेगा।

यह दु:ख का जला जहर ऐसा बोले। उसमें कुछ नहीं। ऐई! वह पत्र आया था। तुम्हारा एक व्यक्ति है, उसने हमारे पर दावा किया है। और मेरे पास कुछ नहीं है। मैं एक हूँ, स्त्री मर गयी है। लड़के छोटे हैं। अभी कमा-खाने का साधन नहीं है। दु:खी... दु:खी हैं। अब यदि तुम उसमें उसे नहीं समझाओ और कुछ हो तो हम मरेंगे तो पाप तुम्हें लगेगा। अपने तो अभी पहिचानते भी नहीं, कौन है बेचारा। दु:खी व्यक्ति है। आहाहा! तेरे ऊपर किसी ने दावा किया, वह भले यहाँ का कहीं का व्यक्ति हो, उस दावा से तुझे न छोड़े, मर जाये, उसमें उसे क्या परन्तु? परन्तु यह ऐसी अनादि की टेव अज्ञानी को पड़ी हुई है। रामजीभाई! हें? आहाहा!

कहते हैं, लो, **अत्रिलक्षणपना...** एक-एक आत्मा में समय-समय में उत्पाद, व्यय और ध्रुव हो, उन तीन लक्षणवाला द्रव्य है, वही द्रव्य एक-एक लक्षणवाला भी है। उपजना, वह उपजनेरूप। उपजनेरूप से दु:ख की कल्पना खड़ी हुई। पूर्व की अवस्था जो थी वह गयी, व्ययरूप से। ध्रुवरूप से तो आनन्दमूर्ति आत्मा है ही। समझ में आया?

ऐसा **एकपना, अनेकपना,....** जैसे सत्ता में एकपना लिया था। एकरूप सत्ता है। सब है... है... है... ऐसा। और अन्तर्भेदरूप से सब भिन्न-भिन्न है। ऐसे द्रव्य भी वस्तु रूप से एक है और अन्तर्भेदरूप से गुण-पर्याय भी उसके अनेक हैं, ऐसा लेना। **सर्वपदार्थस्थितपना,....** यह पूरा आत्मा सब गुण-पर्याय में स्थित है। **एकपदार्थस्थितपना,....** एक-एक गुण में, एक-एक पर्याय में स्थित है। **विश्वरूपपना,....** पूरा विश्वस्वरूप समस्तरूप पूरा उस रूप से भी आत्मा है। और **एकरूपपना,....** एक-एक पर्याय और एक-एक गुणपने, ऐसा भी है। **अनन्तपर्यायमयपना....** पूरी आत्मा की अनन्त अवस्थायें हैं, वे भी हैं और एक-एक अवस्था भी उसमें भी है। **वह सब सत्ता से अनर्थान्तरभूत (—अभिन्नपदार्थ-भूत, अनन्यपदार्थभूत) द्रव्य को ही देखना....** इस सत्ता से द्रव्य को अन्य नहीं, ऐसा देखना। समझ में आया?

यह तो ज्ञान का विषय ऐसा है। बापू! सूक्ष्म वस्तु है। जैसा सत्ता के अस्तित्व के लक्षण वर्णन किये थे, वैसे ही लक्षण द्रव्य के जानना। क्योंकि द्रव्य और सत्ता अर्थान्तर नहीं। पदार्थान्तर नहीं। सत्ता नाम का गुण, वह अन्य है और द्रव्य अन्य है—ऐसा नहीं है।

जैसी अन्य वस्तु अन्य है, वैसे सत्ता और द्रव्य के बीच अर्थान्तर अर्थात् अन्य द्रव्यपना नहीं है। अन्य पदार्थपना नहीं है। समझ में आया?

हाँ, द्रव्य को देखना लो, सत्ता के विशेष द्रव्य के ही हैं। **इसलिए उनमें (-उन सत्ता के विशेषों में) कोई सत्ताविशेष शेष नहीं रहता....** लो। सत्ता का कोई अंश द्रव्य से बाकी भिन्न रहता है, ऐसा नहीं है। कि जो सत्ता की वस्तु से द्रव्य से पृथक् स्थापित करे। अपना भगवान अपने में है; परमाणु, परमाणु में है; दूसरे आत्मायें दूसरे आत्मा में है। किसी को कुछ लेना-देना नहीं है।

इस प्रकार आत्मा में भी अस्तित्व नाम का जो गुण है, उसे और उसे दूसरे को कुछ अस्तित्वपने सम्बन्ध नहीं है, ऐसा नहीं है। अस्तित्व और वस्तु का अन्य पदार्थपना है, ऐसा अन्य पदार्थरूप नहीं। नाम भेद से लक्षणभेद से भेद हो परन्तु वस्तु तो अस्तित्व है, वही आत्मा। परमाणु में भी जो अस्तित्व है, वही परमाणु। यह रजकण। समझ में आया? अस्तित्वगुण है न? यह सत्ता कहो या अस्तित्वगुण कहो। कहो, समझ में आया? लड़के को सिखाते हैं, नहीं? पहला गुण है? ऐई! कहाँ गया? खूशबू! अस्तित्वगुण आता है या नहीं? छह गुण नहीं आते? अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व यह। तो अस्तित्व, वह सत्ता, अस्तिपने गुण है।

प्रत्येक पदार्थ अस्तिपने के गुणवाला है। उसे अस्तित्व के लिये दूसरे के आश्रय की आवश्यकता नहीं है। अस्तित्व का गुण अस्तिरूप रखे, ऐसा उसमें गुण है। पर के कारण से अस्तित्व रहे, ऐसा आत्मा में गुण नहीं है। यह तो बात पहले से की है। हें? पर के कारण अस्तित्व नहीं है। तो पर के कारण मैं सुखी, ऐसा आया कहाँ से परन्तु? यह बात तो कहने के लिये यह तत्त्व लिया है। कहो, यह स्त्री अनुकूल हो, रोटियाँ, दाल, भात, अनुकूल हो, लड़के अनुकूल हो, पैसा अनुकूल हो तो जरा श्वास लेने का प्रसंग आवे। बहुत सुखी होने का (प्रसंग आवे)। मूढ़ है, कहते हैं। मिथ्यात्वभाव को सेवन करता है। पर के अस्तित्व के कारण तुझे में अस्तित्व नया आया? तेरा अस्तित्व तुझसे हुआ है। समझ में आया? दुःख की कल्पना की है कि मैं दुःखी हूँ, यह है। हाय! अब मर जाऊँगा। बाहर में किसे मुँह दिखाना? घर के मकान बेच खाये और सन्दूक में माल था, उसे बेच

खाये और आवक नहीं। क्या कहलाता है ? समझे न ? ताँबा, पीतल की बड़ी मटकी होती है न ? मटकी और वह सब होते हैं न ? यह गरीब व्यक्ति फिर धीरे-धीरे बेचे। उसे बेचे फिर बर्तन पीतल के अच्छे अधिक हों, उन्हें बेचे। जरूरत हो उतने रखे और बाकी के बेच डाले और खाये। परन्तु कुछ नहीं हो फिर क्या करना ? आहाहा!

कहते हैं कि पर का अस्तित्व है या अस्तित्व तेरा तुझमें है ? पर के अस्तित्व का अभाव तेरे पास हुआ, इससे तुझमें क्या अन्तर पड़ा ? क्या होगा इसमें, जादवजीभाई ! पैसा-बैसा कुछ ठीक हो तो ठीक पड़ता नहीं लगता ? लगता है न ! भगवान कहते हैं कि तेरी मान्यता अत्यन्त भ्रम और अज्ञान है। तेरे अस्तित्व में कुछ फेरफार पर के अस्तित्व के कारण से हो, पर के उत्पाद-व्यय के कारण से तुझमें सुख-दुःख की कल्पना का उत्पाद हो, ऐसा है नहीं। आहाहा ! गजब बात, भाई ! यह तो तत्त्व की श्रद्धा की विपरीत श्रद्धा है, ऐसा कहते हैं। और तत्त्वार्थ श्रद्धा की विपरीत श्रद्धा, वही मिथ्यात्वभाव और महादुःखदायी भाव है। उसकी इसे खबर नहीं पड़ती और व्रत, तप, यह और वह सिरपच्ची किया करता है। समझ में आया ?

कोई सत्ता विशेष बाकी नहीं रहती, ऐसा। कोई सत्ता का भाग विशेष द्रव्य से पृथक् नहीं रहता। जिससे सत्ता को वस्तुतः द्रव्य से पृथक् स्थापित करे। नौ (गाथा) हो गयी। लो, अब दसवीं।

गाथा - १०

दव्वं सल्लक्खणियं उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं।
गुणपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू।।१०।।

द्रव्य सल्लक्षणकं उत्पादव्ययध्रुवत्वसंयुक्तम्।
गुणपर्यायाश्रयं वा यत्तद्भणन्ति सर्वज्ञ:।।१०।।

अत्र त्रेधा द्रव्यलक्षणमुक्तम्।

सद्द्रव्यलक्षणम्। उक्तलक्षणाया: सत्ताया अविशेषाद्द्रव्यस्य सत्स्वरूपमेव लक्षणम्। न चानेकान्तात्मकस्य द्रव्यस्य सन्मात्रमेव स्वं रूपं यतो लक्ष्यलक्षणविभागाभाव इति। उत्पादव्ययध्रौव्याणि वा द्रव्यलक्षणम्। एकजात्यविरोधिनि क्रमभुवां भावानां संताने पूर्वभावविनाश: समुच्छेद:, उत्तरभावप्रादुर्भावश्च समुत्पाद:, पूर्वोत्तरभावोच्छेदोत्पादयोरपि स्वजातेरपरित्यागो ध्रौव्यम्। तानि सामान्यादेशादभिन्नानि विशेषादेशाद्भिन्नानि युगपद्भावीनि स्वभावभूतानि द्रव्यस्य लक्षणं भवन्तीति। गुणपार्याया वा द्रव्यलक्षणम्। अनेकान्तात्मकस्य वस्तुनोऽन्वयिनो विशेषा गुणा व्यतिरेकिण: पर्यायास्ते द्रव्ये यौगपद्येन क्रमेण च प्रवर्तमाना: कथञ्चिद्भिन्ना: कथञ्चिदभिन्ना: स्वभावभूता: द्रव्यलक्षणतामापद्यन्ते। त्रयाणामप्यमीषां द्रव्यलक्षणानामेकस्मिन्नभिहितेऽन्य-द्भयमर्थादेवापद्यते। सच्चेदुत्पादव्ययध्रौव्यवच्च गुणपर्यायवच्च। उत्पादव्ययध्रौव्यवच्चेत्सच्च गुणपर्यायवच्च। गुणपर्यायवच्चेत्सच्चोत्पादव्ययतध्रौव्यवच्चेति। सद्धि नित्यानित्यस्वभावत्वाद्ध्रुवत्व-मुत्पादव्ययात्मकतांच प्रथयति, ध्रुवत्वात्मकैर्गुणैरुत्पादव्ययात्मकै: पर्यायैश्च सहैकत्वञ्चाख्याति। उत्पादव्ययध्रौव्याणि तु नित्यानित्यस्वरूपं परमार्थं सदावेदयन्ति, गुणपर्यायांश्चात्मलाभनिबन्धनभूतान् प्रथयन्ति। गुणपर्यायास्त्वन्वयव्यतिरेकित्वाद्ध्रौव्योत्पत्तिविनाशान् सूचयन्ति, नित्यानित्यस्वभावं परमार्थं सच्चोपलक्षयन्तीति।।१०।।

सद् द्रव्य का लक्षण कहा उत्पाद व्यय ध्रुव रूप वह।
आश्रय कहा है वही जिन ने गुणों अर पर्याय का।।१०।।

अन्वयार्थ :- [यत्] जो [सल्लक्षणकम्] 'सत्' लक्षणवाला है, [उत्पादव्ययध्रुवत्वसंयुक्तम्] जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य संयुक्त है [वा] अथवा [गुणपर्यायाश्रयम्] जो गुण-पर्यायों का आश्रय है, [तद्] उसे [सर्वज्ञा:] सर्वज्ञ [द्रव्यं] द्रव्य [भणन्ति] कहते हैं।

टीका :- यहाँ तीन प्रकार से द्रव्य का लक्षण कहा है।

'सत्' द्रव्य का लक्षण है। पूर्वोक्त लक्षणवाली सत्ता से द्रव्य अभिन्न होने के कारण 'सत्' स्वरूप ही द्रव्य का लक्षण है। और अनेकान्तात्मक द्रव्य का सत्मात्र ही स्वरूप नहीं है कि जिससे लक्ष्यलक्षण के विभाग का अभाव हो। (सत्ता से द्रव्य अभिन्न है इसलिए द्रव्य का जो सत्तारूप स्वरूप वही द्रव्य का लक्षण है। प्रश्न :- यदि सत्ता और द्रव्य अभिन्न है-सत्ता द्रव्य का स्वरूप ही है, तो 'सत्ता लक्षण है और द्रव्य लक्ष्य है'-ऐसा विभाग किस प्रकार घटित होता है? उत्तर :- अनेकान्तात्मक द्रव्य के अनन्त स्वरूप हैं, उनमें से सत्ता भी उसका एक स्वरूप है; इसलिए अनन्त स्वरूपवाला द्रव्य लक्ष्य है और उसका सत्ता नाम का स्वरूप लक्षण है-ऐसा लक्ष्यलक्षणविभाग अवश्य घटित होता है। इस प्रकार अबाधितरूप से सत् द्रव्य का लक्षण है।)

अथवा, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्रव्य का लक्षण है। [१]एक जाति का अविरोधक ऐसा जो क्रमभावी भावों का प्रवाह, उसमें पूर्व भाव का विनाश, सो व्यय है; उत्तर भाव का प्रादुर्भाव (-बाद के भाव की अर्थात् वर्तमान भाव की उत्पत्ति) सो उत्पाद है और पूर्व-उत्तर भावों के व्यय-उत्पाद होने पर भी स्वजाति का अत्याग, सो ध्रौव्य है। वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-जो कि सामान्य आदेश से अभिन्न हैं (अर्थात् सामान्य कथन से द्रव्य से अभिन्न हैं), विशेष आदेश से (द्रव्य से) भिन्न हैं, युगपद् वर्तते हैं और स्वभावभूत हैं, वे-द्रव्य का लक्षण हैं।

अथवा, गुणपर्यायें द्रव्य का लक्षण हैं। अनेकान्तात्मक वस्तु के [२]अन्वयी विशेष, वे गुण हैं और व्यतिरेकी विशेष, वे पर्यायें हैं। वे गुणपर्यायें (गुण और पर्यायें)-जो कि द्रव्य में एक ही साथ तथा क्रमशः प्रवर्तते हैं, (द्रव्य से) कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न हैं तथा स्वभावभूत हैं, वे-द्रव्य का लक्षण हैं।

द्रव्य के इन तीनों लक्षणों में से (-सत्, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य और गुण-पर्यायें इन तीन लक्षणों में से) एक का कथन करने पर शेष दोनों (बिना कथन किये) अर्थ से

---

१. द्रव्य में क्रमभावी भावों का प्रवाह एक जाति को खण्डित नहीं करता-तोड़ता नहीं है अर्थात् जाति-अपेक्षा से सदैव एकत्व ही रखता है।

२. अन्वय और व्यतिरेक के लिये पृष्ठ १४ पर टिप्पणी देखिये।

ही आ जाते हैं। यदि द्रव्य सत् हो, तो वह (१) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला और (२) गुण-पर्यायवाला होगा; यदि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला हो, तो वह (१) सत् और (२) गुण-पर्यायवाला होगा; गुण-पर्यायवाला हो, तो वह (१) सत् और (२) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला होगा। वह इस प्रकार :- सत् नित्यानित्यस्वभाववाला होने से (१) ध्रौव्य को और उत्पाद-व्ययात्मकता को प्रकट करता है तथा (२) ध्रौव्यात्मक गुणों और उत्पाद-व्ययात्मक पर्यायों के साथ एकत्व दर्शाता है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य (१) नित्यानित्यस्वरूप [1]पारमार्थिक सत् को बतलाते हैं तथा (२) [2]अपने स्वरूप की प्राप्ति के कारणभूत गुण-पर्यायों को प्रकट करते हैं, [3]गुण-पर्यायें अन्वय और व्यतिरेकवाली होने से (१) ध्रौव्य को और उत्पाद-व्यय को सूचित करते हैं तथा (२) नित्यानित्यस्वभाववाले पारमार्थिक सत् को बतलाते हैं।

भावार्थ :- द्रव्य के तीन लक्षण हैं; सत्, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य और गुण-पर्यायें। ये तीनों लक्षण परस्पर अविनाभावी हैं; जहाँ एक हो, वहाँ शेष दोनों नियम से होते ही हैं।।१०।।

---

१. पारमार्थिक=वास्तविक; यथार्थ; सच्चा। (वास्तविक सत् नित्यानित्यस्वरूप होता है। उत्पाद-व्यय अनित्यता को और ध्रौव्य नित्यता को बतलाता है, इसलिए उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य नित्यानित्यस्वरूप वास्तविक सत् को बतलाते हैं। इस प्रकार 'द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है'-ऐसा कहने से 'वह सत् है' ऐसा भी बिना कहे ही आ जाता है।

२. अपने=उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के। (यदि गुण हो तभी ध्रौव्य होता है और यदि पर्यायें हों तभी उत्पाद-व्यय होता है; इसलिए यदि गुण-पर्यायें न हों तो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अपने स्वरूप को प्राप्त हो ही नहीं सकते। इस प्रकार 'द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है'-ऐसा कहने से वह गुण-पर्यायवाला भी सिद्ध हो जाता है।)

३. प्रथम तो, गुण-पर्यायें अन्वय द्वारा ध्रौव्य को सूचित करते हैं और व्यतिरेक द्वारा उत्पाद-व्यय को सूचित करते हैं; इस प्रकार वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को सूचित करते हैं। दूसरे, गुण-पर्यायें अन्वय द्वारा नित्यता को बतलाते हैं और व्यतिरेक द्वारा अनित्यता को बतलाते हैं;-इस प्रकार वे नित्यानित्यस्वरूप सत् को बतलाते हैं।

गाथा - १० पर प्रवचन

दव्वं सल्लक्खणियं उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं।
गुणपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू।।१०।।

सद् द्रव्य का लक्षण कहा उत्पाद व्यय ध्रुव रूप वह।
आश्रय कहा है वही जिन ने गुणों अर पर्याय का॥१०॥

सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान था। वे सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव ऐसा फरमाते हैं कि प्रत्येक वस्तु है, वह सत् लक्षणवाली है। तीन लक्षण वर्णन किये हैं इसमें। है न?

टीकाः- यहाँ तीन प्रकार से द्रव्य का लक्षण कहा है। प्रत्येक पदार्थ, देखो! यह द्रव्य सत् लक्षणम् यह वर्णन करते हैं। गुण पर्यायवाला और उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला तीन लक्षण है। यह प्रवचनसार में गाथा ९५ में भी आता है न? ९५वीं में भी यही आता है। समझ में आया?

परमात्मा का सिद्धान्त है कि द्रव्य सत् लक्षणम्। यह वस्तु है, आत्मा-परमाणु यह सब भिन्न-भिन्न, उनका लक्षण अस्तित्व है। और अस्तित्व वह लक्षण और द्रव्य है, वह लक्ष्य है। अस्तित्व के लक्षण से द्रव्य है, वह लक्ष्य होता है। पर के अस्तित्व के कारण द्रव्य लक्ष्य होता है, ऐसा है नहीं। चश्मे के कारण दिखता नहीं, यही यहाँ कहते हैं। ऐई! इसके अस्तित्व के कारण आत्मा के अस्तित्व में कुछ कचास हुई, ऐसा नहीं है। यहाँ तो और दूसरा कहना था। कि दूसरी जगह तो ऐसा आता है कि 'ज्ञान लक्षण और आत्मा लक्ष्य।' यह बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो दूसरे सब द्रव्य से एक-एक द्रव्य भिन्न, उसके लक्षण और लक्ष्य का वर्णन है। आहाहा! समझ में आया?

वरना तो आत्मा जहाँ ज्ञान लक्षण है, आत्मा लक्ष्य है। वह तो ज्ञान लक्षण से ज्ञान को अर्थात् आत्मा को पहिचानना। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि जो आत्मा है और परमाणु भिन्न-भिन्न जो अनन्त आत्मायें, उनका अस्तित्व सत् लक्षण निशान / चिह्न है। और अस्तित्व के लक्षण द्वारा वह चीज़ है, ऐसा लक्ष्य में ज्ञान हो सकता है। समझ में आया?

भारी काम भाई!

एक यह कहा। दूसरा, उत्पादव्ययध्रौव्यसंयुक्त अन्वयार्थ में लेना। प्रत्येक वस्तु आत्मा और परमाणु एक समय में नयी अवस्था से उपजती है, पुरानी अवस्था से व्यय होती है और ध्रुव। तीन लक्षणवाला सत् है और सत् है, वह द्रव्य है। लो, यहाँ तो उत्पाद को लक्षण वर्णन किया, द्रव्य को लक्ष्य। व्यय को लक्षण वर्णन किया, द्रव्य को लक्ष्य। ध्रौव्य को लक्षण वर्णन किया, द्रव्य को लक्ष्य। वीतराग का मार्ग सम्यग्ज्ञान का समझना, बहुत सूक्ष्म है, भाई! ऊपर से मान लेते हैं न! समझ में आया? ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है। इसने माना है, ऐसा नहीं है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा। क्या कहा?

यह उत्पाद-व्यय-ध्रुववाली चीज़ है। इसलिए ऐसा कहा कि तेरी पर्याय का उत्पाद तुझमें, यह सामने जीव है, उसकी पर्याय का उत्पाद उसमें; सामने परमाणु है, उस परमाणु की नयी अवस्था का उत्पाद उसमें है। तू उसकी दया पालन करेऔर तू उसे मार सके, ऐसी वस्तु की मर्यादा नहीं है। ऐई! दूसरे जीव की हिंसा जीव कर सके, ऐसा वस्तु में नहीं है। क्योंकि उसकी पर्याय का बदलना—उत्पाद-व्यय होना, उसमें है। और तेरी उत्पाद-व्यय पर्याय तुझमें है। और उस उत्पाद-व्यय से तो लक्ष्य द्रव्य होता है। उस उत्पाद-व्यय से पर में कुछ उत्पन्न हुआ, ऐसा लक्षण यह उत्पाद और दूसरे के उत्पाद हैं, वह लक्ष्य, ऐसा नहीं है। क्या कहा, समझ में आया? गजब, यह तो अकेले सब न्याय भरे हुए हैं।

आत्मा में एक दया का विकल्प उठा, वह उत्पाद हुआ। ध्रुव तो त्रिकाली। और पूर्व में कोई हिंसा का भाव हो, वह व्यय हुआ। अभाव (हुआ)। अब वह दया की पर्याय जो उत्पन्न हुई-उत्पाद, वह लक्षण द्रव्य लक्ष्य कराता है। वह द्रव्य का लक्षण है। वह उत्पाद लक्षण और द्रव्य उसका लक्ष्य है। वह उत्पाद हुआ, इसलिए यह इसका उत्पाद हुआ, वह उत्पाद लक्षण और इसका उत्पाद लक्ष्य, इस शुभभाव के कारण वह दया निभ गयी, जीव टिका रहा, ऐसा उत्पाद लक्षण और सामने का उत्पाद लक्ष्य, ऐसा नहीं है। वस्तु तो ऐसी है। इसमें तो अपने थोड़ा-थोड़ा अन्दर से (लेते हैं)। ऐई! आहाहा!

मुनि जंगल में रहकर वीतराग परमेश्वर ने कहे हुए तत्त्वों को किस प्रकार से वह

स्वयं से है और पर से नहीं। पर, पर से है और वह दूसरे से नहीं। ऐसा उसका वस्तु का स्वरूप है। उसमें घोटाला करे, कुछ का कुछ तो मिथ्यात्वपने का सेवन करके चार गति में दु:खी होकर भटकेगा। समझ में आया? क्या कहा? कि जीव में जीव के अपने अस्तित्व में दया का विकल्प आया, वह उत्पाद हुआ। वह उत्पाद लक्षण है और द्रव्य लक्ष्य है। इस द्रव्य का यह उत्पाद है। परन्तु यह दया का विकल्प उठा, वह लक्षण और सामने के जीव की अवस्था टिकी रही, उसका जीवन (टिका रहा) यह उसका लक्ष्य, कहते हैं, ऐसा वस्तु में है ही नहीं। आहाहा! यह तो ऐसा बताते हैं कि जीव द्रव्य है, उसका लक्ष्य यह लक्षण कराता है। परन्तु यह लक्षण पर में कुछ अवस्था निभ रही, ऐसा जो तूने माना है, वह लक्षण यह और लक्ष्य यह, ऐसा नहीं है। कहो, बाबूभाई! समझ में आया इसमें? ऐई प्रभुभाई! ऐसा वहाँ सूक्ष्म है। अरे! व्यापार में मारे ऐसे गप्प और धोखा मारे कि मानों मिथ्यात्व सब। आहाहा!

परमेश्वर ने कहा, इसलिए पाठ में देखो सर्वज्ञ कहा। सर्वज्ञ परमेश्वर ने तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा ने ऐसा वर्णन किया है और ऐसा है कि आत्मा में एक झूठ बोलने की पर्याय उत्पन्न हुई, इसलिए झूठ बोलने की भाषा हुई, ऐसा नहीं है। भाई! झूठ बोलने का विकल्प हुआ, वह उत्पाद, वह उत्पाद द्रव्य को लक्ष्य कराता है। इस द्रव्य का यह लक्षण है। समझ में आया? परन्तु यह झूठ बोलने का विकल्प उठा, इसलिए भाषा झूठ बोलने की हुई, यह लक्षण और भाषा की पर्याय लक्ष्य, ऐसा नहीं है। छगनभाई! ऐसी बात है। यह तो सब चाबी के कोयडा है। चार पैसे सेर तो मण का ढाई। यह तो ऐसी चीज़ है। भगवान परमेश्वर के घर के महासिद्धान्त हैं, इस प्रकार यह न समझे और उल्टा समझे तो मिथ्या शल्य और दु:खी होगा। समझ में आया?

उत्पाद-व्यय-ध्रुव। दूसरे प्रकार से कहें तो जीव में एक विषय की वासना का विकल्प उठा। वह उत्पाद हुआ। चारित्रगुण की उल्टी विकृत एक अवस्था हुई। तो वह अवस्था लक्षण है और द्रव्य लक्ष्य है। परन्तु वह अवस्था लक्षण है और देह की क्रिया विषय में प्रवर्ते, वह लक्ष्य है, ऐसा नहीं है। देह के परमाणुओं में समय-समय की जो अवस्थायें उत्पन्न होती हैं, वह उत्पाद लक्षण है और परमाणु उसका लक्ष्य है। परन्तु वह

उत्पन्न हो और यहाँ वासना थी, इसलिए वह लक्षण और यह लक्ष्य है, ऐसा कभी वस्तु का स्वरूप वस्तु में नहीं है। कहो, प्रवीणभाई! ऐसा अन्दर में है, हों! ऐई! उसमें ऐसा लिखा है या नहीं? भाई! हम पण्डितजी को नहीं पूछते, बड़े भाई को पूछते हैं। उसमें ऐसा था, होगा? इसमें है? आहाहा! आचार्यों ने बहुत कमाल किया है। कमाल की बात की है। आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर इन्द्र और गणधरों के समक्ष में ऐसा कहते थे। कि भाई! स्वभाव के आश्रय से तुझमें एक सम्यग्दर्शन की-धर्म की पर्याय हुई, लो! समझ में आया? इसलिए बाहर में ऐसी पर्याय के कारण जीव बच जाये, ऐसा नहीं है। वह पर्याय हुई, इसलिए तुझमें शक्ति बढ़ जाये या परमाणु को अच्छा हो जाये, क्या कहा? स्वद्रव्य के आश्रय से धर्म की पर्याय प्रगट हुई, धर्म की पर्याय लक्षण, द्रव्य लक्ष्य आत्मा। परन्तु वह लक्षण प्रगट हुआ, इसलिए उसकी वाणी सुधर जाये, शरीर सुन्दर हो जाये या उसे लक्ष्मी मिल जाये, ऐसा वस्तु में नहीं है। ऐई! भगवानजीभाई! आहाहा! भाई धर्मी को चमत्कार लगता है। लो! यह इनकार किया है। आहाहा! ऐ... भीखाभाई!

यह भगवान आत्मा अपने स्वरूप की प्रतीति का अनुभव सम्यग्दर्शन शुद्ध चैतन्य द्रव्य हूँ। रागादि नहीं, पर में नहीं, पर के कारण मेरी अवस्था नहीं, अवस्था के कारण द्रव्य नहीं। ऐसी द्रव्य—वस्तु की दृष्टि का अनुभव सम्यक् हुआ, इसलिए कहते हैं कि ऐसे धर्मी को, समझ में आया?

बहुत वर्ष पहले (संवत्) १९९० के वर्ष में एक प्रश्न उठा था, नहीं? वह तुम्हारे थे न? डॉक्टर! प्राणभाई कैसे? जामनगर। प्राणजीवन डॉक्टर है न? तब दो हजार वेतन था। सोलह सौ तो तब था। ९० के वर्ष की बात है। महीने में सोलह सौ वेतन था। फिर अन्यत्र से आ गया वहाँ जामनगर डॉक्टरी के लिये जानेवाला था, ऐसा। फिर उसके साढूभाई थे। ऐ! सोलह सौ वेतनवाला (था)। वह मुम्बई में इंजीनियर था। दोनो साढूभाई आये हुए। फिर कहे, मैंने बहुत पढ़ा है, अमुक-अमुक अमुक। कहा, तुम्हारे वाँचन का एक दृष्टान्त दो। तो हमें खबर पड़े कि तुमने सच्चा पढ़ा है या खोटा? यह सब तुम पढ़े हो सही सोलह सौ वेतन न यह धूल का। और वे शामिल, क्या नाम उनका? गौरीशंकरभाई!

चातुर्मास में दशाश्रीमाली में आठ उपवास किये। और फिर जवान नीतिवाले लोग, वे पाँच-पाँच लाख रुपये दे। पुल का काम हो न? पुल ऐसा पास करे और नहीं तो नापास हो जाये। पाँच-पाँच लाख रुपये दे, परन्तु वह ले नहीं। (वह कहे कि) धर्म है या नहीं? मैंने कहा, नहीं। कहो, तब तुमने पढ़ा उसका दृष्टान्त दो। डॉक्टर प्राणजीवन होशियार हो तो, कहे, एक था धर्मी जीव, वह धर्मी जीव व्यापार करने बाहर गया। उसमें एक छोटी उम्र का लड़का मर गया। उसे वहाँ जाकर किसी ने बात कही कि तुम्हारा लड़का मर गया। कहे, मेरा लड़का नहीं मरता, हम धर्मी हैं। एक उसमें ऐसी कथा थी। कहा, यह तुम्हें कैसा लगता है? बराबर है यह। एकदम खोटा। धर्मी पर्यायवाले को पुत्र का संयोग है, वह छूट नहीं जाये, परन्तु यह किसने कहा? प्रवीणभाई! बड़ा सोलह सौ वेतन उस दिन। अब अभी तो वहाँ मुम्बई में उन गौरीशंकर को ढाई हजार से अधिक हो गया। कहा तुम्हारे पढ़े-गुने का धर्म का एक दृष्टान्त दो। तुम कितने पढ़े हो। समझ में आए?

इस प्रकार धर्मी जीव को बिल्कुल श्रद्धा दृढ़ थी। मेरा पुत्र नहीं मरे, हम धर्मी हैं। कहा, तुम एक भी बात सच्ची नहीं समझे हो। परन्तु धर्म की पर्याय यहाँ प्रगटी, उसके कारण पुत्र-परवस्तु है, वह न मारे और आयुष्य अल्प लेकर न आवे, ऐसा किसने कहा? वह तो दूसरी बात है। वह तो पुण्य की बाद की स्थिति है। वह तो वहाँ पुण्य को सिद्ध करना है। समझ में आया? यहाँ तो धर्म है। धर्म की पर्याय प्रगट हुई, इसलिए उसे शरीर में रोग ही न आवे। और उसे निर्धनता न हो... समझ में आया? और उसे पुत्ररहितपना न हो और पुत्रवाला ही हो और पुत्र हो, वह धर्म पाने के बाद मर न जाये, ऐसा नहीं है। क्योंकि परद्रव्य का उत्पाद-व्यय-ध्रुव पर में है और धर्म की पर्याय उत्पन्न की, इसलिए उसमें ऐसा मरण आदि देह का छूटना न हो, ऐसा कोई इसका उत्पाद धर्म का वह लक्षण है और द्रव्य, वह लक्ष्य है। परन्तु उत्पाद लक्षण है और इतना जीव का टिकना हो, न मरे, ऐसा हो - ऐसा वह लक्ष्य ऐसा है नहीं।

यह तो तब ९० के वर्ष में बात हो गयी। प्राणजीवनभाई डॉक्टर को सब बड़े-बड़े होशियार लोग तब ९० के वर्ष में सोलह सौ वेतन मात्र। अभी तो हो गया, कितने वर्ष? ३५। अभी तो सोलह गुना भाव हो गया। इतने सब पैसे नौकरी में बढ़े नहीं कुछ? क्या

कहा, समझ में आया ? धर्मी जीव की पर्याय आत्मा में उत्पन्न हुई, मैं शुद्ध चैतन्यमूर्ति हूँ, रागरहित हूँ, शुद्ध चैतन्य हूँ। अन्दर ऐसी श्रद्धा-ज्ञान (की) निर्मल पर्याय प्रगट हुई, वह उत्पाद और उसका लक्ष्य द्रव्य है। यह लक्षण है, वह उसका द्रव्य का है। परन्तु वह उत्पाद हुआ, इसलिए उसे संयोगों में प्रतिकूलता न हो, (ऐसा नहीं) वह तो कहीं प्रतिकूल मानता नहीं। परन्तु लोग ऐसा कहे न, इसे ऐसा नहीं होता, इसका पुत्र जीवित होता है। मिथ्यादृष्टि का पुत्र अच्छा रहे, निरोगी रहे, पैसे हों, पाप करे और पैसा मिले और इस धर्मी को पैसा न मिले, ऐसा होगा ? यह बात खोटी है। समझ में आया ? ऐई रमणीकभाई ! समझ में आया इसमें ?

और एक अधर्म की पर्याय उत्पन्न हुई, गुप्त किसी को न जाने ऐसी मिथ्या श्रद्धा और मिथ्या ज्ञान। पर को और बहुत जीवों को मार डालने का एक विकल्प उठा। तो कहते हैं कि वह विकल्प लक्षण है और जीव लक्ष्य है। उसकी यह पर्याय है ऐसा। परन्तु ऐसा हुआ, इसलिए उसे पैसे में नुकसान ही जाये, पुत्र जीवित न रहे, ऐसा कहना, यह बात खोटी है। यहाँ क्या है ? यह तो उसमें अन्तर पड़ा, इसके कारण क्या है ? इसका लक्षण यहाँ लक्ष्य कराते हैं। यह लक्षण वहाँ लक्ष्य कराता है ? कि इसके ऐसा रहेगा और जीवित रहेंगे और अच्छे रहेंगे तथा अधर्मी हुआ, इसलिए सब बाहर का सत्यानाश जायेगा, ऐसा है ? उसकी सत्ता का अस्तित्व इसके कारण बदलेगा ? नहीं, नहीं कुछ अन्तर नहीं पड़ता, यह तो पर्याय के कारण अन्तर पड़ता है। ऐई ! कहो, समझ में आया या नहीं इसमें ?

यह सब इसमें भरा है। दास ! ऐसी बात कहीं सर्वत्र नहीं होती। यह तो यहाँ होती है। ऐसा सूक्ष्म वहाँ अन्यत्र कांते। वे क्या समझे ? यह क्या कहते हैं। सोनगढ़ में तो बहुत परिचय हो न, यहाँ सुनते हों न, इसलिए भाषा आवे तो उसके प्रमाण में थोड़ा स्पष्ट करना चाहिए न ? थोड़ा बहुत। बाकी तो एक-एक पर्याय का एक-एक अंश स्वतन्त्र उस-उस द्रव्य का लक्ष्य है उसका। नहीं कि जानपना उसका कराते हैं। इसके कारण दूसरे में फेरफार पड़े, ऐसा कोई लक्ष्य का स्वरूप नहीं है। समझ में आया ?

लो, एक आते हैं, वे नहीं आते ? ऊँचे साधु हो न, साधु, उनका मुँह गन्ध मारे ऐसा आता है। नहीं आता ? बनारसीदास के समयसार नाटक में आता है। साधु सुगन्धवासा

सुगन्ध निकले। आता है न? परन्तु वह कहीं धर्म की पर्याय हुई है, इसलिए सुगन्ध की पर्याय निकलती है, ऐसा नहीं है। परन्तु पुण्य की पर्याय है, इसलिए भी नहीं। पुण्य के रजकण अलग और इसकी पर्याय अलग।

मुमुक्षु : पुण्य वहाँ काम करे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : है? परन्तु पुण्य के परमाणु की पर्याय भिन्न है और यह सुगन्ध के परमाणु की अलग जाति है। इसका अस्तित्व इसके कारण से और पुण्य के परमाणु का उसके कारण से है। आत्मा का अस्तित्व आत्मा के कारण से है। इसमें किसी के कारण से कोई है कहाँ? समझ में आया या नहीं?

यह ऐसा का ऐसा पढ़ जाये तो समझ में आये, ऐसा नहीं है। बराबर लगता है? लो, यह चतुर व्यक्ति कहते हैं कि बराबर लगता है। ऐसा बारम्बार समझाया नहीं, यह पंचास्तिकाय तो समयसार से सरल कहलाये। ऐई! वजुभाई!

मुमुक्षु : यह तो पूरा चक्र ही चलता है।

भाई! भगवान के शास्त्र ही ऐसे हैं। समझ में आया? आज कोई-कोई आये हैं, वे कहते हैं, यह सब इसमें कहते हैं, उसमें (परमागम में) कुछ गुजराती नहीं लिखो? लिखो गुजराती। यह परमागम। यह फूलचन्दभाई के दामाद मुम्बई से आये हैं। अनुवाद हो गया है। अनुवाद वहाँ हो तो एक-एक का ध्यान रखना चाहिए। सब अनुवाद हो गये हैं। पढ़ना हो, वहाँ लिखा जायेगा। प्रत्येक गाथा के सब अनुवाद हो गये हैं। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

दूसरे प्रकार से कहते हैं—कि आत्मा में एक विकल्प उठा कि मैं बोलूँ, सच्ची प्ररूपणा करूँ। समझ में आया? इसलिए वह विकल्प उठा, वह तो उसकी पर्याय के जीव के अस्तित्व में है। इसलिए भाषा की वर्गणा उसके कारण से बराबर निकले, ऐसा है नहीं। पद्धतिसर निकले तो उसके कारण से, इस विकल्प के कारण से नहीं। आहाहा! ऐई! जेठाभाई! बराबर होगा यह? यह इसमें है, वह भी? ऐ चेतनजी! इसमें होगा यह? है, लो। हें? इसकी अपनी पर्याय है, उसके कारण से पर में हो, यह बात यहाँ कहाँ आयी? आहाहा! बराबर धर्म की पर्याय अच्छी प्रगटे न, तो इसे बोलना भी अच्छा आवे। ऐसा होगा?

मुमुक्षु : बोलना तो किसी को आता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो जड़ की पर्याय है। बोलना, यह तो भाषा की-जड़ की अवस्था है। वह अवस्था वहाँ धर्म की पर्याय प्रगट हुई, इसलिए भाषा की पर्याय अच्छी निकले, ऐसा किसने कहा?

धर्म की पर्याय लक्षण है और द्रव्य लक्ष्य है। उस लक्षण के कारण भाषा अच्छी हो जाये, यह तुझे किसने कहा? वीतराग सर्वज्ञ कहते हैं कि हम ऐसा तो कहते नहीं हैं। ऐसा हमने देखा नहीं, माना नहीं, कहते हैं नहीं। तू कहाँ से ऐसा लाया? बराबर है, भीखाभाई! गजब बात, भाई! दृष्टान्त में ही कठिन पड़े, ऐसा है। ऐसे देखो तो चला जाये तो चला जाये ऐसे का ऐसा। कैसे दृष्टान्त देकर कैसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

ये तीन लक्षण हैं। अथवा गुण-पर्याय का द्रव्य आश्रय है। एक-एक द्रव्य के तीन लक्षण वर्णन किये। एक आत्मा एक-एक परमाणु और उसके तीन लक्षण हैं। अर्थात्? तीन लक्षण अर्थात्? एक 'है' ऐसा एक लक्षण, यह है न वापस एक समय में तीन भाग। अवस्था उपजे, व्यय और ध्रुव, यह तीन लक्षण। दूसरे प्रकार से ध्रुव, वह गुण है और उत्पाद-व्यय, वह पर्याय है। यह गुण और पर्याय के आश्रयवाला द्रव्य। भाषा देखो! यह गुण पर्याय का आश्रय है। समझ में आया? प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु को उसकी शक्ति और अवस्था का आश्रय है। परन्तु परवस्तु का आधार और आश्रय है, ऐसा नहीं है। परन्तु यह गुण-पर्याय आश्रय है और दूसरे नहीं, ऐसा आ गया या नहीं? ऐई! बात तो पहले आ गयी है। कहा न गुणाणं आश्रयो भवो, लखणं पजवाईयो—समझ में आया?

गुण और पर्याय का आश्रय कौन क्या? एक आत्मा, एक-एक यह परमाणु। उसमें जो कायम रहनेवाले गुण हैं और उनकी क्षण-क्षण में अवस्था होती है, उन गुण और पर्याय का आश्रय-आधार द्रव्य है। उसके गुण को अवस्था का आधार दूसरी कोई चीज़ है (नहीं)। समझ में आया? परन्तु इसमें क्या धर्म आया? अब तुम सब बातें करते हो। उसमें धर्म यह आया कि पर की अवस्था से तेरी अवस्था भिन्न और तेरी अवस्था में से पर में कुछ हो, ऐसा है नहीं। ऐसा जो यथार्थ सम्यग्ज्ञान समझना, इसका नाम धर्म है। मिथ्या समझ छोड़ना और सच्ची समझ करना, इसका नाम धर्म है। आहाहा! उसे सर्वज्ञ द्रव्य कहते हैं।

लो, अन्वयार्थ है न ? सर्वज्ञ परमेश्वर अनन्त केवली तीर्थंकर भगवान, महावीर भगवान आदि हो गये सर्वज्ञ प्रभु। अभी महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर भगवान सर्वज्ञ विराजते हैं। वे सब सर्वज्ञ इस प्रकार कहते हैं कि प्रत्येक पदार्थ अपनेपने के अस्तित्व में लक्षण से लक्षित है, पर के अस्तित्व के लक्षण से लक्षित नहीं। प्रत्येक पदार्थ अपने उत्पाद, व्यय और ध्रुव के लक्षण से लक्षित है; दूसरे के उत्पाद-व्यय के लक्षण से लक्षित है नहीं। और प्रत्येक पदार्थ को अपने गुण और उत्पाद-व्यय पर्याय का आधार है। किसी पदार्थ का कोई पर्याय और कोई गुण आधार है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

यह ऐसा कहते हैं, देखो! यह पुस्तक है न, यह पुस्तक है, इसके जो रजकण के गुण हैं न, इसकी अवस्था का आधार रजकण है। इसके आधार के लिये यह ठोणी आधार है, ऐसा नहीं है – ऐसा कहते हैं। कौन रखे ? विवेक कौन रखे ? ऐई! इसमें ऐसा आता है या नहीं ? एक पत्थर होगा, उस पर दूसरा पत्थर उसके आधार से नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। ऐसा सर्वज्ञ कहते हैं। अनन्त रजकण का जो एक अक्षर अन्दर खुदेगा, उस अक्षर के रजकण, इस पत्थर के आधार से रहेंगे, अन्दर पत्थर है, इसलिए रहेंगे—ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। जादवजीभाई! बापू! तुझे वस्तु है, ऐसा मानना है या नहीं ? है, ऐसा मानना है या नहीं ? तो है, वह है स्वतन्त्ररूप से अपने तीन लक्षण से, गुण-पर्याय दो लक्षण से, सत् के एक लक्षण से; एक, दो और तीन ऐसे लक्षण से वर्णन किया है। समझ में आया ? आहाहा!

धर्मी जीव को पर में कहीं सुख है, ऐसा विकल्प नहीं उठता। पर में कहीं उल्लसित होकर प्रमोद आ जाये, ऐसा नहीं होता। क्योंकि पर में सुख है नहीं। धर्मी को अपने में आनन्द है, उसका उल्लास पर्याय में आता है। आहाहा! स्त्री अनुकूल मिली, पाँच-पचास लाख मिले, मकान अच्छा मिला, हवा-पानी (अच्छे मिले), खिड़की में से हवा ऐसे निकले और ऐसे जाये और बहुत हाम, दाम और ठाम तीनों से सुखी हैं। ऐसा कहते हैं। बस! लो, यह सेठिया ऐसा कहते हैं पैसेवाले ऐसा कहते हैं। उसमें थे कहाँ ? भगवानजीभाई के आत्मा में पैसा है ? यह तो कहते हैं पैसे का अस्तिपने का सत्पना उसके द्रव्य में है। उसका सत्पना उसके द्रव्य में है। इसके द्रव्य में उसका सत्पना नहीं। आहाहा! भारी सूक्ष्म बात की है। हें ? ओहोहो!

इस प्रकार सर्वज्ञ द्रव्य कहते हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव केवलज्ञानी तीर्थंकर परमात्मा अनन्त हो गये, वर्तमान में विराजते हैं, वे सब सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा कहते हैं कि—प्रत्येक तत्त्व के अस्तित्व का लक्षण उसके द्रव्य का लक्ष्य करता है। उस अस्तित्व के कारण पर का अस्तित्व का लक्ष्य करता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! गजब बात है। समझ में आया?

केवलज्ञान का अस्तित्व वह लक्षण और द्रव्य लक्ष्य है। परन्तु वह केवली को अतिशय प्रगट हुए कि वहाँ जाकर अन्दर जो सुननेवाले बाघ और बकरा एक साथ पानी पीवे और एक साथ बैठे, ऐसा वहाँ अस्तित्व होता है, वह उसके कारण वहाँ होता है, ऐसा नहीं है। पुण्य के परमाणु अलग और इनके परमाणु अलग। आहाहा! समझ में आया? आता है न कहीं 'अहिंसाम प्रतिष्ठाम्' बैर-विरोध टले। महाहिंसावाला प्राणी हो न तो पर में बैर टलता है। यहाँ इनकार करते हैं। ऐसा नहीं है, कहते हैं। ऐई! एक बार कहा था, ९१-९२ में भाई आये थे। फूलचन्दभाई न? पोपटभाई के बहनोई नहीं? पोपटभाई के बहनोई फूलचन्दभाई। बहिन भी आयी थीं। वहाँ हम अन्दर थे न, तब बाहर निकले बैठने की बरामदे में है न? अन्दर आये थे। उनके लिये अन्दर आये थे। मैंने कहा, देखो! अहिंसा में ऐसा होता है (हमने कहा) कि यह बात सत्य नहीं है। अहिंसादशा जिसकी प्रगटी, इसलिए उसके कारण परप्राणी में बैर का अभाव हो, ऐसा नहीं है। उसका इसके कारण, इसका उसके कारण। समझ में आया?

यह सब देश में माननेवालों को? देश की सेवा को ऐसा हो, अहिंसा जिसे प्रगट हुई हो न, (उसे) बाघ और सिंह भी उसे मार नहीं सकते। परन्तु अहिंसा बड़ी है न? अहिंसा थोड़ी परन्तु अहिंसावाले को बैर का त्याग होता है न? अहिंसा तो महा है अन्दर आत्मा के आनन्द में विचरता है, तथापि सिंहनी शरीर के रजकणों को खाती है। वे परमाणु पलटते हैं ऐसा। तथापि परमाणु निरोगपने टलकर स्वरूपपने रक्त झरता है। परन्तु इससे आत्मा की धर्म पर्याय है, इसलिए यहाँ ऐसा नहीं होगा, ऐसा किसने कहा, कहते हैं। ऐई! गजब बात भाई!

शास्त्र के अर्थ करने की सब पद्धति पूरी बदल जाती है। आहाहा! सर्वज्ञ भगवान

ऐसा भणन्ति, परमेश्वर ने समवसरण में ऐसा कहा था। समझ में आया? अब ऐसा माने कि भगवान सच्चे, हों! प्रभु तुम सच्चे। परन्तु सच्चे कहाँ? तू तो मानता है कि मेरे कारण पर में होता है और पर के कारण मुझमें होता है, (उसमें) भगवान कहाँ तुझे सच्चे आये? गड़बड़ ही है न! बात सच्ची है। आहाहा! तत्त्व की खबर नहीं कि अज्ञान कितना नुकसान करता है! इसे उसकी खबर नहीं। समझ में आया? और ज्ञान सम्यक् हो तो कितना लाभ करता है। ओहो! चैतन्य भगवान आनन्दस्वरूप, ऐसी अन्तर में प्रतीति का भाव उत्पन्न होने से साथ में आनन्द का अंश लक्ष्य प्रगट (होता है), वह आनन्द का लक्षण है और आनन्दगुण और द्रव्य वह लक्ष्य है। वह पर्याय कोई वाणी से निकली है या बाहर विकल्प था, इसलिए हुई है, या पर से है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

टीका :- यहाँ तीन प्रकार से द्रव्य का लक्षण कहा है। 'सत्' द्रव्य का लक्षण है। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु जितने भगवान ने अनन्त आत्मा और परमाणु देखे, प्रत्येक का **'सत्' द्रव्य का लक्षण है।** अस्तित्व, वह पदार्थ का लक्षण है। **पूर्वोक्त लक्षणवाली सत्ता से द्रव्य अभिन्न होने के कारण....** अस्तित्वगुण से वह-वह पदार्थ भिन्न नहीं होता, इसलिए **'सत्' स्वरूप ही द्रव्य का लक्षण है।** अभेद कर दिया। **'सत्' स्वरूप ही द्रव्य का लक्षण है।** पहला सत् द्रव्य का लक्षण है, ऐसा भिन्न किया, फिर कहते हैं वह सत्स्वरूप ही द्रव्य का लक्षण है। लक्षण ही वह है उसका। 'सत्' स्वरूप ही द्रव्य का लक्षण है। एक बात। उसे और उसे विस्तार करते हैं, हों! एक को ही।

और अनेकान्तात्मक द्रव्य का सत्मात्र ही स्वरूप नहीं है..... भगवान आत्मा और एक-एक परमाणु को सत्मात्र ही एक गुण नहीं। उसमें तो अनन्त गुण हैं। आत्मा में और इस परमाणु में एक सत् नाम का अकेला कहीं गुण नहीं है। ऐसे तो अनन्त गुण हैं। अनन्त अन्त अर्थात् स्वरूप-धर्म। ऐसे द्रव्य का सत्मात्र स्वरूप नहीं है। जिसके अनन्त गुण हैं, वह एक गुणवाला ही नहीं है। ऐसा। कि **जिससे लक्ष्य-लक्षण के विभाग का अभाव हो।** जिससे लक्ष्य-लक्षण के भिन्नपने का अभाव हो, ऐसा।

ऐसा कि यह लक्षण सत्ता और द्रव्य लक्ष्य, यह भिन्नपना एक ही हो तब तो अभाव हो, परन्तु दूसरे बहुत गुण हैं, इसलिए लक्ष्य-लक्षण के विकभाग का अभाव नहीं होता।

(सत्ता से द्रव्य अभिन्न है, इसलिए द्रव्य का जो सत्तारूप स्वरूप वही द्रव्य का लक्षण है।) प्रश्न :- यदि सत्ता और द्रव्य अभिन्न हैं—सत्ता द्रव्य का स्वरूप ही है, तो 'सत्ता लक्षण है और द्रव्य लक्ष्य है'—ऐसा विभाग किस प्रकार घटित होता है?

उत्तर :- अनेकान्तात्मक द्रव्य के अनन्त स्वरूप हैं। भगवान आत्मा के अनन्त गुण हैं, अनन्त स्वरूप हैं, परमाणु के अनन्त गुण के अनन्त स्वरूप हैं। उनमें से सत्ता भी उसका एक स्वरूप है। अनन्त गुण हैं, उसमें का सत्तागुण एक, उसका स्वरूप है। एक ही स्वरूप है, ऐसा नहीं। अनन्त स्वरूप है, उसमें अस्तित्व का एक गुण है। **इसलिए अनन्त स्वरूपवाला द्रव्य लक्ष्य है....** देखो, एक ही सत्तागुण हो और एक ही द्रव्य हो, तब तो एक का एक हो गया। परन्तु **अनन्त गुणवाला द्रव्य, वह लक्ष्य है और उसका सत्ता नाम का स्वरूप, वह लक्षण है।** आहाहा!

ऐसा लक्ष्यलक्षणविभाग अवश्य घटित होता है। एक ही गुण और एक ही द्रव्य हो तो वह लक्ष्यलक्षणभाव घटित नहीं होता। नहीं घटता। (परन्तु) आत्मा में अनन्त गुण हैं। परमाणु में अनन्त गुण हैं। उसमें से एक गुण लक्षण अनन्त गुण्वाला द्रव्य, वह लक्ष्य, यह लक्ष्यलक्षण भाव घटित होता है। **इस प्रकार अबाधितरूप से सत् द्रव्य का लक्षण है।** लो! विघ्न नहीं आया। निर्दोष सत् का लक्षण है। एक बात की, दूसरी लेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

धारावाही प्रवचन नं. १८ (प्रवचन नं. १७), गाथा-१०

दिनांक - ०१-१२-१९६९, कार्तिक कृष्ण ७, सोमवार

यह पंचास्तिकाय समयसार है। सर्वज्ञ भगवान परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने सर्वज्ञरूप से तीन काल-तीन लोक जाने, उसमें षट्द्रव्य का स्वरूप जानने में आया। षट्द्रव्य में एक काल अस्ति है और पाँच हैं, वे अस्तिकाय हैं। काल है सही, परन्तु उसमें बहुत अंशों का समूहपना नहीं है। दूसरे पाँच में अंशों का समूहपना है, इसलिए उन्हें अस्ति और काय कहा है। उसके यहाँ तीन लक्षण वर्णन किये हैं। एक सत्द्रव्यलक्षणम्। प्रत्येक वस्तु है, सत् है। वह अस्तित्वगुण है। वह गुण लक्षण है और वस्तु उसका लक्ष्य है। कहो, समझ में आया?

उसके अस्तित्व का प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु 'सत्द्रव्यलक्षणम्'। द्रव्य अर्थात् वस्तु है, उसका सत्-अस्तित्व, वह लक्षण है। द्रव्य लक्ष्य है। उसके अस्तित्व के लिये उसका लक्ष्य द्रव्य में जाता है। उसके अस्तित्व के लिये पर के ऊपर लक्ष्य जाये और द्रव्य लक्ष्य में आये, ऐसा नहीं है। समझ में आया? एक लक्षण की बात हो गयी। अब दूसरा लक्षण। इस गाथा में तीन लक्षण हैं।

अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रुव द्रव्य का लक्षण है। क्या कहते हैं? प्रत्येक आत्मा और यह जो जड़ परमाणु है, उसमें एक समय में उत्पाद, व्यय और ध्रुव वह द्रव्य का-तत्त्व का लक्षण है। लक्षण है उत्पाद, व्यय और ध्रुव; लक्ष्य है द्रव्य-वस्तु। समझ में आया? उत्पाद, व्यय (अर्थात्) नयी-नयी अवस्था उत्पन्न होना, पुरानी अवस्था का अभाव होना, एक जाति का ऐसा का ऐसा ध्रुवरूप रहना। आगम ऐसा कहेगा, स्वजाति का अत्याग। ऐसे प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु अपने-अपने उत्पाद, व्यय और ध्रुव लक्षण से लक्षित है। समझ में आया? अब इसकी-उत्पाद की व्याख्या बाँधते हैं। पहले व्यय कहेंगे।

एक जाति का अविरोधक ऐसा जो क्रमभावी भावों का प्रवाह... क्या कहते हैं? एक जाति का अविरोधक जो चैतन्य है, उस चैतन्य का अविरोधक; परमाणु, वह परमाणु। उसका एक जाति का विरोध नहीं करे, ऐसा क्रमभावी। क्षण-क्षण में नयी-नयी अवस्था हो, ऐसे भावों का प्रवाह। आत्मा में क्षण-क्षण में नयी-नयी पर्याय हो, पुरानी जाये, ऐसा क्रमभावी भावों का प्रवाह। समझ में आया? आत्मा वस्तु है। उसमें उत्पाद-व्यय होते हैं।

नयी अवस्था उत्पन्न होती है, व्यय होता प्रवाह। क्रम-क्रम से प्रवाहरूप है, परन्तु कैसा है? कि एक जाति का अविरोधक है। चैतन्य है, उसके चैतन्य का प्रवाह ही उत्पाद-व्ययरूप परिणमता है। जड़ है, उसका जड़रूप ही उत्पाद-व्ययपने होता है। समझ में आया?

यह परमाणु है, देखो! यह परमाणु, उसमें भी एक अपनी जाति-जड़ है, उसे विरोध न हो और नयी-नयी अवस्था और पुरानी अवस्था का प्रवाह बहे, उसे क्रमभावी पर्याय / अवस्था कहा जाता है। धर्म के लिये ऐसा समझने का? वह तो सामायिक करे और बैठे 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं' जाओ लो। नहीं हुआ? कहते हैं कि कहाँ बैठना है और कहाँ से हटना है, इसकी तो खबर नहीं। यह आत्मा और यह प्रत्येक परमाणु जगत के जो अनन्त द्रव्य हैं, उनकी जाति है, जो चैतन्य, वह चैतन्य और अचेतन, वह अचेतन। और अचेतन में भी परमाणु जड़, वह जड़ और धर्मास्ति, वह धर्मास्ति, उसकी जाति का अविरोधक। जाति बदले नहीं, ऐसा उसका उत्पाद-व्यय का प्रवाह जिसमें बहे, उसे क्रमभावी उत्पाद-व्यय अवस्था कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें?

एक जाति का अविरोधक ऐसा जो क्रमभावी भावों का प्रवाह.... यह समुच्चय बात पहले कही। उत्पाद-व्यय सब इकट्ठी। परमाणु है, वह परमाणु जड़। उसमें भी उसकी क्रम-क्रम-क्रम से रंग, गन्ध, रस, स्पर्श की जो पर्याय उत्पन्न हो और पुरानी अवस्था जाये, ऐसा परमाणु में जड़ को विरोध न हो। ऐसा अविरोधक जड़ के परमाणु की रंग, गन्ध, रस, स्पर्श की पर्याय का क्रम प्रवाह बहता है, उसे क्रमभावी क्रम-क्रम से होनेवाली अवस्था कहा जाता है। कहो, प्रभुभाई! ऐसा कभी सुना था? इतने वर्ष निकाले जैन में जन्मे तो भी सुना नहीं? कहो, समझ में आया? अपनी जाति को अविरोधक ऐसा क्रमभावी भाव, देखो! इस क्रमभावी पर्याय को भी भाव कहा जाता है। है न अस्ति, है न? आत्मा, अनन्त आत्मा भिन्न-भिन्न और अनन्त परमाणु भिन्न-भिन्न, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, इन क्रमभावी पर्यायों का; भाव अर्थात् पर्यायों का प्रवाह। एक के बाद एक, एक के बाद एक आत्मा में और परमाणु में नयी-नयी अवस्था होना, पुरानी जाना। ऐसे क्रम-क्रम से होनेवाली पर्यायों का जो प्रवाह, उसमें पूर्व भाव का विनाश, वह व्यय। उस परमाणु में एक-एक में या चैतन्य में पूर्व अवस्था है, उसका नाश, नयी अवस्था का—उत्तर भाव का प्रादुर्भाव। पूर्वभाव भाव अर्थात् पर्याय। पूर्व की अवस्था

का विनाश, वह व्यय, उत्तर भाव का प्रगटपना, वर्तमान भाव की उत्पत्ति, वह उत्पाद है। समझ में आया?

आत्मा में भी जो क्रम-क्रम से उत्पाद-व्यय हुआ करता है, वह आत्मा का उत्पाद-व्यय लक्षणवाला तत्त्व है। वह उत्पाद-व्यय लक्षण द्रव्य को बताता है कि इस द्रव्य का उत्पाद-व्यय है। यह उत्पाद-व्यय परद्रव्य के कारण से है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? देखो! यह बोला जाता है, वह भाषा के परमाणु हैं। आवाज आती है न? आवाज यह उठती है वह। उसमें यह भाषा की पर्याय का उत्पाद, पूर्व की साधारण वर्गणा थी, उस पर्याय का व्यय। ऐसा उस क्रमभावी पर्याय का प्रवाह बहता है। अविरोधक। जड़ को विरोधरूप से नहीं। उत्पाद-व्यय में जड़ की जाति का प्रवाह बहता है। ऐसे उत्पाद-व्यय का लक्षण और उसके परमाणु, वह लक्ष्य। यह भाषा होती है, (वह) आत्मा है, इसलिए भाषा होती है—ऐसा नहीं है। अरे! अरे! गजब बात, भाई! समझ में आया?

अथवा यह होठ है, यह होठ, वे ऐसे-ऐसे होते हैं या नहीं? उन परमाणु में ऐसे-ऐसे हुई, वैसी अवस्था हुई। ऐसी थी, उस अवस्था का व्यय हुआ। वह जड़ की जाति का परमाणु को विरोध न आवे, ऐसी सजातिय का उत्पाद-व्यय का प्रवाह हुआ करता है। वह इसके परमाणु के कारण से है। और इसके कारण भाषा की पर्याय का प्रवाह होता है, ऐसा भी नहीं है। अरे! अरे! गजब भाई! जबरदस्त काम है?

मुमुक्षु : हिन्दी में समझाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले आये होते तो हिन्दी में शुरु करते। (अब) गुजराती हो गया। पहले आये होते तो हिन्दी हो जाता। समझ में आया या नहीं? सवेरे हिन्दी हुआ था। पहले आये होते न, तो हिन्दी में हो जाता। गुजराती शुरु हो गया। समझ में आया?

क्रमभावी भावों का प्रवाह उसमें पूर्व भाव का विनाश सो व्यय है,.... उत्तर के भाव की अर्थात् कि वर्तमान भाव की उत्पत्ति, ऐसा। वापस उत्तर भाव अर्थात् वर्तमान भाव की उत्पत्ति। समझ में आया? आत्मा में आत्मा के ज्ञानगुण की ज्ञानपर्याय प्रगट होती है। वह ज्ञानगुण की पर्याय उत्पन्न हो, पहली अवस्था का व्यय हो, वर्तमान अवस्था की उत्पत्ति हो, वह ज्ञानगुण की जाति को उल्लंघन किये बिना अविरोधक ज्ञान की पर्याय का उत्पाद-व्यय का प्रवाह चलता है। उस ज्ञान की पर्याय का उत्पाद-व्यय प्रवाह

कर्म के क्षयोपशम के कारण है या कर्म के उदय के कारण है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? गजब भाई!

देखो! **क्रमभावी भावों का प्रवाह....** सूक्ष्म बहुत, तत्त्व सूक्ष्म है। वीतराग का तत्त्व वीतराग ने कहा हुआ तत्त्व बहुत सूक्ष्म है। प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक आत्मा भिन्न-भिन्न जो तत्त्व हैं, उनकी अवस्था का भिन्न-भिन्न अपनी जाति के जाति को उल्लंघन किये बिना, कुछ प्रवाह बहे कि पहले हो चैतन्य की पर्याय और दूसरी हो जड़ की पर्याय, ऐसा है चेतन में? और परमाणु में बदलती है, कहते हैं दूसरी अवस्था हो। इस परमाणु में पहली अवस्था जड़ की-रंग की थी और दूसरी अवस्था हुई काली की सफेद (अवस्था हुई), परन्तु वह जड़ की ही अवस्था होती है। पहली अवस्था हरी और दूसरी अवस्था ज्ञान की, ऐसा परमाणु में होता नहीं। गजब बात, भाई! समझ में आया? एक-एक समय का आत्मा और परमाणु की पर्याय अपने उत्पाद लक्षण से द्रव्य लक्षित है, व्यय लक्षण से द्रव्य लक्षित है और ध्रुव लक्षण से भी द्रव्य लक्षित है। यह उत्पाद हुआ, इसलिए पर का लक्ष्य करके हुआ है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

जैसा पदार्थ का स्वभाव है और जिस प्रकार से उसका उत्पाद-व्यय होता है, उस प्रकार से न माने और उल्टी रीति से माने तो पदार्थ की विपरीत दृष्टि-मिथ्यात्व हुई। और मिथ्यादृष्टि का सब उत्पाद मिथ्यात्व का उत्पाद और मिथ्यात्व का व्यय, ध्रुवपना कायम रहे, ऐसी उसकी जाति है। समझ में आया? राग एक विकल्प है, विकार है, वह मुझे धर्म है और धर्म का कारण है—ऐसी जो मिथ्यात्व मान्यता, उस मिथ्यात्व की वर्तमान में उत्पत्ति होना, पुराने मिथ्यात्व का व्यय होना और वह मिथ्यात्व चैतन्य की जाति का भाव है, वह कहीं जड़ की जाति का नहीं है। वह मिथ्यात्व उत्पन्न-व्यय होता है, उत्पन्न-व्यय होता है, वह चैतन्य को उल्लंघकर नहीं। चैतन्य की जाति की जाति में यह प्रकार होता है। समझ में आया?

एक जाति का अविरोधक ऐसा जो क्रमभावी भावों का प्रवाह.... देखो, भाषा कैसी ली है? एक तो एक जाति का अविरोधक, उसकी जाति है, उसका विरोध नहीं। परमाणु है, उस परमाणु की जाति को नहीं आत्मा है, वह आत्मा की जाति को नहीं विरोधकर्ता, उसकी जाति की-जाति की उत्पाद-व्यय दशा, ऐसा कि नया हो तो दूसरा

कुछ हो जाये तो ? ऐसा ! आत्मा में नयी पर्याय हो तो कोई जड़ की हो जाये तो ? परमाणु में नयी पर्याय हो तो कोई चैतन्य की हो जाये तो ? ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया ?

क्रमभावी भावों का प्रवाह, उसमें पूर्व अवस्था का विनाश, वह व्यय है। क्रमभावी भावों का एक जाति का अविरोधक ऐसा जो **पूर्व भाव का विनाश सो व्यय है, उत्तर भाव का प्रादुर्भाव (वर्तमान भाव की उत्पत्ति) सो उत्पाद है....** परमाणु की पर्याय का उत्पाद उत्पाद के कारण से है। उसके—परमाणु के उत्पाद के कारण वह उत्पाद ऐसा बताता है कि परमाणु उसका लक्ष्य है। उसका उसका लक्षण है। दूसरी चीज़ के कारण उसमें उत्पाद होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? दूध की अवस्था का व्यय होना, दही की अवस्था की उत्पत्ति होना, ऐसे जो परमाणु में उत्पाद-व्यय का प्रवाह, वह परमाणु की जाति को उल्लंघन किये बिना अविरोध प्रवाह चलता है। समझ में आया ?

और पूर्व-उत्तर भावों का उत्पाद-व्यय होने पर भी, फिर भाषा देखो भाई ! प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु पूर्व और उत्तर, पूर्व अर्थात् व्यय और उत्तर अर्थात् वर्तमान उत्पाद। उसकी पर्यायों के व्यय और उत्पाद होने पर भी स्वजाति का अत्याग। उसमें प्रवाह में उत्पाद-व्यय में एक जाति का अविरोधक था और उस स्वजाति का अत्याग। भगवान आत्मा का उत्पाद-व्ययरूप प्रवाह बहे, तथापि उसकी स्वजाति चैतन्य है, उसका त्याग नहीं होता। ध्रुवपना तो कायम रहता है। अरे ! समझ में आया ? यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त और उसमें भी दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त यह बात कहीं अन्यत्र नहीं हो सकती। यह तो कितने वर्ष वहाँ मुँडाया ? थी, यह बात वहाँ सुनी थी ? वहाँ पचपन वर्ष हुए, लो। वहाँ कहीं सुनी थी ? उपधान किये थे, सब बहुत किया था। क्या कहलाता है ? पैंतीस उपधान और अमुक उपधान और उठ-बैठ की भगवान के पास, उठ-बैठ की उठामणा। उठमणा है न दूसरा क्या है ?

यह कहते हैं कि परमाणु में ऐसे-ऐसे हुआ, वह तो परमाणु के कारण से हुआ है। आत्मा को विकल्प आया कि यह उठ-बैठ हो, इसलिए वहाँ ऐसा उत्पन्न हुआ है, ऐसा नहीं है। अज्ञानी ऐसा मानता है कि मैंने इसका विकल्प किया न, तब मुझे उठना है और बैठना है, इससे वह उठ-बैठ की पर्याय होती है। मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। कहो, समझ में आया ? यह उपधान किये और मिथ्यात्व को बाँधा, ऐसा कहते हैं। यह और धर्म दूसरा,

यह तो मैंने पहले तो जड़ की पर्याय की बात की। यह तो उठ-बैठ—ऐसे-ऐसे हो, वह तेरे कारण होता है। यह आत्मा है, इसलिए ऐसे-ऐसे होता है न? वह यहाँ इनकार करते हैं। तेरी मान्यता झूठी है। उन परमाणुओं में उत्पाद होने का लक्षणवाला-व्यय होने के लक्षणवाला वही द्रव्य है। उसका उत्पाद-व्यय और ध्रुव उसके परमाणु में परमाणु के कारण से है। आत्मा के कारण से उसमें कुछ उठ-बैठ हो, ऐसा उसका स्वभाव उसमें नहीं है। आत्मा उसे कुछ उत्पन्न करे, ऐसी कोई सत्ता आत्मा में नहीं है। अरे! गजब बात, भाई! समझ में आया?

ऐसे बैठा तो शरीर ऐसा था, लो! खड़ा हुआ, जय भगवान। कहते हैं कि परमाणु में जो पहली अवस्था ऐसी थी, उसका व्यय हुआ, ऐसा उठा, उसका उत्पाद हुआ। परन्तु वह उसकी परमाणु की जाति को विरोध किये बिना उसकी जाति में हुआ है। और उसका जो ध्रुवपना है, उस ध्रुवपने का अत्याग, उत्पाद-व्यय होने पर भी ध्रुवपने का अत्याग। ध्रुवपना रहकर होता है। समझ में आया? अरे! गजब बात!

यह व्यापार-व्यापार कौन करता है, इसमें ऐसा आता है। प्रभुभाई! बहुत होशियार हो और बोरियाँ फिरावे और यह फिरावे, यहाँ इनकार करते हैं। कोई धन्धा करता नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। अरजणभाई क्या है यह? कहे, नामा-बामा लिखते हैं, (वह) कौन लिखता है? ऐसा कहते हैं। वे परमाणु पहले जो अक्षर की पर्यायरूप नहीं थे, वे दूसरी पर्यायरूप थे। उस पर्याय का व्यय होकर अक्षर की पर्यायरूप उत्पन्न हुआ। परन्तु उस परमाणु की जाति से उल्लंघकर हुआ नहीं। उसकी जाति को रखकर वह हुआ है। प्रवाह परमाणु में हुआ और परमाणु की जो ध्रुवता है, उसे अत्याग कर हुआ। पर्याय का व्यय हो जाये परन्तु व्यय होने से कहीं ध्रुव का अभाव हो जाता है, ऐसा नहीं है। और उत्पाद नयी पर्याय का होने पर भी ध्रुव नया उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अरे! भारी सूक्ष्म। इसलिए लोगों को ऐसा (कठिन) पड़ता है न? सारे सोनगढ़ की बात कठिन है, ऐसा कहते हैं। सोनगढ़ की है या भगवान के घर की है? हें? अब इसे समझना नहीं और अपना डण्डा छोड़ना नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! एक परमाणु भी... सुनने पर भी इसे अन्दर से (ऐसा लगता है कि) यह नहीं, ऐसा नहीं। कह, भगवान के पास जा। भगवान को कह कि आपने कहा है, वह हमें बैठता नहीं। जाये किसका भगवान के पास

तत्त्व का विरोध करे यह ? समझ में आया ? गजब बात की है। एक गाथा में एक-एक गाथा में तो पूरी दुनिया का रहस्य भर दिया है।

भगवान ने छह द्रव्य कहे—अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, आकाश छहों में उत्पाद-व्यय का प्रवाह अविरोधक, उस द्रव्य की जाति को छोड़े बिना उत्पाद-व्यय होता है। और वह उत्पाद-व्यय होने पर भी उसके द्रव्य का अत्याग नहीं होता। अर्थात् त्याग नहीं होता। द्रव्य के अत्यागरूप रहता है। द्रव्य ऐसा का ऐसा रहता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? पूर्व-उत्तर पर्यायों का व्यय-उत्पाद होने पर भी, स्वजाति का अत्याग चैतन्य... चैतन्य को ध्रुव का अत्याग। भगवान आत्मा ध्रुव स्वरूप है। उसमें उत्पाद-व्यय अपने होने पर भी स्वयं ध्रुव उपजता है और ध्रुव व्यय पाता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? यह तो निवृत कहाँ ? करो न व्रत पालो, भक्ति करो, पूजा करो और यात्रा करो, हो जायेगा धर्म। अब वहाँ धूल भी धर्म नहीं, सुन न ! अभी जड़ और चैतन्य की भिन्न दशा का भान नहीं है, (वहाँ धर्म कैसा ?) समझ में आया ?

फिर और राग का जो पुण्य का विकल्प उठता है, उससे मेरी जाति-स्वभाव भिन्न है, उसकी खबर बिना धर्म कहाँ से आता था ? धर्म कोई ऊपर से लटकता है ? समझ में आया ? इसमें मस्तिष्क काम (करता नहीं)। वकीलों का मस्तिष्क काम करता होगा ? व्यापारी का काम नहीं करता होगा ? ऐई ! वकील भी कितने ही ठोठ होते हैं। नहीं ? नहीं, वह तो और बुद्धि में हों परन्तु ठोठ भी होते हैं। एक तो हमारे गाँव में भी एक हरिभाई उमराला के वकील थे, काले। कुछ आमदनी नहीं होती। आजीविका भी पूरी नहीं होती। हैरान.. हैरान। वह आजीविका कहते हैं कि परमाणु की पर्याय है। उसका उत्पाद यहाँ आना और यहाँ न आना, वह तो उसका लक्षण है। वह जड़ का लक्षण है। कहीं तेरे विकल्प से वहाँ परमाणु आवे ? वकील की चतुराई से वहाँ आवे तो रामजीभाई को पूछने आयेंगे, लो इसके लो पाँच सौ रुपये का कर दो, इसलिए पैसे आते होंगे ? भाई चतुराई के कारण पैसे आवें, चतुर व्यक्ति पैसा कमावे, लो ! ऐ भगवानजीभाई ! नहीं कमाता ?

मुमुक्षु : रामजीभाई तो चतुराईवाले कहलाते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ भी नहीं मिले बाहर पैसा हो, इस कारण लोग चतुराईवाले

कहें। कहाँ का कहाँ फेरफार हो जाता है।

जड़ की पर्याय है, उसे उपजावे कौन, उसे बदलावे कौन और उसे टिकावे कौन? वह तत्त्व स्वयं जड़ नयी अवस्था से उपजे, पुरानी से व्यय हो और ध्रुव से टिका रहे। तेरे कारण उसमें कुछ नहीं होता। गजब बात। समझ में आया? **स्वजाति का अत्याग सो ध्रौव्य है। वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य—जो कि सामान्य आदेश से अभिन्न हैं....** क्या कहा? आत्मा वस्तु और परमाणु अनन्त पदार्थ हैं। उनमें उत्पाद-व्यय का प्रवाह है और ध्रुव अत्याग है। ध्रुवपना कायम है। इन तीनों को देखें तो द्रव्य के साथ अभेद है। वस्तु से सामान्यरूप से देखे तो एक है। **सामान्य कथन से द्रव्य से अभिन्न हैं....** विशेष कथन से भिन्न है। क्योंकि उत्पाद-व्यय ऐसे तीन पड़े न? और द्रव्य नाम द्रव्य का, उत्पाद-व्यय का नाम दूसरा, उत्पाद-व्यय ध्रुव का लक्षण और यह द्रव्य लक्ष्य। इसलिए तीनों विशेष प्रकार से या द्रव्य से अत्यन्त भिन्न-भिन्न जानने में आते हैं। भिन्नता करने से बाहर में है, ऐसा नहीं, हों। उसमें तीन भिन्न प्रकार पड़े न? **युगपद् वर्तते हैं।**

तथापि एक ही समय में आत्मा में और परमाणु में एक ही सेकेण्ड के असंख्य भाग में उत्पाद, व्यय और ध्रुव एकसाथ वर्तते हैं। समझ में आया? यह परमाणु हैं, वे ऐसे उपजते हैं। देखो, ऐसे चला, ऐसे स्थिर था, यह उत्पाद-व्यय है, इसका प्रवाह है; आत्मा के कारण से नहीं। और इसकी ध्रुवता, उत्पाद-व्यय हुआ, पर्याय उपजी, इसलिए ध्रुव नया उत्पन्न हुआ है? अवस्था बदली, इसलिए ध्रुव बदल गया है? ऐसा नहीं है। ध्रुव तो ध्रुव ही है। इसी प्रकार आत्मा के ज्ञान की पर्याय एक हीन थी, वह व्यय हुई, विशेष उत्पन्न हुई, ऐसा प्रवाह चलता होने पर भी चैतन्य की जाति को उल्लंघन किये बिना वह जड़ की पर्याय नहीं कहीं। यहाँ तो अभी राग को स्वभावभूत कहेंगे। समझ में आया? आत्मा में राग की अवस्था उत्पन्न होती है, तीव्र की व्यय होती है, मन्द की उत्पन्न होती है—ऐसा उत्पाद-व्यय होने पर भी, चारित्रगुणवाला तत्त्व, वह तो ध्रुव है। चारित्र तो ध्रुव है। अन्दर जो चारित्रगुण है, (वह तो ध्रुव है)। आहाहा! ये तीनों युगपद् प्रवर्तते हैं।

आत्मा में और इस एक-एक परमाणु में नयी अवस्था, पुरानी अवस्था का प्रवाह और ध्रुव एक समय में तीन हैं। उत्पाद हो, उसका समय अलग; व्यय हो, उसका समय अलग; ध्रुव का समय अलग - ऐसा नहीं है। यह तो कभी सुना न हो। फूलचन्दभाई हों,

तब यह पढ़ा नहीं था। आहाहा! शान्ति से तेरा अस्तित्व तुझमें, उपजना भी तेरे कारण से तुझमें, जड़ का उपजना जड़ के कारण से उसमें, उसके बदले तू (कहे कि) मैं हूँ तो यह जड़ की अवस्था हुई, मिथ्यादृष्टि जड़ को चैतन्य मानता है। अथवा जड़ की पर्याय, वह जड़ की शक्ति बिना का तत्त्व था, मैंने शक्ति दी, इसलिए जड़ की शक्ति बिना का, उसने चैतन्य की शक्तिवाला जड़ को माना। समझ में आया?

यह नीचे एक जीव है। (उसे) ऐसे अँगुली से उठाते हैं। वह अँगुली की पर्याय जो ऐसी है, उसकी ऐसे हुई, उस पहली पर्याय का परमाणु में व्यय हुआ, दूसरी का उत्पाद हुआ, उसके कारण से जीव यहाँ से यहाँ हुआ, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह वहाँ का जो जीव था, उसकी अवस्था यहाँ उत्पन्न थी, वहाँ ऐसे जहाँ गयी, उसकी अवस्था का व्यय हुआ। नयी अवस्था उत्पन्न हुई। ध्रुव तो रहा। वह अँगुली के कारण जीव वहाँ से ऐसे आया है, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। गजब बात, भाई!

एक मनुष्य कहता है कि भाई! यह पाँच लाख रुपये मैं देता हूँ। नोट को क्या कहा जाता है तुम्हारे? नोट-नोट। दस-दस हजार के नोट। भगवान कहते हैं, दस हजार के नोट में जो ध्रुव रजकण हैं, उनकी पर्यायरूप से पहले यहाँ थे। उनकी अवस्था बदलकर ऐसे गयी। वह उत्पाद-व्यय का प्रवाह जड़ का जड़ में हुआ और परमाणु का ध्रुवपना कायम रहा। साथ में खड़ा हुआ जीव दान का कदाचित् राग मन्त हो और इससे यह पैसा मेरे पास से गये और मैंने दिये, वह जड़ का स्वामी-मालिक होकर मिथ्यात्व को सेवन करता है। क्या परन्तु बराबर? पैसा जाये और मिथ्यात्व हो? कहो, क्या है इसमें?

यह भगवान की मूर्ति स्थापित की, ध्यान रखना। कहते हैं कि वह तो परमाणु का समुदाय है। उस परमाणु के समुदाय की पर्याय उत्पन्न होकर पूर्व की अवस्था का व्यय होकर, जहाँ स्थापित हुई, वह उसके पर्याय में उत्पाद-व्यय हुए। उस उत्पाद-व्यय का मूल लक्ष्य तो परमाणु है। आत्मा से वहाँ स्थापित होती है और आत्मा से पर में कुछ होता है, यह बात एकदम मिथ्यात्व से मानी हुई है। आहाहा! भारी काम, भाई! अथवा मैंने भगवान को देखा, इसलिए मुझे शुभभाव हुआ। कहो, बराबर है? नहीं? ले! शुभभाव तो यहाँ चारित्रगुण का उत्पाद-व्यय का जो प्रवाह है, उसमें से शुभभाव हुआ। अशुभ व्यय हुआ, शुभ हुआ और चारित्रगुण ध्रुवरूप रहा। यह तीन तो एक समय में एक में वर्तते हैं।

उसके बदले यह शुभभाव, इससे हुआ, वह दो द्रव्य को एक मानने की मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। ऐई! अब क्या? अभी तो तुम्हारे यह सब करना है न? अपने प्रेमचन्दभाई कहते थे, अभी रहने दो, मेरा होने के बाद कहना। ऐसा कहते न? प्रेमचन्दभाई थे न? हें! जो होना हो, वह होने के बाद कहना। पहले नहीं। परन्तु पहले और बाद में सब है, वह है यह। आहाहा!

भगवान! तेरी चीज़ में तेरापन और पर चीज़ में परपना, दोनों कभी एक नहीं होते। आहाहा! **युगपद् वर्तते हैं....** अब कौन युगपद वर्तता है? अनन्त आत्मा और अनन्त परमाणु, उनकी एक समय में सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में उत्पाद, व्यय और ध्रुव एक समय में एक साथ युगपद होते हैं। एक समय में, दूसरे समय में उसमें आगे-पीछे नहीं होता। कि ध्रुव पहले रहे और उत्पाद बाद में हो और व्यय पहले हो जाये। कैसे नाश होने के बाद उत्पाद हो न? अन्धेरे का नाश पहले हो और उजाले की उत्पत्ति बाद में हो। अन्धेरे का व्यय हो और उसी समय उजाले की उत्पत्ति हो और उसी समय में परमाणु ध्रुवरूप से कायम रहे। इस उजाले को दूसरा कहे कि मैं दीपक कर देता हूँ, इस बात में कुछ दम नहीं है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! भारी ऐसी बातें, भाई! पहले से ऐसा सच्चा सीखना? हें?

मुमुक्षु : खोटा सीखा जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहते थे न अपने शास्त्र से ज्ञान नहीं होता। लो, हरिभाई ने नहीं लिखा? बालपोथी में? वे कहें कि शास्त्र से ज्ञान होता नहीं। पहले से लड़कों को ऐसा सिखाना?

मुमुक्षु : यह तो कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'सत्थं णाणं ण हवदि' सब कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है। शास्त्र कुछ जानते नहीं, वे तो जड़ हैं। समझ में आया? जड़ के उत्पाद, व्यय और ध्रुव जड़ में हैं। यह उसके कारण यहाँ ज्ञान नहीं होता। ऐसा कहते हैं। अरे! अरे! गजब बात, भाई! यह तो नग्न सत्य है। खुला सत्य है। लोग नहीं कहते, खुला पत्र। आता है न भाई कुछ समाचार-पत्र में आता है न? खुला पत्र। अखबार में आता है। ऐसा आता है न? खुला पत्र। जाहिरनाम का देते हैं। भगवान कहते हैं कि खुला पत्र लिखते हैं कि कोई किसी परमाणु की पर्याय का उत्पाद दूसरा आत्मा और दूसरा परमाणु करे, यह तीन काल में नहीं बनता।

इस प्रकार खुले पत्र को तू पढ़ना। आहाहा! खुला ही रखा है न? इसमें कहाँ कुछ गुप्त रखा है? 'एवं भणंती सव्वं' ऐसा सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं। तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव अरिहन्त भगवान, श्री महावीर परमात्मा, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में तीन काल का ज्ञान है। ऐसे अनन्त तीर्थंकर केवली ऐसा फरमाते हैं, तू यदि महावीर को सर्वज्ञ मानता हो तो सर्वज्ञ और महावीर ऐसा कहते हैं कि परमाणु की किसी भी पर्याय में तेरा अधिकार नहीं है। उसके उत्पाद-व्यय का लक्षणस उसका और द्रव्य उसका लक्ष्य। समझ में आया? आहाहा! गजब बात भाई!

हम दूसरे को समझा देते हैं। कहते हैं कि तेरा अभिप्राय मिथ्या है। क्योंकि आत्मा है, वह तो उसमें ज्ञान की पर्याय है, वह तो यहाँ वर्तता है। वह ज्ञान की पर्याय वहाँ उसके पास जाती है? ज्ञानगुण का उत्पाद-व्यय हो तो आत्मा की पर्याय में होता है। ज्ञानगुण में उसकी पर्याय में होता है। वह उत्पाद-व्यय वहाँ होगा? यहाँ ज्ञान के उत्पाद के कारण, वहाँ ज्ञान उत्पन्न होगा? वहाँ उसका ज्ञानगुण जो है, उसकी पर्याय का उत्पाद वहाँ होगा। पूर्व अवस्था का व्यय होगा और ज्ञान ध्रुवरूप से रहेगा। यह भाईलालभाई रहे। भाईलालभाई! तुमने (संवत्) १९९९ में कहा था, खबर है न? हस्ताक्षर करने का कहा था। वहाँ जाना नहीं। कानजी नाम है तो कानबुट्टी पकड़ायेंगे। सवेरे सही (हस्ताक्षर) करने के लिये। संघ में लेखन करने के लिये। था न, भाईलालभाई? भाई गये थे। लो, कहते हैं उनका कानजी नाम है। वहाँ जाओगे तो कानबुट्टी पकड़ायेंगे। फिर नहीं हटो। ऐई शान्तिभाई! भाईलालभाई को ऐसा हुआ था। १९९९ की बात है न? पहले जब १९९९ में निकले न, (तब) खलबलाहट-खलबलाहट हो गया। स्थानकवासी में खलबलाहट हो गया। यह पहले निकले न, यह सब फेरफार हो गया। वहाँ जाना नहीं, जाना नहीं, बापू! यदि जाओगे तो वे कानबुट्टी पकड़ाते हैं कि ऐसा है, ऐसा दूसरा नहीं होता।

अरे! भगवान! बापू! तेरे निकट आत्मा है या नहीं? है? तू आत्मा है न भगवान! तेरी ज्ञान की पर्याय की उत्पत्ति जहाँ जाये, वहाँ तुझसे होती है। कोई पर से होती है, ऐसा है नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म। अब जरा आया। एक तो ऐसा कहा कि तीन भेददृष्टि से द्रव्य से भिन्न हैं। तथापि तीनों—उत्पाद-व्यय-ध्रुव एक समय में वर्तते हैं, तथापि स्वभावभूत है ऐसा। तीनों स्वभावभूत हैं, तीनो। आहाहा! ऐई! आत्मा में भी चारित्रगुण की विपरीत

रागपर्याय उत्पन्न हो और पूर्व की पर्याय व्यय हो, वह भी स्वभावभूत है। उसकी पर्याय है न, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : उसका भाव है या दूसरे का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका भाव है न? इस अपेक्षा से स्वभावभूत है। 'स्वस्य भवनम्' अपनी पर्याय में राग होता है, इसलिए उसे स्व—भाव कहने में आता है। स्वभाव अर्थात् वह यहाँ विभाव को यहाँ स्वभाव, ऐसा अभी यहाँ नहीं कहना। परन्तु इसकी पर्याय में स्वयं में राग होता है, इसलिए वह इसकी स्वभावभूतदशा है। आहाहा!

यहाँ तो पर से भिन्न करके अपना अस्तित्व अपने में सब समाहित हो जाता है, यह सिद्ध करना है न? फिर राग का जो विकल्प उठता है, वह स्वभाव नहीं, विभाव है; इसलिए स्वभावध्रुव चैतन्यभगवान है, उसकी दृष्टि कर तो स्वभाव धर्म की पर्याय उत्पन्न होगी और राग की पर्याय की एकताबुद्धि का नाश होगा और ध्रुवपना चैतन्य का कायम रहेगा, उसे धर्म होता है। आहाहा! कितने ही ऐसा कहते हैं कि बोलने में ही रखना है या नहीं? अरे भगवान! बोले कौन, प्रभु? आहाहा! यह तो समझाने की बात है। इसे बोले कौन और बोलने में रखे कौन? समझ में आया?

अन्तर के स्वभाव का स्वरूप स्वभावभूत है। कहते हैं, आत्मा में शुभराग की उत्पत्ति हुई अशुभराग का व्यय हुआ, चारित्रगुण का ध्रुव और द्रव्य का ध्रुवपना रहा, ये तीनों स्वभावभूत हैं। उसके स्वभाव की तीन दशा है। वह पर के कारण से नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **द्रव्य का लक्षण है।** लो! यह तीनों द्रव्य का लक्षण है। यह राग उत्पाद लक्षण, द्रव्य लक्ष्य। अरे! गजब बात, भाई! उसमें कहते हैं कि ज्ञान लक्षण और आत्मा लक्ष्य। यह तो एकदम गुण से और सबसे भिन्न पाड़कर ज्ञान में जानने का स्वभाव है, वैसा स्वभाव दूसरे गुण में भी नहीं, वैसा दूसरे में नहीं। इसलिए ज्ञान, वह लक्षण है; लक्ष्य, वह आत्मा है। राग लक्षण है और आत्मा लक्ष्य है, वहाँ ऐसा सिद्ध नहीं करना। यहाँ तो पर से द्रव्य भिन्न लक्ष्य सिद्ध करना है। इसलिए राग लक्षण है, और आत्मा द्रव्य, वह लक्ष्य है। समझ में आया? एक जगह कुछ आवे और दूसरी जगह कुछ आवे।

मुमुक्षु : यह तो बराबर है, विरोध नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : विरोध नहीं, भाई ! तुझे समझने में अन्तर पड़ता है। यहाँ तो एक-एक तत्त्व दूसरे से अत्यन्त भिन्न है। यह एक-एक परमाणु है, नाक के ऊपर, इसकी एक-एक अवस्था, उत्पाद, व्यय और ध्रुव वह परमाणु का स्वभावभूतभाव है। तथा दूसरे परमाणु के कारण उसमें है और आत्मा के कारण उसमें है, यह बात तीन काल में सत्य नहीं है। आहाहा !

जोर से बोलो, ऐसा नहीं आता ? कौन बोलता है भाई ! तुझे खबर नहीं है। वह तो परमाणु की आवाज की अवस्था, वह जड़ में जड़ के कारण से होती है। उसके बदले आत्मा ऐसा माने या दूसरा ऐसा माने कि इसने भाषण बहुत अच्छा किया। इसकी भाषा ऐसी सचोट है, भाषा आत्मा की है ?

मुमुक्षु : पण्डितजी की भाषा सचोट नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सचोट नहीं ? हें ! ऐई ! आहाहा ! भाषा किसकी हो भगवान ? भाषा, भाषा की होती है। आत्मा की भाषा होगी ? आत्मा का जड़ होगा ?

मुमुक्षु : बोलते हैं न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो व्यवहार से बतलाते हैं कि निमित्त कौन था। साथ में भाषा के समय निमित्त कौन था, इसलिए कहे कि केवली की वाणी। केवली की दिव्यध्वनि बोला जाता है, वह तो वाणी में निमित्त कौन था, इसका ज्ञान कराने के लिये (कहा जाता है)। बाकी वाणी, निमित्त है, इसलिए होती है, बिल्कुल नहीं। आहाहा !

वे कहते हैं न, भगवान की वाणी ६६ दिन तक नहीं खिरी। श्वेताम्बर कहते हैं कि वाणी निकली परन्तु कोई धर्म प्राप्त करनेवाला नहीं था। अभाविया पुण्य के ऐसे कोई दिन नहीं हो सकते, कोई दिन वीतराग की वाणी निकले और धर्म प्राप्त करनेवाला उपादान न हो, ऐसा नहीं हो सकता। तब वे कहते हैं कि गणधर आये तब वीतराग की वाणी निकली। यह भी खोटी बात है। वाणी वाणी के काल में, उत्पन्न होकर वाणी निकली है। यह केवली ने वाणी की नहीं और गणधर आये, इसलिए वाणी निकली - ऐसा भी नहीं। हें ? देव कहते—ऐसा होता ही नहीं। ऐसा कि पहली सभा में देव थे, मनुष्य नहीं थे। खबर है न, सब खोटा है। वीतराग की वाणी, पूर्व में ऐसा विकल्प था कि मैं पूर्ण होऊँ और दुनिया धर्म

प्राप्त करे। तो विकल्प में ऐसा बन्ध हो गया कि वाणी के समय धर्म प्राप्त करनेवाले न हों, ऐसा नहीं हो सकता। समझे? वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। तथापि वाणी के कारण से धर्म समझते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

दस अछेरा कहते हैं न? दस अछेरा खोटी बात, एकदम झूठी बात है। कल्पित खड़ी की हुई बात है। गजब बातें, भाई! दुनिया के साथ कहीं मेल खाये, ऐसा नहीं है। यहाँ तो परमेश्वर कहते हैं, उस वाणी की आवाज खिरती है, वह उत्पाद-व्यय और ध्रुव के तीन लक्षण से द्रव्य स्वभावभूत है, इसलिए होते हैं। वह आत्मा साथ में है, इसलिए भाषा होती है, ऐसा नहीं है। भगवान का केवलज्ञान अर्थात् उनकी दिव्यध्वनि-उत्कृष्ट वाणी निकले, ऐसा व्यवहार से निमित्त उत्कृष्ट हो, ऐसा बतलाने के लिये बात कही जाती है। वाणी तो वाणी के कारण से उस काल में स्वतन्त्र उत्पाद, व्यय और ध्रुव होता है। समझ में आया? यह तो सब भूतकाल का आग्रह मिटाना पड़े। कितनी ही मान्यता कर रखी हो न? इसका ऐसा होगा और इसका ऐसा होगा। आहाहा!

वे द्रव्य का लक्षण हैं। लो, ठीक। भगवान आत्मा उसमें उपजे और ऐसी अनन्तगुण की अवस्था और पूर्व की अवस्था व्यय हो, एक प्रवाहरूप चले और ध्रुव को छोड़े बिना एक जाति का ध्रुव रहे और उस एक जाति का प्रवाह छोड़े बिना ऐसा हो। जाति को छोड़े नहीं, उस जाति से विरुद्ध का प्रवाह नहीं। यह तो किस प्रकार का व्याख्यान परन्तु यह! ऐसा कहो कि अपवास करो, व्रत करो, रात्रिभोजन नहीं करो, कन्दमूल नहीं खाओ। यह तो सब जड़ की कर्ताबुद्धि, वह तो मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? वे कहे भगवान ने किसलिए यह कहा? पहला तो कहे कि अप्रशस्त राग छुड़ाओ और देव का प्रशस्त राग कराओ। परन्तु यह तो अनन्त बार हुआ है, सुन न! यह तो अनन्त बार किया है।

मुमुक्षु : हुआ है और आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो आता है और करता है। समझ में आया? आहाहा! दूसरा लक्षण पूरा हुआ।

दूसरा लक्षण कौन सा? उत्पाद, व्यय, ध्रुव। एक लक्षण द्रव्य—सत्द्रव्यलक्षणम्। यह तत्त्वार्थसूत्र में आता है। 'सत्द्रव्यलक्षणम्' यह इसका पहला हुआ। पहला इस ओर।

यह उत्पादव्ययध्रुवयुक्तंसत्, यह दूसरा हुआ।

अब तीसरा। **गुणपर्यायें द्रव्य का लक्षण है।** प्रत्येक आत्मा और यह परमाणु जो भिन्न-भिन्न चीज़ है, उसके गुण अर्थात् शक्तियाँ और पर्याय अर्थात् अवस्था। गुण और पर्याय वह द्रव्य का लक्षण है। उसके गुण और उसकी शक्ति और उसकी दशायें, वह द्रव्य का लक्षण है। यह विस्तार से समझाते हैं, हों! उस उत्पाद-व्यय में पर्याय आयेगी और ध्रुव में गुण आयेंगे। सब एक में समाहित हो जायेगा। समाहित कर देंगे। समझ में आया?

इसमें कहीं पाँच हजार, दस हजार लोगों की सभा प्रसन्न हो, (ऐसा कुछ नहीं है)। प्रसन्न हो, न प्रसन्न हो, वस्तु तो यह है। उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। बहुत लोग सुनें और बहुत लोग धर्म प्राप्त करे, वह कोई झूठ से धर्म पावे, ऐसा है? आहाहा! वस्तु की स्थिति से दूसरे प्रकार से कहे तो दूसरे धर्म पा जायें, यह झूठी बात है। झूठी श्रद्धा को पाते हैं।

अथवा, गुणपर्यायें द्रव्य का लक्षण है। अनेकान्तात्मक वस्तु के.... अब क्या कहते हैं? गुण-पर्यायें जो परमाणु हैं, उसमें वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श, उसका गुण है। उसमें हरी, लाल, काली पर्याय उसकी अवस्था है। आत्मा में ज्ञान-दर्शन आदि गुण हैं और उनकी मति-श्रुत आदि पर्यायें हैं। ऐसे-ऐसे जो गुण हैं और पर्यायें, द्रव्य का लक्षण है। अनेकान्तिक—अनेक धर्मस्वरूप वस्तु के—प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु में अनेक धर्म है। धर्म अर्थात् शक्ति और पर्याय, ऐसे वस्तु के अन्वय विशेष, वे गुण हैं। नीचे लिखा है। अन्वय और व्यतिरेक के लिये १४वें पृष्ठ पर पदटिप्पण देखो। चौदहवें पृष्ठ पर है। कितने पृष्ठ पर है। अन्वय=एकरूपता चौदहवें पृष्ठ पर नीचे है। सदृशता 'यह वही है।' ऐसे ज्ञान के कारणभूत एकरूपपना। गुणों में सदा सदृश रहती होने से, उनमें सदा अन्वय है, इसलिए वे गुण द्रव्य के अन्वयी विशेष (अन्वयवाले भेद) हैं। लो!

जैसे आत्मा, तो आत्मा का ज्ञान। ज्ञान सदृश कायम रहनेवाला है। उसकी अवस्था बदलती है परन्तु गुण तो कायम (रहता है)। वह ज्ञान... वह ज्ञान... वह ज्ञान... वह ज्ञान... वह ज्ञान... सदृशरूप से रहे, वह गुण है और अवस्था बदले, वह उसकी पर्याय है। ऐसे परमाणु, ऐसे व्यतिरेक, देखो! भेद=एक का दूसरेरूप नहीं होना। आत्मा में और परमाणु में जो अवस्था होती है, वह एक अवस्था दूसरेरूप रहती (नहीं), दूसरे काल में रहती

नहीं। गुण तो वह का वह रहता है। अवस्था वह की वह नहीं रहती। केवलज्ञान भी पर्याय व्यतिरेक है। आहाहा!

आत्मा में केवलज्ञान हो, वह भी व्यतिरेक—भिन्न-भिन्न अवस्था है। पहले समय में केवलज्ञान हो, वह दूसरे समय में नहीं होता। ले, केवलज्ञान में भी ऐसा? ज्ञानगुण में तो वह... वह... वह... वह... वह... सदृशगुण, परन्तु केवलज्ञान में पहले समय में है, वह दूसरे समय में नहीं है। इसलिए केवलज्ञान, वह पर्याय है। पर्याय के लिये व्यतिरेक अर्थात् भिन्न-भिन्न होती है। वह की वह जाति की होने पर भी, वैसी की वैसी होने पर भी, वह की वह रहे, ऐसा नहीं है। ऐसा सूक्ष्म है। रमणीकभाई! यह बहुत ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है। लो। वह वार्ता हो न, एक अमुक हो गया और अमुक हो गया तो सुन ली जाये। घर में कहना भी हो। यह क्या कहते हैं मुश्किल-मुश्किल से समझे और उसमें घर में कहे क्या सुन आये? कुछ कहते थे उत्पाद, व्यय और ध्रुव और गुण-पर्यायवाला द्रव्य ऐसा कहते थे। द्रव्य क्या होगा और गुण-पर्याय क्या होंगे? क्यों दवा ले और रोग मिटे, वह दवा का गुण हुआ। दवा का गुण हुआ या नहीं? यह रोटियाँ खायीं और भूट मिटी, वह गुण हुआ, यह नहीं। यहाँ गुण क्या करे? धूल वहाँ।

आत्मा और परमाणु में कायम सदृश्य शक्ति रही हुई है, उसे गुण कहा जाता है। यह तो जिसे जन्म-मरण को छोड़ने का पन्थ है, वह पकड़ना हो, हें? ओहो! उसके लिये है भाई! दुःखी... दुःखी... दुःखी... चौरासी के अवतार में दुःखी है। भाई! इसे कहीं सुख नहीं है। सेठिया हो तो दुःखी, पैसावाला हो तो दुःखी, निर्धन दुःखी, सधन दुःखी, स्त्री दुःखी, पुरुष दुःखी, नपुंसक दुःखी, चींटी दुःखी, कुंजर दुःखी, राजा दुःखी, चक्रवर्ती दुःखी, इन्द्र दुःखी। भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति के भान बिना उसकी अवस्था में विकार की उत्पत्ति और व्यय हो, वह दुःखी है। उस दुःख को उत्पन्न करना और व्यय होना, वह स्वतन्त्र द्रव्य का स्वभाव है, कहते हैं। वह कहीं कर्म के कारण नहीं है। ऐई! कर्म के कारण भटकता है, (इससे) यहाँ भगवान इनकार करते हैं। तुम्हारे गुरु के साथ चर्चा करनी है न? क्या हुआ? आहाहा!

यहाँ बहुत वर्ष पहले चर्चा चली थी, बहुत-बहुत साधु इकट्ठे हुए थे। एक देवचन्दजी और एक वे शिवगंज के कौन? शिवगंज के नहीं, शिवपुरी के, विद्यानन्दजी धर्मविजय के

शिष्य, धर्मसूरी के शिष्य थे। विद्यानन्दजी। बहुत साधु इकट्ठे हुए थे। बहुत वर्ष की बात है। फिर चर्चा होती थी। कल्याणचन्दजी और हम सब। (वे लोग कहे) कर्म के कारण विकार होता है, कर्म के कारण विकार होता है। हमने कहा बिल्कुल हराम है, कर्म के कारण विकार हो तो। कहा, यह सब तुमने क्या लगायी है? विकार जब तक होता है, तब तक अपनी पर्याय का एक प्रकार का धर्म है। और छोड़ दे तो स्वभाव की दृष्टि करे तो विकार छूट जाता है। कहीं पर के कारण छूटता है या यह क्रिया की, इसलिए विकार छूटता है (ऐसा नहीं) किसकी क्रिया की, जड़ की? कहते हैं, समझ में आया?

व्यतिरेक है न? एक-दूसरेरूप नहीं होना। यह वह नहीं—ऐसे ज्ञान के निमित्तभूत भिन्नरूपपना, एक पर्याय दूसरी पर्यायरूप नहीं होने से पर्याय में परस्पर व्यतिरेक है। इसलिए पर्यायें द्रव्य के व्यतिरेकवाले विशेष हैं। व्यतिरेक विशेष हैं। क्या कहा? वह यह परमाणु है न? उसमें रंग, गन्ध, रस, स्पर्श ये शाश्वत् गुण हैं। और उनकी अवस्था हरी, पीली होना, वह व्यतिरेक है। अर्थात् भिन्न-भिन्न अवस्था होती है। भिन्न-भिन्न अवस्था हो, वह व्यतिरेक—पर्याय विशेष, एकरूप रहे, वह गुण विशेष। वे दोनों-गुण और पर्याय, वह द्रव्य का लक्षण है। सामान्य जो द्रव्य, उसके विशेष दो हैं। सामान्य जो द्रव्य उसका गुण और पर्याय विशेष है। यह सामान्य द्रव्य का भेद मिटकर उसके गुण और पर्याय दूसरे के हों, दूसरे के हों—ऐसा नहीं है। समझ में आया? और दूसरे की विशेष अवस्था से यहाँ विशेष अवस्था हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

अनेकान्तात्मक वस्तु के अन्वय विशेष, वे गुण हैं। अन्वय अर्थात् कायम रहनेवाले। ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... आत्मा में ऐसा एक विशेषगुण है। व्यतिरेक विशेष है। केवलज्ञान, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान वह व्यतिरेक पर्याय है। यह सिद्ध की पर्याय एक समय की होती है, वह दूसरे समय में नहीं होती। गजब..! सिद्ध भी बदलते होंगे? वे उनके गुण-पर्याय तो उनके लक्षण हैं। ऐसा कहते हैं। यह तो उनका लक्षण है। समझ में आया? व्यतिरेक विशेष वह पर्याय है। भिन्न-भिन्न अवस्था होना। आत्मा में मतिज्ञान है, श्रुतज्ञान है, दूसरे समय वह टलकर केवलज्ञान होता है। तो कहते हैं कि पर्यायें भिन्न-भिन्न हैं। समझ में आया? इसलिए उन्हें भिन्न-भिन्नरूप से व्यतिरेकी कहा जाता है और गुण है, वह के वह हैं। ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान, श्रद्धा... श्रद्धा... श्रद्धा, शक्ति, हों! आनन्द...

आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द त्रिकाल रहनेवाला आनन्द, उसे गुण कहते हैं, नयी-नयी अवस्था हो और उपजे, उसे पर्याय कहते हैं। वह गुण और पर्याय द्रव्य—वस्तु का लक्षण है। उसमें ऐसा आया था, देखो! 'गुणपर्यायआसयम्' गुण और पर्याय का आश्रय, वह द्रव्य है। ऐसा मूल गाथा में आया था न?

आत्मा के गुण और उसकी अवस्था का आधार-आश्रय द्रव्य है। वह परवस्तु नहीं। उस परवस्तु के गुण और पर्याय का आधार, वह परवस्तु है; आत्मा नहीं। इस प्रकार प्रत्येक की भिन्नता जैसी है, वैसा यथार्थज्ञान होना, उसमें मिथ्याज्ञान का जाना, यथार्थज्ञान का होना और गुण का कायम रहना, ऐसा वस्तु का स्वरूप है। ऐसा समझ, उसे सम्यक्ज्ञान होता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

धारावाही प्रवचन नं. १९ (प्रवचन नं. १८), गाथा-१०
दिनांक - ०२-१२-१९६९, कार्तिक कृष्ण ८, मंगलवार

यह पंचास्तिकाय। षट्द्रव्य पंचास्तिकाय है न? दसवीं गाथा-अन्तिम पैराग्राफ है। **द्रव्य के इन तीनों लक्षणों में से....** क्या कहा? जरा सूक्ष्म बात है न? कि यह जो आत्मा है और यह परमाणु हैं, यह जगत के तत्त्व। उन प्रत्येक द्रव्य में उसमें तीन लक्षण हैं। जगत की प्रत्येक वस्तु है, जितनी अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और आकाश। तो प्रत्येक द्रव्य सत् लक्षणवाला है। स्वयं के कारण से अस्तित्व लक्षणवाला है। पर के कारण से वह अस्तित्व है नहीं। समझ में आया?

यह आत्मा है, वह सत् लक्षण अर्थात् अपने कारण से अस्तित्ववाला स्वयं तत्त्व है। दूसरा कोई ईश्वर है या दूसरा कोई कर्ता है, उसके कारण आत्मा अस्तित्ववाला है, ऐसा नहीं है। इसी प्रकार यह परमाणु जो हैं, वह तो रजकण। यह तो बहुत रजकण का पिण्ड है। यह तो अजीव है। इसका जो एक-एक रजकण है, वह सत् के कारण से अस्तित्ववाला है। उसके अस्तित्वगुण के कारण वह है। दूसरे आत्मा के कारण वह है नहीं। कहो, बराबर है? जड़ में शक्ति होगी? ऐसा एक बार प्रश्न हुआ। आत्मा के कारण यह सब जड़ काम करते हैं, अकेला जड़ काम करे? कैसे हुआ? कल जाना है। ठीक समझ गया। कहो, समझ में आया इसमें?

यह परमाणु एक-एक रजकण है, वह शक्तिवाला तत्त्व है। शक्ति कहो या गुण कहो। और उसमें एक समय-समय में नयी पर्याय हो, ऐसा वह द्रव्य है। सत् द्रव्य है। सत् है। वह परमाणु भी सत् है। और उस सत् का स्वरूप उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला है। नयी-नयी अवस्थायें उपजे, पुरानी अवस्था से व्यय हो, गुणरूप से ध्रुव रहे। तो उसमें अनन्त शक्ति है। एक-एक परमाणु में भी अनन्त शक्ति है। वह उसके कारण से बदलता है, उसके कारण से उपजता है और उसके कारण से टिकता है। दूसरे किसी पदार्थ के कारण से वह हिलता है या बोलता है या शरीर की गति होती है, ऐसा है नहीं—ऐसा कहते हैं। छगनभाई नहीं अभी? ....समझ में आया? जितने अनन्त तत्त्व-द्रव्य हैं, वे स्वयं सत् एक लक्षण है। इसलिए स्वयं हैं, ऐसे गुण के कारण वे हैं। दूसरे के कारण है, ऐसा नहीं है। और उस सत्

का दूसरा लक्षण उत्पाद-व्यय-ध्रुव है। 'सत्द्रव्यलक्षणम्' और 'उत्पादव्ययध्रुव' भी द्रव्य का लक्षण है।

प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु में उत्पाद-व्यय और ध्रुव—अवस्था से उपजना और एक अवस्था से जाना (व्यय) और ध्रुव रहना। वह उसका लक्षण है। तो एक सत् लक्षण कहा, दूसरा उत्पाद-व्यय-ध्रुव कहा, और टिकना-उपजना और बदलना, उसमें उसके कारण से है। आत्मा के कारण से परमाणु में कुछ नहीं है। समझ में आया इसमें? बराबर होगा यह, भीखाभाई? यह लोग नहीं कहते कि भाई! अपने वस्त्र को व्यवस्थित रखना, (इसलिए) शीघ्र फट न जाये। हमारे लाठी में एक व्यक्ति था। जेरामभाई। कितने वर्ष की पगड़ी (थी), ऐसे धीरे से लेकर रखे। वस्त्र नीचे बिछाकर रखे। कितने वर्ष की (पगड़ी), एक की एक (थी)। वह कैसे टिकी रही तो कहे बहुत सावधानी थी, इसलिए (टिकी रही)।

मुमुक्षु : खोटी बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : ले, यह खोटी बात? ऐसा बहुत वह था। कंजूस नहीं, हों! ऐसा कर्कशी। कर्कशी था। जेरामभाई को तुमने देखा है नहीं? नहीं न? भावसार था। भाई बाबूभाई को बहुत करकसी-करकसी, हों! कंजूसी नहीं। और खाये तब घी सेर, दो सेर खाये। न खाये तो बराबर सुरक्षित जैसा हो वैसा। तब वह सावधानी से ऐसा कपड़ा (रखे), उसकी पगड़ी ऐसी थी अच्छी हो, ठीक रहे। ऐसे धीरे से रखे, उसके ताने-बाने का (ख्याल रखे)। धीरे से रखे। दबाकर नहीं, ऐसे दबावे नहीं। दबाये तो ताना-बाना पोचा पड़ जाये। ऐई! बिखर जाये। ऐसे नीचे रखे तो। एक वस्त्र रखकर, उसके ऊपर रखे, और ऊपर पतला बारीक वस्त्र ढाँक दे। उसके कारण टिकती होगी या नहीं?

कहते हैं, प्रत्येक परमाणु उसकी अपनी पर्याय से सदृश ध्रुव की शक्ति से टिक रहा है। और उसे यह उत्पाद की पर्याय से वह उपजता है। दूसरे के कारण से कहीं टिके या पर में फेरफार हो, ऐसा है नहीं। कहो, सवालालजी! क्या होता होगा यह सब? पैसा-बैसा बनाये रखते होंगे या नहीं? यहाँ तो बात क्या होती है? इस जगत में जितने तत्त्व हैं, अनन्त परमाणु, अनन्त आत्मा, वे स्वयं के कारण से टिके हैं। अपने कारण से नयी अवस्थारूप

धारण करते हैं। और अपने कारण से पूर्वरूप बदलते हैं। उसके लिये कहीं पर की आवश्यकता नहीं है। यह दूसरा लक्षण कहा। यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि एक लक्षण में तीनों आ जाते हैं। समझ में आया? इन तीन लक्षणों में से 'सत्', दूसरा 'उत्पाद-व्यय-ध्रुव' और तीसरा 'गुण-पर्याय'। प्रत्येक पदार्थ उसकी शक्तिवाला है और अवस्थावाला है। बस इसमें, दो।

शक्तिवाला है और अवस्थावाला है। अर्थात् बदलने के रूपवाला है और टिकनेवाला है। ऐसा प्रत्येक तत्त्व का स्वतः लक्षण स्व के कारण से है। कहो, समझ में आया इसमें? खाने-पीने का ध्यान रखे तो शरीर में निरोगता रहे। हें?

मुमुक्षु : इस बात में कुछ माल नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पथ्य आहार करे तो निरोगता रहे, अपथ्य करे तो निरोगता न रहे। यहाँ तो कहते हैं, अपथ्य आहार किसे कहना? वह भी एक स्वतन्त्र परमाणु की स्वतन्त्र पर्याय है। उस पर्याय के कारण से शरीर में कोई दूसरी पर्याय हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

शरीर के एक-एक रजकण, एक-एक पॉईन्ट रजकण सत् है। उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला है और गुण-पर्यायवाला है। वह स्वयं के कारण से है। उसमें पर के कारण से कुछ नहीं है। फिर कहे, भाई! पर के कारण से नहीं, इसमें कहाँ आया? यह तो इसमें नहीं आया न? यह अस्ति कही। सअब अपने कारण से है। स्वयं स्वयं के कारण से। पर पर के कारण से। अपने कारण से पर में कुछ है, ऐसा है नहीं। बराबर होगा यह? इसकी उल्टी मान्यता है। देखो, यह कहते हैं।

द्रव्य के इन तीनों लक्षणों में से सत् लक्षण एक। है भाई वहाँ? कोष्ठक में है। **(उत्पादव्ययध्रौव्य तथा गुणपर्यायें इन तीन लक्षणों में से) एक का कथन करने पर शेष दोनों (बिना कथन किए) अर्थ से ही आ जाते हैं।** अब इसे मिलाते हैं। यदि द्रव्य सत् हो, जो वस्तु आत्मा और परमाणु जो द्रव्य है, वह सत् है। सत् है तो वह उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला है। क्योंकि सत् है, वह नित्यानित्य है। यह आगे कहेंगे। क्योंकि जो सत् है, द्रव्य है, वह नित्यानित्य है। नित्यानित्य है तो उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला हो गया। उत्पाद-व्यय वे

अनित्य हैं और ध्रुव, वह नित्य है। समझ में आया?

यदि द्रव्य सत् हो, 'है' हो तो वह (१) उत्पादव्ययध्रौव्यवाला और (२) गुणपर्यायवाला होगा;..... एक बोल हुआ। फिर उसे मिलायेंगे। जो उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला हो तो प्रत्येक जो आत्मा और परमाणु समय-समय में अवस्था उपजे और बदले और टिकनेवाला हो तो वह सत् और गुण-पर्यायवाला हो। यह तो बहुत सरल है, हों! इसमें कुछ बहुत ऐसा नहीं है। अभ्यास नहीं होता, इसलिए लोगों को बाहर में यह किया और यह किया और यह छोड़ा और यह छोड़ा...

मुमुक्षु : यह पढ़ने की और समझने की फुरसत नहीं मिलती।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं मिलती। साधु को फुरसत नहीं मिलती। नाम धरावे साधु, साधक और माने सब बाधक। हम पर की दया पालते हैं। पर की रक्षा करते हैं। कौन (करे)। दूसरे द्रव्य जो स्वतन्त्र हैं, वह उसकी रक्षा की पर्याय बिना का है? उसकी पर्याय से उसकी रक्षा है। तेरी रक्षा से रहे, ऐसा है? शोभालालजी! ओहोहो! शिष्यों का पालन करते हैं। लो! और यह आया। पालन कौन करे? कौन करे? आचार्य का आत्मा अलग, शिष्य का आत्मा अलग। उसके आत्मा का उसका सत् है। सत् है, वह उससे है। और उसे सत् है, इसलिए उत्पाद-व्यय और ध्रुवपना है। शिष्य की नयी-नयी अवस्था उपजती है, वह उसके कारण से है। दूसरे के कारण से उसमें है नहीं। ऐसी बात। और जो उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला हो, वह सत् है। जो नयी अवस्था से उपजे, पुरानी जाये और ध्रुव रहे, वह सत् होता है और वह गुण पर्यायवाला होता है। दो बोल मिलाये। दो मिलाये। तीसरा।

जो गुण पर्यायवाला होता है, जो वस्तु शक्तिवाली और अवस्थावाली होती है, जो कोई आत्मा और परमाणु गुणवाला और पर्यायवाला हो तो वह सत् और उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला होता है। कहो, समझ में आया इसमें? अब इसे मिलाते हैं। स्वतः सत्ता में हो, उतना मिलाते हैं। अब मिलाते हैं। कि इस प्रमाण—यह तो महासिद्धान्त है। यह जो सत् जो है न? 'सत्द्रव्यलक्षणम्' यह उमास्वामी ने जो तत्त्वार्थसूत्र बनाया, उसमें यह पाँचवें अध्याय का ३९वाँ सूत्र है। यह तो कुन्दकुन्दाचार्य का सूत्र है। फिर उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र बनाया। (जो) दिगम्बर मुनि-सन्त थे। इनके शिष्य (थे)। उन्होंने दस अध्याय बनाये।

तत्त्वार्थसूत्र में दस अध्याय। उसका पाँचवाँ अध्याय इसका 'सत्द्रव्यलक्षणम्' ऐसा २९वाँ सूत्र बाँधा। 'सत्द्रव्यलक्षणम्' जो वस्तु है, वह अस्तित्व के लक्षणवाली है। उसके अस्तित्व के लिये दूसरे की आवश्यकता नहीं है। जड़ भी जड़पने के अस्तित्ववाला है। उस जड़ की शक्ति को दूसरा दे, ऐसा है या? जड़ स्वयं सत् है और सत् है वह ध्रुव और उत्पाद-व्ययवाला है, इसलिए गुण और अवस्थावाला है। गजब...! परमाणु में गुण मानना। हें?

मुमुक्षु : दवा से लाभ होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी होता नहीं। दवा से किसे लाभ होता है? दवा की पर्याय भिन्न है। शरीर की पर्याय भिन्न है। दोनों बात है यह तो। क्या तुम्हारे बड़े भाई दवा बहुत खाये, तो श्वास तो रहा ही करता है। यह जो एक-एक परमाणु है, वह तो बहुत परमाणु का दल है। यह दाँत तो बहुत रजकणों का पिण्ड है। यह कहीं आत्मा नहीं है और इस दाँत के जो एक-एक परमाणु हैं, वे सत् हैं। सत् हैं। इसलिए स्वयं से हैं। वह सत् अपने गुण के कारण है। वह कोई इस आत्मा के कारण यह दाँत हुआ है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

और दाँत से जो वह रोटी टूटती है, वह दाँत के कारण रोटी नहीं टूटती, यहाँ ऐसा कहते हैं। उन परमाणुओं में जो संघात था; ऐसा इकट्ठा था, उसका भेद हुआ, वह उसके कारण से हुआ है। दाँत के कारण से नहीं। ऐसा सर्वज्ञ वीतरागदेव का तत्त्व है। बिल्कुल नहीं। यही कहते हैं न? संयोगी तो अपनी चीज़ है। संयोगी भी अपने सत्वाली चीज़ है। पर हो तो भी वह अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुववाली है। वह भी अपने गुण-पर्यायवाली है। क्या करे? आहाहा! समझ में आया? २९वाँ सूत्र है। और जो यह दूसरा है न, उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला, यह तीसवाँ सूत्र है।

उमास्वामी का पाँचवाँ अध्याय है। यह (तत्त्वार्थसूत्र) जैन की गीता कहलाती है। दिगम्बर उमास्वामी, वे कुन्दकुन्दाचार्य महाराज के शिष्य थे। उन्होंने बनाया है। उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रुव जो लक्षण है, वह तीसवाँ सूत्र हैं। और गुण-पर्यायवाला जो है वह ३८वाँ सूत्र है। समझ में आया? आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने तो पूरी दुनिया को विभाजन डालकर जैसा है, वैसा भिन्न बतला दिया है। समझ में आया? शरीर से यह वनस्पति के टुकड़े हों, ऐसा नहीं है - ऐसा कहते हैं। इस वनस्पति के जो परमाणु जड़ हैं, उनका जो

संघात ऐसे इकट्ठे रजकण थे, उन्हें पृथक् पड़ने की पर्याय का उत्पाद हुआ, वह परमाणु के कारण हुआ। शरीर के कारण नहीं। समझ में आया? अरे! गजब प्रभु!

तो कहते हैं, अब एक में तीन लक्षण कैसे अर्थरूप से समाहित हो जाते हैं, कि जो परमाणु और आत्मा सत् है, **वह नित्यानित्यस्वभाववाला होने से....** लो! यह सत् है, वह नित्यानित्यस्वभाव है। आत्मा और परमाणु सत् है, वह नित्यानित्यस्वभाववाला है। नित्य अर्थात् ध्रुव और अनित्य अर्थात् पर्याय, ऐसा सत् का स्वरूप है। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु का सत् स्वरूप है और सत् है, इसलिए वह नित्यानित्यस्वरूप है। गजब भाई! अब यह तो (कहे) भाई! दया पालन करो और व्रत पालन करो, तप करो। सीधे जाओ मिथ्यात्व सेवन करो। यहाँ तो कहते हैं कि पर की दया पालने का तेरा भाव हो, (वह) शुभ विकल्प है। इसलिए उसमें पर की दया की पर्याय उत्पन्न हुई और वह पला, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। शोभालालजी! अभी ऐसी सूक्ष्म बात चलती है। आहाहा!

जो सत् है। भगवान आत्मा सत् है। तो वह नित्य और अनित्य स्वरूपवाला ही है। वह स्वयं से वह सत् नित्य-अनित्यस्वरूपवाला है। परमाणु सत् है। यह रजकण पॉईन्ट। तो वह स्वयं से नित्य-अनित्यस्वरूपवाला ही वह सत् है। समझ में आया? उसके नित्यपने के लिये दूसरे की आवश्यकता नहीं और उसके पलटने के लिये दूसरे की आवश्यकता नहीं। आहाहा! ऐसा तो स्वरूप है। ऐसा माने कि अजीव को जीव माने तो मिथ्यात्व, ऐसा वापस (ऐसा माने) अजीव की पर्याय जीव करे, क्योंकि अजीव में शक्ति नहीं है। हें? क्या कहा यह? यह आत्मा-भगवान आत्मा (उसका) स्वयं का सत्स्वरूप है। सत् है न? 'है' वह होता है या न हो वह होता है? हें? यह 'है' ऐसे जो लक्षणवाला आत्मा, कहते हैं कि सत् है तो उसका स्वभाव नित्यानित्य है। कायम रहता है (और) अवस्था से क्षण-क्षण में बदलता है।

यह सत् नित्यानित्य स्वरूपवाला ही है। उसे-सत् को बदलने के लिये दूसरे पदार्थ की आवश्यकता है, ऐसा नहीं है। क्योंकि अनित्य स्वयं का स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? चावल है, वह कच्चे के पक्के होते हैं, कहते हैं कि वह सत् है। और सत् है, इसलिए वह नित्यानित्य स्वरूपवाला है। ध्रुव कायम रहता है, वह नित्य है और कच्चे की

पकी पर्याय हुई, वह अनित्य है। वह स्वयं के कारण से है। पानी के कारण से कोई चावल पका, अग्नि के कारण से चावल पका, ऐसा वस्तु के स्वरूप में नहीं है। अज्ञानी भ्रम से-भ्रमणा से असत्य को सत्य मानता है। सत्य को सत्य रीति से नहीं मानता। आहाहा!

जो सत् है वह नित्य-अनित्य स्वभाववाला है। देखा? वह तो उसका नित्य का नित्य और अनित्य का स्वभाववाला सत् है। जितने भगवान ने छह द्रव्य देखे, वे सब सत् है। 'हैं' और इससे वे नित्य टिकें और बदलें, ऐसा उनका स्वभाव ही है। टिकना और बदलना, ऐसा उनका स्वभाव ही है। उनके टिकने के लिये दूसरे की आवश्यकता नहीं है। तथा उनके बदलने के लिये दूसरे की आवश्यकता नहीं है। संयोग हो तो बदले, ऐसा नहीं है, क्योंकि संयोगी चीज़ स्वयं ही सत् है और वह भी नित्य और बदलनेवाली है। आहाहा! सूक्ष्म सही सूक्ष्म। वीतराग तत्त्व ऐसा सूक्ष्म है। ऐसा बोले, जीव अजीव को जाना न हो, उसे मिथ्यात्व लगता है। जीव और अजीव को जानना चाहिए। जीव-अजीव अर्थात् अनन्त जीव और अनन्त अजीव। वे सब स्वयं अपने अस्तिरूप है। और अस्तिरूप हैं, वे नित्य-अनित्य हो तो वे अस्तिरूप रहे। क्योंकि सत् का स्वरूप ही नित्य और अनित्यरूप है।

और ध्रौव्य को और उत्पादव्ययात्मकता को प्रगट करता है.... क्या कहा? सत् है, वह नित्य-अनित्य स्वभाववाला होने से अब उत्पाद, व्यय और ध्रुव के साथ मिलाते हैं। उत्पाद-व्यय-ध्रुव के साथ (मिलाते हैं)। **सत् नित्यानित्यस्वभाववाला होने से ध्रौव्य को और उत्पादव्ययात्मकता को प्रगट करता है....** प्रत्येक वस्तु भिन्न-भिन्न सत् है और वह नित्य-अनित्य स्वरूप है, इसलिए वह उत्पाद-व्ययरूपी अनित्यता को और नित्य ऐसा ध्रुव, उसे प्रसिद्ध करती है। अभी तक क्या किया यह तुमने उस वांकानेर में, बँगला बड़ा किया और यह वह, कहते हैं न लोग, द्वन्द्व में गया, बहुत दिक्कत है।

यहाँ तो कहते हैं राग बाँधा, वह भावबन्ध है। वह भावबन्ध करे। उस उत्पाद को-भावबन्ध को करे। पूर्व पर्याय का व्यय करे और ध्रुवपने रहे। सत् है, वह नित्य-अनित्य स्वभाववाला है। इसलिए वह नित्य है, वह ध्रुव है। अनित्य है, वह उत्पाद-व्यय है। इसलिए सत् है, वह उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला सिद्ध हो गया। नित्य-अनित्य स्वभाव के कारण वही सत् उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला सिद्ध हो गया। गजब भाई! ऐसा कहेंगे, इसकी

अपेक्षा तो यात्रा कर आओ भाई! परन्तु कहते हैं, तेरा आत्मा सत् है, नित्य-अनित्यस्वरूप है। इसलिए जहाँ जाये वहाँ तेरी पर्याय तुझसे उत्पन्न होती है। उसके (बदले) ऐसा माने कि यह भगवान के दर्शन किये, इसलिए मेरी पर्याय उत्पन्न हुई तो उसे उत्पाद-व्यय और ध्रुववाला सत् है, उसकी श्रद्धा की खबर नहीं। समझ में आया?

माल कहाँ? न्याय से जो है, वह है। अपनी पर्याय अपने से उत्पन्न होती है। अपनी पर्याय अपने से व्यय होती है। किसी पर के कारण से होती है, ऐसा है (नहीं)। गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : सत्य बात तो यही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भई! साधु के दर्शन करे वहाँ भाव बदल जाये? स्त्री के पास बैठा हो और भाव दूसरे हों, वहाँ भाव दूसरा हो। होता है या नहीं? होता तो है दूसरा परन्तु किसके कारण, यह प्रश्न है। समझ में आया? भाव दूसरा होता है सही, परन्तु वह भाव स्वयं के कारण दूसरा होता है। पर के कारण दूसरा नहीं होता। कहो, समझ में आया?

नित्यानित्यस्वभाववाला होने से ध्रौव्य को और उत्पादव्ययात्मकता को प्रगट करता है.... कैसी शैली ली है, देखो न, ओहोहो! जो कोई आत्मा और यह एक-एक परमाणु, वे सत्‌रूप हैं, इसलिए वे नित्य और अनित्य स्वभाववाले हैं। और इसलिए वे ध्रुव और उत्पाद-व्यय को प्रसिद्ध करते हैं। ध्रुव, वह नित्य है और अध्रुव अनित्य, वह उत्पाद-व्यय है। इसलिए सत् नित्यानित्य को प्रसिद्ध करता हुआ उत्पाद-व्यय-ध्रुव को भी प्रसिद्ध करता है। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया इसमें? अब इसमें कितनी होशियारी से पैसे प्राप्त हो? ध्यान न रखे तो पैसा जाये, ऐसा बराबर होगा? एकदम खोटा। आहाहा! चलते (हों तब) ध्यान रखो, ईर्यासमिति से चलो, नहीं तो जीव मर जायेंगे। कहते हैं कि बात खोटी है। अरे! ऐसी कठिन बात। समझ में आया?

तेरा भाव वहाँ प्रमाद का है। वैसा उत्पाद तुझमें हुआ, इसलिए वहाँ जीव की हिंसा की पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। उसकी हिंसा दूर होने की, उसकी पर्याय के परमाणु का उत्पाद होने का ऐसा स्वभाव था। उसके कारण पर्याय उत्पन्न हुई, व्यय हो गयी या नयी उत्पन्न हुई। परन्तु उसके कारण से हुई है, तेरे भाव के कारण से उसमें... (नहीं हुई)। भारी

सूक्ष्म। समझ में आया ?

और **ध्रौव्यात्मक गुणों और उत्पादव्ययात्मक पर्यायों के साथ एकत्व दर्शाता है।** भाषा देखो। न्याय से तीन बोल कहे। क्या कहा ? प्रत्येक वस्तु भिन्न है, ऐसा पहले लक्ष्य में जान। और उस-उस प्रत्येक पदार्थ में सत् स्वभाव है, इसलिए वह है। और सत् है, वह नित्यानित्य स्वभाव से है। नित्यानित्य स्वभाव से है, वह उत्पाद-व्यय-ध्रुव को प्रसिद्ध करता है। नित्य, वह ध्रुव को प्रसिद्ध करता है। अनित्य, वह उत्पाद-व्यय को प्रसिद्ध करता है। इतनी बात ! यहाँ बात बदली है, देखो। उसमें सत् निश्चित स्वभाववाला होने से ध्रुव को और उत्पाद-व्यय स्वरूप को प्रसिद्ध करता है। स्वरूप अर्थात् आत्मा 'ज्ञ' स्वरूप है और ध्रुवात्मक गुण। और प्रत्येक आत्मा में और परमाणु में उसके कायम रहनेवाले गुण जो ध्रुव हैं और उत्पाद-व्यय, वह उसकी पर्याय है। उसके साथ एकत्व दर्शाता है। भाषा देखो, भाई ! आहाहा ! क्या कहते हैं ? आत्मा को गुण है, गुणपना है। वह और उसकी नयी-नयी पर्याय वह द्रव्य के साथ एकपना दर्शाते हैं। भेद होने पर भी द्रव्य के साथ एकपना दर्शाते हैं। पर के कारण से उसमें एकपना दर्शाते हैं, ऐसा है नहीं। गजब भाई यह सिद्धान्त ! साईन्स के लोगों को ऐसी महिमा आ जाती है। यह हुआ और धूल हुआ और धूल हुआ। यह भगवान का साईन्स है, इसकी तो उसे खबर नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

ध्रौव्यात्मक गुण आत्मा में ज्ञान-दर्शन आदि गुण और उसकी अवस्था नयी हो और पुरानी जाये। ऐसी गुण-पर्याय के साथ वस्तु का एकपना दर्शाते हैं। इसी प्रकार परमाणु में-रजकण में उसके रंग, गन्ध, रस, स्पर्श जो गुण और उसकी अवस्था, वह गुण-पर्याय द्रव्य के साथ एकत्वपना दर्शाते हैं। वह द्रव्य अर्थात् रजकण के साथ एकपना दर्शाते हैं। दूसरे ऐसे भेद हैं, इसलिए दूसरे को दर्शाते हैं, ऐसा कहते हैं। यह नयी-नयी पर्याय होती है और गुण बहुत, इसलिए दूसरे से यह दर्शाते हैं, ऐसा नहीं। यह गुण और पर्याय अनेक होने पर भी उसके द्रव्य के साथ एकपना दर्शाते हैं। समझ में आया ?

यह तो जैनदर्शन के एकडा हैं। जैनदर्शन वस्तुदर्शी है। जैनदर्शन कोई चीज़ नयी नहीं है। विश्वदर्शन। जगत के छह द्रव्य, वह विश्व, उसका यह दर्शन, उसकी स्थिति, उसका स्वरूप इस प्रकार से है। इसलिए बिल्कुल जरा भी एक अंशमात्र दूसरी रीति से

माने तो उसे मिथ्यादर्शन का महापाप लगता है और मिथ्यादर्शन है, वहाँ व्रत और तप सब बालव्रत और बालतप हैं, ऐसा कहते हैं। यह सवेरे आ गया है, सज्झाय में आ गया था न? जिसकी दर्शन विपरीत मान्यता है, वे सब व्रत और तप करके मर जाये तो भी वे सब अज्ञानी के बालव्रत और बालतप हैं। मूर्खता से भरपूर व्रत और मूर्खता से भरपूर तप है। वह मूर्खता को प्रसिद्ध करते हैं। समझ में आया? ऐसा कि यह करने से बहुत संक्षिप्त करके करे न तो दूसरे का खुला न पड़े, ऐसा कितने ही कहते हैं, भाई! बहुत स्पष्ट करे न, तो सबका खुला पड़ा जाता है। दूसरे की खोटी श्रद्धा हो। ऐसा फिर वह बिना भान के चले तो चले, ऐसा का ऐसा। परन्तु बिना भान के उसका स्पष्टीकरण किये बिना क्या कहना चाहते हैं, वह समझ में किस प्रकार आये? समझ में आया?

ध्रौव्यात्मकगुणों, प्रत्येक के, हों! रजकण में भी गुण हैं और उत्पाद-व्ययात्मक पर्याय है। उसके साथ उस परमाणु द्रव्य को एकत्व दर्शाते हैं। कहो, समझ में आया? यह एक बोल हुआ। कौन सा एक बोल हुआ? 'सत्द्रव्यलक्षणम्' इस सत् के साथ उत्पाद-व्यय-ध्रुव मिलाया और गुण-पर्याय मिलाये। बस यह। एक में से दो कैसे अर्थ से साबित होते हैं, ऐसा कहा।

अब दूसरा, उत्पाद-व्यय-ध्रुव—अब दूसरा बोल। उसके साथ उस सत् को और गुण-पर्याय को मिलाते हैं। आहाहा! उत्पाद-व्यय और ध्रुव, वह नित्या-नित्यस्वरूप पारमार्थिक सत् को बतलाता है। देखो, इस पारमार्थिक सत् को बतलाता है। नीचे पारमार्थिक है न? पारमार्थिक=वास्तविक, यथार्थ, खरा। वास्तविक सत् नित्यानित्यस्वरूप होता है। वास्तव में जो द्रव्य और परमाणु आदि वस्तु है, वह सब वास्तविक सत् है। और वह नित्यानित्यस्वरूप होता है। नित्य भी होता है और बदलता भी है। उत्पाद-व्यय अनित्यता को और ध्रुव नित्यता को बतलाता है। प्रत्येक पदार्थ में नयी अवस्था का होना, पुरानी का जाना, वह पर्याय को बतलाता है, वह अनित्यता को बतलाता है और ध्रुव, वह नित्यता को बतलाता है। इसलिए उत्पाद-व्यय-ध्रुव नित्यानित्यस्वरूप वास्तविक सत् को बतलाता है। इस प्रकार द्रव्य, उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला है—ऐसा कहने से वह सत् है, ऐसा भी बिना कहे ही आ जाता है। पण्डितजी ने मेहनत बहुत की है। नीचे अर्थ किया है।

समझ में आया ? क्या कहा यह ?

उत्पाद-व्यय और ध्रुववाला कहने से परमार्थ से सत् है, ऐसा प्रसिद्ध होता है। क्योंकि उत्पाद-व्यय, वह अनित्य को बतलाता है; ध्रुव, वह नित्य को बतलाता है। और सत् है, वह नित्यानित्यस्वरूप है। गजब बात, भाई! यह शास्त्र सुनने जाने पर, कहते हैं पैर जो उठता है, उस पैर के एक-एक रजकण का उत्पाद परमाणु से होता है। अन्दर जीव है और चलने की प्रेरणा करता है, इसलिए होता है – ऐसा नहीं है। समझ में आया ? और उस पैर के परमाणु की पर्याय ऐसे होते... होते... होते सर्वज्ञ अथवा गुरु के पास वह आया, तो वहाँ आया, वह आत्मा जो आया, उसकी भी उत्पाद की पर्याय उससे उसमें हुई है। परमाणु का भी उत्पाद होते-होते उसकी पर्याय परमाणु में काम किया। आत्मा ने डग भरने का काम नहीं किया और जड़ की डग भरने की पर्याय हुई, इसलिए आत्मा में चलने की पर्याय हुई, ऐसा भी है नहीं।

मुमुक्षु : बहुत लम्बा हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रकाशदासजी! कहते हैं, बहुत ही लम्बा हो गया ?

मुमुक्षु : वास्तविक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वास्तविक तो है नाथ। बात तो ऐसी है, नाथ। आहाहा! क्या हो ? इसे तत्त्व मिला नहीं और इसलिए सब गड़बड़-गड़बड़। समझ में आया ? आहाहा! और यह भगवान की वाणी सुनने बैठा, वहाँ कहते हैं कि वाणी की पर्याय का जो उत्पाद और व्यय, वह अनित्यता को बतलाता है और उसके रजकणों का कायम टिकना, वह नित्यता को बतलाता है। इसलिए वह सत् नित्य-अनित्यस्वरूप को बतलाता है। और वह उत्पाद-व्यय-ध्रुव को भी प्रसिद्ध करता है। और उत्पाद-व्यय-ध्रुववाले सत् को प्रसिद्ध करता है। ध्रुव, वह नित्यता को प्रसिद्ध करता है और उत्पाद-व्यय, वह पर्याय को प्रसिद्ध करता है। आहाहा! गजब बात, भाई! भीखाभाई! शोभालालजी! अब वहाँ सुनने जाना या नहीं जाना ? कौन जाये, सुन तो सही! कहते हैं। तेरा आत्मा द्रव्य है। वह सत् है और सत् है, वह नित्यानित्यस्वरूप है। नित्यानित्यस्वरूप के कारण उत्पाद-व्यय और ध्रुव है, (उत्पाद-व्यय) वह अनित्य है, और ध्रुव, वह नित्य है। इसलिए उत्पाद-व्यय और ध्रुव

वह नित्य-अनित्य ऐसे सत् को प्रसिद्ध करता है। इसलिए दूसरा सत् है, उसे प्रसिद्ध करता है-ऐसा नहीं है। वहाँ दूसरा है और प्रसिद्ध करता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : निमित्त को प्रसिद्ध करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। वहाँ भगवान है इसलिए यहाँ उत्पाद-व्यय और ध्रुव इसमें हुआ, ऐसा प्रसिद्ध नहीं करता। आहाहा! ऐई! यह तो तत्त्वार्थसूत्र में सूत्र है। वर्षों वर्ष यह दसलक्षणी पर्व में (वाँचन होता है)। क्यों सेठ, वाँचन होता है या नहीं? दसलक्षणी पर्व में। दसलक्षणी पर्व में, हाँ, पढ़ते हैं। 'उत्पादव्ययध्रुव' 'सत्द्रव्यलक्षणम्' 'उत्पादव्ययध्रुवलक्षणम्' और 'गुणपर्ययवत्द्रव्यम्' पाँचवें अध्याय का २९, ३० और ३८। परन्तु इसका अर्थ क्या? हें? खबर नहीं। आहाहा! उत्पाद-व्यय-ध्रुव, वह नित्य-अनित्यस्वरूप पारमार्थिक सत् को बतलाता है अथवा अपने स्वरूप की प्राप्ति के कारणभूत गुण-पर्यायों को प्रसिद्ध करता है। वहाँ ऐसा लिया, देखा? समझ में आया?

प्रत्येक पदार्थ के एक समय में होते उत्पाद, व्यय और ध्रुव, वे अपने स्वरूप की प्राप्ति का कारणभूत, उस-उस द्रव्य की प्राप्ति का कारणभूत गुण-पर्यायों को प्रसिद्ध करता है। नीचे है अपने। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के। यदि गुण हो तो ही ध्रौव्य हो और यदि पर्याय हो तो ही उत्पाद-व्यय हो। इसलिए यदि गुण-पर्यायें न हों तो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अपने स्वरूप को पा ही नहीं सकते। भगवान आत्मा में और परमाणु में गुण और पर्याय न हो तो वह अपने उत्पाद-व्यय और ध्रुव के अपने स्वरूप को पा ही नहीं सकते। आहाहा! बहुत दृष्टान्त! इसमें तो सिद्धान्त इतने अधिक भरे हैं, दृष्टान्त। इस प्रकार 'द्रव्य उत्पादव्ययध्रुववाला है' ऐसा कहने से गुण-पर्यायवाला भी प्रसिद्ध हो जाता है। कहो, समझ में आया इसमें?

दो बोल हुए। क्या दो बोल हुए? सत् नित्यानित्यस्वरूपवाला होने से उत्पाद-व्यय-ध्रुव को प्रसिद्ध करता है और सत् गुण-पर्याय का एकपना जाहिर-प्रसिद्ध करता है। प्रत्येक द्रव्य का गुण और पर्याय का एकपना प्रसिद्ध करता है। एक हुआ। अब उत्पाद-व्यय-ध्रुव नित्यानित्य स्वरूप जो सत् है-परमार्थ से सत् है, उसे प्रसिद्ध करता है। क्योंकि उत्पाद-व्यय-ध्रुव; ध्रुव, वह नित्य को और उत्पाद-व्यय, वह अनित्य को (प्रसिद्ध करता है)। वह उत्पाद-व्यय-ध्रुव, वह पारमार्थिक सत् ऐसा द्रव्य प्रत्येक का, उसे प्रसिद्ध

करता है। समझ में आया? और वह उत्पाद-व्यय-ध्रुव, वह गुण-पर्याय को-अपने गुण-पर्याय को प्राप्त करता है और प्रसिद्ध करता है। लो, समझ में आया?

अपने स्वरूप की प्राप्ति का कारणभूत। भाषा देखो! ओहोहो! एक-एक परमाणु और एक-एक भगवान आत्मा अपने गुण अर्थात् कायम शक्ति और उसकी अवस्था के प्राप्ति का कारणभूत गुण और पर्याय को प्रसिद्ध करता है। कौन? उत्पाद-व्यय और ध्रुव। इसमें तो साधारण मस्तिष्कवाले को तो याद भी न रहे। सुनकर जाये। यह तो तत्त्व है। मूल तत्त्व है। गुण और पर्याय की प्राप्ति, वह उसका स्वरूप है। और वह उत्पाद-व्यय का स्वरूप गुण-पर्याय की प्राप्ति को प्रसिद्ध करता है। मूल अपने स्वरूप की प्राप्ति का कारण गुण-पर्याय है। अपने स्वरूप की प्राप्ति का कारण दूसरे के गुण-पर्याय हैं, ऐसा नहीं है। गजब बात, भाई! अपने स्वरूप की प्राप्ति का कारण गुण-पर्याय है। जैसे आत्मा ध्रुव है, गुण है, उसकी प्राप्ति का कारण है। और उसकी पर्याय सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई, मिथ्यादर्शन की गयी, ऐसी अपने स्वरूप की प्राप्ति का गुण-पर्याय कारण है। उसमें पर के कारण आत्मा में कुछ भी पर्याय हो या आत्मा की पर्याय के कारण परमाणु में या दूसरे में कुछ भी हो, (यह) एकदम झूठी बात है।

यह सब कार्यवाहक तो करते होंगे या नहीं? यह सब नेता। नहीं यह गाँधीजी कहते हैं न बहुत किया स्वदेश का और अमुक का बातें नहीं करते?

मुमुक्षु : क्या करते हैं, यह देखा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : देखा जाता है। बड़ा विवाद करनेवाले आते हैं। आहाहा! कोईक तो कहता था न जयन्तीभाई कि अभी जवाहरलाल आदि पाँचों ने त्यागपत्र दिया। आहाहा! विवाद... विवाद... विवाद...। अरे रे! आहाहा! दुनिया की तो कहीं रह गयी , उसके अपने में अन्दर में खलबलाहट... खलबलाहट। वह समय-समय की पर्याय स्वयं उपजती है और गुण और पर्याय से उसके स्वरूप की प्राप्ति है। पर के कारण है नहीं। आत्मा के धर्म की प्राप्ति हो—धर्म की प्राप्ति हो, वह पर्याय है। और ज्ञान, दर्शन, आनन्द गुण, वे कायम हैं। ऐसे गुण-पर्याय की अपने स्वरूप की प्राप्ति का कारण गुण-पर्याय है। समझ में आया?

आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि गुण और समय-समय की धर्म की निर्मल

पर्याय जो प्रगट हुई, वह गुण और पर्याय अपने स्वरूप की प्राप्ति का कारण है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव ऐसे स्वरूप की प्राप्ति का कारण गुण-पर्याय है, ऐसा कहते हैं। अपनी जो पर्याय है, उसे प्रगट होने के लिये दूसरा कोई पदार्थ है, (ऐसा नहीं है), वह पदार्थ उसके उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला, उसके गुण-पर्याय स्वयं के स्वरूप को प्राप्त करता है। आहाहा! समझ में आया? यह बिना भान के चला और फिर सब धर्म के विवाद पड़े। जो समझ यथार्थ हो तो धर्म के विवाद और विभाजन पड़े ही नहीं। धर्म क्या चीज़ है, खबर नहीं होती और धर्म कहाँ से उत्पन्न होता है, इसकी खबर नहीं होती। धर्म तो एक पर्याय है। अधर्म एक पर्याय है। तो अधर्मपर्याय का व्यय होना, धर्म की पर्याय उत्पन्न होना और गुण जो कायम है, उसमें से पर्याय आती है, ऐसा जो गुण, वह गुण और पर्याय अपने स्वरूप की प्राप्ति का कारण है। पर कारण-फारण है नहीं। आहाहा!

दो बोल हुए। कौन से दो बोल हुए? बोलना नहीं पोषाता, ऐसा कहते हैं। भाषा इसकी है न?

मुमुक्षु : मुझे बोलना नहीं पोषाता।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोलना नहीं पोषाता। यहाँ तो प्रत्येक वस्तु सत् है, वह उत्पाद-व्यय-ध्रुववाली है और इसलिए उस गुण-पर्याय से उस स्वरूप की प्राप्ति होती है। और उत्पाद-व्यय-ध्रुव जो है, वह पारमार्थिक सत् को प्रसिद्ध करते हैं और उत्पाद-व्यय-ध्रुव है, वह गुण-पर्याय को अपने स्वरूप को प्राप्त करते हैं। बाकी गुण-पर्यायवाला उत्पाद-व्यय-ध्रुव—उत्पाद-व्यय-ध्रुव सत् है। आहाहा! भगवानभाई! उसमें कहीं था यह वहाँ कहीं? प्रौषध करो और प्रतिक्रमण करो। क्या हो? एक-एक समय की एक-एक पर्याय की अवस्था, उस-उस समय का उस-उस पर्याय का गुण से और उत्पाद-व्यय से वह प्राप्त होता है। पर के कारण कुछ होता नहीं। आहाहा! ऐसा व्याख्यान कैसे दिया! व्याख्यान होवे तो कुछ दया, दान करो, व्रत करो, अपवास करो, लंघन करो। मर जाओ-जाओ। हें?

कहते हैं कि आत्मा में एक विकल्प उठा कि आहार नहीं करना। एक दृष्टान्त। तो वह विकल्प उठा, वह एक उत्पाद है। वह उत्पाद-व्यय और पूर्व की अवस्था का व्यय हुआ। वह त्रिकाली गुण है, उसमें से पर्याय हुई है न? वह गुण और पर्याय, उत्पाद-व्यय-

ध्रुव ऐसा अपना स्वरूप, उसे प्रसिद्ध करता है। इन रोटियों को छोड़ा, यह मान्यता मिथ्यात्व की है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि उनका उत्पाद उनमें हुआ है और उसे कहता है कि मैंने जड़ का उत्पाद किया और उसे आने नहीं दिया। रोटियाँ मेरे शरीर में मैंने आने नहीं दी। वह जड़ की पर्याय का स्वामी होता है, वह मिथ्यात्व को सेवन करता है। यह अपवास करने पर भी उसे मिथ्यात्व का पाप लगता है। महापाप तो यह है। उसकी तो खबर नहीं होती। समझ में आया?

अभी दया पालन की। अष्टमी की दया पालते हैं। दूसरे के घर से आहार ले आना, इसलिए हिंसा न लगे। उसमें तूने क्या किया, यह तुझे खबर है? तेरे विकल्प में यह कदाचित् ऐसा आया कि ऐसा मुझे करना है। वह तो तुझमें विकल्प की पर्याय हुई। वह कहीं वह आहार बदलाया और ऐसा आहार खाना, उसके कारण यह विकल्प हुआ है, ऐसा नहीं है। और तेरा विकल्प ऐसा हुआ, इसलिए वह आहार-पानी ऐसे आये ही नहीं और दूसरे आये, ऐसा नहीं है। ऐई! कठिन काम, भाई! वीतरागमार्ग का जरा स्वरूप ही ऐसा है। बहुत स्पष्ट करने जायें तो सबकी पोल उघड़ जाये।

वह एक अपने कहते थे, मांडल में रहते न? लक्ष्मीचन्दभाई आते थे वे मांडल के वृद्ध, (वे कहते) कि यह तुम्हारी बात आवे तो सबके आसन उठ जायें ऐसा है। मांडल के लक्ष्मीचन्दभाई आते थे, नहीं? कहते थे। हम कुछ धर्म करते हैं। मान्यता है और सबको साफ कर दिया। प्रभु! तुझे अभी धर्म की खबर नहीं। तेरा वास्तविक धर्मस्वभाव क्या है? और उसमें से पर्याय आवे, वह किससे आती है, कैसे आती है और किस काल में आती है, उसकी तुझे खबर नहीं है। इसने यह छोड़ा, इसलिए मुझे धर्म की पर्याय आयी। वह तो पर को छोड़ना, उस छोड़ने की व्याख्या क्या? उन पुद्गलों की पर्याय का उत्पादपना यहाँ आनेवाला नहीं था, इसलिए उसके कारण से यहाँ नहीं आये। उसके बदले मैंने यह विकल्प उठाया या कराया, इसलिए मैंने आहार-पानी लिया नहीं। कैसी बात करते हैं, देखो, क्या कहते हैं? भाई! बर्तन में आहार आया और न खाये, यह उसे अपवास कहा जाता है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि थाली में आहार आया, वह तो परमाणु की पर्याय उत्पाद-व्यय

होकर हुई है। समझ में आया? और तूने नहीं खाया, यह बात ही झूठी है। यहाँ आत्मा खा सकता नहीं, नहीं खाने के लिये त्याग किया, वह आत्मा में है नहीं। आत्मा में तो विकल्प हुआ, इतना है। उसके बदले मैंने आहार नहीं लिया, इसलिए मुझे यह विकल्प है अथवा मुझे यह पर्याय है, (ऐसा कहे वह) बिल्कुल झूठी बात है। कठिन काम, भाई! सम्प्रदाय में तो डण्डा उठावे ऐसा है। ऐसा कब निकाला ऐसा? ऐसा धर्म! निकाले कहाँ, ऐसा अनादि का है।

मुमुक्षु : कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन है। ऐई चेतनजी! कहाँ है? कठिन क्यों कर दिया, ऐसा कहते हैं। देख लो मुझे ऐसा कहते हैं। ऐसा कि दर्शन बहुत कठिन कर दिया है। आहाहा! अभी तुझे सम्यग्दर्शन किसे कहना, इसकी खबर नहीं है। समझ में आया?

प्रत्येक तत्त्व उसके अपने कारण से रहता है आता है, टिकता है-जाता है, बदलता है। उसके बदले मैंने उसे नहीं लिया, मैंने उसे नहीं खाया, मैंने उसे छोड़ा, यह सब मिथ्यादर्शन की पर्याय का उत्पाद है। वह उत्पाद उसके आत्मा को प्रसिद्ध करता है। इसने ऐसा भाव किया है। पर के कारण यह भाव हुआ है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

अब तीसरा बोल। कौन तीसरा? गुण-पर्याय। गुण, पर्यायें, गुण अर्थात् अन्वय, पर्याय, वह व्यतिरेकवाले होने से **गुणपर्यायें अन्वय और व्यतिरेकवाले होने से....** नीचे है, एक (१)। प्रथम तो गुण-पर्याय अन्वय द्वारा ध्रौव्य को सूचित करते हैं और व्यतिरेक द्वारा उत्पाद-व्यय को सूचित करते हैं। इस प्रकार वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को सूचित करते हैं। दूसरा, गुण-पर्यायें अन्वय द्वारा नित्यता को बतलाते हैं और व्यतिरेक द्वारा अनित्यता को बतलाते हैं। इस प्रकार वे नित्यानित्यस्वरूप सत् को बतलाते हैं। आहाहा! यह एकदम पढ़ जाये तो समझ में आये ऐसा नहीं है, हों! इसलिए धीरे-धीरे यह दृष्टान्त आते हैं।

गुण-पर्याय आत्मा में और प्रत्येक परमाणु में गुण है, वह ध्रुव है-अन्वय है। पर्याय है, वह व्यतिरेक है। भिन्न-भिन्न होती है इसलिए। वे अन्वय और व्यतिरेक होने से ध्रुव को और उत्पाद-व्यय को सूचित करते हैं। शब्द अन्तर है इसमें? 'सूचयन्ति' है। 'प्रथयन्ति' ठीक, 'एकत्वआख्याभि' प्रत्येक में अन्तर है। संस्कृत टीका में भी अन्तर है।

गुणपर्यायें अन्वय और व्यतिरेकवाले होने से.... आत्मा में जो ज्ञान, दर्शन, आनन्द गुण है, वह अन्वय अर्थात् साथ में रहनेवाले हैं। और नयी-नयी पर्यायें, वे भिन्न-भिन्न हैं, इसलिए व्यतिरेक है। यह अन्वय और व्यतिरेकवाले होने से अन्वय, वह ध्रुव को प्रसिद्ध करता है; व्यतिरेक, वह पर्याय उत्पाद-व्यय को सूचित करते हैं। एक बात। उस सत् के साथ मिलाया। समझ में आया? **अन्वय और व्यतिरेकवाले होने से ध्रौव्य को और उत्पादव्यय को सूचित करते हैं....** तथा नित्यानित्य स्वभाववाले पारमार्थिक सत् को बतलाते हैं। वहाँ डाला अब। पहले उत्पाद-व्यय-ध्रुव के साथ मिलाया। **गुणपर्यायें अन्वय और व्यतिरेकवाले होने से ध्रौव्य को और उत्पादव्यय को सूचित करते हैं....** पहला ले लिया। नहीं तो पहले सत् को लेना था, उसके बदले ऐसा लिया।

यह परमाणु हैं, उनमें गुण है और पर्याय है। गुण है, वे कायम रहनेवाले होने से अन्वय है। अन्वय अर्थात् अनुसरकर एक-एक गुण सब कायम रहनेवाले हैं और समय-समय की पर्याय व्यतिरेक है। यह गुण-पर्याय अन्वय और व्यतिरेकवाले होने से ध्रुव और उत्पाद-व्यय को, ऐसा लिया। उस सत् के साथ पहले मिलाते थे। अब उत्पाद-व्यय को ध्रुव के साथ मिलाया और नित्यानित्य स्वभाववाले होने से, कौन? गुण और पर्यायें। गुण और पर्यायें नित्यानित्य स्वभाववाले होने से पारमार्थिक सत् को बतलाते हैं। हाय! हाय! पूरा घण्टा इसमें गया। ऐई! हें? गुण-पर्याय—गुण अर्थात् नित्य है और पर्याय अर्थात् अनित्य है। गुण-पर्याय वे नित्यानित्य ऐसे सत् को प्रसिद्ध करते हैं। और गुण-पर्याय उत्पाद, व्यय और ध्रुव है। ध्रुव है, वह गुण है और उत्पाद-व्यय वह पर्याय है, उसे प्रसिद्ध करते हैं। यह पहले लिया। फिर सत् को प्रसिद्ध करते हैं। ऐसा नित्यानित्य सत् है, उसे प्रसिद्ध करते हैं। पहला उत्पाद-व्यय-ध्रुव भी नित्यानित्य है इसलिए। ध्रुव नित्य है और उत्पाद-व्यय अनित्य है। समझ में आया?

नये हों, उन्हें तो ऐसा लगे कि यह क्या कहते हैं? हें? आहाहा! प्रत्येक आत्मा अनन्त निगोद के भी अनन्त, सिद्ध के भी अनन्त, प्रत्येक असंख्य दूसरे। प्रत्येक और अनन्त परमाणु, एक परमाणु से लेकर बड़ा स्कन्ध और असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति-अधर्मास्ति, आकाश। प्रत्येक वस्तु सत् है, इसलिए वह नित्य और अनित्य है, इसलिए वह

उत्पाद-व्यय-ध्रुववान को सूचित करती है। नित्यपना, वह ध्रुव है और अनित्य है, वह उत्पाद है। और वह गुण-पर्याय को जानता है और ज्ञात होता है। क्योंकि गुण नित्य है और पर्याय अनित्य है। इसलिए सत् है। और पर्याय, वह उत्पाद-व्यय है तथा गुण वह ध्रुव है, इसलिए उत्पाद-व्यय, ध्रुव को सूचित करते हैं। एक जानने से तीनों ज्ञात होते हैं और तीन जानने में एक ज्ञात होता है। कहो, समझ में आया इसमें ?

अब इसमें इस बात में धर्म क्या आया ? ऐसा कहते हैं कि प्रत्येक द्रव्य स्वयं से पर्याय में है, और दूसरे के सामने देखना नहीं है। तथा परमाणु में ऐसी पर्याय होती है, वह तुझसे होती है, ऐसा नहीं है। हिलने की और यह बोलने की और यह सिर ऐसे होता है, वह ऐसे होने की, यह सब पर्यायें उसके परमाणु में गुण-पर्याय भरे हुए हैं, इसलिए होती है। तेरे कारण से यह सिर हिलता है और हाथ हिलता है, यह बात तीन काल में सच्ची नहीं है। आहाहा! इसलिए पर के सामने देखना छोड़कर, पर का करूँगा तो मैं हूँ, यह मान्यता छोड़कर, ध्रुव पर दृष्टि दे तो तुझे धर्म की पर्याय, पर्याय में प्रगट होगी, ऐसा बतलाना चाहते हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ११

उप्पत्ती व विणासो दव्वस्स य णत्थि अत्थि सब्भावो।
विगमुप्पादधुवत्तं करेंति तस्सेव पज्जाया।।११।।

उत्पत्तिर्वा विनाशो द्रव्यस्य च नास्त्यस्ति सद्भावः।
विगमोत्पादध्रुवत्वं कुर्वन्ति तस्यैव पर्यायाः।।११।।

अत्रोभयनयाभ्यां द्रव्यलक्षणं प्रविभक्तम्।

द्रव्यस्य हि सहक्रमप्रवृत्तगुणपर्यायसद्भावरूपस्य त्रिकालावस्थायिनोऽनादिनिधनस्य न समुच्छेदसमुदयौ युक्तौ। अथ तस्यैव पर्यायाणां सहप्रवृत्तिभाजां केषांचित् ध्रौव्यसंभवेऽप्यपरेषां क्रमप्रवृत्तिभाजां विनाशसंभवसंभावनमुपपन्नम्। ततो द्रव्यार्थार्पणायामनुत्पादमनुच्छेदं सत्स्वभावमेव द्रव्यं, तदेव पर्यायार्थार्पणायां सोत्पादं सोच्छेदं चावबोद्धव्यम्। सर्वमिदमनवद्यञ्च द्रव्यपर्यायाणामभेदात्।।११।।

उत्पाद-व्यय से रहित केवल सत् स्वभावी द्रव्य है।
द्रव्य की पर्याय ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवता धरे।।११।।

अन्वयार्थ :- [द्रव्यस्य च] द्रव्य का [उत्पत्तिः] उत्पाद [वा] या [विनाशः] विनाश [न अस्ति] नहीं है, [सद्भावः अस्ति] सद्भाव है। [तस्य एव पर्यायाः] उसी की पर्यायें [विगमोत्पादध्रुवत्वं] विनाश, उत्पाद और ध्रुवता [कुर्वन्ति] करती हैं।

टीका :- यहाँ दोनों नयों द्वारा द्रव्य का लक्षण विभक्त किया है (अर्थात् दो नयां की अपेक्षा से द्रव्य के लक्षण के दो विभाग किये गये हैं।)

सहवर्ती गुणों और क्रमवर्ती पर्यायों के सद्भावरूप, त्रिकाल-अवस्थायी (त्रिकाल स्थित रहनेवाले), अनादि-अनन्त द्रव्य के विनाश और उत्पाद उचित नहीं है। परन्तु उसी की पर्यायों के-सहवर्ती कतिपय (पर्यायों) का ध्रौव्य होने पर भी अन्य क्रमवर्ती (पर्यायों) के-विनाश और उत्पाद होना घटित होते हैं। इसलिए द्रव्य द्रव्यार्थिक आदेश से (-कथन से) उत्पाद रहित, विनाश रहित, सत्स्वभाववाला ही जानना चाहिए और वही (द्रव्य) पर्यायार्थिक आदेश से उत्पादवाला और विनाशवाला जानना चाहिए।

- यह सब निरवद्य (-निर्दोष, निर्बाध, अविरुद्ध) है, क्योंकि द्रव्य और पर्यायों का अभेद (-अभिन्नपना) है।।११।।

धारावाही प्रवचन नं. २० (प्रवचन नं. १९), गाथा-११
दिनांक - ०३-१२-१९६९, कार्तिक कृष्ण ९, बुधवार

ग्यारहवीं गाथा—पहले मूल श्लोक। ऊपर है।

उप्पत्ती व विणासो दव्वस्स य णत्थि अत्थि सब्भावो।
विगमुप्पादधुवत्तं करेंति तस्सेव पज्जाया।।११।।

नीचे इसका हरिगीत।

उत्पाद-व्यय से रहित केवल सत् स्वभावी द्रव्य है।
द्रव्य की पर्याय ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवता धरे॥११॥

इसकी **टीका :**-क्या कहते हैं जरा? कि जो यह आत्मा है, अन्दर आत्मा वस्तु और यह एक-एक परमाणु भिन्न है। अनन्त परमाणु हैं और अनन्त आत्मायें हैं और असंख्य कालाणु, एक-एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश (इस प्रकार) भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। केवलज्ञानी भगवान ने केवलज्ञान में छह द्रव्य (देखे हैं)। उस एक-एक द्रव्य में दो नय उतरते हैं। दो अपेक्षायें। यह कहते हैं, देखो! यहाँ दोनों नयों द्वारा द्रव्य का लक्षण विभक्त अर्थात् भिन्न-भिन्न किया। दो विभाग किये गये हैं। एक द्रव्यार्थिकनय और एक पर्यायार्थिकनय। अभी कहेंगे।

प्रत्येक आत्मा में और परमाणुओं में सहवर्ती गुण रहे हैं। एक-एक आत्मा में अनन्त गुण—ज्ञान, दर्शन, आनन्द (इत्यादि) साथ में रहे हुए हैं। परमाणु में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श अनन्त गुण एकसाथ रहे हैं और क्रमवर्ती पर्यायें। प्रत्येक द्रव्य में पर्याय अर्थात् अवस्था क्रम से... क्रम से... क्रम से नयी-नयी होती है। उसकी प्रत्येक द्रव्य की पर्याय नयी होने में दूसरे का सहारा और मदद नहीं है, ऐसा कहते हैं। आया या नहीं इसमें? ऐई! देवानुप्रिया! फिर यहाँ ऐसा कहते हैं, यह मकान की पर्याय करते नहीं। भगवान ऐसा कहते हैं। यह तो बड़े कॉन्ट्रेक्टर थे। क्या कहलाते हैं? इंजीनियर।

भगवान परमेश्वर वीतरागदेव ने छह द्रव्य का स्वरूप जो भगवान ने ज्ञान में जाना, उस एक-एक द्रव्य के एक में दो प्रकार। एक-एक में वे दो प्रकार स्वयं के द्वारा स्वयं में

हैं, ऐसा सिद्ध करना है। कि सहवर्ती गुण और क्रमवर्ती पर्यायों के सद्भावरूप, त्रिकाल—अवस्थायी (तीनों काल टिकनेवाले) अनादि-अनन्त द्रव्य का विनाश और उत्पाद उचित नहीं है। क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा अनादि-अनन्त द्रव्य वस्तु है। उसकी उत्पत्ति और विनाश नहीं होता। इसी प्रकार यह परमाणु जो है द्रव्यरूप से ध्रुव। द्रव्य कौन सा ? द्रव्यार्थिकनय का द्रव्य। परमाणुओं का जो द्रव्य है, वह तो ध्रुव और उत्पाद-व्यय तीन होकर प्रमाणज्ञान का विषय द्रव्य है। यह उसे तो तीन को पर्याय कहेंगे, तीन भेद कहेंगे। परन्तु यहाँ द्रव्यार्थिकनय का जो द्रव्य, वह त्रिकाली परमाणु ध्रुव और त्रिकाली आत्मा ध्रुव। वह त्रिकाली अवस्थायी वस्तु है, वह अनादि-अनन्त है, उस द्रव्य के विनाश और उत्पाद उचित नहीं है।

वस्तु नयी उपजे और वस्तु पुरानी नाश हो, ऐसा नहीं है। उसकी पर्याय नयी उपजे और पर्याय पुरानी जाये। जैसे कि मनुष्य है, वह मनुष्य है। वह मनुष्य कहीं नया उपजता है, ऐसा नहीं है। 'है, वह है'। मनुष्य में से जवान अवस्था का व्यय हो, वृद्ध अवस्था का उत्पाद हो, मनुष्यपना कायम रहे। परन्तु मनुष्यरूप से आत्मा कायम रहता है। इसी प्रकार आत्मा आत्मारूप से कायम रहता है और उसकी मनुष्यपने की अवस्था नाश हुई, देव की होती है; देव का नाश होकर मनुष्य की होती है, मनुष्य का नाश होकर सिद्ध की होती है, वह सब पर्यायें पुरानी जाये और नयी हो। वस्तु पुरानी जाये और नयी हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : दूसरे लोग अलग मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वस्तु ऐसी है। दूसरे लोग माने, उनके घर में रहे।

मुमुक्षु : कोई ऐसा माने उसमें कोई भेदज्ञान की बात नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी बात है ? भेदज्ञान की नहीं तो किसकी हुई ? दूसरे मानते हैं, वह अलग है। यहाँ तो सर्वज्ञ ने देखा हुआ तत्त्व ऐसा है। एकान्त कोई द्रव्य त्रिकाली है, ऐसा भी नहीं और एकान्त उसमें अवस्था होती नहीं, ऐसा भी नहीं। प्रत्येक वस्तु त्रिकाली भी है और उसमें अवस्था भी होती है। यह तो वस्तु का स्वभाव ऐसा है। बाकी मतान्तर में लिखे अन्दर वेदान्त है, वह सर्वथा द्रव्य को मानता है, पर्याय को नहीं

मानता। उसका निराकरण है।

मुमुक्षु : दूसरे की बात मिथ्या करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। दूसरे की बात खोटी है। वस्तु उसकी है ऐसी वस्तु है। मिथ्या कहाँ करनी थी! आहाहा!

यह शरीर है, एक मिट्टी है, देखो! मिट्टी, मिट्टीपना कायम रखकर पिण्ड की अवस्था का व्यय और घट की उत्पत्ति, तो कहीं मिट्टी उपजती है और मिट्टी नाश होती है, ऐसा है? शोभालालजी! मिट्टी तो मिट्टी ही है। इसी प्रकार आत्मा तो आत्मा ही है। आत्मा तो यह अनादि-अनन्त है। आत्मा द्रव्यरूप से है, वह आत्मा नया उपजता है और आत्मा की पुरानी द्रव्यता का नाश होता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

सोना लो, सोना। सोना है, वह सोनारूप से कायम रहकर कुण्डल की अवस्था उत्पन्न हो और अँगूठी की अवस्था व्यय हो, परन्तु वह तो अवस्था ही व्यय हो और उत्पन्न हो। सोना उपजे और सोना व्यय हो, ऐसा है? समझ में आया? सोना नया उपजा, ऐसा है? और सोना नाश हुआ, ऐसा है? सोना तो सोना ही है। उसमें कुण्डल की अवस्था उत्पन्न हुई और कड़ी की या अँगूठी की अवस्था नाश हुई, वह तो पर्याय में उत्पन्न-व्यय है। वस्तु नयी हो और पुरानी जाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! और वह भी अपने में स्वयं सोना की अवस्था घट की उपजे और पूर्व की अवस्था का नाश हो, वह स्वयं के कारण उत्पाद-व्यय है। द्रव्य के कारण नहीं। द्रव्य उत्पन्न हो और द्रव्य नाश हो, ऐसा नहीं है। पर्याय नयी उत्पन्न होती है और पुरानी जाती है। वह पर के कारण पर्याय उत्पन्न हो और व्यय हो, ऐसा नहीं है। इसमें तो यह वस्तु है। आहाहा!

भगवान आत्मा अनादि-अनन्त द्रव्य से तो अनादि-अनन्त है। निगोद की अवस्था, मनुष्य की अवस्था, देव की अवस्था, सिद्ध की अवस्था। उस अवस्थारूप से नयी अवस्था हो और पुरानी जाये, परन्तु आत्मा द्रव्य है, वह नया आत्मा हो और पुराना जाये, ऐसा है? समझ में आया? तो कहते हैं। सूक्ष्म तत्त्व है, भाई! वीतरागदेव का तत्त्व सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ तत्त्व ऐसा है और सूक्ष्म है। एक-एक समय में आत्मा और परमाणु नयी-नयी अवस्था से उत्पन्न होते हैं, वह अपना पर्यायनय का विषय है, इस प्रकार... पर

के कारण उपजे और पर को उपजावे, ऐसा वस्तु के स्वरूप में नहीं है। कहो, वजुभाई! क्या यह तुम वांकानेर में दस-दस लाख के मकान बनाये न? हें! राग किया। दरबार भी साथ में आते थे, तुम्हारे साथ में। वे होशियार थे, हस्ताक्षर करने आते राग के कारण। अन्त में पागल हो गये थे। धूल में भी नहीं। आत्मा तो वह का वह है। वह भी यह नयी-नयी पर्याय उपजे और पुरानी पर्याय से व्यय हो। यह ऐसा उसका एक-एक तत्त्व का स्वरूप स्वयंसिद्ध सत् का स्वरूप है। ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया?

मुमुक्षु : इसमें नय का क्या काम है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु नय नहीं? नय अर्थात् एक अंश को देखनेवाला ज्ञान, उसे व्यवहारनय कहते हैं और त्रिकाली को देखनेवाले को निश्चयनय अथवा द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। यह तो अर्थ है। नय अर्थात् त्रिकाली है, वह वही का वही है। उपजे नहीं, विनशे नहीं, यह निश्चयनय कहो या (द्रव्यार्थिकनय कहो)। शाश्वत् को लक्ष्य में लेनेवाले ज्ञान की अपेक्षा से द्रव्य तो वह का वह है। और पर्याय नयी उपजे और पुरानी जाये, इस अपेक्षा से पर्यायनय ज्ञान वह पर्याय को देखता है। पर से होता है, वह ज्ञान ऐसा नहीं देखता व्यवहारनय का विषय भी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात, बापू! इसने कभी सुनी नहीं। वीतराग के मार्ग के तत्त्व। बाहर से ऐसे के ऐसे लग पड़े, देह की क्रिया मैं करता हूँ, शरीर की मैं करता हूँ। यहाँ कहते हैं कि परमाणु है और शरीर के परमाणु है। जगत में अस्ति है न? अब उसकी जो अवस्था होती है, देखो! ऐसा होता है। अब ऐसी हुई ऐसी, ऐसी यह अवस्था उपजे और पुरानी अवस्था जाये। परमाणु तो कायम रहता है। परमाणु नये उत्पन्न होते हैं? परमाणु नये उपजते हैं? परमाणु पुराने हों, वे नाश हों? उपजना-विनशना द्रव्य का नहीं परन्तु पर्याय का है। ऐसा सिद्ध करके दो नय सिद्ध करते हैं। उसी और उसी में दो नय है। दूसरे की अपेक्षा रखकर नय है, ऐसा नहीं है। ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

एक परमाणु की कच्चे दाल-भात की अवस्था है। कच्चे दाल-भात। और फिर उसकी पकी अवस्था हुई। पकी। कहते हैं कि कच्ची अवस्था का व्यय, पकी का उत्पाद (हो), परन्तु परमाणु जो है, वह तो कायम है। परमाणु का व्यय और उत्पाद हुआ है? और

उत्पाद-व्यय होता है, वह तो पर्याय में हुआ है। और उसकी पर्याय का ऐसा स्वरूप है। उत्पाद-व्यय पर के कारण होता है, (ऐसा नहीं है)। हें ? गजब बात, भाई! आहाहा! यह पैर उठाना हो तो उठे लो। आत्मा की इच्छा प्रमाण पैर ऐसे उठे ?

मुमुक्षु : सुन्न चढ़ी हो तब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कल कहा था। महाराज ने नहीं कहा था ? यह शास्त्र में श्लोक आता है। धवल में भी आता है, लो और उसमें दशवैकालिक में भी आता है। ज्यम चेरे, ज्यम चिट्ठे, ज्यम असे, ज्यम सहये, ज्यम भुजन्तो भाजन्तो, पाव समएणं बंधेय। यह स्थानकवासी में बहुत सिखाते हैं। ज्हम चरे, शिष्य ने प्रश्न किया—महाराज! कैसे चलना ? कहम चिट्ठे ? कैसे खड़े रहना ? कहम सहये ? कैसे बैठना ? केस आसन करना और केम सहये ? सोना ? कैसे भोजन करना और कैसे बोलना ? ऐसा शिष्य ने पूछा। फिर गुरु ने उत्तर दिया। दशवैकालिक में भी है और धवल के पहले भाग में भी है। दिगम्बर पहले भाग में है। फिर उत्तर दिया, ज्यम चरे, यत्न से चलना। यहाँ कहते हैं कि यह यत्न से चलना। हें ? क्या कहा ?

मुमुक्षु : आत्मा का उस समय विस्मरण नहीं करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : विस्मरण नहीं, प्रमाद नहीं करना। विस्मरण तो है नहीं। ज्ञानी की बात है न ?

ज्ञानी को आत्मा आनन्द है, ज्ञान है—ऐसा भान तो है। परन्तु मुनि को चलते हुए प्रमाद नहीं होना चाहिए। वह प्रमाद न होने के लिये ज्यम चरे-ऐसा कहा गया है। परन्तु यत्न से चल सकते हैं, ऐसा कहा नहीं। इसके लिये तो इसमें प्रश्न है। हमारे आत्मा आनन्दमूर्ति है। धर्मी की दृष्टि तो आत्मा आनन्दस्वरूप है, वहाँ होती है। मेरा आनन्द मेरे पास है। मेरा आनन्द किसी पदार्थ में नहीं है। तथापि उसे पर्याय में भिन्न-भिन्न अवस्था होती है, तब गति करने की पर्याय होती है, तब क्या होता है ? उसे विकल्प में प्रमाद आने नहीं देना। इसलिए यत्न से चलना, ऐसा तेरी पर्याय में ध्यान रखना। पर को चलना, देह चलती है और वह चल सकती है आत्मा की सावधान पर्याय हुई, इसलिए शरीर की अवस्था बराबर काम कर सकती है, यह तीन काल में नहीं है। क्योंकि शरीर के प्रत्येक रजकण ध्रुवरूप से कायम रहकर, नयी अवस्था उपजती है और पुरानी अवस्था जाती है।

भोगीलालभाई! यह तो सब सूक्ष्म है। सब सुना भी न हो वहाँ। कॉन्ट्रैक्टर में आता नहीं वहाँ कुछ। हें ?

मुमुक्षु : ईंट को सिंचाई आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ईंट को सिंचाई आवे। यह तो ईंटें सिंचाई में भी ऐसा कहते हैं, भाई! ईंटें है, उसमें एक-एक रजकण है न? वह एक-एक पॉइन्ट एक-एक रजकण भगवान ने देखा। वह रजकण कायम रहता है और पुरानी अवस्था जाती है और नयी अवस्था होती है। वह पर के कारण होती है, ऐसा तीन काल में दूसरा नय दूसरे से हो, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। गजब बात, भाई!

जयम चरे, जयम चीठ्ठे। दूसरा बोल ऐसा है। यत्न से खड़े रहना। इसका अर्थ कि प्रमाद न होना। खड़े रहना। यह देह की खड़े रहने की पर्याय आत्मा करे, यह तीन काल में नहीं है। शोभालालभाई! यह बीड़ी-बीड़ी बाँध नहीं सकता, ऐसी न करते हैं। क्या करे? देखो! तुम्हारे बीड़ी का बहुत बड़ा धन्धा है। करोड़ों बीड़ी टीमरुं-टीमरुं और आप्टो। आप्टो है तुम्हारे? आप्टो होता है न? आप्टो नहीं? एक यह टीमरुं। आप्टो होता है न? दो-तीन पत्ते इकट्ठे करे। टीमरुं को एक ही पान है। तावे वह पान है, ऐसा कहते हैं कि पान चौड़ा था। उसकी अवस्था-रजकण कायम रहे। ऐसा हुआ कि पूर्व की अवस्था का व्यय, नयी अवस्था का उत्पाद, परमाणु कायम (रहे)। यह दूसरा जीव, अँगुली है; इसलिए पत्ता ऐसा हुआ है, ऐसा नहीं है। जेठाभाई! गजब बात भाई!

मुमुक्षु : प्रमाद किसमें डालना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव की पर्याय में। अन्यत्र कहाँ? प्रमाद किसमें होता है? कहीं जड़ में होता है? जीव की पर्याय में प्रमाद न होने देना, इतनी बात है।

मुमुक्षु : स्वरूप के ध्यान में रहना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान में, ऐसा नहीं। ऐई! विकल्प ही है न? ध्यान में कहाँ चलना है? चलने की क्रिया जड़ की हो, तब आत्मा के प्रदेश भी ऐसे गमन करे। उसमें उसे तीव्र राग नहीं होना चाहिए। बस, इतनी बात है। यह तो चलने का है, वह तो विकल्प है, शुभराग है। ईर्यासमिति से देखकर चलना, वह भी शुभ विकल्प है-राग है। परन्तु उसमें

अशुभराग न होने देना, इतनी बात है। भारी बात सूक्ष्म, भाई! भगवान का मार्ग ऐसा सूक्ष्म है। समझ में आया? हें? क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : चलते समय अशुभभाव होता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी को न हो, ध्यान न रखे तो अशुभभाव हो। दूसरे किसी के सामने देखने जाये, ऐसे देखने जाये, वैसे देखने जाये, तो वह राग पड़ा रहे। शुभभाव न होकर अशुभ हो। समझ में आया? उपदेश के वाक्य तो ऐसे ही होते हैं न? उस समय पर्याय में अशुद्धता न होने देना, इसलिए यत्न से खड़े रहना, ऐसा कहा गया है। परन्तु खड़ा रहे और नीचे पैर को ऐसे पिच्छी से पोंछते हैं न? यह पोंछने की क्रिया आत्मा करता है, तीन काल में नहीं। यह पिच्छी से पिच्छी, पिच्छी से पोंछने की पर्याय करती है। पिच्छी के अनन्त रजकण पिच्छी में है और नीचे जीव कोई हो, उसका शरीर हो, उसके शरीर के रजकण भिन्न हैं। उसकी शरीर की अवस्था उससे होती है। पिच्छी की अवस्था पिच्छी से होती है। पिच्छी की अवस्था हाथ से नहीं होती, हाथ की अवस्था विकल्प से नहीं होती। विकल्प की अवस्था से हाथ की अवस्था नहीं होती। कहो, समझ में आया?

इसमें तो बड़ा विवाद है। दशवैकालिक में यह बोल है। ज्यम चरे। भाई! भगवान ने यत्न से चलने का कहा है। यहाँ तुम कहते हो कि चल नहीं सकता। यह यत्न का कहा है, वह तो व्यवहारनय का वचन है। चलने पर देह की क्रिया तो देह के ही कारण होगी। वह चलने का पैर ऐसा उठता है, वह आत्मा के कारण से बिल्कुल नहीं। क्योंकि पैर भी परमाणु द्रव्य हैं। भगवान ने उसे पुद्गलद्रव्य कहा है। तो पुद्गल हो है, वह कायम रहकर अवस्था रूपान्तर हो, वह उसके परमाणु की पर्याय के कारण से होता है। जीव की पर्याय के कारण उसमें रूपान्तर होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

मुझे दूसरे जीव को नहीं मारने का विकल्प हुआ, इसलिए वह जीव नहीं मरा, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। क्योंकि जीव का द्रव्य भिन्न है। उसके शरीर के रजकण भिन्न हैं। उसके रजकण कायम रहकर उसकी अवस्था का जीने का-टिकने का उत्पाद उसमें होता है। जीव को टिकना हो तो वहाँ स्वयं के कारण से टिकता है। शरीर के कारण से नहीं, दूसरे के दया के भाव के कारण से नहीं। बहुत कठिन काम। पूरे दिन करना और कुछ करता

नहीं! करता कौन है धूल, वह तो मानता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दिगम्बर के शास्त्र में भी अन्तर है, उसके अर्थ दूसरे करना...

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थ दूसरे करना, यह बात है। यहाँ दिगम्बर के शास्त्र में यह है। ज्यम चरे, ज्यम चीठ्ठे, ज्यम सहे, ज्यम आसे है। आसे अर्थात् बैठना। यत्न से बैठना, तब वह क्या करता है? ऐसे-ऐसे पोंछते हैं न? यह मैं पोंछता हूँ, ऐसा कहे। वह तो जड़ की क्रिया है। जड़ के उत्पाद में ऐसे-ऐसे होता है। वस्त्र हो या पिच्छी हो या यह क्या कहलाता है? मोरपिच्छी (हो) वह मोरपिच्छी भी अनन्त रजकणों का दल है। उसमें एक-एक रजकण कायम रहकर नयी अवस्था ऐसे-ऐसे हो या ऐसे जाये, वह उसके कारण से होता है। अँगुली के कारण से नहीं और आत्मा के कारण से नहीं। जादवजीभाई! यह दया पालने का तो इसमें उड़ जाता है। सच्ची दया तेरी तू पाल। पर को कौन तिरा सकता था?... अभिमान है, अज्ञान है। मिथ्याभ्रम है। आहाहा!

परमात्मा सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकर जिन्हें एक समय में तीन काल, तीन लोक ज्ञात हुए, वे ऐसा द्रव्य का स्वरूप वर्णन करते हैं और वह भी इसके ख्याल में आ सके, इस रीति की चीज़ है। समझ में आया? कहते हैं कि **अनादि-अनन्त द्रव्य के विनाश और उत्पाद उचित नहीं हैं। परन्तु उसी की पर्यायों के—सहवर्ती कुछ (पर्यायों) का ध्रौव्य होने पर भी अन्य क्रमवर्ती (पर्यायों) के—विनाश और उत्पाद होना घटित होते हैं।** कहो, समझ में आया? क्या कहा? अब आत्मा है न? वह आत्मा है, वह पूरा प्रमाण का तत्त्व है। नयी अवस्था उपजे पुरानी जाये और ध्रुव रहे। वह तीन अंशरूप से जो है, वह तीन अंशरूप से पूरे द्रव्य की अपेक्षा से ध्रुव भी अंश है, इसलिए पर्याय कहलाता है, उत्पाद भी पर्याय कहलाता है और व्यय भी पर्याय कहलाता है। यह पूरे प्रमाण के द्रव्य के विषय की अपेक्षा से तीन भाग पड़े, इसलिए तीन को अंश कहा गया है। समझ में आया?

देखो, **सहवर्ती कुछ (पर्यायों) का ध्रौव्य होने पर भी....** अर्थात् कि यहाँ ध्रुव है, उसका एक अंश ध्रुवरूप परिणमता है, दूसरा अंश उत्पाद और व्ययरूप परिणमता है और तीसरा अंश ध्रुव कायम रहे, ऐसा है या नहीं? ऐई! क्या ध्यान रखा? कायम टिका रहे, वह ध्रुव, परन्तु पर्याय के जो तीन अंश हैं न, उनमें ध्रुव का एक अंश परिणमे और एक उत्पाद-

व्ययरूप परिणमे, तीन पर्याय के हैं या नहीं ? परन्तु यहाँ तो पर्याय के तीन कहे न ? देखो, पढ़ो। परन्तु कहा वह इसे याद रहा नहीं।

सहवर्ती कुछ (पर्यायों) का ध्रौव्य होने पर भी.... देखो, पर्यायों का ध्रौव्य होने पर भी, सहवर्ती कितने ही पर्याय शब्द से भेद। अभी वह कहा। आत्मा पूरा तत्त्व है, उसके दो अंश उत्पाद-व्यय, एक अंश ध्रुव। ये तीन जो हैं, उनमें सहवर्ती का गुण का एक भेद है। पूरा गुण कायम रहता है ध्रुव, वह एक भेद है। भेद है, इसलिए उसे पर्याय अंश तीन की अपेक्षा से उसे अंश कहा। वह उत्पाद, व्यय और ध्रुव यह तीन की अपेक्षा से उसे अंश कहा। समझ में आया ? बाकी ध्रुव तो त्रिकाली रहनेवाला है। कायम... कायम... है, वह आत्मा 'है, वह है।' मनुष्यभव में था, वह भी यह आत्मा; मनुष्य से स्वर्ग में जाये तो भी यह आत्मा; मनुष्य पर्याय का व्यय और स्वर्ग की उत्पत्ति, वह तो पर्याय में हुई। आत्मा में कहीं नया आत्मा हुआ, आत्मा मनुष्यरूप से द्रव्यरूप से था और आत्मा देवरूप से भी द्रव्यरूप से हुआ, ऐसा नहीं है। उसकी पर्याय में उत्पाद-व्यय हुआ। समझ में आया ?

यहाँ तो यह भी सिद्ध करते हैं कि भगवान आत्मा इस मनुष्यपने की पर्याय अर्थात् यह शरीर नहीं, हों ! शरीर तो जड़ की पर्याय है। अन्दर मनुष्यगति के योग्य जो जीव की पर्याय है, उसरूप उत्पन्न है। उसका व्यय होकर देव की पर्यायरूप से उत्पन्न हो, यह पर्यायनय से उत्पन्न होता है। कर्म के कारण उत्पन्न होता है ? मनुष्यपने का नाश होकर, कर्म के कारण स्वर्ग की पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा !

कर्म के कारण मनुष्यपना है और कर्म के कारण देवपना है, ऐसा नहीं है-ऐसा कहते हैं। तेरी पर्याय में योग्यता के कारण मनुष्यपना है और स्वर्गपना भी उसका व्यय होकर स्वर्ग की उत्पत्ति तेरी पर्याय के कारण पर्याय में वह होती है। कर्म के कारण देव की पर्याय होती है, ऐसा नहीं है। कर्म जड़ चीज़ पर है। आहाहा ! गजब बात ! और मनुष्यपने का नाश और सिद्धपने की उत्पत्ति। आत्मा सिद्ध होता है न ? उत्पत्ति। वह उत्पत्ति और मनुष्यपने का नाश। इस मनुष्य का नाश हुआ, इसलिए सिद्ध की पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। और सिद्ध की पर्याय हुई, वह कर्म का अभाव हुआ, इसलिए सिद्ध की पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? अपनी पर्याय का उस केवलज्ञानरूप सिद्धपनेरूप उपजने की पर्याय है। वह हुई, मनुष्यपने की पर्याय का नाश हुआ। वह पर्याय का धर्म है स्वभाव। वह

पर के कारण स्वभाव नहीं है। तथा द्रव्य का वह स्वभाव नहीं है कि द्रव्य उपजे और द्रव्य विनशे। अरे! अरे! गजब बातें।

वीतराग का तत्त्व पूरी दुनिया से भिन्न प्रकार है। भाई! आहाहा! जैन में जन्मे हों, उन्हें भी जैन की खबर नहीं होती। और हम जैन हैं-जैन हैं - ऐसा मानते हैं। कहो, रमणीकभाई!

मुमुक्षु : उत्पाद-व्यय कम-ज्यादा होवे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कम-ज्यादा का प्रश्न नहीं है। इसकी पर्याय का उत्पाद होता है। जैसे कि ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई और फिर दूसरे समय में ज्ञान विशेष बढ़ा। वह उघड़ा, वह उत्पाद हुआ, पहले जो कम था, (वह) व्यय हुआ। ज्ञानगुण का ध्रुवपना कायम रहा। परन्तु हीनाधिकपना हुआ, वह कर्म के कारण हुआ है, ऐसा नहीं है। कहो, चेतनजी! क्या यह सब कर्म के विवाद उठे? अरे! यह सिद्ध करते हैं। देखो न! पंचास्तिकाय में।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज भगवान (सीमन्धर के) पास गये थे। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज संवत् ४९ में सीमन्धर भगवान के पास गये थे, वहाँ से आकर यह शास्त्र रचे हैं। अब ये शास्त्र इस परमागममन्दिर में संगमरमर में उत्कीर्ण होनेवाले हैं। ऐसी परम सत्य बात है इसलिए। समझ में आया? ऐई! सर्वज्ञ परमात्मा की ऐसी परम सत्य वाणी है। समझ में आया? आहाहा! इसे पहले हृदय में उत्कीर्ण कर लेना चाहिए। हें? ऐसी बात है। आहाहा!

भाई! तू तो आत्मा है न? तो आत्मा है, वह नया उपजे? उसकी पर्याय नयी उपजे। सिद्ध की पर्याय नयी हो। सिद्ध की पर्याय अन्तर-आत्मा में ऐसी अनन्त पर्याय शक्तिरूप पड़ी है। आत्मा में ऐसी सिद्ध की पर्यायें अनन्त और ज्ञानानन्द की सब अनन्त पर्याय, एक समय में प्रगट नहीं। सब द्रव्य में शक्तिरूप पड़ी है। वह शक्ति है, वह ध्रुव है। ध्रुव है, वह उपजता है और विनशता है, ऐसा नहीं है। परन्तु उस ध्रुव में पड़ी हुई अनन्त शक्तियों में की केवलज्ञान की पर्याय और सिद्धपर्याय उत्पन्न हुई, वह प्रगटरूप हुई। और पूर्व की चार ज्ञान की पर्याय थी, उसका नाश हुआ। परन्तु कहीं आत्मद्रव्य उत्पन्न हुआ और आत्मद्रव्य का नाश हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा!

देखो न! तथा आत्मद्रव्य का उत्पाद और विनाश नहीं है तथा उसका उत्पाद-व्यय पर के कारण से नहीं है, ऐसा वापस। आहाहा! तीन अंश कहा न? पूरा द्रव्य अर्थात् प्रमाण का द्रव्य। पर्याय को जाने और द्रव्य को जाने, वह प्रमाण हुआ। प्रमाण का पूरा द्रव्य है, वह द्रव्य, हों! ऐसे द्रव्यार्थिक का नहीं। प्रमाण का अंश में तीन अंश हुए न? इसलिए ध्रुव को अंश कहकर पर्याय कही। परन्तु कहीं ध्रुव का अंश वह कोई वर्तमान परिणमनरूप अंश है, ऐसा नहीं है। परिणमन तो उत्पाद-व्यय का है। आहाहा! समझ में आया?

जैसा स्वरूप है, वैसा न माने तो उसकी विपरीत मान्यता नहीं टलती। और विपरीत मान्यता टले बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन बिना धर्म नहीं होता, ऐसा है, भाई! आहाहा! देखो न। आत्मा में दुःख की अवस्था हो दुःखी है। आत्मा में, हों! कोई प्रतिकूल संयोग के कारण दुःख नहीं है। बराबर होगा? मिथ्यात्व के कारण दुःख मानता है। वह दुःख की अवस्था जीव में होती है। पर के कारण नहीं। कर्म का उदय (हुआ), इसलिए दुःख की अवस्था हुई, ऐसा नहीं है। और दुःख की अवस्था में आत्मा पूरा दुःखरूप उत्पन्न हुआ, ऐसा नहीं है। उस दुःख की अवस्था का नाश, भगवान आनन्दस्वरूप है, ऐसी अन्तर्दृष्टि सम्यग्दर्शन करने से दुःख की अवस्था का नाश, आनन्द की अवस्था की उत्पत्ति। यह आत्मा उत्पन्न और विनाश नहीं होता। आत्मा द्रव्य से तो ध्रुव कायम रहता है। उसकी पर्याय में उत्पाद-व्यय होता है। आहाहा! वह दुःख का नाश अर्थात् मिथ्यात्व का नाश, वह कर्म का—दर्शनमोह का नाश हुआ, इसलिए यहाँ मिथ्यात्व का नाश हुआ, ऐसा नहीं है। उसकी पर्याय का अपना धर्म वह है। आहाहा! समझ में आया?

दूसरा प्राणी ऐसा कहे कि हम सामनेवाले के दुःख का नाश कर दें। अर्थात् क्या? अर्थात् क्या? उसने जो अज्ञानरूप से दुःख है, ऐसा माना है, उस मान्यता का तू नाश कर सकेगा? उसे अच्छे संयोग दें दाल, भात, रोटी, सब्जी, रोटियाँ, वह तो जड़ की अवस्था है। जड़ की अवस्था के कारण उसे दुःख अवस्था मिटेगी? समझ में आया? नंगे को वस्त्र दे, भूखे को रोटियाँ दे, प्यासे को पानी दे। समझ में आया? यहाँ तो हमारे पास बहुत ऐसे आते हैं कि मुझे विवाह करना है तो दो-तीन-चार हजार पैसे (रुपये) दो। ऐसे यहाँ आते हैं। मेरा साला किससे माँगता है, उसकी खबर नहीं होती। हें?

मुमुक्षु : गरजवान को अक्ल हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : गरजवान को अक्ल नहीं होती। मेरे जवान अवस्था है और एक व्यक्ति को विवाह करना है। आपके गृहस्थ बहुत हैं, दो-तीन हजार जितने दो इतने। परन्तु मैं किससे माँगता हूँ? पागल के गाँव कहीं अलग होते हैं? आहाहा! पागल है भाई! वीतराग परमात्मा कहते हैं कि भाई! यह पर से मुझे सुख होता है, यह पागलपन-गहलता है। पागल है। और पर के कारण मुझे दुःख होता है, वह पागल है। क्योंकि सुख-दुःख की पर्याय तो तेरी पर्याय में होती है। पर के कारण नहीं होती। आहाहा!

बराबर होगा? परन्तु पेट में भूख लगे और अन्दर पानी पड़े वहाँ 'हाश' ऐसा होता है न? किसे लगे, वह तो जठर की अवस्था है। भूख तो जठर-पुद्गल की अवस्था है। आत्मा को भूख नहीं लगती। आहाहा! और भूख की अवस्था भी पानी पड़ा, अनाज पड़ा; इसलिए भूख की अवस्था टली, ऐसा भी नहीं है। यह तो उन परमाणु की अवस्था भूख की थी, वह दूसरी हो गयी। अनाज पड़ा, इसलिए दूसरी अवस्था हुई और जठर तृप्त हुआ, ऐसा नहीं है। यह तो गजब बातें, भाई! इसी प्रकार प्यास लगी हो और मौसम्बी का पानी मिले, मौसम्बी, ठण्डा... ठण्डा... ठण्डा... घटक... घटक... घटक... 'हाश'! परन्तु उसमें क्या हुआ यह तुझे कुछ खबर है? यहाँ प्यास तो जड़ की अवस्था थी, मिट्टी की-धूल की, वह आत्मा में है? और उसमें पानी पड़ा तो पानी के कारण प्यास मिटी है? वह प्यास की पर्याय जो गरमागरम लगती थी, वह शीत हो गयी। वह पानी तो निमित्त था, (वह) परचीज़ है। परचीज़ के कारण यहाँ ठण्डी हुई, ऐसा है नहीं। आहाहा!

अभी एक व्यक्ति कहता था, अरे! भूखे को अनाज दो। दो, बापू! भूखे को अनाज दो। हम गरीब व्यक्ति हैं। नाम सुने न वहाँ बहुत यहाँ आते हैं। भूखे दुःखी लोग हैं, भूख मिटाना चाहिए। दुःखी की व्याख्या क्या? शरीर में भूख लगी, इसलिए दुःख है? भूख लगी, वह तो जड़ की अवस्था है। वह जड़ में उत्पन्न हुई अवस्था है। वह तो ऐसी कल्पना की है कि मुझे ठीक नहीं है, ऐसी कल्पना की, वह तुझे दुःख है।

मुमुक्षु : मुझे भूख लगी, ऐसा माना।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा मानकर ऐसी भ्रमणा की, उसमें तुझे दुःख है। वह दुःख तेरा

उत्पाद-व्यय का धर्म है। दु:ख उत्पन्न किया। दूसरे क्षण में उस दु:ख की अवस्था का नाश करके दूसरी दु:ख की अवस्था उत्पन्न की। समझ में आया?

वह अवस्था तुझमें तेरे कारण से होती है। उसमें आत्मा त्रिकाली है, वह दु:ख की दशा में पूरा उपजता है और पूरा नाश होता है, ऐसा है नहीं। गजब बातें, भाई! अब ऐसा! आहाहा! यह तो महा भेदज्ञान है। समय-समय की प्रत्येक द्रव्य की पर्याय स्वयं से होती है और स्वयं से जाती है, ऐसा पर्याय का स्वतन्त्र स्वयंसिद्ध सत् का स्वभाव है। दूसरे परमाणु के कारण, दूसरे आत्मा के कारण उसमें कुछ हो, यह मान्यता बिल्कुल मिथ्यात्व और अज्ञान है। कहो, ऐसी बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं होगी? परमेश्वर वीतराग आता है न? 'केवली पण्णत्तो धम्मो शरणम्' मंगलिक में आता है। भगवान का कहा हुआ धर्म, वह अन्यत्र कहीं नहीं हो सकता। आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसकी दृष्टि कर तो 'केवली पण्णत्तो धम्मो शरणम्' तुझे शरण हो। समझ में आया? यह शरण भी तुझे लेना है और अशरण भी तुझे टालना है। कोई भगवान दे नहीं देते। भगवान की पर्याय उत्पन्न-व्यय तो उनमें होता है। उसमें तेरे कारण कुछ होगा? अथवा उसके कारण तुझमें कुछ होगा? हें? माने तो इसलिए? मानना, वह तो इसकी पर्याय हुई। हें? वह तो इसकी पर्याय हुई। गुरु की पर्याय वहाँ आकर कहाँ घुस गयी है? माने तो माननेवाला यह हुआ न? तो माननेवाला तो इसकी पर्याय हुई। परन्तु कहे कौन? वह तो जड़ की वाणी है। गजब बात, भाई! आहाहा! ऐसी अगडम-बगडम जगत की चीज़ हो गयी है न? कहीं पता नहीं लगता। ऐसा पर में घिर गया है। आहाहा!

कहते हैं कि यह पॉइन्ट एक परमाणु है, उसमें अनन्त पर्याय की शक्ति पड़ी हुई है। वह शक्तिरूप से जो है, वह कायम ध्रुव है, परन्तु जो प्रगटरूप अवस्था होती है, वह पर्याय है। उस प्रगटरूप अवस्था में ध्रुवपना नहीं आता। और जो पूर्व की अवस्था जाती है, उसमें कहीं ध्रुवपना नहीं आता। यह उत्पन्न और व्यय प्रगट अवस्था है। अप्रगटरूप से जो ध्रुव है, अनन्त शक्ति का पिण्ड, ऐसी अनन्त पर्यायें ध्रुव में पड़ी हैं। वह कहीं बाहर से नहीं आती। आहाहा!

भगवान आत्मा में भी सिद्ध भगवान की शक्ति की अनन्त पर्यायें यहाँ पड़ी हैं। यहाँ आत्मा में है। अनन्त केवलज्ञान, अनन्त केवलदर्शन, अनन्त सिद्ध अवस्थायें सब अन्दर

आत्मा में शक्तिरूप से है। प्रगटरूप से तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान की पर्याय जो प्रगट है, वह प्रगट उत्पाद-व्यय उसमें होता है। नयी पर्याय हो और पुरानी जाये। वस्तु में तो जो अनन्त शक्ति है, प्रगट के अतिरिक्त, अनन्त शक्तियाँ कायम ध्रुवरूप से काम करती हैं। आहाहा! भगवान आत्मा में आनन्द है और पर्याय में एक समय में प्रगट जो आनन्द की अवस्था होती है, ऐसी-ऐसी तो अनन्त आनन्द की अवस्था की शक्ति ध्रुव में है। वह तो अस्तित्वरूप से है। प्रगटरूप से तो जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट करे, जितना आनन्द हो, वह एक समय की प्रगट अवस्था है। प्रगट अवस्था का व्यय हो, दूसरी प्रगट अवस्था उपजे और प्रगटरूप से जो पूरी चीज़ ध्रुव है, वह कायम रहे। आहाहा! गजब भाई!

ऐसा चलता नहीं न फिर वह गड़बड़ करे जड़ को चैतन्य करे और चैतन्य को जड़ करे। एक आत्मा दूसरे का करे और जो गड़बड़-गड़बड़ मिथ्यात्व की। और कहे कि हम धर्म करते हैं। आहाहा! ध्यान रखकर सुने तो समझे तो इसकी पर्याय उत्पन्न हो। तो इसकी पर्याय उत्पन्न हो, ऐसा कहा न? उससे इसकी (पर्याय उत्पन्न) हो। सुनने से हो, (ऐसा) नहीं। ऐसी बात है, भाई! सूक्ष्म बात है। सूक्ष्म है।

यहाँ तो ऐसा कहा न? इसकी ही पर्यायों का, इसकी अर्थात् वह-वह परमाणु और वह-वह आत्मा। **उसी की पर्यायों के—सहवर्ती कुछ (पर्यायों) का ध्रौव्य होने पर भी....** यहाँ कितने ही गड़बड़ करते हैं। अर्थात् कि ध्रुव की कितनी ही पर्यायें जो हैं, वे तो अंश पर्यायें हैं, वह ध्रुव है और बाकी का ध्रुव, वह अलग है। ऐसा नहीं। यह तो पूरी चीज़ है परमाणु एक और आत्मा एक, ऐसे अंश, ऐसे तीन अंश में का एक अंश ध्रुव है, उसे पर्याय अर्थात् भेद कहा। वह ध्रुववाली जो पर्याय, वह तो ध्रुव होने **पर भी अन्य क्रमवर्ती (पर्यायों) के—विनाश और उत्पाद होना घटित होते हैं।** लो! इस प्रकार पर्याय में ध्रुव नहीं आता। परन्तु दूसरी क्रमवर्ती पर्यायें आत्मा में और परमाणु में क्रम-क्रम से जो अवस्था होनी है, जो शक्तिरूप से है, उसमें से विनाश। जो पूर्व की अवस्था का विनाश। समझ में आया? मिट्टी के पिण्ड का नाश और घट की उत्पत्ति, वह मिट्टी की शक्ति में से आती है। शक्ति ध्रुव है, परन्तु मिट्टी का घड़ा उत्पन्न हुआ, (वह) कुम्हार के कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। कठिन बात, भाई!

कहो, इस कारीगर के कारण मकान नहीं होता, ऐसा भगवान यहाँ कहते हैं। भोगीलालभाई! कठिन यह। यह सब इन्होंने वहाँ बहुत इसने किया है। वहाँ बड़े इंजीनियर थे न? साढ़े आठ सौ वेतन था। बारह सौ देता था तो नहीं लिया, फिर छोड़ दिया। धूल में भी नहीं अरे! सुन न! कौन करे, बापू? हें?

मुमुक्षु : अभिमान करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिमान करे। अभिमान की पर्याय इसमें हो? वह तो उत्पाद-व्यय होता है। समझ में आया? आहाहा!

सहवर्ती कितनी ही पर्यायों का ध्रुव होने पर भी, किसमें? इस आत्मा में और परमाणुओं में प्रत्येक द्रव्य में स्वतन्त्र। कोई द्रव्य किसी परमाणु के कारण और किसी परमाणु में नहीं है। यह दूध की दही (पनेरूप) अवस्था होती है और दूध की अवस्था जाये, गोरसपना कायम रहता है। दूध का गोरसपना कायम रहता है। और दूध की अवस्था जाये और दही की हो, वह उसकी पर्याय में होती है। छाछ के कारण दही की अवस्था हुई, ऐसा नहीं है। गजब बात, भाई! (दही जमाने के लिये) कितने ही छाछ डालते हैं, नहीं तो कितने ही नारियल की काचली डालते हैं और दो-चार रुपये डाले। छाछ सड़ी हुई हो न? उसकी अपेक्षा दूध में दो-चार रुपये डाले। तो दही हो जाता है। यह कहते हैं रुपये के कारण होता है? रुपये के परमाणु भिन्न हैं। यह दही की अवस्था हुई, दूध की गयी, गोरस के रजकण कायम रहे। यह कायम रहे, वह द्रव्य का विषय है—द्रव्यार्थिकनय का, बदलता है तो पर्यायनय का। दोनों उसी और उसी के भाव में और उसी के भाग में है। उसका भाग बाहर से नहीं आता और उसका भाग दूसरे को नहीं देता। कहो, यह लड़का थोड़ा भाग देता है या नहीं? गोठण-गोठण, ऐ भाग लाया है या नहीं? भाग दे, मुझे थोड़ा। कल मैं तुझे दूँगा। ऐसे यह एक द्रव्य अपनी पर्याय का थोड़ा भाग दूसरे को दे या नहीं? गोठ नजदीक हो तो? समझ में आया?

ऐसी चीज़ की स्वतन्त्रता का जो ढिंढ़ोरा भगवान ने कहा और ऐसा है, ऐसा न माने तो उसकी विपरीत दृष्टि टले नहीं। विपरीत दृष्टि मिथ्यात्व टले बिना जो कुछ व्रत, नियम और तप आदि करे, वे सब भटकने के पन्थ में जाते हैं। उसमें आत्मा का जरा भी कल्याण

नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? कितने ही पर्यायों का ध्रुव होने पर भी भेद, परन्तु दूसरी क्रमवर्ती पर्यायों के विनाश और उत्पाद होना घटित होता है। उसमें उत्पाद-व्यय होता है न? घट की उत्पत्ति होती है, मिट्टी की पर्याय का व्यय होता है। आटे की रोटी होती है, वे आटा के रजकण कायम रहते हैं, पहले पिण्ड जो था, क्या कहलाता है? लोई। उस लोई का व्यय हुई, रोटी की उत्पत्ति हुई, रजकणों का कायम रहना। परन्तु उस रोटी की उत्पत्ति हुई, वह बेलन से हुई है, ऐसा नहीं है। ऐसा यहाँ तो कहते हैं। बेलन कहते हैं न? बेलन-बेलन। कहते हैं कि ऐसे घुमावे तो रोटी हो। यह तो यहाँ इनकार करते हैं। ऐई! और रोटी बनावे और फुलाने-पिण्डा करने को जरा बीच में थोड़ा सा आटा डाले। डालकर फिर ऐसे-ऐसे करे। फिर ऐसे कपड़ा रखे। तो होवे पिण्डा वह बीच में जरा आटा था न, इसलिए पिण्डा होता है। कहते हैं कि आटा उस आटे की पर्यायरूप परिणमा है। वह वस्त्र के कारण नहीं, तवे के कारण नहीं, बाई के हाथ के कारण नहीं और बाई के विकल्प के कारण नहीं, लो! ऐई! सब भिन्न है, तो सब भिन्न रखे। सबको भिन्न रखा। एक में दूसरा घुस जाता है?

यह उपादान-निमित्त का झगड़ा इसमें मिट जाये, ऐसा है। निमित्त आकर ऐसा हो, निमित्त आकर ऐसा हो, धूल में भी नहीं होता, सुन न! निमित्त निमित्त का उत्पाद-व्यय करता है। यह द्रव्य अपना-अपना उत्पाद-व्यय करता है। दूसरा कौन करे इसे? पण्डितों में अभी बड़ा विवाद चलता है। काशी के पढ़े हुए विद्वान सब। झगड़ा... झगड़ा... झगड़ा। निमित्त आवे तो होता है, निमित्त न आवे तो नहीं होता। तो उसकी पर्याय चली जाती है? प्रत्येक द्रव्य की पर्याय का काल है तो (उसकी) पर्याय नहीं होगी? निमित्त आवे तो कुछ दूसरी अवस्था हो और न हो तो (नहीं हो), इसका अर्थ क्या? जो अवस्था का उत्पाद होने का, वह होती है, जिस अवस्था का व्यय होने का (काल है) वह होती है और ध्रुव तो कायम रहता है। निमित्त हो या न हो, उसके साथ सम्बन्ध क्या है। समझ में आया?

इसलिए द्रव्य द्रव्यार्थिक आदेश से (—कथन से) उत्पादरहित, विनाशरहित, सत् स्वभाववाला ही जानना चाहिए.... देखो, लो! आत्मा और परमाणु द्रव्यदृष्टि से-कायम रहनेवाले की दृष्टि से सत्व है, ऐसा बस। 'है'। यह है, पहले सत् के तीन आये थे, ऐसा यहाँ नहीं। पहले तो सत् है, वह नित्यानित्य स्वभाववाला आया था। यहाँ तो नित्य लेना। तीन लक्षण आये थे न? सत् स्वभाव कायम रहनेवाला, वह नित्यानित्य स्वभाव है,

इसलिए। नित्यानित्य है, वह उत्पाद-व्यय अनित्य और ध्रुव कहा। गुण वह नित्य और पर्याय वह अनित्य। ऐसा कहकर तीनों को मिलाया था। यहाँ जो द्रव्य है, वह द्रव्य ध्रुव है। वह सत्स्वभाववाला जानना। इसलिए ध्रुवपने के स्वभाववाला जानना। वह उत्पाद-व्ययवाला जो तीन नित्यानित्य स्वभाव, वह यह नहीं लेना। आहाहा! समझ में आया?

बस ऐसा जानना... जानना... जानना... ही आत्मा में होगा? आत्मा ज्ञानस्वरूप है। आत्मा दूसरी चीज़ क्या है? आत्मा अर्थात् ज्ञान का पिण्ड प्रभु। चैतन्य का चौसला। चैतन्य का चौसला। जानना... जानना... जानना... जानना... काम करे। इसके अतिरिक्त अन्दर दूसरी क्रिया है नहीं। शरीर को करे नहीं, वाणी को करे नहीं। आत्मा कर्म को बाँधे नहीं। कहो, समझ में आया? अप्पा कत्ता विकत्ता, ऐसा सब कहे। आत्मा कर्म का कर्ता। बापू! आत्मा कर्म का भोक्ता। वह यहाँ इनकार करते हैं। तेरे विकार का तू कर्ता और तेरे विकार का तू भोक्ता। जड़ का तू कर्ता नहीं और जड़ का तू भोक्ता नहीं। क्योंकि जड़ का उत्पाद-व्यय उसमें होता है। उसके उत्पाद-व्यय को तू क्या करे और उसे भोगता है, किस प्रकार तू? कहो, समझ में आया?

उस गाथा में आया न? ज्यम चरे, ज्यम चीठ्ठे, ज्यम सये, ज्यम आशये, ज्यम सये-जगत से सोना ऐसा है न? वह पुंजणी ऐसे-ऐसे करके सोवे तो मानो यत्न हो गया। ऐसा नहीं। वह तो क्रिया जड़ की है। ज्यम भुजन्तो, लो! यत्न से भोजन करना। ठीक! यत्न का अर्थ उसमें प्रमाद होने नहीं देना। भोजन कर सकता है और छोड़ सकता है, वह आत्मा में है नहीं। भोजन तो जड़ की अवस्था है। वह परमाणु स्वयं वहाँ पर्यायरूप परिणमते हैं न, व्यय होता है परमाणु, व्यय होता है, आत्मा उसमें कुछ करता नहीं। आहाहा! भारी काम, भाई! जगत से भारी उल्टा।

खाने-पीने की क्रिया जड़ की जड़ में होती है। आत्मा खाने-पीने की क्रिया नहीं कर सकता, ऐसा भगवान यहाँ कहते हैं। मूढ़ मानता है कि मैं खाता हूँ और पीता हूँ, इस दृष्टि में मिथ्यात्व का महाशल्य है। आहाहा! कहो, यह बराबर होगा या नहीं? जीतु! वह हथौड़ा उठावे, उसे कौन उठाता था? तुझे आता होगा या नहीं? आया होगा या नहीं? हथौड़ा-बथौड़ा।

मुमुक्षु : जड़ की क्रिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ की। हें ? कर देखो तुम्हारे कारीगर होना हो तो। क्या कहलाता है वह ? इंजीनियर। क्या कहलाता है वह ? इंजीनियर वहाँ पढ़ता है। कहते हैं कि वह लोहे का भाग है और वह रजकण का है। यह ऊँचा-नीचा होना, वह जड़ की पर्याय से होता है। उसकी—लोहे की पर्याय से (होता है)। दूसरे के हाथ से नहीं और दूसरे के विकल्प से नहीं। आहाहा! अनन्त द्रव्यों को मानना और अनन्त में से एक द्रव्य दूसरे का करे, (ऐसा) मानना तो अनन्त रहते नहीं।

भगवान ने तो अनन्त परमाणु और अनन्त आत्मा कहे हैं। तो अनन्त कैसे रहेंगे ? कि अपने-अपने ध्रुव में और अपने-अपने उत्पाद-व्यय में हो तो अनन्त रहें। दूसरे के उत्पाद-व्यय में घुस जाये तो अनन्त नहीं रहते। वह अनन्त को मानता नहीं। समझ में आया ? पर का मुझसे होता है, ऐसा माननेवाला अनन्त को नहीं मानता। इसलिए उसके ज्ञान में अनन्त को जानने का स्वभाव है, इस प्रकार से जानता नहीं। उल्टा जानता है। गजब भाई! ओहोहो! मनुष्यपना ऐसा! उसमें यदि यह सत्य समझेगा नहीं, तो कहीं उसके चौरासी का अन्त नहीं आयेगा। चौरासी के अवतार में भटककर मर गया। आहाहा!

मुमुक्षु : इसमें तो कहीं ध्रुव का आश्रय करने का आया नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव का आश्रय अर्थात् ध्रुव में सब शक्तियाँ पड़ी हैं, ऐसा कहा। प्रगट है अमुक। अब प्रगट नयी करनी हो तो इसे ध्रुव का शरण लेना, इसका अर्थ हो गया। ध्रुव में अनन्त शक्ति है। सब शक्ति है। प्रगटरूप तो एक ही अवस्था है। प्रगटरूप। तब अब नयी अवस्था प्रगट करना हो तो कहाँ से करना ? इसके—जीव के लिये, हों! परमाणु तो स्वतन्त्र हुआ ही करता है न ? इसे मुड़ना है न ?

भगवान आत्मा ध्रुव चैतन्यमूर्ति आनन्द का कन्द अनादि-अनन्त है, उसकी वर्तमान अवस्था में जो अज्ञान और दुःख है, उसे टालना हो तो जो शक्ति नयी वीतरागपर्याय आदि प्रगट होगी, वह सब शक्ति का मूल तो ध्रुव है। वहाँ है। वहाँ एकाग्र होगा तो जिस समय की पर्याय है, वह बाहर आयेगी। आहाहा! समझ में आया ? किसी पर्याय में से पर्याय आयेगी ? पर्याय तो जाती है। एक अवस्था है, वह तो गयी। नयी हुई। नयी कहाँ से

हुई ? अभी तो ध्रुव से सिद्ध करना है न ? पर्याय पर्याय से हुई। पर से भिन्न किया है न अभी। लम्बी बात नहीं कहकर। कहो, समझ में आया ?

यह आ गया न अन्दर कि ध्रुव में अनन्त शक्ति है। बस शक्ति-शक्ति सदृश रहेंगे। एक समय की अवस्था, सदृश पूरा है, उसमें से नहीं आती। और क्या कहा ? एक अंशरूप ऐसी है, वह तो भेद और व्यवहारनय हो गया। गजब बात है। सर्वज्ञ परमेश्वर का तत्त्वज्ञान वस्तु का तत्त्व स्वरूप सर्वज्ञ ने कहा, सर्वज्ञ ने किसी का कुछ किया नहीं। सर्वज्ञ किसी का कर देते हैं ? जैसा था, वैसा कहा, कहा वैसा लोग जाने, समझे तो उनका कल्याण हो। ऐसी बात है। आहाहा ! झगड़ा करे, लो, चश्मा बिना ज्ञात होता है ? लो, चश्मा उतार दो। कौन उतारे ? वह तो जड़ की पर्याय है। उसे यहाँ रहना है और नीचे उतरना हो तो उत्पाद-व्यय तो परमाणु में होता है। परमाणु कायम रहकर उसमें होता है। अँगुली के कारण नहीं, जीव के कारण नहीं। गजब काम, भाई ! अब करो चर्चा। किसकी चर्चा ? तुम्हारी चर्चा दिखती है न ? विचार नहीं, उसका अर्थ यह। चश्मे से आत्मा को ज्ञान होता है, चश्मा न हो तो नहीं होता। भगवान इनकार करते हैं।

आत्मा में ज्ञान का उत्पाद हो वह पर्याय में पर्याय के कारण से होता है। पर के कारण से नहीं। गजब, भाई ! देखो न ! कितना कहा और सिद्ध किया। आहाहा ! दृष्टान्त तो जितने देना हो, उतने दिये जा सकते हैं। सोने का और दाल-भात और मिट्टी का और शरीर की अवस्था के लिये जा सकते हैं। कुमार अवस्था हुई, जवान और वृद्धावस्था हो, परमाणु कायम रहते हैं। यह तो अवस्था है। कहना किसे ? वह तो अपेक्षा से कहते हैं। बाकी तो परमाणु की अवस्था है। बालकपन की शरीर की अवस्था का उत्पाद हुआ, उसका व्यय हुआ और युवा की अवस्था शरीर में होती है। (वह) आत्मा के कारण नहीं। परमाणु उसके कायम रहते हैं।

आयुष्य पूरा हो गया, इसलिए आत्मा यहाँ से छूटता है, ऐसा इनकार करते हैं। आता है, उसके लिये तो यह स्पष्टीकरण किया है। यहाँ से छूटता है, उसकी पर्याय की हद इस जाति की पूरी हो गयी है। दूसरी गति की पर्याय स्वयं के कारण से यहाँ से गयी है। कर्म के कारण से नहीं। कर्म उसे दूसरी गति में ले नहीं जाता। उसकी पर्याय की स्वयं की

योग्यता से दूसरी गति में जाता है। आहाहा! वह कहे कि ईश्वर ले जाता है। यह कहे कि कर्म ले जाता है। दोनों एक जाति के हैं। वस्तु से तो दृष्टि एकदम विरुद्ध है। कहो, समझ में आया? वह कहे, यम लेने आया। ....शरीर तो पड़ा रहा। क्या ले गया? यह आत्मा ले गया? आत्मा तो अरूपी है। आता है या नहीं? वह एक फोटो में आता है। शंकर का नहीं लिंग और फिर एक मनुष्य उसे पकड़ता है और वह यम भैंसे में बैठकर आता है। फोटो में आता है, फोटो में। भैंसा में आता है, और फिर डोरी डालता है, वह डोरी डाली तो शरीर साथ में जाता होगा? वे शरीर के रजकण तो यहाँ पड़े रहे। और आत्मा छूटे तो स्वयं के कारण से छूटता है। कहाँ जाना है, यह उसकी पर्याय की योग्यता (से जाता है)। वह यम ले जाता होगा?

दूसरे को परमेश्वर ले जाये, ऐसा कहते। परमेश्वर आया, वहाँ बाहर खड़े थे। फिर अमुक का घर कहाँ आया? ऐ, परन्तु वहाँ से आये और घर पूछना पड़ा? हमारे बोटाद में हुआ था। भगवान ऐसा कहे, उस रथ में बैठकर आये और समझे न? बैल कैसे सींग ऐसे के ऐसे और फिर गली में पूछा कि अमुक का घर कहाँ है? मरने की तैयारी है तो परमेश्वर लेने आये हैं। वहाँ से चले आये और यहाँ खबर नहीं पड़ी? ऐसे गप्प-गप्प उड़ाते हैं। वह व्याख्यान में आया था, इसलिए वे थे न सब बहुत, स्वामीनारायण और वे कहे यह क्या कहते हैं? वहाँ है न तुम्हारे। अरे! बापू! कौन परमेश्वर और कहाँ लेने आवे और कहाँ ले जाये? तेरी पर्याय में तू उपजता है और तेरी पर्याय पूर्व बिना तेरे कारण हो। कर्म के कारण नहीं तो फिर परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा वह तो सर्वज्ञदेव हैं। वे तो जगत के ज्ञाता-दृष्टा हैं। वे किसी को लेने आवे या देने आवे, ऐसा है नहीं।

कहो, यह द्रव्यार्थिक सत् स्वभाव का जानना। **और वही (द्रव्य) पर्यायार्थिक आदेश से उत्पादवाला तथा विनाशवाला जानना चाहिए।** लो, दो नय आ गये। **यह सब निरवद्य (-निर्दोष, निर्बाध, अविरुद्ध) है, क्योंकि द्रव्य और पर्यायों का अभेद है (-अभिन्नपना) है।** वस्तु और उसकी अवस्था एक-एक है। पृथक्-पृथक् नहीं। द्रव्य से उत्पाद-व्यय की पर्याय हो और द्रव्यपना कायम रहे। पर के कारण कुछ सम्बन्ध है नहीं। पर का कोई अपनी पर्याय करे नहीं और पर की पर्याय स्वयं करे नहीं। ऐसा वस्तु का स्वरूप है। ऐसा समझे तो उसे यथार्थ ज्ञान होकर द्रव्य के ऊपर दृष्टि जाती है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १२

पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूवेंति।।१२।।

पर्ययवियुतं द्रव्यं द्रव्यवियुक्ताश्च पर्याया न सन्ति।
द्वयोरनन्यभूतं भावं श्रमणाः प्ररूपयन्ति।।१२।।

अत्र द्रव्यपर्यायाणामभेदो निर्दिष्टः।

दुग्धदधिनवनीतघृतादिवियुतगोरसवत्पर्यायवियुतं द्रव्यं नास्ति। गोरसवियुक्तदुग्धदधि-नवनीतघृतादिवद्द्रव्यवियुक्ताः पर्याया न सन्ति। ततो द्रव्यस्य पर्यायाणां चादेशवशात्कथंचिद्-भेदेऽप्येकास्तित्वनियतत्वादन्योन्याजहद्वृत्तीनां वस्तुत्वेनाभेद इति।।१२।।

पर्याय विरहित द्रव्य नहीं नहि द्रव्य बिन पर्याय है।
श्रमणजन यह कहें कि दोनों अनन्य-अभिन्न हैं।।१२।।

अन्वयार्थ :- [पर्ययवियुतं] पर्यायों से रहित [द्रव्यं] द्रव्य [च] और [द्रव्यवियुक्ताः] द्रव्य रहित [पर्यायाः] पर्यायें [न सन्ति] नहीं होती; [द्वयोः] दोनों का [अनन्यभूतं भावं] अनन्यभाव (-अनन्यपना) [श्रमणाः] श्रमण [प्ररूपयन्ति] प्ररूपित करते हैं।

टीका :- यहाँ द्रव्य और पर्यायों का अभेद दर्शाया है।

जिस प्रकार दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि से रहित गोरस नहीं होता, उसी प्रकार पर्यायों से रहित द्रव्य नहीं होता; जिस प्रकार गोरस से रहित दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि नहीं होते, उसी प्रकार द्रव्य से रहित पर्यायें नहीं होती। इसलिए यद्यपि द्रव्य और पर्यायों का आदेशवशात् (-कथन के वश) कथंचित् भेद है तथापि, वे एक अस्तित्व में नियत (-दृढ़रूप से स्थित) होने के कारण *अन्योन्यवृत्ति नहीं छोड़ते, इसलिए वस्तुरूप से उनका अभेद है।।१२।।

---

* अन्योन्यवृत्ति=एक-दूसरे के आश्रय से निर्वाह करना; एक-दूसरे के आधार से स्थित रहना; एक-दूसरे के बना रहना।

धारावाही प्रवचन नं. २१ (प्रवचन नं. २०), गाथा-१२, १३
दिनांक - ०४-१२-१९६९, कार्तिक कृष्ण १०, गुरुवार

समयसार, षट्द्रव्य का अधिकार है। १२वीं गाथा। ११ गाथा कल पूरी हुई। बारह।

पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूवेंति।।१२।।

इसमें नहीं, नहीं ? हरिगीत नहीं न ? हें ? हिन्दी। उसकी टीका।

टीका :- यहाँ द्रव्य और पर्यायों का अभेद दर्शाया है। क्या कहते हैं ? आत्मा, वह द्रव्य है और उसकी अवस्था पर्याय है, इन दो का अभेदपना है। पर्याय का प्रदेश भिन्न और द्रव्य का प्रदेश भिन्न, ऐसा है नहीं। इसी प्रकार शरीर के एक-एक रजकण परमाणु हैं, वे जो द्रव्य हैं, उनकी एक अवस्था जो होती है, वह पर्याय, वह द्रव्य और पर्याय एक है। अभेद है। उसका अस्तित्व एक है। यह कहते हैं, देखो।

दृष्टान्त देते हैं। जिस प्रकार दूध एक गौरस की अवस्था है। गौरस है न, गौरस, उसकी दूध एक पर्याय है—अवस्था है। बराबर है ? दही, वह भी एक गौरस की अवस्था है, पर्याय है। मक्खन, वह भी एक गौरस की पर्याय है, अवस्था है। घी, वह भी एक गौरस की अवस्था है, पर्याय है। **उन सबसे रहित वह पर्याय से रहित गोरस नहीं होता....** बराबर है ? पर्याय न हो और गौरस हो हो, ऐसा बनता है ? पर्याय से रहित गौरस नहीं होता। **उसी प्रकार पर्यायों से रहित द्रव्य नहीं होता;.....**

यह परमाणु जो हैं, उनकी समय-समय में जो अवस्था होती है, अवस्था। ऐसे तो एकरूप दिखती है। समय-समय में उसमें रूपान्तर होता है। एकरूप नहीं। यह परमाणु में ऐसी की ऐसी अवस्था दिखती है। उसमें एक-एक परमाणु में एक-एक सेकेण्ड के असंख्य भाग के समय में अनन्त गुण की समय-समय में भिन्न-भिन्न पर्याय होती है। भिन्न-भिन्न का अर्थ, पहली पर्याय से भिन्न पर्याय होती है। परन्तु उस पर्याय से परमाणु भिन्न नहीं है। समझ में आया ?

इसी प्रकार आत्मा में जो रागादि या ज्ञानादि अवस्था होती है, उस अवस्था से-

पर्याय से द्रव्य भिन्न नहीं है। द्रव्य भिन्न नहीं है और भिन्न के कारण से पर्याय होती है, ऐसा नहीं है, यह कहते हैं। (भिन्न के) कारण से पर्याय होती है, ऐसा नहीं है। जैसे कि परमाणु की पर्याय होती है तो पर्याय बिना परमाणु नहीं। परन्तु उस परमाणु की पर्याय परमाणु से हुई है। वह पर्याय दूसरे परमाणु से हुई है या दूसरे आत्मा से हुई है, ऐसा नहीं है। गजब बात। समझ में आया?

जिस प्रकार दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि पर्याय अवस्था से से रहित गोरस द्रव्य नहीं होता.... उसी प्रकार प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु उसकी प्रत्येक भिन्न-भिन्न अवस्था है तो अवस्था बिना, पर्याय बिना द्रव्य नहीं रहता और वह पर्याय दूसरे से हो, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? जिस प्रकार यह हाथ हिलता है देखो, वह पर्याय परमाणु की है। तो उस पर्याय बिना परमाणु नहीं। परन्तु वह पर्याय आत्मा के बिना नहीं होती – ऐसा नहीं है। वह आत्मा बिना परमाणु से पर्याय होती है। समझ में आया?

जैसे भाषा, भाषा जो आती है, वह परमाणु की पर्याय है। भाषा शब्दवर्गणा की एक पर्याय है। तो पर्याय बिना परमाणु नहीं परन्तु वह पर्याय आत्मा से होती है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म। आहाहा! जिसे सम्यक् यथार्थ, सत्यता समझनी हो तो (यह) समझना पड़ेगा। जिसे मिथ्या शल्य निकालना हो और सम्यग्ज्ञान प्राप्त करना हो, और सुख के पन्थ में जाना हो तो यथार्थ समझना पड़ेगा। आहाहा!

यह तो मैं हूँ तो शरीर टिकता है। कहते हैं कि तेरी मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। और शरीर टिकता है तो मैं अन्दर में टिक रहा हूँ। समझ में आया? जड़ में आयुष्य की पर्याय है तो मैं आत्मा की पर्याय में अपने में टिक रहा हूँ। कहते हैं कि खोटी बात है। अपने रजकण बिना आयुष्य की पर्याय होती नहीं। परन्तु आयुष्य की पर्याय है वह तो आत्मा की पर्याय होती है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? भारी सूक्ष्म।

यहाँ तो 'पज्जविजुदं दव्वम्' यह व्याख्या अपने आयी है। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज (कहते हैं)। पर्यायरहित द्रव्य होता नहीं। इसका अर्थ—कोई भी आत्मा और परमाणु किसी भी समय में कार्य बिना का होता नहीं। पर्याय कहो या कार्य कहो। तो वह कार्य / पर्याय द्रव्य बिना नहीं होता। परन्तु वह कार्य पर से होता है, ऐसा है नहीं। पर्याय अर्थात्

कार्य। कारण त्रिकाली द्रव्य। पर्याय—अवस्था-हालत, तो हालत द्रव्य बिना नहीं है। परन्तु वह कार्य अपने द्रव्य बिना नहीं है। परन्तु वह कार्य परद्रव्य से होता है (ऐसा नहीं है)। कुम्हार से घड़ा होता है, यह सिद्धान्त झूठा है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। घट की पर्याय मिट्टी बिना नहीं होती। समझ में आया? घी-दूध की पर्याय गौरस बिना नहीं होती। इसी प्रकार घट की पर्याय मिट्टी के बिना नहीं होती। परन्तु कुम्हार के बिना होती है। हें? हाँ, परन्तु यदि इसे सत्य समझना होगा तो यह समझना पड़ेगा। क्यों धर्मचन्दजी! क्या? रोटी की पर्याय और आटा की पर्याय परमाणु के बिना नहीं होती। परन्तु आटा की पर्याय बेलन से होती है या तवे से होती है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

तवा होता है न यह रोटी बनाने का तवा? तवा को क्या कहते हैं? तवा। तो तवा उसकी पर्याय बिना वह द्रव्य नहीं होता। परन्तु रोटी की पर्याय तवा से होती है, ऐसा नहीं है। तवा बिना ही होती है। उसके परमाणु बिना रोटी की पर्याय नहीं होती। अग्नि-फग्नि से नहीं। अग्नि परद्रव्य है, रोटी का भी भिन्न द्रव्य है। आहाहा! गजब मार्ग, ऐसा! भिन्न-भिन्न तत्त्व। अनन्त जीव, अनन्त आत्मा मानना और अनन्त जीव और अनन्त आत्मा की प्रत्येक पर्याय अपने बिना पर से होती है, ऐसा मानना, वह अनन्त को मानता ही नहीं। समझ में आया?

पर आत्मा है, उसे शरीर में रहना, वह अपनी पर्याय से रहता है, शरीर की पर्याय से नहीं। और शरीर की पर्याय भी स्वयं से छूटती है और आत्मा भी अपनी पर्याय से छूटता है। शरीर छूटा तो आत्मा की पर्याय भी छूटे, ऐसा है नहीं। और उसकी पर्याय छूटती है तो दूसरे का भाव मारने का था तो छूटा है, ऐसा नहीं है। क्योंकि वह पर्याय बिना का द्रव्य नहीं होता। और राग भाव है, और उसे मारने का द्वेष है और द्वेष है, इसलिए उसकी पर्याय शरीर और जीव भिन्न हुआ, ऐसा नहीं है। हाँ, द्वेष की पर्याय आत्मा बिना नहीं है। परन्तु देह के छूटने की पर्याय द्वेष बिना होती है। समझ में आया?

किसी ने दूसरे को मारने का भाव किया, तो भाव बिना आत्मा नहीं है। भाव पर्याय है, आत्मा नहीं। तो वह भाव हुआ तो मरने की पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। क्योंकि वह परद्रव्य की चीज़ अपनी पर्याय से रहित नहीं है। परन्तु पर के ऊपर द्वेष पर्याय हुई तो द्वेष से शरीर

को वहाँ छूटना पड़ा, ऐसा नहीं है। समझ में आया, भाई? सूक्ष्म बात है। वीतराग तत्त्व इतना सूक्ष्म है। हें?

मुमुक्षु : परम सत्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम सत्य? तब तो हो गया किसी को मारो और अपन मार सकते नहीं, ऐसा मानो! परन्तु मार सकता नहीं, ऐसा तो यहाँ सिद्ध करते हैं।

मुमुक्षु : फाँसी की सजा तो देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : फाँसी की सजा कौन दे सकता है। उसकी पर्याय तो होनेवाली हो, वह होती है। दूसरे तो विकल्प करते हैं। विकल्प बिना फाँसी की सजा कहाँ-कहाँ पर्याय परिणमती है, वह पर्याय द्रव्य के बिना नहीं होती। उसके परमाणु बिना पर्याय नहीं होती और आत्मा की पर्याय वहाँ हुई, वह पर्याय आत्मा बिना नहीं होती। परन्तु पर के कारण पर्याय हुई है, ऐसा नहीं है। गजब बात है, भाई!

वीतरागमार्ग तो (ऐसा है)। भगवान ने अनन्त द्रव्य देखे हैं। परमात्मा ने-परमेश्वर ने अनन्त द्रव्य देखे हैं। प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्याय बिना नहीं होता। परन्तु दूसरे की पर्याय बिना आत्मा रहता है। किन्तु दूसरे की पर्याय अपनी पर्याय से हुई है, ऐसा है नहीं है।

मुमुक्षु : आपने तो द्वेषभाव कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्वेषभाव कहा, तो द्वेषभाव की पर्याय बिना उसका द्रव्य नहीं है। परन्तु द्वेष के भाव की पर्याय बिना उसका मरण हुआ। उसे तो उसकी पर्याय हुई। मुझे द्वेष हुआ तो मैंने उसे मार डाला, यह बात मिथ्या, मिथ्या श्रद्धा को पोषण करती है। और वह जीव बचा, समझ में आया? पानी में मक्खी थी और ऐसे हाथ करके उठा लिया। तो हाथ की पर्याय थी तो उसके परमाणु बिना हाथ की पर्याय नहीं होती। अपने को विकल्प हुआ कि मैं उसे बचा लूँ, तो विकल्प बिना हाथ की पर्याय होती है। और हाथ की पर्याय है तो उसके बचने की पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। उसके बचने की पर्याय उसके द्रव्य बिना नहीं होती। परन्तु दूसरे को बचाने का भाव हुआ, तो बचने की पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। गड़बड़ है। नहीं तो एक द्रव्य और दूसरे द्रव्य का खिंचड़ा हो जाता है।

जैसे ईश्वरकर्ता (है, ऐसा) मानते हैं, वह बात मिथ्या है, उसी प्रकार यह जैन में रहे होने पर भी एक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य की पर्याय करती है, उन दोनों की एक ही मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। दोनों की एक ही मान्यता है। उसमें कुछ दूसरा अन्तर नहीं है। वह यह पंचास्तिकाय कहते हैं, भाई! कहो, मीठाभाई!

वहाँ हीराभाई पैसे पैदा करते हैं न? तो यहाँ ठीक रहता है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। हीराभाई यहाँ हों तो तुम्हारा भानेज वहाँ कमावे। ठीक पड़े न कि अपना काम करता है, चलता है। इसलिए अपने को ठीक है। कहते हैं कि यह बात एकदम झूठी है।

मुमुक्षु : यह अपना काम ही नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : काम ही नहीं परन्तु पर के परमाणु जो बंगड़ी-बंगड़ी जाये-आये, वह पर्याय उसके द्रव्य बिना नहीं है। परन्तु यदि यह बैठा है न हीराभाई, इसलिए पर्याय वहाँ बंगड़ी—बेचने की होती है, ऐसा नहीं है। इसमें आयी गाथा। आहाहा!

यहाँ पाठ देखो न? 'पज्जयविजुदं दवम्' कोई भी द्रव्य पर्याय बिना नहीं होता। परन्तु दूसरे के द्रव्य बिना कोई भी पर्याय हो, ऐसा नहीं है। अरे! गजब बात, भाई! वीतराग का सत्व बहुत सूक्ष्म है। समय-समय की प्रत्येक द्रव्य की जो पर्याय होती है, वह पर्याय उस द्रव्य से होती है, पर से नहीं। समझ में आया?

गौरस के बिना पर्याय नहीं होती। इसी प्रकार पर्याय से रहित द्रव्य नहीं होता। आत्मा है और पर्याय नहीं, ऐसा बने? कोई भी ज्ञान की, राग की पर्याय तो होती ही है। क्षण-क्षण में अनन्त गुण की पर्यायें-अवस्थायें होती ही हैं। तो अवस्था बिना द्रव्य नहीं होता। अथवा अवस्था जो होती है, वह कार्य, तो कार्य बिना कारण नहीं है। कार्य हो और द्रव्य न हो, ऐसा नहीं होता। परन्तु वह कार्य दूसरे द्रव्य से होता है, ऐसा नहीं है। लो, यह दो कारण और कार्य यहाँ उड़ा देते हैं। समझ में आया? कार्य होने के दो कारण हैं। कहते हैं कि दूसरे कारण तो उपचारिक-आरोपित कहे जाते हैं। वास्तविक तो अपने द्रव्य बिना अपना कार्य नहीं होता।

क्या कहते हैं? राग से धर्म होता है, पर से मेरी पर्याय (होती है)। यह मिथ्या श्रद्धा है। ऐसी मिथ्या श्रद्धा अपने द्रव्य बिना नहीं होती। परन्तु कर्म उदय में आया तो मिथ्या

श्रद्धा होती है, ऐसा नहीं है। क्योंकि, कर्म है, वह अनन्त परमाणु की पर्याय है। तो वह पर्याय उसके परमाणु बिना नहीं होती। परन्तु उस पर्याय बिना यहाँ मिथ्यात्व नहीं होता, ऐसा नहीं है। समझ में आया? इसी प्रकार से सम्यग्दर्शन की-धर्म की पर्याय हुई तो वह द्रव्य बिना पर्याय नहीं होती। अपना शुद्ध चैतन्यद्रव्य है, उसके बिना पर्याय नहीं होती। परन्तु (दर्शनमोह) कर्म का क्षयोपशम हुआ तो सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। गजब बात भाई! उसके द्रव्य बिना नहीं परन्तु परद्रव्य बिना राग नहीं होता, ऐसा नहीं है। सूक्ष्म बात है। आहाहा!

बेलन चलता है न, बेलन? रोटी होती है, न रोटी?—तो कहते हैं कि बेलन की पर्याय उसके परमाणु बिना नहीं और रोटी की पर्याय होती है, वह उसके रजकण बिना नहीं। परन्तु बेलन होता है तो रोटी की पर्याय होती है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : कारण और कार्य एक ही द्रव्य में होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, एक ही द्रव्य के होते हैं, दूसरे के नहीं। ऐई! हें? विवाद तोड़ने के मुद्दे हैं। अनादि से मानता है। विवाद... विवाद... आहाहा!

मुमुक्षु : प्रभु! उपादान पर्याय होती है, तब कोई भी निमित्त होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह होता है, वह व्यवहार का कथन है। अपनी पर्याय जब होती है, तब सहकारी निमित्त होता है। परन्तु वह सहकारी निमित्त है, तो अपनी पर्याय हुई, ऐसा है नहीं और प्रतिबद्ध कारण की पर्याय हुई तो यहाँ सम्यग्ज्ञान की पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। यहाँ पर्याय स्वयं से स्वयं के द्रव्य से हुई है। पर का प्रतिबद्ध कारण 'टला है' तो पर्याय हुई है, ऐसा है नहीं। ऐसी चीज़ ही है। आहाहा! समझ में आया?

इस एक गाथा में तो पूरा विश्व चीर दिया है। प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक आत्मा अपनी वर्तमान अवस्था बिना नहीं होते। परन्तु वह अवस्था पर के बिना होती है तो पर के बिना नहीं होती, ऐसा नहीं है। पर के बिना होती है। तो पर बिना नहीं होती, ऐसा नहीं है। पर न हो तो नहीं होती, ऐसा नहीं है। पर की पर्याय पर में होती है, अपनी पर्याय अपने में होती है, बस! समझ में आया?

मुमुक्षु : दोनों का एक साथ होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अनादि का साथ में है न? द्रव्य तो अनादि-अनन्त एक साथ ही है। परिणमन तो एक समय में, अनादि द्रव्य का संग एक समय में है। किसी द्रव्य का परिणमन दूसरे समय में और किसी (द्रव्य का परिणमन) पहले समय में, ऐसा है? सबका वर्तमान समय में परिणमन है। आहाहा! समझ में आया?

प्रत्येक द्रव्य अर्थात् वस्तु अपनी पर्याय बिना की नहीं होती। समझ में आया? और पर्याय द्रव्य बिना नहीं है। ऐसा सिद्ध करना है न, देखो! पहले तो यह सिद्ध किया है कि, पर्यायों से रहित द्रव्य नहीं होता। यह सिद्ध किया है। दूध, दही की पर्याय बिना गौरस हो, ऐसा नहीं है। इसी प्रकार प्रत्येक आत्मा में और प्रत्येक परमाणु में वर्तमान अवस्था बिना द्रव्य होता है, ऐसा नहीं है। पर्यायों से रहित द्रव्य नहीं होता। कठिन बात, भाई! ऐई! उसमें और ऐसा कहे कि पर्याय, पर्याय में और द्रव्य, द्रव्य में। वह दूसरा अधिकार है। यहाँ तो पर से भिन्न करने की बात है। फिर तो पर्याय पर्याय से होती है, पर्याय द्रव्य से भी नहीं। यह (इससे) आगे सूक्ष्म बात है। समझ में आया? आहाहा!

सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर ने जो द्रव्य देखे हैं, वे द्रव्य देखे तो प्रत्येक द्रव्य वर्तमान उसकी अवस्था होती है, उस अवस्था बिना द्रव्य नहीं होता। बस, समाप्त। तो वह अवस्था दूसरे से होती है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? किसी प्राणी ने दयाभाव के परिणाम-शुभविकल्प किये। तो कहते हैं कि शुभविकल्प की पर्याय द्रव्य के बिना नहीं होती। आत्मद्रव्य बिना नहीं होती। परन्तु वह विकल्प हुआ तो पर की दया पल गयी, ऐसा नहीं है। तथा पर की पर्याय उसके द्रव्य बिना नहीं होती। यह राग अपने द्रव्य बिना नहीं। उसकी पर्याय-पर की हुई, उसके बिना राग हुआ है। और राग के बिना पर की पर्याय हुई है। शोभालालजी! गजब काम, भाई!

अहो! प्रत्येक द्रव्य वर्तमान परिणमन करता है। तो परिणमन बिना का द्रव्य हो जायेगा यदि वह परिणमन दूसरा करावे तो परिणमन बिना का द्रव्य हो गया, ऐसा कहते हैं। परिणमन बिना का द्रव्य होता (नहीं)। यह तो पर्याय बिना द्रव्य नहीं तो परिणमन बिना द्रव्य नहीं।

मुमुक्षु : पर्याय बिना परिणमन होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा तीन काल में नहीं है। प्रत्येक (द्रव्य) अपनी-अपनी पर्याय का कर्ता है। कोई (द्रव्य की) पर्याय का कोई द्रव्य कर्ता हो, ऐसा नहीं होता। ओहोहो! यह लोगों को वास्तविक तत्त्व सूक्ष्म पड़ता है न? समझ में आया?

जिस प्रकार गौरस से रहित दूध, दही; अब दूसरा बोल। पहला बोल यह हुआ न कि दूध, दही आदि पर्यायों से रहित गौरस नहीं होता। उसी प्रकार पर्यायों से रहित द्रव्य नहीं होता। एक बात।

अब, दूसरी बात। जैसे गौरस से रहित दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि नहीं होता। गौरस न हो और घी, दूध की पर्याय हो जाये, ऐसा है? उसी प्रकार आत्मा द्रव्य न हो और पर्याय हो जाये, इसी तरह परमाणु द्रव्य न हो और परमाणु में पर्याय हो जाये – ऐसा नहीं है। आहाहा! जिस प्रकार गौरस से रहित दूध, दही, मक्खन, घी आदि नहीं होते, उसी प्रकार द्रव्य से रहित पर्याय नहीं होती। पर्याय हो जाये और द्रव्य न हो, ऐसा नहीं है। द्रव्य से रहित पर्याय नहीं होती। पर्याय से रहित द्रव्य नहीं होता और द्रव्य से रहित पर्याय नहीं होती। परन्तु पर की पर्याय अपने से होती है और अपनी पर्याय पर से होती है, ऐसा तीन काल में नहीं है। सूक्ष्म बात है, भाई! सर्वज्ञ भगवान परमेश्वर ने जितने द्रव्य देखे हैं, वे सब वर्तमान पर्यायसहित द्रव्य देखे हैं। वे पर्यायसहित द्रव्य और द्रव्यसहित पर्याय, पर्याय बिना द्रव्य होता नहीं। पर्यायसहित द्रव्य और द्रव्य पर्यायसहित। समझ में आया?

जिस प्रकार गोरस से रहित दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि नहीं होते, उसी प्रकार द्रव्य से रहित पर्यायें नहीं होतीं। परमाणु न हो और परमाणु की पर्याय हो, ऐसा नहीं है। परन्तु पर परमाणु न हो और पर्याय नहीं होती, ऐसा नहीं है। ऐसा कहा न? क्या कहा? कि द्रव्य से रहित पर्याय नहीं होती। परन्तु परद्रव्य से रहित पर्याय नहीं होती, ऐसा कहा? प्रत्येक की पर्याय परद्रव्य से रहित ही होती है। अपनी पर्याय अपने द्रव्य बिना नहीं होती परन्तु परद्रव्य की पर्याय बिना पर्याय नहीं होती, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो उस द्रव्य की पर्याय उसके द्रव्य बिना नहीं है। समझ में आया?

लोहे के घन पड़ते हैं न घन? ऐ जीतु! लुहार का घन आया। वह सब अब बनिये भी सीखते हैं न? तो कहते हैं कि नीचे हो लोहा और ऊपर पड़े घन तो घन की पर्याय उसके

परमाणु बिना नहीं। और नीचे पर्याय जो ऐसे होती है, तो वह पर्याय द्रव्य बिना नहीं होती। इसके बिना वस्तु है ? घन पड़े बिना उसकी पर्याय हुई है। लोहे की तो ऐसे होती है न ? लोहा, लोहा है न ? यहाँ खड्डे पड़े हैं न ? तो कहते हैं कि खड्डे की पर्याय उसके परमाणु बिना नहीं होती। परन्तु यह अँगुली है तो पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। अँगुली का द्रव्य भिन्न है और यह द्रव्य भिन्न है। स्पर्श ही नहीं करते। एक द्रव्य कभी भी दूसरे द्रव्य को स्पर्श ही नहीं करता। गजब मार्ग ! कहो, बराबर है ?

उसका प्रत्येक परमाणु अपनी-अपनी पर्याय से है, बस। दूसरे से नहीं। आत्मा भी अपनी-अपनी पर्याय से परिणमता है। कर्म के कारण से नहीं और दूसरे के कारण से भी नहीं। यह सिद्ध करना है। ऐसा वस्तु का स्वरूप है। ऐसा न समझे और विपरीत समझे तो मिथ्या श्रद्धा का भागी होगा। मिथ्या श्रद्धा रखकर व्रत, तप, नियम पालन किये थे। वह जानने की ज्ञान की पर्याय होती है, वह पर्याय उसके द्रव्य बिना नहीं है। वह पर्याय भाषा से हुई है, ऐसा नहीं है। वह पर्याय भाषा से हुई है, ऐसा नहीं है। भाषा अन्य द्रव्य है और भाषा की पर्याय जो होती है, वह उसके परमाणु बिना नहीं है। परन्तु भाषा के परमाणु जो पर्यायरूप हुए, भाषा की पर्याय हुई, तो उसे ज्ञान पर्याय हुई, ऐसा है नहीं। गजब काम, भाई !

लो, वे कहे, आठ कर्म भटका मारते हैं, लो यह तो खोटा। हें ? आठ कर्म चार गति में भटकाते हैं। भगवान इनकार करते हैं। कर्म की पर्याय जड़ में। उसकी जड़ बिना पर्याय नहीं। और मिथ्यादृष्टि है, उसकी मिथ्यादृष्टि की पर्याय, उसके द्रव्य बिना नहीं। परन्तु कर्म बिना मिथ्यात्व होता है, कर्म बिना भटकता है ? कर्म तो परचीज़ है। समझ में आया ? निगोद में भी प्रचुर कलंकभाव-प्रचुर कलंकभाव। तो भावकलंक होता है वह अपनी पर्याय अपने द्रव्य बिना नहीं, परन्तु कर्म का वहाँ बहुत जोर है, इसलिए प्रचुर कलंक पर्याय हुई है—ऐसा नहीं है। भारी काम, भाई !

देखो, यहाँ शक्कर है शक्कर, तो शक्कर की मीठी पर्याय शक्कर के परमाणु बिना नहीं। एक बात। अब शक्कर की पर्याय जानकर यहाँ ज्ञान की पर्याय हुई, तो शक्कर की पर्याय है, तो ज्ञान की पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। वह ज्ञान की पर्याय उसके ज्ञानगुण और द्रव्य बिना नहीं। आहाहा ! लॉजिक से-न्याय से तो बात करते हैं। आहाहा !

भारी गड़बड़! भारी गड़बड़, भाई! एक हाथ से ताली नहीं बजती, ऐसा कहते हैं। दो हाथ से ताली बजती है, ऐसा कहते हैं न? यहाँ तो इनकार करते हैं। प्रत्येक रजकण अपनी पर्याय से होता है। देखो, यह हाथ हिलता भी नहीं और छूता भी नहीं। आवाज अन्दर में हुई न? तो आवाज उससे नहीं हुई। वहाँ जो परमाणु हैं, उनकी पर्याय आवाजरूप परिणमी है। वह पर्याय उनके परमाणु बिना नहीं हुई। हथेली के कारण आवाज हुई है, ऐसा नहीं है। अनन्त द्रव्य हैं न, तो वे द्रव्य भिन्न है। हथेली का द्रव्य भिन्न है, और भाषा का द्रव्य भिन्न है। तो किसी द्रव्य की पर्याय उसके दूसरे द्रव्य बिना होती है, ऐसा है नहीं। अपनी पर्याय अपने द्रव्य से होती है। आहाहा!

आयुष्य हो तो उतना जीव को शरीर में रहना पड़े। कहते हैं, ऐसा नहीं है। अपनी पर्याय की योग्यता से उतना ही रहने का हो तो अपनी पर्याय से (उतना ही) रहता है। अपनी पर्याय अपने द्रव्य बिना नहीं, परन्तु वह पर्याय कर्म बिना होती है। कर्म है तो होती है, ऐसा नहीं है। गजब बात, भाई! ऐसा यह धर्म कैसा? धर्त तो यह कि दया पालो, व्रत पालना, अपवास करना, कोई कन्दमूल खाना नहीं। यहाँ कहते हैं कि परद्रव्य को खाये कौन? परद्रव्य को छोड़े कौन? समझ में आया? सब गप्प-गप्प है। ऐ धरमचन्दजी! यह बात तुम्हारे खण्डवा में बहुत नहीं चले, हों! उनकी माँ कहती थी। क्या लगाते हैं यह, कहेंगे? आहाहा!

जिस प्रकार गोरस से रहित दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि नहीं होते, उसी प्रकार द्रव्य से रहित पर्यायें नहीं होतीं। द्रव्य न हो और पर्याय हो, ऐसा है नहीं। **इसलिए, यद्यपि द्रव्य और पर्यायों का आदेशवशात् (—कथन के वश) कथंचित् भेद है....** द्रव्य शब्द में द्रव्य है, पर्याय शब्द में पर्याय है न? शब्द में अन्तर है न? लक्षण में अन्तर है, शब्द में भी अन्तर है, संज्ञा, संख्या, लक्षण में अन्तर है। परन्तु पर्याय और द्रव्य भिन्न नहीं है। प्रत्येक भगवान आत्मा, सिद्ध पर्याय, चलो सिद्ध। सिद्ध की पर्याय केवलज्ञान की। तो पर्याय उसके द्रव्य से भिन्न नहीं है। उस केवलज्ञान पर्याय में केवलज्ञानावरणीय का अभाव हुआ तो वह पर्याय हुई है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसा जानकर अपना द्रव्य ध्रुव शुद्ध चैतन्य है, उसका आश्रय करके सम्यक् की निर्मल पर्याय प्रगट करना, वह धर्म है। समझ में आया?

उस पर्याय को द्रव्य का आधार है। पर्याय का आधार द्रव्य है। उस पर्याय का आधार दूसरा कोई है, ऐसा नहीं है। तो भी उस कथन के वश कथंचित् भेद कहो। द्रव्य और पर्याय आदि नाम भेद है। **तथापि, वे एक अस्तित्व में नियत....** एक अस्तित्व में एक मौजूदगीपने में तीनों हैं। अथवा द्रव्य और पर्याय एक अस्तित्व में हैं। दो अस्तित्व में दो नहीं। अस्तित्व एक है और पर्याय-द्रव्य दो है। भारी सूक्ष्म बात है भाई! तत्त्व बहुत (सूक्ष्म है) अभी तो बाहर में इतना जुड़ गया है न कि वास्तविक तत्त्व ही भूल गये हैं। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के तत्त्व का यह तो स्वरूप ही ऐसा है। भगवान ने कुछ किया नहीं, किया नहीं। यह तो जाना, वैसा कहा है कि ऐसा है, भाई! ऐसा समझो। किसी के कारण से किसी का कुछ होता है, यह दृष्टि छोड़ दो। तेरी पराधीन दृष्टि है। वह दृष्टि तू छोड़ दे। समझ में आया?

एक अस्तित्व में नियत, अर्थात् वे परमाणु द्रव्य और उसकी पर्याय, आत्मद्रव्य और उसकी पर्याय अंश में दोनों का अस्तित्व तो एक है। दो अस्तित्व भिन्न-भिन्न है, ऐसा नहीं है। पर्याय का अस्तित्व प्रदेश भिन्न है और द्रव्य का अस्तित्व भिन्न है, ऐसा नहीं है। ऐसा यहाँ सबसे भिन्न सिद्ध करना है। ऐई! 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही' ऐसा कहना है न? फिर वह ३२०वीं गाथा ले कि पर्याय का अस्तित्व द्रव्य से भिन्न है और द्रव्य का अस्तित्व पर्याय से भिन्न है। वह तो और अन्दर का भेदज्ञान किया। यह तो पर से भेदज्ञान। पर से करे, तब पर्याय का अंश वह द्रव्य में नहीं और द्रव्य का अंश, वह पर्याय में नहीं। ऐसा अपने में फिर भेदज्ञान होता है। समझ में आया? आहाहा! तो भी भेद होने पर भी एक अस्तित्व है। भगवान आत्मा और उसकी पर्याय ऐसे दो कहे जाते हैं। कथन भेद है न? परन्तु दोनों का अस्तित्व एक ही है। एक सत्ता है। एक सत्ता में द्रव्य में पर्याय रहती है। उसकी दो सत्ता है, ऐसा नहीं है। जिस प्रकार दूसरे द्रव्य की दूसरी सत्ता है। तीसरे द्रव्य की तीसरी सत्ता, वैसे पर्याय और द्रव्य की दो सत्ता हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य के शास्त्र, एक-एक श्लोक पूरी दुनिया से भिन्नता कराकर भेदज्ञान कराते हैं। ऐसी बात कहीं (नहीं है)। प्रकाशदासजी! ऐसा सुना है कहीं? नहीं। गड़बड़ करे। दया पालो-दया पालो, यह घर की रोटी नहीं खाना। कहीं बाहर से रोटी लावे? अरे!

परन्तु उसमें तूने क्या किया? पसन्दगी करे चेला करे चेला-फेला क्या? मैं आहार के परमाणु छोड़ता हूँ। इसका अर्थ यह कि आहार की पर्याय आनेवाली नहीं थी, उसे मैं छोड़ता हूँ, (ऐसा माने वह) जड़ का स्वामी हुआ। आहाहा! यह तो गजब काम है। अजीव को जीव माना। समझ में आया?

वीतराग सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह मार्ग कहीं नहीं हो सकता। अनन्त द्रव्य समय-समय में अपनी पर्याय और द्रव्य एक ही अस्तित्व में है। उसकी पर्याय द्रव्य बिना नहीं और द्रव्य पर्याय बिना नहीं। परन्तु दूसरी पर्याय बिना यह पर्याय नहीं और इस पर्याय बिना दूसरे की पर्याय नहीं, ऐसा नहीं है।

अन्योन्यवृत्ति नहीं छोड़ती। अब इसमें आया। क्या कहते हैं, देखो! एक अस्तित्व में नियत होने के कारण अन्योन्यवृत्ति-अन्योन्यवृत्ति एक दूसरे का आश्रय नहीं छोड़ती, इसका स्पष्टीकरण नीचे है। एक-दूसरे के आश्रय से निभना। क्या कहते हैं? द्रव्य का निभना वह पर्याय के आश्रय से और पर्याय का निभना, वह द्रव्य के आश्रय से है, परन्तु पर्याय का निभना वह पर के आश्रय से है, ऐसा नहीं है। आत्मा है द्रव्य-वस्तु, वह एक समय की पर्याय, तो कहते हैं कि पर्याय का निभना द्रव्य के आश्रय से और द्रव्य का निभना, वह पर्याय के आश्रय से है। क्यों? कि पर्याय न हो तो द्रव्य नहीं और द्रव्य न हो तो पर्याय नहीं। उसमें तो सब उड़ जाता है।

मुमुक्षु : अपने में से उड़ जाता है, ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं कि एक-दूसरे के आश्रय से निर्वाह करना। पर्याय का रहना द्रव्य के आश्रय से, आहाहा! और द्रव्य का रहना पर्याय के आश्रय से। पर के आश्रय से पर्याय का रहना, ऐसा नहीं है। क्या? समझ में आया?

देखो, यह लकड़ी है? तो कहते हैं कि इसका अस्तित्व पर्याय बिना द्रव्य नहीं और द्रव्य बिना पर्याय नहीं। पर्याय के आश्रय परमाणु और परमाणु का आश्रय पर्याय। परन्तु अँगुली के कारण यह पर्याय (हुई है), ऐसा नहीं है। क्योंकि अँगुली तो भिन्न द्रव्य है। यह भिन्न द्रव्य है। समझ में आया? क्योंकि **अन्योन्यवृत्ति नहीं छोड़ती....** अर्थात् कि एक-दूसरे का आश्रय नहीं छोड़ती। द्रव्य का निभना पर्याय से और पर्याय का निभना द्रव्य से

है। परन्तु अपनी पर्याय का निभना परद्रव्य के आश्रय से नहीं है। भैया! कहते हैं न कितने ही साहेब! हमको निभाओ।

मुमुक्षु : महाजन पूरे गाँव को निभावे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ निभावे, धूल भी निभाता नहीं। ऐई! कहाँ गये पोपटभाई? वे रहे। लो! इनका साला है न? उन्होंने कहा होगा कि सात हजार लोगों को निभा देते हैं। भाई! अब, इतना पैसा है—दो अरब चालीस करोड़ रुपये इनके साले के पास हैं। कितने? उसके पास ममता है न इतनी कि यह मेरे हैं, ऐसा। दो अरब चालीस करोड़। वह ममता आत्मा बिना नहीं है; परन्तु उस पैसे बिना ममता नहीं—ऐसा नहीं है। कितने लोगों को निभा देते हैं। सात हजार का निर्वाह तो उसका नाम सेठिया कहते हैं। कितनों को हम रोटियाँ देते हैं। कितने हमसे निभते हैं। धूल भी नहीं। मिथ्यात्व सेवन करता है। सुन न! उसकी पर्याय का निभना, वह उसके द्रव्य के आश्रय से है और द्रव्य का टिकना उसकी पर्याय के आश्रय से है। तू किस प्रकार उन्हें टिकाता है? आहाहा!

यह नौकर को ठीक पैसा दे तो नौकर को निभाता है, ऐसा नहीं कहते? किसी को अच्छा नौकर हो तो विवाह कर दे, सब करे। पैसा दे, घर बना दे, इतना निभा देते हैं या नहीं? आहा! मुसलमान है, वहाँ पूरणचन्द गोदीका के पास, जयपुर नहीं? अपने पूरणचन्द गोदीका है न? तो एक छोटी उम्र का मुसलमान तो तीन-तीन हजार मासिक करता था। मासिक तीन हजार हीरा, नीलम में। तो दूसरा कहे, कि तुम हमारे यहाँ आओ तो मासिक चार हजार दूँगा। वह कहे कि नहीं। मैं इनके आश्रय से नहीं जाऊँगा, मैं इनके आश्रय में बड़ा हुआ हूँ। वह मुसलमान मेरे पास आया था। वहाँ जयपुर में गोदीका के मकान में उतारे थे न। यह तो तीन वर्ष पहले गये थे न? वह तो लड़का कहता था। तीन हजार पड़े हीरा, माणेक। दूसरा कहे कि अब तो हमारे यहाँ आओ? (यह कहता है कि) नहीं, मैं छोटी उम्र से बड़ा यहाँ हुआ। यह बात झूठी है, ऐसा कहते हैं। ऐई सेठ! परन्तु तुम्हारे नौकर-बौकर ऐसे बहुत होते हैं, ऐसे लोग बेचारे हों, वे कहें कि सेठ हमको निभाता है। कारखाना और सब चलाता है।

एक-एक परमाणु और एक-एक द्रव्य अपनी पर्याय से निभता है और वह दूसरे

से निभती नहीं। आहाहा! एक बात। एक-दूसरे के आधार से स्थित रहना। अन्योन्यवृत्ति का स्पष्टीकरण किया। आत्मा अपनी पर्याय के आधार से रहता है और आत्मा की पर्याय, द्रव्य के आधार से रहती है। अपनी पर्याय का आधार अपना द्रव्य और द्रव्य का आधार पर्याय, दोनों पारस्परिक आधार-आधेय है। आहाहा! अपनी पर्याय का आधार दूसरे परमाणु हैं या आहार-बाहार देते हैं, इसलिए निभता है, ऐसा नहीं है।

धूल भी आहार से निभ नहीं सकता। बहुत खाये तो भी उसकी पर्याय फू हो जाती है, लो। यह हिम्मतभाई का लड़का अट्ठाईस वर्ष की उम्र। देखो, जवान योद्धा कलैयाकुँवर जैसा। अब यहाँ तुम्हारा कुछ खाया था। कुछ होगा मारवाड़ी भोजन। गेहूँ का क्या कहलाता है? बाटी बाटी। अपने हिम्मतभाई जोबालिया नहीं? नवीन लड़का। अभी तो सब पूछते हैं। कहाँ है? अस्पताल (में है)। अट्ठाईस वर्ष की उम्र है। अब यहाँ से खाकर भावनगर गया, वहाँ ऐसे चक्कर आने लगे। डॉक्टर कहते हैं कि क्या हुआ, यह हमें खबर नहीं पड़ती। यह डॉक्टर बैठे। ऐई धर्मचन्दभाई! बड़े-बड़े हो तुम्हारे मुम्बई में बड़े डॉक्टर। इसका क्या करण है, जवान व्यक्ति रूपवान। अभी तो विवाह हुए को पाँच वर्ष हुए। आधा अंग ही ऐसा होने लगा। और एक व्यक्ति साथ में था जवान लड़का होशियार था। (वह उसे) रिक्शा में ले गया तो रिक्शा में ऐसे पड़ गया। ले गया वहाँ। वह लड़का धनसुख आज आनेवाला है। अच्छा है। चार दिन में तो दूसरा लड़का पड़ गया नहीं? वजुभाई का जवान सत्रह वर्ष का लड़का। बेभान असाध्य। वह जड़ की पर्याय हो, उसे कौन करे और कौन रोके। डॉक्टर का बाप तो नहीं परन्तु डॉक्टर रोके किसका? डॉक्टर का बाप डॉक्टर नहीं भी हो, ले! हें? आहाहा!

डॉक्टर उसके पुत्र के शरीर की पर्याय को रख सकता है? उस शरीर की पर्याय का आधार परमाणु है। और परमाणु का आधार शरीर की पर्याय है। उसकी पर्याय के आधार के लिये दूसरे का आधार है, ऐसा नहीं है। आहाहा! देखो, यह सिर कड़क है न? कड़क-कड़क। तो अन्दर आत्मा है तो ऊपर कड़क रहे, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। आत्मा निकल जाये? वह भी अपनी पर्याय के कारण से है, पर के कारण से नहीं। पहले मैं तो ऐसा समझता था कि भाई आत्मा है, तब तक यह (शरीर) है। पहले तो आत्मा है, तो यहाँ से

कुछ होता है। छोटा (ब्रेन) यहाँ यह, हाँ और होने पर भी, यहाँ कुछ रोग हो तो ऐसा होता है नवीन को। भाई! इंजैक्शन देते तब तक ऐसा रहता। इंजैक्शन। अट्ठाईस वर्ष का जवान व्यक्ति! परमाणु की पर्याय जहाँ होनेवाली है, उसे रोके कौन? उसे इंजैक्शन का बाप आवे तो भी कौन रोके उसे? बाप अर्थात् इंजैक्शन का डॉक्टर। हें? डॉक्टर तो बहुत ऐसा हो कि हम सुधार देते हैं। डॉक्टर मर नहीं गया वह वैद्य?

मुमुक्षु : कौन सा डॉक्टर जीवित रहा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा!

एक-दूसरे के आधार से स्थित रहना, वह क्या कहते हैं? यह परमाणु जो है, उसकी पर्याय के आधार से परमाणु को परमाणु के आधार से पर्याय। यह पर्याय आत्मा के आधार से नहीं। और आत्मा में रागादि होते हैं और सम्यग्दर्शन आदि पर्याय जो होती है, उस पर्याय का आधार आत्मा है। धर्म की पर्याय का आधार आत्मा है। धर्म की पर्याय का आधार परद्रव्य नहीं। केवलज्ञान की पर्याय का आधार द्रव्य है। वज्रनाराचसंहनन है तो केवलज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। गजब भाई! कहो, केवलज्ञान की पर्याय का आधार कौन? उसका द्रव्य और द्रव्य का आधार कौन? उसकी पर्याय। एक पर्याय का अंश यदि सिद्ध न हो तो द्रव्य साबित नहीं होता। आहाहा! ऐसा स्वतन्त्र स्वरूप, उसे परतन्त्र मानना, वही मिथ्यादर्शन शल्य महापाप है। उस पाप की तो कुछ खबर नहीं। आहाहा! सन्त जंगल में रहे, उसमें यह संस्कृत टीका बन गयी। देखो! समझ में आया?

देखो, संस्कृत टीका का श्लोक। सब यहाँ संगमरमर में उत्कीर्ण हो जायेंगे। यह टीका भी, हों! टीकासहित, चार शास्त्र टीकासहित (उत्कीर्ण हो जायेंगे)। समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय और नियमसार। चार शास्त्र और चार टीकासहित संगमरमर में (उत्कीर्ण हो जायेंगे)। हें?

मुमुक्षु : उसके कारण से उत्कीर्ण होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके कारण से, वजुभाई देखे कि ऐसे काम होता है। यह बड़े इंजीनियर हैं न! कौन करे एक-एक परमाणु उस काल में, उसकी पर्याय का आधार उसका परमाणु है। नीचे के परमाणु हैं, वे उसके कारण से परमाणु रहते हैं, ऐसा नहीं है,

ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

देखो, यह (टीन की) चादर है न चादर! चादर की पर्याय के आधार इसके परमाणु और उन परमाणु का आधार उनकी पर्याय। दीवार के आधार से वहाँ रही है, यह बात मिथ्या है, ऐसा यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु : तो निकाल डालो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन निकाले और कौन रखे? ऐई! निकालने का वह पर की पर्याय का स्वामी-धणी हुआ। जड़ का। मार्ग ऐसा है, भाई! जगत को खबर नहीं कि तत्त्व की तत्त्व की दृष्टि क्या है? और तत्त्व किस प्रकार स्वयं से टिकता है। यह खबर नहीं। गड़बड़ करे गड़बड़।

एक-दूसरे के आधार से स्थित रहना। भगवान आत्मा अपनी निर्मल सम्यग्दर्शन आदि पर्याय के आधार से आत्मा है। और आत्मा के आधार से सम्यग्दर्शन की पर्याय है। यहाँ तो राग के आधार से आत्मा है और आत्मा के आधार से राग है, यह सिद्ध करना है। ऐई! सवेरे की अपेक्षा अन्तर है। सवेरे तो (ऐसा कहा कि) राग भी अपने स्वभाव में है, यह मान्यता मिथ्यात्व है। क्योंकि द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म तीनों से भगवान आत्मा रहित है। यह तो पहले ही आया है न? 'नमः समयसाराय' प्रभु आत्मा (से) द्रव्यकर्म तो जड़ है भिन्न द्रव्य है। नोकर्म वाणी शरीर से भिन्न द्रव्य है। भावकर्म राग और विभावभाव स्वभाव से भिन्न है। तो स्वभाव से भिन्न को अपना मानना, भिन्न को अपना मानना, वह मिथ्यात्व है।

यहाँ तो अकेले भावबन्ध को अपना मानना वह मिथ्यात्व है, ऐसा लिखा है। वह तो परद्रव्य है। कर्म और शरीर नोकर्म तो भिन्न है। मात्र भावबन्ध जो है, उस अबन्ध में भावबन्ध में एकता करना, वह मिथ्यात्व है। यहाँ कहते हैं कि राग जो होता है, वे अपने आधार से होता है। क्यों जीव बिना राग होगा? क्योंकि राग चारित्रगुण की विपरीत पर्याय है। राग, वह चारित्रगुण की विपरीत पर्याय है और शान्ति अरागपना चारित्रगुण की सुलटी पर्याय है, तो सुल्टी-उलटी पर्याय का आधार तो द्रव्य है और द्रव्य के आधार से वह पर्याय है। ओहोहो! समझ में आया?

एक-दूसरे के कारण से अस्तित्व बना रहना। पर्याय के कारण से द्रव्य का बनना और द्रव्य के कारण से पर्याय का बनना, परन्तु पर के कारण से बना रहना, ऐसा नहीं है। गजब बात! थोड़े श्लोक में पूरी दुनिया का भेदज्ञान करा दिया। वह वेदान्त तो कहे कि एक ही आत्मा अद्वैत है, जाओ। वह कहे कि ईश्वर कर्ता है, जाओ। सब गड़बड़ मिथ्यात्व है। समझ में आया? (ऐसा माने कि) भगवान ने यह सब बनाया है। अस्तित्व तो है, उसे भगवान ने बनाया है न? है, उसे बनाया है या नहीं है, उसे बनाया है? नहीं, उसे बनाया क्या, और न हो उसे बनाना क्या और हो उसे बनाना क्या?

कहते हैं कि एक-दूसरे के कारण बने रहना। एक-दूसरे के कारण से टिके रहना। दूसरे के कारण से टिके रहना, ऐसा नहीं है। गुजराती में बने रहने को क्या कहते हैं? हयाति, बराबर-अस्तित्व। एक-दूसरे के कारण अस्तित्व है। पर के कारण यह अस्तित्व है, ऐसा नहीं है। अस्तिकाय है न? अस्तिकाय की व्याख्या है न? ओहोहो! **एक अस्तित्व में नियत (दृढ़रूप से स्थित) होने के कारण अन्योन्यवृत्ति नहीं छोड़ती इसलिए वस्तुरूप से उनका अभेद है।** भगवान आत्मा और उसकी पर्याय वस्तुस्वरूप से एक है। परमाणु एक और उसकी पर्याय और वह परमाणु अपने अस्तित्व से एक है। पर के साथ एकपना है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

यह १२ गाथा हुई। अब १३वीं (गाथा)। द्रव्य-गुण का अभेद (बताया है)। पहले द्रव्य और पर्याय का अभेद बताया। अब द्रव्य और गुणों का अभेद (बताते हैं)।

गाथा - १३

दव्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि।
अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा।।१३।।

द्रव्येण विना न गुणा गुणैर्द्रव्यं विना न सम्भवति।
अव्यतिरिक्तो भावो द्रव्यगुणानां भवति तस्मात्।।१३।।

अत्र द्रव्यगुणानामभेदो निर्दिष्टः।

पुद्गलपृथग्भूतस्पर्शरसगन्धवर्णवद्द्रव्येण विना न गुणाः सम्भवन्ति। स्पर्शरसगंधवर्णपृथग्भूतपुद्गलवद्गुणैर्विना द्रव्यं न सम्भवति। ततो द्रव्यगुणानामप्यादेशवशात् कथंचिद्भेदेऽप्येकास्तित्वनियतत्वादन्योन्याजहद्वृत्तीनां वस्तुत्वेनाभेद इति।।१३।।

द्रव्य बिन गुण नहीं एवं द्रव्य भी गुण बिन नहीं।
वे सदा अव्यतिरिक्त हैं यह बात जिनवर ने कही।।१३।।

अन्वयार्थ :- [द्रव्येण विना] द्रव्य बिना [गुणः न] गुण नहीं होते, [गुणैः विना] गुणों बिना [द्रव्यं न सम्भवति] द्रव्य नहीं होता; [तस्मात्] इसलिए [द्रव्यगुणानाम्] द्रव्य और गुणों का [अव्यतिरिक्तः भावः] अव्यतिरिक्तभाव (-अभिन्नपना) [भवति] है।

टीका :- यहाँ द्रव्य और गुणों का अभेद दर्शाया है।

जिस प्रकार पुद्गल से पृथक् स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण नहीं होते, उसी प्रकार द्रव्य के बिना गुण नहीं होते; जिस प्रकार स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण से पृथक् पुद्गल नहीं होता उसी प्रकार गुणों के बिना द्रव्य नहीं होता। इसलिए द्रव्य और गुणों का आदेशवशात् कथंचित् भेद है तथापि, वे एक अस्तित्व में नियत होने के कारण अन्योन्यवृत्ति नहीं छोड़ते इसलिए वस्तुरूप से उनका भी अभेद है (अर्थात् द्रव्य और पर्यायों की भाँति द्रव्य और गुणों का भी वस्तुरूप से अभेद है)।।१३।।

गाथा - १३ पर प्रवचन

दव्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि।
अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा।।१३।।

टीका :— यहाँ द्रव्य और गुणों का अभेद दर्शाया है। जिस प्रकार पुद्गल से पृथक् स्पर्श-रस-गंध-वर्ण नहीं होते.... लो! परमाणु है और उसमें स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण पृथक् हैं, ऐसा नहीं है। पुद्गल से भिन्न स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण नहीं है। उसकी प्रकार द्रव्य बिना गुण नहीं होते। आत्मा के बिना ज्ञान-दर्शन-आनन्द गुण नहीं होते और परमाणु के बिना वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श नहीं होते। आहाहा! आत्मा में भी अनन्त गुण हैं। इतने ही गुण परमाणु में हैं। एक परमाणु में। इतने, हों! वह जड़ है, यह चेतन है। संख्या से भी इतने समान।

तो कहते हैं कि पुद्गल से पृथक् गुण नहीं होते। पदार्थ भिन्न रह जाये और उसके गुण भिन्न है, ऐसा नहीं है। द्रव्य के बिना गुण नहीं होते। आत्मा के बिना चेतना, दर्शन, आनन्द आदि गुण नहीं होते; परमाणु के बिना रंग-गन्ध-रस-स्पर्श आदि नहीं होते। द्रव्य के बिना गुण नहीं होते, यह पहले सिद्ध किया। द्रव्य के बिना गुण होंगे? इसके भी तीन बोल उसमें -अन्योन्यवृत्ति में है। हाँ है न, श्वेताम्बर द्रव्य और पर्याय दो मानते हैं, द्रव्य और गुण नहीं मानते, इसलिए यहाँ तीन लिये हैं। भिन्न है, भिन्न है न? गुण तो कायम रहनेवाली चीज़ है और पर्याय तो एक समय की अवस्था है। कायम रहनेवाले गुण द्रव्य के बिना नहीं होते। ज्ञान-आनन्द आदि गुण हैं, वे आत्मा के बिना नहीं होते। परमाणु में वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श हैं, वे पुद्गल के बिना नहीं होते। समझ में आया?

जिस प्रकार पुद्गल से पृथक् स्पर्श-रस-गंध-वर्ण नहीं होते.... गुण से भिन्न द्रव्य नहीं है। **उसी प्रकार द्रव्य के बिना गुण नहीं होते;....** पहले द्रव्य के बिना गुण नहीं है, पश्चात् गुण के बिना द्रव्य नहीं है। समझ में आया यह? सर्वज्ञ परमेश्वर की वाणी की परम्परा तो दिगम्बर मार्ग ही है। समझ में आया? बाकी तो सब गड़बड़ हो गयी है। परन्तु लोग नहीं मानते। (ऐसा कहे कि) तुम्हारा पक्ष है। परन्तु पक्ष-बक्ष कहाँ है? यह तो वस्तु

का स्वरूप ऐसा है। यहाँ कहाँ पक्ष है ? समझ में आया ?

भगवान आत्मा उसके गुण के बिना नहीं होता। और गुण द्रव्य के बिना नहीं होते, आत्मा के बिना नहीं होते। बराबर है ? **जिस प्रकार स्पर्श-रस-गंध-वर्ण से पृथक् पुद्‌गल नहीं होता; उसी प्रकार गुणों के बिना द्रव्य नहीं होता। इसलिए, यद्यपि द्रव्य और गुणों का आदेशवशात् कथंचित् भेद है....** वह वहाँ पर्याय की अपेक्षा से। **तथापि, वे एक अस्तित्व में नियत होने के कारण....** गुण और द्रव्य का अस्तित्व तो एक ही है। **अन्योन्यवृत्ति नहीं छोड़ते....** लो ! गुण का आधार द्रव्य और द्रव्य का आधार गुण। गुण का आश्रय द्रव्य और द्रव्य का आश्रय गुण। गुण और द्रव्य एक अस्तित्वरूप से टिक रहे हैं। दूसरे के आश्रय से गुण टिकें ऐसा नहीं है, अभेद है। **वस्तुरूप से उनका भी अभेद है। (अर्थात् द्रव्य और पर्यायों की भाँति द्रव्य और गुणों का भी वस्तुरूप से अभेद है।)** पर्याय अभेद है।

प्रत्येक पदार्थ के अपने गुण अपने से है और पर्याय भी अपने से है। पर के कारण कुछ है नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। ऐसे भेद हैं, ऐसा यथार्थ ज्ञान करे तो अपनी पर्याय अपने से है और द्रव्य को भी अपनी पर्याय का आधार है। तो द्रव्य पर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है, तब धर्म होता है, ऐसी बात सिद्ध करते हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

धारावाही प्रवचन नं. २२ (प्रवचन नं. २१), गाथा-१४
दिनांक - ०५-१२-१९६९, कार्तिक कृष्ण ११, शुक्रवार

यह तो चलने के ऊपर है न ? वहाँ वह पर्याय का था, वैसा यह गुण का है, ऐसा। परन्तु विशेष तो उसमें कुछ शक्ति है अन्दर। गुण में शक्तिरूप है, ऐसा भिन्न सिद्ध किया। द्रव्य, द्रव्य है, शक्तिवान है। गुण अनन्त शक्तियाँ है, वे सिद्ध कीं। पर्याय अर्थात् एक समय की अवस्था, ऐसा सिद्ध किया है। कोई गुण को नहीं मानते न ? पर्याय और द्रव्य को ही मानते हैं। बस, दो को ही मानते हैं तुम्हारे। परन्तु यह गुण का भेद पर्यायनय में आ जाता है। भेद है न भेद ? आहाहा! वस्तु है, वह प्रत्येक वस्तु शक्तिवान एक है। उसमें शक्तियाँ अनन्त हैं। और शक्तियाँ कायम रहनेवाली हैं। पर्याय एक समय की है, इतना यहाँ सिद्ध करना है। वह यह १४वीं गाथा में है।

गाथा - १४

सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं।
दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि।।१४।।

स्यादस्ति नास्त्युभयमवक्तव्यं पुनश्च तत्त्रितयम्।
द्रव्यं खलु सप्तभंगमादेशवशेन सम्भवति।।१४।।

अत्र द्रव्यस्यादेशवशेनोक्ता सप्तभंगी।

स्यादस्ति द्रव्यं, स्यान्नास्ति द्रव्यं, स्यादस्ति च नास्ति च द्रव्यं, स्यादवक्तव्यं द्रव्यं, स्यादस्ति चावक्तव्यं च द्रव्यं, स्यान्नास्ति चावक्तव्यं च द्रव्यं, स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यं च द्रव्यमिति। अत्र सर्वथात्वनिषेधकोऽनेकान्तद्योतक: कथंचिदर्थे स्याच्छब्दो निपात:। तत्र स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैरादिष्टमस्ति द्रव्यं, परद्रव्यक्षेत्रकालभावैरादिष्टं नास्ति द्रव्यं, स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावै: परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च क्रमेणादिष्टमस्ति च नास्ति च द्रव्यं, स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावै: परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च युगपदादिष्टमवक्तव्यं द्रव्यं, स्वद्रव्यक्षेत्रकाल-भावैर्युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चादिष्टमस्ति चावक्तव्यं च द्रव्यं, परद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्युग-

पत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चादिष्टं नास्ति चावक्तव्यं च द्रव्यं, स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैः परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चादिष्टमस्ति च नास्ति चावक्तव्यं च द्रव्यमिति। न चैतदनुपपन्नम्, सर्वस्य वस्तुनः स्वरूपादिना अशून्यत्वात्, पररूपादिना शून्यत्वात्, उभाभ्यामशून्यशून्यत्वात्, सहावाच्यत्वात्, भंगसंयोगार्पणायामशून्यावाच्यत्वात्, शून्यावाच्यत्वात्, अशून्यशून्यावाच्यत्वाच्चेति।।१४।।

स्यात् अस्ति-नास्ति-उभय अर अवक्तव्य वस्तु धर्म हैं।
अस्ति-अवक्तव्यादि त्रय सापेक्ष सातों भंग हैं।।१४।।

अन्वयार्थ :- [द्रव्यं] द्रव्य [आदेशवशेन] आदेशवशात् (-कथन के वश) [खुल] वास्तव में [स्यात् अस्ति] स्यात् अस्ति, [नास्ति] स्यात् नास्ति, [उभयम्] स्यात् अस्ति-नास्ति, [अवक्तव्यम्] स्यात् अवक्तव्य [पुनः च] और फिर [तत्त्रितयम्] अवक्तव्यतायुक्त तीन भंगवाला (-स्यात् अस्ति-अवक्तव्य, स्यात् नास्ति-अवक्तव्य और स्यात् अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य) (-सप्तधङ्गम्) इस प्रकार सात भंगवाला [सम्भवति] है।

टीका :- यहाँ द्रव्य के आदेश के वश सप्तभंगी कही है।

(१) द्रव्य 'स्यात् अस्ति' है; (२) द्रव्य 'स्यात् नास्ति' है; (३) द्रव्य 'स्यात् अस्ति और नास्ति' है; (४) द्रव्य 'स्यात् अवक्तव्य' है; (५) द्रव्य 'स्यात् अस्ति और अवक्तव्य' है; (६) द्रव्य 'स्यात् नास्ति और अवक्तव्य' है; (७) द्रव्य 'स्यात् अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य' है।

यहाँ (सप्तभंगी में) सर्वथापने का निषेधक, अनेकान्त का द्योतक '[1]स्यात्' शब्द 'कथंचित्' ऐसे अर्थ में अव्ययरूप से प्रयुक्त हुआ है। वहाँ (१) द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'अस्ति' है; (२) द्रव्य परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'नास्ति' है; (३) द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से और परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से क्रमशः कथन किया जाने पर 'अस्ति और नास्ति' है; (४) द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से और परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से युगपद् कथन किया जाने पर

१. स्यात्=कथंचित्; किसी प्रकार; किसी अपेक्षा से। ('स्यात्' शब्द सर्वथापने का निषेध करता है और अनेकान्त को प्रकाशित करता है-दर्शाता है।)

'[1]अवक्तव्य' है; (५) द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से और युगपद् स्वपरद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'अस्ति और अवक्तव्य' है; (६) द्रव्य परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से और युगपद् स्वपरद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'नास्ति और अवक्तव्य' है; (७) द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से, परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से और युगपद् स्वपरद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य' है।-यह (उपर्युक्त बात) अयोग्य नहीं है, क्योंकि सर्व वस्तु (१) स्वरूपादि से '[2]अशून्य' है, (२) पररूपादि से '[3]शून्य' है, (३) दोनों से (स्वरूपादि से और पररूपादि से) 'अशून्य और शून्य' है (४) दोनों से (स्वरूपादि से और पररूपादि से) एक ही साथ 'अवाच्य' है, भंगों के संयोग से कथन करने पर (५) 'अशून्य और अवाच्य' है, (६) 'शून्य और अवाच्य' है, (७) 'अशून्य, शून्य और अवाच्य' है।

भावार्थ :- (१) द्रव्य *स्वचतुष्टय की अपेक्षा से 'है'। (२) द्रव्य परचतुष्टय की अपेक्षा से 'नहीं है'। (३) द्रव्य क्रमशः स्वचतुष्टय की और परचतुष्टय की अपेक्षा से 'है और नहीं है'। (४) द्रव्य युगपद् स्वचतुष्टय की और परचतुष्टय की अपेक्षा से 'अवक्तव्य है'। (५) द्रव्य स्वचतुष्टय की और युगपद् स्वपरचतुष्टय की अपेक्षा से 'है और अवक्तव्य है'। (६) द्रव्य परचतुष्टय की, और युगपद् स्वपरचतुष्टय की अपेक्षा से 'नहीं और अवक्तव्य है'। (७) द्रव्य स्वचतुष्टय की, परचतुष्टय की और युगपद् स्वपरचतुष्टय की अपेक्षा से 'है, नहीं है और अवक्तव्य है'।-इस प्रकर यहाँ सप्तभंगी कही गयी है।।१४।।

---

१. अवक्तव्य=जो कहा न जा सके; अवाच्य। (एक ही साथ स्वचतुष्टय तथा परचतुष्टय की अपेक्षा से द्रव्य कथन में नहीं आ सकता इसलिए 'अवक्तव्य' है।)

२. अशून्य=जो शून्य नहीं है ऐसा; अस्तित्ववाला; सत्।

३. शून्य=जिसका अस्तित्व नहीं है ऐसा; असत्।

* स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव को स्वचतुष्टय कहा जाता है। स्वद्रव्य अर्थात् निज गुणपर्यायों के आधारभूत वस्तु स्वयं; स्वक्षेत्र अर्थात् वस्तु का निज विस्तार अर्थात् स्वप्रदेशसमूह; स्वकाल अर्थात् वस्तु की अपनी वर्तमान पर्याय; स्वभाव अर्थात् निजगुण-स्वशक्ति।

गाथा - १४ पर प्रवचन

सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं।
दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि।।१४।।

१४वीं, **टीका :- यहाँ द्रव्य के आदेश के वश सप्तभंगी कही है।** प्रत्येक पदार्थ को एक-एक गुण द्वारा एक-एक धर्म द्वारा पूरा पदार्थ बतलानेवाली यह सप्तभंगी प्रमाण सप्तभंगी है। समझ में आया? द्रव्य के आदेशवश अब देखोः— **(१) द्रव्य 'स्यात् अस्ति' है;....** अब इसका अर्थः- यह आत्मा, परमाणु एक-एक, प्रत्येक कथंचित् अस्ति है। द्रव्य स्यात् अस्ति है। प्रत्येक आत्मा और परमाणु स्यात् अस्ति अर्थात् सर्वथा अस्ति; पर से भी अस्ति है, ऐसा नहीं। अपने से अस्ति है। सर्वथा अस्ति है। अपने से सर्वथा अस्ति है। पर से सर्वथा नास्ति है। समझ में आया?

आत्मा और यह परमाणु प्रत्येक अपने से सर्वथा अस्ति है। अपने से कथंचित् अस्ति है और पर से (भी) कथंचित् अस्ति है, ऐसा है? द्रव्य स्यात् अस्ति है। वे कहते हैं न कि पुरुषार्थ तो बहुत ही किया और गुणस्थान भी ऊपर चढ़े, परन्तु कर्म का उदय आया तो नीचे गिरना पड़ा। ऐसी बात नहीं है। वह बात झूठ है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव जो है, उसमें अस्ति है, स्वयं से अस्ति है। वस्तु है और उसका क्षेत्र है। यहाँ ऊपर देखो वापस अर्थ में नीचे, पीछे के पृष्ठ में है। नीचे नोट में है।

स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव को स्वचतुष्टय कहा जाता है। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु अपने गुण-पर्याय का पिण्ड, वह द्रव्य है। देखो, **स्वद्रव्य अर्थात् निज गुणपर्यायों के आधारभूत वस्तु स्वयं....** द्रव्य। सूक्ष्म बात है। किसे यह सब निर्णय करने की फुरसत है। यहाँ तो कहते हैं कि अपना आत्मा और परमाणु प्रत्येक के द्रव्य-गुण-पर्याय के पिण्ड से अस्ति है। अपना क्षेत्र वस्तु का निज विस्तार। अपना आत्मा असंख्य प्रदेश क्षेत्र है। परमाणु एक प्रदेश क्षेत्र है। वह उसका क्षेत्र है। स्वप्रदेशसमूह, उससे अस्ति है। वह तो अपने द्रव्य से अस्ति है, अपने क्षेत्र से अस्ति है। अपना काल वस्तु की अपनी वर्तमान पर्याय। पर के कारण से नास्ति है, ऐसा कहते हैं। उसमें स्वयं यह

कहा न, मुझसे यह है। मैं अस्ति तत्त्व हूँ, बस पूरा हो गया। पर से नहीं, पर से नहीं आ गया न? वह यहाँ स्पष्ट करते हैं। एक परमाणु अपने से है और पर से नहीं। समाप्त! तो स्वकाल की पर्याय पर से नहीं होती। समझ में आया?

मुमुक्षु : निमित्त से तो होती है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त से हो तो पर से नास्ति कहाँ से आयी? निमित्त पर है। यह अँगुली है। देखो! अँगुली। यह अपने स्वकाल की पर्याय से अस्ति है। अँगुली की पर्याय से नास्ति है। अँगुली की पर्याय से ऊँची हुई है, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। उसमें ऐसा कहते हैं। ऐई! वजुभाई! क्या कहते हैं, देखो! वस्तु की अपनी वर्तमान पर्याय है, वह काल और स्वभाव निज गुण स्वशक्ति स्वभाव। अपना आत्मा अपना गुण जो त्रिकाल शक्ति और वर्तमान अवस्था, उसका पिण्ड, वह द्रव्य। वह वस्तु स्वयं से है। किसी परद्रव्य से, किसी ईश्वर से या किसी दूसरे कारण से नहीं है। और अपना क्षेत्र जो असंख्य प्रदेश है, स्वभूमि, वह अपने से असंख्य प्रदेश है। पर से नहीं। और अनन्त गुण की एक समय में अनन्त अवस्था होती है, वह अवस्था उसका स्वकाल है। वह स्वकाल अपने से है, पर से नहीं। समझ में आया? यह तो जैनदर्शन का नहीं, विश्वदर्शन का प्राण सप्तभंगी है।

प्रत्येक वस्तु अपने निज द्रव्य-वस्तु और निजगुण-शक्ति और जीव के क्षेत्र असंख्यप्रदेश, परमाणु का एक (प्रदेश) आकाश के अनन्त (प्रदेश)। और एक समय की उसकी अवस्था स्वयं से है और पर से नहीं। कहो, धरमचन्दजी! तुम्हारी दवा शरीर में क्या करती है? ऐसा कहते हैं। नहीं करती? दवा के परमाणु अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है और शरीर की अवस्था, यह शरीर जो है, उसके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव स्वयं से है, दवा के कारण से नहीं। आहाहा! समझ में आया?

आहार के परमाणु हैं, वह आहार अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है। शरीर की अवस्था अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है। आहार के कारण से नहीं। यह कहा न! मेरा स्वभाव मुझमें है और पर मुझमें नहीं। ऐसी अन्तर्दृष्टि करना और उसे अमल में लाना। खाये कौन? खाये कौन? कहा न खाने की पर्याय तो जड़ की है। जड़ की पर्याय जड़ के अस्तित्व में है। अपने से तो वह नास्ति है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! सूक्ष्म तत्त्व अन्तर

की गहराईपूर्वक लोगों ने देखा ही नहीं कि क्या चीज़ है। भगवान ऐसा कहते हैं, भैया! परमेश्वर ऐसा कहते हैं। मैं मेरे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से हूँ और तुम तुम्हारे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से हो। मुझसे कुछ तुम्हारे में आता है, ऐसा नहीं है। भगवान के पास कोई वार मिलता है या नहीं भगवान से? यह कहते हैं कि जो आत्मा है, सुननेवाला, वह अपने द्रव्य में है गुण-पर्याय के पिण्ड में है। अपने स्वक्षेत्र में है। अपने गुण-शक्ति में है और वर्तमान अवस्था में है। अपनी वर्तमान अवस्था अपने से है। शब्द से या भगवान की वाणी से वह अवस्था नहीं है। कहो, समझ में आया? कहो, भीखाभाई!

मुमुक्षु : अरे प्रभु! आपके कहने में क्या समझ में न आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा तो अपने बात रखकर दो रखे। परन्तु यह बात तुमको समझ में आती है न? बस! हो गया, आ गया। तुमको तुम्हारे से समझ में आता है या यहाँ से समझ में आता है? ऐसी बात है। आहाहा! यह शास्त्र है, वह पुद्गल है, देखो! समझ में आया? तो पुद्गल के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पुद्गल में है। उसमें आत्मा का ज्ञान नहीं है। अपने ज्ञान की पर्याय अपने से है। अपने ज्ञान की पर्याय इस शास्त्र से नहीं है।

मुमुक्षु : (तो फिर) किसलिए पढ़ते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन पढ़ता है? पढ़े कौन? यह तो विकल्प आता है और सामने ज्ञान होता है। ऐसी बात है। आहाहा! भारी काम। जगत को कठिन (पड़ता है)। दूसरे से नहीं समझते तो किसलिए समझाते हो? वाणी, वाणी के काल में अपनी स्व-पर्याय से निकलती है। आत्मा तो अपने स्वचतुष्टय में है और सुननेवाले भी (उनके) स्वयं के स्वचतुष्टय में है। क्या उसे पर चतुष्टय से कुछ मिल जाता है। शोभालालजी!

उपकार करो, दूसरे के ऊपर उपकार करो। उपकार की व्याख्या क्या? कौन करे? तेरी पर्याय तुझसे है, मेरी पर्याय मुझसे है। सबकी पर्याय स्वयं से है। पर से तो है नहीं। यह तो बात सिद्ध करते हैं। उपकार शब्द का अर्थ वह तो निमित्त है, इसलिए उपकार कहा जाता है। परन्तु उससे कुछ होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

इन भगवान से कुछ मिल जाये, ऐसी चीज़ नहीं है - ऐसा कहते हैं। तुझमें ऐसा भरपूर स्वभाव तुझसे है कि तेरी पर्याय तुझसे है। भगवान कहते हैं कि हमारे से या

समवसरण में तू आयेगा और उससे तेरी पर्याय में तुझे लाभ होगा, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? देखो!

द्रव्य 'स्यात् अस्ति' है;.... फिर इसका स्पष्टीकरण करेंगे, हों! **द्रव्य 'स्यात् नास्ति' है;....** देखो! दूसरा बोल। कथंचित् नास्ति, सर्वथा अपने से नास्ति, ऐसा नहीं परन्तु पर से नास्ति है। प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु अपने से अस्ति है और परद्रव्य, पर परमाणु, पर आत्मा से नास्ति है। पर की अपेक्षा से तो यह वस्तु है भी नहीं, ऐसा कहते हैं। अपनी अपेक्षा से तो परवस्तु है नहीं। समझ में आया? दृष्टान्त आता है न? नन्दीसेन ने ऐसा किया, कर्म का उदय आया, भोग ऐसा हुआ, अमुक ऐसा हुआ। वैभव छोड़ा था, ऐसा (सब) छोड़ा था और ऐसा कर्म का उदय आया, तो उसे भोगावली कर्म में आना पड़ा। यह यहाँ इनकार करते हैं कि ऐसा नहीं है। उसकी पर्याय विपरीत हुई तो नीचे उतर गयी। अपनी पर्याय से है। कर्म के कारण से नहीं। समझ में आया?

द्रव्य 'स्यात् नास्ति'.... भगवान आत्मा कर्म से नास्ति। कर्म से आत्मा है ही नहीं। अपनी राग की पर्याय हो, वह अपने से है। कर्म के उदय से राग की पर्याय होती है, ऐसा नहीं है। (उसकी तो) नास्ति है। समझ में आया? सिद्ध भगवान को आठ कर्म का नाश हुआ तो आठ गुण की पर्याय प्रगट हुई, ऐसा है नहीं। यह तो निमित्त क्या था, उसका ज्ञान कराते हैं। आठ कर्म तो अपनी अस्ति से है। प्रत्येक आठ कर्म में अनन्त परमाणु तो स्वयं से है। क्या सिद्ध की पर्याय से है? और सिद्ध की पर्याय स्वयं से हुई है। क्या कर्म के अभाव से हुई है? कर्म की तो उसमें नास्ति है। वाह रे वाह! इतनी सब उल्टी मान्यता है कि दो द्रव्य की एकताबुद्धि है, उसे तो यहाँ पृथक् कराते हैं। आहाहा! समझ में आया?

द्रव्य 'स्यात् नास्ति'.... पर से नहीं। यह स्पष्टीकरण है। समुच्चय है न पहले? **द्रव्य 'स्यात् अस्ति और नास्ति' है;....** एक समय में स्व से है और पर से नहीं। उसमें एक समय में दो धर्म है। एक समय में अपने से है और पर से नहीं। (यह) अस्ति-नास्ति हुआ। तीसरा।

(४) द्रव्य 'स्यात् अवक्तव्य' है;.... कथंचित् अवक्तव्य। क्यों?-कि स्व सं है और पर से नहीं, एक साथ कहने में आवे तो कह नहीं सकते। स्व से है और पर से नहीं

यह कहने में एक साथ नहीं कहा जा सकता तो अवक्तव्य हो गया। वह भी अपने प्रत्येक द्रव्य में अवक्तव्य नाम का एक धर्म है। स्यात् धर्म है, हों! इस स्यात् धर्म की योग्यता है। आहाहा! यह तो निमित्तवालों का बड़ा घोटाला उठता है न? आत्मा में विकार करने की योग्यता है परन्तु जैसा कर्म का उदय आवे, वैसा विकार होता है। (परन्तु) ऐसा नहीं है।

आटा में रोटी होने की योग्यता होती है। रोटी हो, भाखरी हो, पूड़ी हो। वह आटा में रोटी, पूड़ी होने की अनेक प्रकार की योग्यता होती है। स्त्री की जैसी इच्छा हो, वैसी रोटी, पूड़ी बन जाती है, ऐसा नहीं है। लोग कहते हैं कि होता है (परन्तु) ऐसा नहीं है। आटा में जो रोटी होने की योग्यता है, वह स्वकाल की अस्ति से रोटी होने की अस्ति स्वयं से है। स्वयं से ही है। एक ही रोटी होने की योग्यता स्वयं से है। समझ में आया? परन्तु भाखरी होने की योग्यता हो और रोटी हो जाये, ऐसा है नहीं। आहाहा! प्रत्येक में इस प्रमाण है। यह तो मात्र सिद्धान्त है।

वे कहते हैं न कि योग्यता तो बहुत ही है। पानी में पर्याय में योग्यता बहुत ही है, ऐसा कहते हैं। पर्याय में अनेक प्रकार की योग्यता है। जैसे पानी में कोई नमक डाले तो खारा हो जाये, अफीम डाले तो कड़वा हो जाये, हरा रंग डाले तो हरा हो जाये। कहो, बराबर है? कैसे पानी कहीं पानी बोलता है? पानी में पर्याय होती है। परन्तु वह पर्याय यदि ऐसी की ऐसी रखो तो ठण्डा हो जाये, अग्नि में उष्ण हो जाये और उसमें नमक डालो तो खारा हो जाये और उसमें शक्कर डालो तो मीठा हो जाये। ऐसा है? ऐसा है ही नहीं। ऐई! वह तो अपनी पर्याय जिस समय में जो होनेवाली है, वह स्वयं से होती है। पर से बिल्कुल नहीं होती। आहाहा! कठिन बात, भाई! भाई ऐसा समझेगा तो कोई किसी का करेगा नहीं। किसी का कर कहाँ सकता है? इसलिए तो यहाँ समझाते हैं। इसलिए तो यहाँ कहते हैं। आहाहा!

अवक्तव्य है। पाँचवाँ, **द्रव्य 'स्यात् अस्ति और अवक्तव्य' है;....** अपने से है और दो को एक साथ नहीं कहा जा सकता, इसलिए अवक्तव्य, कह नहीं सकते। **द्रव्य स्यात् नास्ति अवक्तव्य है।** पर की अपेक्षा से नास्ति है, उसी समय दो की अपेक्षा से अवक्तव्य है। और **द्रव्य 'स्यात् नास्ति और अवक्तव्य' है;....** प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक आत्मा एक

समय में अपने से है और पर से नहीं। एक साथ कहा नहीं जा सकता, इसलिए अस्ति-नास्ति अवक्तव्य सप्तम धर्म उसमें है। ऐसे सात धर्मवाली वस्तु है। अस्ति अपेक्षा से, बाकी वह तो अनन्त धर्म है। समझ में आया?

यहाँ (सप्तभङ्गी में) सर्वथापने का निषेधक, अनेकान्त का द्योतक.... देखो! अब। (नीचे) **स्यात्** = **कथंचित्; किसी प्रकार; किसी अपेक्षा से। ('स्यात्' शब्द सर्वथापने का निषेध करता है और अनेकान्त को प्रकाशित करता है—दर्शाता है।)** अनेकान्त को दर्शाता है। स्व से है और पर से नहीं। एक साथ दो धर्म को बतलाता है और सर्वथापने का निषेध करता है। अस्ति, सर्वथा अस्ति - ऐसा नहीं है। क्या... क्या? नीचे है। **स्यात्** = **कथंचित्; किसी प्रकार; किसी अपेक्षा से। ('स्यात्' शब्द सर्वथापने का निषेध करता है....)** सर्वथा का अर्थ क्या? कि द्रव्य स्यात् अस्ति है; तो सर्वथा अस्ति है, ऐसा नहीं है। सर्वथा अस्ति हो तो स्वयं से भी अस्ति हो और पर से भी अस्ति हो जाये। सर्वथा अस्ति हो तो सबसे अस्ति हो जाये। परन्तु ऐसा नहीं है। स्यात् अस्ति; स्यात् अर्थात् अपनी अपेक्षा से अस्ति है। सर्वथा (का) निषेध करने के लिये स्यात् शब्द लागू किया गया है। गजब बात, भाई! आहाहा!

पूरी दुनिया का कर देते हैं हम। नेता नहीं करते? क्या कहलाता है वह पंचशील और पहाड़, रास्ता, नदियाँ, तालाब, क्या कहते हैं? बाँध, पानी का बाँध बाँधते हैं। जिसे वर्षा न आयी हो तो पानी देते हैं। लो, कर सकते हैं या नहीं? सब मुफ्त में राज करते हैं यह? आहाहा! क्या करे, वह अपने अस्तित्व की पर्याय में करे। पर के अस्तित्व की पर्याय में कोई क्या करे? ऐई! यह सब कार्यकर्ता हैं। सरपंच है। यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि पर की अवस्था पर में है और तेरी अवस्था तुझमें है।

मुमुक्षु : प्रत्येक के लिये ऐसा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्येक के लिये है न? कर्म की अवस्था कर्म में है। अपने राग के कारण कर्म की अवस्था है नहीं। ज्ञानावरणीय का उदय है तो अपने ज्ञान की अवस्था हीन (हो गयी) है, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। अपने से अपने में हीन अवस्था है। और कर्म के उदय की अवस्था कर्म में उसके कारण से है। अपनी हीन अवस्था है तो वहाँ उदय

है, ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब यह सब जहाँ हो वहाँ कर्म के घोटाले करते हों। आज चन्द्रमा का बड़ा आया है। वह है न शेलानावाला ने उसका विरोध किया है। चन्द्रयात्रा से तो कुछ का उथल-पुथल कर डाला है। वहाँ गये ही नहीं। पहाड़ हो तो वहाँ देव हो न? देव गये, पहाड़ में उतरे हैं। पहाड़ में उतरे वहाँ विद्याधर थे। वहाँ कहाँ इन्होंने विद्याधर देखे? ऐसी चर्चा आती है। बहुत विरोध, बड़ा लेख चला था। नरकभूमि का वह शेलाना का है न, नहीं। मोरबी। रतनलाल दोशी कहे, तुझे गाली देना है तो तुझे क्या उत्तर दूँ। गाली देकर बात करना है। हीं। पहाड़ के ऊपर गये हैं, वहाँ से धूल लाये हैं। पहाड़ के ऊपर कहाँ वैचाक को। वहाँ तो विद्याधर रहते हैं। विद्याधर तो बोले नहीं। फिर उसमें आया था या नहीं? वापस उतरते टीकाला, टीकाला देखा, वह टीकालादेव पीछे बोले। परन्तु पीछे से कहा कि यह तो हमारा बिगड़ा था। क्या कहा यह? यह हमारा बिगड़ा था, उससे अच्छा हुआ है। यदि वहाँ से गये थे। वापस आये और देव कोई आये थे पीछे। चन्द्रमा में देव थे। अब आकर ऐसी बातें करके तुझे क्या काम है। ऐसा कहीं खोटी रीति से खोटा कहीं सिद्ध किया जाता है। सच्चे का किया जाता है।

मुमुक्षु : वे लोग कहते हैं जैनधर्म खोटा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जैनधर्म ही यह है। भले खोटा कहा। उससे नहीं होता तीन काल में। तेरा अध्यात्म का तत्त्व देख न! उसमें जो है स्व से है और पर से नहीं। उसका निर्णय कर न। पूरी दुनिया से तू नहीं है, ले? समझ में आया?

चाहे तो दुनिया में दूसरी चीज़ बस जाओ। परन्तु तेरी चीज़ पर से है नहीं। बस, तेरी तुझमें है। तेरी सम्हाल कर। मैं ध्रुव चिदानन्द आत्मा आनन्दकन्द हूँ, ऐसी दृष्टि कर तो तुझमें तेरे अस्तित्व की प्रतीति होकर आनन्द होगा। तुझे दुनिया की दूसरी क्या पड़ी है। दुनिया दुनिया का जाने। आहाहा! समझ में आया? बहुत लेख है। अभी पढ़ते-पढ़ते थोड़ा और बाकी रह गया। बहुत लेख है दोनों व्यक्तियों का आया। और कहे, अपने तो उसे पापसूत्र कहते हैं। ज्योतिषशास्त्र को भगवान पापसूत्र कहे? वे कहते हैं भाई वह तो जानने के लिये कहते हैं। जानने के लिये भगवान पाप को कहे? और ऐसा चला है। कहे, सब न कहे, ऐसा होगा? कहे नहीं? सब समझावे। पापतत्त्व समझावे, चन्द्र आदि वस्तु पदार्थ

द्वीप, समुद्र सब बतलावे, जाननेयोग्य है इतना ही। अपने शास्त्र प्रमाण है और उपजा नहीं सकते। उससे क्या? तो भाई हमारी शक्ति इतनी नहीं। बाकी वस्तु तो है वह है। समझ में आया?

यह आत्मा अध्यात्म है, इतना तो मिला दे, दूसरा तुझे क्या काम है? तुझे तेरा ज्ञान होगा तो पर का यथार्थ ज्ञान होगा। तेरे यथार्थ ज्ञान बिना पर का यथार्थ ज्ञान किस प्रकार होगा? आहाहा! बहुत झगड़ा... झगड़ा। यह जैनधर्म ऐसा निकाले, ऐसा निकाले। जैनधर्म तो अपने आनन्दकन्द शुद्ध स्वरूप, दृष्टि राग से और निमित्त से हटा दे। समझ में आया? भगवान परिपूर्ण आनन्दमूर्ति है न? उसमें दृष्टि लगा दे, वह जैन, उसे जैन कहा है और वह जैन है। समझ में आया?

भगवान आत्मा ध्रुवस्वरूप पर से बिल्कुल नास्ति और अपने पूर्ण स्वभाव से अस्ति। पर्याय में भले पूर्ण न हो, अल्पज्ञ हो परन्तु द्रव्य ध्रुव स्वभाव तो पूर्ण है। परन्तु पूर्णता की एक समय की पर्याय के कारण से नहीं। पर के कारण से तो नहीं परन्तु पर्याय के कारण से भी नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा है।

शास्त्र में शंका होती है। यह शास्त्र खोटा, अमुक खोटा, अमुक खोटा, सुधारकर बहुत लिखा, बहुत लिखा। शंका, शंका। विचार करते-करते इसे वास्तव में विचार करेगा तो यह दिगम्बर शास्त्र सच्चे निर्णित होंगे। परन्तु इसका वह गया नहीं। शास्त्र में विरोध आता है, शास्त्र में विरोध बहुत आता है। दूसरी बात में विरोध बहुत ही है। यह लिखा है। उसमें भी बहुत बात विरुद्ध है। परन्तु फिर विद्वत परिषद में इकट्ठे होंगे, तब मैं कहूँगा। आहाहा!

यह दिगम्बर सन्तों ने तो सर्वज्ञ की वाणी अनुसार पूरे अध्यात्म तत्त्वज्ञान को भर दिया है। समझ में आया? उसमें रंचमात्र अन्तर नहीं है। ऐसा वस्तु का स्वरूप है। होगा कुछ अपना काम नहीं। उसमें लौकिक के साथ लोकोत्तर मिलाना नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अपने में जो तुझमें नहीं है, उसकी तुझे क्या पड़ी है? ऐसा कहते हैं। दूसरा दूसरे से होता है। आहाहा! पिता का पुत्र तो होगा न? है या नहीं? सबके घर अलग होंगे?

हीराभाई आते हैं, वे तुम्हारे घर में रहते हैं, वहाँ कहीं अलग नहीं रहते। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं। प्रभु! एक-एक परमाणु / रजकण अपने निज घर में रहता है। एक परमाणु दूसरे परमाणु में है नहीं और उस परमाणु में तू नहीं है। तुझमें वह परमाणु नहीं है। आहाहा! ऐसी स्थिति है। वस्तु भी इस प्रकार से न हो तो हो किस प्रकार? समझे न? ज्ञान में जरा तुलना तो करे? कि यह अस्ति... अस्ति... अस्ति... है... है... है। अपना द्रव्य, अपना क्षेत्र, अपना काल और वर्तमान अवस्था अपने काल से है। अपने काल से आत्मा है। देखो! अपनी अवस्था से आत्मा है। अपने वर्तमान से आत्मा है। अपनी पर्याय में वर्तता है, उससे आत्मा है। पर से आत्मा में वर्तता है, ऐसा नहीं है। वर्तना और लक्ष्य काल में गया। काल न हो और वर्तना गुण लक्षण। यहाँ वर्तना काल, वह अपना वर्तना काल है। ऐसा। आहाहा! समझ में आया?

तेरी नजर तेरे चतुष्टय में हो। तो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव मुझमें है तो पर्याय के अंश पर दृष्टि छोड़कर ध्रुव को उपादान बनाकर ध्रुव का आश्रय लेना, यही सम्यग्दर्शन का कारण है। समयसार ११वीं गाथा है। **'भूदत्थ मस्सिदो खलु'** भूतार्थ भगवान जो यहाँ अस्ति है न अस्ति? अस्तिरूप से त्रिकाल ध्रुव अस्ति भगवान आत्मा पूर्ण अस्ति, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन (होता है)। सत् का आश्रय—पूर्ण सत् का आश्रय लेने से सत्य दर्शन होता है। समझ में आया? अब दूसरी सिरपच्ची छोड़कर करनेयोग्य यह है।

यहाँ (सप्तभङ्गी में) सर्वथापने का निषेधक, अनेकान्त का द्योतक 'स्यात्' शब्द 'कथंचित्' ऐसे अर्थ में अव्ययरूप से प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत का नियम है। अब **द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर....** है? वस्तु (भगवान) आत्मा और परमाणु एक-एक रजकण और प्रत्येक भिन्न-भिन्न एक-एक आत्मा अपने स्वद्रव्य, यह आत्मा अपने ज्ञानानन्द गुण आदि और पर्याय, ऐसा द्रव्य और स्वक्षेत्र-अपने असंख्य प्रदेश स्वक्षेत्र अपने में है। परघर में आत्मा नहीं है। आत्मा कर्म में नहीं है, ऐसा कहते हैं। यह कर्म आत्मा में नहीं है, ऐसा कहते हैं। ले, यह तो खोटा न? कर्मसहित आत्मा है और (आत्मा में) कर्म नहीं? वह दूसरी चीज़ हो गयी। सहित कहने से दूसरी चीज़ हो गयी। सहित कहने पर भी रहित हो गयी। दूसरी हो गयी न, दूसरी। आहाहा!

तेरा द्रव्य और तेरा क्षेत्र असंख्य प्रदेशी है। तेरा काल अनन्त गुण की वर्तमान... वर्तमान पर्याय, वह तेरा काल है। लोग नहीं कहते कि हमारा काल (समय) अभी ऊँचा है। कहते हैं न, क्या कहते हैं बाहर में? अभी हमारा समय है। पैसा-बैसा हो न? लड़के अच्छे हों (तो कहे कि) हमारा समय है। धूल में भी नहीं। तेरा समय तेरी पर्याय में है। समझ में आया? अभी हमारा बोलवाला है। उल्टा डालें तो सुल्टा पड़ता है। कितने ही ऐसा कहते हैं, हों! पुण्य के कारण ऐसा होता है न? उल्टा डाले तो सुल्टा पड़े। क्या उल्टा-सुल्टा? तुझसे पर में क्या होता है? और पर में उल्टा-सुल्टा हो तो तुझमें क्या आया? आहाहा! कहो, शोभालालजी! धन्धे का विकल्प है, वह तो अपने में स्वकाल है। परन्तु उससे बीड़ी का-तम्बाकू का धन्धा-व्यापार होता है, ऐसा नहीं है। यह इनकार करते हैं। ऐई! धर्मचन्दजी! गजब यह!

स्वद्रव्य में आत्मा है, परमाणु स्वद्रव्य में है। यहाँ तो सबकी बात है न? छहों द्रव्य की बात है। स्वक्षेत्र तो कर्म के परमाणु कर्म में है। तो कर्म के परमाणु आत्मा में है नहीं। बस अभी? सिद्ध होवे तब या अभी? कर्म बिना का आत्मा होगा?

मुमुक्षु : कर्म बिना का ही आत्मा होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तेरे क्षेत्र में, तेरे काल में तू है। कर्म में तो तू है ही नहीं और कर्म अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में है। उसमें तू नहीं। कर्म में तू नहीं और तुझमें कर्म नहीं। ऐसी चीज़ वर्तमान में है। आहाहा! गजब बात, भाई! यह सूक्ष्म बात सुनने को विचार करे और कहना चाहे तो उसका अपना कुछ रहता नहीं। वाडा में छुपाकर बरतूँगा, लो। करो, दया पाला, व्रत करो, तपस्या करो, मर जाये और चार गति में मिथ्यादृष्टिरूप से भटको। प्रभु! तेरी पर्याय तो तुझसे है न? तेरा स्वकाल तो तुझसे है न? या पर के कारण से है? लड़का अच्छा हुआ, पाँच लाख का-दस लाख का मकान अच्छा हुआ। अभी उसका समय है। उसका समय कहाँ रहता है? पैसे में रहता है? उसकी पर्याय में रहता है। ऐ... हिम्मतभाई! क्या होगा यह? गजब, भाई!

स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र सबमें 'स्व' लो। **द्रव्य स्वद्रव्य, द्रव्य स्वक्षेत्र, द्रव्य स्वकाल, द्रव्य स्वभाव से कथन किया जाने पर 'अस्ति' है;....** कथन किया जाने पर अस्ति है,

परन्तु जानने से भी स्व से अस्ति है। यह तो कथन की बात है न? आदेश में रहे न? देखो, अपने भाव से है। क्या कहते हैं? आत्मा अपने ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि जो कायमी गुण हैं न, उन गुण से है। गुण से है, पर गुण से नहीं। पर में बहुत ही गुण है और अपने में भी बहुत ही गुण हैं तो अपने गुण पर से है, ऐसा नहीं है। और दूसरे में जो परमाणु है अथवा दूसरे आत्मा में अनन्त गुण हैं तो वे गुण अनन्त उनसे हैं, अपने से उसमें अनन्त गुण नहीं हैं।

क्रियाकाण्ड और रूढ़िगत में ऐसे घुस गये कि उसके चैतन्य का पता और जड़ का कहीं पता नहीं है। ऐसा मूढ़ होकर मूढ़ क्रिया में घुस गया। ऐई! भेड़ की भाँति। पहले तुम भी भेड़ की भाँति थे। काठी में गर्म पानी पीते और पानी लेकर घूमे। यह तो दृष्टान्त सामने पूछे उसे जवाब हो न? पुस्तक के बड़े ऐडीटर हो परन्तु पुस्तक यह आत्मा है, उसे घूंटा? यह क्या है? लोग कहे, आगम में क्या कहते हैं? (ऐसा कहे)। परन्तु आगम यहाँ रहता है या पुस्तक में आगम रहता है? आगम का ज्ञान (हो) और ज्ञान अपने में है। उसमें (पुस्तक में) ज्ञान नहीं है। वह तो जड़ है। समझ में आया?

तो वाणी की पर्याय में ज्ञान का भाव रहता है या नहीं? ऐई! शोभालालजी! ज्ञान जिनवाणी में भरा नहीं? यह तो तुम्हारे पण्डित कहते हैं। चम्पालाल है न? वाणी में गुण भरे हैं। भगवान की मूर्ति में क्या गुण है? मूर्ति में उसका—जड़ का गुण भरा है। वाणी में भी जड़ का गुण है। वाणी में आत्मा का गुण वहाँ है? वीतराग का ज्ञानगुण वाणी में घुस गया है? ऐई! चम्पालालजी यहाँ पहले आया था न? शास्त्र में दिखाया पुस्तक में। वाणी में तो गुण भरे हैं। वाणी तो पूजनीक है। यहाँ तो कहते हैं (कि) वाणी तो जड़ पर्याय है। वह तो अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल जड़रूप से रहती है। उसमें कोई आत्मा का गुण या ज्ञानगुण उसमें नहीं है। भारी गड़बड़!

द्रव्य-परद्रव्य, परक्षेत्र, लो! त्रिलोकनाथ परमात्मा हो तो भी यह आत्मा की अपेक्षा से परद्रव्य है। बराबर है? देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य है। परद्रव्य से आत्मा नहीं है। देव-गुरु-शास्त्र से आत्मा है नहीं। परक्षेत्र से आत्मा है नहीं। क्या कहलाये यह क्षेत्र तुम्हारे—सम्मेदशिखर। सम्मेदशिखर। आहा! एक व्यक्ति कहता था न, वहाँ वातावरण ऐसा कि

बुद्धि सुधर जाये। पर के कारण सुधरती होगी ? समझ में आया ? एक तो और हम १९६९ में यहाँ दीक्षा में गये थे वहाँ एक स्थानकवासी घूमता था। उसे भी शंका पड़ी थी। इस शत्रुंजय में वातावरण बहुत अच्छा! कहा, वातावरण की व्याख्या क्या ? वातावरण अर्थात् कहा, इस वातावरण के कारण यहाँ होता है ? वे अन्दर में गहरे-गहरे ऐसा कहे—यह वातावरण बहुत अच्छा। एकान्त न। कहा, वातावरण वातावरण में रहा। तेरे अन्दर में कहाँ घुस गया वह ?

गजब सत् का सत्स्वरूप—अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में पर के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव नहीं है। वातावरण के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अपने में नहीं है और उसके कारण यहाँ पर्याय होती है, ऐसा नहीं है। बराबर है ? परद्रव्य, परक्षेत्र उसकी चौड़ाई, परद्रव्य का वर्तमान काल—अवस्था और उसके भाव-गुण कथन कहने में आने पर नास्ति है। पर से तो आत्मा नास्ति है। परमाणु अपने से नास्ति है। देखो! यह अँगुली है, वह अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है। आत्मा से नहीं और इस अँगुली से नहीं। अपने परमाणु वह द्रव्य है। गुण पर्याय का पिण्ड है। क्षेत्र अनन्त परमाणु है। अवस्था है काल और शक्ति-गुण एक-एक परमाणु (भिन्न है)। स्वचतुष्टय में है। आत्मा अन्दर है तो यह अँगुली है, आत्मा की पर्याय है तो अँगुली की पर्याय है ? 'नहीं'। आत्मा की पर्याय में अँगुली की-परद्रव्य की पर्याय की नास्ति है। यहाँ एक साथ होने पर भी ? एक क्षेत्र में आत्मा और वहीं परमाणु असंख्य प्रदेश, वह क्षेत्र आत्मा का है। उसमें आत्मा है। परमाणु के क्षेत्र से आत्मा की नास्ति है। वहाँ भी नास्ति है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

इससे नहीं होता तो शरीर ऐसा हो तो आत्मा कैसे उसके कारण गिर जाये ? ऐसा कहते हैं। सुन न! यह तो उसका क्षेत्र-प्रदेश, ऐसी पर्याय होने की योग्यता हो तो ऐसा हो जाता है। शरीर पड़ा तो आत्मा की पड़ने की ऐसी पर्याय हो गयी, ऐसा है नहीं। अरे! गजब बात। मनुष्य चलता है तो अँगुली के एक-एक परमाणु की अस्ति द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है। अपनी इच्छा है तो भी ऐसे गिर जाता है, ऐसा नहीं है, यह कहते हैं। स्वद्रव्य की इच्छा स्वकाल की पर्याय में है और उसकी पर्याय ऐसे गति करती है तो परमाणु की पर्याय उसमें है। तो इस इच्छा से वह पर्याय नहीं और उस पर्याय से यह इच्छा नहीं। चलते-चलते

लकड़ी हाथ में लेता है। लो! लकड़ी के एक-एक परमाणु भी अपने स्वद्रव्य-स्वचतुष्टय से है। स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है। दूसरे परमाणु भी नहीं और अँगुली से भी नहीं। अँगुली पकड़ती है तो यह लकड़ी चलती है, ऐसा भी नहीं है। ऐसा कहते हैं। भारी काम भाई! दिखता है इसे प्रत्यक्ष दिखाई दे न, कहाँ अन्ध हूँ, प्रत्यक्ष दिखता है न? आहाहा! चलते-चलते लकड़ी ऐसे चलती है न? सहारा। परमाणु प्रत्यक्ष कहाँ देखता है। परमाणु अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से वहाँ परिणमता है। अँगुली से, इच्छा से वहाँ होता नहीं। और तेरी इच्छा में वह परमाणु है भी नहीं। आहाहा!

ऐसा पर से अभिमान छोड़कर अपने स्वचतुष्टय में दृष्टि हो तो पर्यायदृष्टि छोड़कर द्रव्यदृष्टि हो तो धर्म होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **द्रव्य परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'नास्ति' है,....** (कथन में पर लेना)। **द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से और परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से क्रमशः कथन किया जाने पर 'अस्ति और नास्ति' है;....** क्रम से कहने से अस्ति-नास्ति है, और वही अवक्तव्य है। **द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से और परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से युगपद् कथन किया जाने पर '[2]अवक्तव्य' है;....** उसमें क्रम से कथन किया गया था। क्रम से कथन करने में आया था अस्ति-नास्ति। एक साथ कथन नहीं हो सकता तो उसके कारण से अवक्तव्य है। ऐसा भी उसमें पर से अवक्तव्य-वक्तव्य।

चार :- द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अस्ति और युगपद् स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'अस्ति और अवक्तव्य' है। एक साथ कहने में नहीं आता तो अवक्तव्य है और अपने से है तो अस्ति है। अपने से अस्ति और एक साथ कहने में नहीं आवे, इसलिए अवक्तव्य है। पाँचवाँ बोल अस्ति अवक्तव्य। है और कथन में आ नहीं सकता। आहाहा! पहले समय में, सब अन्दर उड़ा दिया। निमित्त से होता है, निमित्त से होता है (ऐसा लोग कहते हैं)। दो कारण से कार्य होता है। यहाँ कहते हैं एक ही अपनी पर्याय से पर्याय होती है। पर से नहीं होती। बड़ा झगड़ा करे, दो पुस्तक बनायीं। खानियाचर्चा, दो बड़ी पुस्तकें बनायीं। **द्रव्य, परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नास्ति और युगपद् कथन किया जाने पर 'अवक्तव्य' है;....** नास्ति अवक्तव्य।

सातवाँ बोल :- द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से, परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से... दो बोल अस्ति-नास्ति **और युगपद् स्वपरद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य' है।—यह (उपरोक्त बात) अयोग्य नहीं है,....** लो! आचार्य स्वयं कहते हैं। यह बात अयोग्य नहीं है। योग्य है, यथार्थ है, ऐसा ही है। **क्योंकि सर्व वस्तु....** अब स्पष्टीकरण आया। **(१) स्वरूपादि से 'अशून्य' है,....** देखो! अवक्तव्य का अर्थ किया है, देखो! कह नहीं सकते। (एक साथ स्वचतुष्टय तथा परचतुष्टय की अपेक्षा से द्रव्य कथन में नहीं आ सकता, इसलिए 'अवक्तव्य' है। अशून्य=शून्य नहीं ऐसा, अस्तित्ववाला सत् है, देखो, क्या कहते हैं? देखो, क्या कहते हैं? अपने स्वरूप द्रव्य-क्षेत्र-काल आदि से अशून्य है। अशून्य है। भरपूर है। खाली नहीं। अपने गुण-पर्याय से खाली नहीं। आहाहा! आत्मा गुण से खाली नहीं, ऐसा कहते हैं। परमाणु परमाणु के गुण से खाली नहीं। समझ में आया?

परमाणु परमाणु के गुण से भरपूर है। भगवान आत्मा अपने निजगुण से परिपूर्ण भरपूर पड़ा है। आहाहा! उसे कहीं से पर्याय शोधनी पड़े, ऐसा है नहीं। अपने गुण में ही सब पर्याय पड़ी है शक्ति। अपने गुण से आत्मा है परगुण से है नहीं। स्वरूप आदि से अर्थात् स्वरूप अपना द्रव्य-क्षेत्र-काल से अशून्य है। स्वरूप से अशून्य है। परमाणु स्वरूप से अशून्य है। स्वरूप से खाली नहीं। स्वरूप से भरा पड़ा है। जैन कहते हैं कि परमाणु में कहें तो हो न, न कहें तो न हो। वह चन्द्रकान्त! १९९२ के वर्ष। (वह कहे) होवे तो हो न, न होवे तो न हो। (कहा) क्या न हो तो न हो? वह तो यह सप्तभंगी पढ़ी हुई न। पर की अपेक्षा से नहीं और स्व की अपेक्षा से है। परमाणु स्व की अपेक्षा से है और पर की अपेक्षा से बिल्कुल है ही नहीं। बिल्कुल है नहीं अर्थात् क्या? वह तो बहुत वर्ष की बात है। आहाहा!

स्वरूपादि से 'अशून्य' है,.... स्वरूपादि शब्द पड़ा है न? स्वरूपादि नाम अशून्यत्वात। सर्वस्व वस्तु के स्वरूपादि अर्थात् स्वरूपादि अर्थात् अपना द्रव्य-क्षेत्र जो है शक्ति आदि से अपने गुण अपने धर्म अपेक्षा, उनसे रहित नहीं है। सहित है। परमाणु परमाणु की शक्ति से सहित है, ऐसा कहते हैं। कोई कहता है न कि जड़ को क्या? चले

तो चले और न चले तो न चले, मूढ़ है। परमाणु में शक्ति कहाँ से आयी ? यहाँ तो कहते हैं कि परमाणु स्वरूप से शक्ति से परिपूर्ण है। शरीर में क्या है, वह तो चलावे तो चले और न चलावे तो न चले। झूठ है। एक-एक परमाणु अपने स्वरूप से अशून्य है। अशून्य अर्थात् स्वरूप से भरा पड़ा है। अपनी शक्ति और पर्याय से पूर्ण भरा है। उसे पर की अपेक्षा नहीं है। आहाहा ! जड़ की पर्याय होने में पर की अपेक्षा नहीं है। ऐसा कहते हैं। आहाहा !

क्या कहते हैं ? परमाणु का आत्मा नहीं कर सकता परन्तु शरीर का कर सकता है। लो ! एक बार प्रश्न हुआ था। रामविजय के पास सुमनभाई और कनुभाई जज दोनों गये थे। बहुत वर्ष की बात है। बीस वर्ष पहले की (बात है)। यहाँ सुनकर गये और दोनों मस्तिष्कवाले। रामविजय को पूछा कि आत्मा पर का कर सकता है ? कहे, परमाणु का नहीं कर सकता, शरीर का कर सकता है। अनेकान्त है। ऐसा कि बहुत है न ? परमाणु पकड़ में नहीं आता तो नहीं कर सकता। धूल में भी किया नहीं। ऐसा कि अपनी इच्छा प्रमाण हाथ हिल सके। वीतराग भी जब भाषा बोलनी हो तो भाषा ग्रहते हैं और दूसरे समय छोड़ते हैं, ऐसा कहते थे। यह २००६ के वर्ष में कहते थे। (संवत्) २००६ के वर्ष में हमारे सामने २००६ के वर्ष में कहते थे। हमने ऐसा कहा न कि भाई ! परद्रव्य कुछ भी नहीं कर सकता। आत्मा परद्रव्य का (कुछ भी नहीं कर सकता) केवली भी बोलते नहीं। नहीं केवली परन्तु स्वयं की वाणी करते हैं। खेंचते हैं और दूसरे समय बोलते हैं। कहो, परमाणु में। आहाहा ! गजब बात है न ? अरे भगवान ! क्या करता है यह ? वाड बेल को खाये। बेल को कहाँ जाना ? ऐसा हो तब ही वहाँ जाते हो न ऐसे।

तो कहते हैं कि द्रव्य अपने स्वरूप से अशून्य है। भाषा देखो ! परमाणु अपने गुण-पर्याय से अशून्य है। अर्थात् गुण-पर्याय से भरपूर है। शून्य नहीं, ऐसा। अपनी शक्ति और पर्याय से खाली नहीं कि दूसरे की अन्दर आवश्यकता पड़े, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? ...परन्तु हो कैसा ? सवेरे ऐसे दर्पण में देखता हो। जैसी इच्छा हो, वैसे सिर घूमे। छोटा काँच हो तो, बड़ा काँच हो तो ऐसा दिखाई दे। छोटा इतना हो तो क्या दिखाई दे ? भाई ! उस परमाणु की पर्याय को आत्मा (बदल नहीं सकता)। शक्ति से खाली है न ? कि इससे करे ऐसा ऐसे-ऐसे। यह कहते हैं कि वह शक्ति से भरपूर है, इसलिए उसमें ऐसे-

ऐसे होता है। आत्मा के कारण नहीं। आहाहा! उस काँच में सिर दिखता है न? नहीं? सिर यहाँ से चला जाये, खाली हो जाये। सिर यहाँ अशून्य है। उसमें है। यह सिर वहाँ नहीं जाता। दर्पण में तो रजकणों की पर्याय दर्पण की है, वह है। उसमें अन्दर में सिर-बिर कहाँ है? आहाहा! दर्पण में जो अवस्था दिखती है, वह उसके परमाणु की अवस्था है। वह कहीं वहाँ सिर की अवस्था नहीं है।

ग्यारहवें गुणस्थान से गिरे, वह कर्म बिना गिरता है? यदि निमित्त कुछ नहीं करता तो निमित्त किस काम का? काम का निमित्त पर को है या अपने को है? निमित्त अपनी पर्याय के काम का है। पर की पर्याय के काम का है? यहाँ तो इनकार करते हैं। पर की पर्याय से खाली है। अपनी पर्याय से अशून्य है। भरपूर है। आहाहा! सूक्ष्म पड़े। समझने की दरकार नहीं। फिर जुड़ गया। परन्तु आत्मा-आत्मा व्रत, तप करता है। भक्ति, पैसा खर्च करता है और कुछ शान्ति न दिखायी दे तो कुछ दूसरा रास्ता तुझे क्यों नहीं भासित होता। घर की शान्ति न दिखाई दे, अन्दर की शान्ति न आवे और यह तू किया करे, करेगा पूरे दिन सिर फोड़ा करता है। रास्ता दूसरा है, ऐसा तुझे क्यों नहीं लगता? दूसरा (रास्ता) है। ऐई!

कहते हैं कि तेरा स्वभाव तुझसे भरा पड़ा है। **पररूपादि से 'शून्य' है,....** जिसका अस्तित्व नहीं, ऐसा असत्। लो! पर से तो अस्तित्व असत् है। पर से असत् है, अपने से सत् है। देखा न? अशून्य का अर्थ किया। ऐसे अस्तित्ववाला सत्। परमाणु एक-एक अपने अस्तित्व से सत् और परमाणु पर के अस्तित्व से असत्। आत्मा अपने अस्तित्व से सत् और शरीर आदि पर की अपेक्षा से असत्। देव-गुरु का आत्मा भी अपने से सत् और पर की अपेक्षा से असत्। यह शास्त्र की वाणी स्वयं से सत्, पर की अपेक्षा से असत्।

मुमुक्षु : कुछ मेल पड़े ऐसा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मेल पड़े ऐसा यह ही है।

मुमुक्षु : उसमें तो मेल ही पड़ता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मेल ही पड़ता नहीं और व्यर्थ का हैरान होता है। यह बहुत ऊँची वस्तु है। पदार्थ का स्वरूप ही ऐसा है। भगवान ने कहा और भगवान ने देखा। ऐसा है।

इसी प्रकार से होता है। दूसरी रीति से क्या हो? है, ऐसा कहना और फिर पर के कारण से कहना, यह वस्तु सत् कहाँ सिद्ध हुई? आहाहा!

हे भगवान! आप तिरा देना। भगवान ऐसा कहते हैं कि तिरने के स्वभाव से तू कहाँ खाली है कि मैं तुझे तिराऊँ। हे प्रभु! शिवालय में–मोक्ष में ले जाओ। मोक्ष की पर्याय तो तेरी तुझमें है। गुण में पड़ी है। तेरा भगवान तेरे पास है। तू वहाँ नजर कर न! तेरी पर्याय प्रगट होगी। मेरे पास तेरे गुण में तेरी पर्याय है? मेरे गुण में तेरी पर्याय है? भगवान ऐसा कहते हैं। तथापि भगवान के पास जाकर माँगता है। वह तो एक शुभविकल्प हो तो ऐसा होता है। श्रद्धा में विकल्प से होता है और पर से होता है, ऐसी बात है नहीं। आहाहा! राग की वह तो नास्ति है, नास्ति। अपने से अपने को न माने और पर से माने, वह नास्तिक है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि पर से है नहीं और पर से है, ऐसा मानना, वह नास्तिक हुआ या नहीं?

स्वरूपादि से 'अशून्य' है,.... यह सप्तभंगी का एक बोल समझे तो सब स्पष्टीकरण हो जाये। आहाहा! हम बोलना चाहें तो बोलते हैं। मौन रहना हो तो मौन रहते हैं। क्या मौन रहने की पर्याय तेरी है? जड़ की है। पर के अस्तित्व से वह है। तेरे अस्तित्व से मौनपना हुआ है? विकल्प हुआ कि मुझे मौन रहना है। लो! यह मौनपना हुआ, वह विकल्प के कारण से है? आहाहा! यह गणधर आये तो भगवान की वाणी निकली, यह नहीं आता? आता है या नहीं? गणधर आये तो भगवान की वाणी खिरी। तब तक छयासठ दिन मौन। महावीर भगवान को केवलज्ञान हुआ, परन्तु वाणी नहीं खिरी। गणधर आये और (वाणी) खिरी, यह बात है ही नहीं।

सह परमाणु की पर्याय होने का काल था तो (वाणी) खिरती है। पर के कारण से नहीं। आहाहा! भारी कठिन काम! समझ में आया? सुना है या नहीं? राजगृही विपुलाचल पर्वत दो महीने और छह दिन केवलज्ञान हुआ, गणधर जहाँ आये, (उन्हें) इन्द्र बुलाकर। चलो भगवान तुम्हारा स्पष्टीकरण करेंगे। आये। वहाँ तो उन्हें सम्यग्दर्शन हो गया। फिर दिव्यध्वनि खिरी। आहाहा! ऐसी पर्याय के स्वकाल से उत्पन्न होने का था तो हुआ। भगवान से उत्पन्न नहीं हुआ। पर से शून्य है। प्रत्येक वस्तु पर से शून्य है। दोनों से

स्वरूपादि से और पररूपादि से अशून्य, शून्य है। स्व से अशून्य और पर से शून्य। लो। अस्ति–नास्ति अवक्तव्य।

दोनों से (स्वरूपादि से और पररूपादिसे) एक ही साथ 'अवाच्य' है,.... वह अवक्तव्य का कहा था न ? अवाच्य है। **भंगों के संयोग से कथन करने पर 'अशून्य और अवाच्य' है,....** अस्ति और अवाच्य। अस्ति अवक्तव्य। **'शून्य और अवाच्य' है,....** पर से नास्ति और अवाच्य है। **'अशून्य, शून्य और अवाच्य' है।** है। आहाहा ! लो ! इसका भावार्थ कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

गाथा - १५

भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो।
गुणपज्जएसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति।।१५।।

भावस्य नास्ति नाशो नास्ति अभावस्य चैव उत्पादः।
गुणपर्यायेषु भावा उत्पादव्ययान् प्रकुर्वन्ति।।१५।।

अत्रासत्प्रादुर्भावत्वमुत्पादस्य सदुच्छेदत्वं विगमस्य निषिद्धम्।

भावस्य सतो हि द्रव्यस्य न द्रव्यत्वेन विनाशः, अभावस्यासतोऽन्यद्रव्यस्य न द्रव्यत्वेनोत्पादः। किन्तु भावाः सन्ति द्रव्याणि सदुच्छेदमसदुत्पादं चान्तरेणैव गुणपर्यायेषु विनाशमुत्पादं चारभन्ते। यथा हि घृतोत्पत्तौ गोरसमय सतो न विनाशः न चापि गोरसव्यक्तिरिक्तस्यार्थान्तरस्यासतः उत्पादः किन्तु गोरसस्यैव सदुच्छेदमसदुत्पादं चानुपलभमानस्य स्पर्शरसगन्धवर्णादिषु परिणामिषु गुणेषु पूर्वावस्थया विनश्यत्सूत्तरावस्थया प्रादुर्भवत्सु नश्यति च नवनीतपर्यायो घृतपर्याय उत्पद्यते, तथा सर्वभावानामपीति।।१५।।

सत्द्रव्य का नहिं नाश हो अरु असत् का उत्पाद ना।
उत्पाद-व्यय होते सतत सब द्रव्य-गुणपर्याय में।।१५।।

अन्वयार्थ :- [भावस्य] भाव का (सत् का) [नाशः] नाश [न अस्ति] नहीं है [च एव] तथा [अभावस्य] अभाव का (असत् का) [उत्पादः] उत्पाद [न अस्ति] नहीं है; [भावाः] भाव (सत् द्रव्यों) [गुणपर्यायषु] गुणपर्यायों में [उत्पादव्ययान्] उत्पाद-व्यय [प्रकूर्वन्ति] करते हैं।

टीका :- यहाँ उत्पाद में असत् के प्रादुर्भाव का और व्यय में सत् के विनाश का निषेध किया है (अर्थात् उत्पाद होने से कहीं असत् की उत्पत्ति नहीं होती और व्यय होने से कहीं सत् का विनाश नहीं होता-ऐसा इस गाथा में कहा है)।

भाव का-सत् द्रव्य का-द्रव्यरूप से विनाश नहीं है; अभाव का-असत् अन्य द्रव्य का-द्रव्यरूप से उत्पाद नहीं है; परन्तु भाव-सत् द्रव्यों, सत् के विनाश और असत् के उत्पाद बिना ही, गुणपर्यायों में विनाश और उत्पाद करते हैं। जिस प्रकार घी की उत्पत्ति में गोरस का-सत् का-विनाश नहीं है तथा गोरस से भिन्न पदार्थान्तर का-असत् का-

उत्पाद नहीं है, किन्तु गोरस को ही, सत् का विनाश और असत् का उत्पाद किये बिना ही, पूर्व अवस्था से विनाश प्राप्त होनेवाले और उत्तर अवस्था से उत्पन्न होनेवाले स्पर्श–रस–गन्ध–वर्णादिक परिणामी गुणों में मक्खनपर्याय विनाश को प्राप्त होती है तथा घी पर्याय उत्पन्न होती है; उसी प्रकार सर्व भावों का वैसा ही है (अर्थात् समस्त द्रव्यों को नवीन पर्याय की उत्पत्ति में सत् का विनाश नहीं है तथा असत् का उत्पाद नहीं है, किन्तु सत् का विनाश और असत् का उत्पाद किये बिना ही, पहले की (पुरानी) अवस्था से विनाश को प्राप्त होनेवाले और बाद की (नवीन) अवस्था से उत्पन्न होनेवाले *परिणामी गुणों में पहले की पर्याय विनाश और बाद की पर्याय की उत्पत्ति होती है)।।१५।।

धारावाही प्रवचन नं. २३ (प्रवचन नं. २२), गाथा-१५
दिनांक - ०६-१२-१९६९, कार्तिक कृष्ण १२, शनिवार

भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो।
गुणपज्जएसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति।।१५।।

क्या कहते हैं, देखो! **टीका :- यहाँ उत्पाद में असत् के प्रादुर्भाव का और व्यय में सत् के विनाश का निषेध किया है।** लो! इसमें क्या समझना? कहते हैं, उत्पाद में असत् उपजता है, ऐसा नहीं, द्रव्य वह उपजा ऐसा नहीं। द्रव्य जगत में नहीं था और द्रव्य उपजा, ऐसा नहीं है। वस्तु नहीं थी और उपजी, ऐसा होता है? है, उसमें पर्याय उत्पन्न होती है परन्तु द्रव्य नया उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं। बातें तो बहुत जगह आती हैं। गीता में भी आती है। विज्ञान भी ऐसा कहता है कि वस्तु है, वह कहीं नयी उत्पन्न नहीं होती। पुरानी हो, वह सर्वथा जाती नहीं है। सर्वथा नाश नहीं होता। 'है', उसका रूपान्तर होता है। परन्तु किसी से नयी उत्पन्न होती है, ऐसा जगत में नहीं होता। और वस्तु है, उसका सर्वथा नाश हो, यह उत्पाद, व्यय, द्रव्य का नहीं होता, ऐसा सिद्ध करते हैं। रॉकेट क्या उड़ता था। रॉकेट की पर्याय रॉकेट के परमाणु हैं, वे तो कायम हैं। उनकी पर्याय उत्पन्न होती है, पर्याय

---

* **परिणामी=परिणमित होनेवाले; परिणामवाले। (पर्यायार्थिकनय से गुण परिणामी हैं अर्थात् परिणमित होते हैं।)**

का व्यय होता है, वह तो अवस्था उत्पन्न और व्यय हुई। वस्तु नयी उत्पन्न हो और वस्तु नहीं थी और नयी हो, ऐसा नहीं होता।

उत्पाद में असत् का प्रादुर्भाव अर्थात् असत् की उत्पत्ति। पदार्थ नहीं था और उत्पन्न हुआ, ऐसा नहीं होता। और व्यय में शक्ति विनाश का निषेध। नाश में वस्तु नाश होती है, ऐसा नहीं है। बराबर है ? उत्पाद होने से कहीं शक्ति असत् की उत्पत्ति नहीं होती। और व्यय होने से कहीं सत् का विनाश नहीं होता। ऐसा इस गाथा में कहा है। समझ में आया ?

भाव का—सत् द्रव्य का—द्रव्यरूप से विनाश नहीं है,.... कोई भी परमाणु या कोई भी आत्मा भावरूप है, सत्‌रूप है, द्रव्यरूप है, उस वस्तुरूप से उसका नाश नहीं होता। समझ में आया ? आत्मा सिद्ध की पर्यायरूप उत्पन्न हुआ तो द्रव्य उत्पन्न हुआ ? आत्मा उत्पन्न हुआ ? कितने ही ऐसा कहते हैं (कि) इतने सब जीव हिन्दुस्तान में आये तो कहाँ से आये ? ऐसा कहते हैं। पहले तो इतने मनुष्यरूप से नहीं थे। कितने करोड़ कहते हैं न अधिक ? एक व्यक्ति अभी प्रश्न करता था। वह कहीं से नये उपजकर आये लगते हैं। ऐसे के ऐसे बुद्धिहीन / मन्द बुद्धि जैसे। जीव तो जितने हैं, उतने हैं और परमाणु भी जितनी संख्या में हैं, उतने ही हैं। वे तो कहाँ-कहाँ से यहाँ आये हों। निगोद में हो, एकेन्द्रिय में हो, वहाँ से यहाँ आये हों। इसलिए कहीं द्रव्य नया उत्पन्न हुआ है ? ऐसे के ऐसे कुछ भान नहीं होता।

मुमुक्षु : शंका तो करना न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : औरंगाबादवाला नहीं मन्दिरमार्गी। नाम भूल गये। उसमें से एक व्यक्ति था वह। वहाँ प्रवचन देने आये थे। अपनी ही बात करते थे। अपने शिष्य थे। प्रवचन देने वहाँ गये। ज्ञानचन्दजी ! हमारे यहाँ आये थे, वे बात करते, तुम्हारी करते थे। ऐसा कहा उन्होंने। तू भेदज्ञान कर। चैतन्य का भिन्न यह भेदज्ञान हुए बिना अपना लाभ नहीं होता। भिन्न ही है। समझ में आया ?

यह कहते हैं न, आत्मा अपने से है, पर से नहीं, यह तो पहले कहा। तो अब कहते हैं कि अपने से है और पर से नहीं तो अपने से है, वह नया उत्पन्न होता है ? हिन्दुस्तान में बहुत जीव आये तो इतने सब मनुष्य पहले नहीं थे। किसी ईश्वर ने भेजे होंगे, कितने बढ़े

ऐसा कोई कहता था। ऐसे के ऐसे, जैन में जन्मे और तुमको खबर नहीं ? मुझे कहे पुनर्जन्म है ? यह यात्रा कर आये। भगवान की यात्रा। औरंगाबाद में रहता है। पुनर्जन्म है ? अरे! कहा, क्या पूछते हो तुम ? (वह कहे), मैं तो आपसे स्पष्टीकरण करने आया था। औरंगाबाद का था। अरे! कुछ ठिकाना नहीं होता। जैन में भी क्या चीज़ है और चीज़ है वह अनादि की है और चीज़ नयी नहीं उत्पन्न होती और जो नाश होता है, वह सत् का नाश नहीं होता। तो क्या होता है ? वह कहते हैं, देखो!

भाव का—सत् द्रव्य का—द्रव्यरूप से विनाश नहीं है, अभाव का—असत् अन्य द्रव्य का—द्रव्यरूप से उत्पाद नहीं है;.... अत्यन्त नया द्रव्य उत्पन्न हुआ, ऐसी कोई चीज़ है ही नहीं। **परन्तु भाव-सत् द्रव्यों, सत् के विनाश और असत् के उत्पाद बिना ही,....** क्या कहते हैं, देखो, सत्द्रव्य अर्थात् आत्मा और परमाणु जो द्रव्य सत्रूप है, उस सत् का विनाश और असत् का उत्पाद बिना है, उसकी उत्पत्ति बिना और 'है', उसके नाश बिना क्या होता है ? गुण-पर्याय में विनाश और उत्पाद से महासिद्धान्त है यह। आहाहा! भगवान आत्मा नया उत्पन्न नहीं होता। और है उसका नाश नहीं होता। परन्तु उत्पन्न होता है न ? वह जो अनन्त गुण हैं, ऐसा कहते हैं, देखो।! गुण जो है, वह पर्याय में उत्पन्न नहीं होता। समझ में आया ? और पूर्व की अवस्था का व्यय तथा नयी अवस्था का उत्पाद, उसे गुण करता है। देखो! '**गुण पज्जयेसु भावा उप्पादवये पकुवन्ति।**' समझ में आया ? यह गुण-पर्याय में विनाश और उत्पाद करता है कौन गुण-पर्याय में ? द्रव्य। आहाहा!

द्रव्य जो है, देखो यह शरीर की अवस्था यहाँ ऐसी उत्पन्न होती है। यह परमाणु तो कायम है। उसकी अवस्था उत्पन्न होती है। गुण की पर्याय में उत्पन्न द्रव्य करता है। आत्मा नहीं। समझ में आया ? वह जड़ की जो पर्याय उत्पन्न होती है, उसे जड़ का द्रव्य अपनी शक्ति में से पर्याय उत्पन्न करता है। आत्मा उसकी पर्याय को उत्पन्न करता है, ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया ? आहाहा!

यहाँ तो अभी ऐसा कहते हैं कि ईश्वर कर्ता है। ईश्वर से बनता है। धूल भी नहीं। सुन न! ईश्वर है, तो ईश्वर को किसने बनाया ? ईश्वर ने दूसरे को बनाया तो ईश्वर को किसने बनाया ? (तो कहे) ईश्वर तो था। था तो यह भी थे। समझ में आया ? हमारे पालेज

में बहुत ही चर्चा चलती थी। बहुत वर्ष पहले की बात है, हों! ६४-६५ की बात है। एक था कबीरपन्थी और एक था वेदान्ती। दोनों लठ्ठ जैसे। बगल की धर्मशाला में उतरे। चर्चा चली तो हम जैन लोग सुनने गये कि चलो, क्या चर्चा करते हैं। चलो, देखने जायें। कबीर का साधु कहे, ईश्वर-विश्वर कर्ता नहीं है। वह वेदान्ती कहे, नहीं; कर्ता है। वह कहे बताओ, वेदान्ती कहे शिष्य हो, फिर बताऊँ। कहते थे बहुत वर्ष की बात है। ६४-६५-६६ के वर्ष की बात है। पालेज में।

कौन ईश्वर? सब द्रव्य ईश्वर ही है। आत्मा सम्पूर्ण ईश्वर अपने से ही है। उसकी ईश्वरता बाहर से नहीं आती। एक तो यह विचार कि ईश्वर अपने में पूर्ण आत्मा ईश्वर है। तो उसकी ईश्वरता प्रगट करने में दूसरे साधन की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि दूसरे साधन उसमें है नहीं। समझ में आया? अरे! दूसरे साधन तो नहीं, परन्तु यह विकल्प के साधन से आत्मा का द्रव्य उत्पन्न नहीं होता। क्योंकि विकल्प है, वह तो राग है। और स्वभाव से तो परिपूर्ण द्रव्य है। तो राग से उत्पन्न होना मानना, वह तो उसकी ईश्वरता का अनीश्वर मानने जैसा है। आहाहा! समझ में आया?

फिर से। यह तो हिन्दी चलता है। अपनी ईश्वरता में परिपूर्ण ईश्वर है। ध्रुव परिपूर्ण आनन्द, परिपूर्ण ज्ञान, परिपूर्ण श्रद्धा, परिपूर्ण शान्ति सम्पन्न स्वच्छता, परिपूर्ण प्रभुता पड़ी है। यदि ऐसी परिपूर्णता-प्रभुता है, वह पर के आश्रय से है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? अपनी प्रभुता पर है, तो है – ऐसा नहीं है। अपनी प्रभुता अपने से है, एक बात। और अपनी प्रभुता अन्दर में जो पूर्ण है, वह विकल्प से उत्पन्न हो तो विकल्प तो राग है। राग से अपनी प्रभुता-वीतरागता उत्पन्न हो, ऐसा मानना, वह सम्पूर्ण वीतरागभाव का अनादर करने जैसा है। वह द्रव्यस्वभाव को मानता नहीं। ऐसा कहते हैं। द्रव्यस्वभाव है, वह अपनी निर्मल पर्याय में उत्पन्न होता है। राग है तो निर्मल पर्याय में उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं है। विकल्प का नाश हुआ तो द्रव्य ने विकल्प का नाश किया और द्रव्य प्रभुता से परिपूर्ण है। तो उस प्रभुता की शक्तिरूप से व्यक्तपने पर्याय द्रव्य ने उत्पन्न की है। समझ में आया?

पूर्व की पर्याय से नहीं, निमित्त से नहीं। समझ में आया? अपनी प्रभुता पर्याय में प्रगट हुई, वह तो अपनी प्रभुत्वशक्ति है, उसमें से उत्पन्न होती है, ऐसा कहते हैं। द्रव्य-

गुण पज्जाय भावा उत्पन्न करता है। द्रव्य अपने गुण पर्याय में उत्पन्न करता है। कोई पूर्व की पर्याय उत्पन्न नहीं करती, निमित्त भी उत्पन्न नहीं करता। समझ में आया? कहते हैं कि राग की मन्दता थी, पहले तो अपनी गुण की पर्याय उत्पन्न हुई अथवा द्रव्य, गुण की पर्याय में उत्पन्न हुआ। समझ में आया? ऐसा कैसे है, परन्तु समझ तो सही! विकल्प है, वह तो पर्याय राग की है। अब राग में से गुण की पर्याय कहाँ से आती है? यहाँ तो अपना द्रव्य, गुण, पर्याय में उत्पन्न होता है, ऐसा कहा है। वह विकल्प गुण-पर्याय में उत्पन्न होता है? समझ में आया?

सूक्ष्म बात है, भाई! महाप्रभु है। आहाहा! ऐसा कहते हैं, देखो! **सत् के विनाश और असत् के उत्पाद बिना ही,....** वस्तु के उत्पन्न बिना और वस्तु के नाश बिना ही वस्तु के भाव के **गुणपर्यायों में विनाश और उत्पाद करते हैं भाव।** वह अपना आत्मा ही अपनी गुण-पर्याय की अवस्था से उत्पन्न करता है। और अपना आत्मा ही पूर्व की अवस्था का व्यय करता है। व्यय करता है, उस व्यय से उत्पाद होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? और नया द्रव्य उत्पन्न होता है, ऐसा भी नहीं है। कहो, समझ में आया या नहीं? यह तो समझ में आये ऐसा है। लड़के को समझ में आता है या नहीं?

यह परमाणु है, परमाणु, देखो! सोना है सोना, तो सोना में से एक कुण्डल की अवस्था उत्पन्न होती है। वह सोना उत्पन्न होता है? और कड़े की अवस्था का नाश हुआ तो सोने का नाश हुआ है? सोना तो सोना ही है। सोना सत् है, उसका नाश नहीं और सोना नया उत्पन्न होता असत् में से असत् द्रव्य, ऐसा भी नहीं है। तो सोना अपनी कुण्डल की पर्याय में, गुण-पर्याय में सोना उत्पन्न होता है। सोनी से भी नहीं और हथौड़ा से भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? मिट्टी अपने घट की पर्याय में उत्पन्न होती है। वह पूर्व का पिण्ड था, उसका व्यय हुआ। उसे भी द्रव्य व्यय करता है और उत्पाद भी द्रव्य करता है। व्यय है तो व्यय से उत्पन्न हुआ, ऐसा नहीं हुआ। द्रव्य ही व्यय को उत्पन्न और नाश करता है तथा द्रव्य ही उत्पन्न करता है। आहाहा! समझ में आया?

कर्म का उदय अपनी पर्याय की हीनता को करे, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। कर्म तो परद्रव्य है। परद्रव्य में तो वह उत्पन्न होता है। समझ में आया? स्वद्रव्य में राग की

उत्पत्ति होना, द्वेष की उत्पत्ति होना, भ्रमणा की उत्पत्ति होना, वह भी उत्पत्ति द्रव्य स्वयं करता है। आत्मद्रव्य भ्रमणा की उत्पत्ति करता है। समझ में आया? पर में सुख है, पर है तो मुझे मदद मिलती है। मैं हूँ तो दूसरे को मदद करता हूँ तो उसकी पर्याय को मेरा सहारा है, ऐसी भ्रमणा द्रव्य उत्पन्न करता है। कर्म उत्पन्न करता है, ऐसा नहीं है और दूसरी चीज़ उसे भ्रमणा कराती है, ऐसा नहीं है। बराबर है? यह तो सादी बात है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि पूरा द्रव्य उत्पन्न नहीं होता और नाश नहीं होता। परन्तु उत्पन्न-व्यय तो दिखते हैं न? परन्तु पर्याय में उत्पन्न-व्यय होता है। तो वह पर्याय द्रव्य उत्पन्न करता है और द्रव्य पर्याय का नाश करता है। बराबर है?

घड़ा है घड़ा। डण्डा मारा डण्डा, देखो! तो घड़ा फूट गया या नहीं? तो डण्डा से फूट नहीं गया, ऐसा कहते हैं। मिट्टी जो अपनी पर्याय घटरूप थी, तो उसका व्यय मिट्टी ने किया है और ठीकरे की पर्याय मिट्टी ने उत्पन्न की है। डण्डे से नहीं। लकड़ी से नहीं। ऐई! समझ में आया? ऐ राजाजी! समझ में आया या नहीं? आहाहा! कहते हैं कि भगवान! यह तेरी चीज़ है या नहीं? द्रव्य अनादि-अनन्त है। नित्य है। तो नित्य का उत्पन्न होना होता है? नित्य कहना और उत्पन्न होता है, ऐसा कहना, यह तो विरोध है। समझ में आया? और नित्य है और नित्य का नाश होता है, वह भी विरोध है। बराबर है। अब नित्य है तो नित्य है तो नित्य क्या करता है? क्या परद्रव्य की पर्याय करता है? या परद्रव्य से अपने में पर्याय करता है? (तो कहते हैं) नहीं; नित्य द्रव्य है, वह अपनी नयी पर्याय को द्रव्य उत्पन्न करता है। भाव गुण-पर्याय से उत्पन्न होता है। और पूर्व की पर्याय में भाव गुणपर्याय का व्यय करता है। आहाहा! कितनी बात! समझ में आया?

अब दृष्टान्त जैसे देते हैं। **जिस प्रकार घी की उत्पत्ति में गोरस का—सत् का—विनाश नहीं है....** सोने का दृष्टान्त दिया था न? सोने की उत्पत्ति नहीं होती। कुण्डल की उत्पत्ति हुई, उसमें सोना उत्पन्न हुआ? सोना नया उत्पन्न हुआ है? तो सोना अपनी कुण्डल पर्याय में-गुण पर्याय में सोना पर्याय में पर्यायरूप से उत्पन्न हुआ। सोना नया उत्पन्न हुआ, ऐसा है नहीं। **घी की उत्पत्ति में गोरस का—सत् का—विनाश नहीं है....** गोरस... गोरस है। तो गोरस की उत्पत्ति होती है गोरस की? घी की उत्पत्ति में गोरस का-सत् का विनाश

नहीं। गोरस का नाश होता है? **उसी प्रकार गोरस से भिन्न पदार्थान्तर का—असत् का—उत्पाद नहीं है,....** लो! गोरस अन्य पदार्थ से उत्पन्न हुआ है, ऐसा नहीं है। **गोरस से भिन्न पदार्थान्तर-का—असत् का—उत्पाद नहीं है,....** नहीं है, उसकी उत्पत्ति है? **किन्तु गोरस को ही सत् का विनाश और असत् का उत्पाद किये बिना ही,....** गोरस को ही गोरस का विनाश किये बिना ही गोरस है, उसकी उत्पत्ति बिना ही **पूर्व अवस्था से विनाश को प्राप्त होनेवाले....** लो! व्यय से लिया। समझ में आया? **पूर्व अवस्था से विनाश को प्राप्त होनेवाले और उत्तर अवस्था से उत्पन्न होनेवाले स्पर्श-रस-गंध-वर्णादिक परिणामी गुणों में....** देखो, गुणों को परिणामी कहा। स्पर्श-रस-गन्ध-रंग ये परिणामी गुणों में परिणमित होनेवाले पर्यायनय से गुण परिणामी है। परिणमित होते हैं। गुण भी पर्यायनय से परिणमित होते हैं।

अपने में ज्ञानगुण है और गुण का धारक द्रव्य है। द्रव्य नया उत्पन्न होता है? द्रव्य का नाश होता है? तो क्या होता है? द्रव्य है, वह गुण की मतिज्ञान की पर्याय में उत्पन्न हुआ। सम्यग्ज्ञान की पर्याय में वह द्रव्य, गुण का परिणमन करते हुए मतिज्ञान की पर्याय हुई। मतिज्ञानावरणीय का क्षयोपशम हुआ तो मतिज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, ऐसा तो है नहीं। समझ में आया? **उत्तर अवस्था से उत्पन्न होनेवाले परिणामी गुणों में, परिणामी गुणों में मक्खनपर्याय विनाश को प्राप्त होती है....** मक्खन की अवस्था का नाश होता है। **तथा घी पर्याय उत्पन्न होती है;....** गौरस, वह द्रव्य। मक्खन की पर्याय का नाश, घी की पर्याय की उत्पत्ति, गौरस का उत्पन्न होना और गौरस का नाश होना—ऐसा नहीं है। गौरस की घी पर्याय का उत्पन्न होना और गौरस की मक्खन पर्याय का अभाव होना। गौरस अपने गुण के परिणमन में ऐसा होता है। आहाहा!

गजब बात, भाई! इस मूल बात की खबर नहीं होती (और कहे कि) कल्याण करो, कल्याण करो! परन्तु कल्याण कहाँ से क्या करे? समझ में आया? कल्याण करो। भाई! परन्तु कल्याण की उत्पत्ति कैसे होती है, ऐसा कहते हैं और अकल्याण का नाश तथा कल्याण की उत्पत्ति। तो कल्याण करनेवाले का नाश होता है? और अकल्याण के नाश करनेवाले का नाश होता है? ऐसा कहते हैं। क्या कहा? कल्याण करनेवाला आत्मा। अब

कल्याण करनेवाले का नाश होता है ? कल्याण करनेवाला आत्मा तो कल्याण करनेवाले का द्रव्य उत्पन्न होता है ? तो कल्याण करनेवाला आत्मा अपनी कल्याण की पर्याय में कल्याण द्रव्य उत्पन्न होता है ? समझ में आया ? और कल्याण करनेवाला आत्मा अपने अकल्याण का नाश करता है। अकल्याण का नाश और कल्याण की उत्पत्ति करनेवाला द्रव्य, अपने गुणों में परिणमन करता है। आहाहा! गजब बात! बिना भान के तो सब ऐसा कहते हैं कि हम आत्मा की इतनी बात करते हैं न ? आत्मा... आत्मा परन्तु आत्मा द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों हुए बिना आत्मा कभी समझ में नहीं आता। क्यों ?—कि जैसे आत्मा-आत्मा चलो आत्मा ऐसा है, परमेश्वर जैसा है। परमेश्वर जैसा पर्याय में नहीं था ? पर्याय में नहीं था न ? तब प्रगट करना है न ? तो वह तो पर्याय हो गयी। नहीं था और प्रगट करना है तो अन्दर में था या नहीं ? परमेश्वररूप से आत्मा द्रव्य और गुणरूप से था या नहीं ? द्रव्यरूप से और गुणरूप से नया उत्पन्न नहीं होता। द्रव्य और गुण है, उनका सर्वथा नाश नहीं होता। परिणमन होता है। आहाहा!

इन भगवान से तेरी प्रभुता नहीं आती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? तेरी पर्याय में प्रभुता कल्याण की पर्याय धर्म की पर्याय, वह प्रभु के पास से नहीं आती। प्रतिमा से नहीं आती। तीन लोक के नाथ समवसरण में विराजते हैं, तथापि उनके पास से भी कल्याण की पर्याय नहीं आती, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? कहाँ से आती है ? कि द्रव्य और गुण में कल्याणस्वरूप जो भगवान आत्मा है, वह गुण परिणमन करता है। कल्याणस्वरूप आत्मा है, वीतरागस्वरूप आत्मा है, आनन्दस्वरूप आत्मा है, ज्ञानस्वभावी आत्मा है। वह ज्ञानस्वभावी आत्मा अपने गुण में परिणमन करके कल्याण की पर्याय का उत्पाद करता है। और उसी समय पूर्व की पर्याय का वह गुण नाश करता है। कहो, बराबर है ?

मुमुक्षु : बराबर है, प्रभु! आप समझाते हो, तब समझ में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब समझ में आता है। आहाहा!

कहते हैं कि ऐसा आत्मा मानना कि अपनी धर्म की पर्याय पर से होती है, तो वह अपनी प्रभुता का अनादर करता है। भाई! समझ में आया ? अपनी धर्म की पर्याय पर से

होती है (और) पर है तो है, (ऐसा माने) तो अपना त्रिकाली द्रव्य जो गुणरूप से परिणमनवाला है, तो (वह) गुण और द्रव्य का अनादर करता है। तो उसे कल्याण उत्पन्न नहीं होता परन्तु मिथ्यात्व उत्पन्न होता है। ऐसा तो कहे कि हमारे धर्म की उत्पत्ति होओ। भगवान को नहीं भजना, आत्मा को भजना है। परन्तु भजना अर्थात् क्या? परन्तु भजना अर्थात् क्या? वापस नयी पर्याय उत्पन्न होती है या नहीं? पुरानी पर्याय अधर्म की है, वह नाश होकर धर्म की पर्याय होती है न? पर्याय का परिणमन स्वीकार करे तो होता है। वस्तु है, गुण है और परिणमन स्वीकार न करे, समझ में आया? परिणमन स्वीकार न करे तो नया परिणमन कहाँ से आता है? ....पर्याय अध्धर से आती है? और परिणमन स्वीकार करे परन्तु गुण स्वीकार न करे? क्योंकि जो निर्मल पर्याय हुई है, वह उसके गुण में शक्ति थी। ऐसी अनन्त शक्ति का धनी द्रव्य है। तो द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों को भलीभाँति यथार्थ श्रद्धा में न ले तो एक भी गुण-पर्याय और द्रव्य की यथार्थ श्रद्धा उसे नहीं है।

भगवान... भगवान करके मर जाये। भगवान... भगवान यह भगवान हों, वह यह नहीं। ऐई! मैं भगवान हूँ, भगवान हूँ, भगवान है तो क्या है? पर्याय में तो भगवान नहीं। समझ में आया? पर्याय में तो भगवान नहीं और गुण-द्रव्य में भगवान न हो तो पर्याय में भगवान कहाँ से आयेगा? न्याय समझ में आता है? गजब बात, भाई! कैसी बात करते हैं, देखो न यह? तब एक इन्दौरवाले बंशीधरजी पण्डित थे यहाँ। इस गाथा में 'गुणपज्जाया ते भावा उप्पादवाये पकुवन्ति' प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य, उसकी गुण की पर्याय को करता है। पर्याय को वह करता है। द्रव्य की पर्याय द्रव्य करता है। पर्याय दूसरा करता है, यह बात है नहीं। बराबर है? आहाहा! 'दव्व कुव्वंति' शब्द है न विशेष 'कुव्वंति' तेरी पर्याय का करनेवाला तो तू है।

धर्म की पर्याय पर से तो नहीं होती, परन्तु पूर्व में राग था, उससे भी नहीं होती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भाई! राग से हो तो द्रव्य स्वयं गुणरूप करता है, ऐसा कहते हैं। पर्याय का कर्ता तो द्रव्य-गुण है। पूर्व की पर्याय भी धर्म की पर्याय का कर्ता नहीं। इसमें व्यवहार उड़ जाता है। आहाहा! पहले व्यवहार और फिर निश्चय, ऐसा होता ही नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है। समझ में आया? अरे! कुछ

धरम–फरम। धर्म तो है वहाँ है। है, उसका नाश नहीं और है, उसकी उत्पत्ति नहीं, द्रव्य–गुण की।

अब उत्पत्ति और व्यय होता है तो क्या? वह परिणामी गुण है तो परिणमता है। द्रव्य और गुण परिणमता है तो धर्म की नयी पर्याय उत्पन्न होती है। और जो पुरानी अज्ञान और भ्रमणा की पर्याय थी, उसका नाश तो द्रव्य करता है। कर्म का नाश हुआ तो यहाँ विकार का नाश होता है, ऐसा नहीं है। धरमचन्दजी! समझे नहीं द्रव्य, समझे नहीं गुण और समझे नहीं पर्याय और भगवान... भगवान (करे और माने) धर्म हो जायेगा, धूल भी धर्म नहीं। आहाहा!

देखो! तीनों बोल डाले हैं न? 'भावा गुण पज्जायेसुउप्पादव्वएपकुवंति' भाव अर्थात् द्रव्य। उसके गुण के परिणमन में वह द्रव्य स्वयं 'पकुवंति' उत्पाद–व्यय को द्रव्य करता है। कहो, समझ में आया? इस प्रकार सभी भावों का इस तरह ही है। लो! सर्व द्रव्य सिद्ध, निगोद, परमाणु, स्कन्ध, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल। छह द्रव्य वस्तुरूप से नये उत्पन्न नहीं होते। वस्तुपने का विनाश नहीं। वस्तु अपने गुण–पर्याय में क्षण–क्षण में उत्पन्न करती है। और वस्तु गुण–पर्याय से पूर्व की पर्याय का नाश करती है। खलास–समाप्त यह तीन में सब आ गया। पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। (तो कहे) निमित्त है न? निमित्त है परन्तु निमित्त उसके घर में रहे। यहाँ कहाँ घुस गये हैं। यह तो आया यहाँ 'पकुवंति' का अर्थ हो गया या नहीं? स्व में पर नहीं, पर नहीं तो पर क्या करे? पर करे तो पर में तू है अथवा पर तुझमें है, ऐसा हो गया। गजब बात भाई! धर्मचन्दजी

दवा–बवा की पर्याय शरीर की निरोगता को कुछ करती है या नहीं? कहते हैं, शरीर के जो परमाणु हैं, वे नये उत्पन्न नहीं होते? पुराने ही हैं। तो वे परमाणु अपने गुण की पर्याय से निरोगता की पर्याय उत्पन्न करते हैं। सरोगता की पर्याय का व्यय करते हैं। वे करते हैं। इंजैक्शन, धर्मचन्दजी कुछ करते नहीं।

मुमुक्षु : रोग का व्यय इंजैक्शन से नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। अरे! गजब बात! बराबर है? तिनका–तिनका टुकड़ा हुआ टुकड़ा। तो कहते हैं टुकड़े में अँगुली ने कुछ नहीं किया। टुकड़ा भी नहीं

किया और अखण्ड (का) खण्ड भी नहीं किया। और दूसरी पर्याय उत्पन्न हुई, वह अँगुली से नहीं। उस टुकड़े के खण्ड हुए, वे परमाणु कायम रहकर, परमाणु नये उत्पन्न नहीं हुए और पुराने का नाश नहीं हुआ और परमाणु अपने गुण-पर्याय से ऐसे उत्पन्न हुए, पूर्व की अखण्डता का नाश करके खण्ड पर्यायरूप से उत्पन्न हुए। गजब बात, भाई!

यह तो सादी बात है, हों! चार कक्षा पढ़ा हुआ हो, उसे भी ख्याल में आवे कि यह कहते हैं, यह इस प्रमाण है, पश्चात् उसे जँचे, न जँचे, वह एक ओर रहा। परन्तु जँचे ही। क्यों न जँचे? आहाहा! अनुभव कर, बापू! बात को प्रमाण कर। तुझसे स्वीकार कर, भाई! आहाहा! तेरा भगवान तेरी पर्याय में उत्पन्न होता है। तेरा भगवान ही पूर्व की पर्याय का नाश करता है। परमुाण में भी परमाणु ही अपने परमाणु को कायम रखकर अपनी नयी (अवस्था उत्पन्न करता है)। जैसे ठण्डा पानी है, वह गरम हुआ, लो! तो कहते हैं कि ठण्डेपन का व्यय, उष्णता की उत्पत्ति (होती है) वह परमाणु अपने गुण से परिणमन करके करता है। अग्नि से पानी गर्म होता है, ऐसा कभी हुआ ही नहीं। बराबर है? कठिन बात, भाई! ऐई! भगवानजीभाई! यह समझ में आता है? इनकार करते हैं। वह यह समझना पड़ेगा। सत्य चाहिए उसे। आहाहा!

तब कहे, यह ऐसी वस्तु की स्थिति है तो लोग यात्रा करने किसलिए जाते हैं? वहाँ से कुछ मिलता है या नहीं? भाई! उस समय भी आत्मा अपनी पर्याय में उत्पन्न होता है और पूर्व की पर्याय का नाश आत्मा करता है। पर से उसमें कुछ हो, (ऐसा नहीं है)। सम्मेदशिखर के दर्शन करे या साक्षात् भगवान के दर्शन करे तो आत्मा की पर्याय उससे उत्पन्न होती है और पूर्व के मैल का नाश उससे होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐई! धर्मचन्दजी! ताला लग जायेगा। एक व्यक्ति कहता था। ऐई छोटाभाई! नहीं, वह वोरा रतिलाल। (संवत्) १९९९ में। यह महाराज कहते हैं, वह बात तो सच्ची लगती है। परन्तु यदि ऐसा स्वीकार करने जाये तो उपाश्रय में ताला लग जाये। वह रतिलाल है न १९९९ में। अरे! भगवान! ताला लग जाये। लगे नहीं और लिया-दिया जाये नहीं। सुन न! तेरा सत्स्वरूप क्या है, उसे समझ न बापू! आहाहा! हें? दो टुकड़े भी कौन करे? दूसरा करे?

यह स्कन्ध परमाणुओं का पिण्ड है। यह स्कन्ध परमाणुओं का पिण्ड यदि स्वयं से

अभेद था (वह) भेद की पर्याय को स्वयं ने उत्पन्न किया है। दूसरे से उत्पन्न नहीं किया। एक तिनके के दो टुकड़े करने की आत्मा में शक्ति नहीं है।

मुमुक्षु : लघुता बताते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लघुता, यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है। आहाहा! समझ में आया? देखो, यह हाथ है। इसकी ऐसी पर्याय है। अब ऐसी हुई तो ऐसा उत्पाद हुआ। वह किसने किया? वह परमाणु अपने वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श पर्यायसे ऐसी पर्याय में ऐसा हुआ और उसका व्यय हुआ। व्यय-उत्पाद के करनेवाले परमाणु अपनी गुण-पर्याय को करते हैं। आत्मा अन्दर है तो ऐसे होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! पागल को दिखता है, अरे! ध्यान रखना चाहिए न? पागल हो गया है? यहाँ तो समय-समय का सत्, द्रव्य सत् है तो गुण भी सत् है, तो पर्याय सत् है या असत् है? सत् है। तो सत् की उत्पत्ति सत् करता है। सत् की उत्पत्ति जिसमें सत् नहीं, ऐसा असत् करता है? दूसरी परचीज़ तो सत् की अपेक्षा से असत् है। आहाहा! समझ में आया? गजब बात! न्याय से समझे तो पकड़ में आये ऐसी बात है। नि:सन्देह ऐसा होता है। दूसरी चीज़ हो नहीं। दूसरा कोई बड़ा महात्मा कहे कि नहीं, हमारे से हुआ है। लो! हम तुम्हें समझाते हैं न, तो तुम्हें ज्ञान हुआ। आहाहा!

सत् को सत् रहने दो। सत् को मिथ्या न कहो। समझ में आया? हमारे से कुछ होता नहीं तो हमें तो कोई मानेगा नहीं। हमारे से कुछ होता नहीं तो माने कहाँ से? अब सुन न! माने, न माने तुझे क्या काम है? समझ में आया? लोगों को यह विवाद, पण्डितों को, अपन ऐसा मानेंगे और ऐसा कहेंगे तो कोई उपकार नहीं मानेगा और पैसा नहीं देगा। कौन पैसा दे और कौन उपकार करे। भाई! वस्तु की स्थिति ऐसी है, ऐसा समझ न? और समझेगा, उसे उपकार का विकल्प आये बिना रहेगा नहीं। उपकार का विकल्प आयेगा, ऐसा कहा है। उससे लाभ होगा, ऐसा कहाँ कहा है? ऐई! आहाहा! देखो, यह घड़ी है न, इसे आगे-पीछे करो, तो यह दो मिनिट पहले है। कौन करे? अस्पताल में मुम्बई में—तीन-दस बजे हैं, लो! ठीक करो, कौन करे? परमाणु जो है, वह तो अपनी पर्याय में उत्पन्न होते हैं। आगे जाकर और अपनी पर्याय का ही व्यय करते हैं, वह परमाणु करते हैं। कोई दूसरा करता है? कठिन बात, भाई! अभिमान... अभिमान... अभिमान। ऐई भगवानजीभाई! क्या यह

दाने का व्यापार-व्यापार कौन करता है ? उसका तो निषेध करते हैं। आहाहा! वह रतिलाल डॉक्टर कहता था कि इन महाराज का सुनकर सब उत्साह उड़ जाता है। (संवत्) १९९५ में रतिलाल डॉक्टर आँख का सर्जन था न ? इनका सुने तो, परन्तु सुने तो सत् रहेगा तेरे हृदय में, सुन न! तेरा अभिमान उड़ जायेगा कि मुझसे यह होता है। मैं बराबर ध्यान रखता हूँ तो मेरे ग्राहक आते हैं और पैसा मिलता है। धूल में भी नहीं मिलता। सुन तो सही! समझ में आया ? आहाहा!

ग्राहक की एक-एक आत्मा की पर्याय जहाँ जाने की है, वहाँ ही उत्पन्न होगी। उसी समय में उसकी पर्याय का नाश आत्मा करेगा। पर में तुझसे उत्पन्न-व्यय होता है ? बराबर ऐसा कहो कि अपने पास आवे। अपने ऐसा कहो कि अपने पास आवे। आज ऐसी कथा रखो कि जिसमें अन्त में यह बात कल (आयेगी), इसलिए लोग फिर कल आयेंगे। अधिक यह करते थे वह रास है न रास, ढाल है न ढाल, यह सीताजी को लेने के लिये राम गये और कल लक्ष्मण उसे मारेगा। किस प्रकार (मारेगा) ? यह कल। लो। इसलिए उन सुननेवालों को ऐसा लगे कि आहाहा! यह झट मारे तो ठीक। क्या है परन्तु तुझे अब सुन न ? आहाहा! भ्रमणा, वह भ्रमणा। हें ? अभी सुनाओ, अभी सुनाओ एक-दो मिनिट बाकी है महाराज। मार डालेगा परन्तु तुझे क्या काम है ? आहाहा! वह तो पर्याय हो गयी, उस समय हो गयी। उसकी तो बात चलती है। समझ में आया ? लक्ष्मणजी, रामचन्द्रजी, ऐसा कहते हैं। अहो! हमारी पुण्य-प्रकृति ऐसी है, माता! लो, रावण को मारकर उसकी स्त्री के पास गये। क्या कहलाती है ? मन्दोदरी। बड़ा महल अर्धवासुदेव, देव सेवा करते थे। विद्या की तो बहुत सिद्धि थी। विद्या क्या करे ? माता! हम बलदेव-वासुदेव हैं। हमारा पुण्य ऐसा है कि ऐसी स्थिति बन गयी। हमको शोक खेद (होता है) ऐसे महान पुरुष हमारे सामने थे। पदवी हमारी ऐसी है न ऐसा हुए बिना रहे नहीं। समझ में आया ? लाखों लोग जलाने आये। राम और लक्ष्मण मारकर साथ में जाते हैं। तालाब के किनारे बैठते हैं। इस प्रकार के महापुरुषों की स्थिति लोग नहीं समझ सकते। समझ में आया ? उस समय ऐसा विकल्प उत्पन्न हुआ और देह की क्रिया का नाश होनेवाला था तो हुआ। विकल्प से, बाण से हुआ नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

इसी प्रकार घी की पर्याय की उत्पत्ति और मक्खन की पर्याय का नाश, वह गौरस करता है। इस प्रकार विद्यार्थी। विद्यार्थी की नयी ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, उसे कौन उत्पन्न करता है ? उसे पढ़ानेवाला ? बिल्कुल नहीं। उसका द्रव्य ज्ञानरूप परिणमन होता है तो ज्ञान की पर्याय विद्या की पर्याय उत्पन्न होती है। भले सम्यक् न हो तो कुछ नहीं। समझ में आया ? और पूर्व की अपूर्ण पर्याय होती है, उसका नाश होता है। परन्तु नाश और उत्पन्न उसके द्रव्य-गुण-पर्याय करते हैं। पर से उसमें नाश और उत्पन्न होता है, (ऐसा है नहीं)। आहाहा ! ऐसी चीज़ समझे बिना कहते हैं कि हमारे धर्म हो गया। धूल में भी धर्म नहीं। समझ में आया ?

उसी प्रकार सर्व भावों का भी वैसा ही है.... भाव शब्द से द्रव्य। अनन्त परमाणु, अनन्त आत्मायें। **अर्थात् समस्त द्रव्यों को नवीन पर्याय की उत्पत्ति में सत् का विनाश नहीं है....** देखो ! नवीन अवस्था की समय में उत्पत्ति परमाणु और आत्मा में होती है। इसलिए सत् का नाश द्रव्य का नाश नहीं है। द्रव्य तो वह का वह है। असत् का उत्पाद नहीं। द्रव्य नहीं और नया उत्पन्न हुआ ऐसा नहीं। **किन्तु सत् का विनाश और असत् का उत्पाद किये बिना ही,....** सत् का नाश और असत् का उत्पाद-द्रव्य। **पहले की (पुरानी) अवस्था से विनाश को प्राप्त होनेवाले....** पहले की अवस्था का विनाश। **और बाद की (नवीन) अवस्था से उत्पन्न होनेवाले परिणामी गुणों में....** देखो। परिणामी गुणों में, आहाहा ! परिणामी कहते हैं न। भावगुण और पर्याय से, द्रव्य भी परिणमन करता है और गुण भी परिणमन करते हैं। परिणामी गुणों में, परमाणु में रंग-गन्ध-रस-स्पर्श की पर्याय गुण के परिणमन से करती है। शीतल का व्यय और उष्ण का उत्पाद। वह परमाणु अपने गुण से करता है। गुण से करता है अर्थात् अपनी शक्ति से करता है। शक्ति है न गुण ? वह द्रव्य शक्ति के परिणमन से शीतल का व्यय और उष्णता का उत्पाद हुआ। समझ में आया ?

आत्मा में चार ज्ञान की जो पर्याय है, उसका व्यय करके आत्मा केवलज्ञानरूप उत्पन्न होता है, वह अपने ज्ञान—द्रव्य, अपने ज्ञानगुण के परिणमन से ऐसा होता है। वह कहते हैं न ? नहीं। 'मोहक्षया' मोह का क्षय हुआ तो वीतरागता हुई, ऐसा कहो। अब सुन न ! ज्ञानावरणीय का क्षय हुआ तो केवलज्ञान हुआ, ऐसा है नहीं—यहाँ कहते हैं। ज्ञानावरणीय

कर्म तो पर है। उत्पाद–व्यय तो उसमें पर में होते हैं। वह यहाँ क्या उत्पन्न कर दे? लो! स्वामी कार्तिकेय में आता है। कल चर्चा हुई थी। बंशीधरजी के साथ सोमचन्दभाई को। देखो, पुद्गल की शक्ति! केवलज्ञान पर्याय को भी केवलज्ञानावरणीय रोकता है। ऐसा स्वामी कार्तिकेय में है। पुद्गल की कितनी शक्ति है। केवलज्ञान को केवलज्ञानावरणीय रोकता है। अरे! यह तो निमित्त का कथन है। पुद्गल के परमाणु की निमित्तरूप से उत्कृष्ट शक्ति की ऐसी पर्याय होती है, वह बतलाना है। केवलज्ञानावरणीय कर्म आत्मा को रोकता है और कर्म नाश हो तो ऐसी पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसा है नहीं। इसमें तो पूरा गोम्मटसार उड़ जाता है, ऐसा कहते हैं।

ज्ञानावरणीय कर्म से ज्ञान रुकता है, यह बात सत्य नहीं है। यह तो निमित्त का कथन है। यहाँ पुरुषार्थ से होता है तो वहाँ निमित्त में ऐसा होता है, ऐसा बतलाना है। निमित्त का ज्ञान कराना है। यहाँ, तो क्या कहते हैं, देखो न! ज्ञानावरणीय कर्म में जितना जड़ का क्षयोपशम हो, उतना आत्मा में ज्ञान का उघाड़ होता है, यह बात झूठ है। निमित्त कहो या व्यवहार कहो या उपचार कहो। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा अपनी केवलज्ञान पर्याय में द्रव्य की दृष्टि होने से ध्रुव का सत् स्वीकार करने से ध्रुव है, वह नया उत्पन्न नहीं होता और ध्रुव का नाश नहीं होता। ऐसी दृष्टि होने से ध्रुव अपने गुण ज्ञानरूप परिणमन करके केवलज्ञान उत्पन्न करता है। कहते हैं कि वज्रनाराचसंहनन है तो, मनुष्यदेह है तो केवलज्ञान हुआ है, ऐसा नहीं है। कोई कहे कि केवलज्ञान मनुष्य देह के अतिरिक्त क्यों नहीं होता? तिर्यंच में क्यों नहीं हुआ? देव में क्यों नहीं हुआ। क्यों नहीं हुआ, वह तो स्वयं की पर्याय की योग्यता नहीं थी तो नहीं होता। वहाँ भी अपनी पर्याय में उत्पन्न होता है तो होता है, मनुष्यदेह के कारण से नहीं। सूक्ष्म पड़े, बहुत सूक्ष्म पड़े। स्थूल दृष्टिवाले स्थूल दृष्टि। यह करो... यह करो... यह करो, ऐसा होता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि राग की पर्याय चाहे जितनी शुभ हो, शुभ। समझ में आया? परन्तु उस राग की पर्याय से धर्म की पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसा नहीं है। उस राग की पर्याय का नाश करनेवाला द्रव्य है। अपने आनन्द, शान्ति आदि वीतरागभाव का–गुणभाव का परिणमन करता है, तो पूर्व की राग की पर्याय का नाश होता है और वीतराग पर्याय की

उत्पत्ति होती है, ऐसी बात है, तो निमित्त से नहीं होता और व्यवहार से नहीं होता, यह दोनों सिद्ध हो गये। बराबर है इसमें ? ऐई ! तुम नामा लिखते थे न ?

परिणामी गुणों में पहले की पर्याय का विनाश और बाद की पर्याय की उत्पत्ति होती है। स्पष्टीकरण हो गया न, भावार्थ लिखा नहीं इसमें। न्याय आ गया न, न्याय आ गया। प्रत्येक द्रव्य अनन्त आत्मा और अनन्त परमाणु एक समय के काल की अवधि में जिस समय में उस गुण की पर्याय परिणमन करके पर्याय उत्पन्न हुई, उसी समय में पूर्व की पर्याय का व्यय हुआ। द्रव्य स्वयं गुण का परिणमन करने से हुआ है। दूसरी वस्तु के कारण से होता है, यह बात वस्तु की स्थिति में नहीं है। कहो, गुरु से ज्ञान होता है, यह बात यहाँ निषेध करते हैं। अरे ! लोग क्या बोलते हैं। श्रीमद् में आता है। ज्ञान तो गुरु से होता है। अज्ञानी से होता है ? यह तो निमित्त क्या था, वह बताते हैं। यह तो उसकी गुण पर्याय ज्ञानगुण है और द्रव्य स्वयं परिणमता है तो पर्याय में सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होता है। मिथ्याज्ञान के व्यय का नाश करनेवाला भी द्रव्य और उत्पन्न होनेवाला भी द्रव्य है। मस्तिष्क में बराबर पकड़ में नहीं आता, फिर परिणति भ्रमणा में पड़े। बाहर से होगा, बाहर से आ जायेगा।

मुमुक्षु : निमित्त की जरूरत तो पड़ती है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त की जरूरत कौन कहता है ? निमित्त कारण हो, उसमें कौन इनकार करता है ? परन्तु निमित्त है तो यहाँ हुआ है, ऐसा कौन कहता है ? सत्ता से तो अस्तित्व सिद्ध करते हैं। निमित्त का अस्तित्व है तो पर्याय की उत्पत्ति का अस्तित्व है, ऐसा कहते हैं ? परन्तु द्रव्य का और गुण का अस्तित्व है तो पर्याय का अस्तित्व उत्पन्न होता है। बस इतना है। समझ में आया ?

परमाणु में लो न, मिट्टी का पिण्ड है मिट्टी। मिट्टी में से मिट्टी अपने स्पर्श, वर्ण, गन्ध, रस पर्याय से परिणमन करके घट की पर्याय उत्पन्न होती है। पिण्ड की पर्याय का व्यय होता है। उसे परमाणु करते हैं। कुम्हार बिना ही सब जगह हुआ है। कुम्हार के अस्तित्व बिना अपने अस्तित्व से हुआ है। आहाहा ! यह महिलायें होशियार हों तो नहीं कहती कि हल्के हाथ से अनाज बहुत अच्छा होता है। नहीं कहते ? इस बाई का हाथ बहुत हल्का है। इसके हाथ से तो रसोई अच्छी ही होगी। लो ! यह सच्ची बात होगी ? आहाहा ! यह लोग

बातें करे। इस बाई का हाथ तो ऐसा हल्का। चावल भी अच्छे पकें। वह सेव नहीं होती सेव, सेव, सेव (नमकीन)। इसके हाथ से सेव भी अच्छे होते हैं। टूटे नहीं, ठीक से उतरे ठीक से। वे खाट में डालते हैं न? पाटिया खाट में डालते हैं। यह तो पहले की बात है। पहले तो खाट में डालते थे। खाट में पाटिया डाले न बड़ा? और फिर होशियार ऐसी कहलाये कि उसका डोरा टूटे भी नहीं। टूटक-टूटक करते-करते हो जाये उसका क्या? हाथ कुछ करता होगा या नहीं? आँधण में भी आँधण आता हो न, वह बराबर अच्छा करे। चावल चढ़े हों, चावल पाटिया में, परन्तु यदि ढक्कन में जरा वह आ जाये तो रांधण के साथ चावल भी थोड़े बह जायें। है या नहीं? यह ढक्कन ठीक से रखे और जरा पोली रखे, पानी तो निकलना चाहिए न? एकदम छुआकर रखे तो पानी न निकले। यह सब विचक्षणता होवे तो यहाँ रांधण होवे न?

मुमुक्षु : सबके अभिमान उड़ जाये ऐसी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। ठीक से आवे तो पूरा पाटिया पड़े नीचे। समझे न? कहीं-कहीं हाथ फिरा दे न ऐसे लिपट और पड़ा नीचे। चावल और मूँग की दाल नीचे।

यह तो जो पर्याय जहाँ स्वयं से होनी हो, उसे दूसरा कौन करे? आहाहा! ऐ, धर्मचन्दजी! यह तुम्हारे इंजैक्शन देना हो और ऐसे नाड़ी पकड़ते हैं या नहीं? ऐसे पकड़कर वह बराबर खड़ी होती है न? क्या कहलाती है वह? नर्स, नर्स। वह ऐसे करके यह नस और यह नस आयेगी।

मुमुक्षु : कितने ही इंजैक्शन नस में देने होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, नस में। परन्तु नस पकड़ना आवे तब उसे दे सके न? सब अज्ञानी की भ्रमणा है। प्रत्येक पदार्थ प्रत्येक समय में अपनी पर्याय में उत्पन्न होता है और पूर्व की पर्याय में व्यय / नाश होता है। (उसमें) द्रव्य का नाश नहीं और द्रव्य की उत्पत्ति नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा!

मैं दूसरे को समझा दूँ। कहो, पर की पर्याय का अभिमान है।

मुमुक्षु : तो वकालत कैसे चले?

पूज्य गुरुदेवश्री : वकालत कैसे चले ? देखो। दो सौ–दो सौ रुपये मुफ्त में दे वे ? जज को पानी भरावे न, तब कुछ समझावे। धूल भी नहीं, वह तो पैसा आनेवाला हो तो उसके कारण से आता है। उसमें कोई चतुराई काम नहीं करती। आहाहा ! भाषा की पर्याय ऐसी हो कि उसमें अपनी ज्ञान पर्याय उसमें क्या काम करे ? भाषा की पर्याय तो अपने से अपने परमाणु से उत्पन्न हुई है। और पूर्व की पर्याय जो वर्गणारूप थी, उसका व्यय हुआ है, वह परमाणु के कारण से हुआ है। आत्मा के कारण से भाषा उत्पन्न हुई है, ऐसा तीन काल में नहीं है। समझ में आया ? १५वीं गाथा में तो बहुत बात है। '**गुण पर्यायेषु भावा**' '**पकुवन्ति**' अपने उत्पाद और व्यय वह द्रव्य और गुण करता है। दूसरा नहीं करता, यह इसमें आ जाता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

गाथा - १६

भावा जीवादीया जीवगुणा चेदणा य उवओगो।
सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा।।१६।।

भावा जीवाद्या जीवगुणाश्चेतना चोपयोग:।
सुरनरनारकतिर्यञ्चो जीवस्य च पर्याया: बहव:।।१६।।

अत्र भावगुणपर्याया: प्रज्ञापिता:।

भावा हि जीवादय: षट् पदार्था:। तेषां गुणा: पर्यायाश्च प्रसिद्धा:। तथापि जीवस्य वक्ष्यमाणोदाहरणप्रसिद्ध्यर्थमभिधीयन्ते। गुणा हि जीवस्य ज्ञानानुभूतिलक्षणा शुद्धचेतना, कार्यानुभूतिलक्षणा कर्मफलानुभूतिलक्षणा चाशुद्धचेतना, चैतन्यानुविधायिपरिणामलक्षण: सविकल्पनिर्विकल्परूप: शुद्धाशुद्धतया सकलविकलतां दधानो द्वेधोपयोगश्च। पर्यायास्त्व-गुरुलघुगुणहानिवृद्धिनिर्वृत्ता: शुद्धा:, सूत्रोपात्तास्तु सुरनारकतिर्यङ्मनुष्यलक्षणा: परद्रव्यसम्बन्ध-निर्वृत्तत्वादशुद्धाश्चेति।।१६।।

जीवादि ये सब भाव हैं जिय चेतना उपयोगमय।
देव–नारक–मनुज–तिर्यक् जीव की पर्याय हैं।।१६।।

अन्वयार्थ :– [जीवाद्या:]जीवादि (द्रव्य)वे [भावा:]'भाव' हैं। [जीवगुणा:] जीव के गुण [चेतना च उपयोग:]चेतना तथा उपयोग हैं [च]और [जीवस्य पर्याया:] जीव की पर्यायें [सुरनरनारकतिर्यंच:] देव–मनुष्य–नारक–तिर्यंचरूप [बहव:] अनेक हैं।

टीका :– यहाँ भावों (द्रव्यों), गुणों और पर्यायें बतलाते हैं।

जीवादि छह पदार्थ वे 'भाव' हैं। उनके गुण और पर्यायें प्रसिद्ध हैं, तथापि [1]आगे (अगली गाथा में) जो उदाहरण देना है, उसकी प्रसिद्धि के हेतु जीव के गुणों और पर्यायों का कथन किया जाता है :–

---

१. अगली गाथा में जीव की बात उदाहरण के रूप में लेना है, इसलिए उस उदाहरण को प्रसिद्ध करने के लिये यहाँ जीव के गुणों और पर्यायों का कथन किया गया है।

जीव के गुणों [1]ज्ञानानुभूतिस्वरूप शुद्धचेतना तथा कार्यानुभूतिस्वरूप और कर्मफलानुभूतिस्वरूप अशुद्धचेतना है और [2]चैतन्यानुविधायी-परिणामस्वरूप, सविकल्प-निर्विकल्परूप, शुद्धता-अशुद्धता के कारण सकलता-विकलता धारण करनेवाला, दो प्रकार का उपयोग है (अर्थात् जीव के *गुणों शुद्ध-अशुद्ध चेतना तथा दो प्रकार के उपयोग हैं)।

जीव की पर्यायें इस प्रकार हैं :- अगुरुलघुगुण की हानि-वृद्धि से उत्पन्न पर्यायें शुद्ध पर्यायें हैं और सूत्र में (-इस गाथा में) कही हुई, देव-नारक-तिर्यंच-मनुष्यस्वरूप पर्यायें परद्रव्य के सम्बन्ध से उत्पन्न होती है, इसलिए अशुद्ध पर्यायें हैं।।१६।।

धारावाही प्रवचन नं. २४ (प्रवचन नं. २३), गाथा-१६
दिनांक - ०७-१२-१९६९, कार्तिक कृष्ण १३, रविवार

इसमें द्रव्य, गुण और पर्याय की व्याख्या है। प्रत्येक वस्तु क्या है और उसके गुण क्या हैं और उसकी पर्याय क्या है, उसे सिद्ध करने के लिये जीव का दृष्टान्त देते हैं। जीव का तो उदाहरणरूप से देंगे। परन्तु सब छह द्रव्य भगवान ने देखे, केवली परमात्मा ने जाति से (छह), संख्या से अनन्त वस्तुएँ जगत में देखी हैं। उन अनन्त वस्तुओं में द्रव्य का स्वरूप क्या है ? गुण का (स्वरूप क्या है) ? यहाँ गुण की पर्याय लेंगे। पर्याय व्यंजनपर्याय को यहाँ पर्याय में उसे मनुष्य आदि गिनकर। आहाहा ! यह तो स्वभाव पर्याय मूल पाठ में मनुष्य, देवादि की पर्याय ली है। १६वीं गाथा, देखो !

---

१. शुद्धचेतना ज्ञान की अनुभूतिस्वरूप है और अशुद्धचेतना कर्म की तथा कर्मफल की अनुभूतिस्वरूप है।

२. चैतन्य-अनुविधायी परिणाम अर्थात् चैतन्य का अनुसरण करनेवाला परिणाम वह उपयोग है। सविकल्प उपयोग को ज्ञान और निर्विकल्प उपयोग को दर्शन कहा जाता है। ज्ञानोपयोग के भेदों में से मात्र केवलज्ञान ही शुद्ध होने से सकल (अखण्ड, परिपूर्ण) है और अन्य सब अशुद्ध होने से विकल (खण्डित, अपूर्ण) है; दर्शनोपयोग के भेदों में से मात्र केवलदर्शन ही शुद्ध होने से सकल है और अन्य सब अशुद्ध होने से विकल हैं।

*** पर्यायार्थिकनय से गुण भी परिणामी हैं। (देखिये, १५ वीं गाथा की टीका।)**

भावा जीवादीया जीवगुणा चेदणा य उवओगो।
सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा।।१६।।

नीचे हरिगीत —

जीवादि ये सब भाव हैं जिय चेतना उपयोगमय।
देव-नारक-मनुज-तिर्यक् जीव की पर्याय हैं॥१६॥

व्यंजनपर्याय ली है। फिर तो (कोष्टक में) अगुरुलघु निकाल डाली आगे, अन्दर से।

टीका :- यहाँ भावों (-द्रव्यों) गुणों और पर्यायें बतलाये हैं। इस जगत में द्रव्य किसे कहना? गुण किसे कहना और पर्याय (किसे कहना)? **जीवादि छह पदार्थ वे 'भाव' हैं।** जीव, अनन्त पुद्‌गल अनन्त जीव एक आकाश, एक धर्मास्ति, (एक) अधर्मास्ति और असंख्य कालाणु। इन छह द्रव्यों को भाव कहा है। छह भाव हैं। उसमें कहा था न? पन्द्रहवीं में आया था। **'भावा गुणपर्यायेषु उत्पादव्ययं प्रकुर्वन्ति।'**

वस्तु जो है, वह अपनी गुण-पर्याय में उपजती है। प्रत्येक वस्तु है, वह उसकी गुण -पर्याय को उत्पन्न करती है और करती है। आत्मा के अतिरिक्त आत्मा पर के रजकण या शरीर आदि की किसी भी पर्याय को तीन काल में नहीं कर सकता। समझ में आया? और परमाणु एक है। पॉइन्ट। वह भी उसके गुण और पर्याय को 'प्रकुर्वन्ति' उत्पाद-व्यय को करे परन्तु वह परमाणु आत्मा की किसी भी पर्याय को-क्रिया को करे, ऐसा नहीं है।

कहते हैं, वे छह द्रव्य उनके गुण और पर्यायें तो प्रसिद्ध हैं। **तथापि आगे (अगली गाथा में) जो उदाहरण देना है (जीव का) उसकी प्रसिद्धि के हेतु जीव के गुणों और पर्यायों का कथन किया जाता है।** अब **जीव के गुणों ज्ञानानुभूतिस्वरूप शुद्धचेतना....** क्या कहा? कि आत्मा के शुद्ध गुण की पर्याय वह आत्मा ज्ञानस्वरूप से शुद्धरूप से अनुभूति, ज्ञान के अनुभवरूप परिणमे, वह जीव के गुण कहे जाते हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है। उसमें ज्ञानानुभूति, उस ज्ञान का अनुभव होना, उसे यहाँ ज्ञान की शुद्ध चेतना कहा जाता है, कि जो धर्म है। समझ में आया? यह देहादि की क्रिया, वह तो देह-जड़ की पर्याय है। वह कहीं धर्म नहीं तथा आत्मा में पुण्य—दया, दान, व्रत आदि के परिणाम का होना, वह तो कर्मचेतना अशुद्धभाव है। वह कहीं धर्म नहीं है।

अरे! समझ में आता है न? यह तो गुजराती चलता है। रविवार है न?

आत्मा में तो ज्ञान और आनन्द है। उस ज्ञान के स्वभावरूप परिणमना, उस आनन्द और ज्ञान के स्वरूपरूप अवस्था में होना, उसे जीव का गुण और जीव का कार्य और जीव का स्वरूप कहा जाता है। कहो, समझ में आया? जीव के गुण ज्ञानानुभूति नीचे है एकड़ा— **शुद्धचेतना ज्ञान की अनुभूति स्वरूप है....** और अब फिर कहेंगे दूसरी बात— **अशुद्धचेतना कर्म की तथा कर्मफल की अनुभूति-स्वरूप है।** बहुत ही संक्षिप्त में पूरे शब्द और सिद्धान्त—भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का भण्डार भगवान स्वभाव से भरपूर चीज़ है। उसकी वर्तमान दशा में उस ज्ञान और आनन्द को अनुसरकर जो ज्ञान का परिणमना, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं, उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं। तीनों मिलकर शुद्धचेतना एक कहते हैं। समझ में आया?

आत्मा अपना ज्ञानस्वभाव और आनन्दस्वभाव, उसरूप परिणमे, किसी पररूप परिणमता नहीं। फिर कहेंगे कि रागरूप परिणमे, वह कार्य राग का है। वह आत्मा की अनुभूति का कार्य नहीं है। समझ में आया? जीव के गुण ज्ञानानुभूति। वस्तु चिदानन्दस्वरूप अपना, उसे अनुसरकर अन्तर्मुख होकर उस ज्ञान के आनन्दरूप, ज्ञान की शान्तिरूप, ज्ञान के ज्ञानरूप अनुभूति-अनुभव होना, उसे शुद्ध चेतना जीव का गुण है, ऐसा कहा जाता है। है तो पर्याय परन्तु उसका वह गुण है। विकार भी उसका गुण है। समझ में आया? कुछ भी पर का कार्य करना, वह तो आत्मा में है ही नहीं। परन्तु आत्मा रागादिरूप हो, वह भी धर्म का कार्य नहीं, ऐसा कहते हैं। महाव्रत के परिणाम, दया-दान के अहिंसा, सत्य, अचौर्य के भाव, वे कहीं आत्मानुभूति नहीं है। वह तो राग का अनुभव है। राग का अनुभव है, वह धर्म नहीं, वह अधर्म है। क्या परमाणु है? अरे पंच महाव्रत तो लोग लेते हैं, अंगीकार करते हैं। पंच महाव्रत पालो, पंच महाव्रत पालो। आहाहा! हाँ, ऐसा कहते हैं कि भगवान ने २८ मूलगुण पालन किये थे। कुन्दकुन्दाचार्य ने पालन किये थे। बापू! वह तो व्यवहारनय के शास्त्रों में, वह दशा थी, उसे बतलाते हैं। बाकी जानना, ऐसा विकल्प भी है, वह विकल्प है, वह राग है कर्मानुभूति चेतना। उस राग के अनुभव का चेतन है वह। आत्मा के अनुभव का चेतन नहीं। आहाहा!

जो अन्तर में है, उसका परिणमन होना, इसका नाम ज्ञानानुभूति है। राग—दया, दान के विकल्प वह अन्तर वस्तु में नहीं है। समझ में आया? भगवान आत्मा शरीर, वाणी और मन को तो परिणमित कर नहीं सकता। उसरूप परिणमे अर्थात् हो नहीं। उसरूप हो नहीं। क्योंकि वह कहीं जीव का गुण नहीं है। परन्तु आत्मा रागरूप हो, वह कहीं आत्मा की शुद्ध अनुभूति का धर्म नहीं। आहाहा! विकल्प जो उठता है, अहिंसा सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, (वह) मैं पालन करूँ, यह सत्य बोलूँ, अहिंसा, विकल्प, यह तो राग है। यह रागानुभूति, वह आत्मानुभूति नहीं। धर्म का अनुभव नहीं।

शुद्ध **ज्ञानानुभूतिस्वरूप शुद्धचेतना....** ऐसी भाषा ली है न? तथा **कार्यानुभूतिस्वरूप** अर्थात् क्या? कार्य-अनुभूतिस्वरूप। जो महाव्रत के और मुनि हैं, नग्नमुनि, उन्हें २८ मूलगुण होते हैं। २८ मूलगुण—पाँच महाव्रत, छह आवश्यक आदि क्रिया का जो शुभभाव, वह कार्य है। उस राग के कार्य का अनुभवस्वरूप, वह अशुद्ध चेतना है। समझ में आया? राग, जो राग है और विकल्प उठता है (कि) पर को दुःख न दूँ, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य (पालन करूँ), वह भी एक शुभराग है। वह कार्यानुभूति है। उस रागरूपी कार्य का अनुभव है। वह अशुद्ध चेतना है; वह धर्मचेतना नहीं। आहाहा! यहाँ तो क्या कहते हैं कि उसरूप हो सकता है। परन्तु कहीं शरीर और पर की पर्यायरूप नहीं हो सकता। ऐसा कहते हैं। या ज्ञानानुभूतिरूप हो सकता है या राग के कार्यरूप हो सकता है। उल्टी अवस्था से हो सकता है। यह उसका कार्य है। परन्तु पर का कार्य है, और वह कार्य है, इसलिए धर्म है, ऐसा नहीं है। गजब, भाई! समझ में आया?

यह तो कहे हिंसा, झूठ, चोरी छोड़ दो। अहिंसा, सत्य, अचौर्य अंगीकार करो। यहाँ तो कहते हैं, अहिंसा, सत्य, अचौर्य भी राग है, वह कार्य है, वह राग का कार्य है; वह आत्मा का कार्य नहीं। आहाहा! **कार्यानुभूतिस्वरूप और कर्मफलानुभूतिस्वरूप....** और उस राग का वेदन होना हर्षरूप से या शोकपने का वेदन होना, वह **कर्मफलानुभूतिस्वरूप....** है। पहले कर्मचेतना कही कार्य में; दूसरे में कर्मफलचेतना (कही), कर्म अर्थात् यहाँ जड़ की बात नहीं है। जड़रूप परिणमे और जड़ को आत्मा करे और कर्म को बाँधे, यह तो आत्मा में है ही नहीं। यह तो कर्म की पर्याय कर्म से होती है, आत्मा से नहीं होती। अज्ञान

में रागरूपी कार्य का अनुभव करे या राग को कार्यरूप करे। इसरूप आत्मा अधर्म भी अपनी पर्याय में करता है। वह अधर्म कहीं बाहर नहीं होता। संसारदशा, वह कहीं आत्मा की पर्याय से बाहर नहीं होती दशा। समझ में आया?

लोग कहते हैं कि संसार छोड़ो। अर्थात् क्या परन्तु? संसार कोई स्त्री, पुत्र, परिवार में या मकान में रहता है कि छोड़ना? संसार इसकी दशा में जो मिथ्यात्वभाव है – राग मेरा कर्तव्य है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह संसार है। उसे छोड़ा, वह संसार छोड़ा कहा जाता है। संसार और मोक्ष, वह आत्मा की पर्याय / दशा में है। संसार और मोक्ष, वह कहीं आत्मा की पर्याय छोड़कर पर में नहीं है। समझ में आया? तो यह 'कार्यानुभूति', वह संसार है। राग—दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प का अनुभव, वह संसारदशा है। वह अशुद्ध चेतना है, वह उदयभाव का वेदन है। भारी सूक्ष्म! समझ में आया? ऐ शान्तिभाई! क्या परन्तु यह सब वे पंच महाव्रत पाले बेचारे। कार्यानुभूति डाला। हें! कार्य करता है सही न, उसका अनुभव सही, परन्तु वह राग का अनुभव है। अशुद्धचेतना, ऐसा। या ज्ञानचेतना-शुद्धचेतनारूप होवे या अशुद्धचेतनारूप हो, वह सब इसमें है। इसका होना पर के कारण नहीं और इसके कारण पर में कुछ होना, ऐसा कुछ है नहीं। यह सिद्ध करना है। समझ में आया? **कार्यानुभूतिस्वरूप और कर्मफलानुभूतिस्वरूप अशुद्धचेतना है।** उसे यहाँ गुण कहा है। समझमें आया?

अब उस पर्याय उपयोग की बात चलती है। उपयोग दूसरा बोल है न? जीव के गुण वे चेतना और उपयोग। **चैतन्यानुविधायी-परिणामस्वरूप,....** नीचे दो (अंक) है। **चैतन्य-अनुविधायी परिणाम अर्थात् चैतन्य का अनुसरण करनेवाला परिणाम, वह उपयोग है।** अर्थात् क्या कि जो भगवान आत्मा चैतन्यगुण है, उसे अनुसरकर होते परिणाम। चाहे तो ज्ञान के हो, चाहे तो अज्ञान के हो, परन्तु वह चैतन्य को अनुसरकर परिणाम हो, उसे उपयोग कहा जाता है। विस्तार होगा, तब समझ में आयेगा, ऐसे समझ में आये, ऐसा नहीं है।

अपने तो यहाँ चैतन्य के अनुविधायी परिणामस्वरूप। नीचे आया न, **चैतन्य-अनुविधायी परिणाम अर्थात् चैतन्य का अनुसरण करनेवाला परिणाम, वह उपयोग**

है। दूसरा स्पष्टीकरण फिर आयेगा। **सविकल्प-निर्विकल्परूप, शुद्धता-अशुद्धता के कारण सकलता-विकलता धारण करनेवाला दो प्रकार का उपयोग है। (अर्थात् जीव के गुणों शुद्ध-अशुद्ध चेतना तथा दो प्रकार के उपयोग हैं।)** लो! वहाँ भी गुण शुद्धचेतना दो प्रकार के उपयोग गुणों में डाला है न? पर्याय तो उसमें डालेंगे। स्थूल नारकी आदि में।

फिर से, यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है। यह ज्ञानस्वरूप परिणमे और उसमें स्थिर हो, वह शुद्धचेतनारूपी धर्म की दशा कही जाती है। और वह राग और द्वेषरूप के कार्यरूप कर्मचेतना, कर्म अर्थात् राग कार्य। वह राग कार्य, हों! कर्मचेतना जड़ का यहाँ काम नहीं। शुभ-अशुभराग, उसमें आत्मा वेदन हो, वह कार्य करे, वह कार्य की अनुभूति, वह अशुद्धचेतना-अधर्मचेतना है। और हर्ष-शोक का वेदन हर्ष-शोक, वह अपनी पर्याय में यह जो राग-द्वेष के जो भाव कार्यरूप है, उसके फलरूप से हर्ष-शोक का वेदन, वह कर्मफल की अनुभूति, वह कार्य और कर्मफल की अनुभूति दो होकर अशुद्धचेतना है। वह अधर्मचेतना है। विभाव चेतना है। समझ में आया? सबके सामने पुस्तक है या नहीं?

अब कहते हैं—यहाँ तो पहले इतना लेना है। यह तीन बातें हो गयीं। **चैतन्यानुविधायी-परिणामस्वरूप,....** अब यह चैतन्य अनुविधायी परिणाम में विशिष्टता क्या है? कि चाहे तो आत्मा में केवलज्ञान हो या केवलदर्शन हो, वह शुद्धचेतना अनुविधायी परिणाम है। और आत्मा में मति-श्रुतज्ञान और अवधि, मनःपर्ययज्ञान हो, वह चैतन्य अनुविधायी परिणाम अशुद्धचेतना है। और आत्मा में मति-श्रुत और अवधि मिथ्यारूप हो, वह भी चैतन्य अनुविधायी परिणाम जीव के परिणाम स्वयं से होते हैं। दूसरे से नहीं। समझ में आया? कोई कहे कि हमें सुनने से मति-श्रुतज्ञान की पर्याय हुई, तो यहाँ इनकार करते हैं। ऐसा नहीं है। अज्ञान हुआ मति-श्रुत और अवधि / विभंग, वह भी चैतन्य को अनुसरकर अपनी पर्याय की जाति गुण की है। वह कहीं पर के कारण हुई है, (ऐसा नहीं है।) मतिज्ञानावरणीय के क्षयोपशम के कारण मतिज्ञान के परिणाम हुए, ऐसा नहीं है। इसी तरह श्रुतज्ञानावरणीय का कर्म क्षयोपशम हुआ, इसलिए यहाँ श्रुतज्ञान के परिणाम हुए, ऐसा नहीं है। चैतन्य अनुविधायी परिणाम। कहो, समझ में आया?

यह पाँच इन्द्रियों को अनुसरकर ज्ञान का बोध सच्चा होता है, यह बात सत्य नहीं है, ऐसा कहते हैं। भले अज्ञान के परिणाम हो या सम्यग्ज्ञान के हो, अपूर्ण ज्ञान के या पूर्ण ज्ञान के परिणाम हो, वे चैतन्य वस्तु जो है, उसे अनुसरकर उसका परिणमन उसकी पर्याय में है। आहाहा! समझ में आया? शास्त्र बहुत वाँचन करे-पढ़े तो उसमें चैतन्य के परिणाम होते हैं, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। यह चैतन्य अनुविधायी—चैतन्य को अनुसरता परिणाम है उपयोग। उस उपयोग के बारह भेद। पाँच ज्ञान, तीन अज्ञान, चार दर्शन—यह बारह उपयोग है। यह बारह ही उपयोग चैतन्य को अनुसरकर होते हैं। यह इन्द्रिय को अनुसरकर, मन को अनुसरकर और कर्म के उघाड़ को अनुसरकर (होते हैं), ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो सर्वत्र कर्म की लगायी है न? कर्मवाला कहते हैं कि ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम हो तो ज्ञान उघड़े। ज्ञानावरणीय का उदय हो तो ज्ञान हीन पड़े। अब यहाँ तो इनकार करते हैं, ऐसा है ही नहीं। तेरी बात ही झूठी है। तेरी दृष्टि में मिथ्याभ्रम है। तेरे बारह उपयोग के या किसी भी उपयोग के परिणाम पर को अनुसरकर होते हैं, ऐसा स्वभाव है नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

यह चैतन्य अनुविधायी परिणाम, वह तो परिणाम है न? पर्याय है न? उसे यहाँ गुण ही कहा है। **सविकल्प-निर्विकल्परूप,....** उस परिणाम के दो भेद। सविकल्प अर्थात् ज्ञान, निर्विकल्प अर्थात् दर्शन। दो भेद। पहले एक लिया—चैतन्य अनुविधायी परिणाम, एक भाव लिया। एक भाव के दो—सविकल्परूप एक ज्ञानरूप और निर्विकल्प दर्शनरूप। उसके दो भेद। **शुद्धता-अशुद्धता के कारण सकलता-विकलता धारण करनेवाला दो प्रकार का उपयोग है।** शुद्धता-अशुद्धता के कारण सकलता-विकलता धरता अर्थात् सकल अर्थात् केवलज्ञान और केवलदर्शन तथा विकलता अर्थात् चार ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शन। गजब! भाई!

मुमुक्षु : कठिन पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन कुछ पड़े, धीरे-धीरे तो कहा जाता है। यह कहीं एकदम प्रोफेसर की तरह कहीं नहीं चला जाता।

देखो, नीचे दूसरे (नम्बर) में स्पष्टीकरण है। सविकल्प उपयोग को ज्ञान और

निर्विकल्प उपयोग को दर्शन कहा जाता है। आत्मा में ज्ञान जो होता है, वह सविकल्प है। सविकल्प अर्थात् स्व-पर को जानने की दशा के भाव को सविकल्प कहा जाता है। सविकल्प अर्थात् कहीं राग का विकल्प, वह नहीं। जैसे पंच महाव्रत का विकल्प है, वह राग है। वह यह नहीं। परन्तु ज्ञान जो अपना भाव है, वह स्व और पर को दोनों को जानता है, इस अपेक्षा से उसे सविकल्प साकारवाला कहा जाता है। निर्विकल्प उपयोग, वह दर्शन और जो दर्शनोपयोग है—चक्षु, अचक्षु, अवधि वह निर्विकल्प है, उसमें स्व और पर को जानने का भाव नहीं है। मात्र दर्शनोपयोग अस्तित्व धराता है। वह दर्शन कहीं स्व और पर को जाने, ऐसा उसका स्वभाव नहीं है। इसलिए उस दर्शनोपयोग को निर्विकल्प स्व-पर के भेद पाड़े बिना का जो अकेला अभेद है, उसे निर्विकल्प उपयोग कहा जाता है।

इसमें रात्रि में याद न रहे, ऐसा है? हें! बहुत नहीं रहे ऐसा, बहुत उत्साह नहीं आता। परन्तु यहाँ तो सादी बातचीत चलती है। यह आत्मा है या नहीं? वस्तु है? उसमें ज्ञान और दर्शनशक्ति त्रिकाली है या नहीं? है, तो उसका वर्तमान परिणमन है या नहीं? गुण का परिणमन होता है या नहीं? गुण की पर्याय होती है या नहीं? वह गुण की पर्याय अर्थात् वह ज्ञान की जो पर्याय है, उसे सविकल्प कहते हैं। सविकल्प क्यों? कि स्व-पर को जानती है इसलिए (सविकल्प है)। राग है, इसलिए सविकल्प, ऐसा नहीं है। और जो दर्शन है, उसका परिणमन हो, चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शनरूप, वह निर्विकल्प है। निर्विकल्प अर्थात् अपनी अस्तित्वता धराता है। परन्तु वह नहीं जानता अपने को, नहीं जानता पर को। इस अपेक्षा से चार उपयोग को निर्विकल्प कहा गया है। रागरहित है, इसलिए निर्विकल्प, यह अभी यहाँ बात नहीं है। कठिन बात भाई!

यह द्रव्य-गुण-पर्याय का बड़ा घोटाला है न? यह बात वीतरागमार्ग के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। वीतरागमार्ग में भी अभी तो गड़बड़ उठी है। समझ में आया? लो, चिमनभाई आये हैं वहाँ? पीछे बैठे हैं। कहो, समझ में आया? **ज्ञानोपयोग के भेदों में से मात्र केवलज्ञान ही शुद्ध होने से सकल है।** है न उसमें? सकल शुद्धता अशुद्धता के कारण सकलता। सकलता अर्थात् केवलज्ञान और केवलदर्शन को सकल कहा जाता है। सकल अर्थात् अखण्ड; सकल अर्थात् पूरा; सकल अर्थात् परिपूर्ण। आहा! भगवान

आत्मा केवलज्ञानरूप से परिणमे, वह चैतन्य को अनुसरकर है। केवलज्ञान कहीं व्रजनाराचसंहनन है और इसलिए केवलज्ञान होता है ? मनुष्यदेह है, इसलिए होता है ? तो कहते हैं, नहीं। यह तो अन्तर भगवान आत्मा में केवल अर्थात् अकेला ज्ञानगुण पड़ा है, उसे अनुसरकर परिणाम हों, उसे केवलज्ञान सविकल्प सकल अखण्ड परिपूर्ण कहा जाता है।

सकल अर्थात् अन्दर आया न, अखण्ड परिपूर्ण। सकल पूरा। सकल अर्थात् पूरा। सकल नहीं कहते ? सकल मनुष्य आये। सकल संघ। समझ में आया ? केवलज्ञान की परिपूर्ण पर्याय प्रगट हुई। विशिष्टता तो यह कहते हैं कि वह केवलज्ञान की पर्याय जो प्रगट होती है, वह कहीं विकल्प था, इसलिए हुई—ऐसा नहीं है, व्रजनाराचसंहनन और मनुष्यदेह था, इसलिए नहीं। परन्तु चार ज्ञान की पूर्व की पर्याय थी, इसलिए केवलज्ञान हुआ—ऐसा नहीं है। वह केवलज्ञान चैतन्य को अनुसरकर होनेवाला केवलज्ञान सकल अखण्ड पर्याय है। आहाहा ! समझ में आया ? हिम्मतभाई ! यह तो समझ में आये ऐसा है। भाषा तो बहुत सादी आती है। हाँ, सकल अर्थात् केवलज्ञान शुद्ध। समझ में आया ? अखण्ड परिपूर्ण है।

केवलज्ञान के परिणाम, वे परिणाम हैं। केवलज्ञान, वह परिणाम है। केवलज्ञान, वह त्रिकाली गुण नहीं है। वह केवलज्ञान एक समय में रहता है। दूसरे समय केवलज्ञान दूसरा, तीसरे समय केवलज्ञान तीसरा। परन्तु वह केवलज्ञान पूर्व की पर्याय है, इसलिए केवलज्ञान होता है, ऐसा नहीं है – ऐसा कहते हैं। यह पूर्वपर्याय केवलज्ञान की थी इसलिए दूसरी पर्याय में केवलज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। अन्दर द्रव्य और ज्ञानगुण को अनुसरकर सकल अखण्ड परिपूर्ण केवलज्ञान परिणाम होता है। आहाहा ! समझ में आया या नहीं ?

ऐसे तो बहुत सिद्धान्त स्पष्ट किये हैं। निमित्त से होता है और राग से होता है और यह पूर्व की पर्याय चलती है, इसलिए होता है, सब बातें यहाँ उड़ा दी हैं। मोक्षमार्ग की पर्याय है, तो मोक्ष होता है। हाँ, कारण कहलाता है या नहीं ? मोक्षमार्ग कहलाता है या नहीं ? तो मोक्षमार्ग कारण है और केवलज्ञान, वह कार्य है। यहाँ इनकार करते हैं। वह तो व्यवहार की बात की। मोक्षमार्ग जो है आत्मा की शुद्ध श्रद्धा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। वह मार्ग है, इसलिए केवलज्ञानरूपी मोक्षदशा होती है, ऐसा नहीं है। वह मोक्ष की जो

केवलदशा है, वह चैतन्य को अनुसरकर अनुविधायी परिणाम के केवलज्ञान परिणाम है। समझ में आया या नहीं इसमें?

जो स्वतन्त्र पर्याय चैतन्य को अनुसरकर होती है। पूर्व की पर्याय के कारण नहीं, निमित्त के कारण तो नहीं, विकल्प के कारण-निमित्त के कारण तो नहीं। आहा! ऐसा उसका स्वरूप है, इस प्रकार उसे द्रव्य-गुण-पर्याय श्रद्धा में बराबर न आवे और विपरीतता कहीं माने तो उसका मिथ्यादर्शन शल्य नहीं जाता। समझ में आया? सकल का आया।

और अन्य सब अशुद्ध होने से विकल (खण्डित, अपूर्ण) हैं;.... कौन अशुद्ध? मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय, ये चार हैं, वे अशुद्ध हैं, विकल हैं, खण्डित हैं और अपूर्ण हैं। वे भी भले खण्डित हो, अशुद्ध हो। समझ में आया? परन्तु वे होते हैं चैतन्य को अनुसरकर। पर को अनुसरकर किसी ने मिथ्याश्रद्धा करायी, इसलिए यहाँ मिथ्याज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। क्या करें (ऐसा) भगवानलाल सेठ बहुत बोलते हैं। क्या करें परन्तु हमें ऐसा अभी तक मिला नहीं था। वे तो ऐसा कहते हैं। तुम्हारी योग्यता भी ऐसी (थी तो) तुम्हारे कारण हुआ है या किसी के कारण हुआ है? भगवानलाल है और शोभालाल आज गये। उनके बड़े भाई मुख्य हैं और वहाँ तो वे बुन्देलखण्ड के बादशाह कहलाते हैं। बहुत इज्जतदार। वह तो बारम्बार कहते हैं, अभी तक हमें यह मिला। उदाररूप से पैसा बहुत खर्च किया। वह उदारता नहीं। यहाँ अन्तर में जो ज्ञान का प्रवाह बहे, उसे उदारता कहते हैं।

भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति, उसकी ज्ञान की पर्याय में एकाग्र होकर प्रवाह प्रगट हो, वह ज्ञान की उदारता है। पैसा-बैसा की उदारता तो अभव्य भी अनन्त बार (करता है)। राग को मन्द करें तो लोक में उदारता कहलाती है। यह उदारता कहाँ? उदारता के पीछे वापस कंजुसाई आवे, वह उदारता कहलाये? अपने समयसार में आ गया था। धीर, उदार, निरुपधि तीन बोल आये थे न? भगवान आत्मा का ज्ञान सर्वज्ञपद पर्याय धीर है, उदार है। वह पर्याय प्रवाह चला ही करता है, चला ही करता है। अन्दर चैतन्य का पूर है, उसका प्रवाह अवस्था में चला ही करती है। कम नहीं होता। वह प्रवाह एक समय में पूरी पर्याय, दूसरे समय में पूरी, तीसरे समय में पूरी। ऐसी पर्याय ज्ञान को अनुसरकर हुआ ही

करे, ऐसा आत्मा उदार ज्ञान में है। समझ में आया? उसमें पर के कारण आत्मा का हो और आत्मा पर का कुछ करे, इस बात की बात को तो छोड़ दिया। यह तो बात पर का प्रकुर्वन्ति नहीं। अपने उत्पाद-व्यय को करे। पर का सब उड़ा दिया। हाँ, शरीर, वाणी का संचालक कोई हो तो हिलें या ऐसे के ऐसे हिलता होगा। श्रीमद् भी कहते हैं, नहीं? 'होय न चेतन प्रेरणा कोण ग्रहे सो कर्म।' यह तो और वहाँ दूसरा। चैतन्य की सत्ता द्वारा चित्त प्रवर्ते जान। आता है या नहीं? आवे वह तो निमित्त से कथन है। प्रवृत्ति कौन करे?

एक परमाणु भी ऐसे चले या स्थिर रहे, वह आत्मा का बिल्कुल कार्य नहीं है। अज्ञानी दृष्टि में मिथ्या भ्रमणा के कारण मूढ़ता को सेवन करता हुआ जड़ की पर्याय मैं करता हूँ, (ऐसा) मानता है। आहाहा! समझ में आया? भगवान के सामने ऐसे भगवान की स्तुति करे। यह हाथ जोड़ने की क्रिया मैंने की, मुझसे हुई है, (ऐसा माने वह) बिल्कुल भ्रमणा और अज्ञान है। मिथ्यात्व और महा असत् वे झूठे बोल, झूठे भाव को सेवन करता है। समझ में आया? हमारे गाँव में एक झूठाबोला है। झूठाबोला बीड़ीवाला। झूठाबोला था, भगवानभाई! अटक-प्रागजीभाई मूलजीभाई-मूलचन्द। यह कहते हैं कि झूठाबोला! तेरी पहिचान झूठाबोला की हो गयी है। कहते हैं, मैंने हाथ जोड़े न? मैंने हाथ ऐसे किये न? बापू! तूने किया तू तो तेरी दशा में है। तेरी सत्ता में वह सत्ता यहाँ आ गयी है कि उसको ऐसा करे? मधुभाई! क्या होगा यह? वकील है न इसलिए। कहो, समझ में आया? ओहोहो!

चैतन्य अनुविधायी परिणाम उपयोगो। गजब काम किया है। भाई! तेरी ज्ञान की पाँच पर्याय—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ये चार पर्यायें भी तेरे चैतन्यगुण को अनुसरकर हुई है। भले अशुद्ध है, भले अधूरी है, भले विकल है, भले खण्ड है परन्तु है तो तेरी पर्याय, तुझसे हुई है। वहाँ मतिज्ञान का जोर है, इसलिए खण्ड पड़ा, मतिज्ञान कम हुआ है, ऐसा नहीं। समझ में आया? भूधरजीभाई! कठिन काम, भाई!

और अन्य सब अशुद्ध होने से विकल (खण्डित, अपूर्ण) हैं; दर्शनोपयोग के भेदों में से मात्र केवलदर्शन ही शुद्ध होने से सकल है.... कहा न उसमें। सकलता, विकलता धरता, सकलता में केवलज्ञान और केवलदर्शन, विकलता में चार ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शन। चार ज्ञान और तीन अज्ञान, वह अधूरा है और विकलता वह अधूरा

है न ? और तीन दर्शन। दो प्रकार का उपयोग है। कितना भरा है इसमें। ओहोहो ! गजब बात, बापू !

भाई ! हम धर्म करेंगे तो धर्म का फल केवलज्ञान आयेगा। वह यहाँ इनकार करते हैं। धर्म के परिणाम शुद्धचेतना की अनुभूति, वह भी तेरे ज्ञान की अनुभूति के परिणाम, वे तुझसे उस काल में वे हुए। अब उसका फल केवलज्ञान हुआ, वह इनके कारण हुआ है, ऐसा नहीं है – ऐसा कहते हैं। वह केवलज्ञान भी चैतन्य को अनुसरकर हुए परिणाम सकल अखण्ड एक पूरण वह केवलज्ञान के परिणाम तेरे ज्ञान को, गुण को अनुसरकर हुए हैं। पूर्व की पर्याय को अनुसरकर नहीं।

लोगों को द्रव्य–गुण–पर्याय क्या है, यह खबर नहीं है; इसलिए यह सब गड़बड़ कर डाली। समझ में आया ? और उसमें भी पर्याय में वह अशुद्ध पहले कहा। कार्य अनुभूति और कर्मफल अनुभूति। दया, दान, भक्ति, व्रत, तप (इत्यादि) राग का विकल्प उठता है। उपवास करना, यह सब विकल्प है। वह कार्य–कर्मचेतना है। वह धर्मचेतना नहीं। अब यहाँ अपवास किया और धर्म हो गया। अपवास में किया क्या ? तेरी पर्याय में क्या हुआ ? आहार–पानी ये रजकण नहीं आये, वह तो परमाणु नहीं आये। तेरी दशा में क्या हुआ ? यह विकल्प हुआ कि मुझे आहार–पानी नहीं करना है। शुभ होवे तो वह तो विकल्प हुआ, राग हुआ। समझ में आया ? वह शुभराग है। वह कहीं आत्मा का अनुभूति का स्वभाव नहीं है। रागभाव हुआ। राग से तुझे निर्जरा हो जायेगी ? राग से तो बन्ध होगा। उसके बदले तू (ऐसा कहे) कि राग से और इस क्रिया से मुझे निर्जरा हुई। (तो तेरी) दृष्टि में महा विपरीतता पड़ी है।

मुमुक्षु : आहार नहीं लेना वह...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह विकल्प है। वह भी विकल्प है। अनाहारक स्वभाव है, तत्प्रमाण अन्दर से परिणमन हो, वह तो आत्मा की दशा है। गजब काम, भाई ! कहो, यह अनशन करते हैं न, संथारा। सुनो, सुनो ! कि भाई, आहार छोड़ दिया, अनशन किया। तूने तेरी पर्याय में किया क्या ? वह आहार–पानी तो तेरे पास आनेवाले नहीं थे। उसमें तूने कहा कि मैंने छोड़ा। यह मिथ्यादर्शन का शल्य है। और कदाचित् उसे शुभ विकल्प आया कि

मैं अनशन करता हूँ। अब मेरे आजीवन आहार नहीं चलता, यह विकल्प आया, वह राग है। उससे संथारा माना (कि) मैंने धर्म किया (तो उसे) मिथ्याश्रद्धा और मिथ्यादर्शन का महापाप लगा है। बिल्ली निकालते ऊँट घुस जाए ऐसा है। अर्थात् (क्या), समझ में आया? बिल्ली निकालते ऊँट घुस गया। नहीं सुना था? एक बार दृष्टान्त दिया था न? एक बार दृष्टान्त दिया था। सुना है या नहीं? हिम्मतभाई! आता है? ठीक। नहीं, परन्तु सुना है या नहीं? समझ में आया?

एक बुढ़िया थी। बुढ़िया थी अकेली। फिर घर के पीछे वाडा होगा, वाडा। वाडा का वह क्या कहलाता है? फाटक। फाटक था राठा के काँटों का, उसमें एक बिल्ली अन्दर वाडा में मर गयी। उघाड़ा नहीं। उघाड़ा कहाँ से हो? बिल्ली मर गयी। बन्द होता तो भी ऊपर से बिल्ली जाये। बिल्ली तो अन्दर मर गयी। अब बुढ़िया कहे, हरिजन को कहूँगी तो पाँच सेर ज्वार और पाँच सेर बाजरा माँगेगा। लाओ न, मैं ही उठा लूँ। चूल्हे में से टोकरे में राख निकाली और एक ओर गुप्तरूप से जाकर बिल्ली डाली और फाटक खुला रखा। फाटक बन्द हो और तो फाटक खुला रह गया और बाहर डालने गयी तो इतने में एक ऊँट घुमता था। ऊँट को मरने की तैयारी थी, वह ऊँट अन्दर घुस गया। यहाँ जहाँ डालने गयी, वहाँ ऊँट आया। वह जहाँ आयी, वहाँ ऊँट गिरकर मर गया। अब क्या करना? यह कहीं टोकरी में डालकर फेंका जाये, ऐसा नहीं है। अब पाँच सेर ज्वार के बदले चार मन ज्वार देनी पड़ेगी। समझ में आया? उलझन में आयी, अन्त में हरिजन को बुलाना पड़ा कि बापू! यह ऊँट मर गया है।

इसी प्रकार अज्ञानी अनादि से (ऐसा मानता है कि) मैंने आहार छोड़ा ऐसा जो विकल्प था, वह तो अकेली बिल्ली मर गयी थी। परन्तु उसे अपना धर्म माना कि मुझे निर्जरा हुई, वहाँ मिथ्यात्व का ऊँट घुस गया। समझ में आया? विकल्प में भी मर तो गया था। उसमें बिल्ली मर गयी थी। आहाहा! वस्तु कौन है, इसकी खबर न मिले, जहाँ नजर डालने से निधान पड़ा है, उसकी नजर की खबर न हो और यह छोड़ा और छोड़ा और संथारा किया और महीना चला, पन्द्रह दिन चला और समाधि मरण हुआ। धूल भी नहीं। अब अज्ञान मरण हुआ, सुन न! और वह संसार में भिखारी जैसा रहा, एक दिन की रोटियाँ

छोड़ सके नहीं और दूसरे ने पन्द्रह दिन की छोड़ी तो, ओहोहो! उसने धर्म किया। धूल भी (धर्म) नहीं हुआ। अब सुन न! तुझे कब भान है। ऐई, जेठालालभाई!

यहाँ तो भगवान आत्मा आनन्द का कन्द सच्चिदानन्द प्रभु है, उसमें नजर डालने से विकल्प उठते नहीं और स्वरूप में आनन्द की लहर उठे, ऐसी दशा में मरण हो, उसे अनशन और संथारा कहते हैं। आहाहा! यह तो अन्दर आकुलता का पार नहीं होता और फिर जबरदस्ती कहे, कि मरने दे अब। भाई! नहीं तो यह प्रतिज्ञा ली है तो अब क्या करना! समझ में आया? आकुलता हो, क्योंकि वस्तु की दृष्टि की खबर नहीं। आत्मा ज्ञायकमूर्ति है, उसमें अनुभव की प्रतीति करना, वह तो खबर नहीं होती। या तो (कहे) राग-द्वेष छोड़ो, राग-द्वेष छोड़ो। क्रोध, मान, माया, लोभ घटाओ। परन्तु क्रोध, मान, माया घटावे कौन? क्रोध, मान, माया, लोभ जिसमें नहीं, ऐसी दृष्टि हुए बिना क्रोध, मान, माया घटे कैसे? समझ में आया? राग-द्वेष घटाओ, राग-द्वेष घटाओ, भगवान का धर्म राग-द्वेष घटाने का है। परन्तु अब सुन तो सही! राग-द्वेष घटाना अर्थात् क्या? कम करना। कम कौन करे?

मुमुक्षु : आत्मा करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा कौन है, उसकी इसे खबर है? आत्मा में राग-द्वेष नहीं है, ऐसी दृष्टि हुए बिना राग-द्वेष नहीं घट सकते और राग-द्वेष नहीं टल सकते। राग-द्वेष घटाने का अभिमान हो। न्याय समझ में आता है? घटाने का अर्थ यह हुआ कि उस आत्मा में राग रह सके, ऐसा नहीं है। इसलिए पहली दृष्टि राग और विकल्परहित आत्मा है, ऐसा सम्यग्दर्शन न हो, तो उसके राग-द्वेष घटाने-बटाने की बातें सब मिथ्यात्व की है। समझ में आया?

तूने भारी कठिन काम कर दिया। ऐसा सब लोग नहीं कर सकते। यह किये बिना धर्म नहीं होता। सुन न अब? मर जाये और सूख जाये तो भी (उसमें धर्म नहीं है)। धर्म, वह आत्मा का स्वभाव है या धर्म कोई विकल्प और राग है? यह कहते हैं, देखो! समझ में आया? दर्शन उपयोग में केवलदर्शन, वही एक सकल और शुद्ध है। बाकी चक्षु, अचक्षु और अवधिदर्शन, वे अपूर्ण, खण्ड और अशुद्ध हैं। ऐसा इसे ज्ञान करना चाहिए। आहाहा!

इसमें सब समाहित किया। एक तो लाईनें तो चार हैं। हें ? पूरे वीतरागदर्शन की स्थिति क्या है ? अनादि सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव (ने) जिसे धर्म कहा और जिसे अधर्म समझाया। सब इसमें समाहित हो जाता है। लो!

भगवान आत्मा पूर्ण द्रव्य है। पूर्ण शुद्ध अखण्डानन्द प्रभु आत्मा है। उसकी अन्तर्मुख दृष्टि होकर राग के विकल्प से भिन्न पड़कर, सम्यक् चैतन्य का अनुभव हो, यह उसे भगवान धर्म और मोक्ष का मार्ग कहते हैं। बाकी इस क्रियाकाण्ड में यह छोड़ा और यह लिया ऐसा (जो) विकल्प है, वह तो अधर्म और पाप है। समझ में आया ? व्यवहार की अपेक्षा से, तीव्र पाप की अपेक्षा से शुभभाव को पुण्य कहते हैं। निश्चय की अपेक्षा से तो आत्मा की शान्ति से विरुद्ध है, इसलिए उसे—पुण्य को भी पाप कहते हैं। आहाहा! भारी कठिन बात। कहा न ? कि कार्यानुभूति, वह महाव्रत के परिणाम—पंच महाव्रत के परिणाम के विकल्प, वह कार्यानुभूति है। समझ में आया ?

वह तो राग है। परसन्मुख की विकल्प की वृत्ति उठी है। उसे तू धर्म माने, राग को धर्म माना, वह मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व का महाशल्य पड़ा है और माना कि मैंने कुछ धर्म किया। दूसरे ने किया, लो न! दूसरा कहे, आहाहा! कितना त्याग किया है। किसका ? समकित का (त्याग) और मिथ्यात्व का ग्रहण किया है। मैंने आहार छोड़ा, दो महीने का संथारा किया। ऐसा जो पर को छोड़ने का भाव, वह मिथ्यात्वभाव है। क्योंकि पर को कब ग्रहण किया था कि छोड़े ? समझ में आया ?

राग का विकल्प भी आत्मा में नहीं है, फिर छोड़ना किसे ? आहाहा! यहाँ तो वर्तमान राग का जो विकल्प है, उसकी अनुभूति को कर्मचेतना कहते हैं। और उसके फल में हर्ष-शोक आवे (तो कहते हैं) आहाहा! इस धर्म में भारी आनन्द आया, हों! है न उस राग में ? वह भी कर्मानुभूति-कर्मफल की अनुभूति है, वह अशुद्धचेतना है, अधर्मचेतना है। अधर्मचेतना संसारचेतना है। वह संसार की पर्याय में खड़ा है। स्त्री, पुत्र छोड़कर नग्न बाबा हुआ तो भी संसार की पर्याय में खड़ा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन काम है, ऐंई!

मुमुक्षु : चक्रवर्ती ने तो घरबार छोड़ा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने घरबार छोड़ा है ? छोड़ा ही नहीं है। कहाँ उसकी पर्याय में संसार घुस गया था ? स्त्री, पुत्र क्या उसकी पर्याय में थे ? पर्याय में नहीं थे तो छोड़े किसे ? उसकी पर्याय में तो मिथ्यात्व और राग-द्वेष थे। तो सम्यग्दर्शन के (विषय का) आश्रय करके सम्यग्दर्शन में मिथ्यात्व छूट गया। स्वरूप की स्थिरता करके राग-द्वेष छूट गये। वे छूट गये, उसे भी त्यागा नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है, ऐसा मार्ग।

वीतराग का मार्ग जगत को सुनने को मिला नहीं। यह तो त्रिलोकनाथ तीर्थंकर सर्वज्ञ परमेश्वर अनन्त तीर्थंकर हुए। वर्तमान में लाखों केवली महाविदेह में विराजते हैं। तीर्थंकररूप से तो बीस हैं। अनन्त तीर्थंकर और अनन्त केवली होंगे। तीन काल में वीतराग का मार्ग तो यह है। आहाहा! समझ में आया ?

फिर कहा, बारह उपयोग। उस कार्य को शुद्धचेतना लिया और उपयोग होता है न ? उसे सम्यक् मतिज्ञान उत्पन्न होता है (वह) किसके कारण होता है ? कि तेरे चैतन्य का लक्ष्य करके अनुभूति से होता है। मतिज्ञान चैतन्य को अनुसरकर होता है। श्रुतज्ञान वाँचने से-पढ़ने से, पृष्ठ-पुस्तक से होता है ? नहीं, वहाँ कहाँ उसमें ज्ञान था। वह तो जड़ है। ऐई! तो श्रुतज्ञान कहाँ से होता है ? श्रुत में ऐसा शब्द पड़ा है कि सुनने से होता है। श्रुत आता है न ? सुनना। नहीं। भगवान! तुझे तेरी खबर नहीं। तेरी खान में महाज्ञान की अपार शक्ति पड़ी है। उसका लक्ष्य करने से उसमें से श्रुतज्ञान का प्रवाह बहे, वह चैतन्य अनुविधायी उपयोग है। वे परिणाम पर से होते हैं, ऐसा नहीं है।

अब एक व्यक्ति ऐसा कहता था कि परिणाम पर से होते हैं तो उसे परिणाम कहते हैं। परेण जाय ते परिणामः। ऐई! यहाँ की बात निकलने के बाद तो भारी गड़बड़-गड़बड़ चली है। हें ? परेण जाय ते परिणामः। आचार्य ऐसा कहते हैं। वह कह गया था न ? वह कैसा कर्मानन्द, कर्मानन्द था न आयुष्य (आर्य समाज) जैन के साथ चर्चा होते-होते जैन हो गया। इज्जत के लिये, मान के लिये (कि) यहाँ मान मिलेगा, अन्त में क्षुल्लक हो गया, क्षुल्लक। एक लंगोटी और आर्यसमाज में बहुत पढ़ा हुआ, उसमें कुछ मान मिला नहीं। किसी ने उसके प्रमाण में मान दिया नहीं। तथापि उसने ऐसा लिखा कि परेण जाय तो पर्याय। नहीं तो आचार्य झूठे पड़े, ऐसा लिखा है। ले ? अपने यहाँ पुस्तक है। है न, ऐसा

लिखा है। परेण जाय ते परिणामः है न, पर्याय है न, पर्याय है न ? मति-श्रुतज्ञान आदि पर्याय है न ? तो परेण जाय ते पर्याय। अरे ! किसने तुझे ऐसा उल्टा कहा ? आत्मा के अन्दर स्वरूप में भरी हुई शक्तियों का भण्डार है, उसके आश्रय से होते परिणाम, उसे पर्याय और परिणाम कहा जाता है। आहाहा !

जो शास्त्र स्वसन्मुखता का न कहे और पर सन्मुखता से कुछ कहे, वे शास्त्र नहीं हैं। कोई भी सिद्धान्त शास्त्र नाम दे और परसन्मुख से तुझे कुछ कल्याण होगा, परसन्मुख की वृत्ति, वह शास्त्र नहीं क्योंकि परसन्मुख होने में तो शुभ-अशुभराग होगा। चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र होंगे तो शुभ होगा और स्त्री, कुटुम्ब होगा तो अशुभ होगा। परद्रव्य के लक्ष्य के अनुसार तो राग होगा। उससे धर्म है नहीं। स्वद्रव्य के अनुसार धर्म है। चैतन्य भगवान वीतरागमूर्ति जिनस्वरूप है, उसके सन्मुख होकर भाव हो, ऐसा जो बतलावे, वे वीतराग के शास्त्र हैं। समझ में आया ?

यहाँ तो अशुद्ध उपयोग कहा, तो भी यहाँ तो चैतन्य को अनुसरकर कहा। हें ? तेरी पर्याय है और तेरी पर्याय तुझसे होती है। आहाहा ! दो प्रकार का उपयोग। जीव के गुण शुद्ध अशुद्ध चेतना, यह पहले कहा। शुद्ध चेतना कहा और दो प्रकार के उपयोग। यह बाद की बात की। कहो, इसमें तो समझ में आता है या नहीं ? यह तो बहुत सरल है। इसमें सादी भाषा है, सादे भाव हैं। इसमें कोई संस्कृत, व्याकरण बहुत पढ़ा हुआ हो तो समझ में आये, ऐसा कुछ है नहीं। वीतराग का कहा हुआ तत्त्व सत् है, सरल है, सहज है। समझ में आया ? उसकी प्राप्ति भी सहज है। श्रीमद् ने ऐसा कहा है, परन्तु उसे सुनना और सत् समागम मिलना, यह महादुर्लभ है। सत् मिलना दुर्लभ है, ऐसा कहते हैं। अर्थात् जैसा सत् है वैसा सुनकर अन्दर में जाना, वह सत् दुर्लभ है। आहाहा !

देखो यह १६वीं गाथा। एक रह गयी दूसरी उस पर्याय की दो। यह तो उस १६वें में दो पद की व्याख्या हुई। सोलहवीं में दो पद की व्याख्या हुई। '**भावा जीवादीया जीवगुणा चेदणा य उवओगो।**' लो अब दो पद रह गये। **जीव की पर्यायें इस प्रकार हैं:- एक तो अगुरुलघुगुण की हानिवृद्धि से उत्पन्न होनेवाली पर्यायें शुद्ध पर्यायें हैं....** यह पाठ में नहीं परन्तु उसमें से निकाला है। अनेकभिया भले हो परन्तु अनेकभिया तो वह

शुभ, नरक और उसे अनेकभिया कहा है। समझ में आया? अनेकभिया शब्द पड़ा है और अनेकभिया कुछ गुरुलोक बतलाने के लिये नहीं है। 'पज्ज्याबहुगा' है न? पज्ज्याबहुगा यह तो सुरतारक तिर्यंच को बताने के लिये। अर्थात् अन्दर में प्रत्येक द्रव्य में, दृष्टान्त है जीव का परन्तु प्रत्येक द्रव्य में **अगुरुलघुगुण की हानिवृद्धि से उत्पन्न होनेवाली पर्यायें शुद्ध हैं....** प्रत्येक गुण में, प्रत्येक द्रव्य में प्रति समय हानि-वृद्धि स्वभाव की भगवान ने देखी है वैसी, ऐसी पर्यायों को शुद्ध पर्याय कहते हैं।

और इस सूत्र में—इस गाथा में कहे हुए देखो। भाषा है न, है न। देव, देवपना अर्थात् यह देह नहीं, हों! देव की पर्याय जो है। वह देव का भाव अन्दर देवपना, उसे पर्याय कहते हैं। व्यंजनपर्याय विकारी पर्याय। देव, नारक-नीचे नारकी, देह नहीं। अन्दर नारकी का भाव अन्दर नरकपना है, वह गति। तिर्यंच-निगोद के जीव या पंचेन्द्रिय पशु आदि दो इन्द्रिय और तीन इन्द्रिय आदि सब, उन्हें जो अन्दर तिर्यंचपना है, देखो न! सबके शरीर तिरछे हो गये हैं न? पशु के शरीर ऐसे आड़े हो गये हैं। आड़े-तिरछे। उसकी—तिर्यंच की जो पर्याय है, वह व्यंजनपर्याय अशुद्ध पर्याय, वह स्वतन्त्र है—ऐसा कहते हैं। वह पर्याय कोई कर्म के कारण होती है, (ऐसा नहीं है)। देव में गया तो देवगति का उदय हुआ, इसलिए वहाँ देव की पर्याय उदय हुई, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

परद्रव्य के सम्बन्ध से उत्पन्न होती हैं, इसलिए अशुद्ध पर्यायें हैं। उसमें परद्रव्य का लक्ष्य निमित्त है न? इसलिए। है तो अपनी पर्याय। इसलिए वह चार गति की पर्याय अशुद्ध है। परन्तु है स्वयं के कारण से। परद्रव्य के सम्बन्ध से रचित। निमित्त से रचित नैमित्तिक, परन्तु स्वयं ने नैमित्तिक रचे हैं। समझ में आया? निमित्त हैं, इसलिए रचे हैं, ऐसा नहीं है। ऐसी चार पर्याय भी तुझसे तुझमें है। उसे अशुद्धदशा कहा जाता है। द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों का यथार्थ स्वरूप क्या है, वह इसमें वर्णन किया गया है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १७

मणुसत्तणेण णट्ठो देही देवो हवेदि इदरो वा।
उभयत्थ जीवभावो ण णस्सदि ण जायदे अण्णो।।१७।।

मनुष्यत्वेन नष्टो देही देवो भवतीतरो वा।
उभयत्र जीवभावो न नश्यति न जायतेऽन्य:।।१७।।

इदं भावनाशाभावोत्पादनिषेधोदाहरणम्।

प्रतिसमयसम्भवदगुरुलघुगुणहानिवृद्धिनिर्वृत्तस्वभावपर्यायसन्तत्यविच्छेदकेनैकेन सोपाधिना मनुष्यत्वलक्षणेन पर्यायेण विनश्यति जीव:, तथाविधेन देवत्वलक्षणेन नारकतिर्यक्त्वलक्षणेन वान्येन पर्यायेणोत्पद्यते। न च मनुष्यत्वेन नाशे जीवत्वेनापि नश्यति, देवत्वादिनोत्पादे जीवत्वेनाप्युत्पद्यते; किन्तु सदुच्छेदमसदुत्पादमन्तरेणैव तथा विवर्तत इति।।१७।।

मनुज मर सुरलोक में देवादि पद धारण करें।
पर जीव दोनों दशा में ना नशे ना उत्पन्न हो।।१७।।

अन्वयार्थ :- [मनुष्यत्वेन] मनुष्यत्व से [नष्ट:] नष्ट हुआ [देही] देही (जीव) [देव: वा इतर:] देव अथवा अन्य [भवति] होता है; [उभयत्र] उन दोनों में [जीवभाव:] जीवभाव [न नश्यति] नष्ट नहीं होता और [अन्य:] दूसरा जीवभाव [न जायते] उत्पन्न नहीं होता।

टीका :- 'भाव का नाश नहीं होता और अभाव का उत्पाद नहीं होता' उसका यह उदाहरण है।

प्रतिसमय होनेवाली अगुरुलघुगुण की हानि-वृद्धि से उत्पन्न होनेवाली स्वभावपर्यायों की सन्तति का विच्छेद न करनेवाली एक सोपाधिक मनुष्यत्वस्वरूप पर्याय से जीव विनाश को प्राप्त होता है और तथाविध (-स्वभावपर्यायों के प्रवाह को न तोड़नेवाली सोपाधिक) देवत्वस्वरूप, नारकत्वस्वरूप या तिर्यंचत्वस्वरूप अन्य पर्याय से उत्पन्न होता है। वहाँ ऐसा नहीं है कि मनुष्यत्व से विनष्ट होने पर जीवत्व से भी नष्ट होता है और देवत्व से आदि से उत्पाद होने पर जीवत्व भी उत्पन्न होता है, किन्तु सत् के उच्छेद और असत् के उत्पाद बिना ही तदनुसार विवर्तन (-परिवर्तन, परिणमन) करता है।।१७।।

धारावाही प्रवचन नं. २५ (प्रवचन नं. २४), गाथा-१७-१८
दिनांक - ०८-१२-१९६९, कार्तिक कृष्ण १४, सोमवार

मणुसत्तणेण णट्ठो देही देवो हवेदि इदरो वा।
उभयत्थ जीवभावो ण णस्सदि ण जायदे अण्णो।।१७।।

मनुज मर सुरलोक में देवादि पद धारण करें।
पर जीव दोनों दशा में ना नशे ना उत्पन्न हो॥१७॥

स्वभाव पर्याय से सन्तति का विच्छेद न करनेवाली। क्या? समझ में आया? जीव का एक समय का निरन्तर अगुरुलघु समय है। है (तो) षट् गुण हानि-वृद्धि। परन्तु एक समय में षट् गुण हानि-वृद्धि, ऐसे अनादि-अनन्त अगुरुलघु जो इस स्वभाव पर्याय को तोड़े बिना-विच्छेद हुए बिना उसमें मनुष्य आदि की पर्याय उत्पन्न होती है। समझ में आया?

विच्छेद न करनेवाली एक सोपाधिक मनुष्यत्वस्वरूप पर्याय से जीव.... उपाधिवाला है। मनुष्यपना उपाधिवाला है न? कर्म के निमित्त की वह उपाधि है। मनुष्य का स्वभाव या निजस्वभाव उसकी अगुरुलघुस्वभाव जैसा निज स्वभाव है। पर्याय निज स्वभावी है। वैसी मनुष्य आदि की पर्याय निज स्वभावी नहीं है। वह तो वैभाविक है। उपाधिक है, उपाधिक। **एक सोपाधिक मनुष्यत्वस्वरूप पर्याय से....** मनुष्यत्व अर्थात् यह देह / शरीर की बात नहीं है। परन्तु मनुष्य की भाव मनुष्यपर्याय। मनुष्यगति-योग्य पर्याय। उससे जीव विनाश को प्राप्त होता है।

देखो। मनुष्यपने की योग्यता की पर्याय है, उसका नाश होता है। **और तथाविध (—स्वभावपर्यायों के प्रवाह को न तोड़नेवाली सोपाधिक)....** अगुरुलघुस्वभाव की पर्याय कभी भी टूटती नहीं। वह तो अनादि-अनन्त है। 'सोपाधिक देवत्वस्वरूप' देव की पर्याय भी सोपाधिक है। देवपना शरीर की बात नहीं। देवपने की गति की अपनी जो योग्यता जीव में है, उसके विनाश को प्राप्त होता है। तथाविध स्वभावपर्यायों के प्रवाह को न तोड़नेवाले देवत्वस्वरूप अन्य पर्याय से उत्पन्न होता है। वहाँ से लिया है न मनुष्य?

मनुष्य पर्याय से लिया है। अनादि अगुरुलघु षट्गुणहानिवृद्धि की पर्याय प्रवाह को नहीं तोड़नेवाले, कहते हैं कि वह प्रवाह तो ऐसा ही चलता है। उसमें मनुष्यगति की पर्याय का नाश होता है और देवगति की पर्याय का उत्पाद होता है, तथापि जीव का नाश होता है और जीव उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

सब पलट जाये तो भी ध्रुव कहीं पलटता नहीं, ऐसा कहते हैं। सब चीज़ें पलट जायें और पर्याय भी पलट जाये तो भी द्रव्य-गुण और अगुरुलघुपर्याय कभी पलटती नहीं, ऐसा कहते हैं। एकरूप धारा चलती है। समझ में आया? पूरी दुनिया संयोग में पलट जाये और उसमें विकारी मनुष्य आदि की पर्याय भी पलट जाये। भगवान आत्मा द्रव्यरूप से, गुणरूप से, अगुरुलघुस्वभावरूप से धारावाही चलता है, उसमें कुछ पलटना या विपरीतता हो, ऐसा नहीं है। देखो, द्रव्य-गुण-पर्याय इस प्रकार से लिये हैं। समझ में आया?

आत्मा, आत्मारूप से कायम रहकर उसके गुण भी कायम रहकर और उसकी अगुरुलघु स्वभावपर्याय भी कायम एकधारारूप से रहकर मनुष्य पर्याय का नाश होता है। देवपर्याय से उत्पन्न होता है। कोई नारकत्वस्वरूप उत्पन्न होता है। मनुष्य मरकर नरक में भी जाता है। मनुष्य की पर्याय का नाश होता है और नारकी की पर्याय उत्पन्न होती है। वह उपाधिस्वरूप है। **तिर्यंचत्वस्वरूप अन्य पर्याय से उत्पन्न होता है।** वह तिर्यंच की पर्याय से भी उत्पन्न होता है। **वहाँ ऐसा नहीं है कि मनुष्यत्व से विनष्ट होने पर....** मनुष्यपने की पर्याय का नाश होने पर भी जीव का नाश हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

जीवत्व से भी नाश होता है, ऐसा नहीं है। जीव का नाश हुआ? समय-समय की मनुष्यपने की पर्याय जो उत्पन्न हुई तो नाश हुआ, तो देव की पर्यायरूप से उत्पन्न हुआ परन्तु नाश हुआ तो कोई जीवद्रव्य नाश होता है? जीव तो ऐसा का ऐसा है। आहाहा! ऐसा ध्रुवस्वरूप भगवान, उसके ऊपर दृष्टि करने से निश्चय स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? गति आदि के आश्रय से नहीं, एक समय की अगुरुलघु पर्याय के आश्रय से नहीं। जीव है... है... है... है। ऐसा ध्रुव कभी पलटता नहीं। समझ में आया?

उसमें दृष्टान्त दिया है। कुमारपाल के समय में एक बात आती है न? कुमारपाल को कहा कि साहेब! सेनापति बदल गया, नौकर सब बदल गये, सब बदल गया, क्या

करना ? (वह कहे) मैं तो बदला नहीं हूँ न ? समझ में आया ? जिसके साथ अपने को लड़ाई करनी है तो सेनापति बदल गया है। पुलिस बदल गयी है। सब नौकर बदल गये हैं। क्या करना ? मैं कुमारपाल हूँ, मैं तो नहीं बदल गया न ? मैं तो अन्यरूप नहीं हुआ न ? इसी प्रकार सब बदल गया परन्तु यह ध्रुव नहीं बदलता। समझ में आया ? मैं बदला नहीं। मैं जो ध्रुव हूँ तो मैं तो बदलता नहीं। पर्याय बदले तो बदलो। समझ में आया ? और पर तो बदले तो बदलो, वह तो पर में बदलता है, वह मुझमें तो है नहीं। आहाहा !

मैं जो अनादि-अनन्त ध्रुव आत्मा हूँ, वह तो कभी भी बदला नहीं। कुमारपाल कहता है, हों ! वह तो मैं समशेर लेकर तैयार हूँ। समझ में आया ? ऐसा कथा में आता है। सबको एक व्यक्ति ने उड़ा दिया इतना जोर। इसी प्रकार अकेला ध्रुव भगवान आत्मा... ! ऐसा आता है न नियमसार में। परमपारिणामिकभाव ऐसा है कि कर्म और विकार का नाश करनेवाला है। नाश करनेवाले का अर्थ यह कि उसमें है नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! भगवान शुद्ध ध्रुवस्वरूप महाप्रभु चैतन्यद्रव्यस्वभाव वह तो कहीं पलटता नहीं। वह तो एकरूप टंकोत्कीर्ण अनादि-अनन्त एकरूप रहता है। उसकी दृष्टि करने से, उसमें दृष्टि स्थापन करने से सम्यग्दर्शन होता है। बाकी सम्यग्दर्शन होने का दूसरा कोई कारण नहीं है। कहो, समझ में आया ?

सम्यग्दर्शन की पर्याय भी पलटती है, परन्तु उसका ध्येय ध्रुव है, वह कभी पलटता नहीं। कहो, भीखाभाई ! मैं तो ऐसा का ऐसा हूँ। पर्याय बदले तो बदलो। भाई ने तो यहाँ तक कहा है। नहीं ? ***'पर्याय मेरा ध्यान करे तो करो, मैं किसका ध्यान करूँ।'*** निहालभाई ने कहा है न ? पर्याय जो है, वह हमारी ओर ढलो तो ढलो, हम तो ध्रुव हैं। अनादि-अनन्त सच्चिदानन्दप्रभु आनन्दकन्द एकधारारूप मैं नित्यस्वभावी आत्मा हूँ। समझ में आया ? देखो, यहाँ तो आचार्य ने अगुरुलघुस्वभाव को, उस चारगति की विषम पर्याय है न ? विषम-विषम अनेकरूप भिन्न... भिन्न... भिन्न... उसके साथ एकरूप धारा रखी है। द्रव्य-गुण तो एकरूपधारा है ही। स्वभावधारा में एकरूपधारा, उसमें विषमता-हीनाधिकता-हानि-वृद्धिपना एक समय में है, हों ! वह तो हानि-वृद्धि ऐसा ही कोई स्वरूप है। भगवान आत्मा, यह तो उदाहरण दिया, हों ! तत्प्रमाण सब द्रव्यों का ले लेना।

भगवान ध्रुवधारा है, भाव... भाव... भाव... भाव... भाव... वह तो सदा अविनाशी है। उसमें कुछ पलटना होता नहीं। अहो! ऐसी अपनी निजनिधि (की) सम्हाल क्यों न करे? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कोई बतावे कि तेरा निधान तो तेरे पास ही ध्रुव पड़ा है। बाहर से लाना नहीं है। समझ में आया? अहो! ऐसा महाप्रभु निधान अपना भाव, उस ओर की नजर-दृष्टि क्यों न करे? अपने निधान को आधीन क्यों न करे? समझ में आया? पुरुषार्थ का पिण्ड प्रभु ध्रुव है। अकेला ज्ञान का कन्द है। नित्यानन्द है। वही आश्रय करनेयोग्य है। सम्यग्दर्शन में—प्रथम सम्यग्दर्शन में धर्म की प्रथम पर्याय में ध्रुव को ध्येय करके आश्रय करनेयोग्य है। आहाहा! उसमें देव-गुरु-शास्त्र भी नहीं, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

बहुत से कहते हैं, हमारे तो देव-गुरु-शास्त्र आधार है। देव-गुरु-शास्त्र क्या, यहाँ तो पर्याय भी आधार नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा निरालम्बी प्रभु! प्रत्येक द्रव्य को दृष्टान्तरूप से यह जीव का दिया है। प्रत्येक द्रव्य ध्रुवरूप से कायम है। एक-एक परमाणु भी कायम ध्रुवरूप से है। समझ में आया? एक-एक परमाणु में भी द्रव्य-गुण तो ध्रुवरूप है परन्तु उनकी अगुरुलघु षट्गुणहानिवृद्धिरूप पर्याय भी एक धारावाही चलती है। एक परमाणु में, हों! एक-एक परमाणु में। और उस परमाणु में प्रगट उत्पाद-व्यय में वर्ण-गन्ध-रंग-स्पर्श की पर्याय जो हीनाधिक होती है, वह विषमरूप है। भले स्वभाव हो। दूसरे परमाणु के संग में विभावरूप परिणमन होता है। वह तो विषमरूप परिणमन है। परमाणु में भी विषमरूप परिणमन है। समझ में आया?

परमाणु एक-एक पॉइन्ट ध्रुवरूप है और ध्रुव से नाश होता है और ध्रुव से परमाणु उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं है। और गुण द्रव्य तो है परन्तु अगुरुलुघ धारा भी एक धारावाही परमाणु में चलती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई परमाणु तो कोई चीज़ ही नहीं मानो। मानो हो तो सब शरीर का संचालन हो। हें? आत्मा हो तो शरीर में कुछ हलन-चलन काम करे। नहीं तो बोले कौन? प्रत्येक शक्ति ऐसी स्वतन्त्र है। प्रत्येक परमाणु में अनन्त शक्ति स्वतन्त्र है। किसी के कारण से है नहीं। आहाहा!

यह क्षेत्र छोटा है न? एक प्रदेश में परमाणु का क्षेत्र तो बहुत ही छोटा है। उतने में

अगुरुलघु धारा सदा बहती है। उसमें भी भाव का कभी भी नाश के भाव का कभी भी उत्पाद नहीं होता। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं, देखो! हम तो जीव का दृष्टान्त देते हैं, परन्तु इस प्रमाण परमाणु में। चार तो अरूपी हैं, उनमें भी ऐसा ही समझना। उपाधि नहीं इतना। क्योंकि चार—आकाश, धर्म, अधर्म, काल में उपाधि नहीं। परमाणु में अकेले में उपाधि नहीं। परन्तु दो परमाणु हो तो उपाधि, विभावरूप पर्याय होती है। तथापि उसमें भी स्वाभाविक अगुरुलघुपर्याय भी विभाव पर्याय के काल में सदा चलती है। भारी इतना सब। जड़ में इतनी ताकत! हें? षट्गुणहानिवृद्धि वह क्या है, यह जड़ को खबर है? खबर नहीं परन्तु उसका स्वभाव ऐसा है। सदा निरन्तर अपनी पर्याय में जड़ेश्वर भगवान है वह। भगवान अर्थात् वह महिमावन्त पदार्थ है। महिमावन्त अर्थात् अपनी शक्ति में पर का अवलम्बन नहीं रखता। परमाणु की अपनी शक्ति में पर का अवलम्बन (नहीं होता)। वह स्वतन्त्र ईश्वर है। वह जड़ेश्वर है। ऐई! तुम्हारे जड़ेश्वर वांकानेर के पास है न?

वहाँ ऐसा नहीं है कि मनुष्यत्व से विनष्ट होने पर जीवत्व से भी नष्ट होता है.... मनुष्य पर्याय का नाश हुआ, परन्तु जीवपने का नाश हुआ, ऐसा है? देवपने उत्पाद हुआ। **और देवत्व आदि से उत्पाद होने पर....** आदि शब्द है न? देव-नारकी और तिर्यंच, ये तीन हैं; इसलिए आदि लिया। **देवत्व आदि से उत्पाद होने पर जीवत्व से भी उत्पन्न होता है,....** ऐसा तो है नहीं। जीव तो जीव ही है। ध्रुव तो ध्रुव ही है। आहा! उसे जीवत्व ही कहा। भाई! वह जीवत्व उसे कहा, जीवत्व से जीव के जीवत्व से वह उत्पाद और व्यय को ऐसा कहा। वह मनुष्य आदि पर्याय जीवत्व नहीं। पर्याय हो। जीव का जीवत्व। एकधारा चलती है। अरे! एक महान पदार्थ, उसका विश्वास आना (मुश्किल है)। समझ में आया? वह कहीं मामूली बात नहीं। समझ में आया?

लोग आचरण पर, क्रियाकाण्ड पर जोर देते हैं, वह तो मिथ्यात्वभाव है। वह वस्तु त्रिकाल ध्रुव भगवान आत्मा, वह कभी नष्ट नहीं हुई और कभी उत्पन्न नहीं हुई। जीव जीवत्वपने से कभी नाश और उत्पन्न नहीं होता। ऐसे अपने भगवान आत्मा पर नजर करना, वहाँ दृष्टि को स्थापित करना, उसका आश्रय करना और द्रव्य को दृष्टि में-विश्वास में लेना (कि) मैं तो महाप्रभु चैतन्यध्रुव हूँ। आहाहा! सबको करने की पहली यह चीज़ है। समझ

में आया? उसके बदले यह करो, यह करो और यह करो, यह दया पालन करो, व्रत करो और तप करो और विकल्प में-आकुलता में हैरान होकर मर जाओ।

यहाँ तो कहते हैं कि एक तो ठीक, परन्तु चारों गतियाँ दु:खरूप हैं, ऐसा कहते हैं। देवगति (में भी) आकुलता है। बाहर के दु:ख देखकर ऐसा लगता है कि, आहाहा! यह पशु का दु:ख लो, नरक के दु:ख, यह दु:ख नहीं परन्तु जिसमें आकुलता है, वह सब दु:ख है। नारकी में, मनुष्य में, देव में, इन्द्र की इन्द्राणियाँ हैं और उनके साथ विषय की जो वासना है, वह आकुलता और दु:ख है। चारों गति के दु:ख का इसे ख्याल आना चाहिए, तो दु:खरहित आनन्दस्वरूप भगवान त्रिकाल है, उसका आश्रय ले। आहाहा! समझ में आया?

बाहर के एक प्रतिकूल दु:ख से डरकर यदि यह आत्मा का आश्रय लेने जाये तो उसे आत्मा का आश्रय नहीं मिलेगा और वह दु:ख से डरा है, बाहर के संयोग से डरा है। समझ में आया? परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि चारों गतियाँ उपाधिक हैं। भाई! इन्हें उपाधिक लिया न? ऐसा कहते हैं, वे यह कहना चाहते हैं। आहाहा! चारों गति उपाधिरूप है। वह गति उत्पन्न हुई और नाश हुई तो वस्तु कहीं नाश-उत्पन्न होती है? भगवान अनाकुल निरुपाधिक तत्त्व निराकुल आनन्दकन्द प्रभु है। ऐसे आत्मा का कभी नाश भी नहीं होता और नया उत्पन्न नहीं होता। आहाहा!

देखो, देव को भी सोपाधिक कहा न! ऐई देवानुप्रिया! मनुष्य के बाद देव ही आवे न? स्वयं मुनि हैं न? स्वर्ग में जानेवाले हैं न? पर्याय की योग्यता है न? फिर सामान्य बात कर डाली। कोई मरकर नारकी में जाये और कोई मरकर तिर्यंच में। आहाहा! परन्तु उपाधि है, भाई! आहाहा! तेरे स्वभाव की शान्ति के आनन्द की उत्पत्ति नहीं है। वह तो उपाधि की उत्पत्ति है। एक उपाधि की उत्पत्ति का नाश (और) दूसरी उपाधि की उत्पत्ति का उत्पाद। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे देखो न! सड़े हुए कुत्ते, कीड़े पड़े, चीख-पुकार करे, रोवे। कीड़े पड़े तो बहुत दु:ख होवे न फिर असाध्य हो जाये। असाध्य हो जाये, इसलिए दु:ख के सहन करने की पराकाष्ठा बढ़ गयी है। तब असाध्य हो जाता है। लोग ऐसा कहते हैं कि बेभान हुआ न

(इसलिए) अब इसे दुःख कम हुआ। भाई! तुझे खबर नहीं है। उसे ऐसे सिर पर डण्डे पड़ते हों न, तब तक जब तक दुःख की पराकाष्ठा नहीं, तब तक ख्याल रखे परन्तु उस आकुलता की पराकाष्ठा इतनी बढ़ जाये, ख्याल छूट जाता है। ज्ञान की पर्याय का क्षयोपशम-ख्याल छूट जाता है। समझ में आया?

इसी प्रकार देव में देखो तो, आहाहा! करोड़ों इन्द्राणियाँ (हों), उसे तो एक भव में कितनी इन्द्राणियाँ बदलती हैं। स्वयं का आयुष्य दो सागर का होता है, इन्द्राणी का अल्प आयुष्य होता है, बहुत ही बदलती है। यह आयुष्य होवे परन्तु उसमें भी आकुलता है। (इन्द्रों को) कितनी सुविधा (होती है कि) आहार की भी आवश्यकता नहीं होती। मकान की भी आवश्यकता नहीं। सब मिल जाता है। आहाहा! स्त्री की भी आवश्यकता नहीं, उसका समय आवे, तब स्त्री वहाँ उपस्थित होती ही है। एक मर जाये तो दूसरी उत्पन्न हो जाती है। करोड़ों कहते हैं और उपाधि का भव है न, भाई! उपाधि का भव है न।

भगवान (आत्मा की) तो निरुपाधिक पर्याय प्रगटे, वह उसका धर्म है। समझ में आया? उसका धर्म तो निरुपाधिक है। वह कहीं चार गति के धर्म नहीं और गति से धर्म होता है, ऐसा भी नहीं है। वह तो उपाधिक भाव है। समझ में आया? गति से धर्म होता है (ऐसा नहीं), वह तो उपाधिक भाव है। आहाहा! कितने ही ऐसा कहते हैं न कि यदि शरीर में माल है तो तप करके माल निकाल लो। शरीर से तप करके पाँच-पच्चीस अपवास करके माल निकालो। किसमें से माल निकालना है भगवान? तेरा माल शरीर में है? तेरा माल उपाधिक गति में है? आहाहा! ऐसा कहते हैं। तेरा माल तो अन्दर स्वरूप में ध्रुव एकधारा पड़ी है, वह भी नाश नहीं होता और उत्पन्न भी नहीं होता, उसमें माल पड़ा है। उसमें से माल निकालो। उसमें जितने एकाग्र होओगे, उतना माल निकलेगा। बाहर से कोई दे देवे, ऐसी चीज़ नहीं है। समझ में आया?

बींछिया के समय मूर्ति लेकर आये थे वे, वह भाई आये थे? हाँ। मैंने कहा अपनी मल्कापुर की प्रतिमा नहीं? चन्दुभाई! आये थे। यह ख्याल नहीं अपने को। पंच कल्याणक था न? हें? हाँ। (संवत्) २००५ के वर्ष में। इक्कीस वर्ष हुए। इक्कीस वर्ष।

कहते हैं कि मनुष्यपने से नाश होने पर जीवपने से भी नाश होता है? ऐसा तो है

नहीं। **और देवत्व आदि से उत्पाद होने पर....** देखो! मनुष्यपना छोड़कर देवपने उत्पाद हुआ। पशुपने उत्पाद हुआ। गति, हों! नारकीपने उत्पाद हुआ। (परन्तु) भगवान आत्मा तो ऐसा का ऐसा है और वह उत्पन्न भी नहीं होता और विनष्ट भी नहीं होता। समझ में आया? जीवत्व से भी उत्पन्न होता है, ऐसा भी नहीं। **किन्तु सत् के उच्छेद और असत् के उत्पाद बिना ही....** देखो! सत् भगवान आत्मा त्रिकाली का नाश हुए बिना और भगवान आत्मा नया उत्पन्न होता है, ऐसा भी नहीं है। **तद्नुसार विवर्तन (-परिवर्तन, परिणमन) करता है।** लो। यह चार गति का वर्णन है, देखो! समझ में आया? इसमें सिद्ध को नहीं लिया। उपाधिवाला डाला है, भाई!

यह अगुरुलघु स्वभाव की धारा है, वह भले डाली। फिर वापस सिद्ध की पर्याय तब बदले और ध्रुव ऐसा का ऐसा। यहाँ तो कहे, उपाधि बतायी है। आहाहा! कहो, समझ में आया? अठारह (वीं) गाथा।

गाथा - १८

सो चेव जादि मरणं जादि ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो।
उप्पण्णो या विणट्ठो देवो मणुसो त्ति पज्जाओ।।१८।।

स च एव याति मरणं याति न नष्टो न चैवोत्पन्नः।
उत्पन्नश्च विनष्टो देवो मनुष्य इति पर्यायः।।१८।।

अत्र कथंचिद्व्ययोत्पादवत्त्वेऽपि द्रव्यस्य सदाविनष्टानुत्पन्नत्वं ख्यापितम्।

यदेव पूर्वोत्तरपर्यायविवेकसंपर्कापादितामुभयीमवस्थामात्मसात्कुर्वाणमुच्छिद्यमानमुत्पद्य-मानं च द्रव्यमालक्ष्यते, तदेव तथाविधोभयावस्थाव्यापिना प्रतिनियतैकवस्तुत्वनिबन्धनभूतेन स्वभावेनाविनष्टमनुत्पन्नं वा वेद्यते। पर्यायास्तु तस्य पूर्वपूर्वपरिणामोपमर्दोत्तरोत्तरपरिणामो-त्पादरूपाः प्रणाशसम्भवधर्माणोऽभिधीयन्ते। ते च वस्तुत्वेन द्रव्यादपृथग्भूता एवोक्ताः। ततः पर्यायैः सहैकवस्तुत्वाज्जायमानं म्रियमाणमपि जीवद्रव्यं सर्वदानुत्पन्नाविनष्टं द्रष्टव्यम्। देवमनुष्यादिपर्यायास्तु क्रमवर्तित्वादुपस्थितातिवाहितस्वसमया उत्पद्यन्ते विनश्यन्ति चेति।।१८।।

जन्मे-मरे नित द्रव्य ही पर नाश-उद्भव न लहे।
सुर-मनुज पर्यय की अपेक्षा नाश-उद्भव हैं कहे।।१८।।

अन्वयार्थ :- [सः च एव] वही [याति] जन्म लेता है और [मरणंयाति] मृत्यु प्राप्त करता है तथापि [न एव उत्पन्नः] वह उत्पन्न नहीं होता [च] और [न नष्टः] नष्ट नहीं होता; [देवः मनुष्यः] देव, मनुष्य [इति पर्यायः] ऐसी पर्याय [उत्पन्नः] उत्पन्न होती है [च] और [विनष्टः] विनष्ट होती है।

टीका :- यहाँ, द्रव्य कथंचित् व्यय और उत्पादवाला होने पर भी उसका सदा अविनष्टपना और अनुत्पन्नपना कहा है।

जो द्रव्य पूर्व [1]पर्याय के वियोग से और [2]उत्तर पर्याय के संयोग से होनेवाली उभय अवस्था को आत्मसात् (अपनेरूप) करता हुआ विनष्ट होता और उपजता दिखाई देता है, वही (द्रव्य) वैसी उभय अवस्था में व्याप्त होनेवाला जो प्रतिनियत एक वस्तुत्व के

---

१. पूर्व=पहले की। २. उत्तर=बाद की।

कारणभूत स्वभाव उसके द्वारा (-उस स्वभाव की अपेक्षा से) अविनष्ट एवं अनुत्पन्न ज्ञात होता है; उसकी पर्यायें पूर्व-पूर्व परिणाम के नाशरूप और उत्तर-उत्तर परिणाम के उत्पादरूप होने से विनश-उत्पादधर्मवाली (-विनाश एवं उत्पादरूप धर्मवाली) कही जाती है, और वे (पर्यायें) वस्तुरूप से द्रव्य से अपृथग्भूत ही कही गयी है। इसलिए, पर्यायों के साथ एकवस्तुपने के कारण जन्मता और मरता होने पर भी, जीवद्रव्य सर्वदा अनुत्पन्न एवं अविनष्ट ही देखना (-श्रद्धा करना); देव मनुष्यादि पर्यायें उपजती है और विनष्ट होती हैं क्योंकि वे क्रमवर्ती होने से उनका स्वसमय उपस्थित होता है और बीत जाता है।।१८।।

गाथा - १८ पर प्रवचन

सो चेव जादि मरणं जादि ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो।
उप्पण्णो या विणट्ठो देवो मणुसो त्ति पज्जाओ।।१८।।

टीका :- यहाँ, द्रव्य कथंचित् व्यय और उत्पादवाला होने पर भी.... देखो! प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु अपने से कथंचित् व्यय—पूर्व की पर्याय से व्यय। नयी पर्याय से उत्पन्न होने पर भी, **उसका सदैव अविनष्टपना और अनुत्पन्नपना कहा है।** परन्तु द्रव्य का विनष्टपना और द्रव्य की उत्पत्ति कभी नहीं होती। अरे! एक-एक सिद्धान्त ऐसे हैं। आहाहा! समझ में आया?

प्रवचनसार में कहा है न? कि यह व्यवहार दया-दान व्यवहार, वह मनुष्य व्यवहार है। जीव का व्यवहार नहीं। मनुष्य का व्यवहार। क्या समझ में आया? दया-दान-व्रत-भक्ति-तप का जो विकल्प है न? क्रियाकाण्ड का राग (है, वह) मनुष्य का व्यवहार है। वह आत्मा का व्यवहार नहीं। आहाहा! समझ में आया? वहाँ तो ऐसा लिया है कि यह दया-दान का विकल्प उठता है न? कि यह दया पालो, व्रत करो और भक्ति करो, शुभ-अशुभ, वह तो मनुष्यपने का व्यवहार है। मनुष्यगति का, हों! देह की तो यहाँ बात है ही नहीं।

अज्ञानी उस क्रिया को छाती से लगाता है। आहाहा! हमारी क्रिया, हमारी क्रिया।

उसमें खण्ड न पड़ो, विरोध न हो, ऐसी क्रिया में लवलीन रहता है। मनुष्य व्यवहार में लवलीन, उपाधिभाव में लवलीन (रहता है), ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? मनुष्यपने की गति को यहाँ उपाधि कहा न? वास्तव में तो मनुष्यपने के व्यवहार का विकल्प भी उपाधिस्वरूप है। आत्मा का व्यवहार नहीं। आत्मा तो अविचलित विलास में आत्मा आनन्द में रहे और आनन्द, श्रद्धा, ज्ञान में रमण करे, वह आत्मा का व्यवहार है। आहाहा!

दया-दान-व्रत विकल्प के व्यवहार को निकाल दिया। हेय! आहाहा! आत्मा विलास, वह व्यवहार यह तो व्यवहार भी नहीं। अमुक जगह व्यवहार कहे कि आत्मा का निश्चय, (उस) वस्तु अभेद का आश्रय करके दृष्टि, ज्ञान, चारित्र में रमणता हो, वह निश्चय और विकल्प उठता है, वह व्यवहार है। वह तो पर्याय की अपेक्षा से निर्मलता के साथ विकल्प को व्यवहार कहा। समझ में आया? परन्तु अन्तर मूल निश्चय जहाँ ज्ञेय अधिकार लिया, वहाँ तो ऐसा लिया कि भगवान आत्मा अपने अनाकुल आनन्दस्वरूप में एकाग्र होकर आनन्द के विलास में रमणता करे। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अर्थात् आनन्द की विलासता, वह आत्मा का व्यवहार है। दया-दान-व्रत-भक्ति का विकल्प, वह आत्मा का व्यवहार नहीं; वह तो मनुष्य का उपाधिस्वरूप व्यवहार है, जाओ! कहते हैं। आहाहा! कठिन पड़े भाई!

मुमुक्षु : ऐसा सुना भी न हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सुना भी न हो। सुना न हो तो उसे ऐसा हो जाता है कि यह क्या कहते हैं? अरे! बेचारा दया-दान-व्रत-भक्ति-तप कर-करके मर जाये। मर जाये। पूरे दिन १५-१५ दिन के अपवास, महीने-महीने के अपवास (करे), अभी एक व्यक्ति ने ९१ उपवास किये। ९१ समझे। तीन महीने और एक दिन। ओहोहो! क्या तपस्या? क्या तपस्या? उपाधिरूप मैल है। सुन तो सही! वह तो विकल्प है, राग है। भगवान आत्मा उपाधि के विकल्प से भिन्न है। ध्रुव चिदानन्द आनन्द की मूर्ति है। ऐसे ध्रुव का आश्रय और दृष्टि नहीं की (तो) व्यर्थ निरर्थक चार गति में भटकनेवाला है। उपाधिभाव में भटकेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

लो, यहाँ तो उपाधि आया न? एक मनुष्य का व्यवहार उपाधि है। ऐई! ऐसा आया मस्तिष्क में आने पर तो। आहाहा! भगवान! तेरा व्यवहार तो तेरी जाति का होता है।

मनुष्यगति में यह जो क्रिया जो है, राग-दया, दान, व्रत। ऐसा नहीं खाना और ऐसा नहीं पीना, एक पोरसी करना और दो पोरसी करना परन्तु किसे करना ? क्या करना ? दोपहर नहीं खाऊँ तो आधा उपवास हो गया। ऐसा है या नहीं ? बारह महीने तक चतुर्विध आहार (त्याग) करे, छह महीने के अपवास, इतना आधा हुआ न आधा ! बारह घण्टे का हो गया या नहीं ? आधा हो गया आधा। इसलिए वह प्रसन्न हो, कहे कि आहाहा ! अरे ! धूल में भी ऐसा तो अनन्त बार नहीं खाया और चतुर्विध आहार त्याग किया, उसमें क्या है ? वह तो विकल्प है, राग है, उपाधिभाव है। आहाहा ! ऐई ! भीखाभाई ! भीखाभाई कहे, हैरान हो गये थे अन्दर। उसमें मर जाते।

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान ! चार गति उपाधिरूप है। उसमें एक गति उत्पन्न हुई तो कहीं आत्मा उत्पन्न होता है ? आत्मा तो भगवान ध्रुव चिदानन्दस्वरूप है। पूर्व पर्याय का नाश हुआ तो कहीं आत्मा वस्तु का नाश हुआ है ? वह तो एक समय की पर्याय की उपाधि उत्पन्न हुई। **जो द्रव्य पूर्व पर्याय के वियोग से....** देखो, अब सिद्धान्त। क्या कहते हैं ? विशिष्टता देखा। ओहोहो ! **जो द्रव्य पूर्व पर्याय के वियोग से....** शरीर का वियोग और पर का वियोग, उसकी तो यहाँ बात ही नहीं। आहाहा ! भगवान ध्रुव चैतन्य प्रभु में पूर्व की पर्याय का वियोग हुआ, पर्याय के व्यय को वियोग कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? **जो द्रव्य पूर्व पर्याय के वियोग से और उत्तर पर्याय के संयोग से....** नयी पर्याय उत्पन्न हुई, उसका संयोग हुआ। आत्मद्रव्य के साथ उस पर्याय का उत्पाद हुआ, वह संयोग हुआ। ओहोहो ! समझ में आया ? पर का-बाहर का जड़ का संयोग और वियोग, उसकी यहाँ बात ही नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ?

वस्तु पूर्व अर्थात् पहले की अवस्था का व्यय और **उत्तर पर्याय के संयोग से होनेवाली उभय अवस्थाओं को आत्मसात् (अपने रूप) करता हुआ विनष्ट होता और उपजता दिखाई देता है,....** पूर्व की पर्याय का वियोग, नयी पर्याय का संयोग, ऐसे उत्पाद-व्ययरूप पर्याय में देखने में आता है, ऐसा कहते हैं। स्त्री का वियोग हुआ, स्त्री का संयोग हुआ। लक्ष्मी का वियोग हुआ, लक्ष्मी का संयोग हुआ। यह बात तो यहाँ करते ही नहीं। वह तो परद्रव्य की बात है। परद्रव्य का संयोग-वियोग तुझसे होता नहीं, तो यह तो तुझसे पर्याय में होता है, यह बात करते हैं। समझ में आया ?

जो द्रव्य अपनी पुरानी पर्याय को विनष्ट करता है, उसे वियोग कहते हैं। उसने पूर्व की पर्याय का वियोग किया। पर का तो वियोग-बियोग कर नहीं सकता, ऐसा कहते हैं। और अपनी नयी पर्याय का संयोग करता है। यह संयोग-वियोग पर्याय में दिया। बाहर से दूसरी चीज़ आती होगी? ध्रुवस्वरूप भगवान आत्मा नित्यानन्द का नाथ प्रभु, यह उसकी नयी पर्याय का संयोग और पुरानी (पर्याय) का वियोग, ऐसा उत्पाद-व्ययरूप द्रव्य दिखता है, तथापि द्रव्य उभय अवस्था में ऐसा हुआ नहीं। द्रव्य उत्पन्न और व्यय हुआ नहीं है। द्रव्य तो अनुत्पन्न और अविनष्ट है। संयोग में आया नहीं और वियोग में आया नहीं। वह तो पर्याय का संयोग-वियोग हुआ। द्रव्य का संयोग-वियोग नहीं होता। अरे! अरे! गजब बात, भाई! समझ में आया?

यहाँ तो पति मर जाये तो कहे कि, आहाहा! अरे! दुखिया हो गये, कोई आधार नहीं। संयोग, वियोग हो गया। अब यह संयोग-वियोग की तो यहाँ बात भी नहीं। वह तो जड़ है, पर है। पर के वियोग में ही है। हें? वह तो वियोग में ही है। तेरी और पर की चीज़ के तो वियोग में ही तू वर्तता है। आहाहा! यहाँ तो भगवान आत्मा ध्रुवस्वरूप चिदानन्द महाप्रभु! महन्त! महात्मा! उसकी पूर्व की पर्याय की अवस्था का—पर्याय का एक समय की पर्याय का वियोग होता है और एक समय की पर्याय का संयोग होता है। ओहोहो! पर्याय को द्रव्य का संयोग और द्रव्य को पर्याय का संयोग। ऐई! यह देखो न, दिगम्बर सन्तों की कथनी ही कोई कड़क! श्रीमद् लिखते हैं, दिगम्बर के वचनों के कारण रहस्य समझा जा सकता है। अलौकिक बात है। वस्तु मानो ऐसे ध्रुव पड़ी हो, उसे यह पर्याय का संयोग-वियोग होता है। समझ में आया?

मनुष्य की पर्याय का वियोग और देव की पर्याय का संयोग। उत्पाद-व्यय संयोग। पाठ में तो ऐसा है न, जहाँ से जन्म लेता है और मरता है-मृत्यु प्राप्त करता है। तथापि जन्मता और मरता नहीं। यही जन्म लेता है और यही मनुष्यपना प्राप्त करता है। ऐसा समझ में आया? **उत्तर पर्याय के संयोग से होनेवाली उभय अवस्थाओं को आत्मसात् (अपने रूप) करता....** पर्याय में, हों! पर्याय को अपनेरूप करता हुआ पर्यायबुद्धिवाला। ऐई! आहाहा! बाहर की तो बात नहीं परन्तु मनुष्यपने के विनष्टता का वियोग और देव की उत्पत्ति का संयोग, वह अपने में आत्मसात करता हुआ, पर्यायबुद्धिवाला अपने आत्मा में

आत्मसात् (अपने रूप) करता हुआ विनष्ट होता और उपजता दिखाई देता है, वही (द्रव्य) वैसी उभय अवस्थाओं में व्याप्त होनेवाला... उभय अवस्था में रहनेवाला **जो प्रतिनियतएकवस्तुत्व के कारणभूत....** प्रत्येक समय में निश्चय एक वस्तुत्व, वस्तुत्व के कारणभूत स्वभाव। देखो। **प्रतिनियतएकवस्तुत्व के कारणभूत स्वभाव उसके द्वारा (-उस स्वभाव की अपेक्षा से) अविनष्ट एवं अनुत्पन्न ज्ञात होता है;....** ऐसा ले न? ज्ञाता होता है, इसमें तो ज्ञाता लिया है। ज्ञाता खोटा है। ज्ञेय होता है। ज्ञात होता है, ऐसा लेना है। ज्ञाता होता है, यह झूठी बात है।

यह प्रतिनियत एक **वस्तुत्व के कारणभूत स्वभाव उसके द्वारा (-उस स्वभाव की अपेक्षा से) अविनष्ट एवं अनुत्पन्न ज्ञात होता है;....** विदति अर्थात् ज्ञात होता है। ज्ञात लिखा है। अपने क्या है गुजराती में? जानने में आता है बराबर है। वेद्यते है, जानने में आता है। एक स्वभावभूत द्वारा अविनष्ट और अनुत्पन्न ज्ञात होता है, जानने में आता है। भगवान आत्मा तो पर्याय के संयोग-वियोगरहित एकरूप ज्ञात होता है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो स्त्री, पुत्र, पैसा और संयोग-वियोग की बात ही नहीं की। मुनि की कहाँ, यह तो द्रव्य की बात करते हैं। मुनि स्वयं द्रव्य, द्रव्य। समझ में आया?

आत्मा तो भगवान है न? भगवान है, मुनि क्या? वह तो परिपूर्ण भगवान है। आहाहा! दोनों अनुत्पन्न और अविनष्ट भगवान ज्ञात होता है। समझ में आया? **वैसी उभय अवस्थओं में....** उपजता हुआ दिखायी होता है। **वैसी उभय अवस्थओं में व्याप्त होनेवाला जो प्रतिनियतएकवस्तुत्व के कारणभूत स्वभाव उसके द्वारा (-उस स्वभाव की अपेक्षा से) अवनिष्ट एवं अनुत्पन्न ज्ञात होता है;....** ज्ञात होता है। भगवान आत्मा तो पर्याय में उत्पन्नरहित होने पर भी, वस्तु अनुत्पन्न और अविनष्ट ज्ञात होती है। आहाहा! समझ में आया?

उसकी पर्यायें.... अब उसकी पर्यायें। वस्तु की अवस्था **पूर्व-पूर्व परिणाम के नाशरूप....** पूर्व-पूर्व परिणाम—पर्याय से नाशरूप। कितने शब्द प्रयोग किये हैं, देखो! वियोग-व्यय-नाशरूप, वियोग-व्यय-नाशरूप। **और उत्तर-उत्तर परिणाम के उत्पादरूप....** नयी-नयी पर्याय के परिणाम के उत्पाद अर्थात् संयोगरूप होने से **विनाश-उत्पादधर्मवाली....** देखो! **विनाश एवं उत्पादरूप धर्मवाली कही जाती हैं;....** पर्याय की अपेक्षा से उत्पाद

और विनाश, संयोग और वियोगवाली पर्याय को कहा जाता है। आहाहा! पर्याय विनष्ट होती है परन्तु कहीं ध्रुव विनष्ट होता है? पर्याय उत्पन्न होने से कहीं ध्रुव उत्पन्न होता है? ज्ञेय अवस्था में तो भगवान अनुत्पन्न और अविनष्ट कायम है। यह तो जीव का दृष्टान्त दिया, हों! उदाहरण दिया। इसी प्रकार सभी द्रव्यों में समझ लेना। यह तो उदाहरण और दृष्टान्त जिसे समझ में आये, उसे जीव में समझाते हैं।

एक-एक श्लोक और एक-एक न्याय से सारी चीज़ भर दी है। **पूर्व-पूर्व परिणाम के नाशरूप और उत्तर-उत्तर परिणाम के उत्पादरूप होने से, विनाश-उत्पाद धर्मवाला...** यह वस्तु को विनाश-उत्पादधर्मवाली **कहा जाता है।** समझ में आया? **और वे (पर्यायें) वस्तुरूप से द्रव्य से अपृथग्भूत कही गयी है।** समझ में आया? इस द्रव्य को भी ऐसा उत्पाद-व्यय विनाशवाला कहा जाता है और पर्याय वस्तुरूप से द्रव्य से अपृथग्भूत ही कही जाती है। द्रव्य से कोई भिन्न नहीं है। इसमें तो कहाँ गया वह ध्रुव? वह भले न परन्तु वस्तु स्वयं ऐसा कि उत्पादधर्मवाली है और व्यय वस्तुरूप से द्रव्य से अपृथग्भूत ही कही गयी है।

जो-जो पर्याय परमाणु में होती है, परमाणु में जो-जो पर्याय होती है पूर्व-पूर्व का नाश और उत्तर का उत्पाद, ऐसी देखने में आती है, और वह पर्याय भी वस्तु से अपृथग्भूत देखने में आती है। पर्याय उत्पाद-व्ययवाली बदलती है, वह वस्तु से अपृथक् देखने में आती है। पृथक् नहीं देखने में आती। समझ में आया?

एक-एक परमाणु में स्वतन्त्र पूर्व पर्याय का व्यय और नयी पर्याय का उत्पाद देखने में आता है। वह पर्याय भी वस्तु से अपृथक् देखने में आती है। कोई वस्तु बाहर पृथक् है और पर्याय बाहर पृथक् है, ऐसा नहीं है। पर से भिन्न सिद्ध करना है न? समझ में आया? **वे (पर्यायें) वस्तुरूप से द्रव्य से अपृथग्भूत ही कही गई हैं।** द्रव्य से भिन्न नहीं, ऐसा कहा गया है। ऐसा भगवान ने कहा है। सर्वज्ञ परमेश्वर ने परमाणु की एक समय की पर्याय का उत्पाद-व्यय होने पर भी वह ध्रुव उत्पाद-व्ययरूप से होता नहीं, तथापि उस ध्रुव को उत्पाद-व्ययवाला कहते हैं और उत्पादवाली पर्याय द्रव्य से पृथक् नहीं, ऐसा कहते हैं। गजब बात, भाई!

यह कौन इतना सब समझने के लिये निवृत्त है? वह हो तो बाहर का किया और

यह करे और वह किया, जाओ। यह हाथ पकड़े ऐसी बात है। वह खोटी ख्याल में आवे ऐसी है। हें? वह खोटा ख्याल है। सच्चा ख्याल तो यह है। बहुत जीवों को मैंने बचाया, बहुत जीवों को मैंने मारा, यह तो बात भी यहाँ नहीं है। क्योंकि वह तो तेरी पर्याय में होता नहीं। तेरी पर्याय से ऐसा होता भी नहीं। तेरी पर्याय में पुरानी (पर्याय) का व्यय और नयी (पर्याय) का उत्पाद, ऐसा द्रव्य देखने में आता है। ऐसा नहीं कि पर की पर्याय के विनाश से तेरा द्रव्य (विनाशवाला) देखने में आवे, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

इसलिए, पर्यायों के साथ एकवस्तुपने के कारण जन्मता और मरता होने पर भी.... लो! आत्मा व्यय और उत्पाद की पर्यायों के साथ मनुष्य (पर्याय) का नाश और देवपर्याय के उत्पाद के साथ, एक वस्तुपने के कारण; वस्तु तो एक है और दूसरी वस्तु नहीं, ऐसा कहते हैं। एक वस्तुपने के कारण जन्मता और मरता होने पर भी; एक वस्तुपने के कारण जन्मता और मरता—ऐसा कहते हैं। पर्यायों के कारण, ऐसा लिया है। पर्यायों के साथ भगवान आत्मा एक वस्तुपने के कारण। किसके साथ? पर्याय के साथ एक वस्तुपने के कारण। ऊपर 'आत्मसात' करता आया था न? भारी बात! आहाहा!

टीका, अलौकिक टीका है। समझ में आया? इसलिए, अपृथग्भूत कहा गया है। ऐसा कहा न? 'आत्मसात' करते हुए यह सिद्ध करते हैं। **इसलिए, पर्यायों के साथ....** कौन? द्रव्य। **एकवस्तुपने के कारण....** ऐसा। पर्याय उत्पन्न-व्यय होती है, उसके साथ वस्तु एकपने के कारण। **जन्मता और मरता होने पर भी....** अब दूसरी भाषा ली है, देखो! उत्पन्न और व्यय, वियोग और संयोग, समझे? नाश और उत्पाद, यहाँ जन्मते और मरते होने पर भी। नयी पर्याय का जन्म होता है। पुरानी पर्याय का व्यय होता है। यह जन्म-मरण (होने) **पर भी जीवद्रव्य सर्वदा अनुत्पन्न एवं अविनष्ट ही देखना (-श्रद्धा करना);....** देखो! यहाँ श्रद्धा करना। आहाहा!

भगवान आत्मा जीवद्रव्य, देखो! यहाँ जानपने में यह बात लाकर रखी है। **जीवद्रव्य सर्वदा अनुत्पन्न एवं अविनष्ट, उत्पन्न नहीं और नाश नहीं, ऐसा देखना।** ऐसा श्रद्धान करना। आहाहा! समझ में आया?

'दृष्टव्यम्' देखना। देखना अर्थात् श्रद्धान करना, ऐसा। समझ में आया? दूसरे का जानना-देखना छोड़कर इस पर्याय को भी एकपने के साथ उत्पन्न-व्यय का देखना

छोड़कर, जीवद्रव्य भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु! जीवद्रव्य सदा, सर्वदा अनुत्पन्न, वह उत्पन्न नहीं होता और विनष्ट नहीं होता—ऐसा श्रद्धान करना।

देव-मनुष्यादि पर्यायें उपजती हैं और विनष्ट होती हैं क्योंकि वे क्रमवर्ती होने से उनका स्वसमय उपस्थित होता है.... देखो, भाषा। कैसा न्याय रखा है। कहते हैं कि भगवान आत्मा ध्रुव, पर्याय में आता ही नहीं और उत्पन्न-व्यय भी नहीं होता, ऐसा देखना। और **देव-मनुष्यादि पर्यायें उपजती हैं....** देव की पर्याय का उत्पाद हुआ और मनुष्य की पर्याय का नाश हुआ। **क्योंकि वे क्रमवर्ती होने से....** एक के बाद एक परन्तु वह होनेवाली (पर्याय), ऐसा। हाँ। मनुष्यपने के पश्चात् देव (पर्याय) होनेवाली है, वही होगी, क्रमवर्ती ऐसी ही है। आहाहा! समझ में आया?

देखो न, स्पष्टीकरण करते हैं। क्योंकि वे क्रमवर्ती होने से उनका स्वसमय उपस्थित होता है। देखो! जिस समय की मनुष्य की पर्याय है, उसका स्वसमय प्राप्त होता है, उस समय की क्रमबद्ध की पर्याय जो आनेवाली थी, वही आती है। उसका स्वसमय है। स्वसमय प्राप्त होता है। आहाहा! देहादि की बात नहीं, हों! मनुष्यगति की पर्याय की बात है। देखो, यह क्रमबद्ध। मनुष्य की पर्याय की प्राप्ति है, तो उसके स्वकाल में ही प्राप्त होती है। देह छूटकर देव होता है तो स्वकाल में ही देव प्राप्त होता है। अपने देव प्राप्त करने के स्वकाल में ही देव प्राप्त होता है। समझ में आया?

इसमें कोई इनकार करे? देखो! **क्रमवर्ती होने से...** एक तो इतना रखा परन्तु उल्टा **स्वसमय उपस्थित होता है....** ध्रुव तो ध्रुव है। परन्तु जब मनुष्यपने की उत्पत्ति होनेवाले काल में तभी मनुष्यपने उत्पन्न होता है। गति, गति, हों! उसका स्वसमय-अपना स्वकाल। मनुष्य होने के अपने काल-समय में मनुष्य होता है और देव होता है तो अपने काल समय में देव होता है। बराबर है? आगे-पीछे नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान वीतरागदेव के कथन इतने सूक्ष्म और गम्भीर (हैं कि) पूरे षट्द्रव्य का अन्दर कथन समाहित कर दिया है। लो! यहाँ तो जीव का दृष्टान्त दिया। ऐसे परमाणु, परमाणु आया या नहीं? एक-एक परमाणु में जो एक समय की पर्याय है, (वह) उत्पन्न होती है और विनष्ट होती है। नयी पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसा देखना और द्रव्य को उत्पाद-व्यय बिना का ध्रुव देखना। और उस समय में जो पर्याय आनेवाली है, उसका स्वसमय स्वकाल में आयेगा। तेरे कारण

से नहीं। आहाहा! हाथ-पैर चलते हैं और भाषा आती है, उसके काल-परमाणु में स्वकाल में पर्याय होती है, स्वसमय में होती है। हें ?

क्रमबद्ध हो गया, फिर पर में कुछ पुरुषार्थ नहीं करना ? बस बैठ जाना ? शरीर से कोई काम नहीं करना, शरीर से कोई पुरुषार्थ नहीं करना ? कौन करे धूल ? सुन तो सही! शरीर के रजकण में रजकण कायम रहने पर भी और पर्याय विनष्ट और उत्पन्न होने पर भी, उसके स्वसमय में वह पर्याय उत्पन्न होती है। स्वसमय में वास्तविक उपस्थित होती है। आत्मा के कारण से परमाणु में ऐसी पर्याय होती है, ऐसा नहीं। देखो, द्रव्य-गुण-पर्याय। फूलचन्दजी! बहुत कठिन काम, भाई! बराबर है ? परमाणु में भी उसकी पर्याय स्वकाल हो, तब प्राप्त होती है, ऐसा कहते हैं।

नहीं, नहीं, ऐसा नहीं है - ऐसा इनकार करते हैं। सम्यग्दर्शन भी उसके स्वकाल में प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं। ऐई! ऐसी स्वकाल की प्राप्ति होने का ज्ञान कब प्राप्त होगा ? द्रव्यदृष्टि हो और द्रव्य का ज्ञान हो, तब स्वकाल का ज्ञान प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? ओहो! वीतराग का द्रव्यानुयोग तत्त्वज्ञान, श्रीमद् ने लिखा है महागम्भीर... महागम्भीर। द्रव्यानुयोग गम्भीर है। श्रीमद् ने पत्र में लिखा है, शुक्लध्यान का कारण है। उसका अर्थ करके लिखा है। अर्थ करने से पहले लिखा है। आहाहा! समझ में आया ?

कहते हैं कि आत्मा में अर्थात् छहों द्रव्यों में है या नहीं यह ? यह तो दृष्टान्त है। जीव का तो दृष्टान्त उदाहरणरूप से दिया है। सब परमाणु जितने हैं, उन एक-एक परमाणु में पूर्व पर्याय का वियोग और नये का उत्पाद, ऐसा देखना और ध्रुव को उत्पाद-व्यय बिना का देखना, एक बात। वस्तु से पर्याय अपृथक् है, भिन्न नहीं। और उस पर्याय का जिस समय का काल है, उस समय में ही उपस्थित होती है। **और बीत जाता है।** जो स्वसमय उसका व्यय होने का है, तब ही वह व्यय होती है। आहाहा! समझ में आया ? मनुष्यगति का भी जब व्यय होना है, उस समय ही होगा, ऐसा कहते हैं। अकालमृत्यु-बृत्यु कुछ नहीं है, ऐसा कहते हैं, भाई! यह लाते हैं वे। अकालमृत्यु होती है और ऐसा है और वैसा होता है न, अब सुन न ? यहाँ तो मनुष्य की पर्याय जिस समय में नाश होनी है, उस समय में नाश होगी। आगे-पीछे होती नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

धारावाही प्रवचन नं. २६ (प्रवचन नं. २५), गाथा-१८-१९
दिनांक - ०९-१२-१९६९, कार्तिक कृष्ण १५, मंगलवार

अन्तिम थोड़े शब्द हैं। देखो, अन्तिम शब्द हैं न? **क्योंकि वे क्रमवर्ती होने से उनका स्वसमय उपस्थित होता है और बीत जाता है।** देखो, सिद्धान्त। कहते हैं कि यह भगवान आत्मा वस्तु से अनादि-अनन्त ध्रुवतत्त्व होने पर भी, उसे जो मनुष्यपना और देवपना प्राप्त होता है, जिस समय में और काल में मनुष्यपना मिलता है, उस समय उसे देवपना नहीं होता। जिस समय देवपना होता है, तब उसे मनुष्यपना नहीं होता।

वस्तु तो अनादि-अनन्त है। ध्रुव चैतन्य द्रव्य है। उसकी पर्याय में चारगति के भव, ऐसा कहते हैं कि **क्रमवर्ती होने से....** भव हैं, वे क्रम-क्रम से प्राप्त होते हैं। चार गति के भव एक साथ नहीं होते। **होने से उनका स्वसमय उपस्थित होता है....** उस-उस भव का काल आवे, तब उस भव की प्राप्ति होती है। समझ में आया? ऐसा कहते हैं (कि) क्रमबद्ध है। १८ में है और २१ में भी ऐसा है। यह तो दृष्टान्त है। अनन्त द्रव्य हैं। भगवान ने छह द्रव्य देखे। भगवान परमात्मा आत्मा स्वरूप शुद्ध चैतन्यमूर्ति का जिसने अन्तर अनुभव करके स्वरूप में स्थिर होकर जिसने सर्वज्ञपद प्राप्त किया, ऐसे भगवान ने छह द्रव्य ज्ञान में देखे। वे छहों द्रव्य ध्रुव और उत्पाद-व्ययवाले हैं, ऐसा सिद्ध करना है। कायम रहनेवाले भी हैं और उन्हें स्वसमय जब जो पर्याय आनेवाली है, तब उसे स्वसमय पर्याय होती है। समझ में आया? उसका यहाँ मनुष्यपने का, जीव का दृष्टान्त दिया है। छहों द्रव्यों को सिद्ध करना है।

यह क्रमवर्ती भी छहों द्रव्यों में सिद्ध होता है। भाई! ऐसा नहीं कि यह मनुष्य का दृष्टान्त। उदाहरण है। यह जड़ परमाणु है। वह भी वस्तुरूप से परमाणु ध्रुव है। और यह उसकी जो समयवर्ती पर्याय है, वह पर्याय स्वकाल में आती है। आत्मा से नहीं। समझ में आया? यह अँगुली हिलती है, वह आत्मा से नहीं। इसमें परमाणु का उस समय का पर्याय का स्वकाल होता है, इसलिए स्वकाल उपस्थित होता है। पर्याय आयी और उपस्थित होता है। और यह स्वकाल जो है, (वह) फिर बीत जाता है, दूसरे समय में टल जाता है। समझ में आया? जड़ का ऐसा स्वभाव है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : छहों द्रव्यों का ?

पूज्य गुरुदेवश्री : छहों द्रव्यों का।

वस्तु तो भगवान आत्मा अनादि-अनन्त है, इसी प्रकार परमाणु रजकण पॉईन्ट भी अनादि-अनन्त ध्रुव है। परन्तु जैसे मनुष्य का काल हो, तब मनुष्यभव होता है। यह शरीर मनुष्य है, वह नहीं, यह तो देह जड़ है। उसे यहाँ मनुष्यपना कहते नहीं। अन्दर में गति नाम का उदय और गति की योग्यता अन्दर है, वह मनुष्यपने की पर्याय स्वकाल में, उस समय में उस काल में उस भव में आनेवाली, वह आती है। **वे क्रमवर्ती होने से उनका स्वसमय उपस्थित होता है....** अर्थात् उसका स्वकाल तैयार होता है, तब भव और प्रत्येक द्रव्य में पर्याय होती है और उसका स्वकाल बीत जाता है। समझ में आया ?

जो उसकी आयी हुई-उपस्थित हुई समयवर्ती पर्याय दूसरे समय में बीत जाती है। समझ में आया ? इसी प्रकार यह एक-एक परमाणु में या कर्म के रजकणों में आत्मा कर्म को बाँधता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? आत्मा को उसके स्वकाल में राग आता है, वह राग बीत जाता है। इतना इसमें होता है। परन्तु इससे कर्म का बन्धन हो, वह जीव को राग हुआ, इसलिए कर्म का बन्धन होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? वह कर्म के रजकणों का जो बन्ध की योग्यता का काल है, तब वे परमाणु कर्मरूप परिणमते हैं। बस, उपस्थित (अर्थात्) कर्मरूप परिणमना, उसका स्वकाल, वह उसकी उपस्थिति है। समझ में आया ? यह सूक्ष्म है। हें ? फिर यह कहाँ कहते हैं ? उसके कारण पर्याय होती है, जीव के कारण नहीं, ऐसा है। वह द्रव्य है न ? जगत की चीज़ है। सूक्ष्म बात है। जगत से अलग है। बगसरा से (आये) हैं। नरभेरामभाई के पुत्र हैं। परन्तु यह सब सेठाई में गया हो, सुना न हो, ऐसी बात है। नयी सूक्ष्म बात है, हों!

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि जीव को जब उसके सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का स्वसमय है, तब वह पर्याय आकर खड़ी रहती है। सुनो। समझ में आया ? देखो, **वे क्रमवर्ती होने से उनका स्वसमय उपस्थित होता है....** अर्थात् कि जब आत्मा उसे अपने जिस समय की सम्यग्दर्शन की पर्याय ध्रुव चिदानन्द आत्मा हूँ, ऐसा लक्ष्य करके जो पर्याय स्वकाल में उत्पन्न होती है, उस काल में ही उसका स्वसमय है। और दूसरे समय में उस पर्याय का व्यय होता है। भले सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई, परन्तु दूसरे समय में सम्यग्दर्शन की पर्याय

दूसरी होती है। अब यहाँ तो कहते हैं कि ऐसा होने पर भी, एक बात।

अब दूसरी (बात) आत्मा में राग का काल आता है, जिस समय का, तब राग होता है। वह समय उसका-राग का स्वकाल है और दूसरे समय में वह राग का बीत गया काल, उसकी इतनी बात, बस। वह उसकी पर्याय में होता है। अब कर्म का जो बन्धन होता है, वह इस राग के कारण नहीं। क्योंकि यह परमाणु भी स्वतन्त्र पदार्थ है। सूक्ष्म बात है। समझ में आया? यह परमाणु भी स्वतन्त्र जगत के, जैसे आत्मा हैं, वैसे यह परमाणु द्रव्य है और जितनी शक्ति और गुण आत्मा में है, उतने ही गुण एक परमाणु में है। इसमें जड़ है, उसमें (आत्मा में) चैतन्य है। वह परमाणु कर्म होने की योग्यता का स्वकाल हो, तब कर्म होता है। आत्मा ने राग किया, इसलिए कर्म की पर्याय होती है, ऐसा नहीं है। ऐसा वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया?

इसी प्रकार आत्मा में सम्यग्दर्शन की प्राप्त पर्याय आत्मा के अवलम्बन से जिस समय होनी है, उस समय होगी। समझ में आया? वह सम्यग्दर्शन का काल होगा, तब प्राप्त होगी। परन्तु वह सम्यग्दर्शन की पर्याय कोई देव-गुरु-शास्त्र की अस्ति और उनकी मान्यता की, इसलिए होती है, ऐसा नहीं है। भारी सूक्ष्म। ऐसा वस्तु का स्वरूप ऐसा सर्वज्ञ ने कहा है और ऐसा है। सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव तीर्थंकरदेव, जिन्होंने एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे, जाने और कहा, वैसा यह वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया? यहाँ तो चार गति की व्याख्या है। भाई! परन्तु सबको लागू पड़ती है। ऐसी सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा! उसमें क्या है? आहाहा!

भगवान आत्मा ध्रुव चिदानन्द अविनाशी सतस्वरूप है, वह तो ध्रुव है। परन्तु उसकी एक समय की पर्याय का स्वकाल है, तब आती है—उपस्थित होती है। कठिन बात है, भाई! और दूसरे समय में उस स्वकाल का समय बीत जाता है, इसलिए उस पर्याय का व्यय होता है। किसी पर के कारण से व्यय होता है, ऐसा नहीं है। अज्ञानी को अन्दर मिथ्यादर्शन की पर्याय उत्पन्न हुई, मिथ्याश्रद्धा (हुई), वह कर्म के कारण नहीं—ऐसा कहते हैं। उसकी अपनी ही मिथ्याश्रद्धा की विपरीत पर्याय वहाँ उपस्थित होती है। वह मिथ्याश्रद्धा उपस्थित हुई, वह काल में हुई है। दूसरे समय में उसी मिथ्याश्रद्धा का व्यय होता है अर्थात् कि नाश होकर दूसरी मिथ्याश्रद्धा उत्पन्न होती है। अथवा मिथ्याश्रद्धा की उपस्थिति है, वह

दूसरे समय में सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति हुई। उसका उत्पत्ति का काल है इसलिए (उत्पत्ति हुई)। तब मिथ्यादर्शन का व्यय / अभाव होता है। वह दर्शनमोह कर्म का उदय है, इसलिए यहाँ मिथ्यात्व की पर्याय उत्पन्न हुई, ऐसा नहीं है और कर्म के उदय का यहाँ अभाव हुआ, इसलिए यहाँ सम्यग्दर्शन हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! भारी सूक्ष्म भाई! समझ में आया?

यह तो बहुत परिचय करे तब समझ में आये ऐसा है। वे बहियाँ वहाँ की बहुत फिरायी हो, उसकी तो खबर पड़े, पैसा और धूल में है या नहीं। यह तो सूक्ष्म बात है, बापू! भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर जिन्होंने एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक एक साथ जाने, ऐसे भगवान के मुख में से इच्छा बिना दिव्यध्वनि निकली। उन्हें इच्छा नहीं होती। उस वाणी में ऐसा आया है। यह पंचास्तिकाय है। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य का बनाया हुआ पंचास्तिकाय, (ऐसा) निमित्त से कहा जाता है। श्रीमद् ने इसके मूल पाठ के-श्लोक के सब अर्थ किये हैं। श्लोक के अर्थ का शब्दार्थ किया है, इतना बस। समझ में आया? परन्तु उसका रहस्य जो टीका में है, वह प्रकार पूरा अलग ही है। एक शब्द में तो (कमाल किया है)। कहते हैं, तीन काल के पदार्थ उस-उस समय की वहाँ-वहाँ उस-उस प्रकार की अवस्था का उपस्थित काल हो तो होती है। दूसरे समय में वह-वह काल व्यतीत हो जाता है। भगवान आत्मा और परमाणु तो ध्रुवरूप रहते हैं। समझ में आया? मनुभाई!

यह तो इसमें सब अपने भव का है, हों, भव का। मनुष्यभव तो बीत गया (परन्तु) भगवान तो अनादि-अनन्त ध्रुव है। मनुष्यभव बीत गया तो उसका उपस्थित काल था, तब था और वह बीत गया, तब दूसरी पर्याय देव की या तिर्यंच की जिसे जो होनेवाली हो, वह स्वकाल में वह देव की अवस्था होती है। आड़े-टेढ़े काल में नहीं होती। एक समय भी आगे-पीछे नहीं। आहाहा! ऐसी बात है? ऐसा जाननेवाले को तो भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द आनन्दकन्द है, ऐसी दृष्टि होने से उसे क्रमबद्ध की पर्याय का सच्चा ज्ञान और सच्चा भान होता है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **वे...** अर्थात् कि **पर्यायें क्रमवर्ती होने से....** प्रत्येक परमाणु और आत्मा में। भगवान ने छह द्रव्य देखे—अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और (एक) आकाश। छहों द्रव्य ध्रुवरूप से अनादि-

अनन्त हैं। परन्तु उनकी समय-समय की (जो) अवस्था होती है, वह क्रम-क्रम से होती है। और क्रम-क्रम से भी वह काल उनका हो, तब वह होती है। इसमें तो यह स्पष्ट बात है। उसका स्वसमय उपस्थित होता है, ऐसा है। अमुक पर्याय हो, (ऐसा नहीं) यही होगी। आहाहा! जगत को सत्य मिलता नहीं, फिर जहाँ-तहाँ रुककर मिथ्यात्व सेवन कर चौरासी (के अवतार) में चला जाता है।

मुमुक्षु : यह मौनभाव को लाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मौनभाव को लाता है, ऐसा नहीं, वह सत्यार्थ तत्त्व को लाता है। वाणी का मौनपना, वह भी आत्मा नहीं कर सकता। वाणी जो यह निकलती है, वह वाणी शब्द की पर्याय की उपस्थिति होने के योग्य (होती है), तब वाणी उसमें होती है। आत्मा से नहीं। उसका स्वकाल उसके जो परमाणु में हैं उनमें शब्द वर्गणा है। उसमें उसकी भाषा की पर्याय का उपस्थिति काल हो, तब वह पर्याय शब्दरूप होती है, आत्मा के कारण नहीं। आत्मा की इच्छा के कारण नहीं। आत्मा का ज्ञान हुआ, मुझे ऐसा बोलना है, इस प्रकार (भी) नहीं। आहाहा! कहो, चिमनभाई! मौनपने को कौन प्राप्त होता है? ऐसा कहते हैं, बोल नहीं सकता। आहाहा! बापू! वस्तु ऐसी सूक्ष्म है। वीतराग तत्त्व ऐसा है कि तीन काल में अन्यत्र कहीं है ही नहीं। समझ में आया?

दूसरे के साथ मिलान करने जाये (तो) वीतराग के मार्ग का किसी के साथ मिलान हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा कहकर यह कहते हैं कि जिस-जिस द्रव्य की जिस समय में जहाँ जड़ की पर्याय होती है, वह जड़ के कारण होती है, तेरे कारण उसमें कुछ हो, (वह) कहते हैं, बिल्कुल हराम बात है। समझ में आया? ऐसे हाथ जोड़कर भगवान को वन्दन होता है, (वह) कहते हैं कि औदारिक के परमाणु की उस प्रकार के पर्याय का काल था, इसलिए होता है। जीव को विनय का शुभविकल्प आया, इसलिए यह हाथ की पर्याय ऐसे जुड़ती है, ऐसा नहीं है। यह ऐसी भेदज्ञान की बात है। नाम क्या भाई? उत्तमचन्दभाई। भाई तो बहुत आते हैं। बहुत वर्ष हो गये तो भी नरभेरामभाई आते हैं। समझ में आया?

भगवान की भक्ति का एक विकल्प आया। वह भक्ति का भाव, शुभ-पुण्य है; वह धर्म नहीं, तथापि वह विकल्प के काल में विकल्प आया है। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जल्दी या पहले आ सके, ऐसा कुछ है नहीं। क्या हो? तथापि उस काल में जब हाथ ऐसे होता है, वह उसके परमाणु की पर्याय का स्वकाल है, इसलिए ऐसे होता है। और विकल्प आया इसलिए हाथ जुड़ता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! कहो, रूपचन्दजी! गजब बात, भाई! कहो, समझ में आया या नहीं? आहाहा! 'मथेण वंदामि' एक विकल्प आया। 'मथेण वंदामि' तो दृष्टान्त है। यह तो विकल्प है शुभराग है। वह भी उसके स्वकाल में आया है। कर्तृत्व करके लाया है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अब फिर बात चलती है। अब शब्द की जो पर्याय होती है, वह भी उस काल में 'मथेण वंदामि' शब्द जो उठे, वह परमाणुओं में वह पर्याय हुई, इसलिए यह शब्द आया है। आहाहा! भीखाभाई! वीतराग के मार्ग के ऐसे बोले। जीव को अजीव माने तो मिथ्यात्व, अजीव को जीव माने तो मिथ्यात्व। बोल में भाषा की पर्याय मुझसे होती है, वह तो अजीव का बाप हुआ। तूने अजीव को जीव माना। समझ में आया या नहीं?

यह तो बोल आवे न, साधु को कुसाधु माने तो मिथ्यात्व, कुसाधु को साधु माने तो मिथ्यात्व। परन्तु कुसाधु कहना किसे, इसकी तो तुझे खबर नहीं। क्यों चेतनजी! एक शब्द में तो बहुत डाल दिया है। भाई २१ गाथा में भी यही है वापस। २१ है न? अन्तिम। अन्तिम है। 'जिसका स्वकाल बीत गया है, ऐसे सत् पर्यायसमूह का विनष्ट हुआ है जिसका स्वकाल उपस्थित हुआ है, आ पहुँचता है, ऐसे असत् को उत्पन्न करता है।' २१ में अन्तिम बहुत सरस। ओहोहो! पंचास्तिकाय कुन्दकुन्दाचार्य (देवकृत है)। समझ में आया? अलौकिक बात है। ऐसा जिसे जँचे, उसकी दृष्टि चैतन्य के ध्रुव की ओर जाती है। उसमें आया है। यह क्या कहा? ऐई! उसे समय में पर्याय होती है और उसे समय में बीत जाती है। अब उसकी दृष्टि कहाँ जाये? वह ध्रुव चिदानन्द आत्मा ज्ञायकमूर्ति है, उसकी दृष्टि होने पर उसे सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन होता है। तब जिस समय की अवस्था मानी थी आवे, ऐसा जाने और जाये, उसे जाने। वह अवस्था राग को करे भी नहीं और राग को छोड़े भी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

एक यहाँ देखना है। सम्यग्दर्शन—धर्म की पर्याय कहीं बाहर से नहीं आती और बाहर के निमित्त से भी नहीं आती – ऐसा कहते हैं। साक्षात् तीन लोक के नाथ तीर्थंकर भगवान महाविदेह में समवसरण में सीमन्धर भगवान विराजते हैं। समझ में आया? तो

उन्हें वन्दन करने से भी समकित होता है, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। ऐई! अरे! अरे! कठिन बात। भगवान ने यहाँ इनकार किया है। भगवान कहते हैं कि मैं ऐसा कहता हूँ कि यह तो विकल्प आवे, इसलिए होता है। होता है। भक्ति का-राग का (विकल्प) उस काल में आवे तो होता है। ज्ञानी धर्मी ध्रुव की दृष्टिवाला उस राग को जाननेवाला है, इसलिए वह स्वसमय को जानता है। उसके स्वसमय को अर्थात् पर्याय को (जानता है)। आहाहा! भारी कठिन काम! वीतराग का तत्त्व (ऐसा है)। समझ में आया?

भगवान ऐसा कहते हैं। यह क्या, यह कौन कहते हैं? यह भगवान कहते हैं। हें? उनकी वाणी दिव्यध्वनि खिरी थी न? दिव्यध्वनि में से गणधरों ने शास्त्र रचे। वहाँ यह कुन्दकुन्दाचार्य (सीमन्धर) भगवान के पास संवत् ४९ में गये थे और आठ दिन वहाँ रहे थे। साक्षात् परमात्मा विराजते हैं। अभी आज वह के वह भगवान हैं। क्योंकि आयुष्य लम्बा करोड़पूर्व का है, कितने ही ऐसा कहते हैं, आयुष्य करोड़पूर्व का है (तो) सब करोड़पूर्व जीवे? सब करोड़पूर्व नहीं जीते, सुन न! और सब भी होता नहीं। कितने तो अन्तर्मुहूर्त में मरें, कितने लाख करोड़ वर्ष में मरें। तीर्थंकर का करोड़पूर्व का (आयुष्य) हो, परन्तु कहीं दूसरे मनुष्यों का सबका समान होगा? समझ में आया?

कुन्दकुन्दाचार्य, भगवान के पास संवत् ४९ में गये थे (उन्हें) २००० वर्ष हो गये। वहाँ आठ दिन रहकर, वहाँ से आकर यह शास्त्र बने हैं। ऐसा यह भगवान कहते हैं। भगवान ने मुझे ऐसा कहा, ऐसा यहाँ सन्देश देते हैं। समझ में आया? ये अर्थात् जो मनुष्य की पर्याय और देव की पर्याय हुई, वे मनुष्य की पर्याय क्रमवर्ती होने से **उनका स्वसमय उपस्थित होता है और बीत जाता है।** गजब बात की है! उसका जो पर्याय का काल बीत गया, इसलिए नाश होती है, वह स्वयं के कारण से है। पर के कारण से कहीं कर्म के कारण यहाँ और गुरु के कारण यहाँ और देव के कारण यहाँ, ऐसा वस्तु के स्वरूप में तीन काल-तीन लोक में नहीं है। समझ में आया? अरे! अरे! भाई!

लो, इसमें तो यह निकला कि जब कषाय की मन्दता का विकल्प है पहला, तब उस विकल्प का काल है, इसलिए हुआ। अब वह विकल्प का काल बीत गया, तब द्रव्य के लक्ष्य से सम्यग्दर्शन की पर्याय का काल आया। ध्रुव के कारण से नहीं आया। ऐई! इस सब शैली में इतना भरा है। यह तो कहते हैं कि यह द्रव्य हो तो हो न? कहते हैं, शुभ

हो तो हो, यह किसने कहा ? समझ में आया ? द्रव्य कायम रहा हुआ है। ध्रुव वस्तु। द्रव्य अर्थात् वहाँ पैसा नहीं, हों! उत्तमचन्दभाई! यह कहते हैं कि हमारा द्रव्य अर्थात् पैसा। यहाँ तो भगवान आत्मा भी द्रव्य और एक-एक परमाणु भी द्रव्य। यह तो अनन्त परमाणु का पिण्ड स्कन्ध (शरीर) है। समझ में आया ? इसमें एक-एक पृथक् परमाणु अपने काम करता है। इकट्ठा नहीं। इसमें एक-एक परमाणु के स्वकाल की पर्याय उत्पन्न हो, तब उसके कारण से होती है। उसकी पर्याय दूसरे समय में व्यय होती है, वह भी परमाणु की पर्याय के कारण व्यय होती है। साथ में संयोग है, इसलिए ऐसा होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

आत्मा अन्दर है, इसलिए यह हाथ ऐसे-ऐसे होता है, ऐसा नहीं - ऐसा कहते हैं। उसे तत्त्व की खबर नहीं कि आत्मा भिन्न है और जड़ भिन्न है। और जड़ की पर्याय का स्वकाल आवे, तब वह पर्याय ऐसी होती है। नहीं कि आत्मा के कारण ऐसी होती है। अज्ञानी को खबर नहीं कि जड़ क्या और चैतन्य क्या ? उसकी शक्ति की अवस्था क्या और ध्रुवता क्या ? पोपटभाई! समझ में आया ? ऐ मनसुखभाई! क्या होगा यह ? यह क्या करते हैं ? इलेक्ट्रिक। इलेक्ट्रिक का कहते हैं कि जिस समय ऐसे प्रकाश की पर्याय होनी है, वह परमाणु का स्वकाल आवे, तब होती है। आहाहा! यह पदार्थ पाठ है। भगवान का कहा हुआ पदार्थ विज्ञान पाठ है। भाई! आहाहा! तुझे तत्त्व क्या है और तत्त्व की विपरीत दृष्टि कैसे होती है, उसकी भी खबर नहीं। समझ में आया ?

वे क्रमवर्ती होने से उनका स्वसमय उपस्थित होता है.... ओहोहो! एक शब्द ने तो गजब किया है न ? हें ? ओहोहो! एक-एक समय की प्रत्येक द्रव्य की, जिस समय का काल है वहाँ हो, (उसमें) मैं इस प्रकार परिणमूँ, ऐसा भी वहाँ है नहीं। परिणमता है, उसमें और परिणमना है क्या ? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समय का परिणमन होता है, उसे और मैं परिणमाऊँ, ऐसा दो पना कहाँ से आया ? और बीत जाने की पर्याय है, उसका मैं नाश करूँ, यह कहाँ से आया ? ऐसा कहते हैं। बहुत गम्भीर! समझ में आया ? कान्तिभाई! इसमें है। भगवान ने कहा हुआ है, वह कहा जाता है। कहो, समझ में आया या नहीं ?

इसमें सम्यग्दर्शन की पर्याय का ध्येय तो ध्रुव है, ऐसा कहते हैं। ऐ कान्तिभाई! उसमें यह नहीं आया ? पहले उसने बहुत गड़बड़ की थी। और फिर बदल गया। फिर तो

पश्चाताप करता था। कहते हैं, सम्यग्दर्शन का विषय ध्रुव और पर्याय दो है, ऐसा नहीं। कान्तिभाई! सम्यग्दर्शन की अपूर्व पर्याय, उसका विषय ध्रुव चैतन्य है। उसका विषय पर्याय नहीं, उसका विषय विकल्प नहीं और उसका विषय देव-गुरु-शास्त्र भी नहीं। आहाहा! ऐ जेठाभाई! हें? इतनी क्रिया करें, गर्म पानी पीवें, उपधान करें, डेढ़ महीने तक उठ-बैठ करे न? अपवास कर-करके भगवान के पास जाये और उठ-बैठ करे। खमासणा (करे)। कहते हैं कि वह जड़ की पर्याय उस काल में होनेवाली है, इसलिए होती है, तेरे कारण नहीं। तुझमें कदाचित् शुभराग हुआ हो तो वह भी तेरे कारण और वह शुभराग, धर्म नहीं और धर्म की उत्पत्ति का कारण भी नहीं। क्योंकि शुभराग के काल में धर्म नहीं और शुभ के पश्चात् जब दृष्टि ध्रुव पर हुई, तब जो धर्म की पर्याय प्रगट हुई, वह स्वकाल में प्रगट हुई है। वह शुभराग के कारण नहीं। कनुभाई! नटुभाई! समझ में आया या नहीं? वकील है न? आहाहा! देखो न, यह भव चले जाते हैं। क्षण में होकर दूसरा भव, लो! आहाहा! कौन किसका करे? कुत्ते को आज वापस रक्त निकलता है, देखो,... ओहो! यह परमाणु की यह अवस्था उसे दु:ख का कारण नहीं है। आहाहा!

इस शरीर के परमाणु बदले या छुरा लगा, उस छुरे के कारण घाव पड़ा, ऐसा नहीं है। क्योंकि घाव पड़ा है, उसके परमाणु का उत्पाद काल ऐसा था, उसके कारण से हुआ है और छुरा लगा, इसलिए आत्मा को दु:ख की दशा हुई है, ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब बात है! वह दु:ख का विकल्प तो राग-द्वेष का किया, तब वह उसके काल में हुआ है। शरीर की अवस्था के कारण यह दु:ख की दशा है, ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? मधुभाई! ऐसी बात है। सूक्ष्म बहुत।

वे क्रमवर्ती होने से, गजब काम किया है न! देखो! 'उप्पन्तो य विणहो देवोमणुस्ते ति पज्जाये' इसमें से यह निकाला। यह १८वीं गाथा हुई। लो, अब १९वीं गाथा।

गाथा - १९

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स णत्थि उप्पादो।
तावदिओ जीवाणं देवो मणुसो त्ति गदिणामो।।१९।।

एवं सतो विनाशोऽसतो जीवस्य नास्त्युत्पादः।
तावज्जीवानां देवो मनुष्य इति गतिनाम।।१९।।

अत्र सदसतोरविनाशानुत्पादौ स्थितिपक्षत्वेनोपन्यस्तौ।

यदि हि जीवो य एव म्रियते स एव जायते, य एव जायते स एव म्रियते, तदैवं सतो विनाशोऽसत उत्पादश्च नास्तीति व्यवतिष्ठते। यत्तु देवो जायते मनुष्यो म्रियते इति व्यपदिश्यते तदवधृतकालदेवमनुष्यत्वपर्यायनिर्वर्तकस्य देवमनुष्यगतिनाम्नस्तन्मात्रत्वादविरुद्धम्। यथा हि महतो वेणुदण्डस्यैकस्य क्रमवृत्तीन्यनेकानि पर्वाण्यात्मीयात्मीयप्रमाणावच्छिन्नत्वात् पर्वान्तरमगच्छन्ति स्वस्थानेषु भावभाञ्जि परस्थानेष्वभावभाञ्जि भवन्ति, वेणुदण्डस्तु सर्वेष्वपि पर्वस्थानेषु भावभागपि पर्वान्तरसम्बन्धेन पर्वान्तरसम्बन्धाभावादभावभाग्भवति; तथा निरवधित्रिकालावस्थायिनो जीवद्रव्यस्यैकस्य क्रमवृत्तयोऽनेके मनुष्यत्वादिपर्याया आत्मीयात्मीयप्रमाणावच्छिन्नत्वात् पर्यायान्तरमगच्छन्तः स्वस्थानेषु भावभाजः परस्थानेष्वभावभाजो भवन्ति, जीवद्रव्यं तु सर्वपर्यायस्थानेषु भावभागपि पर्यायान्तरसम्बन्धेन पर्यायान्तरसम्बन्धाभावादभावभाग्भवति।।१९।।

इस भाँति सत् का व्यय नहिं अर असत् का उत्पाद नहिं।
गति नाम नामक कर्म से सुर–नर–नरक–ये नाम हैं।।१९।।

अन्वयार्थ :– [एवं] इस प्रकार [जीवस्य] जीव को [सतः विनाशः] सत् का विनाश और [असतः उत्पादः] असत् का उत्पाद [न अस्ति] नहीं है; ('देव जन्मता है और मनुष्य मरता है'–ऐसा कहा जाता है, उसका यह कारण है कि) [जीवानाम्] जीवों की [देवः मनुष्यः] देव, मनुष्य [इति गतिनाम] ऐसा गति नामकर्म [तावत्] उतने ही काल का होता है।

टीका :– यहाँ सत् का अविनाश और असत् का अनुत्पाद ध्रुवता के पक्ष से कहा है (अर्थात् ध्रुवता की अपेक्षा से सत् का विनाश या असत् का उत्पाद नहीं होता–ऐसा इस गाथा में कहा है)।

यदि वास्तव में जो जीव मरता है, वही जन्मता है, जो जीव जन्मता है, वही मरता है तो इस प्रकार सत् का विनाश और असत् का उत्पाद नहीं है, ऐसा निश्चित होता है। और 'देव जन्मता है और मनुष्य मरता है' ऐसा जो कहा जाता है, वह (भी) अविरुद्ध है क्योंकि मर्यादित काल की देवत्वपर्याय और मनुष्यत्वपर्याय को रचनेवाले देवगतिनामकर्म और मनुष्यगतिनामकर्म मात्र उतने काल जितने ही होते हैं। जिस प्रकार एक बड़े बाँस के क्रमवर्ती अनेक [1]पर्व अपने-अपने माप में मर्यादित होने से अन्य पर्व में न जाते हुए अपने-अपने स्थानों में भाववाले (-विद्यमान) हैं और पर स्थानों में अभाववाले (-अविद्यमान) हैं तथा बाँस तो समस्त पर्वस्थानों में भाववाला होने पर भी अन्य पर्व के सम्बन्ध द्वारा अन्य पर्व के सम्बन्ध का अभाव होने से अभाववाला (भी) है; उसी प्रकार निरवधि त्रिकाल स्थित रहनेवाले एक जीवद्रव्य की क्रमवर्ती अनेक मनुष्यत्वादिपर्याय अपने-अपने माप में मर्यादित होने से अन्य पर्याय में न जाती हुई अपने-अपने स्थानों में भाववाली हैं और पर स्थानों में अभाववाली हैं तथा जीवद्रव्य तो सर्वपर्यायस्थानों में भाववाला होने पर भी अन्य पर्याय के सम्बन्ध द्वारा अन्य पर्याय के सम्बन्ध का अभाव होने से अभाववाला (भी) है।

भावार्थ :- जीव को ध्रौव्य अपेक्षा से सत् का विनाश और असत् का उत्पाद नहीं है। 'मनुष्य मरता है और देव जन्मता है'-ऐसा जो कहा जाता है, वह बात भी उपर्युक्त विवरण के साथ विरोध को प्राप्त नहीं होती। जिस प्रकार एक बड़े बाँस की अनेक पोरें अपने-अपने स्थानों में विद्यमान हैं और दूसरी पोरों के स्थानों में अविद्यमान हैं तथा बाँस तो सर्व पोरों के स्थानों में अन्वयरूप से विद्यमान होने पर भी प्रथमादि पोर के रूप में द्वितीयादि पोर में न होने से अविद्यमान भी कहा जाता है; उसी प्रकार त्रिकाल-अवस्थायी एक जीव की नरनारकादि अनेक पर्यायें अपने-अपने काल में विद्यमान हैं और दूसरी पर्यायों के काल में अविद्यमान हैं तथा जीव तो सर्व पर्यायों में अन्वयरूप से विद्यमान होने पर भी मनुष्यादिपर्यायरूप से देवादिपर्याय में न होने से अविद्यमान भी कहा जाता है।।१९।।

---

१. पर्व=एक गाँठ से दूसरी गाँठ तक का भाग; पोर।

गाथा - १९ पर प्रवचन

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स णत्थि उप्पादो।
तावदिओ जीवाणं देवो मणुसो त्ति गदिणामो।।१९।।

इस भाँति सत् का व्यय नहिं अर असत् का उत्पाद नहिं।
गति नाम नामक कर्म से सुर-नर-नरक-ये नाम हैं ॥१९॥

इसकी **टीका :— यहाँ सत् का अविनाश और असत् का अनुत्पाद ध्रुवता पक्ष से कहा है....** क्या कहा ? प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक आत्मा सामान्यरूप से वस्तु जो ध्रुव है, जो ध्रुव है, वह परिणमता नहीं। ऐसा कहते हैं। यह कहते हैं न ? सत् का अविनाश किसकी अपेक्षा से ? ध्रुव के पक्ष से। ध्रुव वस्तु है, वह भगवान और परमाणु ध्रुव अजीव है, सामान्य वस्तु ध्रुव। उसके पक्ष से सत् का नाश नहीं और असत् का अनुत्पाद ध्रुवता के पक्ष से कहा है। फिर से, हों! ऐसे तो झट समझ में आये, ऐसा नहीं है। कहते हैं, ध्रुवता की अपेक्षा से सत् का विनाश; ध्रुव है, वह सत् है, उसके सत् का नाश होता है ? और ध्रुव है, वह नया उत्पन्न होता है ? भगवान ध्रुव चैतन्यमूर्ति उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् है। इसी तरह परमाणु भी उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। तो जो ध्रुव है, उस ध्रुव की अपेक्षा से सत् का उत्पाद और असत् का नाश, ऐसा है नहीं। असत् की उत्पत्ति और सत् का नाश ध्रुव की अपेक्षा से नहीं है। ध्रुवता की अपेक्षा से सत् का विनाश – ध्रुव का नाश होता है ? और असत् का उत्पाद नहीं होता। वह इस गाथा में कहा है, लो!

वास्तव में जो जीव मरता है, जो जीव मरता है, वही जन्मता है.... ध्रुव की अपेक्षा से तो जो है ध्रुव, वही जन्मता है और वही उत्पन्न होता है। वह का वह है, कोई दूसरा जीव है ? मनुष्यपने का जब व्यय हुआ। देह की बात नहीं, अन्दर मनुष्यगति की बात है। व्यय हुआ, जिस समय में व्यय होने का, वह हों! और देवगति की उत्पत्ति हुई। समझ में आया ?

कुलवन्त और धर्मात्मा तो देवगति में ही जाते हैं। तो कहते हैं कि मनुष्यपने की गति का व्यय हुआ; देह का नहीं, यह तो जड़ है। गति अन्दर है। और देवपर्याय का जो उत्पाद हुआ, उसमें कहीं सत् उत्पन्न हुआ है और सत् का नाश हुआ है, ऐसा है नहीं। परन्तु

सत् है, वह जीव मरता है, वह जन्मता है, वह जीव **जो जीव जन्मता है, वही मरता है,....** तो इस प्रकार सत् का विनाश और असत् का उत्पाद नहीं है। ऐसा निश्चित होता है। वह का वह जीव जहाँ मेरे, ऐसा कहलाता है, वह का वह जीव वहाँ जन्मे तो कहे, वह देव में जन्मा है। और देव जन्मता है और मनुष्य मरता है, ऐसा जो कहा जाता है, देखा?

जो जीव मरता है, वही जन्मता है.... ऐसा पहले था। समझ में आया? जीव तो वह का वह है। **जो जीव मरता है, वही जन्मता है और जो जीव जन्मता है, वही मरता है, तो इस प्रकार सत् का विनाश और असत् का उत्पाद नहीं है, ऐसा निश्चित होता है।** वह का वह जीव मरे और वह का वह जीव जन्मे, उसमें कुछ नया उत्पन्न होता है और पुराना जाता है सत्, ऐसा नहीं है। यह तो पंचास्तिकाय है, यह सरल कहते हैं, देखो!

और 'देव जन्मता है तथा मनुष्य मरता है'.... ओहो! जन्मे वहाँ से शुरु किया। देवरूप से जन्मे और मनुष्यरूप से मरे, ऐसा कहने में आता है। वह अविरुद्ध है। वह भी अविरुद्ध है। जो जीव मरता है, वह जन्मता है। जो जीव जन्मता है, वही मरता है। एक बात। और देव जन्मता है, वह मनुष्य मरता है। ऐसा जो कहा जाता है, वह भी अविरुद्ध है।

क्योंकि मर्यादित काल की देवत्वपर्याय और मनुष्यत्वपर्याय को रचनेवाले देव-गतिनामकर्म और मनुष्यगतिनामकर्म मात्र उतने काल जितने ही होते हैं। मनुष्यगति के कर्म का उदय तो निमित्त है। वहाँ जीव की रहने की योग्यता जितनी हो, उतना काल रहे। वह फिर मनुष्य मरा, ऐसा कहलाता है। समझ में आया? जीव मरा, ऐसा नहीं। मनुष्य मरा। मनुष्य की पर्याय मरी। जीव तो मरे और जन्में, ऐसा कहना, वह तो ध्रुव की अपेक्षा से है। वह का वह है। यहाँ तो यह पर्याय मरती है और कर्म के कारण से नहीं। कहते हैं न भाई! जैसे कर्म बाँधे, वैसे हमारे स्वर्ग-नरक में जाने को मिलता है। यह खोटी बात है। ऐसा कहते हैं। तुझे वस्तु की खबर नहीं।

श्रेणिक राजा ने नरक का आयुष्य बाँधा, वे समकिती थे, तीर्थंकरगोत्र बाँधा है। श्रेणिक राजा ने चौथे गुणस्थान में आत्मज्ञान, सम्यग्दर्शन (हुआ है) और तीर्थंकरगोत्र बाँधा है, उन्हें नरक में जाने का भाव होगा? बस, एक नामकर्म की प्रकृति उन्हें नरक में ले जाती है। ऐसा जो कहते हैं, वे झूठाबोला है, ऐसा यहाँ भगवान कहते हैं। मात्र उसे मनुष्य

की ही पर्याय का व्यय हुआ, वही पर्याय वापस दूसरे समय में उसे नरक की पर्याय उत्पन्न हुई। यह देव की बात की है। वह स्वयं के कारण से हुई है, कर्म के कारण से हुई नहीं। कर्म तो परद्रव्य है। गजब बात, भाई!

ऐसा वापस कहे कि जैसे कर्म बाँधे वैसे भोगना, बापू! यह कहाँ से लाये? ऐई! सीखते हैं यह सब अज्ञानी। उन्हें सीखानेवाले भी ऐसे मिले। यहाँ यह इनकार करते हैं कि कर्म जैसे बाँधे, वैसे भोगना पड़े (ऐसा) आत्मा में है ही नहीं। आत्मा तो अपनी मनुष्यपने की जो पर्याय हुई, उसमें वह उत्पन्न हुआ, बस। उसका व्यय होकर देव की पर्याय की योग्यता से स्वयं उत्पन्न हुआ। कर्म के कारण से नहीं और वहाँ भी जो राग-द्वेष आदि भोगने में आवे, वह स्वयं की पर्याय को भोगता है। वह कहीं कर्म को भोगता है, ऐसा नहीं है। कर्म तो जड़ है। समझ में आया?

अप्पा कत्ताये विकत्ताये दोहा एणं—आत्मा कर्ता और आत्मा भोक्ता (ऐसा कहे) अरे! वह तो व्यवहार का कथन है। ऐसा है नहीं। आत्मा अपनी विकारी पर्याय को करे और उसी समय उसे भोगता है। कर्म को करे और कर्म को भोगे, ऐसा वस्तु के स्वरूप में है ही नहीं। ऐसा आत्मा धर्म की पर्याय को करे और आनन्द को भोगे, वह अपना कर्ता और अपना भोक्ता स्वयं आत्मा है। समझ में आया? क्या कहते हैं? मनुष्य है, वह मर्यादित काल का, देवत्व भी मर्यादित काल का है। अमुक अवधि का वहाँ रहने का योग था, वहाँ तक रहा। छूटा तब देव की पर्याय की अवधि थी, तब तक रहा है। वह अपने कारण से रहा है। समझ में आया? यह द्रव्य की बात चलती है या नहीं? हें? दूसरे द्रव्य के कारण उपजे और दूसरे (के कारण से विनाश हो), ऐसा नहीं कहा। समझ में आया?

परमाणु है, यह आकाश के एक प्रदेश में है। अब वह कोई असंख्य वर्ष भी वहाँ रहे, उसकी अवधि है। वहाँ से एक समय में कर्म अपनी योग्यता से दूसरे समय में बदल डालते हैं। वह स्वयं के कारण से है। स्वयं से एक परमाणु एक समय में सात राजू नीचे हो, (वह) सिद्ध है, वहाँ चला जाता है। एक परमाणु स्वयं अपनी शक्ति से चौदह राजूलोक गति करता है। ऐसा जड़ का अपना स्वभाव है। वह तो उसे जीव दिखता कहाँ है? परमाणु को देखता ही नहीं। (तथापि) परमाणु गति करता है। समझ में आया? और

उसी परमाणु को एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाने की पर्याय की योग्यता हो तो वहाँ तक रहता है, दूसरे कोई कारण से वहाँ है, ऐसा नहीं है। वहाँ उसमें कहते हैं न कर्म और पुद्‌गल करणा और पुद्‌गल को काल करणा। बात यह है। समझ में आया या नहीं ? कर्म वहाँ तक रहते हैं कि काल हो, वहाँ तक रहते हैं। आत्मावलोकन में आता है। यहाँ तो समय-समय का जीव का स्वरूप भिन्न है, इस बात का मनन कराते हैं। समझ में आया ?

कहते हैं, यह मनुष्यपने का काल और देव का काल मर्यादित है। भगवान आत्मा तो अनादि-अनन्त है। परन्तु यह काल मर्यादित है। देवपने में भी अमुक असंख्य (वर्ष) तैतीस सागर, लो। देवपने में सर्वार्थसिद्धि में तैतीस सागर उत्कृष्ट स्थिति है। नारकी में भी सातवें नरक में तैतीस सागर उत्कृष्ट स्थिति है। वह स्थिति मर्यादित है। कर्म का निमित्त है और स्वयं के कारण से इतने मर्यादित काल में रहा है।

यहाँ पाठ में ऐसा कहा है, देखो ! **मनुष्यत्वपर्याय को रचनेवाले देव-गतिनामकर्म और मनुष्यगतिनामकर्म मात्र उतने काल जितने ही होते हैं।** यह तो निमित्त से कथन किया है। समझ में आया ? यहाँ तो उसकी पर्याय उपजे और पर्याय का व्यय हो, उसकी बात की है। मनुष्यपने में सौ वर्ष जिसे रहना होता है, इतना मर्यादित काल है। वह उसका स्वकाल है। फिर छूट जाता है, तब देव का काल (आता है)। वह भी मर्यादित है। क्योंकि वहाँ तैतीस सागर है न ? यह मनुष्य का तो उत्कृष्ट (काल) तीन पल्योपम (होता है)। जुगलिया अधिक से अधिक तैतीस सागर। तीन पल्योपम जुगलिया में रहता है। पशु और तिर्यंच की तीन पल्योपम की उत्कृष्ट स्थिति है।

अधिक से अधिक मनुष्य की तीन पल्योपम (की स्थिति है)। इतना मर्यादित काल पर्याय का है। वह स्वयं के कारण से है। परद्रव्य के कारण से नहीं। सर्वार्थसिद्धि के देव में तैतीस सागर तक मर्यादित स्थिति है। मर्यादित ? तैतीस सागर अर्थात् क्या ? एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम जाते हैं। एक पल्योपम के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। परन्तु है काल कितना ? मर्यादित। पाठ में रखा है न हदकाल, नहीं ? पाठ में है न ? देखो ! है या नहीं ? हदवाला। हाँ, यह। हदयुक्त कहा है, वह बराबर है। इतनी मर्यादा है। आहाहा !

मर्यादित काल की देवत्वपर्याय और मनुष्यत्वपर्याय को रचनेवाले देवगतिनामकर्म और मनुष्यगतिनामकर्म मात्र उतने काल जितने ही होते हैं। यहाँ भूले। समझे न? यहाँ तो निमित्त से समझाना है। परन्तु यहाँ तो उसकी पर्याय की बात चलती है। समझ में आया? नामकर्म के कारण यहाँ से जाता है, ऐसा भी नहीं और नामकर्म के कारण यहाँ टिका रहता है, ऐसा कुछ (नहीं)। आत्मा की पर्याय भिन्न है, कर्म की पर्याय भिन्न है। कर्म भी अजीव जड़द्रव्य है। उसकी पर्याय के अवधि काल में वह है और उसकी पर्याय के अवधि काल में यह है। समझ में आया? यह बात डालते हैं, हों! लेख में डालते हैं। ज्ञानावरणीय ने ज्ञान रोका। देखो, आया गोम्मटसार। यह यहाँ कहते हैं। वहाँ इतना का इतना काल ही होता है। ऐसी तो बात करते हैं। इतना ही काल वहाँ रहने का होता है, उतना रहे। उसकी अकालमृत्यु हो या आगे-पीछे हो, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा समझकर इसने आत्मा ज्ञानानन्द ध्रुव चैतन्य है, उसका आश्रय लेने से इसे सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा बतलाना है। आहाहा! इस ध्रुव की अपेक्षा से चलता है न, क्या कहलाता है? क्या कहा नहीं? ध्रुवता के पक्ष से यह कहा है, ध्रुवता के पक्ष से परन्तु यह ध्रुव लक्ष्य करे, तब यह पक्ष है, उसका ज्ञान इसे हो न? समझ में आया? आहाहा! वीतराग का मार्ग ऐसा सूक्ष्म है कि, उसकी समय-समय की जड़ की और चैतन्य की स्वतन्त्र पर्याय का ढिंढ़ोरा पीटते हैं। केवलज्ञान किस प्रकार सिद्ध होगा? समझ में आया? केवलज्ञान भी एक समय में तीन काल-तीन लोक को जानता है। जिस समय में जहाँ पर्याय जिसकी जो होनेवाली है, उस काल में होती है, उसे केवली जानते हैं। केवली आगे-पीछे जाने? समझ में आया या नहीं? स्तुति आती है शीतलनाथ की, देवचन्दजी (कृत) द्रव्य, क्षेत्र और काल भाव, राजनीति ये चार है न। कोई न लोपे काल। प्रतिबन्ध कुछ दूसरा शब्द है। जहाँ-जहाँ जिस-जिस द्रव्य की जिस समय की जहाँ स्वतन्त्र पर्याय हो, उसे कोई रोक नहीं सकता। इस प्रकार भगवान की घोषणा में यह आया है। भगवान की घोषणा, ऐसा भगवान ने कहा है। ऐसा जो पर्याय का और द्रव्य का स्वभाव (है जो) किसी से किया हुआ नहीं है। समझ में आया?...

द्रव्य, क्षेत्र अरु काल, भाव चार राजनीति यह जानना। कोई न रोके काण। हें? हाँ,

बस यह। त्रास बिना जड़ प्रभु की कोई न लोपे कार रे। त्रास बिना प्रभु की आज्ञा प्रमाण सब परिणमते हैं, उसमें कोई न लोपे कार रे। उनकी आज्ञा लोपते नहीं। यह आ गया है। त्रास बिना जड़ प्रभु की। समझ में आया? शीतलनाथ, दसवाँ है न, दसवाँ है। दसवीं गाथा है। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव राजनीति ये जानना। त्रास बिना जड़ चैतन्य प्रभु की कोई न लोपे कार रे। सर्वज्ञ भगवान ने जो ज्ञान की पर्याय में जिस समय की जिस-जिस द्रव्य की जो पर्याय होनेवाली देखी है, वैसा होगा। परन्तु उसकी श्रद्धा करे कौन? हें? यह सर्वज्ञ की भी श्रद्धा कौन करे? यह सर्वज्ञ तो ज्ञानगुण की एक पर्याय है। कोई सर्वज्ञपना वह गुण नहीं है। सर्वज्ञपना भी एक गुण की एक समय की पर्याय है। उस पर्याय की श्रद्धा कैसे करे और कौन करे? कि, यह आत्मा की स्वभाव ध्रुवता सन्मुख दृष्टि करे, तब द्रव्य का ज्ञान होता है, तब सर्वज्ञ की पर्याय का सच्चा ज्ञान होता है। समझ में आया? स्पष्ट-स्पष्ट वीतराग शास्त्र में कहते हैं।

जिस प्रकार **एक बड़े बाँस के....** बाँस लिया, बाँस। **क्रमवर्ती अनेक पर्व....** पर्व (अर्थात्) उसकी गाँठें। कातली। कातली उसकी गाँठ (कहलाती है)। **अपने-अपने माप में मर्यादित होने से....** है न? बाँस होता है न, और उसकी कातली होती है न कातली। **अपने-अपने माप में मर्यादित होने से....** देख भाई! माप भी अपने-अपने माप में है अभी। **अन्य पर्व में न जाते....** वह एक गाँठ दूसरे में जाती नहीं। एक पर्व का भाग दूसरे में जाता नहीं। **अपने-अपने स्थानों में भाववाले अपने-अपने स्थानों में अस्तिवाले (-विद्यमान) हैं और परस्थानों में अभाववाले (-अविद्यमान) हैं....** उसके जो पर्व जाते हैं, इतने-इतने वह एक इसमें नहीं और यह उसमें नहीं। समझ में आया? **अपने-अपने स्थानों में भाववाले हैं।** दूसरे की अपेक्षा से वह अभाववाला है।

तथा बाँस तो समस्त पर्वस्थानों में भाववाला होने पर भी.... अब कहेंगे। **बाँस तो समस्त पर्वस्थानों में भाववाला होने पर भी अन्य पर्व के सम्बन्ध द्वारा अन्य पर्व के सम्बन्ध का अभाव होने से....** इस एक गाँठ के सम्बन्धवाले से दूसरी गाँठ के सम्बन्धवाला बाँस नहीं है। यहाँ सम्बन्धवाला बाँस है, वह यहाँ के सम्बन्धवाला यहाँ नहीं है। **उसी प्रकार निरवधि त्रिकाल....** अब आये आत्मा और जड़। यह तो दृष्टान्त दिया। मर्यादा बिना

के तीनों काल टिकनेवाले **एक जीवद्रव्य की....** यहाँ एक जीवद्रव्य लिया। यह तो दृष्टान्त है न? **क्रमवर्ती...** क्रम से वर्तनेवाले **अनेक मनुष्यादिकपर्यायें....** मनुष्य, देव आदि अवस्था। **अपने-अपने माप में मर्यादित होने से....** बस, अपने-अपने माप में उनका काल मर्यादित है। **अन्य पर्याय में न जाती हुई....** मनुष्य की पर्याय कहीं देव की पर्याय में नहीं जाती। **अपने-अपने स्थानों में भाववाली हैं।** मनुष्य की पर्याय मनुष्य के भाववाली और देव की पर्याय देव की पर्याय के भाववाली, इत्यादि। **और परस्थानों में अभाववाली हैं....** लो! मनुष्य की पर्याय में देव की पर्याय नहीं और देव की पर्याय में मनुष्य की पर्याय नहीं। भाव अभाव हो गया।

अपने-अपने स्थान में भाव और दूसरे के स्थान में अभाव। **तथा जीव-द्रव्य तो सर्वपर्यायस्थानों में भाववाला होने पर भी....** सभी पर्याय में जीवद्रव्य है या नहीं? मनुष्य में, देव में, नारकी में, तिर्यंच में, सबमें जीव... जीव... जीव... है। **ऐसा होने पर भी अन्य पर्याय के सम्बन्ध का....** मनुष्य की पर्याय के सम्बन्ध द्वारा, देव की पर्याय के सम्बन्ध का उसमें अभाव है। समझ में आया? आत्मा और मनुष्य की पर्याय का सम्बन्ध हो, उसी समय देव की पर्याय का सम्बन्ध होगा? इस अपेक्षा से अभाव है। गजब भाव-अभाव। पर्याय जो है, वह अपने-अपने स्थान में भाववाली है और दूसरे की अपेक्षा से अभाववाली है। और जीव जो है, वह प्रत्येक पर्याय के सम्बन्ध में भाववाला है। ऐसा होने पर भी वही जीव अपनी पर्याय के सम्बन्ध में भाव है। उसी जीव को दूसरे की पर्याय का सम्बन्ध उस समय नहीं है। इसलिए उसमें इस अपेक्षा से अभाववाला है। गजब बात, भाई! समझ में आया?

वह अभाववाला (भी) है। वस्तु भगवान आत्मा एक समय की पर्याय में है, वह एक भव में है, वह दूसरे भव में नहीं। पर्याय तो इसमें है और वह पर्याय दूसरे में नहीं, परन्तु वह जीव द्रव्य भी इस पर्याय के सम्बन्धवाला है, वह जीव इस पर्याय के सम्बन्ध में नहीं है। ऐसा कहते हैं।

भावार्थ :— जीव को ध्रौव्य अपेक्षा से सत् का विनाश और असत् का उत्पाद नहीं है। भगवान आत्मा ध्रौव्यरूप से अनादि-अनन्त विराजमान प्रत्येक आत्मा (की बात

है)। निगोद में भी अनन्त ध्रौव्य। निगोद में एक शरीर में अनन्त आत्मा, वह एक-एक आत्मा ध्रौव्यरूप से नित्य कायम है।

मुमुक्षु : निगोद में भी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निगोद में भी। पर्याय बदलती है, वह तो पर्याय बदलती है। निगोद की पर्याय बदलकर मनुष्य हो। समझ में आया ? और मनुष्य की पर्याय बदलकर महातत्त्व का विरोध करे, और निगोद की पर्याय में जाये। कहो, समझ में आया ? आहाहा! निगोद के जीववाले को ऐसा शुभभाव हो तो मनुष्य में आवे। मनुष्यवाला तत्त्व का विरोध करे, वास्तविक तत्त्व के स्वरूप का विरोध करे तो निगोद में भी जाये।

कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने कहा कि एक वस्त्र का धागा रखकर मुनिपना माने, मनावे और मानते हुए को भला जाने तो निगोदम् गच्छई। निगोद में जायेगा। आहाहा! गजब बात, भाई! ऐ, जेठाभाई! इसमें कहीं दुनिया के साथ मिलान खाये, ऐसा नहीं है। लो, इन्होंने ऐसा कहा। कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने कहा। भगवान के पास गये, लाये तत्त्व को, ऐसा कहा। जो कोई साधु नाम धराकर वस्त्र का टुकड़ा रखे और (कहे कि) हम साधु हैं, दूसरे से साधुपना मनावे, मानते हों उन्हें भला जाने, वे सब एकेन्द्रिय में-निगोद में जानेवाले हैं। हाय! हाय!! भारी कठिन काम। वह निगोद की पर्याय के योग्य है, ऐसा कहते हैं। उसकी इसे तैयारी है। उसकी त्रस की स्थिति पूरी होने को आयी है। दो हजार सागर की। आहाहा! वीतरागमार्ग को समझना (वह बहुत) कठिन काम, बापू!

यहाँ तो कहते हैं कि यह भी सच्चा और वह भी सच्चा, ऐसा खिंचड़ा कर देना, ऐसे दो नहीं चलते, हें ? छोटी भूल, मैं, ऐसा कहो न तब। ककड़ी के चोर को फाँसी ? ऐसा नहीं है। उसमें नौ तत्त्व की बड़ी महान भूल है। क्योंकि जीव में वस्त्र रखने का भाव है, वह राग है और वह तीव्र कषाय है। उसे कषाय जहाँ है, वहाँ उसे छठे गुणस्थान का संवर, निर्जरा माना; इसलिए आस्रव को भी नहीं माना और छठवें गुणस्थान के योग्य जो संवर है, उसने संवर भी नहीं माना। आस्रव को संवर माना और संवर के अभाव में आस्रव माना। और जिसे इतना उस राग का अभाव होता है, उसे वस्त्र का अभाव हो तो संयोग के अभाववाला होता है। उसके बदले वस्त्र के संयोगवाला तत्त्व माना। अजीव में भूल, जीव

में भूल, संवर में भूल, आस्रव में भूल, बन्ध में भूल और निर्जरा में भूल तथा मोक्ष में भूल। ऐसी बात है, भगवान!

और जब छठवें गुणस्थान के योग में तीव्र राग रखने का हुआ तो शुद्धता उतनी नहीं थी और अपूर्ण शुद्धता थी, उस शुद्धता को मोक्ष का कारण माना। मोक्षतत्त्व के कारण में भूल तो उसके कार्य में भी भूल है। नव तत्त्व की भूल है। चिमनभाई! कठिन काम है, भाई! नौ पदार्थ की वास्तविकता को भूल गये हैं, ऐसा कहते हैं। उसकी पर्याय का काल वह ध्रुव की अपेक्षा से सत् का विनाश और असत् का उत्पाद नहीं है, ऐसा कहते हैं। जिस समय जिस समय में उसका श्रद्धाभाव हो, उस समय में होता है, वह पलटकर वापस दूसरा श्रद्धाभाव होता है। यह श्रद्धाभाव, यह वह भाव नहीं और वह श्रद्धाभाव वह यह नहीं परन्तु जीव तो सबमें वह का वह है। और उसके यह सम्बन्धवाला यह जीव, यह पर्याय है, यह सम्बन्धवाला वह दूसरी पर्यायवाला नहीं। जीव दूसरी पर्याय में इस सम्बन्धवाला नहीं। ऐसी बात है, भाई... विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

धारावाही प्रवचन नं. २७ (प्रवचन नं. २६), गाथा-१९-२०
दिनांक - १०-१२-१९६९, मागसर शुक्ल १, बुधवार

यह पंचास्तिकाय की १९वीं गाथा है, इसका भावार्थ।

भावार्थ :— जीव को ध्रौव्य अपेक्षा से.... यह आत्मा जो है, उसका यहाँ दृष्टान्त दिया है। भगवान ने तो छह द्रव्य देखे हैं। तीर्थंकरदेव ने केवलज्ञान में छह द्रव्य देखे हैं। उनका स्वरूप कैसा है ? उसे यह जीव का उदाहरण देकर बात करते हैं। कहते हैं कि जैसे जीव को, वस्तु जो है, वह तो ध्रुव है। ध्रुव त्रिकाल है। इस अपेक्षा से उसे सत् का विनाश; है, उसका नाश होता है और न हो, उसकी उत्पत्ति होती है, ऐसा है नहीं। वस्तु तो अनादि है। नित्य है। पर्याय बदलने पर भी ध्रुव बदल जाता है या ध्रुव विनाश पाता है—ऐसा नहीं है। यह सब चीज़ें तो पर हैं, इनके साथ तो कुछ सम्बन्ध नहीं। वह तो उनके कारण से दूसरे पदार्थ ध्रुवरूप से रहकर पलटे, वह तो उसके कारण से है।

यह तो आत्मा में देव का, मनुष्य का पलटन होने पर भी जो ध्रुवपना है, वह तो कुछ नाश होता नहीं और ध्रुव वस्तु है, उसकी उत्पत्ति होती नहीं। वह है, है और है। **'मनुष्य मरता है और देव जन्मता है'....** मनुष्यपने की पर्याय से जीव का व्यय पर्याय—अपेक्षा से कहा जाता है और वही देव जन्मता है, ऐसा कहना, परन्तु मरकर देव होता है। **ऐसा जो कहा जाता है, वह बात भी उपरोक्त विवरण के साथ विरोध को प्राप्त नहीं होती।** ध्रुव की अपेक्षा से जन्म और उत्पत्ति नहीं है, ऐसा पर्याय अपेक्षा से उत्पत्ति और मरण है तो भी कोई सत् के साथ उसमें विरोध नहीं आता।

अपने आ गया है कि **जिस प्रकार एक बड़े बाँस की अनेक पोरें....** बड़ा बाँस होता है न और उसकी पोर बेंत-बेंत की करे, वह पोर अपने-अपने स्थान में विद्यमान है। अस्ति धराती है और दूसरी पोर के स्थानों में उस पोर की नास्ति है। **तथा बाँस तो सर्व पोरों के स्थानों में अन्वयरूप से विद्यमान है।** बाँस... बाँस... बाँस... बाँस... बाँस... बाँस... बाँस (सम्पूर्ण भाग में है), ऐसा होने पर भी उसमें भी **होने पर भी प्रथमादि पोर के रूप में....** पहली पोररूप बाँस है, वह बाँस **द्वितीयादि पोर में न होने से....** यह जरा सूक्ष्म बात है।

भगवान आत्मा ! यहाँ तो पोर का दृष्टान्त दिया। एक पोर में दूसरी पोर नहीं। वह तो बराबर पोर की अपेक्षा से (बात है)। अब एक बाँस है, वह सब पोरों में है। ऐसा होने पर भी एक-एक पोर में जो बाँस है, वह बाँस दूसरी पोर में नहीं है। इस अपेक्षा से अविद्यमान अभाव भी कहा जाता है। **उसी प्रकार त्रिकाल अवस्थायी एक जीव....** भगवान आत्मा तो त्रिकाल है। अनादि... अनादि... अनादि; आदि भी नहीं और अन्त भी नहीं। **एक जीव की नरनारकादि अनेक पर्यायें....** मनुष्य हो, मनुष्य अर्थात् यह देह नहीं (परन्तु) अन्दर मनुष्य की अवस्था। मनुष्य हो, देव हो, पशु हो, नारकी हो, निगोद हो, ऐसी अवस्थायें अपने-अपने काल में विद्यमान है। उस-उस आत्मा को वह-वह पर्याय उस-उस काल में उसे है। बराबर है ? पर है और पर से है, ऐसा नहीं है - ऐसा सिद्ध करना है।

इस शरीर को लें, इसकी मनुष्यगति की अवस्था है या कर्म के कारण मनुष्यगति की अवस्था है, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। यह शरीर तो जड़ भिन्न है और कर्म भी जड़ भिन्न है। पृथक् चीज़ है। आत्मा की अवस्था के योग्य जहाँ-जहाँ जिस समय में मनुष्यपना, देवपने की गति की योग्यता उस-उस प्रकार से उस पर्याय में वह विद्यमान पर्याय है। उसी समय में विद्यमान है, ऐसा। यह तो जिसे गहरा डुबकी मारना हो न, उसे कहते हैं कि भाई ! तेरा तत्त्व तो ध्रुव और गहरा है न ? एक पर्याय में जो मनुष्यगति के काल जितने में कहीं पूरा द्रव्य आ नहीं जाता। तेरा तत्त्व तो ध्रुव है। उसकी नजर किये बिना तेरा धर्म और शरण कोई है नहीं। उसमें से निकलता है। आहाहा ! इस प्रकार अनादि-अनन्त द्रव्य होने पर भी उसकी वह-वह पर्याय अर्थात् मनुष्यगति, देवगति, निगोदगति, चींटी, कौवे की गति, वह-वह पर्याय; शरीर नहीं। उसकी वह-वह पर्याय की अपेक्षा से उस पर्याय की उस काल में अस्ति है। वह द्रव्य जैसे त्रिकाल है, वैसे पर्याय त्रिकाल है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

यहाँ अस्ति सिद्ध करनी है न ? कहते हैं, **अनेक पर्यायें अपने-अपने काल में विद्यमान हैं....** ओहो ! मनुष्यपने के काल में मनुष्यपनेरूप की अवस्था अस्ति धराती है। देव के काल में देवपने की अवस्थारूप से वह विद्यमान है। मनुष्यपने की अवस्थारूप से वह विद्यमान नहीं। उस-उस काल में उस समय में वह विद्यमान है। और जीव तो, यह

अब पर्याय की बात की। जीव तो सर्व पर्यायों में अन्वय सम्बन्ध धराता है। मनुष्यपर्याय में वह जीव, देवपर्याय में जीव, नारकी में जीव, निगोद के एक शरीर में अनन्त जीव हैं। वहाँ गया और जो मिथ्यात्व करेगा, उसे वहाँ वापस जाना है। समझ में आया?

जिसकी दृष्टि में मिथ्यात्व होगा, उस-उस काल में उस-उस मिथ्यात्व के काल के कारण, आगे जाकर उसे निगोद की अवस्था ही प्राप्त होगी। समझ में आया? यह तो अमुक अवधि की ही स्थिति है। मनुष्यपने की अमुक अवधि की, देव की अमुक अवधि की, नारकी की अमुक अवधि की, पशु की अमुक अवधि की। अरे! निगोद में जाये तो उसके भव के लिये अमुक स्थिति सारे निगोद में जाये तो भी वह अर्धपुद्गल (परावर्तन) है और सब एकेन्द्रिय आदि में जाये तो असंख्य पुद्गलपरावर्तन है। अकेले निगोद में सूक्ष्म बादर, पर्याप्त में मरे तो ढाई पुद्गल परावर्तन (का काल होता है)। आहाहा! फिर बाहर एकेन्द्रिय में स्थूल होता है।

प्रत्येक होता है, ऐसा। यह तो निगोद स्थूल, निगोद सूक्ष्म, पर्याप्त और अपर्याप्त उसी और उसी में रहे तो ढाई पुद्गल परावर्तन रहे। बहुत लम्बा काल है तो भी वह मर्यादित काल है। जीव तो उन सबमें कायम अन्वयरूप रहता है, ऐसा कहते हैं। एकेन्द्रिय सूक्ष्म में से बाहर निकला, वह निगोद में से पृथ्वी में आवे, स्थूल पृथ्वी बादर, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और वहाँ जाये, वहाँ आये, ऐसा करके एकेन्द्रिय में असंख्यात पुद्गलपरावर्तन होते हैं।

एक पुद्गलपरावर्तन में अनन्त तीर्थंकरों की अनन्त चौबीसी हो जाती है। एक पुद्गलपरावर्तन के अनन्तवें भाग में अनन्त चौबीसी (हो जाती है)। एक पुद्गलपरावर्तन के अनन्तवें भाग में अनन्त चौबीसी। ओहोहो! कहते हैं, वह वह गति वहाँ-वहाँ हो, वह-वह पर्याय वहाँ विद्यमान है और दूसरी पर्याय में वह विद्यमान नहीं। दूसरी पर्याय में वह पर्याय विद्यमान है। आहाहा! भगवान आत्मा तो सर्व पर्यायों में अन्वय के साथ वह जीव... जीव... जीव... जीव... जीव... जीव... ध्रुवरूप से तो अनादि से कायम है। समझ में आया?

यह तो अवधि की स्थिति की पर्याय का काल है। भगवान आत्मा अन्वय है अर्थात्

कायम रहनेवाला है, इसलिए उसे अवधि नहीं होती। वह तो ध्रुव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इस प्रकार सब पर्यायें अर्थात् भवों में जीव सबमें विद्यमान होने पर भी, वह जीव एक भव की अपेक्षा से उस जीव का उस भव में सम्बन्ध है, इस प्रकार उस जीव को इस भव का दूसरे भव की अपेक्षा से सम्बन्ध नहीं है। इस अपेक्षा से आत्मा प्रत्येक में अभावरूप है। आहाहा! देखो न, कैसी बात की है। भाई! तू आत्मा है न, प्रभु! (तू) अनादि-अनन्त है। भाई! अनादि-अनन्त है। वह तुझे और इस शरीर को और कर्म को कोई सम्बन्ध नहीं है। वे तो जगत के भिन्न तत्त्व हैं। उन्हें और तुझे कोई सम्बन्ध नहीं है। तेरी पर्याय होने में पर का कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसा कहते हैं। पर्याय अर्थात् अवस्था। मनुष्यगति की अवस्था, देवगति की अवस्था, निगोद की अवस्था। देखो न, आहाहा!

कहा, यह कुत्ता मरकर कहाँ गया होगा? लड़कों को पूछा। एक व्यक्ति कहे, उसके भाव प्रमाण उपजा होगा। कहा, सत्य बात है, बापू! भाव-भाव। कल मर गया न? बहुत दूर से रोता था। दुःख बहुत (होता था)। सड़ गया था, कट गया था। (विचार आया) कि वह कहाँ गया होगा? क्योंकि किसी पर्याय में तो आये बिना कोई रहे नहीं। द्रव्य तो वह का वह ही है। यहाँ की अवधि पूरी हो गयी। जो भाव हों, ऐसे भाव से पशु आदि में बेचारा अवतरित हो। उसे तो कोई स्वर्ग भी न हो। आहाहा! प्रत्येक जीव ने ऐसे भव अनन्त किये हैं। उस-उस भव में उस-उस भव की अस्ति (हो, वह) दूसरे भव में उस भव की अस्ति नहीं है। परन्तु भगवान (आत्मा) तो सबमें अस्ति धराता है। द्रव्यरूप से—ध्रुवरूप से तो सबमें अन्वय सदृश है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

... पाँच-पच्चीस-पचास-साठ वर्ष के संयोग इकट्ठे हों न, वहाँ कौन मानो ऐसा लगता है न? हें? यह मेरी स्त्री और यह मेरे पुत्र और यह मेरा शरीर। तीन काल में भी कहीं यह चीज़ नहीं है। तेरी होवे तो तेरी पर्याय है। भाई! माने तो पर्याय है। यह (संयोग) तो नहीं। यह पर्यायबुद्धि मिथ्यात्व जब तक है, तब तक इसे चार गति में भटकना है। ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? पर मेरे हैं, और मैं उनका, यह बात तो वस्तु में है ही नहीं। है नहीं। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु स्वतन्त्र जगत की चीज़ है। उसमें यह आत्मा कहाँ है और इस आत्मा में यह क्या है। वह तो इसमें दो भाग जो हैं, वह भवरूप पर्याय,

उसमें उस–उस भव के काल में वह दूसरा भव नहीं है। और दूसरे भव की विद्यमानता में यह भव नहीं है। और उस–उस प्रत्येक भव में भगवान द्रव्यरूप आत्मा तो सतत् निरन्तर है। वह निरन्तर होने पर भी उस–उस भव के सम्बन्ध से आत्मा वह सम्बन्धवाला भव दूसरे भव में आया नहीं। दूसरा भव सम्बन्ध है। आहाहा! समझ में आया?

कुन्दकुन्दाचार्य की कथनी अलौकिक कथनी है। कोई सादा शास्त्र हो तो भी उसमें (बहुत गम्भीरता है)। समझ में आया? आहाहा! तेरी अवधि प्रमाण भले भव में हो, परन्तु वह भव कहीं दूसरे भव में नहीं है। और तू प्रत्येक में है, तो भी प्रत्येक में होने पर भी, उस भव के सम्बन्धरूप जो वहाँ है, ऐसे भव के सम्बन्धरूप दूसरे भव में नहीं है, दूसरे भव का दूसरा सम्बन्ध हो गया है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह स्त्री, पुत्र का सम्बन्ध नहीं। इस प्रकार से लिया है। आहाहा! वह तो परवस्तु है कहाँ तेरे पास आयी है और कहाँ तेरी थी और कहाँ तू उसमें घुस गया है? ... व्यर्थ में हैरान होकर मर जाायेगा। समझ में आया? भाई! तुझे सम्बन्ध हो तो प्रत्येक पर्याय में तेरा, वह तू। और न सम्बन्ध हो तो उसी पर्यायरूप सम्बन्ध है, ऐसा ही दूसरी पर्यायरूप इस पर्याय का सम्बन्ध वहाँ नहीं। बस इतनी बात है। आहाहा! यह इसमें कहते हैं। यहाँ पर की बात ही नहीं है। समझ में आया या नहीं?

इसमें हीराभाई का सम्बन्ध हुआ। लड़का अच्छा जगा और अमुक–अमुक। अपने तीस रुपये का वेतन और वह बीस हजार पैदा करता है। खर्च निकालने पर बीस हजार। वह कहे, खर्च निकालने पर अरब रुपये। दो–दो, पाँच–पाँच लाख। धूल में क्या है परन्तु यह उसके साथ? उसकी तो यहाँ बात ही नहीं है। उसकी पर्याय में नहीं, इसलिए प्रश्न क्या? ऐसा कहते हैं। ऐ... वजुभाई! आहाहा! भगवान! तेरा वेश एक समय की पर्याय अथवा भव जितना वेश, वह तेरी पर्याय में सम्बन्ध। वह पर्याय दूसरे भव में नहीं होती। वहाँ उस पर्याय का सम्बन्ध। इसका एक–दूसरे में अभाव। एक बात। अब आत्मारूप से प्रत्येक पर्याय में सम्बन्ध होने पर भी, एक पर्याय का सम्बन्ध जीव को है, ऐसी जाति की दूसरी पर्याय में उस जीव को सम्बन्ध नहीं है। दूसरी जाति का सम्बन्ध हो गया। आहाहा! देखो न, यह बात! वह सम्बन्ध छूटा लड़के का तो दूसरा सम्बन्ध हुआ, यह बात यहाँ नहीं

ली। भाई! ऐई! आहाहा! समझ में आया?

भाई! तू आत्मा है, भाई! अनादि-अनन्त है। भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमेश्वर की वाणी में ऐसा आया। उन्होंने देखा, वैसा कहा कि भाई! तेरी अस्ति त्रिकाली होने पर भी एक भव जितनी अस्ति में दूसरे भव की अस्ति नहीं है। समझ में आया? और तेरी अस्ति में प्रत्येक भव में तू अस्ति होने पर भी, तेरा अस्तित्व तो ध्रुव है। इस पर्याय का जो सम्बन्ध था, ऐसा ध्रुव को दूसरी पर्याय का ऐसा सम्बन्ध है, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्या कहते हैं? कनुभाई! हें? यह बात भी यहाँ नहीं है। यहाँ तो अपनी-अपनी पर्याय। बापू! वह बाहर की तो बात की ही नहीं। बाहर का क्या काम? परन्तु वह तो वह चीज़ उसमें है। यह तो दृष्टान्त दिया। वह चीज़ भी एक-एक परमाणु में जो-जो पर्याय जिस-जिस काल में होती है, उस-उस काल में उस पर्याय की विद्यमानता है। दूसरी पर्याय के काल में वह पर्याय विद्यमान नहीं। यह तो परमाणु के लिये है। अब परमाणु ध्रुव है, वह प्रत्येक पर्याय में विद्यमान होने पर भी, वह परमाणु उस पर्याय के साथ सम्बन्ध है, वैसा सम्बन्ध दूसरी पर्याय के साथ उसका नहीं। आहाहा! यह तो अस्ति सिद्ध करना है न? अस्तिकाय। उसके अस्तित्व में क्या है? उसके अस्तित्व में क्या है? परमाणु के अस्तित्व में क्या है? आत्मा के अस्तित्व में क्या है?

आत्मा के अस्तित्व में कोई कर्म, शरीर, स्त्री, पुत्र उसकी पर्याय में भी नहीं। वह तो पर में हैं। कनुभाई! न्याय-लॉजिक से तो इसमें बात चलती है। आहाहा! यह तो जीव को मानो सादी बात है। सादी में भी अलौकिक बात है। भाई! तू तो शाश्वत है न? शाश्वत् का ध्रुव है न? ध्रुव की अपेक्षा से उसे उपजना-विनशना तो नहीं। ठीक। अब उपजना विनशना जो भव का-पर्याय का होता है, तो अब उस भव में जो उपजा उस काल में वह भव हो, परन्तु दूसरे काल में वह भव नहीं है। दूसरे समय में दूसरे काल में वह भव होता है। इस भव का उसमें अभाव है, इस अपेक्षा से पर्याय में भाव, दूसरे में अभाव। वह पर्याय पर्याय में भाव, दूसरी पर्याय में अभाव और वस्तुरूप से तू आत्मा ध्रुव है, इससे प्रत्येक पर्याय में तेरा भाव। ध्रुवता कायम-कायम... अन्वय... अन्वय... अन्वय... ध्रुव... ध्रुव रहता है। इस अपेक्षा से तो भाव और जो द्रव्य और जो अवस्था का सम्बन्ध है, वैसे

सम्बन्धवाला द्रव्य दूसरी पर्याय द्वारा ऐसे सम्बन्धवाला नहीं है। इसलिए अभाव भी है, इसलिए अभाव भी है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा करके तुझे शरण और नजर करनी हो तो ध्रुव के ऊपर है। दूसरा तो तुझमें है नहीं, इसलिए कोई शरण और नजर डालने जैसा नहीं। अब तुझमें जो पर्याय बदलती है, वह भी एक समयमात्र की अवस्था है। वह अवस्था दूसरे समय में नहीं है। और उसमें द्रव्य परमाणु भी और आत्मा भी दूसरे समय में उस पर्याय के उस सम्बन्धवाला दूसरे समय में उस पर्याय के सम्बन्धवाला नहीं। कहो, समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा और प्रत्येक वस्तु अपने-अपने ध्रुवपने को कायम रखकर समय-समय की अवधिवाली एक समय की अवधिवाली, वह दृष्टान्त दिया है, वह तो पूरे भव की अवधिवाला (दिया है)। परन्तु इन्हें द्रव्य और पर्याय के अस्तित्व का सिद्धान्त सिद्ध करना है। समझ में आया?

तुझे सम्बन्ध किसका प्रभु? तुझे सम्बन्ध तेरी पर्याय का-अवस्था का। यह राग-द्वेष, पुण्य-पाप जो है, वह बस इतना। और शुद्धता हो तो शुद्धता की पर्याय सम्बन्ध इतना ही। समझ में आया? और यह पर्याय पहले काल में है, तब तो स्वकाल में ही वह होती है। पश्चात् परकाल में वह नहीं होती, इसलिए उसका एक-दूसरे में अभाव है। तू तो सबमें सद्भाव है। तू कहाँ नहीं? किस पर्याय में तू नहीं? ऐसा है? अब कहते हैं, वह सब पर्याय में है, तथापि एक समय की पर्यायमात्र यह जो आत्मा है, वह दूसरी पर्याय के सम्बन्ध के समय वह पर्याय दूसरी हो गयी, इसलिए द्रव्य भी इस अपेक्षा से दूसरे समय के सम्बन्ध की अपेक्षा से अभाव है। समझ में आया? अरे! आहाहा! ऐसी बात मिलना मुश्किल है। यह कथन ऐसा है। समझ में आया?

वह तो ऐसा करो। जीव की दया पालो, व्रत करो। अब मर गया व्रत करके, सुन न! वह तो विकल्प है, राग। राग की पर्याय के समय राग है। वह तो पर्याय का सम्बन्ध है। पर्याय का सम्बन्ध हुआ। समझ में आया? उस काल में वह राग है। बाद के काल में वापस वह राग नहीं और आत्मा तो उस राग में कायम है। और यह राग काल की अपेक्षा से आत्मा सम्बन्धवाला, ऐसा दूसरे राग की अपेक्षा से यह सम्बन्धवाला नहीं। उसी और

उसी का अस्तित्व ध्रुव और उसी और उसी का पर्याय का अस्तित्व सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

जीव तो सर्व पर्यायों में कायम है। जगत के प्रत्येक संयोग में कायम है, ऐसा यहाँ नहीं लिया। कहते हैं, वह तुझे क्या काम है? संयोग में कायम है, इससे तुझे क्या काम है? संयोग संयोग में गये। पहले तेरी पर्याय संयोग कहा न? जो पर्याय है, अवस्था, उसका इसे संयोग है। है न? पर्याय का संयोग, हों! पर की तो यहाँ बात ही नहीं है। राग-द्वेष आदि पर्याय का तुझे संयोग है। दूसरे समय में उस पर्याय का वियोग है। संयोग और वियोग पर्याय में है। पर के साथ यहाँ संयोग-वियोग की बात नहीं है। समझ में आया?

मनुष्यादिपर्यायरूप से देवादिपर्याय में नहीं.... वह इस अपेक्षा **अविद्यमान भी कहा जाता है।** लो! यह चार गति की बात की। अब सिद्ध की बात करते हैं।

गाथा - २०

णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा।
तेसिमभावं किच्चा अभूदपुव्वो हविद सिद्धो।।२०।।

ज्ञानावरणाद्या भावा जीवेन सुष्ठु अनुबद्धाः।
तेषामभावं कृत्वाऽभूतपूर्वो भवति सिद्धः।।२०।।

अत्रात्यन्तासदुत्पादत्वं सिद्धस्य निषिद्धम्।

यथा स्तोककालान्वयिषु नामकर्मविशेषोदयनिर्वृत्तेषु जीवस्य देवादिपर्यायेष्वेकस्मिन् स्वकारणनिवृत्तौ निवृत्तेऽभूतपूर्व एव चान्यस्मिन्नुत्पन्ने नासदुत्पत्तिः, तथा दीर्घकालान्वयिनि ज्ञानावरणादि-कर्मसामान्योदयनिर्वृत्तसंसारित्वपर्याये भव्यस्य स्वकारनिवृत्तौ निवृत्ते समुत्पन्ने चाभूतपूर्वे सिद्धत्वपर्याये नासदुत्पत्तिरिति। किञ्च-यथा द्राघीयसि वेणुदण्डे व्यवहिताव्यवहित-विचित्रचित्रकिर्मीरताखचिताधस्त-नार्धभागे एकान्तव्यवहितसुविशुद्धोर्ध्वार्धभागेऽवतारिता दृष्टिः समन्ततो विचित्रचित्रकिर्मीरताव्याप्तिं पश्यन्ती समनुमिनोति तस्य सर्वत्राविशुद्धत्वं, तथा क्वचिदपि जीवद्रव्ये व्यवहिताव्यवहितज्ञानावरणा-दिकर्मकिर्मीरताखचितबहुतराधस्तनभागे

एकान्तव्यवहितसुविशुद्धबहुतरोर्ध्वभागेऽवतारिता बुद्धिः समन्ततो ज्ञानावरणादिकर्मकिर्मीरताव्याप्तिं व्यवस्यन्ती समनुमिनोति तस्य सर्वत्राविशुद्धत्वम्। यथाच तत्र वेणुदण्डे व्याप्तिज्ञानाभासनिबन्धन-विचित्रचित्रकिर्मीरतान्वयः, तथाच क्वचिज्जीवद्रव्ये ज्ञानावरणादिकर्मकिर्मीरतान्वयः। यथैव च तत्र वेणुदण्डे विचित्रचित्रकिर्मीरतान्वयाभावात्सुविशुद्धत्वं, तथैव च क्वचिज्जीवद्रव्ये ज्ञानावरणादि-कर्मकिर्मीरतान्वयाभावादाप्तागमसम्यगनुमानातीन्द्रियज्ञान-परिच्छिन्नात्सिद्धत्वमिति।।२०।।

जीव से अनुबद्ध ज्ञानावरण आदिक भाव जो।
उनका अशेष अभाव करके जीव होते सिद्ध हैं।।२०।।

अन्वयार्थ :- [ज्ञानावरणाद्याः भावाः] ज्ञानावरणादि भाव [जीवेन] जीव के साथ [सुष्ठु] भली भाँति [अनुबद्धाः] अनुबद्ध है; [तेषाम् अभावं कृत्वा] उनका अभाव करके वह [अभूतपूर्वः सिद्धः] अभूतपूर्व सिद्ध [भवति] होता है।

टीका :- यहाँ सिद्ध को अत्यन्त असत्-उत्पाद का निषेध किया है। (अर्थात् सिद्धत्व होने से सर्वथा असत् का उत्पाद नहीं होता, ऐसा कहा है)।

जिस प्रकार कुछ समय तक अन्वयरूप से (-साथ-साथ) रहनेवाली, नामकर्मविशेष के उदय से उत्पन्न होनेवाली जो देवादिपर्यायें, उनमें से जीव को एक पर्याय स्वकारण की निवृत्ति होने पर निवृत्त हो तथा अन्य कोई अभूतपूर्व पर्याय ही उत्पन्न हो, वहाँ असत् की उत्पत्ति नहीं है; उसी प्रकार दीर्घ काल तक अन्वयरूप से रहनेवाली, ज्ञानावरणादिकर्म सामान्य के उदय से उत्पन्न होनेवाली संसारित्वपर्याय भव्य को स्वकारण की निवृत्ति होने पर निवृत्त हो और अभूतपूर्व (-पूर्व काल में नहीं हुई ऐसी) सिद्धत्वपर्याय उत्पन्न हो, वहाँ असत् की उत्पत्ति नहीं है।

पुनश्च (विशेष समझाया जाता है) :-

जिस प्रकार जिसका विचित्र चित्रों से चित्रविचित्र नीचे का अर्ध भाग कुछ ढँका हुआ और कुछ बिन ढँका हो तथा सुविशुद्ध (-अचित्रित) ऊपर का अर्ध भाग मात्र ढँका हुआ ही हो ऐसे बहुत लम्बे बाँस पर दृष्टि डालने से वह दृष्टि सर्वत्र विचित्र चित्रों से हुए चित्रविचित्रपने की व्याप्ति का निर्णय करती हुई 'वह बाँस सर्वत्र अविशुद्ध है (अर्थात् सम्पूर्ण रंग-बिरंगा है)'-ऐसा अनुमान करती है; उसी प्रकार जिसका ज्ञानावरणादि कर्मों से हुआ चित्रविचित्रतायुक्त (-विविध विभावपर्यायवाला) बहुत बड़ा नीचे का

भाग कुछ ढँका हुआ और कुछ बिन ढँका है तथा सुविशुद्ध (सिद्धपर्यायवाला) बहुत बड़ा ऊपर का भाग मात्र ढँका हुआ ही है, ऐसे किसी जीवद्रव्य में बुद्धि लगाने से वह बुद्धि सर्वत्र ज्ञानावरणादि कर्म से हुए चित्रविचित्रपने की व्याप्ति का निर्णय करती हुई 'वह जीव सर्वत्र अविशुद्ध है (अर्थात् सम्पूर्ण संसारपर्यायवाला है)' ऐसा अनुमान करती है। पुनश्च जिस प्रकार उस बाँस में व्याप्तिज्ञानाभास का कारण (नीचे के खुले भाग में) विचित्र चित्रों से हुए चित्रविचित्रपने का अन्वय (-सन्तति, प्रवाह) है, उसी प्रकार उस जीवद्रव्य में व्याप्तिज्ञानाभास का कारण (नीचे के खुले भाग में) ज्ञानावरणादि कर्म से हुए चित्रविचित्रपने का अन्वय है। और जिस प्रकार बाँस में (ऊपर के भाग में) सुविशुद्धपना है, क्योंकि (वहाँ) विचित्र चित्रों से हुए चित्रविचित्रपने के अन्वय का अभाव है, उसी प्रकार उस जीवद्रव्य में (ऊपर के भाग में) सिद्धपना है क्योंकि (वहाँ) ज्ञानावरणादि कर्म से हुए चित्रविचित्रपने के अन्वय का अभाव है-कि जो अभाव आप्त-आगम के ज्ञान से सम्यक् अनुमानज्ञान से और अतीन्द्रिय ज्ञान से ज्ञात होता है।

भावार्थ :- संसारी जीव की प्रगट संसारी दशा देखकर अज्ञानी जीव को भ्रम उत्पन्न होता है कि-'जीव सदा संसारी ही रहता है, सिद्ध हो ही नहीं सकता; यदि सिद्ध हो तो सर्वथा असत्-उत्पाद का प्रसंग उपस्थित हो।' किन्तु अज्ञानी की यह बात योग्य नहीं है।

जिस प्रकार जीव को देवादिरूप एक पर्याय के कारण का नाश होने पर उस पर्याय का नाश होकर अन्य पर्याय की उत्पन्न होती है, जीवद्रव्य तो जो है वही रहता है; उसी प्रकार जीव को संसारपर्याय के कारणभूत मोहरागद्वेषादि का नाश होने पर संसारपर्याय का नाश होकर सिद्धपर्याय उत्पन्न होती है, जीवद्रव्य तो जो है वही रहता है। संसारपर्याय और सिद्धपर्याय दोनों एक ही जीवद्रव्य की पर्यायें हैं।

पुनश्च, अन्य प्रकार से समझाते हैं :- मान लो कि एक लम्बा बाँस खड़ा रखा गया है; उसका नीचे का कुछ भाग रंगबिरंगा किया गया है और शेष ऊपर का भाग अरंगी (-स्वाभाविक शुद्ध) है। उस बाँस के रंगबिरंगे भाग में से कुछ भाग खुला रखा गया है और शेष सारा रंगबिरंगा भाग और पूरा अरंगी भाग ढंक दिया गया है। उस बाँस का खुला भाग रंगबिरंगा देखकर अविचारी जीव 'जहाँ-जहाँ बाँस हो वहाँ-वहाँ रंगबिरंगीपना होता है' ऐसी व्याप्ति (-नियम, अविनाभावसम्बन्ध) की कल्पना कर

लेता है और ऐसे मिथ्या व्याप्तिज्ञान द्वारा ऐसा अनुमान खींच लेता है कि 'नीचे से ऊपर तक सारा बाँस रंगबिरंगा है।' यह अनुमान मिथ्या है; क्योंकि वास्तव में तो उस बाँस के ऊपर का भाग रंगबिरंगेपने के अभाववाला है, अरंगी है। बाँस के दृष्टान्त की भाँति– कोई एक भव्य जीव है; उसका नीचे का कुछ भाग (अर्थात् अनादि काल से वर्तमान काल तक का और अमुक भविष्य काल तक का भाग) संसारी है और ऊपर का अनन्त भाग सिद्धरूप (–स्वाभाविक शुद्ध) है। उस जीव के संसारी भाग में से कुछ भाग खुला (प्रगट) है और शेष सारा संसारी भाग और पूरा सिद्धरूप भाग ढँका हुआ (अप्रगट) है। उस जीव का खुला (प्रगट) भाग संसारी देखकर अज्ञानी जीव 'जहाँ–जहाँ जीव हो वहाँ–वहाँ संसारीपना है' ऐसी व्याप्ति की कल्पना कर लेता है और ऐसे मिथ्या व्याप्तिज्ञान द्वारा ऐसा अनुमान करता है कि 'अनादि–अनन्त सारा जीव संसारी है।' यह अनुमान मिथ्या है; क्योंकि उस जीव का ऊपर का भाग (–अमुक भविष्य काल के बाद का अनन्त भाग) संसारीपने के अभाववाला है, सिद्धरूप है–ऐसा सर्वज्ञ प्रणीत आगम के ज्ञान से, सम्यक् अनुमानज्ञान से तथा अतीन्द्रिय ज्ञान से स्पष्ट ज्ञात होता है।

इस तरह अनेक प्रकार से निश्चित होता है कि जीव संसारपर्याय नष्ट करके सिद्धरूपपर्यायरूप परिणमित हो, वहाँ सर्वथा असत् का उत्पाद नहीं होता।।२०।।

गाथा - २० पर प्रवचन

णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा।
तेसिमभावं किच्चा अभूदपुव्वो हविद सिद्धो।।२०।।

जीव से अनुबद्ध ज्ञानावरण आदिक भाव जो।
उनका अशेष अभाव करके जीव होते सिद्ध हैं ॥२० ॥

अभी तक द्रव्यपर्याय की बात की। अब, यह ज्ञानावरणीय का सम्बन्ध है, उसका अभाव से यह बात करते हैं।

टीका :- यहाँ सिद्ध को अत्यन्त असत्-उत्पाद का निषेध किया है.... अर्थात् सिद्धपना नहीं था और उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह तो अन्दर है। सिद्धपना है। ऐसे जीव का दृष्टान्त देंगे। कि जिसे सिद्धपना अल्प काल में प्रगट होनेवाला है। ऐसा

दृष्टान्त देंगे। समझ में आया? जिसे अपने द्रव्य की दृष्टि ध्रुव की श्रद्धा हुई और पर्याय जितना एक-एक समय का सम्बन्ध है, उसका ज्ञान हुआ। उसे थोड़े काल भले रागादि का भाव संसार हो, परन्तु फिर तो उसे सिद्ध पर्याय ही आनेवाली है। परन्तु वर्तमान (में) एक बार रागवाले को देखकर ऐसा मानना कि आत्मा रागवाला ही है, ऐसा नहीं। समझ में आया?

जब राग बिना का होगा, तब तो सिद्धपद में रागवाला नहीं रहेगा। राग भले अनादि से हो और थोड़े काल एक-दो भव भी राग रहेगा, ऐसा दृष्टान्त देंगे। ऐसा यह दृष्टान्त देंगे। क्योंकि एकदम अभी मोक्ष में जाये, ऐसा जीव नहीं है न? यह दृष्टान्त ऐसा दिया है। ऐई! क्योंकि सिद्ध होना है, यह तो निश्चित है। ऐसी जिसे श्रद्धा होती है। ध्रुव त्रिकाल पड़ा है। पर्याय जितना सम्बन्ध पर्याय भिन्न-भिन्न है और एक पर्याय जितने में मैं पूरा आ नहीं जाता। ऐसी जिसे ध्रुव दृष्टि का भान हुआ, उसे अनन्त संसार रागवाला गया और थोड़ा एक-दो भव भी रागवाला रहेगा, तथापि वह रागवाला त्रिकाल है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

टीका :- यहाँ सिद्ध को अत्यन्त असत्-उत्पाद का निषेध किया है (अर्थात् सिद्धत्व होने से सर्वथा असत् का उत्पाद नहीं होता ऐसा कहा है।) वास्तव में तो आत्मा मोक्षस्वरूप ही, सिद्धस्वरूप ही है। आहाहा! वह सिद्धस्वरूप ही है। पर्याय में राग है, वह तो पर्यायबुद्धि से राग, वह राग है। और जिसे ध्रुव सिद्धस्वरूप है, ऐसी जहाँ दृष्टि हुई उसे अल्पकाल राग रहेगा और फिर सिद्ध की पर्याय प्रगट हो जायेगी। निःसन्देह होगी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

जिस प्रकार कुछ समय तक अन्वयरूप से (-साथ साथ) रहनेवाले नामकर्म-विशेष के उदय से उत्पन्न होनेवाली जो देवादिपर्यायें.... लो, यहाँ से देवादि लिया। **उनमें से जीव को एक पर्याय स्वकारण की निवृत्ति होने पर....** देवभव हुआ। **उनमें से जीव को एक पर्याय स्वकारण की निवृत्ति होने पर....** देव के कारण की निवृत्ति होने से **निवृत्त हो तथा अन्य कोई अभूतपूर्व पर्याय ही उत्पन्न हो,....** यह तो अभी सिद्ध होने के लिये दृष्टान्त देते हैं। क्योंकि देव में जब हो तब मनुष्यपने की पर्याय नहीं होती। समझ में आया?

पंचम काल के धर्मात्मा मुनि तो स्वर्ग में ही जाते हैं, ऐसा सिद्ध करते हैं। पंचम काल का सम्यग्दृष्टि हो तो वह वैमानिक स्वर्ग में ही जाता है। समकिती मनुष्य मरकर मनुष्य नहीं होता। समझ में आया? यह वैमानिक (में जाये)। वैमानिक कहा न? फिर भले सौधर्म में जाये, उसका कुछ नहीं। वैमानिकदेव होता है। वह पुरुषरूप से होता है। यह अनादि सिद्धान्त तत्त्व (है)। समझ में आया? इसलिए यहाँ कहते हैं, मनुष्यदेह गयी, स्वर्ग में देव (रूप से) आया। अब देव में से वापस मनुष्य पहली पर्याय नहीं थी और अभूतपूर्व नयी हुई, ऐसा कहते हैं। वहाँ वह मनुष्य की पहली थी। ऐसी नहीं, यह नयी मनुष्य की पर्याय नहीं थी, ऐसी अभूतपूर्व नयी हुई। समझ में आया?

श्रीमद् में एक जगह लिखा है कि 'इस भव पहले यह भव ऐसा नहीं मिला पहले।' समझ में आया? 'अब इसके बाद का यह भव ऐसा नहीं मिलेगा।' समझ में आया? क्योंकि आराधक होकर जायेंगे, इसलिए वापस देह ही ऐसी नहीं मिलेगी। भव ही दूसरा होगा। इस प्रकार का भव नहीं मिलेगा। समझ में आया? जो वर्तमान मनुष्य सहित का भाव है, वैसा देह और वैसी योग्यतावाली पर्याय भविष्य में नहीं रहेगी। छगनभाई! एक जगह है। है? वह बुक नहीं, वह कहाँ? कितने पृष्ठ पर? वह कहीं अपने को याद होता है? छब्बीसवें का अन्तिम है या नहीं? नहीं, नहीं। बीच में है नहीं? वह तो अन्तिम हो कहीं? एक बार बताया था हों! हाँ, पच्चीस का अन्तिम। दूसरी तो कुछ स्पृहा नहीं। कोई प्रारब्ध स्पृहा भी नहीं। सत्तारूप से पूर्व में उपार्जन की हुई उपाधिरूप स्पृहा, वह तो अनुक्रम से संवेदन करनी है। एक सत्संग उत्तमरूप सत्संग की स्पृहा के अतिरिक्त, सौभाग्यभाई के ऊपर है। स्पृहा वर्तती है। रुचिमात्र समाधान..... यह आश्रयरूप बात कहाँ कहना? आश्चर्य होता है कि अब आया। यह जो देह मिला, यह पूर्व में कभी मिला न हो तो भविष्य काल में प्राप्त होना नहीं। ऐसा देह अब नहीं मिलेगा, भाई! देह ऐसा नहीं मिलेगा। इस प्रकार का देह है। वह देह ऐसी जाति का नहीं होगा। समझ में आया? छोटी उम्र में देह छूट गया न, (इसलिए) बहुत स्पष्टता बाहर नहीं आयी। स्वयं तो अपना काम कर गये परन्तु बाहर में इतना अधिक (नहीं आया)। अन्दर में भी गड़बड़ रह गयी।

यहाँ तो कहते हैं—यह जो देह मिला है, वह पूर्व में किसी समय मिला न हो तो,

भविष्य काल में प्राप्त होना नहीं है। देह नहीं मिलनेवाला न, वापस कहते हैं, इसलिए देह एक धारकर, ऐई!

मुमुक्षु : देह तो होता ही नहीं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : देह तो होता ही है। इस जाति का देह अब भविष्य में नहीं आयेगा। जाति ही कोई परमाणु की पर्याय की जाति अब दूसरी आयेगी। धन्यरूप करती ऐसी हम उसके विषय में उपाधियोग यदि होवे तो लोकमात्र भूले, उसमें आश्चर्य नहीं है और पूर्व में यदि सत्पुरुष की पहिचान पड़ती नहीं तो यहाँ ऐसे योग के काम से अधिक लिखना सूझता नहीं। संक्षिप्त भाषा में कितना लिखा है? समझ में आया? विराधक होकर जो देह मिला, वह आराधक के पश्चात् उस जाति के परमाणु भी नहीं आयेंगे। परमाणु की पर्याय दूसरी हो जायेगी। ऐ चेतनजी! गजब! आहाहा! यह तो है ऐसे भाववाले में से आते हैं या न हो, उसमें से आयेंगे? यह भाव सिद्धपना है, ऐसी अन्तर्दृष्टि हो गयी है, उसे पूर्व में मिला हुआ जो यह देह, ऐसा देह अब नहीं हो सकता। उसे देह हो नहीं सकता। भाव तो नहीं परन्तु देह नहीं हो सकता। आहाहा! क्योंकि पुण्य भी अलग प्रकार का और पुण्य के निमित्तरूप परमाणु आवें, वे अलग प्रकार के परमाणु (जो) अनन्त काल में नहीं आये हों, ऐसे आयेंगे। आहाहा! न्याय समझ में आता है कुछ?

देवपना छूटकर, स्वयं मुनि हैं न? कहते हैं कि यह मनुष्यपना तो छूट जायेगा। यह अवधिकाल का है। और पंचम काल के हैं, इसलिए देव में गति होगी। समझ में आया? और देव के पश्चात् उनकी स्थिति अवधि होकर मनुष्य होंगे। परन्तु वह मनुष्यपना अलग प्रकार का होगा। **'अभूतपूर्व'...** उसमें से भाई! अपने यह याद आया। ऐई! अनन्त काल में जो मनुष्यपना मिला, ऐसा नहीं। हें?

भगवान आत्मा ध्रुवस्वरूप में जहाँ दृष्टि पड़ी, उसे मनुष्य और देव की और मनुष्य की हदवाली पर्याय मिले तथापि, यहाँ तो साधारण बात करते हैं परन्तु यह तो मुनि के हृदय में अन्दर में यह भरा है। अपनी बात। अब उसका जो मनुष्यभव मिलेगा। वह अभूतपूर्व है। पूर्व में ऐसी कोई मनुष्य की गति में ऐसा भव मिला नहीं, ऐसा भव दूसरे प्रकार का होगा। हम धर्म का आराधन करके जाति हैं। आराधन बिना के भव मिले थे, वे भाव और

उन भाव का निमित्त कोई चीज़ दूसरी थी। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

देखो, इसमें तो बहुत सिद्धान्त हुए। वे कहते हैं कि समकिती मरकर महाविदेह में गये। हें? श्रीमद् महाविदेह में हैं। वह कहे, मैं देखता हूँ केवलज्ञानी है। वे कहे ऐसा है और वैसा है। अरे! कौन जाने? वस्तु को वस्तुरूप रख। ऐसी बदल न डाल। वह लिखते हैं। वस्तु को वस्तुरूप रख। वस्तु को बदल मत-बदल मत। वस्तु तो वस्तुरूप रहेगी। तेरी कल्पना से कोई दूसरा हो, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मिथ्यादृष्टिरूप से मनुष्य और देव की स्थिति पूरी होकर मिथ्यादृष्टि भले वापस इस मनुष्य में आवे, वह भी कहीं कोई नहीं हुआ अनादिकाल का ऐसा यह देह नहीं है। आहाहा! यहाँ तो सिद्ध के साथ जैसे अभूतपूर्व पर्याय है और ऐसे इस देह की भी अभूतपूर्व पर्याय दूसरी आयेगी। ऐसा कहते हैं। ऐई! आहाहा! देखो, आत्मा के स्वरूप की अन्तर आराधन दशा। ऐसे सन्त हों या समकिती हो, उन्हें देव में जाकर मनुष्य होंगे और उसी भव से या केवलवज्ञान लेंगे और कोई एकाध भव होगा तो भी वह अनन्त काल के देव का भव जो हुआ, उस देव के रजकण भी अलग प्रकार के होंगे वापस। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा भगवान आत्मा नित्यानन्द ध्रुवस्वरूप है, उसकी दृष्टि हुई, मर्यादित काल में पर्याय होने पर भी और दूसरे भव में देव छूटकर मनुष्य होंगे, अभूतपूर्व होंगे, समझ में आया? वहाँ असत् की उत्पत्ति नहीं। वास्तव में वह कहीं असत् की उत्पत्ति (नहीं)। उसमें योग्यता ही उस प्रकार की उत्पन्न होने की थी, वही हुई है। तथा यह तो एक साधारण दृष्टान्त दिया है। क्यों? **दीर्घकाल तक अन्वयरूप से रहनेवाली ज्ञानावरणादिकर्मसामान्य के उदय से उत्पन्न होनेवाली संसारित्वपर्याय भव्य को स्वकारण की निवृत्ति होने पर....** लो, पूरा स्वकाल। **दीर्घकाल तक....** संसार में **अन्वय...** अर्थात् साथ में रहनेवाला **ज्ञानावरणादिकर्मसामान्य के उदय से उत्पन्न होनेवाली संसारित्वपर्याय....** सब हुआ है न आठों कर्म के उदय से सांसारिक, उदयभाव है न? उदयभाव। असिद्धभाव है। वह सिद्धभाव नहीं। सांसारिक पर्याय है तो उदयभाव असिद्धभाव है, वह अनादि से आत्मा उसमें होने पर भी **उदय से उत्पन्न होनेवाली संसारित्वपर्याय भव्य को स्वकारण की निवृत्ति होने पर....** उसके कारण से निवृत्ति होगी। भगवान आत्मा का आश्रय होकर इस

पर कारण की निवृत्ति होगी। और निवृत्ति होगी, तथा **अभूतपूर्व (-पूर्वकाल में नहीं हुई ऐसी) सिद्धत्वपर्याय उत्पन्न हो, वहाँ असत् की उत्पत्ति नहीं है।** मोक्षस्वरूप भगवान आत्मा है। मुक्तस्वरूप है। उस मुक्त में सिद्ध की पर्याय शक्तिरूप से अनन्त पड़ी है। समझ में आया ?

संसार की पर्याय काल में भी आत्मा में अन्दर सिद्ध की अनन्त पर्यायें पड़ी हैं। वे अन्तर में से आयी, संसार का व्यय होकर, सिद्ध की पर्याय का उत्पाद होगा और ध्रुव तो कायम रहेगा। समझ में आया ? 'भव्य' शब्द डाला है न वापस ? सांसारिक पर्याय भव्य को, अभव्य को तो होता नहीं। **स्वकारण की निवृत्ति होने पर....** अर्थात् कि कर्मरूपी-रागरूपी कारण, ऐसे कारण की निवृत्ति होने से भगवान निवृत्त हो, वह राग के कारण से भगवान आत्मा अपने शुद्ध ध्रुवस्वभाव के शरण में जाने से, उससे निवृत्त होता है। लो, यह निवृत्त होता है। लोग नहीं कहते कि अभी निवृत्ति ली है वकालत की। ...का चलता (न) हो तब, ऐसा कहे न ? वह ऐसा कहे कि हमने अभी धन्धा कम किया है। चले नहीं इसलिए ऐसा कहे कि कम किया है। ऐई वजुभाई ! हें ? निवृत्ति (ली है) वह तो जानी नहीं कुछ ऐसे सबके जैसे नहीं हुए। उन्हें तो चलता था और इनकार कर दिया। कहो, समझ में आया ?

यहाँ एक पारसी आया था न तब ? एक भावनगर का था न ? पाँच सौ रुपये दो और दो दिन काम लो। ऐई ! कनुभाई ! यहाँ तो कहते हैं। आहाहा ! **स्वकारण की निवृत्ति होने पर....** भगवान आत्मा में वहाँ मिथ्यात्व और अज्ञान तो नहीं। अब थोड़ा राग रहा, तो उस राग का कारण भी निवृत्त होने से, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? और **अभूतपूर्व (-पूर्वकाल में नहीं हुई ऐसी)....** अनन्त काल में कोई सिद्धपर्याय पहले हुई थी... है ? आहाहा ! संसार की पर्याय का अन्त और 'सादि-अनन्त-अनन्त समाधि सुख में, अनन्त दर्शन ज्ञान अनन्त सहित जो। अपूर्व अवसर (ऐसा) उसका समय कब आयेगा ?' परन्तु भावना तो है, आये बिना रहेगा नहीं ? आहाहा ! समझ में आया ? यह अपूर्व आया न ? यहाँ अभूत आया। अरे बापू ! दर्शन में भी अपूर्व (आया)। समझ में आया ? 'कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ' यह भी अपूर्व है। आहाहा !

यहाँ तो भगवान आत्मा की क्रीड़ा की बात चलती है। भाई! पर के साथ कुछ लेना-देना (है ही नहीं) सब मुँह फाड़कर खड़े रहेंगे। आहाहा! अरे! भाई को यह हुआ। क्या लेंगे? बुलाओ डॉक्टर को, लो यह इंजैक्शन डालो। यह दवाईयाँ यहाँ थी न सब। मोदी का बहनोई विष्णु था वह। होशियार व्यक्ति था। मुझे बुलाया, मैं आया था (उसने) वन्दन किया। खीमचन्दभाई के मकान में आये थे। पहला मकान था न तुम्हारे, वह वहाँ ही थे। दो डॉक्टर आये थे। होशियार थे। करशन मोदी, दो बहनों से विवाह किया था दोनों सगी बहनें थीं। मरने की तैयारी थी और दो डॉक्टर मोटर लेकर आये थे। ऐ कहा मुझे बुलाया और यह डॉक्टर (को भी बुलाया)। अरे महाराज! आप तो आओ पहले, यह तो सब मुफ्त का करते हैं।

यह तो वह शरीर जीर्ण हुआ है तो उसका बदलने का काल है। ऐसा बोला, हों! जीर्ण हो गया है। हें? नया। ऐसा बोलता था गजब मनुष्य। ऐसा कोई रोग हो गया। उम्र छोटी, खीमचन्दभाई के मकान में गुजर गया। यह दो डॉक्टर धूल में डॉक्टर कहे उसमें कुछ नहीं। पैसे चाहिए हो तो कुछ इनकार करे? ऐसा तो बोला कि अब यह रहनेवाला नहीं है। शरीर जीर्ण हो गया। स्वास्थ्य बराबर हो! होशियार व्यक्ति। शरीर हो गया जीर्ण। छूटेगा ही। अब नया पहनावा लेना है। आहाहा! डॉक्टर भी वहाँ क्या करे? और सब खड़े (खड़े देखे) पैसे डाले तो भी क्या करे? लाख रुपये दे कि लाओ भाई तुझे, धूल लाख, बापू! वह तो वहाँ एक समय की पर्याय मिली वह। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं अन्दर में जहाँ राग की पर्याय की उत्पत्ति है, उस काल में भले हो। और उसके कारण पुण्य बँध जाये और स्वर्ग में भी जाये और अभी एकाध भव हो, इससे वहाँ उसे मनुष्यपना अनन्त काल में भी नहीं मिली, ऐसी जाति मिलेगी और फिर सिद्धपर्याय प्रगट होगी। परन्तु वह सिद्धपर्याय नहीं थी और हुई, ऐसा है नहीं। उसके प्रवाह में अन्दर पड़ी है। उसे स्वकाल में आयेगी, ऐसा यह तो कहते हैं। वह स्वकाल है न! आहाहा! समझ में आया?

वह **सिद्धत्वपर्याय उत्पन्न हो, वहाँ असत् की उत्पत्ति नहीं है।** अब दृष्टान्त देकर विशेष समझाया जाता है। **जिस प्रकार जिसका विचित्र चित्रों से चित्रविचित्र नीचे का**

अर्धभाग कुछ ढँका हुआ.... देखो यह चित्रित है न? देखो यह चित्रित है। **अर्धभाग कुछ ढँका हुआ और कुछ बिन ढँका हो तथा सुविशुद्ध (-अचित्रित) ऊपर का अर्धभाग मात्र ढँका हुआ ही हो....** ऊँचे का थोड़ा भाग ढँका हुआ ही होता है। **ऐसे बहुत लम्बे बाँस पर दृष्टि डालने से वह दृष्टि सर्वत्र विचित्र चित्रों से हुए चित्रविचत्रपने की व्याप्ति का निर्णय करती हुई....** देखो, यह चित्र है न? ढँका हुआ है और थोड़ा फिर ऐसे खुला हो, वहाँ ढँका हुआ हो। वह खुला है और दृश्य यह... यह... यह... ऐसा है न? देखो, यह थोड़ा ऐसा है। यह ढँका हुआ है। ऐसा ढँका हुआ होने पर भी उसकी नजर पड़ जायेगी। ऐसा ढँका हुआ बाँस में सदा रहेगा। ऐसी व्याप्ति अर्थात् अज्ञानी मेल कर डालता है।

वह बाँस सर्वत्र अविशुद्ध है (अर्थात् सम्पूर्ण रंगबिरंगा है)। यह रंग-बिरंगी यहाँ अन्दर है और थोड़ा बाहर है, बाकी दूसरा ढँका हुआ है। ऐसे-ऐसे ढँका हुआ है। इस प्रकार ढँक गया है। अब ऐसा है थोड़ा खुल्ला है और थोड़ा ढँका हुआ है। यह सब ढँका हुआ है। उसमें से ऐसा मानता है कि यह बाँस सर्वत्र रंग-बिरंगी है, ऐसा अनुमान करता है। इस प्रकार ढँका हुआ है, वह अन्दर में रंग-बिरंगी है, ऐसा। ऐसा आया और ढँका हुआ ऐसा। यह है ऐसा ही इसका ऊपर सब है, ऐसा मान लिया है। परन्तु ऐसा नहीं है।

उसी प्रकार जिसका ज्ञानावरणादि कर्मों से हुआ चित्रविचित्रतायुक्त (-विविध विभावपर्यायवाला) बहुत बड़ा नीचे का भाग कुछ ढँका हुआ और कुछ बिन ढँका है तथा सुविशुद्ध (सिद्धपर्यायवाला) बहुत बड़ा ऊपर का भाग मात्र ढँका हुआ ही है.... यह बड़ा भाग उस ओर ढँका हुआ जैसा है। है न बड़ा है न, देखो न! यहाँ तो छोटा है। बड़ा भाग ढँका हुआ है। यह उघाड़ा है और खुल्ला, ऐसा मानो ढँका हुआ सब इसी जाति का है, ऐसा अनुमान अज्ञानी करता है।

सुविशुद्ध (सिद्धपर्यायवाला) बहुत बड़ा ऊपर का भाग मात्र ढँका हुआ ही है.... बहुत बड़ा, हों! क्या कहते हैं? संसार की पर्याय तो अनन्तवें भाग में है। सिद्ध की पर्याय तो अनन्त-अनन्त गुणी अनन्त काल है। रंगा हुआ इतना है, खुला कितना है यह? यह तो अभी गिनतीवाला, हों! इससे डेढ़ा दुगना हो। वह डेढ़ा दुगना नहीं, वह अनन्तगुणा (होता है)। राग के रंगवाली संसार की पर्याय से अराग की सिद्ध की पर्याय तो अनन्तगुणी

अनन्त काल है। परन्तु वह ढँका हुआ है, इसलिए खुले रंगवाले को देखकर पूरा ढँका हुआ भी रंगवाला है, ऐसा अज्ञानी मान लेता है। आहाहा! समझ में आया? पर्यायदृष्टि है, ऐसा कहते हैं, भाई! पर्यायदृष्टिवाला है, तब तक ऐसा ही रहेगा, ऐसा ही रहेगा, ऐसा मानता है। समझ में आया? जिसकी राग पुण्य-पाप के विकल्प का मेल है, उसके ऊपर दृष्टि है और दूसरा भाग ढँका हुआ, खुला है नहीं, इसलिए यही मेलवाली पर्याय सदा रहेगी, ऐसा अज्ञानी को पर्याय बुद्धि में भासित होता है। समझ में आया?

ऐसे किसी जीवद्रव्य में बुद्धि लगाने से वह बुद्धि सर्वत्र ज्ञानावरणादि कर्म से हुए चित्रविचित्रपने की व्याप्ति का निर्णय करती हुई.... यह ज्ञानावरणीय कर्म के निमित्त से ज्ञान की हीनता भासित हो और दूसरा सिद्धपर्याय हो, वह तो अभी दिखती नहीं। इसलिए इस राग को चित्र-विचित्र ऐसा मानो सदा उसमें रहेगा। पर्यायबुद्धिवाले को सदा ऐसा (भासित होता है)। द्रव्यबुद्धि की तो खबर नहीं। तथा यह ज्ञायकपना आनन्दपना ध्रुवपना शुद्धचैतन्य स्थित है, उसकी तो अज्ञानी को दृष्टि नहीं। अज्ञानी को इस विकार पर दृष्टि ऐसी की ऐसी पर्यायबुद्धिवाले को सदा विकार रहेगा, ऐसा मानता है। यदि पर्यायदृष्टिवाला ऐसा मानता है और द्रव्य बुद्धिवाला (ऐसा मानता) नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

वह बुद्धि सर्वत्र ज्ञानावरणादि कर्म से हुए चित्रविचित्रपने की व्याप्ति का निर्णय करती हुई 'वह जीव सर्वत्र अविशुद्ध है (अर्थात् सम्पूर्ण संसारपर्यायवाला है)' ऐसा अनुमान करती है। ऐसा अज्ञानी अनुमान करता है। वस्तु शुद्ध चिदानन्दस्वरूप ध्रुव जो चिद्पद है, उसके ऊपर जिसकी दृष्टि नहीं, वह तो विकारवाली पर्याय को देखता हुआ ऐसा ही विकार सदा अनन्त काल रहेगा (और) द्रव्य का स्वभाव यही है और इस प्रकार से संसार में रहेगा, ऐसा मानता है। समझ में आया? बराबर है, प्रवीणभाई! आहाहा! दुःखी हो तो माने यह दुःखी तो सदा रहेगा। कब अन्त आयेगा? सुखी माने सुखिया धूल में पैसे में, शरीर में। आहाहा! यह तो सुख सदा रहेगा मानो, हें? सुखिया आवे न अनुकूलता? मृत्यु तक अपने साधन अच्छे रह गये हैं। धूल में भी (साधन) तेरे नहीं। यह तो बिच्छू काटे और अमुक रखो न... धूल भी नहीं शरण होगा, सुन न? ऐ, बाहर की चीज़ में कहाँ

तेरा देह रहा हुआ है ? उसकी स्थिति पर्याय की अवधि है, तब तक रहेगा। देह के रजकण तो पर्याय में कायम हैं ही। कहीं तू उसमें नहीं, कहीं पर्याय में और ध्रुव में कहीं नहीं। समझ में आया ?

अपनी ध्रुवता और अपनी पर्याय को देखने कब यह निवृत्त है ? वह तो ऐसा का ऐसा बाहर का देखकर चला ही जाता है। आहाहा! पैसा कुछ मिले और पचास-साठ-सत्तर वर्ष शरीर निरोगी रहे। आहाहा! अपने तो किसी दिन सोंठ चुपड़ी नहीं – रोग कभी आया नहीं। रोग कभी नहीं आया तो क्या हुआ परन्तु अब ? ऐई, पोपटभाई! ऐसा कितने ही कहते हैं, हों! साठ-पैंसठ वर्ष हुए परन्तु कभी सोंठ चोपड़ी नहीं, परन्तु क्या है ? मर जायेगा अभी। फू हो जायेगा। हें... हें... हें... यह तो देह की स्थिति अवधिकाल है, तब तक रहेगी। छूट जायेगी। समझ में आया ? आहाहा! वह अवधिवाली चीज़ है। तेरी पर्याय की अवधिवाली चीज़ है, ऐसा। उसको तो एक ओर रख, ऐसा कहते हैं। परन्तु वह अवधि की चीज़वाले का भाव तो (ऐसा होता है कि) यह मानो सर्वत्र यह चीज़ मुझमें होगी (ऐसा मानता है)। आहाहा! भगवान अखण्डानन्द प्रभु, ध्रुवचैतन्य जिसमें सिद्धपद ही पड़ा है। वीतरागभाव स्वभाव में पड़ा है। वस्तु स्वयं वीतरागभावस्वरूप है।

यह राग निकल जाता है, इसका अर्थ क्या हुआ ? राग निकलकर वीतरागता होती है, उसका अर्थ क्या हुआ ? वीतरागता कहाँ से आयी ? असत् आता है ? नया आता है ? इसलिए तो यह बात करते हैं। अन्दर वीतरागभाव ही तेरा है। शक्तिरूप है परन्तु स्वभावरूप है। व्यक्तरूप होना, वह एकाग्र होने से व्यक्तरूप होता है। समझ में आया ? वे दया, दान और व्रत में एकाग्र होने पर सिद्धपद पर्याय प्रगट हो, ऐसा नहीं है – ऐसा कहते हैं। मर्यादित और उसमें एकाग्र होगा तो वहाँ कहाँ सिद्धपद है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? जहाँ सिद्धपद है।

वस्तु भगवान सच्चिदानन्द प्रभु सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द की खान है। वह स्वयं वीतरागभाव स्वभावरूप, परमात्मा ने प्रगट किया और तेरा भी ऐसा ही स्वभाव है। उसमें कुछ अन्तर नहीं है। ऐसे स्वभाव में दृष्टि देने से सिद्धपद और धर्म होता है। राग के ऊपर दृष्टि देने से तो अधर्म और विकार होता है। राग जाये, उसमें से सिद्ध पर्याय नयी होती

है ? उसमें से होती है ? निवृत्ति कब ? परन्तु उत्पन्न होती है कहाँ से ? समझ में आया ? आहाहा ! इतना बड़ा इसे बैठना कठिन (पड़ता है)। हें ? इतना भगवान क्या है ? रंक होकर बैठा न ? जरा अपमान हो तो सुहावे नहीं। जरा मान मिले वहाँ मैंपने चढ़ जाये। आहाहा ! परन्तु क्या है, सुन न ? धूल में भी नहीं अन्दर। आहाहा ! बापू ! तेरा स्वरूप तो भगवान के स्वभाव से भरपूर है। उसमें से भगवान आयेगा। कोई राग में से, पर्याय में से भगवान आयेगा नहीं। ऐसा कहते हैं। रागवाली दृष्टिवाले को तो राग... राग... राग... राग... राग। सिद्ध की पर्याय अभूतपूर्व प्रगट होगी, वह किसे ? कि रागवाली दृष्टि नहीं और स्वभाव में मैं शक्तिरूप परमात्मा हूँ, ऐसी दृष्टि होने पर, 'है', उसमें जहाँ दृष्टि पड़ी है, वहाँ से पर्याय आयेगी। समझ में आया ?

पुनश्च, जिस प्रकार उस बाँस में व्याप्तिज्ञानाभास का कारण.... ऐसा। ज्ञानाभ्यासव्याप्ति यथार्थ व्याप्ति नहीं है, ऐसा कहते हैं। आभास है। झूठी है। **(नीचे के खुले भाग में) विचित्र चित्रों से हुए चित्रविचित्रपने का अन्वय (-संतति, प्रवाह) है, उसी प्रकार उस जीवद्रव्य में व्याप्तिज्ञानाभास का कारण (नीचे के खुले भाग में) ज्ञानावरणादि कर्म से हुए....** खुल्ला भाग आवरणवाला है और ढँका हुआ भाग निरावरण है। सिद्ध पर्यायवाला होनेवाला वह। **ज्ञानावरणादि कर्म से हुए चित्रविचित्रपने का अन्वय है। और जिस प्रकार उस बाँस में (ऊपर के भाग में) सुविशुद्धपना है....** ऊपर के भाग में खुल्ला। ऐसा, **क्योंकि (वहाँ) विचित्र चित्रों से हुए चित्रविचित्रपने के अन्वय का अभाव है,....** उस भाग में-ढँके हुए भाग में। **उसी प्रकार उस जीवद्रव्य में (ऊपर के भाग में) सिद्धपना है....** आहाहा ! बाँस ऐसे ढँका हुआ है न, वह तो आवरण बिना का है। इसी प्रकार आत्मा में वर्तमान राग की और कर्म की योग्यता जो कहते हैं, परन्तु भविष्य का अनन्त काल है, वह सिद्धपदवाला है। भविष्य का अनन्त काल तेरा सिद्धपदवाला है, ऐसा कहते हैं। ऐई ! आहाहा !

ऐसे जीव को ही यहाँ लिया है। भव्य जीव लिया है न ? अभव्य लेना नहीं यहाँ। क्या काम है तुझे ? समझाकर वीतरागता प्रगट करानी है या राग में रखना है इसे ? समझ में आया ? जीवद्रव्य में ऊपर के भाग में वह बाँस के ऊपर के भाग में ऊपर खुल्ला था।

चित्राम नहीं था। परन्तु उसे तो वह देखता नहीं था। चित्रामवाला भाग खुला था, उसे देखता था। इसी प्रकार यहाँ अनादि अज्ञानी कर्म और राग को ज्ञानावरणीयवाले को देखता है। परन्तु बाद का खुला भाग शुद्ध है। अनन्तगुना शुद्ध है। अनन्तगुणा शुद्ध है, उसे वह नहीं देखता। उसे कब देखे, कि दृष्टि द्रव्य की करे तो देखे। समझ में आया? अरे! गजब ऐसा धर्म को कहने की रीति भी अलग प्रकार की है। अभाव है, लो!

क्योंकि (वहाँ) ज्ञानावरणादि कर्म से हुए चित्रविचित्रपने के अन्वय का अभाव है। अब कहते हैं, देखो! **कि जो अभाव आप्त-आगम ज्ञान से,....** सर्वज्ञ का ज्ञान, आगम का ज्ञान और भावश्रुतज्ञान **सम्यक् अनुमानज्ञान से....** पहला अन्तर का ज्ञान स्वसंवेदनज्ञान **और अतीन्द्रियज्ञान से ज्ञात होता है।** आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान से इसकी दृष्टि में आने पर भविष्य की सिद्धपर्याय वर्तमान न होने पर भी, खुली पड़ी है। (वह) प्रगट होगी, ऐसा ज्ञानी को अपने ज्ञान से भासित होता है। अज्ञानी की यहाँ बात नहीं ली है। उसका-अज्ञानी का क्या काम है? यहाँ तो सत् वस्तु प्रगट हो, उसकी बात लेनी है या नहीं?

आप्त-आगम के ज्ञान से यहाँ सिद्धपद होगा, ऐसा अनुमान से सिद्ध होता है, कहते हैं। स्वसंवेदन से भी निश्चित होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **आप्त-आगम ज्ञान से, सम्यक् अनुमानज्ञान से....** अब फिर अनुमान लिया। पहले आगम का भावज्ञान, हों! **और अतीन्द्रियज्ञान....** यह अन्तिम लिया अन्तर। निर्विकल्प वेदन से उसे भास होता है। अब उसकी पर्याय थोड़े काल पश्चात् पूर्ण सिद्ध होनेवाली है। ऐसा ज्ञान सम्यग्दृष्टि को होता है। अज्ञानी को ऐसा भान नहीं होता। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

धारावाही प्रवचन नं. २८ (प्रवचन नं. २७), गाथा-२०-२१,
दिनांक - ११-१२-१९६९, मागसर शुक्ल २, गुरुवार

बीसवीं गाथा का भावार्थ है। यह पंचास्तिकाय का स्वरूप है। ऊपर का अस्तित्व शुद्ध है, ऐसा अस्तिकाय में लिया, ऐसा जीव लिया। **संसारी जीव की प्रगट संसारी दशा देखकर....** क्या कहते हैं ? यह पंचास्तिकाय का स्वरूप है। है वस्तु अस्ति और जीव को असंख्य प्रदेशी आदि काय है। धर्मास्ति को असंख्य, अधर्मास्ति को (असंख्य) और आकाश अनन्त है। यह उसकी काय है। काय अर्थात् प्रदेशों का समूह। **संसारी जीव की प्रगट संसारी दशा देखकर अज्ञानी जीव को भ्रम उत्पन्न होता है....** क्या कहते हैं ? **कि जीव सदा संसारी ही रहता है....** ऐसा का ऐसा मलिन परिणामवाला जीव अनादि-अनन्त रहता है। क्योंकि पर्यायबुद्धि में तो वर्तमान संसार है। राग, द्वेष अज्ञान है न ? वह विकार है और उस विकार से तीनों काल का विकार, ऐसा का ऐसा रहेगा, ऐसा अज्ञानी मानता है।

श्रोता : प्रत्येक अज्ञानी ऐसा मानता होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्येक अज्ञानी। उसका द्रव्यस्वरूप शुद्ध है, उसे वह जानता नहीं। शुद्धद्रव्य है, उसे शुद्ध नहीं जानता। यदि शुद्ध द्रव्य है, उसको शुद्ध जाने, तब तो उसकी पर्याय भविष्य में शुद्ध ही होगी, ऐसा उसे ज्ञान होता है। समझ में आया ?

संसारी जीव की प्रगट संसारी दशा देखकर अज्ञानी जीव को भ्रम उत्पन्न होता है कि जीव सदा संसारी ही रहता है, सिद्ध हो ही नहीं सकता.... ऐसा। समझ में आया ? अभी यह बहुतों का मत है, मत भी है। अनादि संसारी है तो अनादि संसारी ही रहेगा। वह कभी मुक्त होगा ही नहीं। ऐसा लोगों का मत है। आर्य समाज का। समझ में आया ? सिद्ध होगा ही नहीं। वहाँ भी ऐसा का ऐसा रहता है, वापस आता है और अवतार धारण रहता है। क्योंकि अनादि का विकार है, वह विकार कैसे जाए ? ऐसा अज्ञानी मानता है। पर्यायदृष्टि देखनेवाला वस्तु भगवान शुद्ध चिदानन्दमूर्ति द्रव्यस्वभाव है, (उसे नहीं देखता)। सिद्धपद उसमें पड़ा है। समझ में आया ? वस्तु सच्चिदानन्द शुद्ध ध्रुव, वह सिद्धपद स्वरूप, उसमें अनन्त सिद्ध की पर्यायें पड़ी हैं। ऐसी जिसे द्रव्यदृष्टि और द्रव्य की शक्ति

के सामर्थ्य की प्रतीति नहीं, वह वर्तमान राग-द्वेष और अज्ञान को देखकर ऐसा काल अनन्त गया। वर्तमान देखकर ऐसा अनन्त काल गया और ऐसा का ऐसा अनन्त काल जाएगा, (ऐसा मानता है)। समझ में आया?

यदि सिद्ध होवे तो सर्वथा असत् उत्पाद का प्रसंग उपस्थित हो। उसे ऐसा हो जाता है। यह विकार है, वह और सिद्ध हो जाए तो असत्—नहीं था, वह हुआ। नहीं था, वह हुआ नहीं। सिद्धपद अन्दर था, पर्याय में नहीं था। समझ में आया? सिद्ध ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्यध्रुव परमात्मस्वरूप अन्दर पड़ा ही है। आहाहा! पर्याय में भले रागादि हो, स्वभाव में तो शुद्धता परिपूर्ण शुद्ध परमात्मा ही है। समझ में आया? यह मानो कि यदि सिद्ध हो जाए तो नया उत्पन्न होगा, पुराना जाए और नया उत्पन्न हो, इसलिए सिद्ध कभी होगा नहीं। ऐसा का ऐसा संसार अनादि रहे। ऐसी पर्यायबुद्धिवाले को पर्याय के अंश को देखनेवाला त्रिकाली ध्रुवस्वभाव का सत्त्व और सामर्थ्य को नहीं देखनेवाले को ऐसा ही भासित होता है। समझ में आया? देखो! यह अस्तिकाय सिद्ध करते हैं। पर्याय का अस्तित्व देखनेवाला द्रव्य अस्तित्व नहीं देखता; इसलिए उसे द्रव्य के अस्तित्व की—सामर्थ्य की खबर नहीं है। समझ में आया?

यहाँ तो मोक्ष हो, ऐसे जीवद्रव्य की बात ली है। भगवान आत्मा... शरीर, वाणी तो जड़ है। पुण्य-पाप के विकल्प आदि होते हैं, वह विकार है। परन्तु वह विकार क्षणिक है। वह क्षणिक अवस्था का है। और रहे तो क्षणिकरूप से रहेगा। तब क्षणिकरूप से रहेगा किसे? कि जिसे द्रव्यदृष्टि वस्तु का अस्तित्व परिपूर्ण है, ऐसी दृष्टि नहीं है, उसे। परन्तु यह बात यहाँ नहीं ली है। यहाँ तो अस्तित्व, पर्याय का विकारी अस्तित्व है, वह है। भले असंख्य प्रदेशी हो परन्तु वस्तु जो स्वरूप त्रिकाल ध्रुव, अकेला ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव, शुद्ध परिपूर्ण अखण्ड एकरूप स्वभाव, उसकी दृष्टि की सत्ता का स्वीकार जिसे नहीं है, ऐसा अज्ञानी त्रिकाल विकाररूप रहेगा और सिद्ध होगा तो नया होता है, असत् उत्पन्न होता है, इसलिए सिद्ध नहीं हो सकता—ऐसा अज्ञानी मानता है। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? **किन्तु अज्ञानी की यह बात योग्य नहीं है।**

जिस प्रकार जीव को देवादिरूप एक पर्याय के कारण का नाश होने पर....

देखो! यह अब सिद्धान्त सिद्ध करते हैं। जैसे देव, मनुष्य की पर्याय जो है, उस विकारी पर्याय के कारण का नाश होने पर, वह आयुष्य... आदि। **उस पर्याय का नाश होकर अन्य पर्याय उत्पन्न होती है....** इसमें होता है या नहीं? कहते हैं। मनुष्य की पर्याय का नाश होकर देव की पर्याय उत्पन्न होती है। **जीवद्रव्य तो ज्यों का त्यों रहता है....** मनुष्य की अवस्था का नाश होने पर, देव की अवस्था उत्पन्न होती है, परन्तु कहीं जीवद्रव्य का नाश हो और जीवद्रव्य नया उत्पन्न हो, ऐसा तो नहीं है। समझ में आया?

उसी प्रकार जीव को संसारपर्याय के कारणभूत मोह-राग-द्वेषादि का नाश होने पर.... लो! यह सिद्धान्त (कहा)। संसारपर्याय का नाश होकर, दूसरी संसारपर्याय होती है, तथापि जीवद्रव्य तो वह का वही ही रहता है। ऐसी संसारपर्याय का नाश होकर, **मोह-राग-द्वेषादि का नाश होने पर संसारपर्याय का नाश होकर सिद्धपर्याय उत्पन्न होती है, जीवद्रव्य तो वही रहता है।** भगवान आत्मा अस्तित्व, शुद्ध सत्ता और सिद्धपर्याय की प्राप्ति करनेवाला ऐसा द्रव्य तो वह का वही रहता है। **संसारपर्याय और सिद्धपर्याय दोनों एक ही जीवद्रव्य की पर्यायें हैं।** जैसे मनुष्य और देव की पर्याय / अवस्था एक ही जीव की थी, उसी प्रकार संसार और सिद्धपर्याय एक ही जीव की दो अवस्थाऐं हैं : अशुद्ध और शुद्ध।

पुनश्च अन्य प्रकार से समझाते हैं :- मान लो कि एक लम्बा बाँस खड़ा रखा गया है.... लो! **उसका नीचे का कुछ भाग रंग-बिरंगा किया गया है....** बाँस का। यह लो न, चित्राम है न? लकड़ी में चित्राम है। **और शेष ऊपर का भाग अरंगी (स्वाभाविक शुद्ध) है। उस बाँस के रंग-बिरंगे भाग में से कुछ भाग....** अब खुल्ला करते हैं। यह है न? ऐसे बन्द है और ऐसे बन्द है। इतना थोड़ा खुल्ला है। ऐसे बन्द है, ऐसे बन्द है। यह खुल्ला है। इसलिए खुल्ले का अनुमान करके ऐसा ही भाग नीचे भी है और ऐसा भाग ऊपर भी है, ऐसा अनुमान करे। बाकी देखो! यह है छोटा और यह बड़ा भाग है। खुल्ला बड़ा भाग है। क्योंकि चित्रामवाला थोड़ा भाग है। इसी प्रकार जीव में संसारपर्याय का भाग बहुत थोड़ा है और मोक्षपर्याय का भाग बहुत अनन्त... अनन्त.. अनन्त.. ऊर्ध्व में है। समझ में आया?

नीचे का कुछ भाग रंग-बिरंगा किया गया है और शेष ऊपर का भाग अरंगी (स्वाभाविक शुद्ध) है। अर्थात् उसमें रंग नहीं है, ऐसा। चित्राम नहीं है। अकेला शुद्ध। **उस बाँस के रंग-बिरंगे भाग में से कुछ भाग खुला रखा गया है....** देखो! ऐसा खुल्ला। यह रंग-बिरंगी खुल्ला, हों! **और शेष सारा रंग-बिरंगा भाग तथा पूरा अरंगी भाग ढँक दिया गया है।** कहो, समझ में आया? यह भी ढँक दिया गया है और वह भी ढँक दिया गया है। मात्र यह रंगवाला थोड़ा खुला है। **उस बाँस के रंग-बिरंगे भाग में से कुछ भाग खुला रखा गया है, और शेष सारा रंग-बिरंगा भाग तथा पूरा अरंगी भाग ढँक दिया गया है।** उस बाँस का खुला रंग-बिरंगी भाग देखकर यह थोड़ा। चित्राम देखकर। देखो! इसमें चित्राम बहुत है, हों! भिन्न-भिन्न कुछ न कुछ किया है।

खुला भाग रंग-बिरंगा देखकर अविचारी जीव 'जहाँ-जहाँ बाँस हो, वहाँ-वहाँ रंग-बिरंगापन होता है' ऐसी व्याप्ति.... ऐसा मेल अज्ञानभाव से करता है। आहाहा! देखो न, कैसी बात की है! आत्मा वस्तुरूप से महाप्रभु है। अस्तित्वरूप से उसमें महा अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... केवलज्ञान और सिद्धपद स्थित है। ऐसा भाग वस्तु में है परन्तु पर्याय में नहीं देखकर, पर्याय में विकार देखकर, खुला विकार थोड़ा सा देखे, यह विकार है न, ऐसा का ऐसा रहेगा न... रहेगा न... रहेगा न... यह रहता है-रहता है, यह रहा हुआ है और रहता है तथा रहेगा। ऐसा अज्ञानी पर्यायबुद्धि से तीनों काल में संसारी पर्याय होगी, ऐसा मानता है। समझ में आया इसमें? यह बाँस का दृष्टान्त समझ में आता है या नहीं? दृष्टान्त समझ में आता है या नहीं? सिद्धान्त? दृष्टान्त समझ में आता है तो हाँ किया?

यह ढँका हुआ है। देखो! है न? यह ढँका हुआ है। ऐसा देखकर यह चित्राम यहाँ नीचे भी ऐसा का ऐसा है तो यह वापस ऊपर भी ऐसा का ऐसा है, ऐसा कल्पित कर लेता है। इसी प्रकार संसारी जीव अनादि काल के ज्ञानावरणी आदि का विकार है, अभी भी थोड़े काल है। इसमें दिखता है परन्तु भविष्य में पूरी सिद्धपद की पर्याय प्रगट होनेवाली है। क्योंकि उसका अस्तित्व ऐसा है। जीवद्रव्य का अस्तित्व / होनापना इतना ही है कि भविष्य में उसकी सिद्धपर्याय प्रगट हो। ऐसे जीव के अस्तित्व की बात यहाँ ली है। समझ में आया?

श्रोता : जीव ही कहना...

पूज्य गुरुदेवश्री : वास्तव में तो उसे जीव ही कहना, ऐसा भाई कहते हैं, लो! आहाहा! अस्तिकाय को सिद्ध करके...

संसारपर्याय रहे, वह जीव नहीं है। वास्तव में तो जीव जिसका स्वरूप ही आनन्द और ज्ञायकभाव है। अनन्त परमात्मस्वरूप जिसमें, भगवान ध्रुवस्वरूप में स्थित है, ऐसा महाप्रभु, उसे वास्तव में जीव कहना। उस जीव को रंग की राग-द्वेष की पर्याय नाश हुई और अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्तगुने काल तक उसकी सिद्धपर्याय रहनेवाली है। चिमनभाई! समझ में आया? निर्धनपना बहुत काल रहा हो और वर्तमान निर्धनपना दिखता हो परन्तु उसे पुण्य के कारण भविष्य में लक्ष्मीवाला होगा और बहुत काल रहेगा, ऐसी उसे प्रतीति नहीं आती।

श्रोता : गरीब मनुष्य...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे ऐसा हो जाता है कि हम गरीब हैं... अपन गरीब हैं। अपन तो गरीब मनुष्य हैं, भाई! ऐसा कहता है। परन्तु गरीब नहीं हैं। राजा होने की योग्यता तुझमें है। कहो, समझ में आया? मैं राजा होऊँगा। राजा क्यों नहीं हुआ जा सकता? पुनश्च, एक व्यक्ति ऐसा कहता था। पैसे की कोई बात चले तो कहे, वह तो पुण्य के कारण मिलता है तो राजा भी हुआ जा सकता है। परन्तु क्या है तुझे?

श्रोता : राजा होना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राजा होना है तुझे? बनिया है और राजा होना है? ऐसे के ऐसे विकार में ऐसे लवलीन... लवलीन... जवानी फटी, रूपवान शरीर, पैसे पैदा होते हों, घर में पूँजी हो, शरीर निरोगी हो, भटकने की बुद्धि कुछ उघड़ी हो। भटकने की बुद्धि ऐसे... ऐसे... ऐसे... ओहोहो! परन्तु क्या है यह? राजा भी हो सकते हैं। परन्तु किसकी बात चलती है यह? यह तू क्या बोलता है? यहाँ तो कहते हैं कि पैसा पुण्य के कारण मिले, उसमें आत्मा कुछ नहीं कर सकता। ऐसा सिद्ध करते हुए कहते हैं, आत्मा राजा हो सकता, परन्तु पुण्य का नाश करके पवित्रता प्रगट करे, ऐसी श्रद्धा तुझे क्यों नहीं बैठती? आत्मा राजा हो सकता है, सिद्ध राजा। समझ में आया? आहाहा! भारी बात परन्तु, हों! पंचास्तिकाय

के श्लोक में ऐसा अस्तिकाय सिद्ध किया है। जीव का अस्तित्व, जीव का अस्तित्व इतना है, इतना है उसे माने, उसने जीव माना। पर्यायवाला अकेला विकारी... विकारी... विकारी... माना, उसने जीव माना ही नहीं। आहाहा! ऐसा अस्तित्व माना। पूरा अस्तित्व त्रिकाली। पूरे अनन्त गुण और अनन्त शान्ति का सागर ऐसा आत्मा को माना नहीं। समझ में आया? आहाहा! आचार्यों की, दिगम्बर सन्तों की कथनी... वे तो केवलज्ञान के पथानुगामी हैं। समझ में आया? वे पथानुगामी हैं। ऐई! माणिकलाल! कोई कहता था न कि यह माणिकलाल आयेगा भविष्य में। वह है न पारसी? पुण्य देखकर। यह तो एक बात है। यह दोनों लड़ते हैं, इसलिए वह आयेगा। वह पुण्य के कारण अनुमान कर डालता है। परन्तु पवित्रता के कारण ऐसा अनुमान नहीं करता। यहाँ आता है न! आगमज्ञान, अनुमान क्षयोपशम... कि भविष्य में सिद्ध होनेवाला, होनेवाला और होनेवाला है। क्योंकि मेरी सत्ता का-द्रव्य का स्वीकार हुआ है, उसमें सिद्धपद पड़ा ही है। उसमें संसारपद और संसारपर्याय है नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! देखो! यह दृष्टि का विषय। समझ में आया?

कहते हैं कि जीवद्रव्य उसमें माना कहलाये कि जिसने संसारपर्याय जो विकारी है, वह अल्पकाल रहेगी और भले अभी तक रही, और एकाध दो भव हो परन्तु वह इतना ही है। बाद का मेरा काल वस्तु सिद्धस्वरूपी भगवान आत्मा पूर्णानन्द है। इसलिए ऐसी सत्ता का स्वीकार करनेवाला, उसे भविष्य में सिद्धपद की प्राप्ति हुए बिना नहीं रहेगी। ऐसे को यहाँ जीवद्रव्य कहा है। आहाहा! समझ में आया? इसमें ऐसा नहीं आया कि भाई! यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करे तो इसे सिद्धपद हो। ऐई!

श्रोता : ऐसा ही होवे न...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ आया?

आगम तो उसने कहा हुए ज्ञान जाने, ऐसा कहते हैं। आगम का ज्ञान कहा, देखो! क्या है? है? '**भावादाप्तागमसम्यगनुमानातीन्द्रियज्ञानपरिच्छिन्नात्सिद्धत्वमिति।**' इसमें से तुझे निर्णय हो जाएगा।

श्रोता : पहले को?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले को। आप्त कहा। आप्त का ज्ञान कहा न? उसका ज्ञान

किया किसने? ऐई! सर्वज्ञ का ज्ञान किया किसने? स्वयं ने किया है। यह जीव सर्वज्ञ हो सकेगा... यह जीव सर्वज्ञ हो सकेगा। क्यों?—कि आत्मा में सर्वज्ञपना पड़ा है। समझ में आया? यह जीव सर्वज्ञ होगा, ऐसी उसे प्रतीति अन्तर के ज्ञान से आती है, तब उसने जीवद्रव्य का स्वीकार किया कहलाता है। इस प्रकार सबका स्वीकार करे परन्तु जीवद्रव्य का स्वीकार न करे, तब तक उसे सम्यग्ज्ञान और भविष्य में सिद्धपद की पर्याय की प्राप्ति की निःशंकता नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

उस बाँस का खुला भाग रंग-बिरंगा देखकर अविचारी जीव 'जहाँ-जहाँ बाँस हो, वहाँ-वहाँ रंग-बिरंगापन होता है' ऐसी व्याप्ति (-नियम, अविनाभावसम्बन्ध) की कल्पना कर लेता है.... आहाहा! गजब बात की है। **ऐसे मिथ्या व्याप्तिज्ञान द्वारा ऐसा अनुमान खींच लेता है कि 'नीचे से नितान्त ऊपर तक सारा बाँस रंग-बिरंगा है'।** ऐसा ही रहेगा। पर्यायदृष्टिवाला पर्याय को ही देखता है। राग-द्वेषवाली अवस्था के अंश को देखनेवाला वह अवस्था ऐसी की ऐसी सदा रहेगी, उसे द्रव्यदृष्टि में—सत्ता में महाभगवान विराजता है, (उसका स्वीकार नहीं करता)। आत्मा में अनन्त सिद्ध विराजते हैं। अभी, हों! आहाहा! समझ में आया? अनन्त केवली, अनन्त सिद्ध, अनन्त आचार्य, सन्त, मुनि, आत्मज्ञान की दशावाले वे सब आत्मा में अन्दर में विराजते हैं, कहते हैं। ऐई! समझ में आया? भरोसा कौन करे? कहते हैं। पर्यायदृष्टि छोड़कर द्रव्य की (दृष्टि) करे वह। समझ में आया? उसकी दृष्टि निमित्त, विकल्प और एक समय की अवस्था की दृष्टि छूट जाए, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यहाँ ऐसा जीव लिया है, दूसरी बात ही यहाँ नहीं ली है। आहाहा! ऐ... जेठालालभाई! देखो न! ऐसा जीव क्यों नहीं लिया कि सदा ही रहेगा ही ऐसा। उसका अस्तित्व ही इतना नहीं, ऐसा यहाँ तो सिद्ध करते हैं। ऐ! भगवान आत्मा का—द्रव्य का अस्तित्व ही इतना नहीं कि जो त्रिकाल मलिनरूप रहे - ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा! अस्तिकाय है न?

भगवान आत्मा में असंख्य प्रदेश, उनमें अनन्त शुद्ध आनन्दकन्द सिद्ध परमात्मा विराजते हैं। ऐसा उसका अस्तित्व, द्रव्य का अस्तित्व—वस्तु का अस्तित्व इतना बड़ा है। इतने बड़े अस्तित्व का स्वीकार करे, उसे अल्प काल में सिद्धपद की पर्याय अनन्त काल

रहे, ऐसी प्रगट होती है, ऐसा कहते हैं। परन्तु जिसे संसार की पर्याय के ऊपर राग और निमित्त तथा विकल्प के ऊपर दृष्टि है और ऐसा का ऐसा मैं रहूँगा और उसके कारण मुझे लाभ होगा, तब द्रव्य से लाभ होगा, ऐसी द्रव्य की दृष्टि उसकी है नहीं—ऐसा कहते हैं। गजब बात, भाई! ऐई! वजुभाई! पूरा... आहाहा! गजब बात, भाई! गजब करते हैं। आचार्य, सन्त, दिगम्बर मुनि केवलज्ञानी के पक्के पथानुगामी, ऐसे। समझ में आया? ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं हो सकती।

इस अस्तिकाय का सत्ता का सिद्ध करते हुए भी ऐसा अस्तिकायवाला जीव को सिद्ध किया है। आहाहा! समझ में आया? वह संसारीपर्यायवाला तो व्यवहार जीव है। वह निश्चय जीव है ही नहीं। आहाहा! अरे! केवलज्ञान की पर्याय जो है या सिद्ध की पर्याय है, वह भी व्यवहार जीव है। समझ में आया? वह निश्चय जीव नहीं है। ऐई! कनुभाई! आहाहा! गजब बात है तेरी! संसार की यह विकारी पर्याय जो है, वह तो अत्यन्त अशुद्ध संसारी जीव का भाव है। परन्तु सिद्ध की पर्याय है, वह पर्याय भी व्यवहार जीव है। वह अंश है न? सिद्ध, वह अंश है। भले केवलज्ञान पूर्ण प्रगट हुआ परन्तु वह अंश है, वह व्यवहार जीव है। यहाँ तो निश्चय जीव—अस्तित्व ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? जिसे पर्याय पर दृष्टि है, उसे तो विकारी रहेगी और विकारी (ही हूँ), अथवा जिसे वे पुण्य-पाप के विकल्प और अज्ञानभाव है, उस प्रकार से रहेगा। उसका अर्थ यह हुआ कि उससे मुझे लाभ होगा; इसलिए उनसे छूटेगा नहीं। यह विकल्प है या निमित्त है, उनसे लाभ होगा, इसलिए उससे छूटेगा नहीं। इसलिए जीवद्रव्य का अस्तित्व जो महाप्रभु है, उसके अस्तित्व का उसे स्वीकार होगा नहीं। आहाहा! कनुभाई! ऐसी बात है। कहो, कपूरभाई! समझ में आया यह? जीव का अस्तित्व परमात्मा, सन्त सिद्ध करते हैं। आहाहा! जीवास्तिकाय। दृष्टान्त, हों! उदाहरण। दृष्टान्त देकर सब छहों द्रव्यों का ध्रुवपना कायम रहेगा और पर्याय क्षण-क्षण में बदलती है। वे सब पर्यायें ध्रुव में से आती हैं। समझ में आया?

कहते हैं, **'जहाँ-जहाँ बाँस हो, वहाँ रंग-बिरंगापन होता है'....** ऐसा अज्ञानी मान लेता है कि ऐसा रंगवाला ही यह बाँस होता है। **ऐसे मिथ्या व्याप्तिज्ञान द्वारा....** व्याप्ति

अर्थात् ऐसा नियम करके **ऐसा अनुमान कर लेता है कि....** देखो! अनुमान आया वापस कि **'नीचे से नितान्त ऊपर तक सारा बाँस रंग-बिरंगा है।'** ओहोहो! **यह अनुमान मिथ्या है;....** उसका यह अनुमान सच्चा नहीं है। **क्योंकि वास्तव में तो उस बाँस का ऊपरी भाग रंग-बिरंगेपन के अभाववाला है,....** ऊपर का भाग खुला है। यह तो बहुत थोड़ा है। संसार का काल है, वह तो बहुत अनन्तवें भाग है। और सिद्धपद की पर्याय का काल तो अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुना है। वह अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुणों की पर्याय का पिण्ड जो आत्मा है, अकेला परमात्मा पूर्ण है। समझ में आया? यह तो भाई! शान्ति से अन्दर मनन करके बैठाने जैसी बात है। यह कहीं कोई धार ले बात, (ऐसी बात नहीं है)।

ऐसा सत्त्व, वस्तु का सत्त्व भगवान परमेश्वर तीर्थंकर केवलज्ञानी ने ऐसा जीव कहा है। ऐसा जीव कहा है कि जिसे विकार की अवस्था लम्बे काल में गयी और थोड़ी दिखती है, तथापि उस पर्यायदृष्टिवाले को ऐसा दिखता है कि ऐसा का ऐसा रहेगा, अतः उसे पूरा आत्मा अस्तित्व है, उसका स्वीकार नहीं है। समझ में आया? सम्यग्ज्ञान द्वारा, आगमज्ञान द्वारा या अनुमान सम्यग्ज्ञान द्वारा। देखो! अनुमान को भी सम्यक् लागू किया है। है न? सम्यक् है न? अनुमान भी बराबर सम्यक् है। यह स्वभाव, आंशिक जो सम्यक् निर्मल अंश प्रगट हुआ, वह सब निर्मलानन्द पूर्णानन्द है, ऐसा अनुमान करके... वेदन का अंश प्रत्यक्ष है और ऐसा का ऐसा सब भगवान आत्मा पूरा ध्रुव, ऐसा ही निर्मल का पिण्ड है, ऐसा अनुमान करके निर्विकल्प वेदन द्वारा आत्मा भविष्य में सिद्धपद की ढँकी हुई पर्याय है, वह खुली हो जाएगी, ऐसा उसने सम्यग्ज्ञान में देखा, उसने आत्मा माना कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? कान्तिभाई! देखो! यह पर्यायदृष्टि उड़ गयी। उड़ गयी? यह तो न समझ में आये, तब तक इस प्रकार... वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का ऐसा कोई मार्ग है। यह कहीं पठन कर जाए, वाँचन कर जाए। ग्यारह अंग, नौ पूर्व पढ़ गया और बातें करना आयी, इसलिए समझा है—ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब बात करते हैं।

छहों द्रव्य की... भगवान ने छह द्रव्य देखे, उनका उत्पाद-व्ययसहित ध्रुवपना, समय-समय में तीन अवस्थाएँ—तीन प्रकार हैं। यह उत्पाद होने पर भी उसे द्रव्य का

उत्पाद नहीं होता; व्यय होने पर भी द्रव्य का नाश नहीं होता, तथापि द्रव्य अन्वयरूप से उत्पाद-व्यय में कायम रहता है। यह सिद्ध करने को यह जीव का दृष्टान्त दिया है। आहाहा!

क्योंकि वास्तव में तो उस बाँस का ऊपरी भाग रंग-बिरंगेपन के अभाववाला है,.... खुला है। खुला अर्थात् चित्ररहित है। **अरंगी है। बाँस के दृष्टान्त की भाँति-कोई एक भव्य जीव है;....** देखो! **कोई एक भव्य जीव है;.... भव्य जीव है; उसका नीचे का कुछ भाग (अर्थात् अनादि काल से वर्तमान काल तक का और अमुक भविष्य काल तक का भाग)....** देखो! क्योंकि पंचम काल का जीव है न? भाई! यहाँ यह बात ली है। आहाहा! ऐई! अरे! परन्तु आचार्य की गजब बात है। समझ में आया? यह पंचम काल के आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य जैसे हों तो भी उन्हें इस भव में केवल(ज्ञान) हो सके, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? उन्हें अभी भविष्य में एकाध-दो भव हैं। एक देव का भव और एक मनुष्य का। मुनि है, समकिती है, ज्ञानी है, इसलिए मरकर स्वर्ग में जाए और वहाँ से मनुष्य होकर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष होगा। कब? भूतकाल का भाग विकारवाला देखकर, अभी का भाग विकारवाला देखकर, यह विकार सदा रहेगा—ऐसा जो मानता है, उसे तत्त्व की दृष्टि की खबर नहीं है। वह संसारी है, वह अमुक काल तक—एक-दो भव संसारी रहेगा। कुन्दकुन्दाचार्य जैसे महा मुनि, जिन्हें छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान हजारों बार एक क्षण में आवे, हजारों बार। जिनकी दशा नग्न हो, जो जंगल में रहें, उन्हें भावलिंगपना होता है। समझ में आया? कोई गृहस्थाश्रम में रहकर ऐसा कहे कि मुझे भावलिंगीपना है तो ऐसा तीन काल में नहीं हो सकता।

इसलिए यहाँ कहते हैं कि आचार्य जैसे कुन्दकुन्दाचार्य जैसे कहते हैं कि विकार का अमुक काल तो गया, अमुक भविष्य काल तक का संसार है और बाकी का ऊपर का अनन्त भाग सिद्धरूप है। आहाहा! यह तो अर्थ में किया है, वैसा लिखा है, भाई! टीका में है, वही भावार्थ में लिया है। बहुत सादी भाषा में समझाया है। शब्द आगम द्वारा ज्ञान की प्रतीति करके अर्थ को समझाते हैं। पदार्थ को समझाते हैं। ऐसा आया था न पहले? आत्मपदार्थ। एक तेरा भगवान आत्मा ऐसा है कि जिसमें ऐसे महा प्रभु के अस्तित्व की स्व-सन्मुख होकर विकल्प और निमित्त की उपस्थिति होने पर भी उसकी उपेक्षा करके;

अपेक्षा करके रहे, तब तक तो विकारी पर्याय रहेगी। उपेक्षा करके जीवद्रव्य ऐसा है, ऐसा जो अन्तर में निर्विकल्प निर्णय हुआ, कहते हैं कि उसकी भविष्य की सिद्धपर्याय का सब भाग खुला-खुला प्रगट है। **संसारी भाग में से....** समझ में आया? **उस जीव के संसारी भाग में से कुछ भाग खुला (प्रगट) है....** आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा परिपूर्ण द्रव्य है, ऐसी जिसे प्रतीति और अन्तर स्वीकार हुआ, उसे थोड़ा काल अभी भले एक-दो भव हों, परन्तु उसे अन्तर में तो यही निश्चित हो गया है कि इस जीव को अब भविष्य में अनन्त सिद्धपर्याय अनन्त काल रहेगी, वह प्रगट करेगा। ऐसा ही मैं आत्मा हूँ। संसार पर्याय रहे, ऐसा मैं आत्मा नहीं हूँ। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया? यह तो पंचास्तिकाय का अर्थ चलता है।

श्रोता : पंचास्तिकाय में ऐसा होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है। श्रीमद् ने पंचास्तिकाय के अर्थ किये हैं। और उन्होंने कुन्दकुन्दाचार्य को सद्गुरु स्वीकार किया है। 'श्री ॐ सत् गुरुय नमः' ऐसा करके फिर अर्थ किया। समझ में आया? स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं। आहाहा!

उस जीव के संसारी भाग में से कुछ भाग खुला (प्रगट) है और शेष सारा संसारी भाग तथा पूरा सिद्धरूप भाग ढँका हुआ (अप्रगट) है। समझ में आया या नहीं इसमें? क्या कहा इसमें?

श्रोता : बाकी का है...

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् क्या? धीरे-धीरे बोले नहीं तो यह गोटवाशे

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी बराबर नहीं आया। ढँका हुआ अनादि का है और अभी थोड़ा सा खुल्ला है, अभी भी ढँका हुआ है परन्तु वह भूतकाल का नहीं आया। वर्तमान और भविष्य दो ही कहा। यहाँ तो विकार वर्तमान है, ऐसा अनादि का था। परन्तु वह ढँका हुआ है, दिखता नहीं। गया है न? और वर्तमान प्रगट है, वह दिखता है, खुला भाग है कि विकार है और भविष्य की सिद्धपर्याय होगी और वहाँ तक दो भव है, वह भी अभी खुला

है। ख्याल में आया है न कि अभी एक-दो भव करने की। उसमें यह अविकारी पर्याय के भविष्य काल में थोड़ा सा है, ऐसा उसमें मुझे भविष्य काल की पर्याय का सिद्धपर्याय अत्यन्त खुला है, यह द्रव्यदृष्टि की, इसलिए इतना भव रहेगा। पश्चात् सिद्ध होऊँगा, ऐसा अन्दर निश्चित हो गया। समझ में आया ? यह तो बहुत ध्यान रखकर पकड़ में आये ऐसा है। यहाँ कोई चतुराई काम आवे ऐसा नहीं है।

श्रोता : ....चतुराई काम आवे ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं, वह चतुराई संसार की क्या कहा जाता है उसे ? कहते थे न ?

श्रोता : तलाटी...

पूज्य गुरुदेवश्री : तलाटी... ऐ.. भारी काम करे एकदम। कहो, समझ में आया इसमें ? आहाहा ! आत्मा है। देखो न ! आत्मा, यह उसे आत्मा कहा उसे तो। आहाहा ! गजब बात की है। जो संसार की पर्यायवाला और विकारवाला, रागवाला... रागवाला... रागवाला... रागवाला... ऐसा देखा और जाना और ऐसा का ऐसा रहेगा, उसे जीव ही नहीं कहते, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

दूसरे प्रकार से कहें तो जिसकी बहिर्मुख की दृष्टि विकार और विकल्प और निमित्त के ऊपर है तथा ऐसी की ऐसी दृष्टि से मुझे लाभ होगा, ऐसा माननेवाला द्रव्य ऊपर जानेवाला नहीं है। उसके जीवद्रव्य का अस्तित्व इतना बड़ा, उसके (विकार और विकल्प) रहित है, ऐसा उसने माना नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? छोटाभाई ! गजब बात, भाई ! ओहोहो ! यह बीसवीं गाथा।

शेष सारा संसारी भाग तथा पूरा सिद्धरूप भाग ढँका हुआ (अप्रगट) है। देखो ! ढँका हुआ कहा न ? वर्तमान में थोड़ा विकार है, इतना खुला है। ऐसा गया, वह ढँका हुआ है और भविष्य का ढँका हुआ है। आवरणवाला ढँका हुआ है और निरावरण भी ढँका हुआ है। आवरणवाला थोड़ा खुला है और खुले पर जिसकी अकेली दृष्टि है, वह तो इसमें भी ऐसा है और इसमें भी ऐसा है, ऐसा मानता है। परन्तु ऐसी पर्यायबुद्धि नहीं किन्तु द्रव्य

के अस्तित्व पर बुद्धि है, उसे यह खुले राग का दिखाव भाग, वह अल्पकाल रहेगा और पश्चात् रहेगा नहीं, (ऐसा देखता है)। आहाहा! गजब बात है। देखो! उसमें है, हों! वापस उसमें भाव है। पण्डितजी को तो पूछा जाए नहीं कुछ, पण्डित तो होशियार कहलाते हैं, वह तो है। हाँ करते हैं परन्तु इनके भाई को पूछते हैं, वे कहीं इनके जैसे पण्डित नहीं हैं। आहाहा!

भगवान! भगवान ऐसा कहते हैं, ओहोहो! तेरा ध्रुव स्वभाव, ध्रुव जो कायम हो वह। अंश है, वह तो व्यवहार है, कहते हैं। अंश जीव जो विकारी या अविकारी हो, वह तो अंश है, वह तो व्यवहार है। जिसे निश्चय जीव कहते हैं ध्रुवस्वरूप, उसमें उत्पाद-व्यय ही नहीं है, संसार का उत्पाद-व्यय नहीं और सिद्ध का भी उत्पाद-व्यय जिसमें नहीं। ऐसा जो भगवान ध्रुव, उसके अस्तित्व का जिसे स्वीकार है, उसे अल्प काल में मेरी खुली दशा प्रगट हो जाएगी। यह जो ढँकी हुई है, वह खुली हो जाएगी। खुली वाला ही मैं हूँ। न प्रगट हो, ऐसा मैं नहीं हूँ। आहाहा! कनुभाई! लॉजिक से बात चलती है या नहीं? या कचड़-बचड़ की है यह? आहाहा!

भगवान! एक समय की पर्यायवाला देखने से, पर्यायबुद्धि को छुड़ाकर द्रव्यबुद्धि करके ऐसा मान,—ऐसा कहता हैं मूल तो। बात तो ऐसी कहते हैं। समझ में आया? जिसकी पर्यायबुद्धि है, अंशबुद्धि है, वह अंशबुद्धिवाला द्रव्य को स्वीकारेगा ही नहीं। ऐसा भगवान महाप्रभु है, अनन्त... अनन्त... अनन्त... आनन्दकन्द का नाथ, अनन्त परमात्मा जिसके गर्भ में स्थित है। इस एक जीव के अन्दर अनन्त परमात्मा गर्भ में स्थित है। क्योंकि परमात्मा एक समय की अवस्था है और ऐसी परमात्मा की अनन्त अवस्था ऐसी की ऐसी होनेवाली है। उन सब अवस्थाओं का सागर भगवान यह आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा आत्मा का जिसे अस्तित्व का स्वीकार हुआ, उसे भविष्य की अल्प काल में पर्याय निर्मल होकर सिद्धपद की प्राप्ति होनेवाली है।

उस जीव का खुला (प्रगट) भाग संसारी देखकर अज्ञानी जीव 'जहाँ-जहाँ जीव हो, वहाँ-वहाँ संसारीपना होता है'.... देखो! देखो! आहाहा! जहाँ-जहाँ जीव हो, वहाँ विकार होता है। जहाँ-जहाँ जीव हो, वहाँ विकार होता है। जहाँ-जहाँ जीव हो,

वहाँ विकार होता है—यह बात ही मिथ्या है। समझ में आया? कहो, समझ में आया या नहीं? ऐ! यह तो तुम्हारे लॉजिक से बात चलती है। कानून का तुम्हारे पढ़ते हैं न, उस शैली से बात चलती है। जहाँ-जहाँ जीव, वहाँ-वहाँ संसार। मिथ्या बात है, कहते हैं। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया? जहाँ-जहाँ जीव, वहाँ-वहाँ संसार; जहाँ-जहाँ जीव, वहाँ राग, जहाँ-जहाँ जीव, वहाँ शुभराग—मिथ्या बात है। तुझे खबर नहीं है, जीव की खबर नहीं है। समझ में आया? लो! ऐसा स्पष्ट इसमें अभी पहला-पहला आता है, हों! आवे तब आवे न अन्दर से। ऐई! इस गाथा का ऐसा स्पष्ट पहले कभी नहीं किया।

'जहाँ-जहाँ जीव हो, वहाँ-वहाँ संसारीपना होता है'.... आहाहा! जहाँ-जहाँ जीव हो, वहाँ-वहाँ विकारपना होता है। अरे! यह क्या करते हैं? समझ में आया? जहाँ-जहाँ जीव हो, वहाँ-वहाँ राग होता है; जहाँ-जहाँ जीव हो, वहाँ राग होता है? अरे! वह जीव नहीं। सुन न! क्या करता है तू यह? जीव तो वीतरागस्वभाव से भरपूर भगवान है। जहाँ-जहाँ जीव हो, वहाँ-वहाँ वीतरागता होती है। भगवान आत्मा जहाँ-जहाँ जीवद्रव्य है, वहाँ वह अकेला वीतराग और आनन्द और पूर्ण स्वभाव से वीतरागभाव भरा है। जहाँ-जहाँ जीव हो, वहाँ-वहाँ वीतरागभाव होता है। जहाँ-जहाँ जीव हो, वहाँ राग भाव हो—ऐसा नहीं है। ऐई! चेतनजी! यह गजब लिया है, हों! आहाहा! भारी बात, भाई! कुन्दकुन्द आचार्य के शास्त्र बहुत गम्भीर... बहुत गम्भीर। बहुत गम्भीर... बहुत गहरे। पर्यायदृष्टि को बदलकर द्रव्यदृष्टि करने की पद्धति भी कोई अलग प्रकार की है। आहाहा! अरे! ऐसा तू कहे कि जहाँ-जहाँ आत्मा, वहाँ-वहाँ कर्म का संयोग, यह तो बात कहीं रह गयी, उसकी बात तो अलग। यह तो वह की वह बात है उसमें। द्रव्य और पर्याय... द्रव्य और पर्याय... बस, यह बात ली है।

श्रोता : कर्म की...

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म की बात इसमें ली ही नहीं। कर्म संयोग-फंयोग की यहाँ बात ही नहीं है। राग होता है, उसके स्वयं से होता है। उसकी पर्याय का धर्म है। और राग है, वहाँ जीव है, तो जीव है, वहाँ राग है—ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया? जीव है, वहाँ कर्म का संयोग है, यह तो बात ही नहीं है। परन्तु राग का विकल्प जो है, अर्थात्

जहाँ-जहाँ राग, वहाँ-वहाँ जीव अथवा जीव जहाँ-जहाँ है, वहाँ-वहाँ राग, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! गजब बात, भाई! इसमें ही आता है न वह, नहीं? अन्तिम १७० गाथा में। १७० गाथा में। नव तत्त्व की। १७०, १७० गाथा।

कहते हैं कि **संयम तप संयुक्त होने पर भी, नौ पदार्थों....** १७० गाथा। देखो! यह कथनशैली। देखो! वीतरागमार्ग की पद्धति। १७० (गाथा), इसमें पृष्ठ २४९। यह **नौ पदार्थों तथा तीर्थंकर के प्रति जिसकी बुद्धि का झुकाव वर्तता है। और सूत्रों के प्रति जिसे रुचि (प्रीति) वर्तती है....** आगम के प्रति भी रुचि वर्तती है, **उस जीव का निर्वाण दूरतर (विशेष दूर) है।** आहाहा! है? समझ में आया? क्योंकि विकल्प राग है। नव तत्त्व की श्रद्धा, वह भी राग, यह तीर्थंकर के प्रति श्रद्धा, तीर्थंकर ऐसे हैं—ऐसी श्रद्धा भी राग है। परद्रव्य है न? समझ में आया? दो (बातें)। और इस बुद्धि का '**अभिगतबुद्धेः**' वहाँ राग में झुकाव है। '**सूत्ररोचिनः**' आगम की रुचि वर्तती है। परमागम भगवान के शास्त्र परद्रव्य है, उनकी श्रद्धा और रुचि वर्ते, वह राग है, वहाँ तक जीव को निर्वाण दूरतर है। कहो, समझ में आया?

वीतराग का मार्ग वीतरागभाव से शुरु होता है। जीव ही वीतरागभावस्वरूप है। भगवान त्रिकाल वीतराग पिण्ड है। उसमें राग का अंश विकल्पमात्र वस्तु में नहीं है। देव-गुरु-शास्त्र को मानना, देव-गुरु की भक्ति का विनय-विकल्प सब राग है, वह आत्मा में है ही नहीं। समझ में आया? गजब काम! विपरीत मान्यता कैसे करता है, उसे खुल्ला करते हैं और सच्ची मान्यता कैसी होती है, उसे भी खुल्ला करते हैं। पहले से ही है। गजब बात। ऐसी शैली सन्तों की है! वस्तुस्थिति ऐसी है। समझ में आया?

कोई कहता है कि ऐसा जो अनुमान करे, **ऐसा मिथ्या व्याप्तिज्ञान द्वारा ऐसा अनुमान करता है कि 'अनादि-अनन्त सारा जीव संसारी है।'** वह भले ऐसा माने कदाचित् शास्त्र सुनकर। समझ में आया? कि भाई! अपने राग टालकर सिद्ध होंगे, समझे न? तथापि यहाँ रागवाला जीव है और राग पर दृष्टि है, तब तक राग टालकर मोक्ष जाऊँगा, ऐसी दृष्टि उसे हो ही नहीं सकती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जिसे भगवान की, त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की भक्ति और श्रद्धा, ऐसा राग है, वह भी राग है, विकल्प है, विकार

है, दु:ख है, जहर है। उसके ऊपर दृष्टि है कि यह मुझे लाभ करेगा, तब तक उसे आत्मा की श्रद्धा नहीं है। आत्मा रागरहित वीतराग है, उसकी श्रद्धा की उसे खबर नहीं है। वीतराग श्रद्धा का, वीतरागभाव का अनादर करता है। रागभाव का आदर करता है। आदर करनेवाला रागवाला ही रहेगा। समझ में आया ? यह पर्यायबुद्धि है, ऐसा कहते हैं।

'अनादि-अनन्त सारा जीव संसारी है।' यह अनुमान मिथ्या है; क्योंकि उस जीव का ऊपर का भाग (-अमुक भविष्य काल के बाद का अनन्त भाग) संसारीपने के अभाववाला है,.... आहाहा! कहो, किसे ? भव्य जीव को। भव्य जीव ने जीवद्रव्य का स्वीकार किया है, उसे ऐसा है। उसे जीव कहते हैं। और ऐसे जीव की पूर्ण वस्तु भगवान है, उसके सन्मुख होकर जीव की श्रद्धा की है, उसे भविष्य का काल सब खुल्ला सिद्धपद की पर्यायवाला है, दिखता है। मेरा भविष्य काल सब सिद्ध का ही है। ऐई! समझ में आया ? ऐसा...

श्रीमद् ने नहीं कहा ? 'अशेष कर्म का भोग है, भोगना अवशेष रे, इससे देह एक धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश'।

श्रोता : खुल्ला है...

पूज्य गुरुदेवश्री : खुल्ला अन्दर बैठ गया है। भविष्य काल में सिद्ध होना, होना और होना है। तीन काल में बदले नहीं। एकाध देह बाकी लगती है। ऐसा राग है। 'अशेष कर्म का भोग है'। कर्म शब्द से जड़ नहीं, रागभाव है। 'भोगना अवशेष रे...' अभी बाकी थोड़ा ऐसा दिखता है। ऐसे भूतकाल तो था, परन्तु ऐसा दिखता है। समझ में आया ? 'इससे देह एक धारकर...' एकाध देह है। बाद में तो हमारी दशा सिद्धपद की है। समझ में आया ? ऐई! चिमनभाई! कोलकरार बात है। आहाहा!

प्रश्न बहुत समय से हुआ था। (संवत्) १९७७ के वर्ष में। ७७ के वर्ष का प्रश्न है। देवीदासभाई थे न पोरबन्दरवाले ? और एक थे मुलीवाला थे। भवानजी। नहीं ? कच्छी। बहुत शास्त्र के जानकार। ७७ के वर्ष में। हमारे पास आये। फिर यह प्रश्न रखा था। श्रीमद् ऐसा कहते हैं ? छद्मस्थ होकर एक भव धारकर मोक्ष जाऊँगा, ऐसा निर्णय करते हैं ? बहुत चर्चा चली थी। १९७७ में। क्या कहा है ? कहा, भगवती में मति-श्रुत का

विषय सुना है ? मति-श्रुत सब जानता है। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव तीन काल, तीन लोक को मति-श्रुत जाने, ऐसी सामर्थ्य है, भले परोक्ष है। समझ में आया ? मति-श्रुत में सब निर्णय होता है। यही कहते हैं, देखो न! आगम से...

एक भव है और फिर निश्चित सिद्ध है, तीन काल में बदले नहीं। यह ज्ञान जो अन्दर स्वीकार करके आया है वह... समझ में आया ? देवीदास यहाँ की टीका बहुत करता था। वस्तुस्थिति की खबर नहीं होती और बाहर से ऐसा होता है, छद्मस्थ है, अल्पज्ञानी है। अल्पज्ञानी नहीं, यहाँ तो सर्वज्ञ आत्मा है। यहाँ जिसे... ऐसे जीव को ही जीव लिया है। सर्वज्ञ स्वभावी ही आत्मा हूँ, ऐसा जीव, उसे जीव कहते हैं। ऐसी जिसे प्रतीति बैठी है, वह अल्प काल में सर्वज्ञ हुए बिना रहनेवाला नहीं है। वह अल्पज्ञ नहीं रहेगा, ऐसा निश्चित है। चिमनभाई! आहाहा! क्या हो ? तब कितने ही फिर इस भव में मोक्ष ठहरा देते हैं। एक भव था न ? यह तो दूध पीकर भव पूरा किया। यह महासिद्धान्त का विरोध है। पूरे जैनदर्शन के तत्त्व का विरोध है। समझ में आया ? ऐई! अभी आया है, नहीं तुम्हारा ? रामजीभाई का आया है। रामजीभाई के गाँव का। वहाँ रामजी ऐसा पढ़े तो भी गाँव में ऐसा चलता है कि श्रीमद् भावलिंगी साधु थे। अरे! रहने दे। मार डालेगा। पूरा जैनदर्शन उल्टा पड़ेगा। भावलिंगी साधु गृहस्थाश्रम में नहीं होता, कुटुम्ब में नहीं होता, स्त्री के पास नहीं होता। भावलिंगी साधु किसे कहना, इसकी तुझे खबर नहीं है।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका नहीं। यहाँ तो इस भव में है, ऐसा कहा। अभी हमारे प्रति पत्र आया था न! भाई है न कैसे तुम्हारे ? लखुभाई! लक्ष्मीचन्द डाह्याभाई! एक देव आया था और कह गया है कि वे तो अनुत्तर विमान में हैं। वह हम्पीवाला कहते हैं कि और यहाँ केवलज्ञान है। सर्वत्र गप्प-गप्प है।

श्रोता : महाविदेह में हैं...

पूज्य गुरुदेवश्री : महाविदेह में हैं। आहाहा! अरे! कुछ खबर नहीं होती। कितना उल्टा कहते हैं, कितना उल्टा मानते (हैं, उसकी खबर नहीं)। पूरे जैनशासन की खबर नहीं होती।

यहाँ आचार्य स्वयं कहते हैं कि हमें भी अभी रागादि भाग है, परन्तु हमें निर्णय है कि हम तो आत्मा हैं, ऐसा अनुभव हुआ है। इसलिए हमारी भविष्य की सब सिद्धपर्याय खुली हो जानेवाली है। जो शक्तिरूप है, वह (व्यक्तिरूप जो जाएगी)। उसमें भगवान को पूछने जाना पड़े, ऐसा नहीं है। आहाहा! भगवान को पूछे तो खबर पड़े। अरे! तेरा भगवान यहाँ बैठा है, यहाँ पूछ न। समझ में आया? आहाहा!

(-अमुक भविष्य काल के बाद का अनन्त भाग) संसारीपने के अभाववाला है, सिद्धरूप है-ऐसा सर्वज्ञप्रणीत.... देखो! पाठ में है। आप्त कहा है न? आप्त को यहाँ सर्वज्ञ कहा है। आप्त के **आगम के ज्ञान से....** भगवान ने कहे हुए ज्ञान से और **सम्यक् अनुमानज्ञान से तथा अतीन्द्रिय ज्ञान से स्पष्ट ज्ञात होता है।** आहाहा! समझ में आया? सर्वज्ञ प्रणीत आगमज्ञान में भी यह कहा है कि जीव ऐसा होता है, ऐसा जिसे जँचा, उसे सर्वज्ञ ज्ञान में, आगम में ऐसा आ जाता है कि भविष्य काल की मेरी सिद्धपर्याय निश्चित होनेवाली है। एकाध-दो भव हो, हो। संसार-रागादि। फिर रहने का नहीं है। कहो, समझ में आया इसमें? **आगम के ज्ञान से, सम्यक् अनुमानज्ञान से....** वापस सम्यक् अनुमान ज्ञान सच्चा। अटकल में... ऐसा नहीं। **अतीन्द्रिय ज्ञान से....** स्वसंवेदन से। देखो! प्रत्यक्ष लिया वह। पूर्ण द्रव्य है, परन्तु ऐसा अनुमान करने में, प्रत्यक्ष अनुमान स्वसंवेदन का हुआ। द्रव्यदृष्टि होने पर राग से भिन्न पड़कर, ज्ञानानन्द शुद्ध हूँ, ऐसा स्वयं को हुआ, उसके द्वारा पूरा अनुमान करके भविष्य में सिद्धपद होनेवाला है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग है, देखो न! ऐसा वीतरागमार्ग है। लो!

इस तरह अनेक प्रकार से निश्चित होता है कि जीव संसारपर्याय नष्ट करके सिद्धपर्यायरूप परिणमित हो, वहाँ सर्वथा असत् का उत्पाद नहीं होता। सिद्धपद नया हुआ, ऐसा नहीं है। सत्‌रूप से अन्दर भगवान आत्मा में पड़ा था। सत् था, उस सत्‌रूप से सद्भाव सत् की उत्पत्ति है। समझ में आया? आता है न? .... है उसकी उत्पत्ति सद्भाव उत्पत्ति; न हो और पर्याय में हो, वह असद्भाव उत्पत्ति। दो आते हैं। कहो, यह २० गाथा हुई। २१वीं।

गाथा - २१

एवं भावमभावं भावाभावं अभावभावं च।
गुणपज्जएहिं सहिदो संसरमाणो कुणदि जीवो।।२१।।

एवं भावमभावं भावाभावमभावभावं च।
गुणपर्ययै: सहित: संसरन् करोति जीव:।।२१।।

जीवस्योत्पादव्ययसदुच्छेदासदुत्पादकर्तृत्वोपपत्त्युपसंहारोऽयम्।

द्रव्यं हि सर्वदाऽविनष्टानुत्पन्नमाम्नातम्। ततो जीवद्रव्यस्य द्रव्यरूपेण नित्यत्वमुपन्यस्तम्। तस्यैव देवादिपर्यायरूपेण प्रादुर्भवतो भावकर्तृत्वमुक्तं; तस्यैव च मनुष्यादिपर्यायरूपेण व्ययतोऽभाव-कर्तृत्वमाख्यातं; तस्यैव च सतो देवादिपर्यायस्योच्छेदमारभमाणस्य भावाभावकर्तृत्वमुदितं; तस्यैव चासत: पुनर्मनुष्यादिपर्यायस्योत्पादमारभमाणस्याभावभावकर्तृत्वमभिहितम्। सर्वमिदमनवद्यं द्रव्यपर्यायाणामन्यतरगुणमुख्यत्वेन व्याख्यानात्। तथाहि-यदा जीव: पर्यायगुणत्वेन द्रव्यमुख्यत्वेन विवक्ष्यते तदा नोत्पद्यते, न विनश्यति, न च क्रमवृत्त्यावर्तमानत्वात् सत्पर्यायजातमुच्छिनत्ति, नासदुत्पादयति। यदा तु द्रव्यगुणत्वेन पर्यायमुख्यत्वेन विवक्ष्यते तदा प्रादुर्भवति, विनश्यति, सत्पर्यायजातमतिवाहितस्वकालमुच्छिनत्ति, असदुपस्थितस्वकालमुत्पादयति चेति। स खल्वयं प्रसादोऽनेकान्तवादस्य यदीदृशोऽपि विरोधो न विरोध:।।२१।।

इति षड्द्रव्यसामान्यप्ररूपणा।

भाव और अभाव भावाभाव अभावभाव में।
यह जीव गुणपर्यय सहित संसरण करता इसतरह ।।२१।।

अन्वयार्थ :-[एवम्]इस प्रकार[गुणपर्ययै: सहित]गुण-पर्यायसहित [जीव:] जीव[संसरन्]संसरण करता हुआ[भावम्]भाव,[अभावम्]अभाव,[भावाभावम्] भावाभाव [च] और [अभावभावम्] अभावभाव को [करोति] करता है।

टीका :- यह, जीव उत्पाद, व्यय, सत्-विनाश और असत्-उत्पाद का कर्तृत्व होने की सिद्धिरूप उपसंहार है।

द्रव्य वास्तव में सर्वदा अविनष्ट और अनुत्पन्न आगम में कहा है; इसलिए जीवद्रव्य को द्रव्यरूप से नित्यपना कहा गया। (१) देवादिपर्यायरूप से उत्पन्न होता है, इसलिए

उसी को (–जीवद्रव्य को ही) भाव का (–उत्पाद का) कर्तृत्व कहा गया है; (२) मनुष्यादिपर्यायरूप से नाश को प्राप्त होता है, इसलिए उसी को अभाव का (–व्यय का) कर्तृत्व कहा गया है; (३) सत् (विद्यमान) देवादिपर्याय का नाश करता है, इसलिए उसी को भावाभाव का (–सत् के विनाश का) कर्तृत्व कहा गया है; और (४) फिर से असत् (–अविद्यमान) मनुष्यादिपर्याय का उत्पाद करता है, इसलिए उसी को अभावभाव का (–असत् के उत्पाद का) कर्तृत्व कहा गया है।

–यह सब निरवद्य (निर्दोष, निर्बाध, अविरुद्ध) है, क्योंकि द्रव्य और पर्यायों में से एक की गौणता से और अन्य की मुख्यता से कथन किया जाता है। वह इस प्रकार है:–

जब जीव, पर्याय की गौणता से और द्रव्य की मुख्यता से विवक्षित होता है, तब वह (१) उत्पन्न नहीं होता, (२) विनष्ट नहीं होता, (३) क्रमवृत्ति से वर्तन नहीं करता इसलिए सत् (–विद्यमान) पर्यायसमूह को विनष्ट नहीं करता और (४) असत् को (–अविद्यमान पर्यायसमूह को) उत्पन्न नहीं करता; और जब जीव द्रव्य की गौणता से और पर्याय की मुख्यता से विवक्षित होता है, तब वह (१) उपजता है, (२) विनष्ट होता है, (३) जिसका स्वकाल बीत गया है ऐसे सत् (–विद्यमान) पर्यायसमूह को विनष्ट करता है और (४) जिसका स्वकाल उपिस्थत हुआ है (–आ पहुँचा है) ऐसे असत् को (–अविद्यमान पर्यायसमूह को) उत्पन्न करता है।

वह प्रसाद वास्तव में अनेकान्तवाद का है कि ऐसा विरोध भी (वास्तव में) विरोध नहीं है।।२१।।

इस प्रकार षड्द्रव्य की सामान्य प्ररूपणा समाप्त हुई।

गाथा - २१ पर प्रवचन

एवं भावमभावं भावाभावं अभावभावं च।
गुणपज्जएहिं सहिदो संसरमाणो कुणदि जीवो।।२१।।

भाव और अभाव भावाभाव अभावभाव में।
यह जीव गुणपर्यय सहित संसरण करता इस तरह॥२१॥

टीका :- यह जीव को उत्पाद, व्यय, सत्‌-विनाश और असत्‌-उत्पाद का कर्तृत्व होने की सिद्धिरूप उपसंहार है। विशिष्टता क्या कहते हैं? देखो! उत्पाद का कर्ता, नयी पर्याय का या पुरानी पर्याय जो विकारी या अविकारी, उसके उत्पाद का कर्ता आत्मा है। भाई! आहाहा! सम्यग्दर्शन की पर्याय का उत्पत्ति का कर्ता आत्मा है, राग की उत्पत्ति का करनेवाला आत्मा है, सिद्ध की पर्याय उत्पन्न करनेवाला आत्मा है। आहाहा! और व्यय। संसारपर्याय के व्यय का कर्ता आत्मा है, मिथ्यात्व के नाश का कर्ता आत्मा है। समझ में आया? ओहोहो! एक-एक समय के उत्पाद-व्यय का कर्ता जीव है, ऐसा सिद्ध किया। देखो! पर के साथ, कर्म के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

सत्‌-विनाश और असत्‌-उत्पाद का कर्तृत्व होने की सिद्धिरूप उपसंहार है। सत्‌ का विनाश अर्थात्‌ पर्याय का। असत्‌ का उत्पाद, उसका कर्तापना, उसका कर्ता जीव है—ऐसा कहते हैं। रागादि भाव का कर्ता और उसके अभाव का कर्ता। ऐसे सम्यग्दर्शन पर्याय का कर्ता और उस सम्यग्दर्शन पर्याय का अभाव होकर दूसरे समय में सम्यग्दर्शन पर्याय हो, उसका कर्ता जीव है। कर्म के कारण अन्दर मिथ्यात्व होता है और मिथ्यात्व कर्म का अभाव हुआ, इसलिए दर्शनमोह का नाश होता है—ऐसा नहीं है। आहाहा! इसी प्रकार इसकी धर्म की पर्याय और अधर्म की पर्याय; कुगुरु मिले, इसलिए अधर्म की पर्याय उत्पन्न हुई; सुगुरु मिले, इसलिए धर्म की पर्याय उत्पन्न हुई—ऐसा नहीं है। उसके व्यय और उत्पाद का कर्ता आत्मा है, ऐसा सिद्ध करेंगे। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

धारावाही प्रवचन नं. २९ (प्रवचन नं. २८), गाथा-२१
दिनांक - १२-१२-१९६९, मागसर शुक्ल ३, शुक्रवार

एवं भावमभावं भावाभावं अभावभावं च।
गुणपज्जएहिं सहिदो संसरमाणो कुणदि जीवो।।२१।।

अन्वयार्थ :- अन्वयार्थ लेते हैं, संक्षिप्त है न? **इस प्रकार गुणपर्यायों सहित जीव....** यह तो जीव का दृष्टान्त है। उदाहरण है। छहों द्रव्यों की बात करनी है। पहले आ गया है। छहों द्रव्य जितने भगवान आत्मा अनन्त, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और आकाश। छहों द्रव्यों को जीव के उदाहरण से सिद्ध करते हैं। प्रत्येक (द्रव्य) में **गुणपर्यायों सहित जीव संसरण करता हुआ....** संसार की बात है। दृष्टान्त लिया है न? **भाव अभाव भावाभाव और अभावभाव को करता है।** यहाँ कर्ता सिद्ध करना है।

टीका :- यह, जीव को उत्पाद, व्यय सत्-विनाश और असत्-उत्पाद का कर्तृत्व होने की सिद्धिरूप उपसंहार है। उपसंहार है, सामान्य द्रव्य का कथन है। क्या कहते हैं? इस जीव को उत्पाद और व्यय, सत्-विनाश, व्यय अर्थात् सत्-विनाश और असत् उत्पाद का कर्तापना होने से, पर्याय का व्यय होता है, उसका भी कर्ता जीव है और नयी पर्याय उत्पन्न होती है, उसका भी कर्ता जीव है। देखो, अकेला हो तब जीव कहना और दूसरी चीज़ भले हो, परन्तु दूसरी चीज़ निमित्तरूप होती है, परन्तु उसके साथ प्रश्न यहाँ है नहीं। यहाँ संसार का दृष्टान्त दिया है। सिद्ध, मोक्षमार्ग सबका यह दृष्टान्त है। देखो, सुनो! धीरे-धीरे कहते हैं।

जीव को उत्पाद और व्यय अर्थात् कि सत्-विनाश और असत्-उत्पाद, अर्थात् जो आत्मा में वर्तमान मनुष्य पर्याय है, मनुष्य पर्याय अर्थात् यह शरीर नहीं। यह तो देह है, उसकी पर्याय (नहीं परन्तु) अन्दर मनुष्यगति की पर्याय की योग्यता। यह जीव का भाव—उदयभाव। उदयभाव कहा न? तत्त्वार्थसूत्र में। उदयभाव जीव का लेना, शरीर का नहीं। शरीर तो पारिणामिकभाव जड़ भिन्न है। शरीर का मनुष्यपना नहीं। यह तो जड़ की

पर्याय है। अन्दर मनुष्यगति का जो उदय है, उस उदय का विनाश, उसका कर्ता आत्मा है। समझ में आया? आयुष्य पूर्ण हुआ तो यहाँ से जाना पड़ा, ऐसा है नहीं। ऐसा कहते हैं। मनुष्यगति का जो उदयभाव, असिद्धभाव है, उसका व्यय आत्मा करता है। और उत्पाद, देव में उत्पाद होना (वह) देव की पर्याय का उत्पाद आत्मा करता है। ऐसे कर्ता होने की सिद्धिरूप / साबितीरूप यह उपसंहार अर्थात् अन्तिम सामान्य द्रव्य का अधिकार है। यह कहते हैं, देखो!

द्रव्य वास्तव में.... तो जीव द्रव्य वास्तव में **सर्वदा अविनष्ट....** वह तो त्रिकाल नाश न होनेवाला ध्रुव अविनष्ट भगवान आत्मा है। **और अनुत्पन्न....** है। जीव कहीं उत्पन्न होता नहीं। **आगम में कहा है;....** आचार्यदेव तो शरण लेकर बात करते हैं न? बाकी ऐसा वस्तु का स्वरूप है। भगवान सर्वज्ञ के कहे हुए आगम में ऐसा कहा है कि वास्तव में जीवद्रव्य का नाश नहीं होता और जीवद्रव्य उत्पन्न नहीं होता। **इसलिए जीवद्रव्य को द्रव्यरूप को नित्यपना कहा गया।** इस प्रकार जीवद्रव्य को जीवद्रव्य से नित्यपना कहा गया है।

अब पर्याय की बात। देवादि से बात ली है—उत्पन्न से ली थी न? मुनि है न, मुनि (वे) देव में जाते हैं। पंचम काल के मुनि देव में जाते हैं। अर्थात् अपनी पर्याय की बात ली है। समझ में आया? पंचम काल के कुन्दकुन्दाचार्य हों तो भी वे स्वर्ग में जाते हैं। पंचम काल में देव की पर्याय केवल(ज्ञान) की पर्याय उत्पन्न होने की जीव की योग्यता नहीं होती। समझ में आया?

तो कहते हैं कि देवादि पर्याय, देव आदि शब्द है न? **देवादिपर्यायरूप से उत्पन्न होता है, इसलिए उसी को....** उसी को अर्थात् **जीवद्रव्य को...** देव आदि भी मरकर मनुष्य होते हैं। समकिती होते हैं। तो देव होते हैं, पश्चात् मनुष्य होते हैं। वहाँ से तिर्यंच में नहीं जाते। **इसलिए उसी को...** अर्थात् **(-जीवद्रव्य को ही) भाव का (-उत्पाद का) कर्तृत्व कहा गया है;....** देवादि पर्याय की उत्पत्ति का करनेवाला जीव है। कर्म, वह देव की पर्याय उत्पन्न करनेवाला नहीं, वह उसमें अस्ति-नास्ति आ गया।

देवादिपर्यायरूप से.... देवगति **उत्पन्न होता है, इसलिए उसी को (-जीवद्रव्य को ही)....** देवपर्याय, मनुष्यपर्याय जो होनेवाली है उसके **(-उत्पाद का) कर्तृत्व कहा**

गया है;.... उस पर्याय का उत्पन्न करनेवाला आत्मा-जीवद्रव्य कहलाता है। समझ में आया? ऐई! क्या हाँ? वह एक ओर ध्रुव में, द्रव्य पर्याय को करता नहीं, ऐसा आता है। यह दूसरी बात है। जयसेनाचार्य की समयसार, ३२० गाथा है न? द्रव्य... द्रव्य है, पर्याय को पर्याय करे। वह तो द्रव्य और पर्याय का भेद बतलाना हो तो। यहाँ तो पर से भेद बतलाना है। समझ में आया?

(समयसार की) ३२० गाथा। क्या कहलाता है? ज्ञानचक्षु। हिन्दी में है या गुजराती? गुजराती में है। पण्डितजी! थोड़ा गुजराती नहीं समझते? पुस्तक-बुस्तक थोड़ा। यह ज्ञानचक्षु पुस्तक है। बहुत अच्छी है। थोड़ी प्रकाशित हुई है। यह ३२० गाथा जयसेनाचार्य की टीका में वहाँ तो ऐसा बहुत ही लिया है। (कि) जीवद्रव्य वस्तु है। वह जीवद्रव्य संसारपर्याय, बन्धपर्याय, मोक्षपर्याय और मोक्षमार्ग की पर्याय का कर्ता नहीं। गजब बात, भाई! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात है। वीतरागदर्शन वस्तु का स्वरूप ऐसा है। जीवद्रव्य पारिणामिकभाव द्रव्य है। पारिणामिकभाव वस्तु है। पारिणामिकभाव, (वह) उदयभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायिक चार पर्याय को किसलिये करे? पर्याय, पर्याय को करे, ऐसा लिया है। पढ़ा है या नहीं? समझ में आया?

यहाँ दूसरी बात कहनी है। यहाँ पर उसका कर्ता नहीं, परन्तु वह अपनी पर्याय का कर्ता द्रव्य है, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया? स्वतन्त्र भगवान आत्मा अपना जो द्रव्य जो है, वह तो नित्य है। उसमें जो देवादि पर्याय उत्पन्न होती है, वह देवादि पर्याय उत्पन्न करनेवाला आत्मा है। कर्म और परद्रव्य देवादि पर्याय को उत्पन्न करनेवाले नहीं हैं, ऐसा पर से भिन्न बतलाना है। अपने में जब दो पदार्थ लेना हो तो कि पर्याय, पर्याय है (और) द्रव्य, द्रव्य है। दो धर्म स्वतन्त्र हैं। वह द्रव्य और पर्याय दोनों धर्म स्वतन्त्र हैं। अपने से पर्याय है और अपने से द्रव्य है। द्रव्य से पर्याय है, ऐसा भी नहीं। समझ में आया? आप्तमीमांसा में लिया है न, भाई! सामान्य विशेष दोनों स्वतन्त्र है। दो धर्म स्वतन्त्र सिद्ध हुए बिना यह सामान्य का विशेष और विशेष का सामान्य सिद्ध नहीं होता।

पहले दो धर्म सिद्ध होते हैं कि सामान्य, सामान्यरूप से है और विशेष, विशेषरूप से है। सामान्य, विशेष का कर्ता नहीं और विशेष, सामान्य का कर्ता नहीं। आहाहा! नहीं

तो दो धर्म सिद्ध नहीं होते। आप्तमीमांसा में है। सामान्य और विशेष दो धर्म स्वतन्त्र हैं। यह दूसरी बात है। वहाँ तो पर्याय और द्रव्य दोनों धर्म की सिद्धि निरपेक्ष पर की अपेक्षा (नहीं), यह सिद्ध करना है। यहाँ तो परद्रव्य से रहित निरपेक्ष सिद्ध करना है। अपनी देवपर्याय का करनेवाला जीव है, बस! कर्म नहीं, दूसरा द्रव्य नहीं। समझ में आया? आहाहा!

देखो, **देवादिपर्यायरूप से....** पर्यायरूप से है न? द्रव्य तो कोई उत्पन्न होता नहीं और द्रव्य कोई नाश होता नहीं। वह तो पहले कहा। देवादि, मनुष्यादि पर्यायरूप से उत्पन्न होता है, इसलिए **उसे ही...** अर्थात् कि **(-जीवद्रव्य को ही) भाव का....** देवादिपर्याय का **(-उत्पाद का) कर्तृत्व कहा गया है;....** पर्याय का करनेवाला आत्मा ही है। आहाहा! समझ में आया? **और मनुष्यादिपर्यायरूप से नाश को प्राप्त होता है।** क्योंकि मनुष्य का जो उदयभाव है, उसका नाश होता है, व्यय होता है (और) देव की पर्याय उत्पन्न होती है। मनुष्य की पर्याय का व्यय करनेवाला जीवद्रव्य है। कर्म का अभाव हुआ तो यहाँ मनुष्य की पर्याय का व्यय हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा!

अपने द्रव्य-पर्याय की अपने से सिद्धि सिद्ध करते हैं। पर से है नहीं। समझ में आया? कहते हैं, **मनुष्यादिपर्यायरूप से नाश को प्राप्त होता है। इसलिए उसकी को अभाव का (व्यय का) कर्तृत्व कहा गया है;....** मनुष्यादि पर्याय जो उदयभाव है, उसके नाश का करनेवाला जीव है। उसका नाश करनेवाला आयुष्य कर्म का नाश हुआ तो मनुष्य पर्याय का नाश हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वह उत्पाद-व्यय और ध्रुव सिद्ध करते हैं। (एक) समय में तीनों हैं। ध्रुव, ध्रुवरूप है; व्यय, व्ययरूप है; उत्पाद, उत्पादरूप है, परन्तु स्वयं से है—ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया?

मनुष्यादिपर्यायरूप से नाश पाता होने से इसलिए उसे ही, उसे ही अर्थात् जो नाश की पर्याय है, उसे ही जीव के अभाव का-व्यय का कर्तापना कहा गया है। ईश्वर-बिश्वर कोई कर्ता है (या) परमाधामी ले जाता है या कोई कर्म ले जाता है, ऐसा नहीं है। ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? नारकी को ले जाते हैं न? फोटो आते हैं न? उपशम कर्म में लीन है तो वह ध्यान परमाधामी में आता है। भैंसा पर बैठकर-पाड़ा पर बैठकर ले जाता है। कहाँ ले जाये? शरीर तो यहाँ पड़ा है। अस्तित्व यहाँ है। आत्मा को

ले जाये ? आता है न ? देखा है या नहीं ? हमारे तो बहुत वर्ष पहले दुकान में बहुत फोटो थे। श्रृंगार करने को रखते थे। एक भैंसा हो और भैंसे पर परमाधामी आवे। शंकर के लिंग को पकड़ते हैं और डोरी डालकर ले जाते हैं। ऐसा है या नहीं ? सब झूठ है, ऐसा नहीं है।

वे ऐसा कहे न, यह लोग ऐसा कहते हैं कि कर्म का उदय आता है या आनुपूर्वी, उसके कारण ले जाते हैं, ऐसा भी नहीं है, यह यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया ? आहाहा! कहते हैं कि वह मनुष्यादिपर्यायरूप से नाश को प्राप्त होता है, इसलिए उसे ही अभाव का (-व्यय का) कर्तापना भगवान आत्मा को भगवान ने कहा है। भगवान आत्मा ही अपने मनुष्यपर्याय के व्यय और उत्पादभाव को करता है। देव की पर्याय का उदय उत्पन्न करता है। समझ में आया ?

सत् (विद्यमान) देवादिपर्याय का नाश करता है... देखो! भावअभावम्, अब भावअभावम् दूसरा बोल आया। सत् देवादिपर्याय भाव है। देवादिपर्याय के काल में वर्तमान भाव है न ? देव है न, देव ? या मनुष्य की पर्याय में मनुष्यपने के उदयभाव की अस्ति विद्यमान है न ? यहाँ शरीर की नहीं। सत् देव, मनुष्यादि पर्यायों का नाश करता है, इसलिए उसे भावअभाव का भावअभाव का मनुष्यादि देवपर्याय है, वह भाव है। उसके भाव का अभाव, वह भाव के अभाव का कर्तापना कहा गया है। आहाहा! कितना सिद्ध करते हैं ? पहले ऐसा सिद्ध किया कि देवादिपर्याय जो है, उसे उत्पन्न करनेवाला जीवद्रव्य है। मनुष्यादिपर्याय का व्यय करनेवाला जीवद्रव्य है। अब दूसरे प्रकार से यहाँ मनुष्यादिपर्याय जो विद्यमान है, विद्यमान, उस भाव का अभाव करता है। भाव का अभाव करता है। पाठ में है न ? आहाहा! समझ में आया ?

अपने में जो मनुष्यादि या देवादिपर्याय की योग्यता है, ऐसे भाव का, है न ? भाव शब्द **(विद्यमान) देवादिपर्याय का नाश करता है, इसलिए उसी को भावाभाव का (सत् के विनाश का) कर्तृत्व कहा गया है;....** आहाहा! कितना सिद्ध किया है। देखो न, हें ? भारी गजब बात है! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली अलौकिक! गागर में सागर भर दिया है। पहले ऐसा कहा कि उत्पाद-व्यय का करनेवाला जीव, उस भाव का उत्पन्न (होना और) अभाव का नाश होना उसका कर्ता है। भाव-अभाव एक बोल कहा। पहला बोल

भाव-अभाव है न? पहले बोल की व्याख्या की। दूसरे बोल की, भाव-अभाव की मूल गाथा की बात है। पहले भाव अभाव की व्याख्या की। अब भावअभाव की करेंगे। पश्चात् अभावभाव का तीसरा फिर लेंगे। समझ में आया?

मनुष्यादिपर्यायरूप से नाश को प्राप्त होता है। इसलिए उसकी को अभाव का (व्यय का) कर्तृत्व कहा गया है; सत् (विद्यमान) देवादिपर्याय का नाश करता है इसलिए उसी को भावाभाव का (सत् के विनाश का) कर्तृत्व कहा गया है; और फिर से असत् (-अविद्यमान) मनुष्यादिपर्याय का उत्पाद करता है.... अब अभावभाव। मूल पाठ का चौथा बोल, मूल पाठ। पहले एवं भावमभावम, दूसरा भावाभावम् तीसरा अभावभावम्, समझ में आया? इक्कीस गाथा का पाठ है न? पहला भावअभाव हुआ। उत्पाद का करनेवाला गति का जीव और व्यय करनेवाला गति का जीव, बस इतना। फिर भावअभाव मनुष्यादि की पर्याय की गति का अन्दर जो भाव है, उसका अभाव करता है। भाव का अभाव करता है। तो भाव का अभाव करनेवाला भी जीवद्रव्य है। समझ में आया?

यह तो सादी भाषा में है। ऐसी कोई उलझनवाली नहीं है। हें? बहुत सरल है परन्तु जरा इसे विचार में लेना चाहिए।

मुमुक्षु : एकसाथ बहुत आवे न, इसलिए खबर नहीं पड़ती।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकसाथ कितना? यह तो साधारण बात है। तीन बातें हैं—एक भाव, एक अभाव, एक भावअभाव, एक अभावभाव तीन हैं। तीन सिद्ध करना है। चिमनभाई! समझ में आया या नहीं इसमें? थोड़ा-थोड़ा। पहले कहा न? पहले यह कहा। भाव अभाव, उत्पाद और व्यय। भाव अर्थात् उत्पाद (और) अभाव अर्थात् व्यय। तो यहाँ देव का उत्पाद, उसका करनेवाला आत्मा। मनुष्य का व्यय, उसका करनेवाला आत्मा। अब भाव अभाव। मनुष्य की पर्याय विद्यमान है भाव, उसका अभाव करता है। वह भी आत्मा। समझ में आया? यह कहीं न समझ में आये, ऐसी बात नहीं है। बहुत सादी भाषा में है। आचार्य ने गजब काम किया है। समझ में आया?

सत् (विद्यमान) देवादिपर्याय का नाश करता है, इसलिए उसी को भावाभाव का (सत् के विनाश का) कर्तृत्व कहा गया है;.... परन्तु यहाँ सिद्ध करना है कर्तृत्व।

पाठ में चौथी लाईन में कुणदि जीवो – ऐसा है न?

एवं भावमभावं भावाभावं अभावभावं च।
गुणपज्जएहिं सहिदो संसरमाणो कुणदि जीवो।।२१।।

करे जीव, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। ओहोहो! समझ में आया? जो देवादिपर्याय विद्यमान है, इसलिए भाव है, उसका अभाव करता है। भाव का अभाव करता है, वह कर्तृत्व जीव का है। दूसरा कोई कर्म का उदय नाश हुआ तो भाव का अभाव हुआ है, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

चौथा बोल। इसमें तीसरा है, वह उन दो की अपेक्षा से चौथा। पाठ की अपेक्षा से तीसरा। **फिर से असत् (-अविद्यमान) मनुष्यादिपर्याय का उत्पाद करता है....** देखो, देव में है, वहाँ मनुष्यपना है नहीं। देव की पर्याय में मनुष्यपने का अभाव है। तो देवादिपर्याय में मनुष्यपने की पर्याय का अभाव है। समझ में आया? असत् (अविद्यमान) मनुष्यादिपर्याय का उत्पाद करता है। जो देवपर्याय में नहीं, ऐसी मनुष्यपर्याय आती है, तो असत् का उत्पाद करता है, इसलिए उसे अभावभाव कहा है, कर्तृत्व कहा गया है। जो 'नहीं' उसे उत्पन्न करता है तो अभावभाव का कर्ता है। 'है' उसका अभाव करता है तो भावअभाव का कर्ता है। है उत्पाद का व्यय करता है तो व्यय का कर्ता है। उत्पाद का कर्ता, ऐसे दो बोल स्वतन्त्र सिद्ध किये। पश्चात् भावअभाव। देवादिपर्याय सत् है, तो उसका अभाव करता है। पश्चात् अभावअभाव। मनुष्यादिपर्याय देव में है नहीं तो अभाव का भाव करता है, परन्तु उस अभाव का भाव करनेवाला जीवद्रव्य है। पण्डितजी! बात तो बहुत सरल है। आहाहा! परन्तु स्वतन्त्र पर्याय सिद्ध करते हैं, उसका कर्तृत्व जीव का है। कोई ईश्वर कर्ता है या कर्म कर्ता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! द्रव्य स्वतन्त्र अपनी पर्याय (का कर्ता है)। समझ में आया?

उसी को अभावभाव का (-असत् के उत्पाद का) कर्तृत्व कहा गया है। यह सब निरवद्य (निर्दोष, निर्बाध, अविरुद्ध) है,.... अमृतचन्द्राचार्य महाराज स्वयं कहते हैं। ओहो! यह बात **(निर्दोष, निर्बाध, अविरुद्ध) है, क्योंकि द्रव्य और पर्यायों में से एक की गौणता से और अन्य की मुख्यता से कथन किया जाता है।** द्रव्य उत्पन्न होता

है, ऐसा नहीं है और द्रव्य का नाश होता है, ऐसा नहीं है। पर्याय उत्पन्न होती है और पर्याय का नाश होता है। द्रव्य की दृष्टि से उत्पन्न होना और विनाश होना उसमें है नहीं। पर्याय की दृष्टि से उत्पन्न और व्यय होता है। ऐसा अविरोध अनेकान्त स्याद्वाद सिद्ध होता है। समझ में आया?

यह सब आराध्यभाव कहे। भाव, अभाव, भावअभाव, अभावभाव कहे, वे सब निर्दोष, निर्बाध, अविरोध यथार्थ वास्तविक है। उसमें कुछ सन्देह-संशय नहीं है। आहाहा! **क्योंकि द्रव्य और पर्यायों में से एक की गौणता से और अन्य की मुख्यता से कथन किया जाता है।** यहाँ ज्ञान करना है न? वह इस प्रमाण होता है। देखो, **जब जीव, पर्याय की गौणता से....** जीव की पर्याय की मुख्यता न करके **पर्याय की गौणता से और द्रव्य की मुख्यता से विवक्षित होता है, तब वह उत्पन्न नहीं होता,....** द्रव्य की मुख्यता में पर्याय की गौणता में जीव उत्पन्न नहीं होता। जीव कहाँ उत्पन्न होता है? वह तो द्रव्य है। पर्याय की मुख्यता गिनने में नहीं आती और जब द्रव्य की मुख्यता गिनने में आती है, तो जीव उपजता नहीं और विनाश भी नहीं होता।

दूसरी बात, क्रमवृत्ति से वर्तता नहीं। पर्याय तो क्रमवृत्ति वर्तन करती है। एक देव की पर्याय में मनुष्य की नहीं और मनुष्य की पर्याय में देव की नहीं। वह तो क्रमवर्ती पर्याय एक के बाद एक पश्चात् एक जो आनेवाली पर्याय है, वह क्रमवृत्ति है। क्रमवृत्ति में द्रव्य वर्तन नहीं करता। क्रमवृत्ति में पर्याय वर्तन करती है। आहाहा! समझ में आया?

क्रमवृत्ति से वर्तन नहीं करता इसलिए सत् (-विद्यमान) पर्यायसमूह को विनष्ट नहीं करता.... क्रमवृत्ति पर्याय में वर्तन नहीं करता, इस कारण से सत् अर्थात् द्रव्य। पर्यायसमूह को विनष्ट करता नहीं। और असत् को (-अविद्यमान पर्यायसमूह को) उत्पन्न भी करता नहीं। कहो, बराबर है? सामने पुस्तक है या नहीं? सामने एक-एक अक्षर का तो अर्थ होता है। इसका यह अध्धर से तो बात है नहीं। बहुत सूक्ष्म। ओहोहो! पश्चात् विशेष उतारेंगे, हों! इसमें तो संसार की पर्याय उतारेंगे। **और जब जीव, द्रव्य की गौणता से....** जब जीव, द्रव्य की गौणता से, द्रव्य की गौणता करते हैं, और पर्याय की मुख्यता करते हैं **तथा पर्याय की मुख्यता से विवक्षित....** कहा जाता है। **होता है तब वह उपजता**

है.... पर्याय से उपजता है। देव-पर्याय से उपजता है और मनुष्यपर्याय से **विनष्ट होता है,....**

देखो, अब कैसा स्पष्ट करते हैं। **जिसका स्वकाल बीत गया है....** जो मनुष्य की पर्याय में था, उसका स्वकाल बीत गया है। देव की पर्याय से उत्पन्न हुआ। ऐसे सत् (-विद्यमान) पर्यायसमूह को विनष्ट करता है। जिसका स्वकाल बीत गया है। जैसे कि देव में हो तो देव की पर्याय स्वकाल में विद्यमान थी। उस स्वकाल का नाश हो गया। अपने स्वकाल में हुई थी। स्वकाल में भी देव की पर्याय थी। आगे-पीछे होती नहीं। **स्वकाल बीत गया है ऐसे सत् (-विद्यमान) पर्यायसमूह को विनष्ट करता है और जिसका स्वकाल उपस्थित हुआ है....** मनुष्य की पर्याय का स्वकाल उपस्थित हुआ। देव की पर्याय का स्वकाल बीत गया और मनुष्य की पर्याय का स्वकाल उपस्ति हुआ। तो देव, मनुष्य की पर्याय में उत्पन्न होता है। ओहोहो! समझ में आया?

उसके स्वकाल में देव की पर्याय थी, उसे विनष्ट करता है। स्वकाल बीत गया परन्तु मनुष्य की पर्याय का स्वकाल आया तो उपस्थित हुई। मनुष्य की पर्याय में उपस्थित हुआ। **जिसका स्वकाल उपस्थित हुआ है (-आ पहुँचा है) ऐसे असत् को (अविद्यमान पर्यायसमूह को) उत्पन्न करता है।** देव की पर्याय में मनुष्य की पर्याय का असत् है, तो मनुष्य की पर्याय को उत्पन्न करता है तो मनुष्य की पर्याय का स्वकाल आ गया। स्वकाल आ गया तो मनुष्य की पर्याय में उत्पन्न हुआ। कहो, समझ में आया? **यह प्रसाद वास्तव में अनेकान्तवाद का है....** देखो, उसी और उसी में द्रव्य और पर्याय अनेकान्तवाद है, ऐसा कहते हैं। पर की बात नहीं। अनेकान्त उसी और उसी में लागू पड़ता है। द्रव्य से देखो तो उत्पन्न और विनाश नहीं। पर्याय से देखो तो उत्पन्न और विनाश है। भाव का अभाव, अभाव का भाव। आहाहा! समझ में आया?

यह प्रसाद वास्तव में अनेकान्तवाद.... अनेक—अन्त—अनेक धर्मवाद का है। ऐसा विरोध भी द्रव्य से देखो तो उत्पन्न-व्यय नहीं (और) पर्याय से देखो तो उत्पन्न-व्यय। यह तो विरोध जाति दिखती है - विरोधवाला दिखता है, तथापि विरोध नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अब धर्म की पर्याय को उतारते हैं।

फिर से, इसमें धर्म की पर्याय को उतारेंगे। भाई हेमराजजी ने इसमें लिखा है कि

यह तो दृष्टान्त दिया है। इक्कीसवीं गाथा में और जयसेनाचार्य में है। स्यादपद से जिस प्रकार द्रव्य की अशुद्ध पर्याय के कथन की सिद्धि की, उसी प्रकार आगम प्रमाण से शुद्ध पर्यायों की भी विवक्षा जानना। अन्य द्रव्यों के भी सिद्धान्त अनुसार गुण-पर्याय का कथन समझ लेना। द्रव्य का स्पष्टीकरण स्पष्ट करते हैं। सुनो!

फिर से, फिर से अब यहाँ, क्रोधादि पर्यायरूप से उत्पन्न होता है। क्रोधादि पर्यायरूप से उत्पन्न होता है। उसके क्रोधादि पर्याय क्रोध, मान आदि जिस समय में जो पर्याय उत्पन्न होती है। इसलिए उसे क्रोधादिभाव का कर्तृत्व कहा है। वह क्रोध का करनेवाला जीवद्रव्य कहा गया है। पहले कह दिया न? पहले कहा, वह सब उसमें उतार लेना। सूक्ष्म बात है। जैसे संसारी पर्याय का कहा, वैसे सभी पर्यायों का (लेना) क्रोध, मान, माया, लोभ। जिस समय में क्रोध की पर्याय है, 'सत्' उत्पन्न हुआ और वह सत् है, वह दूसरे समय में व्यय होता है। समझ में आया?

भाव-अभाव। दो बोल है न? क्रोध का भाव है, उसका दूसरे समय में अभाव होता है, व्यय होता है। समझ में आया? और भाव-अभाव। क्रोध है, उस समय दूसरी मान की पर्याय नहीं। भाव का अभाव किया। क्रोध का अभाव करके दूसरे समय में मान की उत्पत्ति हुई। यह भाव का अभाव हुआ। अभाव-भाव। पहले समय में मान नहीं था। क्रोध के समय मान नहीं था। वह अभाव था। क्रोध के समय मान का अभाव था। अभाव का भाव उत्पन्न हुआ। दूसरे समय का अभाव था, उसकी उत्पत्ति हुई। कर्ता जीव है, वह तो यहाँ सिद्ध करना है। हाँ, बात ऐसी है। समझ में आया?

इसी प्रकार मिथ्यात्व। मिथ्यात्व की पर्याय कर सकता है, वह भाव है और उसका व्यय करना, वह अभाव है। भाव का करनेवाला भी जीव और नाश करनेवाला भी जीव। आहाहा! गजब बात, भाई! ६२ गाथा में तो स्पष्ट है। इसने भी उतारा है। समझ में आया? क्या कहा? जैसे देवगति का भाव उत्पाद, मनुष्य का अभाव व्यय। देवगति का व्यय हुआ तो अब कहते हैं कि मिथ्यात्व का भाव, उसका कर्ता जीव और मिथ्यात्व का व्यय करनेवाला, उसका कर्ता भी जीवद्रव्य। समझ में आया? इसी प्रकार सम्यग्दर्शन की पर्याय का उत्पाद करनेवाला जीवद्रव्य। समझ में आया? सम्यग्दर्शन की पर्याय का उत्पाद

करनेवाला जीवद्रव्य है और पूर्व की मिथ्यादर्शन की पर्याय का व्यय करनेवाला भी जीवद्रव्य है। अथवा तीसरी.... सम्यग्दर्शन की पर्याय का उत्पाद हुआ, वह भाव और दूसरे समय में अभाव हुआ। नयी सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न हुई। पर्याय एक समय रहती है। पर्याय दूसरे समय नहीं रहती।

सम्यग्दर्शन का उत्पाद हुआ तो दूसरे समय में अभाव हुआ। और दूसरे समय की पर्याय का अभाव था, उस अभाव का भाव हुआ। आहाहा! समझ में आया? धीरे-धीरे अन्दर से आवे, उतना आवे। पहले कहा न? कि आत्मा है, वह अपनी पर्याय के उत्पाद-व्यय को करता है, यह सिद्ध करना है। उसमें तीन बोल आये। भाव, अभाव, भाव-अभाव, अभाव-भाव। अनादि-अनन्त जीवद्रव्य। समझ में आया? निगोद की पर्याय का सत्पना है। अनादि नित्य निगोद है न? वह सत्पना है। नित्य निगोद है, वह उत्पाद-व्यय सत् है न? वह सत् है। दूसरे समय में व्यय होकर निगोद का जीव मनुष्य में आता है। निगोद की पर्याय का व्यय करनेवाला जीव है। और मनुष्यपने का उत्पन्न करनेवाला जीव है। आहाहा! गजब बात! समझ में आया?

और भाव-अभाव। निगोद की पर्यायभाव, मनुष्य की पर्याय व्यय, वह स्वतन्त्र। पीछे निगोद का भाव, उसका अभाव। तीसरा बोल है न! निगोद का भाव, उसका अभाव करके मनुष्य में जाता है। और मनुष्य की पर्याय का यहाँ अभाव था, उस अभाव का भाव किया। समझ में आया? इस प्रकार चारित्र की पर्याय। द्रव्य में से आती है। द्रव्य कर्ता है। आत्मा ने पहले सम्यग्दर्शन किया, वह सम्यग्दर्शन की पर्याय उस समय में उत्पन्न हुई। वह सम्यग्दर्शन की पर्याय के काल में मिथ्यात्व का व्यय हुआ। व्यय और उत्पाद दोनों का कर्ता जीव हुआ। अब सम्यग्दर्शन की पर्याय भाव है, उसका अभाव। दूसरे समय में उस सम्यग्दर्शन की पर्याय का अभाव है। जो पहले समय में सम्यग्दर्शन पर्याय थी, वह भाव। और दूसरे समय में अभाव है। भाव का अभाव-व्यय करता है। और अभाव। दूसरे समय की पर्याय वर्तमान में नहीं है। इस वर्तमान में अभाव का भाव किया। आहाहा! पर के साथ तो सम्बन्ध ही नहीं है, ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा! इतना स्वतन्त्र पदार्थ है, वह भी। उस द्रव्य में उत्पाद-व्यय स्वतन्त्र है न?

कर्म में कर्म का उदय है, वह सत्ता की पर्याय थी, उसका व्यय करके उदय की पर्याय उत्पन्न हुई। उसका कर्ता वह परमाणु है। कर्म सत्ता में थे, वे उत्पादरूप से सत् थे। अब उसका व्यय करके उदय हुआ। पाक हुआ। पाक उत्पन्न हुआ, उसका व्यय हुआ। तो व्यय का करनेवाला भी परमाणु और उदय का करनेवाला भी परमाणु। और सत्ता में, सत्ता के काल में उदय की पर्याय नहीं थी। सत्ता भाव था, उसमें उदय की पर्याय का अभाव था। तो भाव का अभाव किया। समझ में आया? यह भाव छोड़कर अभाव किया। और भविष्य की उदय की पर्याय अभी नहीं तो अभाव का भाव किया। अरे! यह धर्म की क्या बात चलती है? यह सम्यग्दर्शन..... ऐसी यथार्थ प्रतीति बिना सम्यग्दर्शन कभी नहीं होता।

द्रव्य की ऐसी स्वतन्त्रता प्रतीति किये बिना पर के आधीन होता हूँ और मैं पर से होता हूँ, (ऐसा माने) उसमें मिथ्यादृष्टिपना उत्पन्न होता है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कर्म का उदय आया तो मुझे मिथ्यात्व करना पड़ा। और कर्म का उपशम हुआ तो मुझे सम्यग्दर्शन हुआ – सब खोटी बातें हैं। द्रव्य की स्थिति ऐसी है नहीं। यह सिद्ध करते हैं।

वर्तमान में तो यही गड़बड़ है न? कर्म, कर्म और कर्म। कर्म ने मार डाला। वे कहते हैं, समझ में आया? ऐसे आत्मा में चारित्र की पर्याय। सम्यग्दर्शन की पर्याय के काल में चौथे गुणस्थान में चारित्र की पर्याय नहीं थी। तो सम्यग्दर्शन की पर्याय का भाव और उसका अभाव। व्यय करके चारित्र का व्यय हुआ। तो भाव अभाव हुआ न? अब उत्पाद-व्यय स्वतन्त्र कर दिया। पीछे। सम्यग्दर्शन की पर्याय भाव, उसका अभाव। दूसरे समय में उस पर्याय का अभाव। चाहे तो सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न हो या चारित्र की पर्याय उत्पन्न हो। परन्तु उस सम्यग्दर्शन की पर्याय के भाव का दूसरे समय में अभाव है। और दूसरे समय में जो चारित्र की पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, उसमें सम्यग्दर्शन की पर्याय का अभाव है। इस भाव में उसका अभाव है। समझ में आया?

आहाहा! गजब भाई! गजब बात की है! शास्त्र की रचना... एक-एक श्लोक में गागर में सागर भर दिया है। लोग शान्ति से मध्यस्थ होकर स्वाध्याय नहीं करते। अपनी पकड़ रखकर स्वाध्याय करे तो इस प्रकार से देखते हैं। परन्तु शास्त्र में क्या कहते हैं, उसे

अपनी दृष्टि में नहीं लाते और अपनी दृष्टि के साथ शास्त्र को मिला देते हैं। समझ में आया? हें? आहाहा!

अब यहाँ तो केवलज्ञान लिया, देखो! केवलज्ञान हुआ, वह उत्पाद है। केवलज्ञान करनेवाला जीवद्रव्य है। ज्ञानावरणीय का नाश हुआ तो केवलज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! व्यवहार का कथन है। 'मोहक्षयात्', आता है न तत्त्वार्थसूत्र में? मोहक्षयात्, यह तो निमित्त का कथन है।

यहाँ तो कहते हैं कि अपना आत्मा, अपनी केवलज्ञान पर्याय का द्रव्यदृष्टि में द्रव्य में व्यय से जो केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, वह उत्पाद और उसी उत्पाद का दूसरे समय में व्यय। केवलज्ञान का दूसरा समय में व्यय। केवलज्ञान एक समय रहता है और दूसरे समय नहीं। क्योंकि केवलज्ञान पर्याय है; केवलज्ञान गुण नहीं है। आहाहा! गजब बात भाई! समझ में आया?

केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाला जीवद्रव्य (स्वयं) कर्ता है। कर्म कर्ता नहीं। वह तो नहीं परन्तु भाई! यह पूर्व की मोक्षमार्ग की पर्याय थी, उसका व्यय (हुआ), वह केवलज्ञान की पर्याय कर्ता नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा! फिर से। यहाँ कहते हैं न कि उत्पन्न और व्यय। पहला बोल है न? फिर व्यय और उत्पन्न। अभाव... तो कहते हैं कि केवलज्ञान जो उत्पन्न हुआ, उसका कर्ता जीवद्रव्य है। तो कर्म का नाश हुआ, वह तो कर्म की पर्याय में गया। तो वह तो उसमें हुआ। आत्मा में क्या हुआ? उसकी पर्याय में हुआ। कर्म का उत्पाद था उसमें उत्पाद और फिर व्यय हुआ और अकर्मरूप पर्याय हो गयी। कर्म की कर्म पर्याय थी, वह उत्पाद था। पश्चात् व्यय होकर अकर्म पर्याय हो गयी। अकर्म पर्याय हो गयी न? अकर्म पर्याय का व्यय करनेवाले भी उसके परमाणु हैं और कर्म की पर्याय उत्पन्न करनेवाले भी परमाणु हैं। जीव ने राग किया तो कर्म की पर्याय उत्पन्न हुई, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया?

यह कर्म भी अनन्त परमाणु हैं। और उन अनन्त परमाणु में उत्पाद-व्यय एक समय में होता है। तो कहते हैं कि परमाणु पूर्व की सत्ता का उत्पाद है। सत्ता का उत्पाद है, वह भावरूप है, पश्चात् व्यय करता है तो अभावरूप है। तो वह परमाणु उसका उत्पाद करनेवाला

और परमाणु उसका व्यय करनेवाला है। आत्मा कर्म का नाश करनेवाला है और आत्मा कर्म को बाँधनेवाला है, यह तीन काल में नहीं है। समझ में आया? दूसरी बात।

शास्त्र तो भण्डार है। यह तो शास्त्र तो भण्डार है। चार पैसे सेर तो मण के ढाई। यह तो चाबी है। चाहे जितने दृष्टान्त लगाओ। साढ़े सैंतीस सेर के कितने तो साढ़े सैंतीस आने। इसी प्रकार यह सिद्धान्त की चाबी है। इस प्रकार सबमें लगाओ सर्वत्र। सिद्ध की पर्याय को उत्पन्न करनेवाला जीव कर्ता और असिद्ध पर्याय का व्यय करनेवाला जीव। उदयभाव का व्यय हुआ न? उदयभाव था न, वह असिद्धभाव था न, असिद्धभाव। चौदहवें गुणस्थान तक असिद्धभाव था। असिद्धभाव का व्यय करनेवाला जीव और सिद्धभाव का उत्पन्न करनेवाला जीव।

अब यहाँ असिद्धभाव है। भाव का अभाव। वह भाव का अभाव करता है, व्यय करके अभाव करता है। और अभाव का भाव। जो सिद्ध की पर्याय का अभाव था, वह यहाँ वर्तमान चौदहवें गुणस्थान में अभाव का भाव किया। उसका कर्ता जीव है, ऐसा सिद्ध करना है। 'कुणदि जीवो', 'कुणदि जीवो'। आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार केवलज्ञान पहले समय में उत्पन्न हुआ तो वह (केवलज्ञान) उत्पन्न करनेवाला जीवद्रव्य। वही केवलज्ञान की पर्याय दूसरे समय में व्यय होती है तो व्यय का करनेवाला जीवद्रव्य है। और केवलज्ञान के समय में विद्यमान है केवलज्ञान, वह भाव। और दूसरे समय में केवलज्ञान का अभाव है। दूसरे समय में केवलज्ञान पर्याय में होनेवाला है। पर्याय तो एक-एक समय में भिन्न-भिन्न होती है। तो भाव है, उसका अभाव करेगा। अभाव है, दूसरे समय में पर्याय का भाव करेगा। समझ में आया?

तीसरी बात। श्रुतज्ञानकी पर्याय उत्पन्न हुई। श्रुतज्ञानावरणीय (का) क्षयोपशम हुआ तो हुई? नहीं। उस श्रुतज्ञान की पर्याय को उत्पन्न करनेवाला जीव—भगवान आत्मा है। और श्रुतज्ञान की पर्याय के पहले जो अज्ञान था, उसका व्यय करनेवाला भी आत्मा है। उत्पाद-व्यय, भाव-अभाव।

जो श्रुतज्ञान की पर्याय भावरूप वर्तमान में है, वह दूसरे समय में नहीं रहती। भाव का अभाव करती है, उसे जीव करता है। और दूसरे समय की श्रुतज्ञान की पर्याय का

वर्तमान में अभाव है। उस अभाव का भाव करता है, वह भी जीव करता है। भीखाभाई! वास्तविक तत्त्व की खबर नहीं होती और फिर झगड़े ऐसे खड़े करे, ऐसा है और ऐसा है। जो है, वह है। अरे! बापू! तुझे खबर नहीं। भाई! यह तो हमारे ७१ (संवत् १९७१) के वर्ष से चलता है। ७१, ५४ वर्ष हुए। कर्म से होता है, कर्म से होता है (ऐसा कहे)। बिल्कुल नहीं। कौन कहता है कर्म से (होता है)। ऐसा भगवान के मार्ग में है नहीं। ईश्वर को कर्ता मानो तो और कर्म का कर्ता, वह भी एक ही हुआ। तुम्हारे विकार के कर्ता कर्म तो जड़ हैं। उनका ईश्वरकर्ता चेतन। इसका कर्ता कर्म। समझ में आया ? ऐ प्रकाशदासजी! समझ में आता है या नहीं ?

लो, कहते है, विकार का व्यय, व्यय का करनेवाला जीव। सम्यग्दर्शन की पर्याय का उत्पाद करनेवाला जीव। व्यय, उत्पन्न करता है, ऐसा भी नहीं। भाई! मिथ्यात्व का व्यय हुआ तो व्यय का करनेवाला जीव, परन्तु व्यय कर्ता होकर उत्पाद करता है, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। यह उत्पाद का कर्ता जीवद्रव्य है। उत्पाद का कर्ता पूर्व का व्यय नहीं। व्यय का कर्ता जीव और उत्पाद का कर्ता जीव है। आहाहा! ऐई!

यहाँ मोक्षमार्ग की पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः, वह मोक्षमार्ग पर्याय है, गुण नहीं। गुण तो त्रिकाली रहते हैं। सिद्ध भी गुण नहीं, सिद्ध भी पर्याय है। संसार भी पर्याय है। मोक्षमार्ग भी पर्याय है। बन्धमार्ग भी पर्याय है। सिद्ध भी पर्याय है। द्रव्य तो (त्रिकाल) ध्रुव है। समझ में आया ? तो कहते हैं सिद्धपद की पर्याय उत्पन्न हुई, उसका कर्ता जीव है। असिद्ध का व्यय हुआ तो उसका कर्ता वह है। परन्तु असिद्ध पर्याय का व्यय, वह सिद्ध पर्याय का कर्ता है, ऐसा नहीं है। इसी तरह मिथ्यात्व का व्यय करनेवाला जीव है। परन्तु मिथ्यात्व का व्यय करके सम्यग्दर्शन उत्पन्न करनेवाला जीवद्रव्य है, परन्तु मिथ्यात्व का व्यय और सम्यक् पर्याय का उत्पन्न करनेवाला कर्ता, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? आहाहा!

यह तो दृष्टान्त तो दिये जाते हैं। फिर अब बाद में याद न रहे तो, ऐई! यह तो सादी बात है। चार कक्षा पढ़ा हुआ भी पकड़ सके, ऐसा है। उसमें कोई संस्कृत व्याकरण बड़े-बड़े पोथे पड़े हों तो समझ में आये, ऐसी कोई यह चीज़ नहीं है। निज घर की चीज़ स्वतन्त्र

है, यह तो सबको समझ में आये, ऐसी चीज़ है। आग्रह छोड़कर समझे तो। समझ में आया? आहाहा! दूसरी बात। पहले कषाय की मन्दता है, उसकी अस्ति है। उस पर्याय का कर्ता जीव है और दूसरे समय में सम्यग्दर्शन हुआ तो सम्यग्दर्शन की पर्याय का करनेवाला जीवद्रव्य है। कषाय की मन्दता सम्यग्दर्शन की पर्याय की कर्ता नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह व्यवहार निश्चय का कर्ता नहीं है, ऐसा सिद्ध करते हैं और निमित्त (भी) कर्ता नहीं है, ऐसी दो बात इसमें सिद्ध करते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा समय-समय की शुद्ध या अशुद्ध, अपूर्ण या पूर्ण इन पर्याय का करनेवाला स्वतन्त्र सीधा जीव है। निमित्त नहीं, पूर्व की पर्याय नहीं। आहाहा! यह तो कुछ सुना होगा। होगा कुछ। उपाधि भी संसार की ऐसी, छोड़ न। फोन उसके घर में यहाँ फोन चलता है। भगवान का फोन चलता है।

त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव के मुख में से वाणी, यह भी निमित्त का कथन है। क्योंकि वाणी का उत्पाद परमाणु से हुआ है। आत्मा से नहीं। और वाणी की वर्गणा की पर्याय का व्यय हुआ तो उसका कर्ता परमाणु है। भाषा की पर्याय उत्पन्न करनेवाला परमाणु है। उस वर्गणा की पर्याय का व्यय हुआ और भाषा की पर्याय उत्पन्न हुई तो व्यय, उत्पन्न का कर्ता है - ऐसा नहीं है। भाषा का जीव कर्ता है, ऐसा तो नहीं। आहाहा! यह तो छहों द्रव्य की बात है। समझ में आया? काल तो अरूपी है, इसलिए जरा लोगों को कठिन पड़ता है। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल। काल है, वह असंख्य है। अणुलोक प्रमाण एक-एक आकाश प्रदेश वह भी अनन्त गुण का पिण्ड है। वह कालाणु भी अनन्त गुण का पिण्ड है। जितनी एक जीव में गुण संख्या है, उतनी संख्या एक कालाणु में है। जितनी संख्या आत्मा के अनन्त गुण की है, उतनी ही संख्या एक परमाणु में है। परन्तु वह जड़ है। तो परमाणु भी एक समय में यदि हरे रंग के,... लीला को क्या कहते हैं? हरा, हरे रंग की पर्याय उत्पन्न हुई, वह हरे रंग की पर्याय को उत्पन्न करनेवाला वह है। एक बात। एक परमाणु में दो गुण स्निग्धता है। और दूसरे परमाणु में चार गुण स्निग्धता स्कन्ध में है। दो गुण हो न, तो चार गुण हो जाता है। तो कहते हैं कि चार गुण की पर्याय का कर्ता कौन? वह परमाणु। स्कन्ध निमित्त है तो कर्ता है, ऐसा नहीं है।

आहाहा! गजब बात करते हैं। समझ में आया?

दो गुण स्निग्धता है तो दूसरे समय में चार गुण स्निग्धता होगी। कहते हैं कि दो गुण स्निग्धता की पर्याय का कर्ता कौन? परमाणु। और फिर दूसरे समय में चार गुण स्निग्धता की पर्याय का कर्ता कौन? दो गुण की स्निग्धता का व्यय है, वह कर्ता है? नहीं। समझ में आया? चार गुण की पर्याय उत्पन्न हुई, दो गुण की पर्याय का व्यय हुआ, तो दोनों का कर्ता परमाणु है। व्यय का कर्ता परमाणु और उत्पाद का कर्ता परमाणु एक साथ और भाव-अभाव। दो गुण की स्निग्धता का भाव था, दूसरे समय में अभाव हो गया। और अभाव भाव। चार गुण की स्निग्धता का दो गुण में अभाव था, उस अभाव का भाव हुआ। समझ में आया? पर से नहीं।

एक परमाणु सूक्ष्म है, स्थूल नहीं। परमाणु स्थूल नहीं होता, सूक्ष्म है। स्कन्ध स्थूल है। यहाँ परमाणु आया तो वह परमाणु स्थूल हो गया। सूक्ष्म नहीं रहा। उसमें स्थूल पर्याय हुई। तो कहते हैं कि सूक्ष्म पर्याय का व्यय करनेवाला परमाणु और उस समय स्थूल पर्याय को उत्पन्न करनेवाला परमाणु है। दूसरा द्रव्य नहीं। आहाहा! स्कन्ध नहीं। स्कन्ध की पर्याय को उत्पन्न-व्यय करनेवाला स्कन्ध है। गाथा बहुत अलौकिक है।

जैनदर्शन क्या, विश्वदर्शन। वस्तु का दर्शन है। छह द्रव्य ऐसे ही हैं। इसलिए तो जीव का दृष्टान्त देकर सिद्ध किया है। समझ में आया? तो कहे, एक परमाणु सूक्ष्म था तो स्कन्ध में आया तो स्थूल कैसे हुआ? उस स्कन्ध का उसे असर है या नहीं? तो कहे, नहीं, ऐसा कहते हैं। उस समय स्कन्ध में आया, उस पर्याय का पहले अभाव था। फिर स्कन्ध की पर्याय में आया तो स्थूल का उत्पाद हुआ और सूक्ष्म पर्याय का व्यय हुआ। अब सूक्ष्म पर्याय का व्यय है, वह अभाव है। पहले भाव था। दूसरे समय में अभाव हो गया। स्थूल पर्याय हो गयी। परन्तु अभाव का भाव स्थूल पर्याय नहीं थी, सूक्ष्म पर्याय थी तो अभाव का भाव हुआ। स्थूल के अभाव का भाव हो गया। परमाणु में अपने से स्थूल पर्याय से अभाव का भाव हुआ। अरे! गजब बात! कहो, समझ में आया? आहाहा!

दृष्टान्त तो बहुत ही आये। ग्यारहवें गुणस्थान से गिरता है। सुनो! कहते हैं कि कर्म का उदय आया तो गिरा। उदय क्या है? उदय आता है तो दसवाँ होता है न? ग्यारहवें

गुणस्थान की उपशम की पर्याय का कर्ता जीवद्रव्य है और उसका अभाव करता है और दसवें गुणस्थान में आ जाता है तो जो भाव था, उसका अभाव किया और अभाव था, उसका भाव किया। दसवें गुणस्थान की पर्याय का कर्ता जीवद्रव्य है। उपशम पर्याय हुई और गिरी तो उपशम कर्ता और दसवें गुणस्थान की पर्याय कार्य, ऐसा नहीं है। वह दसवें गुणस्थान की पर्याय का कर्ता जीवद्रव्य है। उपशम की पर्याय का कर्ता जीवद्रव्य है। समझ में आया?

उपशम पर्याय है न? भाव है न, गुण नहीं। त्रिकाली द्रव्य में तो गुण है, यह तो पर्याय है। कहे, नहीं। ग्यारहवें गुणस्थान में कर्म का उदय आवे और गिरे, यह खोटी बात है - ऐसा कहते हैं। गजब बात, भाई! समझ में आया? वस्तु का स्वरूप ऐसा है नहीं और वस्तु के स्वरूप से विपरीत माने तो ज्ञान उल्टा हो गया। ज्ञान उल्टा हो तो दृष्टि भी उल्टी। मिथ्यात्वभाव है। मिथ्यात्व का पोषण करता है। ऐसी बात है। आहाहा! कारण कि नव तत्त्व की श्रद्धा होती है न? या अकेले जीव की? जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। अजीव में भी जैसा अजीव में है। अनन्त है, अनन्त में परन्तु एक-एक में जैसा उत्पाद-व्यय में है, वैसा मानना, वैसा जानना, वह अजीव को माना कहलाये। समझ में आया?

अजीव की पर्याय मैं करता हूँ। अजीव की पर्याय बिना का वह द्रव्य है? अजीव की पर्याय का कर्ता तो वह है। समझ में आया? देखो! परमाणु की ऐसी पर्याय है, परमाणु की, हों! आत्मा की नहीं। भाव व्यय हुआ, उसका उत्पाद हुआ। व्यय का कर्ता परमाणु है, आत्मा नहीं। ऐसी पर्याय उत्पन्न हुई, उसका कर्ता परमाणु है, व्यय नहीं। आत्मा नहीं, आत्मा नहीं और व्यय भी नहीं। हें? भगवान का मार्ग तो ऐसा है, प्रभु! क्या करे? लोगों ने सुना नहीं और सुनने में आवे तो यह एकान्त है-एकान्त है। भगवान! सुन तो सही! यह तो अनेकान्तिक बात चलती है। आहाहा! समझ में आया? अपने से है और पर से नहीं। तथा अपने से जो उत्पाद हुआ तो उत्पाद का कर्ता जीव और व्यय का नाश हुआ, वह उत्पाद का कर्ता नहीं। उसका नाम अनेकान्त है। आहाहा! ओहोहो!

कुन्दकुन्दाचार्य की एक-एक गाथा, गजब बात है। दिगम्बर सन्त जैनदर्शन के

केवलज्ञान का मार्ग टिकाये रखा है। ऐसा मार्ग कहीं है नहीं। कहीं तीन काल-तीन लोक में, जैन के दूसरे सम्प्रदाय में भी है नहीं न। वे लोग लिखते हैं। वहाँ ढूंढिया का प्रचार करते हैं। अरे भगवान! क्या करता है भाई! तू रहने दे आज आया है। उसमें वहाँ कहा न, ढूंढक मत का प्रचार करते हैं। अरे! क्या करता है, भाई! तू अन्याय करता है। बापू! उसमें ऐसा नहीं होता, भाई! इस विपरीत मान्यता का दुःख होगा। प्रभु! और यह दुःखी हो जीव, यह कोई चाहेगा? आहाहा! आज ही आया है, जैनगजट में, जैनगजट है न, जैनदर्शन (पत्रिका) में उसमें ही कहीं आया है। जैनदर्शन में। कहीं है अवश्य? नहीं, नहीं, उसमें आया है कहीं। उसमें होगा। ढूँढ़क मत का प्रचार है, वहाँ जाना नहीं। अरे भगवान! प्रभु! क्या करता है? आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो भगवान भी ऐसा कहते हैं, भाई! जैसे आत्मा की पर्याय विकारी या अविकारी, उसका करनेवाला जीवद्रव्य है भगवान! और कर्म के कारण पर्याय उत्पन्न होती है, वह तो भगवान इनकार करते हैं। कर्म की पर्याय के उत्पाद-व्यय-ध्रुव उसमें होते हैं। उससे यहाँ उत्पाद-व्यय हुआ ऐसा तो है नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। विशेष आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्री पंचास्तिकाय संग्रह गाथा २२ से २६ तक पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन अनुपलब्ध हैं। किन्तु सद्गुरुप्रवचनप्रसाद (हस्तलिखित दैनिक) में वीर संवत् २४७८ में संकलित प्रवचन के रूप में जो प्रवचन उपलब्ध हैं, प्रवचनग्रन्थ की पूर्ति हेतु उक्त गाथाओं के संकलित प्रवचन यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

गाथा - २२

जीवा पोग्गलकाया आयासं अत्थिकाइया सेसा।
अमया अत्थित्तमया कारणभूदो हि लोगस्स।।२२।।

जीवा: पुद्गलकाया आकाशमस्तिकायौ शेषौ।
अमया अस्तित्वमया: कारणभूता हि लोकस्य।।२२।।

अत्र सामान्येनोक्तलक्षणानां षण्णां द्रव्याणां मध्यात् पंचानामस्तिकायत्वं व्यवस्थापितम्।

अकृतत्वात् अस्तित्वमयत्वात् विचित्रात्मपरिणतिरूपस्य लोकस्य कारणत्वाच्चाभ्युपगम्यमानेषु षट्सु द्रव्येषु जीवपुद्गलाकाशधर्माधर्मा: प्रदेशप्रचयात्मकत्वात् पञ्चास्तिकाया:। न खलु कालस्तदभावादस्तिकाय इति सामर्थ्यादवसीयत इति।।२२।।

जीव-पुद्गल धरम-अधरम गगन अस्तिकाय सब।
अस्तित्वमय हैं अकृत कारणभूत हैं इस लोक के।।२२।।

अन्वयार्थ :- [जीवा:] जीव, [पुद्गलकाया:] पुद्गलकाय, [आकाशम्] आकाश और [शेषौ अस्तिकायौ] शेष दो अस्तिकाय [अमया:] अकृत हैं, [अस्तित्वमया:] अस्तित्वमय हैं और [हि] वास्तव में [लोकस्य कारणभूता:] लोक के कारणभूत हैं।

टीका :- यहाँ (इस गाथा में) सामान्यत: जिनका स्वरूप (पहले) कहा गया है, ऐसे छह द्रव्यों में से पाँच को अस्तिकायपना स्थापित किया गया है।

अकृत होने से, अस्तित्वमय होने से और अनेक प्रकार की [1]अपनी परिणतिरूप

---

१. लोक छह द्रव्यों के अनेकविध परिणामरूप (-उत्पादव्ययध्रौव्यरूप) हैं; इसलिए छह द्रव्य सचमुच लोक के कारण हैं।

लोक के कारण होने से जो स्वीकार (–सम्मत) किये गये हैं, ऐसे छह द्रव्यों में जीव, पुद्‌गल, आकाश, धर्म और अधर्म प्रदेशप्रचयात्मक (–प्रदेशों के समूहमय) होने से वे पाँच अस्तिकाय हैं। काल को प्रदेशप्रचयात्मकपने का अभाव होने से वास्तव में अस्तिकाय नहीं हैं, ऐसा (बिना–कथन किये भी) सामर्थ्य से निश्चित होता है।।२२।।

गाथा - २२ पर प्रवचन (वी.सं. २४७८)

सर्वज्ञ परमात्मा ने छह द्रव्य देखे हैं। उनमें पाँच द्रव्य अस्तिकाय हैं। और काल है, वह द्रव्य है परन्तु अस्तिकाय नहीं है, उसकी अब बात करते हैं।

अर्थ—प्रथम एक तो जीवद्रव्य कायवन्त है। (१) आत्मा है, वह असंख्य प्रदेशी है। वह असंख्य प्रदेशी अंश है–अवयव है और आत्मा अवयवी है। (२) दूसरा पुद्‌गलद्रव्य कायवन्त है। एक परमाणु तो एक प्रदेश है। परन्तु दो से लेकर अनन्त परमाणु का स्कन्ध हो सकता है, इसलिए वह कायवन्त है। पुद्‌गल स्वयं कायवन्त है। दूसरे जीव के कारण नहीं। मकान, शरीर इत्यादि स्वयं अपने से कायवन्त हैं। परमाणु स्वयं अपने से एकत्रित होकर कायवन्त बनते हैं। पुरुषार्थ करने से पैसादि इकट्ठे होते हैं या पृथक् पड़ जाते हैं, ऐसा नहीं है। आत्मा के कारण से पुद्‌गल का कायवन्तपना नहीं है। (३) आकाशद्रव्य कायवन्त है, वह अनन्त प्रदेशी एक द्रव्य है। वह स्वयं अपने से कायवन्त है। (४) धर्मास्तिकाय कायवन्त है। वह लोकप्रमाण असंख्य प्रदेशी है। (५) अधर्मास्तिकाय कायवन्त है। लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेशी अखण्ड द्रव्य है। वह भी अस्तिकाय है। इस प्रकार जीव, पुद्‌गल धर्म, अधर्म और आकाश—ये पाँच द्रव्य कायवन्त हैं।

ये पाँच द्रव्य कायवन्त है, वे कैसे हैं? (१) '**अमया**' किसी के बनाये हुए नहीं। ईश्वर ने बनाये नहीं। उन द्रव्यों को भूतकाल में किसी ने बनाया नहीं। वर्तमान में कोई बनाता नहीं और भविष्य में कोई बनायेगा नहीं। क्योंकि वे अस्तिकाय हैं। वे स्वयं अपने से हैं। वे स्वभाव से स्वयंसिद्ध हैं। दो परमाणु से लेकर अनन्त परमाणुओं का स्कन्ध, वह कायवन्त है। वह भी स्वयंसिद्ध है।

और वे पदार्थ कैसे हैं? (२) '**अस्तित्वमया**' उत्पाद–व्यय–ध्रुवरूप जो सद्‌भाव

है, उससे अपने स्वरूप के अस्तित्व से परिणामी हैं। कायवन्त पदार्थ अपने उत्पाद, व्यय और ध्रुव से परिणमित हो रहे हैं। शरीर, आत्मा के कारण और आत्मा, शरीर के कारण पलटता नहीं, परन्तु अपने अस्तित्व के कारण पलटता है। कालद्रव्य न हो तो सिद्ध का द्रव्य परिणमे नहीं, यह तो निमित्त का कथन है। वास्तव में सिद्ध का द्रव्य अपने उत्पाद, व्यय और ध्रुव के कारण से पलट रहा है। उसमें कालद्रव्य निमित्तमात्र है। उत्पाद, व्यय और ध्रुव इन तीनपने के अस्तित्व से पदार्थ टिक रहा है। संसार में अनेक प्रकार के संयोग-वियोग दिखाई देते हैं, वे पुद्‌गलकाय के अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुव के कारण से है। किसी के कारण से कुछ है ही नहीं। ऐसा यथार्थ ज्ञान करना।

और वे द्रव्य कैसे हैं? (३) '**लोकस्य कारणभूताः**'—निश्चय से नाना प्रकार की परिणतिरूप लोक को निमित्तभूत है। अर्थात् कि लोक उनसे बना हुआ है। सब द्रव्य हैं, वही लोक है। लोक कोई पृथक् वस्तु नहीं है।

भावार्थ - जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल, ये छह द्रव्य हैं। उनमें कालद्रव्य के बिना पाँच द्रव्य पंचास्तिकाय हैं। क्योंकि इन पाँचों द्रव्यों को प्रदेशों के समूहरूप काय है। प्रदेशों के समूह को काय कहते हैं। ये पाँचों द्रव्य कायवन्त हैं। कालद्रव्य बहुप्रदेशी नहीं है, इसलिए वह अकाय है। यह कथन विशेष से आगम प्रमाण से जानना।

अब कहते हैं कि कालद्रव्य को कायसंज्ञा नहीं कहलाती, परन्तु वह द्रव्य तो है। उस कालद्रव्य बिना सिद्धि नहीं होती क्योंकि कालद्रव्य अस्तित्वरूप वस्तु है, उसका कथन करते हैं। गाथा २२वीं में पाँच अस्तिकाय हैं, ऐसा सिद्ध किया। अब इस २३वीं गाथा में कालद्रव्य को सिद्ध करते हैं।

गाथा - २३

सब्भावसभावाणं जीवाणं तह य पोग्गलाणं च।
परियट्टणसंभूदो कालो णियमेण पण्णत्तो।।२३।।

सद्भावस्वभावानां जीवानां तथैव पुद्गलानां च।
परिवर्तनसम्भूत: कालो नियमेन प्रज्ञप्त:।।२३।।

अत्रास्तिकायत्वेनानुक्तस्यापि कालस्यार्थापन्नत्वं द्योतितम्।

इह हि जीवानां पुद्गलानां च सत्तास्वभावत्वादस्ति प्रतिक्षणमुत्पादव्ययध्रौव्यैकवृत्तिरूप: परिणाम:। स खलु सहकारिकारणसद्भावे दृष्ट:, गतिस्थित्यवगाहपरिणामवत्। यस्तु सहकारिकारणं स काल:। तत्परिणामान्यथानुपपत्तिगम्यमानत्वादनुक्तोऽपि निश्चयकालोऽस्तीति निश्चीयते। यस्तु निश्चयकालपर्यायरूपो व्यवहारकाल: स जीवपुद्गलपरिणामेनाभिव्यज्यमानत्वात्तदायत्त एवाभिगम्यत एवेति।।२३।।

सत्तास्वभावी जीव पुद्गल द्रव्य के परिणमन से।
है सिद्धि जिसकी काल वह कहा जिनवरदेव ने।।२३।।

अन्वयार्थ :– [सद्भावस्वभावानाम्] सत्तास्वभाववाले [जीवानाम् तथा एव पुद्गलानाम् च] जीव और पुद्गलों के [परिवर्तनसम्भूत:] परिवर्तन से सिद्ध होनेवाले [काल:] ऐसा काल [नियमेन प्रज्ञप्त:] (सर्वज्ञों द्वारा) नियम से (निश्चय से) उपदेश दिया गया है।

टीका :– काल अस्तिकायरूप से अनुक्त (–नहीं कहा गया) होने पर भी उसे अर्थपना (पदार्थपना) सिद्ध होता है, ऐसा यहाँ दर्शाया है।

इस जगत में वास्तव में जीवों को और पुद्गलों को सत्तास्वभाव के कारण प्रतिक्षण उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य की एकवृत्तिरूप परिणाम वर्तता है। वह (–परिणाम) वास्तव में सहकारी कारण के सद्भाव में दिखाई देता है, गति–स्थित–अवगाहपरिणाम की भाँति। (जिस प्रकार गति, स्थिति और अवगाहरूप परिणाम धर्म, अधर्म और आकाशरूप सहकारी कारणों के सद्भाव में होते हैं, उसी प्रकार उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य की एकतारूप परिणाम सहकारी कारण के सद्भाव में होते हैं।) यह जो सहकारी कारण, सो काल है।

[१]जीव-पुद्गल के परिणाम की [२]अन्यथा अनुपपत्ति द्वारा ज्ञात होता है इसलिए, निश्चयकाल-(अस्तिकायरूप से) अनुक्त होने पर भी-(द्रव्यरूप से) विद्यमान है, ऐसा निश्चित होता है। और जो निश्चयकाल की पर्यायरूप व्यवहारकाल वह, जीव-पुद्गलों के परिणाम से व्यक्त (-गम्य) होता है, इसलिए अवश्य तदाश्रित ही (-जीव तथा पुद्गल के परिणाम के आश्रित ही) गिना जाता है।।२३।।

गाथा - २३ (वीर संवत् २४७८, माघ कृष्ण ५, शनिवार)

अर्थ - उत्पाद-व्यय-ध्रुव से अस्तित्व धराते जो पदार्थ हैं, उनमें जीव और पुद्गल नयी और पुरानी अवस्थारूप परिणमनेवाले प्रगट दिखायी देते हैं। इसलिए निश्चय से उस परिणमन में निमित्तभूत ऐसा कालद्रव्य है, ऐसा भगवन्त देवाधिदेव ने कहा है। नयी वस्तु पुरानी होती है, इससे कालद्रव्य है—ऐसा साबित होता है। ज्ञान की एक समय की पर्याय में स्व और पर जैसे हैं, वैसे जानने की ताकत है। ज्ञान में जो ज्ञेय ज्ञात होते हैं, उन्हें जैसा है, वैसा न जाने तो ज्ञान मिथ्या होता है और ज्ञान मिथ्या होने से आत्मा की भी यथार्थ श्रद्धा नहीं होती; इसलिए पाँच अस्तिकाय हैं, वैसे कालद्रव्य भी है, यह बतलाते हैं।

भावार्थ - इस लोक में जीव और पुद्गल की समय-समय में जो नयी और पुरानी अवस्थायें होती है, वह स्वभाव का ही परिणमन है। अनन्त आत्मायें और अनन्तान्त

---

१. यद्यपि कालद्रव्य जीव-पुद्गलों के परिणाम के अतिरिक्त धर्मास्तिकायादि के परिणाम को भी निमित्तभूत है, तथापि जीव-पुद्गलों के परिणाम स्पष्ट ख्याल में आते हैं; इसलिए कालद्रव्य को सिद्ध करने में मात्र उन दो के परिणाम की ही बात ली गयी है।

२. अन्यथा अनुपपत्ति=अन्य किसी प्रकार से नहीं हो सकता। (जीव-पुद्गलों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक परिणाम अर्थात् उनकी समयविशिष्ट वृत्ति। वह समयविशिष्ट वृत्ति समय को उत्पन्न करनेवाले किसी पदार्थ के बिना (-निश्चयकाल के बिना) नहीं हो सकती। जिस प्रकार आकाश बिना द्रव्य अवगाहन प्राप्त नहीं कर सकते अर्थात् उनका विस्तार (तिर्यकपना) नहीं हो सकता, उसी प्रकार निश्चयकाल बिना द्रव्य परिणाम को प्राप्त नहीं हो सकते अर्थात् उनको प्रवाह (ऊर्ध्वपना) नहीं हो सकता। इस प्रकार निश्चयकाल के अस्तित्व बिना (अर्थात् निमित्तभूत कालद्रव्य के सद्भाव बिना) अन्य किसी प्रकार जीव-पुद्गल के परिणाम बन नहीं सकते, इसलिए 'निश्चयकाल विद्यमान है' ऐसा ज्ञात होता है-निश्चित होता है।)

पुद्गल परमाणुओं की जो अवस्था होती है, वह अपने स्वभाव से होती है। काल के कारण नहीं होती। वह अवस्था सहकारी कारण की मौजूदगी में देखने में आती है, इसलिए वह अवस्था होते समय कोई निमित्त ही होता नहीं, ऐसा नहीं है। जीव-पुद्गल की अवस्था दिखती है, उसमें कालद्रव्य निमित्तरूप से देखने में आता है।

पुद्गल परमाणु इकट्ठे होकर स्कन्ध होता है, वैसे कालाणु इकट्ठे नहीं होते क्योंकि उनमें स्निग्धता-रूक्षता का गुण नहीं है। परन्तु रत्न का ढ़ेर पड़ा हो, वैसे पूरे लोक में असंख्य कालाणु हैं। कालद्रव्य किस प्रकार से निमित्त है ? वह कहते हैं—जैसे गति में धर्मास्तिकाय; स्थिति में अधर्मास्तिकाय और अवगाहन में आकाश निमित्त है; उसी प्रकार जीव-पुद्गल के परिणमन में कालद्रव्य अवश्य निमित्त है, ऐसा अनुमान होता है। आगमप्रमाण से भी यह निश्चित होता है, तथापि उस कालद्रव्य के कारण से जीव और पुद्गल का परिणमन है-ऐसा नहीं है। निमित्त बिना परिणमन होता नहीं, इसलिए निमित्त के कारण से है, ऐसा नहीं है।

मछली पानी में चलती है, उसे पानी निमित्त कहलाता है, परन्तु पानी उसे चलाता नहीं है। और कोई मनुष्य चला जा रहा हो और रास्ते में वृक्ष की छाया आवे, वहाँ खड़ा रहे तो वह छाया निमित्त कहलाती है। परन्तु चलते हुए मनुष्य को वृक्ष खड़ा रखता नहीं है। इसी प्रकार आत्मा और पुद्गल स्वयं के कारण से परिणमन करते हैं, उन्हें कालद्रव्य निमित्त है। कालद्रव्य अर्थात् काल का परिणमन, वह जीवादि स्वयं के कारण से परिणमन करते हैं, उन्हें निमित्त होता है। परन्तु कालद्रव्य को खोजने जाना नहीं पड़ता।

देखो ! इस कालद्रव्य सम्बन्धी मान्यता में दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदाय में बड़ा अन्तर है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय पाँच द्रव्य ही मानता है। कालद्रव्य को नहीं मानता। कालद्रव्य को औपचारिक मानता है, परन्तु वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है। कालद्रव्य अनादि-अनन्त असंख्य हैं। उनके निमित्त बिना किसी द्रव्य का परिणमन नहीं हो सकता। अर्थात् कि जीवादिक का परिणमन, वह निश्चय है; वहाँ कालद्रव्य का परिणमन निमित्त है, वह व्यवहार है। निश्चय-व्यवहार दोनों होना चाहिए। इसलिए कालद्रव्य है, ऐसा अवश्य मानना चाहिए।

कालद्रव्य निश्चय से है और उसकी पर्याय, वह व्यवहार है। बहुत पर्याय का समूह वह व्यवहारकाल है। यहाँ मुख्यरूप से पंचास्तिकाय को साबित करते हैं। कालद्रव्य को वह अस्तिकाय अर्थात् जीव-पुद्गल द्वारा सिद्ध करते हैं। जीर्ण और नवीन आदि पर्याय है, इससे काल का माप निकलता है। कोई वस्तु नयी हो, वह जीर्ण हो जाती है, इसके आधार से व्यवहारकाल साबित होता है और व्यवहारकाल का आधार निश्चय कालद्रव्य है, वह साबित होता है।

सत्पदप्ररूपणा शास्त्र में आती है, इसलिए शब्द है, वह सत् है तो उसका वाच्य न हो, ऐसा नहीं होता। वाच्य न हो तो पद नहीं हो सकता। कोई कहे कि गधे के सींग कहलाते हैं परन्तु वैसा पदार्थ तो नहीं है। तो उसे कहते हैं कि 'गधे के सींग' यह एक पद नहीं परन्तु वाक्य है। इसलिए यह नहीं होता। परन्तु गधा, सींग-यह पद है, इसलिए सामने उसका वाच्य भी होता है। सींग शब्द है तो सींग पदार्थ न हो, ऐसा नहीं होता। इसी प्रकार काल शब्द है तो कालद्रव्य न हो, ऐसा नहीं होता। शब्द है तो उसका वाच्य भी है। शब्द भिन्न है और उसका वाच्य ऐसा पदार्थ भिन्न है। इस प्रकार दोनों को न स्वीकार करे तो वह शब्द और वस्तु को नहीं समझता।

इस प्रकार व्यवहारकाल जीव-पुद्गल की परिणति द्वारा साबित होता है। वह जीव-पुद्गल के परिणामों को और काल को परस्पर निमित्त-नैमित्तिकभाव है। अनन्त जीवों और पुद्गलों के परिणाम नैमित्तिक हैं और कालद्रव्य की परिणति निमित्त है। यह पहले-पश्चात् नहीं, एक समय में है। कितने ही कहते हैं कि निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध अशुद्धता में ही होता है, परन्तु शुद्ध में नहीं होता - तो यह बात खोटी है। केवलज्ञान नैमित्तिक और कालद्रव्य निमित्त है। सिद्धपर्याय नैमित्तिक और काल निमित्त है। आत्मा और शरीर समय-समय की पर्याय धारण करते हैं, उन्हें काल निमित्तमात्र है। नैमित्तिक के समय हो, उसे निमित्त कहा जाता है। निगोद की पर्याय को काल निमित्तमात्र है। शुभभाव नैमित्तिक है और काल निमित्त है। शरीर में आहार जाये परन्तु वह रक्तरूप परिणमने का न हो, उसे काल परिणमाता नहीं। परन्तु जो-जो पर्याय हो, उसे काल निमित्त है। यह स्वतन्त्रता की घोषणा है।

काल के अस्तित्व से जीव-पुद्गल के परिणाम का अस्तित्व है अर्थात् कि कालद्रव्य के परिणाम निमित्त हैं और जीव-पुद्गल की पर्याय नैमित्तिक है, ऐसा सिद्ध होता है और जीव-पुद्गल के परिणामों से कालद्रव्य की पर्याय जानी जा सकती है।

कालद्रव्य नाम का पदार्थ है, उसकी एक समय की पर्याय है। उसे सिद्ध करने के लिये जीव-पुद्गल के परिणाम निमित्त हैं और काल की पर्याय नैमित्तिक है। दूसरे द्रव्यों के निमित्त से कालद्रव्य की पर्याय साबित करना, वह व्यवहार है। इस प्रकार सब द्रव्य स्वतन्त्र हैं। सर्वज्ञ के अतिरिक्त ऐसी स्वतन्त्रता सिद्ध नहीं होती। इस प्रकार सच्चा ज्ञान करके अज्ञान को टालना, यही धर्म है।

गाथा - २४

ववगदपणवण्णरसो ववगददोगंधअट्ठफासो य।
अगुरुलहुगो अमुत्तो वट्टणलक्खो य कालो त्ति।।२४।।

व्यपगतपञ्चवर्णरसो व्यपगतद्विगन्धाष्टस्पर्शश्च।
अगुरुलघुको अमूर्तो वर्तनलक्षणश्च काल इति।।२४।।

रस-वर्ण पंचरु फरस अठ अर गंध दो से रहित है।
अगुरुलघुक अमूर्त युत अरु काल वर्तन हेतु है।।२४।।

अन्वयार्थ :- [कालः इति] काल (निश्चयकाल) [व्यपगतपंचवर्णरसः] पाँच वर्ण और पाँच रसरहित, [व्यपगतद्विगन्धाष्टस्पर्शः च] दो गंध और आठ स्पर्श रहित, [अगुरुलघुकः] अगुरुलघु, [अमूर्तः] अमूर्त [च] और [वर्तनलक्षणः] वर्तनालक्षणवाला है।

*भावार्थ :- यहाँ निश्चयकाल का स्वरूप कहा है।

लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश में एक-एक कालाणु (कालद्रव्य) स्थित है। वह

* श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव ने इस २४वीं गाथा की टीका लिखी नहीं है, इसलिए अनुवाद में अन्वयार्थ के बाद तुरन्त भावार्थ लिखा गया है।

कालाणु (कालद्रव्य), सो निश्चयकाल है। अलोकाकाश में कालाणु (कालद्रव्य) नहीं है।

वह काल (निश्चयकाल) वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श रहित है, वर्णादि रहित होने से अमूर्त है और अमूर्त होने से सूक्ष्म, अतीन्द्रियज्ञानग्राह्य है। और वह षट्गुणहानिवृद्धिसहित अगुरुलघुत्वस्वभाववाला है। काल का लक्षण वर्तनाहेतुत्व है; अर्थात् जिस प्रकार शीतऋतु में स्वयं अध्ययनक्रिया करते हुए पुरुष को अग्नि सहकारी (बहिरंग निमित्त) है और जिस प्रकार स्वयं घूमने की क्रिया करते हुए कुम्हार के चाक को नीचे की कीली सहकारी है; उसी प्रकार निश्चय से स्वयमेव परिणाम को प्राप्त जीव-पुद्गलादि द्रव्यों को (व्यवहार से) कालाणुरूप निश्चयकाल बहिरंग निमित्त है।

प्रश्न :- अलोक में कालद्रव्य नहीं है, वहाँ आकाश की परिणति किस प्रकार हो सकती है?

उत्तर :- जिस प्रकार लटकती हुई लम्बी डोरी को, लम्बे बाँस को या कुम्हार के चाक को एक ही स्थान पर स्पर्श करने पर सर्वत्र चलन होता है, जिस प्रकार मनोज्ञ स्पर्शनेन्द्रिय विषय का अथवा रसनेन्द्रियविषय का शरीर के एक ही भाग में स्पर्श होने पर भी सम्पूर्ण आत्मा में सुखानुभव होता है और जिस प्रकार सर्पदंश या व्रण (घाव) आदि शरीर के एक ही भाग में होने पर भी सम्पूर्ण आत्मा में दु:खवेदना होती है, उसी प्रकार कालद्रव्य लोकाकाश में ही होने पर भी, सम्पूर्ण आकाश में परिणति होती है क्योंकि आकाश अखण्ड एक द्रव्य है।

यहाँ यह बात मुख्यत: ध्यान में रखना चाहिए कि काल किसी द्रव्य को परिणमित नहीं करता, सम्पूर्ण स्वतंत्रता से स्वयमेव परिणमित होनेवाले द्रव्यों को वह बाह्यनिमित्तमात्र है।

इस प्रकार निश्चयकाल का स्वरूप दर्शाया गया।।२४।।

गाथा - २४ (वी.सं. २४७८, माघ कृष्ण ७, रविवार)

आत्मा है, वैसे कालाणु भी हैं। आत्मा में ज्ञान, आनन्द आदि भाव हैं। कालाणु में ये भाव नहीं, परन्तु कालाणु पदार्थ है, उसकी पहिचान कराते हैं।

अर्थ - निश्चय काल का स्वरूप कहते हैं। पाँच वर्ण और पाँच रस जिसे नहीं और दो गन्ध और आठ स्पर्श गुण भी जिसे नहीं और षड्गुणी हानि-वृद्धिरूप अगुरुलघु-गुणसंयुक्त है और वह अमूर्त है और परद्रव्य के परिणमन में निमित्त है—ऐसा निश्चयकाल का लक्षण है।

कालाणु पदार्थ अरूपी है। उसमें वर्णादि गुण नहीं है। जैसे जीव-पुद्गलादि अस्तिकाय हैं, वैसे कालाणु अस्तिकाय नहीं है। परन्तु वह वस्तु तो है। जैसा पुद्गल का स्वभाव है, वैसा काल का स्वभाव नहीं, इसलिए कालाणु इकट्ठे नहीं होते। कालद्रव्य है, इसका निर्णय सूक्ष्म दृष्टिपूर्वक करना चाहिए, ऐसा आचार्यदेव आगे कहेंगे। द्रव्य अपने कारण से परिणमते हैं, उसमें कालद्रव्य निमित्त है।

भावार्थ - कालद्रव्य अन्य द्रव्य की परिणति को सहायक हैं अर्थात् कि निमित्त हैं। वह किस प्रकार से? यह दृष्टान्त से समझाते हैं। जैसे कोई शिष्य सर्दी की शीतलता में अपने कारण से वाँचन करता हो तो उसे बाहर में अग्नि निमित्त है। पढ़ने की क्रिया तो स्वयं करता है, उसमें अग्नि निमित्तमात्र है। अग्नि पढ़ने की प्रेरणा करती नहीं। अग्नि से कारण से वह पढ़ता नहीं। अग्नि बलजोरी से कहती नहीं कि तू पढ़। परन्तु वह मात्र निमित्त है।

और कुम्हार का चाक अपने आप घूमता है, उसमें नीचे की कीली निमित्त है। कीली चाक को चलाती नहीं। इसी प्रकार सभी द्रव्यों की परिणति को निमित्तरूप कालद्रव्य है। कालद्रव्य बलजोरी से किसी को परिणमाता नहीं। आत्मा स्वयं समझता न हो और आयुष्य पूरा होने का समय हुआ हो तो कालद्रव्य ऐसा नहीं कहता कि अब तू आत्मा का (हित) करने के लिये समझण कर! परन्तु आत्मा स्वयं समझे तो उसके परिणमन में कालद्रव्य निमित्त कहा जाता है।

अब यहाँ कोई **प्रश्न** करता है कि लोकाकाश के बाहर कालद्रव्य नहीं है, तो वहाँ आकाश किसके निमित्त से परिणमता है?

उसका **उत्तर** कहते हैं कि जैसे कुम्हार का चाक घूमता है, उस समय उसके एक कोने में लकड़ी छुआने से पूरा चाक घूमता है। और जिस प्रकार स्पर्शेन्द्रिय का विषय एक

जगह होता है और वेदन पूरे आत्मा में होता है। चन्दन शरीर के एक भाग में चोपड़े तो उसका वेदन पूरे आत्मा में होता है। बिच्छु एक जगह काटे और उसका वेदन पूरे आत्मा में होता है। और फोड़ा इत्यादि एक जगह होता है और वेदना पूरे आत्मा में होती है; उसी प्रकार कालद्रव्य लोकाकाश में होने पर भी अलोकाकाश की परिणति में वह निमित्त होता है।

और कोई प्रश्न करे कि कालद्रव्य अन्य द्रव्यों की परिणति को निमित्त होता है परन्तु कालद्रव्य की परिणति को निमित्त कौन है ? तो कहते हैं कि काल को निमित्त काल है। जैसे आकाश का आधार आकाश है, उसी प्रकार कालद्रव्य के परिणमन में कालद्रव्य स्वयं निमित्त है। ऐसा निश्चित होने से द्रव्य की स्वतन्त्रता साबित होती है। जैसे आत्मा का ज्ञानस्वभाव स्व-परप्रकाशक है, उसका कारण क्या ? तो कहते हैं कि वह अकारणीय है। उसका कारण कोई परद्रव्य नहीं हो सकता। स्वभाव को कारण होता नहीं, उसी प्रकार काल को काल कारण है अर्थात् कि काल के परिणमन में कोई पर कारण नहीं है। इस प्रकार स्वतन्त्र पदार्थ हैं, ऐसा निर्णय करके कहते हैं कि ज्ञान का स्वभाव स्व-परप्रकाशक है, उसे किसी इन्द्रिय और मन की आवश्यकता नहीं है।

आकाश को रहने के लिये जैसे दूसरे स्थान की आवश्यकता नहीं है; उसी प्रकार आत्मा को ज्ञान करने के लिये पर की आवश्यकता नहीं है। जैसे आत्मा का स्वयंसिद्ध अपने क्षेत्र में रहने का स्वभाव है; उसी प्रकार आत्मा का स्वयंसिद्ध स्व-परप्रकाशक स्वभाव है।

जैसे ज्ञान, सूर्य, रत्न, दीपकादि पदार्थ स्व-परप्रकाशक है। उनके प्रकाश के लिये किसी अन्य वस्तु की सहायता की आवश्यकता नहीं है; उसी प्रकार कालद्रव्य को अपनी परिणति के लिये अन्य निमित्त की आवश्यकता नहीं है। स्वयं कालद्रव्य स्वयं अपने को निमित्त है। सूर्य को प्रकाशित करने में कोई अन्य कारण नहीं है। अपनी उज्ज्वलता का स्वभाव है, वह स्व-पर को बतलाता है। रत्न का प्रकाश स्वयं है। वह किसी पर के कारण से नहीं है और दीपक भी स्व-परप्रकाशक है। दीपक में दूसरी चीज़ें ज्ञात होती हैं, इसलिए उन दूसरी चीज़ों के कारण से दीपक नहीं है। जो जिसका स्वभाव है, उसमें किसी निमित्त

की आवश्यकता नहीं है। जैसे काल स्वयं से परिणमता है, वैसे आत्मा का स्व-परप्रकाशक स्वभाव है, वह स्वयं से है। स्वभाव को निमित्त हो नहीं सकता। आत्मा की पर्याय पलटती है, उसमें काल निमित्त है, परन्तु स्व-परप्रकाशक स्वभाव को कोई निमित्त नहीं है। स्वतन्त्र है। सूर्य को प्रकाशित करने में दूसरे सूर्य की आवश्यकता नहीं पड़ती; उसी प्रकार कालद्रव्य परिणमता है, उसमें कोई निमित्त नहीं है।

और **प्रश्न** होता है कि—जैसे कालद्रव्य में परिणति होती है, उसमें काल स्वयं निमित्त है, उसी प्रकार जीव-पुद्‌गलादि द्रव्य भी अपनी परिणति में निमित्त क्यों न हों? उसमें काल का निमित्त है, ऐसा क्यों कहा है? दूसरे द्रव्यों की परिणति में काल की आवश्यकता नहीं, ऐसा कहो तो क्या बाधा है? तो उससे **कहते** हैं कि —

कालद्रव्य का विशेषगुण वर्तना लक्षण है। वह अन्य पदार्थों की परिणति को निमित्तभूत है। जिस प्रकार आकाश अन्य पदार्थों को अवगाह दे, ऐसा उसका गुण है। धर्मास्तिकाय का जीव-पुद्‌गल को गमन में गतिहेतुत्व होने का गुण है और अधर्मास्तिकाय में जीव-पुद्‌गल को स्थितिहेतुत्व का गुण है; उसी प्रकार कालद्रव्य दूसरे पदार्थों के परिणमन में निमित्त है।

जड़कर्म स्वयं परिणमता है, वह उसका उपादान है और काल उसे निमित्त है। आत्मा में राग-द्वेषरूप परिणमता है, वह उसका उपादान है और काल का परिणमन, उसमें निमित्त है। प्रत्येक द्रव्य का उपादान स्वयं वह-वह द्रव्य ही है। एक द्रव्य का उपादान दूसरा द्रव्य नहीं हो सकता, परन्तु कथंचित् प्रकार से अन्य पदार्थ अन्य पदार्थ को निमित्त कारण होता है। उपादान एक द्रव्य में दो नहीं होते परन्तु निमित्त दूसरे द्रव्य होते हैं। कलम चलती है, वह उपादान है। उसमें हाथ निमित्त है; हाथ उपादान है और उसमें आत्मा का निमित्त है। राग नैमित्तिक है और कर्म निमित्त है। इस प्रकार परद्रव्य निमित्तकारण होता है, परन्तु कोई किसी को कर्ता नहीं है। मोरपिच्छी उठती है, वह उसके कारण से, उसमें अँगुली निमित्तमात्र है। अँगुली से वह ऊँची नहीं हुई। दुकान बराबर चलती है, वह उपादान है, उसमें आत्मा की ममता निमित्तमात्र है। ममता की, इसलिए दुकान की व्यवस्था बराबर होती है, ऐसा नहीं है। इस प्रकार उपादान-निमित्त की यहाँ बहुत स्पष्टता

की है, तथापि अज्ञानी अपने अज्ञान के कारण समझता नहीं है।

आकाशद्रव्य अवकाश में निमित्त है; धर्मास्तिकाय गतिहेतुत्व; अधर्मास्तिकाय स्थितिहेतुत्व; इस प्रकार एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य निमित्त पड़ते हैं। यदि एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य निमित्त हैं, ऐसा न माना जाये तो जीव-पुद्गल दो ही द्रव्य रह जायें, इसलिए निमित्तरूप से दूसरा द्रव्य है।

बहुत से लोग कहते हैं कि निमित्त से उपादान में कुछ कार्य होता है, ऐसा माना जाये तो ही निमित्त को माना कहलाये। परन्तु ऐसा नहीं है। जब उपादान में कार्य होता है, तब निमित्त दूसरा द्रव्य होता है, ऐसा मानना, वह यथार्थ है। जीव-पुद्गलादि अपने कारण से परिणमते हैं, उसमें काल निमित्त है, ऐसा न माने तो कालद्रव्य नहीं रहता। निमित्त-निमित्तपने का कार्य करे परन्तु पर में कुछ नहीं करता। निमित्त तो अनादि-अनन्त है, परन्तु निमित्त से उपादान में कुछ कार्य हो, ऐसा माना जाये तो द्रव्य स्वतन्त्र नहीं रहता। आगम विरुद्ध होता है। लोक की मर्यादा नहीं रहती।

कालद्रव्य को दूसरा द्रव्य निमित्त नहीं है, यह बात बराबर है परन्तु कालद्रव्य ही नहीं है—ऐसा नहीं है। कालद्रव्य अन्य द्रव्य के परिणमन में निमित्त है, ऐसा न माना जाये तो दो ही द्रव्य रहते हैं। इस प्रकार लोक की मर्यादा नहीं रहती। इसलिए निश्चयकाल अनादि-अनन्त पदार्थ है। असंख्य कालाणु हैं। आत्मा का स्वभाव स्व-परप्रकाशक है। कालद्रव्य है, उसे न माने तो आत्मा के स्व-परप्रकाशक स्वभाव को नहीं माना। क्योंकि कालद्रव्य ज्ञान का ज्ञेय है, वह परप्रकाशक में जाता है। उसे न माने, उसने परप्रकाशक स्वभाव को नहीं माना।

आत्मा का अपना स्वकाल खिला, अर्थात् कि आत्मा का भान हुआ, तब निमित्तरूप कालद्रव्य है, ऐसा श्रद्धा में आ गया है। पुरुषार्थ की गति संसार की ओर थी, वह चक्र बदलकर स्वभाव की ओर गति हुई, तब कालद्रव्य है, ऐसा भी साथ में भान होता है। किसी को सूक्ष्मता से ख्याल में न आवे तो वह अपवाद है। आत्मा की पर्याय बदलती है तो उसमें निमित्त कोई द्रव्य होना चाहिए, ऐसी प्रतीति आ जाती है। बिल्कुल निषेध नहीं होता। गुरुगम न मिला हो तो कदाचित् ख्याल में न आवे परन्तु कोई कहे तो विरोध नहीं

करे। कालद्रव्य नहीं है, ऐसा माने तो दूसरे धर्मादिद्रव्य निमित्तरूप हैं, उनका भी निषेध होता है। इस प्रकार चार द्रव्यों का निषेध होने से जीव-पुद्गल भी मान्यता में नहीं रहते। पर है, ऐसा जानने की ताकतवाला स्वयं है, उसका भी निषेध होता है। जैसे काँच का बड़ा गोला घर में बीच में बाँधा हो तो उसमें सब दिखता है, उसका निषेध करे तो गोले का निषेध होता है। उसी प्रकार आत्मा के ज्ञान में ज्ञेयपदार्थ ज्ञात होते हैं। उस ज्ञेय का निषेध करने से ज्ञान का निषेध होता है।

यह निश्चयकाल का वर्णन किया। अब, व्यवहारकाल का वर्णन करते हैं।

गाथा - २५

समओ णिमिओ कट्ठा कला य णाली तदो दिवारत्ती।
मासोदुअयणसंवच्छरो त्ति कालो परायत्तो।।२५।।

समयो निमिषः काष्ठा कला च नाली ततो दिवारात्रः।
मासर्त्वयनसंवत्सरमिति कालः परायत्तः।।२५।।

अत्र व्यवहारकालस्य कथंचित्परायत्तत्वं द्योतितम्।

परमाणुप्रचलनायत्तः समयः। नयनपुटघटनायत्तो निमिषः। तत्संख्याविशेषतः काष्ठा कला नाली च। गगनमणिगमनायत्तो दिवारात्रः। तत्संख्याविशेषतः मासः, ऋतुः, अयनं, संवत्सरः इति। एवंविधो हि व्यवहारकालः केवलकालपर्यायमात्रत्वेनावधारयितुमशक्यत्वात् परायत्त इत्युपमीयत इति।।२५।।

समय-निमिष-कला-घड़ी दिनरात-मास-ऋतु-अयन।
वर्षादि का व्यवहार जो वह पराश्रित जिनवर कहा।।२५।।

अन्वयार्थ :- [समयः] समय, [निमिषः] निमेष, [काष्ठा] काष्ठा, [कला च] कला, [नाली] घड़ी, [ततः दिवारात्रः] अहोरात्र, (-दिवस), [मासर्त्वयनसंवत्सरम्] मास, ऋतु, अयन और वर्ष- [इति कालः] ऐसा जो काल (अर्थात् व्यवहारकाल) [परायत्तः] वह पराश्रित है।

टीका :– यहाँ व्यवहारकाल का कथंचित् पराश्रितपना दर्शाया है।

परमाणु के गमन के आश्रित समय है; आँख के मिचने के आश्रित निमेष है; उसकी (–निमेष की) अमुक संख्या से काष्ठा, कला और घड़ी होती है; सूर्य के गमन के आश्रित अहोरात्र होता है; और उसकी (–अहोरात्र की) अमुक संख्या से मास, ऋतु, अयन और वर्ष होते हैं।–ऐसा व्यवहारकाल केवल काल की पर्यायमात्ररूप से अवधारना अशक्य होने से (अर्थात् पर की अपेक्षा बिना–परमाणु, आँख, सूर्य आदि पर पदार्थों की अपेक्षा बिना–व्यवहारकाल का माप निश्चित करना अशक्य होने से) उसे 'पराश्रित' ऐसी उपमा दी जाती है।

भावार्थ :– 'समय' निमित्तभूत ऐसे मन्दगति से परिणत पुद्गल–परमाणु द्वारा प्रगट होता है–मापा जाता है (अर्थात् परमाणु को एक आकाशप्रदेश से दूसरे अनन्तर आकाशप्रदेश में मन्दगति से जाने में जो समय लगे, उसे समय कहा जाता है।) 'निमेष' आँख के मिचने से प्रगट होता है (अर्थात् खुली आँख के मिचने में जो समय लगे, उसे निमेष कहा जाता है और वह एक निमेष असंख्यात समय का होता है।) पन्द्रह निमेष का एक 'काष्ठा', तीस काष्ठा की एक 'कला', बीस से कुछ अधिक कला की एक 'घड़ी' और दो घड़ी का एक 'मुहूर्त' बनता है। 'अहोरात्र' सूर्य के गमन से प्रगट होता है (और वह एक अहोरात्र तीस मुहूर्त का होता है) तीस अहोरात्र का एक 'मास', दो मास की एक 'ऋतु', तीन ऋतु का एक 'अयन' और दो अयन का एक 'वर्ष' बनता है।–यह सब व्यवहारकाल है। 'पल्योपम', 'सागरोपम' आदि भी व्यवहारकाल के भेद हैं।

उपरोक्त समय–निमेषादि सब वास्तव में मात्र निश्चयकाल की ही (–कालद्रव्य की ही) पर्यायें हैं परन्तु वे परमाणु आदि द्वारा प्रगट होती हैं, इसलिए (अर्थात् परपदार्थों द्वारा मापी जा सकती हैं इसलिए) उन्हें उपचार से पराश्रित कहा जाता है।।२५।।

गाथा – २५ (वीर संवत् २४७८, माघ कृष्ण ७–८, रविवार–सोमवार)

अर्थ – कालद्रव्य की एक समय की पर्याय, वह व्यवहार काल है। तो भी जीव–पुद्गल के नये–पुरानेरूप परिणाम से वह उत्पन्न होता है, ऐसा कहा जाता है।

दूसरे द्रव्य द्वारा कालद्रव्य की पर्याय हुई, ऐसा कहना, वह पराधीन है अर्थात् कि

उसमें पर की अपेक्षा है, इसलिए व्यवहारकाल है। यह अब कहते हैं—एक परमाणु मन्दगति से छोटे में छोटे काल में दूसरे प्रदेश में जाये, उसे समय कहा जाता है। यह व्यवहार से पर्याय का माप है और निश्चय से कालद्रव्य की पर्याय है।

काल का अधिकार चलता है। पाँच द्रव्य अस्तिकाय हैं और छठवाँ काल नाम का पदार्थ है, वह काल भी एक स्वतन्त्र पदार्थ है। जैसे जीव वस्तु है, वैसे काल भी मूल वस्तु है। आचार्यदेव कालद्रव्य का वर्णन करके अन्त में कहेंगे कि खरपरदृष्टि से अर्थात् सूक्ष्मदृष्टि से इस काल को जानना।

आत्मा अनन्त ज्ञानादि स्वभाववाला त्रिकाल है। चिदानन्दमूर्ति आत्मा एक कालस्वरूप अभेद है। ***एक काल में अभेद परिपूर्ण द्रव्य को जाना, वहाँ स्वकाल प्रगट हुआ।*** और उसमें निमित्तरूप परकाल का अस्तित्व है, ऐसी भी वहाँ प्रतीति हो जाती है। जिसे चिदानन्द आत्मा का भान नहीं, उसे तो स्वकाल का भान नहीं और वैसे निमित्तरूप कालद्रव्य का भी उसे यथार्थ भान नहीं। ***आत्मा चिदानन्द एक कालस्वभावी है, अर्थात् कि अभेदरूप से सदा एकरूप है।*** ऐसे स्वकालसहित द्रव्य का भान होने पर निमित्तरूप परकाल अर्थात् कि कालद्रव्य का भी ज्ञान में स्वीकार हो जाता है। ज्ञान स्व-पर दोनों को जानता है। अपना स्वकाल और उसमें निमित्तरूप परकाल, इन दोनों को जानता है। मैं अखण्ड ज्ञायक चिदानन्द हूँ-ऐसी उपादेयबुद्धि होने पर ज्ञान के ज्ञेयरूप छहों द्रव्यों की स्वीकृति हो जाती है। जहाँ निश्चय स्वकाल ज्ञात हुआ, वहाँ दूसरे काल पदार्थ का भी भान आ ही जाना चाहिए। यदि काल को न माने तो यहाँ अपने ज्ञान की पूर्णता ही सिद्ध नहीं होती। स्वकाल को जानने से पर काल का ज्ञान साथ ही आ जाता है। ऐसा ज्ञान का स्व-परप्रकाशक स्वभाव है।

कालद्रव्य एक प्रदेशी ही है। एक 'समय', वह कालद्रव्य की पर्याय है। एक परमाणु एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश पर मन्दगति से जाये, उतने समय में उस प्रदेश में काल की पर्याय हो जाती है और पर्याय का धारक द्रव्य भी उतने ही क्षेत्र में है। जितने क्षेत्र में पर्याय की सिद्धि हो जाती है, उतने ही क्षेत्र में द्रव्य रहा हुआ है। अर्थात् कि कालद्रव्य एक प्रदेश में रहा हुआ है। पर्याय और पर्यायवान द्रव्य का क्षेत्र भिन्न नहीं है।

छह द्रव्यों को जानें, ऐसा ज्ञानपर्याय का सामर्थ्य है। यदि छह द्रव्य को भी न माने तो छह द्रव्य को जाननेवाले ज्ञान को भी नहीं मान सकता। ज्ञान की एक समय की पर्याय छहों द्रव्यों को निर्विकल्परूप से जान ले, ऐसा उसका सामर्थ्य है। सामने छह द्रव्य ज्ञेयरूप से निमित्त हैं, परन्तु उस ज्ञेय के कारण ज्ञान नहीं होता।

समय, निमिष, घड़ी, दिन इत्यादि समय का माप है। वह कालद्रव्य की व्यवहारपर्याय है और उस व्यवहारपर्याय का माप परद्रव्य की अपेक्षा से होता होने से उस व्यवहारकाल को पराधीन कहा जाता है। व्यवहारकाल का माप निम्नानुसार है।

मन्दगति से परिणमित परमाणु एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाये, उतने काल को समय कहते हैं। जब असंख्यात समय व्यतीत होते हैं, तब एक निमिष होता है। पन्द्रह निमिष की एक काष्ठा होती है और बीस काष्ठा हो, तब एक कला होती है। बीस कला से थोड़ा अधिक हो, तब एक नाली अथवा घड़ी होती है जो कि पानी में रखी हुई छिद्रवाली कटोरी अथवा रेतवाली घड़ी से जानी जा सकती है। ऐसे दो घड़ी हो, तब एक मुहूर्त होता है। जब बीस मुहूर्त बीतते हैं, तब एक दिन और रात्रि होती है, जो कि सूर्य की गति से जाना जा सकता है और तीस दिन का महीना, दो महीने की ऋतु, तीन ऋतु का अयन, दो अयन का वर्ष होता है। और जहाँ तक वर्ष की गिनती हो सकती है, वहाँ तक संख्यात काल कहा जाता है। तदुपरान्त पल्य, सागर आदि असंख्यात अथवा अनन्त काल जानना।

इस प्रकार व्यवहारकाल द्रव्य के परिणमन की मर्यादा से गिनने में आता है। मूल द्रव्य निश्चयकाल है। निश्चयकाल द्रव्य त्रिकाल है। उसमें पर की अपेक्षा नहीं है। वह स्वाधीन है। वह मूल पदार्थ है।

गाथा - २६

णत्थि चिरं वा खिप्पं मत्तारहिदं तु सा वि खलु मत्ता।
पोग्गलदव्वेण विणा तम्हा कालो पडुच्चभवो।।२६।।

नास्ति चिरं वा क्षिप्रं मात्रारहितं तु सापि खलु मात्रा।
पुद्गलद्रव्येण विना तस्मात्कालः प्रतीत्यभवः।।२६।।

अत्र व्यवहारकालस्य कथञ्चित् परायत्तत्वे सदुपपत्तिरुक्ता।

इह हि व्यवहारकाले निमिषसमयादौ अस्ति तावत् चिर इति क्षिप्र इति सम्प्रत्ययः। स खलु दीर्घह्रस्वकालनिबन्धनं प्रमाणमन्तरेण न सम्भाव्यते। तदपि प्रमाणं पुद्गलद्रव्यपरिणाममन्तरेण नावधार्यते। ततः परपरिणामद्योतमानत्वाद्व्यवहारकालो निश्चयेनानन्याश्रितोऽपि प्रतीत्यभव इत्यभिधीयते। तदत्रास्तिकायसामान्यप्ररूपणायामस्तिकायत्वा-भावात्साक्षादनुपन्यस्यमानोऽपि जीवपुद्गलपरिणामान्यथानुपपत्त्या निश्चयरूपस्तत्परिणामायत्ततया व्यवहाररूपः कालोऽस्तिकाय-पञ्चकवल्लोकरूपेण परिणत इति खरतरदृष्ट्याभ्युपगम्यत इति।।२६।।

विलम्ब अथवा शीघ्रता का ज्ञान होता माप से।
माप होता पुद्गलाश्रित काल अन्याश्रित कहा।।२६।।

अन्वयार्थ :- [चिरं वा क्षिप्रं] 'चिर' अथवा 'क्षिप्र' ऐसा ज्ञान (-अधिक काल अथवा अल्प काल ऐसा ज्ञान) [मात्ररहितं तु] परिमाण बिना (-काल के माप बिना) [न अस्ति] नहीं होता; [सा मात्रा अपि] और वह परिमाण [खलु] वास्तव में [पुद्गलद्रव्येण विना] पुद्गलद्रव्य के नहीं होता; [तस्मात्] इसलिए [कालः प्रतीत्यभवः] काल आश्रितरूप से उपजनेवाला है (अर्थात् व्यवहारकाल पर का आश्रय करके उत्पन्न होता है, ऐसा उपचार से कहा जाता है)।

टीका :- यहाँ व्यवहारकाल के कथंचित पराश्रितपने के विषय में सत्य युक्ति कही गयी है।

प्रथम तो, निमेष-समयादि व्यवहारकाल में 'चिर' और 'क्षिप्र' ऐसा ज्ञान (-अधिक काल और अल्प काल ऐसा ज्ञान होता है)। वह ज्ञान वास्तव में अधिक और अल्प काल के साथ सम्बन्ध रखनेवाले प्रमाण (-कालपरिमाण) बिना सम्भवित नहीं होता; और वह प्रमाण पुद्गलद्रव्य के परिणाम बिना निश्चित नहीं होता। इसलिए, व्यवहारकाल पर के परिणाम द्वारा ज्ञात होने के कारण-यद्यपि निश्चय से वह अन्य के

आश्रित नहीं है तथापि–आश्रितरूप से उत्पन्न होनेवाला (–पर के अवलम्बन से उपजनेवाला) कहा जाता है।

इसलिए यद्यपि काल को अस्तिकायपने के अभाव के कारण यहाँ अस्तिकाय की सामान्य प्ररूपणा में उसका *साक्षात् कथन नहीं है तथापि, जीव–पुद्‌गल के परिणाम की अन्यथा अनुपपत्ति द्वारा सिद्ध होनेवाला निश्चयरूप काल और उनके परिणाम के आश्रित निश्चित होनेवाला व्यवहाररूप काल पंचास्तिकाय की भाँति लोकरूप से परिणत है–ऐसा, अत्यन्त तीक्ष्ण दृष्टि से जाना जा सकता है।

भावार्थ :– 'समय' अल्प है, 'निमेष' अधिक है और 'मुहूर्त' उससे भी अधिक है, ऐसा जो ज्ञान होता है, वह 'समय', 'निमेष' आदि का परिमाण जानने से होता है; और वह कालपरिमाण पुद्‌गलों द्वारा निश्चित होता है। इसलिए व्यवहारकाल की उत्पत्ति पुद्‌गलों द्वारा होती (उपचार से) कही जाती है।

इस प्रकार यद्यपि व्यवहारकाल का माप पुद्‌गल द्वारा होता है, इसलिए उसे उपचार से पुद्‌गलाश्रित कहा जाता है, तथापि निश्चय से वह केवल कालद्रव्य की ही पर्यायरूप है, पुद्‌गल से सर्वथा भिन्न है–ऐसा समझना। जिस प्रकार दस सेर पानी के मिट्टीमय घड़े का माप पानी द्वारा होता है, तथापि घड़ा मिट्टी की ही पर्यायरूप है; पानी की पर्यायरूप नहीं है; उसी प्रकार समय–निमेषादि व्यवहारकाल का माप पुद्‌गल द्वारा होता है, तथापि व्यवहारकाल, कालद्रव्य की ही पर्यायरूप है; पुद्‌गल की पर्यायरूप नहीं है।

कालसम्बन्धी गाथासूत्रों के कथन का संक्षेप इस प्रकार है–जीव–पुद्‌गलों के परिणाम में (समयविशिष्ट वृत्ति में) व्यवहार से समय की अपेक्षा आती है; इसलिए समय को उत्पन्न करनेवाला कोई पदार्थ अवश्य होना चाहिए। वह पदार्थ, सो कालद्रव्य है। कालद्रव्य परिणमित होने से व्यवहारकाल होता है और वह व्यवहारकाल पुद्‌गल द्वारा मापा जाने से उसे उपचार से पराश्रित कहा जाता है। पंचास्तिकाय की भाँति निश्चयव्यवहाररूप काल भी लोकरूप से परिणत है, ऐसा सर्वज्ञों ने देखा है और अति तीक्ष्ण दृष्टि द्वारा स्पष्ट सम्यक् अनुमान भी हो सकता है।

कालसम्बन्धी कथन का तात्पर्यार्थ निम्नोक्तानुसार ग्रहण करने योग्य है:–अतीत अनन्त काल में जीव को एक चिदानन्दरूप काल ही (स्वकाल ही) जिसका स्वभाव है,

* साक्षात्=सीधा (काल का विस्तृत सीधा कथन श्री प्रवचनसार के द्वितीय–श्रुतस्कन्ध में किया गया है; इसलिए काल का स्वरूप विस्तार से जानने के इच्छुक जिज्ञासु को प्रवचनसार में से वह जान लेना चाहिए।

ऐसे जीवास्तिकाय की उपलब्धि नहीं हुई है; उस जीवास्तिकाय का ही सम्यक् श्रद्धान, उसी का रागादि से भिन्नरूप भेदज्ञान और उसी में रागादिविभावरूप समस्त संकल्प-विकल्पजाल के त्याग द्वारा स्थिर परिणति कर्तव्य है।।२६।।

गाथा - २६ (वीर संवत् २४७८, माघ कृष्ण ८, सोमवार)

अर्थ :- काल की मर्यादा बिना थोड़ा काल-बहुत काल, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसलिए काल की मर्यादा का कथन करना आवश्यक है। तथा उस काल की मर्यादा पुद्गलद्रव्य बिना निश्चित नहीं होती। अर्थात् कि परमाणु की मन्द गति, सूर्य की चाल इत्यादि प्रकार के जो पुद्गल के परिणाम हैं, उनसे काल की मर्यादा हो सकती है। इस कारण से व्यवहारकाल की उत्पत्ति पुद्गलद्रव्य के निमित्त से होती है, ऐसा कहा जाता है।

जिनमत में सर्वज्ञदेव ने छह द्रव्य कहे हैं। उन द्रव्यों के बिना लोक की सिद्धि नहीं होती। जगत में निश्चय कालद्रव्य बिना जीव-पुद्गल का परिणमन सिद्ध नहीं हो सकता और जीव-पुद्गल में नयी-पुरानी पर्यायरूप परिणमन बिना व्यवहारकाल की सिद्धि नहीं होती। इसलिए आचार्यदेव कहते हैं कि अपने ज्ञान में सूक्ष्म दृष्टि द्वारा युक्ति इत्यादि से निर्णय करके इस कालद्रव्य को जानो। कालद्रव्य को जानने का कहा, परन्तु उपादेयरूप तो अपना चिदानन्द एक ज्ञानस्वभाव ही है।

क्षणिक राग-द्वेष, पुण्य-पाप जितना ही अपने को मानता था, तब तो उसे स्वकाल का भी भान नहीं था और परकाल का भी ज्ञान नहीं था। जहाँ अन्तर्मुख होकर चिदानन्दस्वभाव का भान होने पर स्वकाल का पुरुषार्थ प्रगट हुआ, वहाँ उस स्वकाल में निमित्तरूप ऐसे परकाल को भी जानता है। इसलिए जिसे वीतराग की आज्ञा मानना हो, उसे सूक्ष्म दृष्टि से जगत में असंख्य कालाणुद्रव्य हैं, ऐसा निर्णय करना चाहिए।

इस प्रकार छह द्रव्यों का सामान्य वर्णन किया।

अब जीवद्रव्य का विशेष वर्णन करते हैं। संसारी जीव का स्वरूप उपाधिरहित तथा उपाधिसहित किस प्रकार है, वह नयविलास से वर्णन करते हैं।

धारावाही प्रवचन नं. ३० (प्रवचन नं. २९), गाथा-२७
दिनांक - १३-१२-१९६९, मागसर शुक्ल ५, शनिवार

पंचास्तिकाय षड्द्रव्य। २७ गाथा। बीच में छह गाथा काल की है, कालद्रव्य को सिद्ध किया है। साधारण है। पाँच अस्तिकाय और छठवाँ काल। कालद्रव्य ऐसा। काल है ऐसा युक्ति से सिद्ध किया है। अब, जीव। यहाँ (मुनि का) उनका ही षड्द्रव्य और पंचास्तिकाय का ही विशेष व्याख्यान किया जाता है। वह सामान्य व्याख्या थी।

इसमें प्रथम जीवद्रव्यास्तिकाय का व्याख्यान है। जीव-द्रव्य-अस्तिकाय, उसका स्वरूप कैसा है, यह वर्णन करते हैं।

गाथा - २७

जीवो त्ति हवदि चेदा उवओगविसेसिदो पहू कत्ता।
भोत्ता य देहमेत्तो ण हि मुत्तो कम्मसंजुत्तो।।२७।।

जीव इति भवति चेतयितोपयोगविशेषितः प्रभुः कर्ता।
भोक्ता च देहमात्रो न हि मूर्तः कर्मसंयुक्तः।।२७।।

अत्र संसारावस्थस्यात्मनः सोपाधि निरुपाधि च स्वरूपमुक्तम्।

आत्मा हि निश्चयेन भावप्राणधारणाज्जीवः, व्यवहारेण द्रव्यप्राणधारणाज्जीवः। निश्चयेन चिदात्मकत्वात्, व्यवहारेण चिच्छक्तियुक्तत्वाच्चेतयिता। निश्चयेनापृथग्भूतेन, व्यवहारेण पृथग्भूतेन चैतन्यपरिणामलक्षणेनोपयोगेनोपलक्षितत्वादुपयोगविशेषितः। निश्चयेन भावकर्मणां, व्यवहारेण द्रव्यकर्मणामास्रवणबन्धनसंवरणनिर्जरणमोक्षणेषु स्वयमीशत्वात् प्रभुः। निश्चयेन पौद्गलिककर्म-निमित्तात्मपरिणामानां, व्यवहारेणात्मपरिणामनिमित्तपौद्गलिककर्मणां कर्तृत्वात्कर्ता। निश्चयेन शुभाशुभकर्मनिमित्तसुखदुःखपरिणामानां, व्यवहारेण शुभाशुभकर्मसंपादितेष्टानिष्टविषयाणां भोक्तृत्वाद्भोक्ता। निश्चयेन लोकमात्रोऽपि विशिष्टावगाहपरिणामशक्तियुक्तत्वान्नामकर्मनिर्वृत्तमणु महच्च शरीरमधितिष्ठन् व्यवहारेण देहमात्रः। व्यवहारेण कर्मभिः सहैकत्वपरिणामान्मूर्तोऽपि

निश्चयेन नीरूपस्वभावत्वान्न हि मूर्तः। निश्चयेन पुद्गलपरिणामानुरूपचैतन्यपरिणामात्मभिः, व्यवहारेण चैतन्यपरिणामानुरूपपुद्गलपरिणामात्मभिः कर्मभिः संयुक्तत्वात्कर्मसंयुक्त इति।।२७।।

आत्मा है जीव-देह प्रमाण चित्-उपयोगमय।
अमूर्त कर्त्ता-भोक्ता प्रभु कर्म से संयुक्त है।।२७।।

अन्वयार्थ :- [जीवः इति भवति] (संसारस्थित) आत्मा जीव है, [चेतयिता] चेतयिता (चेतनेवाला) है, [उपयोगविशेषितः] उपयोगलक्षित है, [प्रभुः] प्रभु है, [कर्ता] कर्ता है, [भोक्ता] भोक्ता है, [देहमात्रः] देहप्रमाण है, [न हि मूर्तः] अमूर्त है [च] और [कर्मसंयुक्तः] कर्मसंयुक्त है।

टीका :- यहाँ (इस गाथा में) संसार-दशावाले आत्मा का [1]सोपाधि और निरुपाधि स्वरूप कहा है।

आत्मा निश्चय से भावप्राण को धारण करता है इसलिए 'जीव' है, व्यवहार से (असद्भूतव्यवहारनय से) द्रव्यप्राण को धारण करता है इसलिए 'जीव' है; [2]निश्चय से चित्स्वरूप होने के कारण 'चेतयिता' (चेतनेवाला) है, व्यवहार से (सद्भूतव्यवहारनय से) चित्शक्तियुक्त होने से 'चेतयिता' है; निश्चय से [3]अपृथग्भूत ऐसे चैतन्यपरिणामस्वरूप उपयोग द्वारा लक्षित होने से 'उपयोगलक्षित' है, व्यवहार से (सद्भूतव्यवहारनय से) पृथग्भूत ऐसे चैतन्यपरिणामस्वरूप उपयोग द्वारा लक्षित होने से 'उपयोगलक्षित' है; निश्चय से भावकर्मों के आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष करने में स्वयं ईश (समर्थ) होने से 'प्रभु' है, व्यवहार से (असद्भूतव्यवहारनय से) द्रव्यकर्मों के आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष करने में स्वयं ईश होने से 'प्रभु' है; निश्चय से पौद्गलिक कर्म जिनका निमित्त है ऐसे आत्मपरिणामों का कर्तृत्व होने से 'कर्ता' है, व्यवहार से (असद्भूत-व्यवहारनय से) आत्मपरिणाम जिनका निमत्त है ऐसे पौद्गलिक कर्मों का कर्तृत्व होने से 'कर्ता' है; निश्चय से शुभाशुभ कर्म जिनका निमित्त है ऐसे सुख-दुःखपरिणामों का

१. सोपाधि=उपाधि सहित; जिसमें पर की अपेक्षा आती हो ऐसा।
२. निश्चय से चित्शक्ति को आत्मा के साथ अभेद है और व्यवहार से भेद है; इसलिए निश्चय से आत्मा चित्शक्तिस्वरूप है और व्यवहार से चित्शक्तिवान है।
३. अपृथग्भूत=अपृथक्; अभिन्न। (निश्चय से उपयोग आत्मा से अपृथक् है और व्यवहार से पृथक् है।)

भोक्तृत्व होने से 'भोक्ता' है, व्यवहार से (असद्भूतव्यवहारनय से) शुभाशुभ कर्मों से सम्पादित (प्राप्त) इष्टानिष्ट विषयों का भोक्तृत्व होने से 'भोक्ता' है; निश्चय से लोकप्रमाण होने पर भी, विशिष्ट अवगाहपरिणाम की शक्तिवाला होने से नामकर्म से रचित छोटे-बड़े शरीर में रहता हुआ व्यवहार से (सद्भूतव्यवहारनय से) 'देहप्रमाण' है; व्यवहार से (असद्भूतव्यवहारनय से) कर्मों के साथ एकत्वपरिणाम के कारण मूर्त होने पर भी, निश्चय से अरूपीस्वभाववाला होने के कारण 'अमूर्त' है; [४]निश्चय से पुद्गलपरिणाम को अनुरूप चैतन्यपरिणामात्मक कर्मों के साथ संयुक्त होने से 'कर्मसंयुक्त' है, व्यवहार से (असद्भूत-व्यवहारनय से) चैतन्यपरिणाम को अनुरूप पुद्गलपरिणामात्मक कर्मों के साथ संयुक्त होने से 'कर्मसंयुक्त' है।

भावार्थ :-पहली २६ गाथाओं में षड्द्रव्य और पंचास्तिकाय का सामान्य निरूपण करके, अब इस २७वीं गाथा से उनका विशेष निरूपण प्रारम्भ किया गया है। उसमें प्रथम, जीव का (आत्मा का) निरूपण प्रारम्भ करते हुए इस गाथा में संसारस्थित आत्मा को जीव (अर्थात् जीवत्ववाला), चेतयिता, उपयोगलक्षणवाला, प्रभु, कर्ता इत्यादि कहा हैत्र जीवत्व, चेतयितृत्व, उपयोग, प्रभुत्व, कर्तृत्व, इत्यादि का विवरण अगली गाथाओं में आयेगा।।२७।।

गाथा - २७ पर प्रवचन

जीवो त्ति हवदि चेदा उवओगविसेसिदो पहू कत्ता।
भोत्ता य देहमेत्तो ण हि मुत्तो कम्मसंजुत्तो।।२७।।

आत्मा है जीव-देह प्रमाण चित्-उपयोगमय।
अमूर्त कर्त्ता-भोक्ता प्रभु कर्म से संयुक्त है॥२७॥

टीका :- यहाँ (इस गाथा में) संसारदशावाले आत्मा का सोपाधिक.... जिसमें

४. संसारी आत्मा निश्चय से निमित्तभूत पुद्गलकर्मों को अनुरूप ऐसे नैमित्तिक आत्म परिणामों के साथ (अर्थात् भावकर्मों के साथ) संयुक्त होने से कर्मसंयुक्त है और व्यवहार से निमित्तभूत आत्मपरिणामों को अनुरूप ऐसे नैमित्तक पुद्गलकर्मों के साथ (अर्थात् द्रव्यकर्मों के साथ) संयुक्त होने से कर्मसंयुक्त है।

पर की अपेक्षा आती है, उसे सोपाधिक कहते हैं। **और निरुपाधिक जीव का स्वरूप कहा है।** सोपाधिक, निरुपाधिक अनादि-अनन्त है। कैसा स्वरूप है? आत्मा निश्चय से भावप्राण को धारण करता है। हें? संयोग तो चले गये। यह तो अनादि से ऐसी बात है। यह सब समयसार में जो कहा है द्रव्यकर्म, भावकर्म से रहित, वह तो सिद्ध के लिये है। यहाँ तो आत्मा ही ऐसा है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : त्रिकाल आत्मा ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाल आत्मा द्रव्यस्वभाव ही ऐसा है। निश्चय से तो भावप्राण को धारण करता है। भगवान आत्मा ज्ञान, दर्शन, आनन्द, सत्ता, यह भावप्राण है। इन भावप्राण को धारण करे, वह जीव और भावप्राण से जीवन करे, वह जीव। वह पर्याय में, समझ में आया?

पहली जीवत्वशक्ति ली। समयसार में ४७ शक्तियों में पहली जीवत्वशक्ति ली है। आत्मा में जीवत्वशक्ति नाम का गुण अनादि-अनन्त है। उसका अर्थ क्या? ज्ञान-दर्शन-आनन्द और सत्ता से जीता है, ऐसा उसका स्वरूप है। समझ में आया? ज्ञानप्राण, दर्शनप्राण, आनन्दप्राण अस्तिवाला सत्ताप्राण, ऐसा जो अपना प्राण है, उससे जो जीवे, कारण कर्ता है। देखो! उसे जीव कहते हैं।

व्यवहार से,... अब व्यवहार लिया। असद्भूतव्यवहारनय से द्रव्यप्राण को धारण करता है, इसलिए जीव है। असद्भूत-झूठे नय से कहो तो आत्मा पाँच इन्द्रिय, मन, वचन, काय, श्वास, आयु जड़ के प्राण को धारण करे, वह असद्भूतव्यवहारनय है। सत्य नहीं। निमित्त में जड़ प्राण है। असद्भूतव्यवहारनय से जीवे, ऐसा व्यवहार से-झूठे व्यवहारनय से कहा जाता है।

मुमुक्षु : झूठा कहने का क्या काम है?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त है न? असद्भूत कहा है, देखो। निमित्तपना है न? जड़प्राण का निमित्त भावप्राण है, वह तो अपने में है और द्रव्यप्राण जड़ की पर्याय है। उससे जीता है, ऐसा असद्भूतव्यवहारनय, झूठे भेद से, व्यवहारनय से कहा जाता है। असद्भूत का अर्थ क्या है? असद्-असत्-असद्भूत-झूठाभूत। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा में यह प्राण नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। नहीं। यह तो जड़ प्राण है। जड़ की पर्याय, यह तो जड़ की पर्याय है। निमित्त देखकर असद्भूतव्यवहारनय से जीव के हैं, जीव हैं, ऐसा कहने में आता है। सिद्ध (होवे तब) नहीं, (भगवान आत्मा) सदा ऐसा है।

भगवान आत्मा अनादि-अनन्त सदा ही जड़ की पर्याय से भिन्न है। जड़ की पर्याय में जीव की पर्याय की नास्ति, जीव की पर्याय में जड़ की पर्याय की नास्ति है। स्वचतुष्टय में परचतुष्टय है ही नहीं; इसलिए निमित्त का कथन करे, वह असद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है कि दस प्राण से आत्मा जीता है, वह असद्भूत कथन। झूठा बोलने के कथन से वह है। व्यवहारनय झूठ ही बोलता है। व्यवहारनय का अर्थ ऐसा है। समझ में आया ? और व्यवहार से तो द्रव्यप्राण को धारण करता है। वास्तव में धारण नहीं करता। यदि वास्तव में धारण करे तब तो निश्चय कहा जाता है। वास्तव में धारण नहीं करता, परन्तु निमित्त है तो उसे असद्भूत व्यवहार से धारण करता है, ऐसा कहा जाता है। जड़ की पर्याय आत्मा धारण करे ? है न ? असद्भूतव्यवहारनय है न ? असद्भूतव्यवहारनय से धर्म धारण करता है, ऐसा लिखा है। धारण करता है, इसलिए जीव है। असद्भूतव्यवहार (नय) से धारण करता है, इसलिए जीव है। धारण अर्थात् असद्भूतव्यवहारनय से धारण करता है या निश्चय से धारण करता है ? ऐई ! झूठे नय से धारण करता है या सच्चे नय से धारण करता है ? धारण करता नहीं, उसे धारण करता है—ऐसा कहना, इसका नाम असद्भूतव्यवहारनय है। ऐसी बात है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा तो अन्तर ज्ञान-दर्शन-आनन्द प्राण है। यह वास्तव में ऐसी दृष्टि कर, ज्ञान-दर्शन-आनन्द की पर्याय से जीवे, वह जीव है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? इसलिए व्यवहार जीव। व्यवहार तो असद्भूतव्यवहार। बस, यह व्यवहारनय है। एक समय की पर्याय से जीना, वह व्यवहारनय है। परन्तु त्रिकाली भावप्राण का आश्रय लेकर जीना, वह निश्चयप्राण है। वह निश्चयजीवन है। आहाहा ! समझ में आया ? वास्तव में तो एक समय की पर्याय, वह भी व्यवहार है। त्रिकाली द्रव्य वह निश्चय है। अपने में हों, अपने। पर की पर्याय तो असद्भूतव्यवहारनय से कहते हैं। ऐसी बात है।

ज्ञान कराते हैं न ? दूसरी चीज़ है। भगवान आत्मा अन्दर भिन्न है। ज्ञान-दर्शन-

आनन्द और अपनी सत्ता ऐसी वस्तु की शक्ति से जीता है तो द्रव्य निश्चय है। और वह निश्चय भी उसे कब होता है? दृष्टि में कब आता है कि द्रव्यप्राण, भावप्राण का लक्ष्य करे तो। मैं ज्ञान हूँ, आनन्द हूँ, अस्तिरूप हूँ, शान्ति हूँ, स्वच्छता, प्रभुता से भरपूर हूँ। ऐसी द्रव्यदृष्टि होने से पर्याय में आनन्द आदि जो होता है, उसे जीव का जीवन कहा जाता है। आयुष्य से जीवे, उसे जीव यथार्थ है नहीं। ओहो! यह तो पहले आया, महावीर का सन्देश। नारा भगत। ऐई पण्डितजी! जीओ और जीने दो। अंग्रेजी है यह तो। भगवान का तो यह है। भगवान का यह सन्देश है। निश्चय से अपने आत्मा में जो आनन्द प्राण है, उसकी प्रगट दशा करके जीना, आनन्दप्राण से जीना, वह निश्चय से जीव है। आहाहा! समझ में आया? यह दूसरा लिया, नहीं तो दस प्राण की अपनी जो योग्यता है। वह तो जड़, व्यवहार, जड़ प्राण लिये। अशुद्ध निश्चय से लो, पाँच इन्द्रिय की योग्यता से जीता है। बल से जीवे, वह अशुद्ध निश्चय प्राण है। अशुद्ध निश्चय कहो या शुद्ध की अपेक्षा से वह भी व्यवहार है। यहाँ तो दो भाग किये हैं। क्या कहना है और तुम्हारा? तीन बोल लेते हैं। द्रव्यसंग्रह में तीन लिये हैं। द्रव्यसंग्रह में भगवान आत्मा ज्ञान-आनन्द जो उसकी शक्ति और स्वभाव है, ऐसी व्यक्तता प्रगट करके ज्ञान और आनन्द से जीवे, वह वास्तव में निश्चय यथार्थ वास्तविक जीव है।

और पाँच इन्द्रिय की योग्यता, तीन प्राण बल जो है, उनकी योग्यता और उनसे जीवे, वह अशुद्ध निश्चय से जीवन है। अशुद्ध निश्चय, क्योंकि वह पर्याय में है। उसकी पर्याय में है। बल प्राण, बल वीर्य और पाँच इन्द्रिय का क्षयोपशम पर्याय में है, वह उससे जीवे, वह अशुद्ध निश्चय से प्राण है। अशुद्ध निश्चय से जीता है। मलिनता से जीवन, वह अशुद्ध निश्चय से जीवन है। और प्राण जड़ है, उनसे जीना, वह अशुद्ध व्यवहारनय से जीवन है। तीन भाग हैं। समझ में आया? उसे यह आत्मा क्या है, यह समझना हो तो यह बात है। क्या कहते हैं? जीव ऐसा है। जीवास्तिकाय ऐसा है। समझ में आया? यहाँ तो द्रव्यसंग्रह में तीन बोल लिये। निश्चय, अशुद्ध और असद्भूतव्यवहार तीन। इसमें जरा है।

भगवान आत्मा अपने ज्ञान और आनन्दरूप शाश्वत् असली प्राण है, उसका आश्रय करके निश्चय शुद्ध पर्याय में आनन्द आदि प्रगट हुए, उनसे ही जीता है, वही निश्चय जीवन है। और पाँच इन्द्रिय की योग्यता से जीवे, वह अशुद्धनिश्चय जीव है।

क्योंकि दुःखदायक है। पाँच इन्द्रिय से जीना इतना अल्पज्ञान में, वह तो पर्यायबुद्धि है, दुःखदायक है। और असद्भूत तो निमित्त जड़ की पर्याय साथ में थी तो असद्भूत से जीता है, ऐसा असद्भूत-झूठे व्यवहारनय से कहा है। क्योंकि अपनी पर्याय में है नहीं। अशुद्ध भावप्राण तो अपनी पर्याय में है। शुद्ध प्राण त्रिकाल गुण में है। क्या कहा?

भगवान आत्मा शुद्ध ध्रुव चिदानन्द आनन्द प्राण, वह तो ध्रुवप्राण है। तो उससे कब जीता है? द्रव्य से तो जीता है।

मुमुक्षु : तीनों काल...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं है। परन्तु उसका आश्रय करके पर्याय जीवे तो वास्तव में जीव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : तब तक जीव ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय जीव नहीं। आहाहा! जीतु! आयी है या नहीं ज्योति? समझ में आया या नहीं? यह देहादि प्राण, पाँच इन्द्रिय और मन, वाणी और काया, वह तो जड़ है। श्वास जड़ है और आयुष्य जड़ है। वह तो दसों जड़ हैं। वह तो जड़ के अस्तित्व में हैं। अपनी पर्याय के अस्तित्व में नहीं। तो उसका जीना कहना, वह तो उसमें नहीं, उसे कहना, वह तो असद्भूतव्यवहारनय से है। अपनी योग्यता से पाँच इन्द्रिय के ज्ञान से जीवे, पाँच इन्द्रिय के ज्ञान से और वीर्य खण्ड-खण्ड एक समय की पर्याय मन-वचन-भावप्राण की, वह अशुद्ध निश्चय से जीवन है। वह दुःखदायक जीवन है। वह वास्तविक शुद्ध जीव का जीवन वह नहीं है। चिमनभाई! यह तो जीव में भी जीवन की व्याख्या। आहाहा!

शुद्धनिश्चय से जीता है, ऐसा कब कहा जाता है? पर्याय परिणमे तो ऐसा कहते हैं। वैसे तो तीनों काल शुद्ध है। परन्तु उसमें क्या? पर्याय में आये बिना यह शुद्ध ध्रुव है, ऐसा किसने जाना? देखो, आत्मा ज्ञान-आनन्द शुद्ध भावप्राणशक्ति सब पड़ी है, ऐसा जानने में कब आया? कि उस ओर की दृष्टि करके ज्ञान-दर्शन-आनन्द की पर्याय के, सर्व गुण की पर्याय के, व्यक्त की पर्याय प्रगट हुई तो उस शुद्धनिश्चय से अपने प्राण से जीता है, उसे जीव कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

यह तो स्पष्ट सत्य बात है। उसमें कोई गड़बड़-गड़बड़ है नहीं। समझ में आया?

आयुष्य से जीना, प्राण से जीना, वह तो पर पर्याय जड़ है। वह अपनी पर्याय के अस्तित्व में तो है नहीं। इसलिए असद्भूत कहा। है नहीं, इसलिए असद्भूत कहा। दस प्राण जो अशुद्ध है, वह अपनी पर्याय में है। वह अशुद्ध निश्चय, त्रिकाल निश्चय की अपेक्षा से वह भी व्यवहार में जाता है। समझ में आया? यह असद्भूतव्यवहार दस प्राण जड़। उपचरित सद्भूत है। अशुद्ध निश्चय से उपचरित सद्भूत है। वास्तविक सद्भूत तो पर्याय में निर्मलता प्रगट हो, वह सद्भूत है। समझ में आया?

यहाँ तो निश्चय का आश्रय करके जीवे, वह निश्चय प्राण से जीता है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! गजब, भाई! एक बात। **निश्चय से चित्स्वरूप होने के....** दूसरा बोल आया न? 'जीवोति हवदि चेदा' अब चेदा की व्याख्या आयी। पहले 'जीवोति हवदि' का अर्थ किया। आहाहा! जीव चित्स्वरूप होने के कारण, निश्चय से अभेद चित्स्वरूप कहा। भगवान आत्मा चेदा है-चित्स्वरूप है। ज्ञानस्वरूप है, आनन्द-दर्शन स्वरूप है। होने से चेतयिता है, वह निश्चय से है। क्या कहा? भगवान चित्स्वरूप ही है। ज्ञानस्वरूप है, दर्शनस्वरूप है, वह निश्चय से है। क्योंकि अभेद हुआ। परिणमे, तब वास्तव में है न! नहीं तो कहाँ से आया? पर्याय में परिणमित हुए बिना यह चित्स्वरूप है, ऐसा कहाँ से आया? द्रव्य तो है ही। समयसार छठवीं गाथा में आया नहीं? आप शुद्ध किसे कहते हो? महाराज!

आप शुद्ध किसे कहते हो? परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर अपने शुद्ध भगवान आत्मा की सेवा करे, उसे शुद्ध पर्याय प्रगट हुई तो शुद्ध पर्याय के वेदनवाले को शुद्ध कहा जाता है। समझ में आया? शुद्ध तो है ही परन्तु द्रव्य और गुण शुद्ध है परन्तु शुद्ध की परिणति पर्याय प्रगट हुए बिना 'यह शुद्ध है', ऐसा प्रतीति में कहाँ से आया? परिणति है अशुद्ध और यह शुद्ध है, ऐसा किस प्रकार कहा जाये? प्रतीति में तो अभी आया नहीं। क्या कहा, समझ में आया? फिर से, ऐसा अपने कोई झट छोड़ नहीं देते। यह आत्मा भगवान ने ऐसा कहा—समयसार छठी गाथा '**एवं भणंति शुद्धम्**' तो यह शुद्ध किसे कहते हैं? कि शुद्ध उसे कहते हैं कि परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर, परद्रव्य से हटकर, अपने आत्मा की सेवा, उपासना, अभिलाषा करे। परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर अपने आत्मा की सेवा करे, '**उपासना अभिलाष्यते**' उसे शुद्ध कहा जाता है। इसका अर्थ क्या? छठी गाथा में है। पर का लक्ष्य

छोड़कर... है न? कहाँ गया समयसार? हिन्दी है या गुजराती? **एष एवाशेषद्रव्यान्तरभावेभ्यो भिन्नत्वेनापास्यमानः शुद्ध इत्यभिलायते।**

क्या कहते हैं, देखो! पहले शब्द पक्का करते हैं। फिर इसका अर्थ। इस भगवान आत्मा को एष आत्मा को एव अशेष। अपने अतिरिक्त अशेष द्रव्य जो कर्म, शरीर आदि पर है, उनसे द्रव्यान्तर, अपने द्रव्य से अन्य द्रव्य, उससे भावेभ्यो, उसके भाव से, भिन्नत्वेन उपासमानः—पर के भाव से भिन्नत्वेन उपासमानः पर से भिन्न होकर अपने स्वभाव से उपासमानः **शुद्ध इतियभिलप्यते**' अपनी सेवा की अर्थात् शुद्ध चैतन्य में एकाग्र हुआ तो शुद्ध आनन्द आदि प्रगट हुए, उस पर्यायवाले को यह शुद्ध है, ऐसे द्रव्य की दृष्टि होती है। वस्तु शुद्ध है। आहा! शुद्ध है, ऐसा पर्याय में आये बिना शुद्ध है—ऐसा प्रतीति में कहाँ से आया? गजब बात भाई! समझ में आया? यह बात तो बहुत बार की है। राजकोट में भी बहुत हुई है। शुद्ध, परमात्मप्रकाश में भी आता है। बहुत लिया है। यह आत्मा शुद्ध है। शुद्ध है, किसे प्राप्त हुआ। शुद्ध है, ऐसी धारणा की। आत्मा द्रव्य है, शुद्ध है, ऐसी धारणा से वस्तु शुद्ध है, ऐसा प्रतीति में नहीं आया, परन्तु द्रव्यान्तरेभ्यो पृथक उपासमानः-परद्रव्य से भिन्न होकर जैसा परद्रव्य का लक्ष्य था, उसका लक्ष्य छोड़कर स्वद्रव्य में लक्ष्य करके उपासमानः-आत्मा की सेवा की, सेवा की तो शुद्धता प्रगट की तो उसका द्रव्य शुद्ध है, ऐसा प्रतीति में आता है। दूसरे को भी, वस्तु ख्याल में आये बिना प्रतीति किसकी करे? आहाहा! समझ में आया?

ऐसा कहते हैं। '**द्रव्यान्तर भावेभ्यो**' अर्थात् परद्रव्य के भाव। परद्रव्य और उसके भाव उदय आदि कर्म है न? वे परद्रव्य के भाव हैं। उनका लक्ष्य छोड़कर उपासमानः भगवान शुद्ध द्रव्य है, गुण त्रिकाली पवित्र की सेवना, सेवना तो पर्याय हुई। '**उपास्यमानः शुद्धइत्यभिलाप्यते**' उपासमान, उपासमान तो पर्याय हुई। परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर भगवान द्रव्य शुद्ध चैतन्य है, ऐसी द्रव्यदृष्टि हुई तो पर्याय में शुद्धता हुई। शुद्धता हुई तो उस शुद्धता द्वारा निर्णय हुआ कि पूरा द्रव्य शुद्ध है। उसके बिना प्रतीति किस प्रकार हुई? शुद्धता का अंश आये बिना यह शुद्ध पूरा द्रव्य है, ऐसा प्रतीति में कैसे आयेगा? समझ में आया? गजब काम भाई! ऐसा यहाँ कहते हैं।

भगवान आत्मा चेतयिता है। चेतयिता है, उस चेतयिता की दृष्टि, परिणति हुए बिना

चेतयिता का ख्याल कहाँ से आया ? चेतयिता है, चेतयिता है परन्तु है राग की एकता और (कहे कि) आत्मा चेतयति है, परन्तु आत्मा चेतयिता, वह कैसे ख्याल में आया ?

राग ! यह आगे कहेंगे, प्रभु ! रागरूपी कर्मचेतना है, उसकी एकता है, वहाँ यह आत्मा चेतयिता है, वह कैसे ख्याल में आया ? वह तो राग की चेतयिता हुई। समझ में आया ? तो राग का कर्म चेतयिता तो है नहीं। चेतयिता ज्ञान-दर्शन उपरान्त जो चेतयिता है, उसकी एकता होकर चेतयिता की परिणति प्रगट हो, तब आत्मा चेतयिता है – ऐसा प्रतीति में आता है। समझ में आया ?

यह निश्चय से बात की। व्यवहार भाषा देखो। व्यवहार सद्भूतव्यवहार है, वह देखो। वह दस प्राण का असद्भूतव्यवहार था। यह आत्मा चेतन शक्तिवाला है। भेद हुआ न व्यवहार ? चेतनेवाला है। चेतयिता का व्यवहार से चित्शक्तियुक्त। चित्शक्तियुक्त, वह व्यवहार हो गया। वस्तु, जीव चेतनशक्तियुक्त, पहले कहा था कि जीव चेतनस्वरूप, जीव चेतनस्वरूप, यह निश्चय अभेद हो गया। यह भेद हुआ। जीव चेतनशक्तियुक्त, जीव एक हुआ और चेतनशक्तियुक्त, यह भेद हो गया, व्यवहार हो गया। समझ में आया ? यह सद्भूतव्यवहार है। क्योंकि अपनी पर्याय में भेद है। समझ में आया ? पर की पर्याय में नहीं। जैसे अशुद्ध प्राण कहा, वैसी यह चीज़ नहीं है। चेतनशक्तियुक्त। वह चेतनशक्तिरहित है। भगवान आत्मा चेतनशक्ति सम्पन्न है। चैतन्यशक्तिस्वरूप है, वह तो निश्चय हुआ। परन्तु भगवान आत्मा चैतन्यशक्ति अर्थात् गुणी-गुण युक्त है, भेद हो गया। सद्भूतव्यवहार हो गया। अरे ! यह व्यवहार अभी ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : यह प्रगट हो तब ख्याल आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब ख्याल आवे न ? तब हेय माना जाये न ? भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेद में आया तो यह चैतन्यशक्तियुक्त है, ऐसी दृष्टि हो तो पर्याय में सद्भूव्यवहार प्रगट हुआ। समझ में आया ? कि यह गुणी, गुणवाला है। गुणी रागवाला नहीं। भगवान आत्मा रागवाला नहीं, विकारवाला नहीं, कर्मवाला नहीं। चैतन्यशक्तियुक्त है। चैतन्यशक्तियुक्त, भेद हो गया। उसे यहाँ उसमें है, इसलिए सद्भूत कहते हैं और भेद हो गया, इसलिए व्यवहार, सद्भूत इसमें है, इसलिए और भेद पड़ा इसलिए व्यवहार (कहते हैं)। सद्भूतव्यवहारनय से चैतन्यशक्तियुक्त आत्मा है। ऐसा जानने में आता है, कहने में

आता है। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया?

चित्शक्तियुक्त आया न? उसमें जीव आया था कि निश्चय से चित्स्वरूप है। चित्स्वरूप, ऐसा आया। चित्स्वरूप है, वह तो निश्चय हो गया। चैतन्यशक्तियुक्त है तो व्यवहार हो गया। समझ में आया? यह तो सादी भाषा है। इसमें कोई ऐसा नहीं है। भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है। ज्ञानस्वरूप लेना, यह तो निश्चय हो गया। अभेद हो गया और चित्शक्तियुक्त है। द्रव्य—जीवद्रव्य, चित्शक्ति, गुणशक्तियुक्त है। चित्शक्तियुक्त है, सद्भूतव्यवहार हो गया। वह रागयुक्त है और कर्मसहित है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? यह चेतयिता की व्याख्या की। चेदा। पहले जीव की व्याख्या की, पश्चात् चेदा की व्याख्या की।

अब उपयोग की व्याख्या करते हैं। 'उपयोग' देखो, यह जीव ऐसा है, ऐसी व्याख्या करते हैं। यह जीव... जीव कहते हैं न वेदान्त आदि, अभेद है और जीव है और कूटस्थ है... ऐसा है नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। एक है, अभेद है, सर्वव्यापक है। वेदान्त की बात मिथ्या क्यों है, वह यहाँ सिद्ध करते हैं न? ऐसे मिथ्या कहे तो चले? ऐसा जीव है, उससे विरुद्ध कहे तो वह सब मिथ्या है। गुणवाला है, ऐसा कहे तो वह तो भेद हो गया, व्यवहार हो गया, ऐसा तो मानते नहीं। पर्याय को तो मानते नहीं, कूटस्थ मानते हैं। कूटस्थ माने तो कार्य क्या हुआ? कूटस्थ माने तो ऐसा जाना किसने? कूटस्थ में परिणमन तो है नहीं। तो परिणमन बिना 'यह शुद्ध है'—ऐसा किसने जाना? समझ में आया?

सब मिथ्या है, ऐसा जाने परन्तु यह सच्चा है और यह मिथ्या है, वह किस प्रकार से है? ऐसा ख्याल में तो आना चाहिए न? ऐसे मिथ्या... मिथ्या... कहा करे और हमारा मत सच्चा और तुम्हारा मत झूठा, परन्तु किस अपेक्षा से? भगवान आत्मा परन्तु उसके भान बिना भगवान किस प्रकार सच्चा हुआ? ऐई! मेरा भगवान सच्चा परन्तु यह जगे बिना भगवान सच्चा कहाँ से आया? ऐई! अपने में चित्शक्तियुक्त मैं आत्मा हूँ और चेतनगुण है, और गुणी द्रव्य है, ऐसी वस्तु है। अकेले गुणी कहना, द्रव्य कहना, द्रव्य कहना परन्तु द्रव्य का कोई स्वभाव है या नहीं? द्रव्य तो एक वस्तु हुई। स्वभाव बिना द्रव्य होगा? द्रव्य तो स्वभाववान हुआ, द्रव्य तो स्वभाववान। तो स्वभाववान का स्वभाव क्या? वेदान्त कहे कि स्वभाव को स्वभाववान ऐसा कहे क्या? नहीं, द्वैत हो गया। द्वैत हो गया, नहीं। समझ में

आया? ऐसा है। तू न माने, इसलिए चीज़ दूसरी हो जाती है? चैतन्यशक्तियुक्त है। परद्रव्यसहित नहीं, रागसहित नहीं, कर्मसहित नहीं। परन्तु चैतन्यशक्तिसहित है। समझ में आया?

अब उपयोग। तीसरा बोल चलता है। **निश्चय से अपृथग्भूत ऐसे चैतन्यपरिणाम-स्वरूप....** उपयोग द्वारा देखो। उपयोग को यहाँ परिणाम कहा है। चैतन्य अनुविधायी परिणाम उपयोगः, (यह) उपयोग का लक्षण है। चैतन्य अनुविधायी परिणाम उपयोगः चैतन्य को अनुसरकर होनेवाले परिणाम को उपयोग कहते हैं। यहाँ परिणाम पर्याय को कहते हैं। निश्चय से अपृथग्भूत भगवान आत्मा—जीव से भिन्न नहीं पृथग्भूत नहीं। भिन्न नहीं। ऐसा नीचे है, देखो।

निश्चयनय से चित्शक्ति को आत्मा के साथ अभेद है और व्यवहार से भेद है; इसलिए निश्चय से आत्मा चित्शक्तिस्वरूप है और व्यवहार से चित्शक्तिवान है। अब उपयोग। **अपृथग्भूत=अपृथक्; अभिन्न। (निश्चय से उपयोग आत्मा से अपृथक् है और व्यवहार से पृथक् है।)** आहाहा! व्यवहार यहाँ पृथक् हो गया। सद्भूतव्यवहार भी हो गया। आश्रय करनेयोग्य नहीं। गुणी और गुण, ऐसा भेद भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। आश्रय तो अकेले अभेद का आश्रय करना। समझ में आया?

'व्यवहारो अभूयत्थो' यह आया न? व्यवहार अभूतार्थ है। (समयसार) ११वीं गाथा। सद्भूतव्यवहार भी असत्यार्थ है। अभेद वस्तु है। गुण द्वारा, लक्षण द्वारा लक्ष्य, लक्षण द्वारा लक्ष्य, वह भी व्यवहार हो गया। समझ में आया? ज्ञान द्वारा द्रव्य, ऐसा भेद पड़ा, वह भी व्यवहार हो गया। वह अभूतार्थ है। 'भूयत्थोदेसिदो शुद्धो।' भगवान ज्ञानस्वरूप ज्ञायक का आश्रय करने से, अभेद का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? व्यवहार-ब्यवहार कहाँ गया? ज्ञान में जाननेयोग्य है। शक्तिरूप गुणरूप है, वह जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा! ऐई!

मुमुक्षु : नमूना ही कहीं नहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! सेम्पल कहते हैं, वह न? नमूना। वानगी अन्दर है, वानगी बाहर कहाँ से आयी? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि तुझे जीव को जानना हो तो उपयोगस्वरूप ऐसा जानो तो यथार्थ निश्चय। उपयोगवाला जीव कहो तो गुण-गुणीवाला भेद, वह व्यवहार हो गया। राग व्यवहार गुण-गुणी के भेद हो तो विकल्प उठता है। समझ में आया? आहाहा! वास्तव में अपृथग्भूत अर्थात् भिन्न नहीं ऐसे चैतन्यपरिणामस्वरूप उपयोग, चैतन्य के परिणामस्वरूप उपयोग। देखो! मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान, वह परिणाम है। चैतन्य के परिणाम हैं, गुण नहीं। उपयोग जो है, वह चैतन्यगुण का परिणमन पर्याय है। समझ में आया? केवलज्ञान भी चैतन्यगुण जो त्रिकाली है, उसका परिणाम है, पर्याय है। उस परिणाम को उपयोग कहते हैं। गजब बात!

भगवान आत्मा द्रव्य है, उसका चैतन्यगुण है। चैतन्यगुण के जो परिणाम है, उस परिणाम को उपयोग कहते हैं। वह परिणाम मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल। समझ में आया? अरे! मति अज्ञान, श्रुतअज्ञान, अवधि, वह भी चैतन्यपरिणाम है। और चार दर्शन, बारह जीव के परिणाम हैं। बारह उपयोग गुण का परिणमन है। गुण की पर्याय है। गुण नहीं। आहाहा! गजब बात! समझ में आया?

निश्चय से चैतन्यपरिणामस्वरूप उपयोग, जानने-देखने की पर्याय तो चैतन्यस्वरूप का परिणाम है। जानना-देखना राग से उत्पन्न होता है? निमित्त से उत्पन्न होता है? जहाँ चैतन्य भगवान है, उसे (अनुसरकर) परिणाम उत्पन्न होते हैं। चैतन्य को अनुसरकर परिणाम हुए। चैतन्य अनुविधायी परिणामः। द्रव्य चेतन—चैतन्यगुण और उसके परिणाम उपयोग। द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों आ गये। क्या कहते हैं? चेतनद्रव्य-चैतन्यगुण, चैतन्यगुण—चैतन्य को अनुसरकर हुए तो चैतन्यगुण का अनुसरण हो गया। चैतन्य अनुविधायी परिणाम उपयोगः। द्रव्य को अनुसरकर होनेवाले परिणाम को उपयोग कहते हैं। कोई निमित्त से और सुनने से उपयोग नहीं आता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

उसकी तो यहाँ बात भी कहाँ है ज्ञानावरणीय की? यहाँ तो चैतन्य को अनुसरकर होनेवाले परिणाम, वह स्वयं से होता है, ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम हो तो परिणाम होते हैं, ऐसा भी नहीं है। वह तो परचीज़ है। समझ में आया? यह सुनने से चैतन्य के परिणाम नहीं होते, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। वह तो परावलम्बी उपयोग है। आहाहा! अलिंगग्रहण के बीस

बोल में आ गया है, अलिंगग्रहण में। उपयोग है, उसे बाह्य ज्ञेय का अवलम्बन नहीं है। ज्ञेय के अवलम्बन से जो उपयोग है, वह उपयोग आत्मा का नहीं है। अलिंगग्रहण के बीस बोल आये। अलिंगग्रहण। यहाँ अभी चल गया है। समझ में आया?

सातवाँ बोल :- उपयोग, उपयोग उसे कहते हैं कि उस उपयोग को बाह्यज्ञेय का अवलम्बन नहीं है। बाह्य ज्ञेय के अवलम्बनवाले उपयोग को यथार्थ उपयोग नहीं कहते है। आहाहा! गजब बात भाई! अलिंगग्रहण। समझ में आया? बीस बोल में सातवाँ बोल है न? अलिंगग्रहण, अलिंगग्रहण में ऐसा है न? अभी ही चले थे बीस बोल। कि आत्मा इन्द्रियों से जानता है, ऐसा आत्मा नहीं है। लिंग है न? लिंग, अलिंगग्रहण। लिंग अर्थात् इन्द्रियों से जाने, ऐसा आत्मा है ही नहीं। उसे आत्मा कहते ही नहीं। अरे! यहाँ की बात है, सिद्ध तो सिद्ध में रहे। ऐई! उसमें लिखा था, कल आया था। समयसार में ऐसा कहा था। समयसार में सिद्ध की बात है। अरे भगवान! उमास्वामी से समयसार विरुद्ध होता है। अरे! विरुद्ध नहीं, सुन तो सही! आचार्यों के कथन पूर्वापर विरोधरहित ही हैं। कहीं भी दिगम्बर सन्तों के कोई भी शास्त्र हो, पूर्वापर विरोध है ही नहीं। यथार्थ कथन। कथन की पद्धति में अन्तर हो परन्तु उस (वस्तु के) भाव में अन्तर नहीं है। सनातन सत्य सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

कहते हैं, इन्द्रियों से जानने में आवे, वह उपयोग नहीं। आत्मा इन्द्रियों से जानने में आता भी नहीं। और आत्मा... समझ में आया? इन्द्रियों से जानने में आता नहीं, ऐसा कहते हैं। अपने उपयोग से जानने में आता है। आहाहा! वहाँ लिया न ३१वीं गाथा में। समयसार 'जो इन्दिय जीणित्ता' समयसार ३१ गाथा। **'जो इन्दिय जीणित्ता णाण सहावं अधियं मुणदि आदं'** जो कोई द्रव्य इन्द्रिय, भावेन्द्रिय—खण्ड-खण्ड और इन्द्रिय के विषय, सबको इन्द्रिय कहा है। उसे जीणित्ता—लक्ष्य छोड़कर **'णाण सहावं अधियं'** अपने ज्ञान स्वरूप उससे भिन्न है। खण्ड ज्ञान, जड़ इन्द्रिय और विषय। भगवान की वाणी भी विषय है। आहाहा! भगवान की वाणी इन्द्रिय में जाती है। क्या कहते हैं? भगवान की वाणी है न, वाणी दिव्यध्वनि, वह भी इन्द्रिय में जाती है। और यह जड़इन्द्रिय-इन्द्रिय और वे इन्द्रिय-विषय इन्द्रिय, भावेन्द्रिय—खण्ड-खण्ड इन्द्रिय-इन्द्रिय इन तीन से भिन्न आत्मा है। ज्ञानस्वभाव इन्द्रिय उसका नाम जीणित्ता कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अपना आत्मा शुद्ध उपयोग से जानने में आता है। अनुमान का विषय आत्मा नहीं है। अनुमान का विषय नहीं। अनुमान से जानने में आता है दूसरे के द्वारा, ऐसा भी आत्मा नहीं है। अपना आत्मा अनुमान करनेवाला है, वह भी आत्मा नहीं है। आहाहा! गजब बात! अलिंगग्रहण के बोल अभी चल गये हैं। फिर सातवें बोल में लिया। समझ में आया?

निरालम्बी उपयोग का आलम्बन नहीं। तीसरे बोल में अनुमान से जानने में आवे, ऐसा आत्मा नहीं। चौथे बोल में दूसरों के द्वारा अनुमान से जानने में आता नहीं। पाँचवें में अपना आत्मा अनुमान करनेवाला नहीं। छठवें में अपना आत्मा अपने से ही जानने में आवे, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। सातवें में वह आता है। उपयोग परज्ञेय का अवलम्बनवाला नहीं। अपना उपयोग अपने से प्रगट होता है, उसे उपयोग कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अपृथग्भूत ऐसे चैतन्यपरिणामस्वरूप.... देखो, पर्याय ली है। केवलज्ञान भी चैतन्यपरिणाम है, गुण नहीं। अरे! सिद्ध की पर्याय भी पर्याय है, गुण नहीं। सिद्ध में आठ गुण प्रगट होते हैं न? आठ कर्म का नाश और आठ गुण प्रगट होते हैं। गुण का अर्थ पर्याय। गुण कहाँ प्रगट होते हैं? गुण तो त्रिकाली विद्यमान है। पर्याय में प्रगट हो, उसे गुण कहते हैं। पर्याय प्रगट न हो, उसे अवगुण कहते हैं। है तो वह भी पर्याय। उसे अवगुण कहते हैं और पर्याय प्रगट हो, उसे गुण कहते हैं। गुण प्रगट होते हैं? गुण तो त्रिकाली है। द्रव्य और गुण तो कूटस्थ ध्रुव त्रिकाली विद्यमान है। समझ में आया?

पर्याय का-चैतन्य का परिणमन है, उसे उपयोग कहते हैं। वस्तु की स्थिति ऐसी है, उसकी तो खबर नहीं। समझ में आया? नहीं, केवलज्ञान वज्रवृषभनाराचसंहनन निमित्त हो तो होता है। मनुष्यदेह हो तो केवलज्ञान होता है। अरे, सुन न! परद्रव्य का ज्ञान कराने की बात है। यहाँ तो चैतन्य के परिणाम, वह उपयोग – ऐसा कहा है। चैतन्य के परिणाम द्रव्य को अनुसरकर हों, उसे उपयोग कहते हैं। चैतन्य को अनुसरकर होता है, संहनन को अनुसरकर केवलज्ञान होता है? गजब बात, भाई! निमित्त छोड़ना भारी कठिन!

(यह प्रवचन अधूरा है।)

धारावाही प्रवचन नं. ३१ (प्रवचन नं. ३०), गाथा-२७
दिनांक - १४-१२-१९६९, मागसर शुक्ल ६, रविवार

यह पंचास्तिकाय २७ गाथा। प्रभुत्व का अधिकार चलता है। क्या कहते हैं? निश्चय से, वास्तव में आत्मा भावकर्मरूपी जो पुण्य-पाप के जो विकल्प-विकार हैं, उन्हें करने में समर्थ है और भावकर्मरूप आस्रव करने में भी समर्थ है। भावकर्म जो पुण्य-पाप के विकल्प हैं, उन्हें करने में समर्थ है। ईश्वर है - प्रभु है। विकारी भूल करने में आत्मा प्रभु है। उसमें समर्थ है। 'ईसत्वात' है न? संस्कृत 'स्वयमीशत्वात् प्रभुः' स्वयं समर्थ है। कर्म है, इसलिए वहाँ विकार होता है, ऐसा नहीं है। है? समझ में आया? आत्मा आनन्द, ज्ञानानन्द और सहजानन्दस्वरूप होने पर भी, मिथ्यात्व का, राग-द्वेष का विकार करने में स्वयं ईसत्व अर्थात् समर्थ है। इसलिए उसे प्रभु कहा जाता है। उसके विकारी परिणाम का सामर्थ्य करने में समर्थ स्वयं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसने कहा? निमित्त का कहेंगे। निमित्त का व्यवहार से कर्ता है, ऐसा कहेंगे। निमित्त अर्थात् स्वयं चीज़ तो उसमें स्वयं में होती है। परन्तु यहाँ निमित्तपना है, इसलिए व्यवहार से कर्ता कहेंगे। यह असद्भूतव्यवहारनय से। बात जरा ऐसी है। समझ में आया? मिथ्याभ्रान्ति करे कि पुण्य में धर्म है, पुण्य-पाप के परिणाम में सुख है, परवस्तु में सुख है, ऐसा मिथ्यात्वभाव करे, परन्तु वह मिथ्यात्वभाव करने में समर्थ ईसत्व है। उसमें ईश्वरपना है। ऐई! कनुभाई! वह स्वयं है चिदानन्दस्वरूप, ज्ञानानन्द, सहजानन्द, ऐसा होने पर भी निगोद में भी हो, एकेन्द्रिय में हो, तो भी कहते हैं कि वह विकार करने में समर्थ जीव स्वयं है। उसके समर्थ के लिये दूसरे का सहारा लेना पड़े, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

यह तो तुम्हारे बड़ा विवाद आवे। कर्म के कारण होता है, कर्म के कारण होता है, हें? (संवत्) २००६ के वर्ष में बड़ा विवाद था। भगवान ऐसा कहते हैं—वहाँ २००६ के वर्ष में पालीताणा में विवाद था। रामविजय। तुम कहते हो कि विकार से आत्मा भटकता है। भगवान कहते हैं कि कर्म के कारण भटकता है। करो चर्चा। तुम्हारे साथ भी चर्चा हुई

थी। यह उनका शिष्य है। पूर्वनय की, पूर्वनय की कही न ? यह तो रामविजय के शिष्य थे। रामविजय वहाँ थे, तब विवाद हुआ था। तुम कहते हो, विकार आत्मा करे, वह स्वतन्त्र है, उसके कारण से, विकार के कारण से जीव भटकता है। भगवान त्रिलोकनाथ उपकारी ऐसा कहते हैं कि कर्म के कारण भटकता है। भटकता है समझते हो ? चारगति में भटकता है। ऐसा बिल्कुल है नहीं।

अपने अपराध के भाव को करने में समर्थ जीव है। लो, यह बात तो मैंने (संवत्) १९७१ में की थी। १९७१। भगवती (सूत्र) पढ़ता था, भगवती। १९७१, ५४ वर्ष हुए। भगवती (सूत्र) के पहले शतक का तीसरा उदेश पढ़ता था, उसमें आया था। विकार करने में भी समर्थ है और विकार टालने में भी जीव समर्थ है। उसके लिये दूसरे की आवश्यकता नहीं है। समझ में आया ? बाहर खलबलाहट तो हो गया। १९७१, ५४ वर्ष हुए। भगवतीसूत्र में से लिया था। विकार करने में जीव समर्थ है। स्वयं के कारण, दूसरे की अपेक्षा बिना तथा विकार टालने को, उपशम करने, पहला बोल कहा था। विकार का उपशम करना या टालना, उसमें जीव स्वयं समर्थ है। पर के कारण उसमें है नहीं। कहो, समझ में आया ? जैन में कर्म, कर्म अन्दर घुस गया है। कर्म के कारण आत्मा में विकार, कर्म के कारण संसार, कर्म के कारण उदयभाव और कर्म के कारण भटकता है। ऐसा नहीं है। इसलिए यह अधिकार लिया है।

निश्चय अर्थात् वास्तव में। निश्चय है न ? '**निश्चयेन भावकर्मणा व्यवहारेण द्रव्यकर्मणां**' संस्कृत है। ऐसा ही अर्थ नीचे है। खरेखर यथार्थरूप से, वास्तविक दृष्टि से मिथ्यात्वभाव और पुण्य-पाप का भाव, वह विकारी परिणाम है, जो दु:खरूप है। उसको करने में जीव स्वयं समर्थ है। उसे कोई पर कराता है, इसलिए करता है – ऐसा नहीं है। तो परिणाम जब विकार के करने में समर्थ है तो उस द्रव्य का कर्ता कोई दूसरा प्रभु हो, ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया ? यह पहले कहते थे। विकारी परिणाम करने में स्वयं समर्थ है। तो उस परिणाम का प्रभु स्वयं है। तो उसका प्रभु दूसरा कौन हो ? समझ में आया ?

वस्तु द्रव्य है, पदार्थ है, अस्तिवाला तत्त्व है। वह स्वयं अपने स्वतन्त्र परिणाम करने

को समर्थ प्रभु है तो उसकी द्रव्य और गुण की शक्ति को कोई दूसरा करे, यह तीन काल में नहीं होता। समझ में आया ? उसका कोई कर्ता-फर्ता है नहीं। समझ में आया ? निश्चय से भावकार्यों का कर्ता आस्रव का स्वयं जीव है। उन भावकर्मों का बन्ध करनेवाला भी जीव स्वयं है। आस्रव अर्थात् परिणाम का होना, बन्ध अर्थात् कि आत्मा का वहाँ अटक जाना, रुक जाना। पुण्य-पाप के विकल्प में, मिथ्यात्व में अटक जाना, ऐसा जो भावबन्ध, वह भावबन्ध करने में भी जीव समर्थ है। पण्डितजी ! यह तो सादी भाषा है। थोड़ी-थोड़ी गुजराती समझ में आती है ? समझ में आया ?

यह द्रव्यबन्ध की बात नहीं है। भावकर्म का बन्ध करने में जीव समर्थ है। विकारी परिणाम का बन्ध करने में जीव समर्थ है। आहाहा ! देखो, उपादान निश्चय। निमित्त हो, उससे किसने इनकार किया है। परन्तु निमित्त स्वयं यहाँ करने में समर्थ है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? दोष अपने आप करे ? कर्म बिना विकार हो ? कर्म बिना विकार हो तो सिद्ध को होना चाहिए। ऐसा और प्रश्न करे। हें ! स्वभाव हो जायेगा। अरे ! यहाँ तो उसकी पर्याय का 'स्वस्य भवनम् स्वभाव: ' विकार की पर्याय 'स्वस्य भवनम्' स्वयं से होती है। इसलिए उसका स्वामी और उसका प्रभु स्वयं है। समझ में आया ? कर्म का जरा भी एक भी प्रतिशत देनेयोग्य नहीं है। निमित्त है, ऐसा कहे।

यहाँ तो दूसरी बात कहेंगे। द्रव्यकर्म का कर्ता व्यवहार से प्रभु है, ऐसा कहेंगे। कर्म, राग का कर्ता व्यवहार से, ऐसा भाई ! यहाँ नहीं लिया है। क्या कहा, समझ में आया ? निश्चय से राग का कर्ता जीव विकार का, परन्तु व्यवहार से कर्ता कर्म है, यह यहाँ नहीं लेना। यहाँ तो निश्चय से विकार का कर्ता स्वयं उसका प्रभु, व्यवहार से कर्म जो आते हैं, उनका निमित्तरूप से है, इसलिए व्यवहार से उनका कर्ता कहा जाता है। समझ में आया ? देखो, शैली देखो यह। निश्चय से विकारी भावकर्म का कर्ता और कर्म व्यवहार से कर्ता, ऐसा भी यहाँ तो नहीं है। दूसरी जगह लेना हो तो ऐसा लिया जा सकता है, निमित्तपना है न, निमित्त इसलिए। निश्चय से तो स्वयं ही करता है, तब निमित्त कर्म है, इसलिए व्यवहार से उसका कर्ता कहलाता है। ऐसा यहाँ नहीं लेना है।

यहाँ तो इतना है कि निश्चिय से विकार, मिथ्यात्व, अज्ञान और राग-द्वेष का कर्ता

प्रभु आत्मा और वह आत्मा कर्म की-जड़ की जो पर्याय आवे, उसका व्यवहार से कर्ता। क्योंकि निमित्त है, इसलिए व्यवहार से कर्ता कहने में आता है। समझ में आया? विकारी परिणाम... भगवान अपनी चीज़ तो अबन्धस्वरूप है। परन्तु पुण्य और पाप के विकल्प जो वृत्ति दुःखरूप राग, उसमें अटकना, इसके लिये जीव स्वयं समर्थ है। उसके भावबन्ध में किसी की सहायता से अटकता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? अब इस भावकर्म का संवर करनेवाला प्रभु स्वयं है। पुण्य-पाप और मिथ्यात्वभाव को रोकने में आत्मा समर्थ प्रभु है। समझ में आया?

भगवान आनन्दस्वरूप है, ऐसी दृष्टि करके मिथ्यात्व को रोकनेरूप संवर का करनेवाला आत्मा स्वयं है। समझ में आया? संवर है भावकर्म—भावकार्य, परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि भावकर्म का संवर करनेवाला, ऐसा। पुण्य-पाप के विकल्पों को रोकनेवाला। रोकनेवाला रोकता है, वह भी स्वयं और रोकनेवाला भी स्वयं। पोते समझते हो न? मैं, पोते यह। समझ में आया?

विकारी परिणाम को रोकनेवाला भी आत्मा है। और विकारी कर्म करनेवाला भी समर्थ प्रभु आत्मा है, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! जैन में तो जहाँ हो वहाँ यह विपरीतता। कर्म हो तो विकार होता है। बापू! और जितने अंश में कर्म टले, उतने अंश में धर्म होता है। यह बात एकदम झूठी है, यह बात यहाँ सिद्ध करते हैं। हें? समझ में आया? भावकर्म का संवर करने में स्वयं समर्थ प्रभु है। मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेषभाव का नाश करने में, अटकाने में, उत्पत्ति करने में, रोकने में भगवान आत्मा समर्थ है। समझ में आया? है या नहीं इसमें? यह तो तुम्हारे घर की बात है। वापस पहली।

श्वेताम्बर में तो कर्म... कर्म। दिगम्बर में भी कर्म... कर्म घुस गया था। स्थानकवासी भी कहें कि कर्म के कारण होता है, कर्म के कारण होता है, कर्म आत्मा को भटकाता है। यहाँ तो भगवान इनकार करते हैं। तुझे खबर नहीं। विपरीत कहाँ तूने ली? यह भटकने का भाव, मिथ्यात्व आदि का करने में तू प्रभु समर्थ है। तेरा कोई दूसरा प्रभु नहीं है। पर्याय के सामर्थ्यवाला द्रव्य है तो उस द्रव्य का कोई प्रभु नहीं हो सकता। समझ में आया?

इसी प्रकार संवर। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना अथवा मिथ्यात्व, अव्रत आदि परिणाम को रोकने में भी प्रभु स्वयं समर्थ है। अपना स्वभाव शुद्ध आनन्द है, उसके

ऊपर दृष्टि करने से, उसमें स्थिर होने से भावकर्म का संवर हो जाता है। वह भावकर्म का संवर करने में भी आत्मा प्रभु ईश्वर है। कहो, समझ में आया?

इसी प्रकार निर्जरा। भावकर्मों को टालने, निर्जरा करने में भी जीव समर्थ है। शुभ-अशुभभाव मैल, उसे टालकर शुद्धि की वृद्धि करने में भी आत्मा समर्थ है। संवर में शुद्धि प्राप्त करने में, भावकर्म का अभाव करके संवर करने की ताकतवाला है, वह शुद्धि और निर्जरा में शुद्धि की वृद्धि। अशुद्धता का नाश करने में जीव समर्थ है। अशुद्धता का नाश होने पर शुद्धि की वृद्धि हो, ऐसी निर्जरा करनेवाला जीव समर्थ है। समझ में आया?

लो, यह तो नव तत्त्व की बात चलती है। हैं? जीवतत्त्व आस्रव करने में भी समर्थ है, जीवतत्त्व बन्ध करने में भी समर्थ है और जीवतत्त्व संवर करने में भी समर्थ है। ऐसा जीव है, ऐसा जीव न माने और दूसरे प्रकार से माने तो वह जीवतत्त्व को नहीं मानता। समझ में आया? छह काय में पहला जीव को लिया है न? जीवोति हवई चेदा, जीवोति हवई प्रभु। ऐसा लेना। जीवोति हवई चेदा, जीवोति हवई हुओगम विशेषिदो, जीवोति हवई प्रभु! जीव प्रभु! है, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य महाराज का वचन है। जीव होता है प्रभु। किसमें?—कि विकार में, बन्ध करने में, बन्ध अर्थात् अटकने में और रोकने में-संवर करने में भी आत्मा जीवो हवई प्रभु! जीव स्वयं प्रभु है। आहाहा! समझ में आया? अपने पुरुषार्थ से संवर हो सकता है, ऐसा कहते हैं। बाहर से ऐसे सेवा के प्रत्याख्यान किये और सेवा हो गयी, ऐसा संवर-बंवर नहीं है। भावकर्म का संवर करने में समर्थ है। संवर, वह कार्य है परन्तु यहाँ भावकर्म का अभाव करने में जीव समर्थ है।

कर्म का अभाव हो तो यहाँ भावकर्म का अभाव हो, ऐसा नहीं है। कहो, वजुभाई! तत्त्व का स्वरूप ही ऐसा है। जीव का स्वरूप ही ऐसा है, ऐसा कहते हैं। ऐसा जीव न माने और उस जीव को दूसरे जीव का कोई कर्ता माने और जीव की पर्याय का दूसरा कोई प्रभु होकर करावे, ऐसा माने तो उस जीव को उसने जाना नहीं। समझ में आया या नहीं? जीव-जीवो हवई, निश्चय से जीवो हवई। भावकर्म का संवर करने में जीवो हवई, जीव समर्थ प्रभु है। समझ में आया? मिथ्या अभिप्राय टालकर संवर करने में आत्मा स्वयं ईश्वर अर्थात् प्रभु है। उसे अभिप्राय टालने के लिये कर्म टले तो संवर हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

इस प्रकार निर्जरा करने में समर्थ है। अशुद्धता का नाश करने में जीव समर्थ है। भावकर्मरूपी पुण्य-पाप के विकल्पों की वासना मिथ्यात्व से लेकर, उसका नाश करके अशुद्धता का नाश करके शुद्धता करने में जीव समर्थ है। उसकी पर्याय का वह समर्थ होगा या कोई होगा, ऐसा सिद्ध करना है। जीवद्रव्य है। आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, ये पाँच पर्याय है। आस्रव में पुण्य-पाप के भाव आ गये। कि आत्मा शुभ, दया-दान, व्रत, भक्ति के परिणाम करने में भी जीव समर्थ है। यह पुण्यास्रव है। कर्म का उदय आवे, कषाय की मन्दता (हो) तो यहाँ शुभपरिणाम हों, यह बात नहीं है। समझ में आया?

दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि के शुभभाव, वह शुभभावरूपी पुण्यास्रव करने में जीव समर्थ है। और हिंसा, झूठ, चोरी, मिथ्यात्व, अज्ञान आदि पापरूप परिणाम के आस्रव को करने में जीव स्वयं समर्थ है। निश्चय से स्वयं ईश्वर है। कहो, यह तो समझ में आये ऐसी बात है। यह तो सादी भाषा है। वह कोई ईश्वर कोई दूसरा है और कराता है, (ऐसा नहीं है)। कर्म तेरा ईश्वर है और तुझे कराता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! उसमें आता है या नहीं? 'कर्म बेचारे कौन भूल मेरी अधिकाई।' चन्द्रप्रभ की स्तुति में, भगवान की स्तुति में आता है। 'कर्म बेचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पाई।' अग्नि के ऊपर घनघात पड़ते हैं, घनघात पड़ते हैं, उस अग्नि ने उस लोहे का संग किया तो पड़ते हैं। लोहे का संग न करे तो अग्नि पर घन नहीं पड़ते। घन-प्रहार। इसी प्रकार भगवान आत्मा कर्म के निमित्त का संग करके पुण्य और पाप और मिथ्यात्व के अज्ञानभाव को उत्पन्न करता है; इसलिए उसे घन पड़ते हैं - चार गति के दुःखों में भटकना पड़ता है। समझ में आया?

निर्जरा। भावकर्म की निर्जरा करने में वह ईश्वर है। यहाँ कर्म की निर्जरा करने की बात नहीं है। कर्म निर्जरा में व्यवहार आयेगा। क्योंकि कर्म तो उसके कारण से टलते हैं, उसमें निमित्तपना है, इसलिए व्यवहार आयेगा। उपादानपना स्वयं का है अशुद्धता को टालने का, यह निश्चय में आयेगा। समझ में आया? निर्जरा अर्थात् भावकर्म की अशुद्धता टलना। राग और द्वेष, शुभ और अशुभभाव के असंख्य प्रकार हैं। उसकी अशुद्धता टलने में-निर्जरा करने में जीव समर्थ है। जीवद्रव्य के सामर्थ्य के कारण वह अशुद्धता टलती है।

कहो, समझ में आया ? जैन में तो कर्म टले तो हो, ऐसी बातें चलती हैं न ? हें ? जैन का खोटा ? जैन में ऐसा है ही नहीं। यह किसकी बात चलती है ? यह जैन की तो बात चलती है। समझ में आया ? जैन में माने, वह खोटा है, जैन में खोटा नहीं। समझ में आया ?

यहाँ तो जीतनेवाला। जैन शब्द में क्या पड़ा है ? जीते वह जैन। कर्म टले तो जैन, ऐसा इसमें है ? अपने पुरुषार्थ द्वारा विकार को जीते या टाले, वह जैन है। सर्वथा टाले वह मुक्ति। वह तो जैन शब्द में ही अपने पुरुषार्थ की अन्दर गति पड़ी है। समझ में आया ? कहते हैं, भावकर्म की निर्जरा करने में '**स्वयं ईश**' स्वयं समर्थ। स्वयं समर्थ, ऐसा। दो शब्द पड़े हैं न, भाई ! '**स्वयं ईश**' स्वयं स्वतः ईश्वर है। अशुद्धता टालने में, शुद्धता का आश्रय करके-स्वयं आप ईश्वर है। समझ में आया ? यह अभी सम्प्रदाय में बहुत चलता है तीनों में, कर्म के कारण ऐसा होता है और कर्म के कारण ऐसा होता है और निध्धत कर्म हो तो आत्मा को ऐसा करना पड़े न, भोगावली कर्म हो तो भोगना पड़े न ! भोगावली कर्म तो और जड़ हुआ, जड़ में कहाँ आत्मा भोगता था ? समझ में आया ? उसमें उस काल में राग-द्वेष को भोगता है, यह भी आयेगा, यह भोक्ता में आयेगा। अभी तो प्रभुत्व सिद्ध करना है न ? समझ में आया ? आहाहा ! निर्जरा करने में भी भगवान 'स्वयं ईशत्व' है। ऐसी अभी जिसे रुचि भी नहीं, उसे सम्यग्दर्शन स्वभाव के आश्रय से हो, यह तीन काल में भी नहीं होता। ऐसी तत्त्व की खबर न पड़े और तत्त्व में प्रत्येक में विपरीतता आवे। विपरीत अभिनिवेष। उसे विपरीत अभिनिवेष टालने का उपाय आत्मा स्वयं करे तो होता है। समझ में आया ?

दर्शनमोह का उदय, अनुदय हो वहाँ समकित हो जाये, यह सब निमित्त के कथन हैं। अशुद्धता को टालने के लिये भगवान स्वयं समर्थ है। समझ में आया ? स्वयं अपने आनन्द स्वरूप में एकाग्र होने पर अशुद्धता की उत्पत्ति नहीं होती और अशुद्धता का नाश होता है, उसमें समर्थ आत्मा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! स्वयं भगवान आनन्दमूर्ति है। अतीन्द्रिय आनन्द रस आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द में आरूढ़ होना, वह स्वयं पुरुषार्थ से होता है। अतीन्द्रिय आनन्द में आरूढ़ होना, वह स्वयं पुरुषार्थ से होता है और इसलिए अशुद्धतारूपी दुःख का टलना उसके सामर्थ्य का धनी भी आत्मा है। आहाहा ! समझ में आया ?

और भावकर्म का मोक्ष करने में स्वयं समर्थ है, तीन और पाँचों पर्याय में भावकर्म

को टालने में सर्वथा (समर्थ है)। अशुद्धता और उदयभाव को सर्वथा टालकर मोक्ष करने में भी जीव समर्थ है। कहो, समझ में आया ? कितना स्पष्ट है ! 'जीवो हवई प्रभु' लो, यह प्रभु हुआ। यह प्रभु स्वयं दोनों में, विकार करने में और विकार टालने में आत्मा प्रभु है। वह पर का प्रभु नहीं और पर के कारण अपने में, यह काम होता है, ऐसा नहीं।

उसमें आता है न, भाई ! उपादान को काम करना हो तो निमित्त को ताकना पड़ता है। क्या कहते हैं ? मुँह ताकना पड़े। झूठी बात है। उपादान को अपने में काम करना हो तो निमित्त से मुँह ताकना पड़े। कर्म हटे तो कर्म हटे तो हो। ऐसा है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। अरे यह तो उसकी चीज़ है, वह दूसरी चीज़ है। उसमें तो आत्मा निमित्त है। यह कहेंगे अभी, उसका टालने में आत्मा निमित्त है, व्यवहार है। अपने काल में निश्चय और यथार्थ है। समझ में आया ?

पाँच पर्याय हो गयी। पाँच पर्याय, नव तत्त्व में है। जीवद्रव्य है, अजीवद्रव्य है। दोनों। और पश्चात् पाँच, पाँच में आस्त्रव, पुण्य और पाप, यह नौ हो गये। भगवान जीवद्रव्य है, कर्म आदि अजीवद्रव्य है, दो द्रव्य हो गये। अब उसमें पुण्य और पाप आस्त्रव है, उसे करने में जीव समर्थ है। छहों पर्याय की, पर्याय करने में जीव समर्थ है। और बन्ध का भाव करने में जीव समर्थ है। संवर, निर्जरा, मोक्ष की पर्याय करने में जीव समर्थ है। यह पाँचों पर्याय की शुद्धता-अशुद्धता करने में जीव समर्थ है। आहाहा ! समझ में आया ?

अब कहते हैं, उस काल में जीव जब अपने भावकर्म का अभाव करे या भावकर्म का कर्ता हो, उस काल में असद्भूतव्यवहारनय से, दूखो झूठी नय से द्रव्यकर्म का आस्त्रव। राग को किया और रजकण आये, वे रजकण आये उसके उपादान से निश्चय से, उनकी पर्याय होने के काल में वे आये हैं। उसमें राग का निमित्त है, इसलिए व्यवहार से उस द्रव्यकर्म का असद्भूत-झूठे नय से द्रव्यकर्म के आने का कर्ता कहा जाता है। समझ में आया ?

बाकी तो वे रजकण द्रव्यकर्मरूपी पर्याय होने के योग्यतावाले रजकण वहाँ द्रव्यास्त्रवरूप से आते हैं। वह उपादान और निश्चय। उसमें जीव के विकारी परिणाम निमित्त कहे जाते हैं। इसलिए कहते हैं कि निमित्त से अर्थात् व्यवहार से असद्भूतव्यवहारनय

से द्रव्यकर्म के आने में जीव निमित्त है, इसलिए असद्भूतव्यवहारनय से, झूठे नय से पर का कर्ता कहा जाता है। अरे! जो है नहीं, उसे कहना, वह व्यवहार है न? समझ में आया?

व्यवहारनय से, असद्भूतनय से द्रव्यकर्म का आस्रव, द्रव्यकर्म का रुकना, उसका निमित्तपना जीव का हुआ, इसलिए व्यवहार से उसका कर्ता कहा जाता है। व्यवहार कहो या निमित्त कहो, व्यवहार कहो या उपचार कहो, यथार्थ कहो या निश्चय कहो, जैसे होता हो वैसे जानना, इसका नाम निश्चय। समझ में आया? स्वयं है।

द्रव्यकर्म का आस्रव, द्रव्यकर्म का बन्ध। द्रव्यकर्म के रजकण हैं, उनका कर्मरूप होना, वह तो उनका निश्चय कर्तव्य है। कर्म की अवस्थारूप से परिणमना, वह तो परमाणु का स्वयं सामर्थ्य है, वह निश्चय से। परन्तु अज्ञान और राग-द्वेष उसे निमित्त है, इसलिए व्यवहार से उसे करने में ईश्वर है, ऐसा कहा जाता है। वह तो व्यवहार से कहा है। समझ में आया? व्यवहार से कारण कहा। वह कारण, ऐसा है नहीं, उसे कहने का नाम व्यवहार है। आहाहा! मोक्षमार्ग में आया है न? एक द्रव्य के दूसरे द्रव्य को कारण-कार्य मिलाकर व्यवहारनय बात करता है, उस प्रकार माने तो मिथ्यात्व है। यह व्यवहारनय ऐसा कथन करता है। असद्भूत कहा न? समझ में आया? आहाहा! है नहीं। वास्तव में तो एक ही कारण है। दो कारण का तो निरूपण है। क्या कहा?

मोक्षमार्ग दो नहीं है। मोक्षमार्ग एक है। आत्मा के स्वभाव का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का मोक्षमार्ग एक ही है। उसका निरूपण दो प्रकार से है, कथन दो प्रकार से है। एक उपादान, उसके साथ राग की मन्दता का विकल्प हो, उसे व्यवहार समकित का आरोप, शास्त्र के ज्ञान का विकल्प हो, उसे व्यवहार ज्ञान का आरोप, राग की मन्दता के पंच महाव्रत के परिणाम को व्यवहारचारित्र का आरोप। वह है नहीं—चारित्र नहीं, ज्ञान नहीं, दर्शन नहीं। आहाहा! तथापि ऐसा निमित्त देखकर उसे कहना, ऐसा कथन दो प्रकार से है। मार्ग निश्चय और व्यवहार दो प्रकार से है, ऐसा है नहीं। टोडरमलजी ने स्पष्टीकरण किया है। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन दो प्रकार से नहीं है, सम्यग्दर्शन का कथन दो प्रकार से है। इसी प्रकार इस कारण का कथन दो प्रकार से है। कारण दो नहीं हैं। कारण एक ही है। आहाहा! समझ

में आया ? उन्होंने लिखा है न, सर्वत्र ज्ञातव्यम। व्यवहार को सिद्ध करना है, निमित्त को सिद्ध करना है। इतना। उपचारिक वस्तु दूसरी है, यह सिद्ध करने के लिये है। दो कारण का एक कार्य। जो अष्टसहस्त्री आदि में आता है, वह तो निमित्त दूसरी चीज़ है, उतना साबित करने के लिये वह कथन है। परन्तु उससे पर में होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! निमित्त की पर्याय को करे। उपादान अपने स्वकाल की पर्याय उस समय में दोनों की पर्याय स्वतन्त्र है। निमित्त भी उसका तो उपादान है न? निमित्त भी उसका (स्वयं का) तो उपादान है न? उसके उपादान की पर्याय वह करे, इसके उपादान की पर्याय यह करे। यह निश्चय है, यथार्थ है। और दूसरे का निमित्तपने होकर करे, यह कहना उपचार है, व्यवहार है। समझ में आया ? निश्चय और व्यवहार दोनों के झगड़े।

व्यवहार से द्रव्यकर्म का आस्रव आना, अटकना, संवर होना। संवर अर्थात् रजकण अटक जाना। वे तो उनके कारण से अटकते हैं, परन्तु निमित्तपना अर्थात् यहाँ संवर हुआ और वहाँ अटक गया, इसलिए उसे व्यवहार से संवर का कर्ता, कर्म के नहीं आने का कर्ता कहा है। निर्जरा का कर्ता, कर्म झरते हैं वे तो कर्म के कारण से झरते हैं। उनकी स्वयं की पर्याय व्यय होकर अकर्म होती है, वह निश्चय है। आत्मा उसमें स्वयं शुद्धभाव करके, निर्जरा की, उसमें निमित्त हुआ, इसलिए उसे व्यवहार से कर्ता कहा। इसी प्रकार द्रव्यकर्म का मोक्ष करने में व्यवहारनय से असद्भूतनय से स्वयं ईश होने से प्रभु है। कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु : निमित्त में स्वयं को लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं को नहीं ले तो दूसरे किसे ले। यह तो वह नहीं लिया। पहले कहा न ? यह पहले कह दिया। विकार करने में, संवर करने में जीव समर्थ है। अब विकार में निमित्त कर्म है, ऐसा यहाँ नहीं लिया। यह तो पहले कहा था। व्यवहार कर्म है, इसलिए विकार है, ऐसा नहीं लिया, परन्तु यहाँ विकार करने में जीव समर्थ है, वह निश्चय है और द्रव्यकर्म के आने में निमित्त है, इसलिए उसका व्यवहार कर्ता कहा जाता है, ऐसा (है)। जीव उसका व्यवहार से कर्ता है। व्यवहार कर्म राग का कर्ता है, यह बात यहाँ है नहीं। समझ में आया ?

यह तो पहले बीच में कहा था। यहाँ तो जीव की शैली सिद्ध करनी है न? जीव स्वयं क्या करता है? जीव की निश्चय से स्थिति कैसी है और वह व्यवहाररूप पर को निमित्त कैसे होता है?—कि इस प्रकार (होता है)। अपने विकारी परिणाम को करता है। उसमें ईश्वर / समर्थ है, यह निश्चय है और उपादान यथार्थ है। और द्रव्यकर्म उस काल में आते हैं, उनका यह निमित्त है, इसलिए व्यवहार से कहा है। इसलिए द्रव्यकर्म आते हैं, वे उसकी पर्याय के कारण से आते हैं। वह उसका उपादान है। समझ में आया?

उपादान और निमित्त का बड़ा झगड़ा। निश्चय और व्यवहार और क्रमबद्ध - इन पाँच के झगड़े। क्रमबद्ध है, तो कहे नहीं, क्रम और अक्रम दो होते हैं। अरे! सुन न! पर्याय क्रमवर्ती है। प्रत्येक द्रव्य की पर्याय क्रमवर्ती कहो या क्रम से होती है कहो या क्रमबद्ध कहो। एक समय में जो पर्याय है, वह दूसरे समय में दूसरी वह क्रमसर आनेवाली हो, वह आती है। प्रत्येक द्रव्य के जो गुण हैं, वे एक साथ अक्रम हैं। पर्याय उससे विरुद्ध है। ऐसे क्रम ऊर्ध्व है। ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। एक साथ है। अक्रम भगवान अनन्त गुण का पिण्ड एक है। परमाणु भी अक्रम अनन्त गुण का पिण्ड है। आत्मा और परमाणु में भी क्रमसर, क्रमसर, क्रमवर्ती पर्याय जिस समय में जो होनेवाली है, वह होती है। यही वस्तु का स्वरूप है। उपादान-निमित्त में भी यह बात की है, व्यवहार की, देखो।

यहाँ तो राग का कर्ता कहना है। क्योंकि पर्याय उसकी है न? पर्याय उसकी है न? परन्तु अब जब संवर का कर्ता हो तब राग का थोड़ा-थोड़ा भाग है, उसका भी कर्ता जीव है, ऐसा सिद्ध करना है। व्यवहार और निश्चय की पर्याय का कर्ता जीव है, इसलिए अकेला व्यवहार रखा है, विकल्प ऐसा। यहाँ व्यवहार से पर नहीं, यहाँ व्यवहार से निश्चय का स्वभाव है, ऐसा कहा।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान के परिणाम का उत्पादक भी जीव और उस काल में राग की उत्पत्ति व्यवहार की हुई, उसका भी कर्ता और उत्पादक जीव। ऐई! (समयसार) ७५ गाथा में कहते हैं कि राग-द्वेष का उत्पादक कर्म। वह तो स्वभाव की दृष्टि में ज्ञानानन्द की दृष्टि हुई, अब जरा विकल्प होता है, (वह) स्वभाव से नहीं और निमित्त, परन्तु उसका लक्ष्य करने से होता है; इसलिए कर्म व्यापक कहकर विकार को व्याप्य कहा जाता है।

परन्तु यह तो पहले कर्म आत्मा व्यापक है और उसकी विकारी पर्याय व्याप्य है, ऐसा सिद्ध करने के बाद। अरे! अरे! गजब बात, भाई! समझ में आया? यहाँ अभी विकारी पर्याय तो व्याप्य ली है। उसका करने को समर्थ जीव लिया है। और ७५-७६ (गाथा) कर्ताकर्म (अधिकार) में जो बात ली है, वह अलग है। वहाँ तो भगवान आत्मा पर से तो भिन्न सिद्ध किया। अब विकार से भिन्न स्वभाव है, ऐसा वहाँ सिद्ध करना है।

यहाँ तो पर से भिन्न की व्याख्या में अपनी पर्याय में अपना पूरा रूप समाप्त हो जाता है, इतना। और (समयसार) कर्ताकर्म (अधिकार) में जो ७५, ७६, ७७, ७८, ७९ (गाथायें) ली हैं, वहाँ तो ऐसा कहते हैं कि कर्म कर्ता और विकारी पर्याय व्याप्य कर्म। वहाँ तो वस्तु भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द की दृष्टि हुई है, वहाँ विभाव से भिन्न पड़ा है, विभाव से भिन्न हुआ है, इसलिए भिन्न का कर्ता भिन्न दूसरा द्रव्य है। भिन्न का कर्ता स्व भिन्न है नहीं। समझ में आया? सोमचन्दभाई प्यारा ने ९९में प्रश्न किया था। निश्चय से, स्वभाव की दृष्टि निश्चय से आत्मा विकार का कर्ता नहीं है। और पर के छूटने की अपेक्षा से विकार का कर्ता निश्चय से जीव है। अरे! अरे! गजब! बनारसीदास में आता है न? निश्चय और व्यवहार दो नय से जगत भरमाया रे। आहाहा! शान्ति से समझना चाहिए। भाई!

प्रत्येक द्रव्य की पर्याय उसकी, उसका कर्ता दूसरा कैसे हो सकता है? उसकी पर्याय का कर्ता दूसरा तो इसके विशेष ने किया क्या? सामान्य द्रव्य जो त्रिकाली रहा, उसका विशेष क्या? कि पर्याय। तो वह विशेष पर्याय सामान्य से न हो तो वह विशेष से हुआ तो सामान्य से हुआ क्या? प्रभाव, परन्तु क्या प्रभाव डाले? उसे स्पर्श करता है? प्रभाव अर्थात् उसकी कर्म की पर्याय यहाँ आती है? कर्म की पर्याय और विकारी पर्याय का दो का तो अभाव है। समझ में आया? कर्म का उदय है, वह जड़ की पर्याय है। राग है, वह जीव की पर्याय है। एक इस जड़ की पर्याय का उसमें अभाव है और इसकी पर्याय का उसमें अभाव है। आहाहा! सप्तभंगी है, स्वचतुष्टय से है और परचतुष्टय से नहीं। समझ में आया?

कहते हैं निमित्त अब, यह प्रभु हो गया। अब **निश्चय से पौद्गलिककर्म जिनका निमित्त है....** यहाँ ऐसा आता है, उसमें क्या आया? भाई! अब उसमें आया। **पौद्गलिककर्म**

जिनका निमित्त है ऐसे आत्मपरिणामों का कर्तृत्व होने से 'कर्ता' है,.... एक बात ली। उसमें है तो तीन बोल। द्रव्यसंग्रह में तीन है, यहाँ दो लिये हैं। निश्चय से पौद्गलिक कर्म का उदय तो निमित्त है और जीव के जो पुण्य-पाप, राग-द्वेष के आत्मपरिणाम, उनका कर्तृत्व वास्तव में जीव को होने से जीव उसका कर्ता है। कर्म (उनका कर्ता) नहीं है। समझ में आया? तीन नय है, इसमें दो नय उतारे हैं। दूसरे प्रकार से कहें तो वास्तव में निश्चयनय से निर्मल आत्मा के वीतरागी परिणाम का कर्ता जीव है, वह निश्चयनय यथार्थ निश्चय है। द्रव्यसंग्रह में तीन उतारे हैं।

शुद्धनिश्चय से देखो तो, पर्याय हो, वह परमशुद्धनिश्चय से द्रव्य पर्याय का... वह अलग। आहाहा! भगवान आत्मा वीतरागी आत्मा धर्म के परिणाम करे, धर्म परिणाम, शुद्ध वीतरागी आनन्द के भाव का कर्ता शुद्धनिश्चय से जीव है। और यहाँ तो अशुद्ध निश्चय का कथन निश्चय में कहा है। समझ में आया? इसमें समझ में आये ऐसा है, न समझ में आये ऐसा कुछ नहीं। भाषा तो सादी है। कि आत्मा वस्तु है और आनन्द है, उन आनन्द के परिणाम का कर्ता शुद्धनिश्चय से जीव है। अब कहो इसमें पर्याय का कर्ता द्रव्य है। अब उसमें जो विकारी परिणाम हों, उसमें कर्म का उदय निमित्त है। परन्तु वह कर्ता नहीं। अशुद्ध निश्चयनय से विकारी परिणाम का जीव स्वयं परिणमनेवाला कर्ता है। कहीं दो कर्ता होंगे? समझ में आया? आहाहा!

गजब! परन्तु ऐसा निवृत्त कहाँ पढ़ना, समझना? करो न व्रत और तप कर डालो। हो गया धर्म। धूल में भी नहीं। मर जायेगा, व्रत, तप में धर्म (मानेगा तो) व्रत, तप तो विकल्प है। वह राग क्या है, उसका कर्तृत्व किस प्रकार है, उसका स्वभाव है या विभाव, इसकी तो तुझे खबर नहीं। मिथ्यात्वभाव में व्रत और तप सब बालव्रत और बालतप है। हें? मूर्खता से भरपूर है। समझ में आया या नहीं? घर में बीस वर्ष के लड़के का विवाह होता हो न, तो दो वर्ष के लड़के को पूछे कि इस भाई का विवाह होता है, तो तुझे विवाह करना है? तो कहता है कि हाँ; वह जैसे बिना भान के बोलता है, वैसे अज्ञानी व्रत और तप बिना भान के करता है। समझ में आया? लड़के से हाँ करानी हो न, हाँ।

हमारे हिम्मतभाई गये थे न राजुल, राजुल को पूर्व के भव का जातिस्मरण है न, तो

अभी हमारे पण्डितजी ने पहले परीक्षा की थी कि राजुल! हम यहाँ से तुझे वहाँ ले जायें.... तब तो छोटी थी न, पाँच वर्ष की होगी। तब उन्होंने पूछा। राजुल! तुझे वहाँ ले जायें, तुम्हारे पिता के पास तो तुम्हारे पिता को पहिचानेगी? तो कहे हाँ, तेरी माँ को पहिचानेगी? हाँ, तेरे काका को पहिचानेगी? हाँ, वहाँ गीता को पहिचानेगी? यह पण्डितजी ने चौथा प्रश्न किया। घरवालों को पहिचानेगी, परन्तु गीत को पहिचानेगी क्या कहते हो? गीता तो यह रही। ऐसा प्रश्न उसने किया था। सवेरे देखा था न? हाँ वह। उसकी परीक्षा करने के लिये प्रश्न किये थे कि तेरे पिता को पहिचानेगी? तेरे काका को, तेरी माँ को? ऐसे तीन प्रश्न में हाँ किया। चौथा, गीता को पहिचानेगी? तो कहे, गीता को पहिचानेगी क्या कहते हो? गीता तो यह रही। गीता तो यहाँ खड़ी है। वहाँ कहाँ अब गीता थी? ऐसा जवाब दिया था। समझ में आया?

इसी प्रकार आत्मा में सबमें हाँ करे, आत्मा कर्ता, आत्मा कर्म, कर्म भी करावे और आत्मा भी करावे, है या नहीं? तो कहे हाँ; ऐसे अज्ञानी के व्रत और तप वे तेरे व्रत और तप? तो कहे हाँ। परन्तु अज्ञानी के व्रत और तप उस छोटे लड़के के विवाह जैसे हैं। विवाह अर्थात् क्या कहलाता है और स्त्री अर्थात् क्या कहलाती है? किसलिए विवाह होता है, यह खबर नहीं। ऐसा उस बालक को पूछा था तो उसने हाँ की थी। देख, यह भाई का विवाह होता है, सम्बन्ध होता है, विवाह होता है, तुझे विवाह करना है?—कि हाँ।

सहजानन्द को ऐसा हुआ। स्वामी नारायण के सहजानन्द थे न! सहजानन्दस्वामी थे न! वे बेचारे भद्रिक ब्रह्मचारी थे। ऐसा फिर पावर हो गया, मैं ईश्वर हूँ और ऐसा मान लिया गया। फिर उन्हें एक बार गाँव में विवाह होता था। गाँव में विवाह होता था (तो उन्होंने पूछा) कि यह क्या होता है? तो कहे, विवाह होता है। कहो, मुझे भी विवाह करना है। वे कहे, तुम्हारा विवाह करेंगे। वह जहाँ विवाह करने का कहा, वहाँ उल्टी शुरु हो गयी। गन्ध, गन्ध अन्दर तीन दिन और तीन रात उल्टी, ब्रह्मचारी व्यक्ति। विवाह करने का जहाँ कहा वहाँ वह याद आ गया। गन्दकी, गन्दकी। आहाहा! विवाह होता था, इसलिए उनसे ऐसा बोला गया, विवाह होता है, मुझे भी विवाह करना है। यह कहा और उसने–दूसरे ने हाँ किया और फिर तीन दिन और तीन रात उल्टी। अरे रे! यह भगवान, अपने को ऐसा

कहाँ कहा। गन्ध विषय की दुर्गन्ध लक्ष्य में आ गयी और उल्टी हो गयी, हों! खाना भावे नहीं। इसलिए फिर लोग ऐसा कहते, आहाहा! क्या भगवान को विवाह करने का कहा, वहाँ उन्हें गन्ध ऐसी तीन दिन तक उल्टी आ गयी। यह तो एक शुभविकल्प है। उसमें आत्मा कहाँ आया? समझ में आया?

ब्रह्मचर्य तो ब्रह्मानन्द आत्मा में चरना, रमना, उसका नाम ब्रह्मचर्य है। मात्र विवाह न करना, इसलिए ब्रह्मचारी है, ऐसा कौन कहता है? वह तो देह की क्रिया न करे और ब्रह्मचर्य का शुभभाव हो, वह तो पुण्य है, वह वास्तविक ब्रह्मचर्य नहीं। वास्तविक तो भगवान आनन्दमूर्ति ब्रह्म-आनन्द में चरन, रमना, लीन होना, इसका नाम ब्रह्मचर्य है। वह ब्रह्मचर्य सम्यग्दृष्टि को ही होता है। अज्ञानी को नहीं होता। अभी वस्तु का भान नहीं। राग को अपना स्वरूप माने, उसमें ब्रह्मचर्य कहाँ से आया, ऐसा कहते हैं। अब्रह्म तो स्वयं है। राग को अपना स्वरूप माने वह संयोगी व्यभिचार है। राग, पुण्य-पाप का भाव, वह तो संयोगीभाव है। संयोगीभाव को स्वभाव के साथ एक मानना, वही मिथ्यात्व का व्यभिचार है। समझ में आया?

स्वभाव के साथ, विभाव के विकल्प को, स्वाभाविक चीज़ में संयोगी विकार को एकत्व मानना, वह महामिथ्यात्व का मैथुन है। मिथ्यात्व का मैथुन है। ऐसे मिथ्यात्वभाव को जिसने जाना नहीं और मिथ्यात्व टाला नहीं और उसे हो गये व्रत और नियम, वे सब बिना अंक के, रण में शोर मचाने जैसे हैं। समझ में आया?

कहते हैं, ओहो! निश्चय से तो पौद्‌गलिक कर्म जिसका निमित्त है, बस, इतना व्यवहार। आत्मपरिणाम अपने हैं। ऐसे आत्मा के परिणाम अभी कहाँ लिये हैं? यह विकार। यह संवर, निर्जरा और मोक्ष के परिणाम की बात यहाँ नहीं ली है। उसमें कही थी जब संवर, निर्जरा और मोक्ष का करनेवाला स्वयं है। भावकर्म का नाश करनेवाला स्वयं है। समझ में आया? अब एक आत्मा का यहाँ ले लिया, इसलिए यहाँ ऐसा नहीं लिया। यहाँ तो इतना लिया, जितने विकारी परिणाम होते हैं, उसमें कर्म निमित्त है। उपादान अपने कारण से वह विकार होता है, उसका कर्तृत्व होने से आत्मा कर्ता है। आत्मा विकारी परिणाम का कर्ता है। कहो, समझ में आया?

अब अर्थ लिया। सम्यग्दृष्टि है, वह विकारी परिणाम का कर्ता नहीं। यहाँ तो समुच्चय पूरे आत्मा की बात साधारण करनी है। विकारी परिणाम विकल्प है, दुःख है, उसका कर्ता हो तो वह मिथ्यादृष्टि है। यहाँ तो जीव की पर्याय में है, इतना यहाँ सिद्ध करना है। नहीं तो अज्ञानी मिथ्या परिणाम का स्वयं कर्ता है। परिणाम में भले कर्म निमित्त हो, परन्तु कर्ता तो जीव स्वयं है। समझ में आया?

वे कहें–नहीं, तुम कहते थे न एक वाक्य। 'करे कर्म सो ही करतारा।' राग को करे वह मिथ्यादृष्टि कर्ता होता है। और राग का जाननेवाला भिन्न पड़कर जाने, उसे ज्ञाता और दृष्टा को समकिती कहा जाता है। वह तो विभाव से पृथक् पड़ने की बात है। यह तो विभाव स्वयं करता है, उसका कर्ता यह है, इतना सिद्ध करना है। पर्याय में भूल जीव करता है, इतना सिद्ध करना है। समझ में आया? वह भूल कोई कर्म कराता है, (ऐसा नहीं है)। भाई! अपने कुछ भूल करने का भाव हो, लोग नहीं कहते? वह तो कर्म ऐसा कठोर आवे, भूल करावे, वह कर्म उलझा डाले। झूठ बात है। यह किसने तुझे ऐसा सिखाया? तेरी उल्टी पर्याय का कर्ता तू और तू कर्म के ऊपर डाले, मूढ़ है। समझ में आया?

कहा न, मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी ने ऐसा कहा है कि विकार तू करे और दूसरे के ऊपर डाले, ऐसी अनीति, जिनाज्ञा माने तो सम्भव नहीं है। मोक्षमार्गप्रकाशक (में कहा है)। ऐसी अनीति, अन्याय। विकार तू करे और कर्म के ऊपर डाले, (यह) अन्याय है। यदि जिनाज्ञा माने तो ऐसी अनीति संभव नहीं है। समझ में आया?

पौद्गलिककर्म जिनका निमित्त है.... ऐसे आत्मा के परिणाम अर्थात् विकारी का कर्तृत्व जीव स्वयं परिणमता है, इसलिए कर्ता है। **व्यवहार से (असद्भूतव्यवहारनय से) आत्मपरिणाम जिनका निमित्त है,...** सामने। कर्म जो बँधते हैं, वे उसके उपादान और उसकी योग्यता से। जीव का विकारी परिणाम निमित्त होने से **आत्मपरिणाम जिनका निमित्त है,....** अर्थात् विकारी परिणाम जिसका निमित्त है। 'जिसका'। ऐसे पौद्गलिक कर्मों का कर्तृत्व होने से व्यवहार से उसका कर्ता असद्भूतव्यवहारनय से, झूठे नय से, कर्ता नहीं और कर्ता कहना – ऐसे व्यवहारनय से, अद्भूतनय से कहा जाता है। समझ में आया? इसमें दो लिये हैं।

अब, **भोक्ता, निश्चय से शुभाशुभकर्म जिनका निमित्त है,....** ऐसे अपने सुख-दुःख परिणामों का, सुख-दुःख के विकल्पों का भोक्ता जीव है। सुख-दुःख का भोक्ता शरीर है, ऐसा नहीं है। भाई! शरीर का धर्म भोक्ता है, वेदान्त ऐसा कहता है न? ऐसा नहीं है। सुख-दुःख की कल्पना, यह विकारी की अभी बात है, हों! आनन्द के परिणामों का भोक्ता आत्मा है, यह शुद्ध निश्चय से है। यह अकेला निश्चय अर्थात्? स्व-आश्रय निश्चय की बात करनी है। संसार अवस्था को संसरण मानना चाहिए। समझ में आया?

कहते हैं, **निश्चय से शुभाशुभकर्म जिनका निमित्त है,....** इतना कि देखो, निश्चय से इतना रखना। **ऐसे सुख-दुःख परिणाम....** यह निश्चय वहाँ ले लेना। निश्चय से सुख-दुःख परिणाम, ऐसा लेना। ऐसे परिणाम का निमित्त तो पुराना कर्म निमित्तमात्र है। और वर्तमान में सुख-दुःख परिणाम का भोगतत्त्व, सुख-दुःख कौन? विकारी। आनन्द का भोक्ता है, वह निश्चयनय से है। आहाहा! अपना भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द-सुखकन्द है। समझ में आया?

सवेरे आया था या नहीं? मूल पुस्तक में सवेरे आया था न। सुखकन्द। शक्करकन्द होता है न? वैसे आत्मा सुखकन्द है, आनन्द का कन्द है, सच्चिदानन्द है। उसकी अन्तर्दृष्टि करके आनन्द का भोगना, वह शुद्धनिश्चय से आनन्द का भोक्ता आत्मा है। और हर्ष-शोक के विकल्प का भोगना, वह अशुद्ध निश्चयनय से जीव स्वयं है। उसका भोक्ता कर्म है और शरीर का धर्म सुख-दुःख का भोगना है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

लो, ठीक! तो फिर शुद्धनिश्चय में तो आवे कि सुख-दुःख की कल्पना का भोक्ता जीव नहीं है। सम्यग्दृष्टि जीव सुख-दुःख की कल्पना का भोक्ता नहीं है। क्योंकि सम्यग्दर्शन में तो शुद्धद्रव्य आनन्दस्वरूप का भान है। भान में भान की दशा प्रगट होती है। वहाँ सुख-दुःख की कल्पना का भोक्ता जीव नहीं है। परन्तु यहाँ सामान्य जीव की व्याख्या करनी है, इसलिए उसके सुख-दुःख की कल्पना का भोक्ता जीव है, सुख-दुःख कर्म भोगता है, शरीर भोगता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

अरे! आचार्यों ने जंगल में रहकर, कैसी टीका हुई है! ऐसे यह सुख-दुःख के परिणाम, क्या कहते हैं? उसमें कर्म निमित्त लिया है। हमें दूसरा कहना है। कि भाई! स्त्री

का शरीर, लक्ष्मी और मकान, इन सुख-दु:ख के परिणाम में नोकर्म निमित्त नहीं लिया। वह तो सुख-दु:ख के विकल्प में निमित्त होता है। समझ में आया? वह तो नोकर्म न हो तो कष्ल्पना करे, यह स्त्री ऐसी है और अमुक है और अमुक है। इसलिए नोकर्म बाह्य चीज़ है, सुख-दु:ख की कल्पना में निमित्त है, यह नहीं लिया। सुख-दु:ख की कल्पना में पुराना कर्म शुभ-अशुभ है, निमित्त है बस। निमित्त अर्थात् उपस्थिति। और वह सुख-दु:ख की कल्पना का, विकारीभाव का भोक्ता अशुद्ध निश्चयनय से जीव है। उसका भोक्ता कर्म नहीं तथा शरीर है नहीं। समझ में आया? अरे! कितनी नय की व्याख्या, हें! आहाहा!

शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा, वह परमानन्द का धाम प्रभु! राग से भिन्न पड़कर उसका जहाँ भान हुआ, तो कहते हैं कि उसका नाम आत्मा (है)। अब वह आत्मा आनन्द का भोक्ता है। वह दु:ख का भोक्ता नहीं है। सुख-दु:ख की कल्पना, स्त्री के शरीर के विषय के भोग की, पैसा या इज्जत का, पाँच लाख पैदा हुए और हर्ष का विकल्प आया। कहते हैं, उस विकल्प का निमित्त कर्म है। वह (नोकर्म) नहीं, परन्तु उस विकल्प का भोक्ता जीव है। समझ में आया?

अच्छा बँगला पाँच-दस लाख का हो और ऐसे झूलता हो, लड्डू खाने के लिये पड़े हों, ऐसे दाल, भात, भुजिया, कहते हैं कि तेरे सुख की कल्पना में वह निमित्त नहीं, ले! कर्म निमित्त है और सुख-दु:ख को भोगने में तेरा अशुद्ध उपादान है। समझ में आया? आहाहा! अकेला भगवान सुख-दु:ख को भोगे, अकेला भगवान सुख-दु:ख को टालकर आनन्द को भोगे। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि **सुख-दु:ख परिणामों का भोक्तृत्व होने से 'भोक्ता' है, व्यवहार से (असद्भूतव्यवहारनय से) शुभाशुभकर्मों से सम्पादित (प्राप्त) इष्टानिष्ट विषयों का भोक्तृत्व होने से 'भोक्ता' है;....** देखो, इसमें यह बाह्य पदार्थ आये। समझ में आया?

बाह्य पदार्थ इसके निमित्त हैं, ऐसा नहीं है। यह उसे निमित्त है, ऐसा कहते हैं। **व्यवहार से शुभाशुभकर्मों से सम्पादित....** देखो! शुभकर्मों के उदय से इष्ट सामग्री मिले। अशुभकर्म के कारण अनिष्ट सामग्री मिले, ऐसा कहते हैं, आचार्य कहते हैं। सम्पादित है न? इसीलिए यह शब्द पड़ा है धवल में। सम्पादित शब्द पड़ा है। बाह्य पदार्थ की प्राप्ति

में वेदनीयकर्म के अतिरिक्त दूसरा कर्म हमें दिखाई नहीं देता। ऐसा है। वेदनीयकर्म, कितने ही ऐसा मानते हैं न? सामग्री मिलना, वह वेदनीयकर्म के कारण नहीं है। वह तो रागी प्राणी बहुत राग करे तो अनुकूलता मिले। अरे! राग करे तो अनुकूलता मिलती होगी धूल में? समझ में आया? बाह्य पदार्थ की प्राप्ति में राग को कितने ही कारण मानते हैं। झूठ बात है। बाह्य सामग्री की प्राप्ति में वेदनीय कर्म का निमित्त है। समझ में आया?

देखो पाठ, अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। शुभाशुभकर्मों से अर्थात् शुभ सातावेदनीय और अशुभ असातावेदनीय सम्पादित (प्राप्त) इष्ट-अनिष्ट विषय, अनुकूल सामग्री, प्रतिकूल सामग्री का भोक्तृत्व होने से, क्योंकि आत्मा अपने सुख-दुःख को भोगे, यह उपादान निश्चय, उसमें वह निमित्त चीज़ है, इसलिए व्यवहार से उसे भोक्तृत्व, ऐसा कहा जाता है। भोग नहीं सकता परन्तु भोगता है, ऐसा कहना, वह असद्भूतव्यहारनय का कथन है। कहो, समझ में आया? गजब बात, भाई!

एक गाथा में कितना भर दिया है! हें? आहाहा! जीव की व्याख्या की है कि, जीव अनादि-अनन्त ऐसा है। निगोद पर्याय का कर्ता वह, संवर-निर्जरा की पर्याय का कर्ता वह, मोक्ष का भी कर्ता वह। कहो, समझ में आया?

यहाँ तो वहाँ तक कह दिया भाई, शुभाशुभकर्मों से प्राप्त इष्टाइष्ट जो विषय हैं, कोई ऐसा कहे कि इष्टाइष्ट (इष्ट-अनिष्ट) विषयों का कारण वेदनीय नहीं। कितने ही ऐसा कहते हैं। समझ में आता है न, शरीर में रोग आना, वह असाता का कारण नहीं। खाना नहीं आया, अपाच्य खाया, इसलिए रोग हुआ, यह बात झूठी है—ऐसा कहते हैं। खाने में सम्हालना आया पथ्य आहार को, इसलिए शरीर में निरोगता रहती है, यह बात झूठी है। निरोगता की प्राप्ति और सरोगता की प्राप्ति में शुभाशुभ वेदनीयकर्म निमित्त है। उसे भोगता है, ऐसा कहना, वह व्यवहारनय का कथन है। निश्चय से तो सुख-दुःख की पर्याय को जीव भोगता है। ऐसा स्वतन्त्रपना समझे तो उसकी निमित्त की दृष्टि टले, फिर विकार की दृष्टि टलकर फिर स्वभाव की दृष्टि हो, तब उसे धर्म और सम्यग्दर्शन होता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)